सुमित्रानंदन पंत : जीवन और साहित्य

सुमित्रानंदन पंत :
जीवन और साहित्य

द्वितीय खण्ड : १९४०-१९७६

शांति जोशी

मूल्य : रु० ५०.००

प्रथम संस्करण : १९७७
प्रकाशक : राजमकल प्रकाशन प्रा० लि०
८ नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२
मुद्रक : पर्वतीय मुद्रणालय,
१८ राय रामचरण दास रोड, इलाहाबाद-२११००२

बेटी सुमिता को

न धनं न जनं न च कामिनीं
कवितां वा जगदीश कामये,
मम जन्मनि जन्मनि ईश्वर
भवताद् भक्तिरहैतुकी त्वयि !

दो शब्द

●

'सुमित्रानंदन पंत : जीवन और साहित्य' का द्वितीय खण्ड पाठकों के सम्मुख देर से प्रस्तुत करते संकोच हो रहा है। प्रथम और द्वितीय खण्ड का अंतराल, आशा के विपरीत, लम्बा हो गया है। और संभव है, यह और भी अधिक लम्बा हो जाता यदि मानव जी ने मई '७४ को इसे पूरा करने का आग्रह न किया होता। उन्होंने स्वयं तो मुझे इस खण्ड को पूरा करने एवं शीघ्र प्रकाशित करवाने के लिए बाध्य किया ही, मेरे सहकर्मी भाइयों—डा० रघुवंश, डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी तथा श्री श्यामकिशोर सेठ—के द्वारा भी मुझे प्रेरित अथवा बाध्य किया कि मैं अपने दार्शनिक ग्रंथों के प्रणयन से विमुख होकर पहिले इस पुस्तक को पूरा करूँ। यही मेरे स्वर्गीय पिता जी (निधन जून '७४) का भी निरंतर कहना था। वस्तुतः यह द्वितीय खण्ड मैंने इसके प्रथम खण्ड के साथ ही लिख लिया था, मात्र एक बार संपूर्ण पाण्डुलिपि को ध्यान से पढ़ने की बात थी। उस समय इस पुस्तक को तीन खण्डों में प्रकाशित करने की मेरी योजना थी। अतः मैंने सन् '६५ तक ही लिखा था। फिर कई कारणोंवश दो खण्डों में ही संपूर्ण सामग्री—जीवन और साहित्य संबंधी—सीमित करने का निर्णय लेना पड़ा। पुस्तक का बाईसवां अध्याय नया लिखा, और अध्याय पहिले के लिखे हैं। द्वितीय खण्ड मैंने सितम्बर-अक्टूबर '७४ को प्रकाशन के लिए तैयार कर दिया था। पर डेढ़ वर्ष तक कागज की मँहगाई ने इसे प्रकाशित नही होने दिया, प्रथम सप्ताह अप्रेल '७६ में प्रेस में देने पर यह पुस्तक अब (दिसम्बर '७६) में प्रकाशित हो पाई है।

एक बात और, इस पुस्तक के दोनों ही खण्डों में मैंने अपने लेखकीय स्वातंत्र्य को खोया नहीं हैं। जो कुछ है वह मेरा निरीक्षण-परीक्षण है, मेरा अपना चिंतन और निष्कर्ष है। कुछ लोग यह सोच सकते हैं कि मुझे पंत से बहुत नही तो थोड़ी बहुत सहायता अवश्य मिली होगी। पर इस दृष्टि से मैं पंत का

तनिक सा भी आभार नहीं मान सकती। जितना अधिक हतोत्साह वे कर सकते थे उन्होंने किया, और असहयोग की तो बात ही न्यारी है। मुझे काम करते देख वे दुःखी हो जाते, "बस लिखने बैठ गईं। सुमिता का कुछ ख्याल नहीं। मैं तुम्हारी जगह होता तो सुमिता से ही खेलता रहता, और कुछ काम नहीं करता। इसका तो तुम्हारे अध्यापन से कोई संबंध भी नहीं है। क्या बिगड़ जायगा तुम्हारा, यदि तुम यह जीवनी न लिखो।" इस प्रकार के विभिन्न कथनों ने कई बार मेरी लेखनी रोक दी—सोचा एक खण्ड प्रकाशित हो गया बहुत है। 'क्या बिगड़ जाएगा' मेरा यदि दूसरा खण्ड प्रकाशित न हुआ। किंतु मन की प्रेरणा को परिस्थिति, मित्रों-संबंधियों का बल मिला, फिर प्रकाशक के प्रति भी मैं प्रतिश्रुत थी (यही बहुत था कि मैंने तीन खण्डों की योजना के बारे में कुछ नही कहा था)। उस पर जब एक बार लिखने का समा बंध जाता है तो कोई बाधा बाधा नहीं लगती।

पुस्तक का प्रूफ देखना मेरे लिए सुखद रहा। इस बार पंत ने तो पूर्ण सहयोग दिया ही, मेरी सवा पाँच साल की बेटी सुमिता ने भी प्रूफ देखने में सहायता दो। मेरे हाथ में प्रूफ का फर्मा देख वह प्रसन्न हो उठती, "हम भी देखेंगे।" और मैंने कुछ अशुद्धियाँ उससे भी ठीक करवाई।

मैं अपने भाई श्रीकृष्ण प्रसाद जोशी तथा श्री ओंकार शरद के स्नेह की आभारी हूँ। ओंकार शरद ने यदि किताबें दीं तो भाई ने समाचार पत्रिकाओं में पुस्तक योग्य सामग्री के प्रति मेरा ध्यान आकर्षित किया।

और अंत में उस नियंता के प्रति प्रणत हूँ जिसने यह कार्य मुझसे करवा दिया।

शांति जोशी

अक्टूबर, १९७६

१८/बी-७ स्टेनली रोड

इलाहाबाद

क्रम

●

● ●

पंतजी : ६०वीं वर्षगाँठ के अवसर पर

श्रीमती इन्दिरा गाँधी से सोवियतलैण्ड नेहरू पुरस्कार प्राप्त करते हुए : १९६८

१

प्रयाग पुनरागमन, 'आधुनिक कवि' तथा 'लोकायतन' संस्था की योजना

•

'ग्राम्या' के प्रणयन के साथ ही मानो पंत के कालाकांकर जीवन का उद्देश्य समाप्त हो गया। रूढ़िधाम ग्राम देवता को शत-शत प्रणाम कर वे वहाँ से विदा लेकर, एक प्रकार से, बाह्य दृष्टि से शांतिपूर्ण एव स्थायी जीवन को भी तिलांजलि देते हैं। जिस प्रकार कालाकांकर का आठ-नौ साल का जीवन उनके घोर मानसिक संघर्ष का जीवन रहा है उसी प्रकार उनका आगामी नौ-दस साल का जीवन आर्थिक संघर्ष, प्रवृत्तियो के सतुलन तथा वैचारिक समन्वय का काल रहा है। इस बीच उन्होंने परिस्थितिवश भारत भ्रमण किया, अनेक प्रदेशों में गए, विभिन्न परिवारों के साथ रहे। सभी प्रकार के अनुभव प्राप्त किए, बहुत कुछ देखा और समझा।

पंत का प्रकृति प्रेम विगत वर्षों में व्यापक और गहन होकर मानव प्रकृति तथा लोक-कल्याण की ओर प्रवृत्त हुआ। यथार्थ की दृष्टि से उनकी सामाजिक चेतना प्रबुद्ध, व्यापक और सक्रिय हो गई थी तथा उसने उस समन्वयात्मक दृष्टिकोण को आत्मसात् कर लिया था जो अध्यात्म और भूतवाद की संकीर्ण दीवारों में मूलगत भेद नहीं मानता है। उनकी युग-चेता मनीषा ने इनके संघर्षों को वास्तविक न मान कर मानव-बुद्धि की उपज माना। जड़ से चेतन तक एक ही सत्य का संचरण है, दोनों ही विश्वोन्मुखी मध्यवर्ती जीवन धारा के दो किनारों की भाँति हैं। अत: दोनों का समन्वय ही जीवन का सापेक्षत: समग्र एवं विकासशील सत्य है। अंतर्जीवन अथवा आत्मा के सत्य के आधार पर ही हम विज्ञान एवं जड़वाद का समुचित मूल्यांकन कर सकते हैं अन्यथा वह अपनी ही एकांगी प्रगति के कारण मानवता के विकास के लिए

अकल्याणकर सिद्ध हो सकता है। पंत को अपने इस अंतर्बोध को अब वस्तुगत आधार देना था। आस्था को सार्वभौम बुद्धि का अवलम्ब देकर चिंतन-मनन-जन्य दृष्टि को जीवंत बनाना था।

विकास, चाहे वह किसी प्रकार का हो, एक अज्ञात प्रेरणा, आकुलता, असंतोष एवं संघर्ष की अपेक्षा रखता है। पंत का विकासप्रिय एवं प्रगतिकामी मानस 'ग्राम्या' के प्रणयन के बाद निःस्पंद न रह सका। उसने वैचारिक करवट ली। यथार्थ का बाहरी-भीतरी तल खोजने एवं इतिहास, मनोविज्ञान, जीवशास्त्र, समाजशास्त्र, नृतत्वशास्त्र और मार्क्सवाद में अवगाहन करने तथा जीवन की विषमताओं, असामान्यताओं, आर्थिक अन्याय, नैतिक निर्धनता एवं जन-जीवन की उस परम्परा को समझने के पश्चात् जिसने जीवन को उसके प्रगतिशील तत्वो से वियुक्त कर दिया है उनका मन विद्रोही हो गया। वह वितृष्णा और दुःख से व्याकुल होकर कराह उठा—'यह तो मानव लोक नही रे।'

पंत का विद्रोही, अभावात्मक, आलोचनात्मक स्वर कालक्रम में निर्माणात्मक और भावात्मक होने लगा—उन्हें उन भावात्मक सस्कृत तत्त्वों का आभास मिलने लगा जिनकी उन्हें कभी से प्रतीक्षा थी। किंतु यह आभास शांतिदायक होने पर भी शांतिदायक नही बन सका। इसके कारण पर प्रकाश डालते हुए उनका कहना है, "सन् '४० से '४५ तक मेरी मानसिक ऊहापोह तथा अंतः संघर्ष की स्थिति रही। एक तो मेरा मन 'भारत छोड़ो' आंदोलन के परिणाम-स्वरूप अभिशप्त मानसिक स्थिति के गहन मूक व्रण की पीड़ा को सहलाने का प्रयत्न करता था। दूसरा मन की अस्थिरता तथा उच्चाटन के कारण में कहीं भी एक जगह पर स्थिर नही रह सकता था। सृजन कर्म के लिए तो इन वर्षों में जैसे प्रेरणा का स्रोत ही सूख गया।"[१]

कालाकाँकर छोड़ कर वे प्रयाग आ गए, प्रयाग—अपने परिचित स्थल, स्वयं वरण किए हुए नगर में! प्रारंभ मे वे कुछ दिनों नरेन्द्रजी के साथ रहे। उन दिनों नरेन्द्रजी दिलकुशा, नया कटरा में रहते थे। बच्चनजी, जो उस समय विश्वविद्यालय में शोध कार्य कर रहे थे, अपने शहर के घर को छोड़-कर नरेन्द्र जी के ही साथ रहने लगे थे क्योंकि दिलकुशा का यह घर विश्व-विद्यालय के निकट था। बच्चन जी के प्रति पंत सन् १९३४ में आकृष्ट हो

---

१. भेंट-वार्ता

गए थे जब उन्होंने पंत को पंडित प्रफुल्लचंद्र ओझा द्वारा स्थापित की हुई साहित्यिक सस्था, 'प्रतिमा मंदिर' के तत्वावधान में 'मधुशाला' के कुछ गीत तथा 'वह पगध्वनि मेरी पहचानी' आदि रचनाएँ सुनाई। यह सुनकर पंत ने उन्हें कालाकांकर आने का निमंत्रण दिया। अपने जीवन सघर्ष में फँसे रहने के कारण बच्चन जी कालाकांकर नही जा पाए और न पत के इलाहाबाद आने पर उनसे भेंट ही कर पाते थे। अब यह एक दूसरे के सपर्क में आने का वह सुअवसर था जिसका बच्चन जी ने उपयोग तथा नरेन्द्र जी और पंत ने हार्दिक स्वागत किया। नरेन्द्र जी सबसे छोटे थे और यह उन्हीं का घर था जिसमें आकर बच्चन जी और पंत रहने लगे थे। अत: घर देखने का दायित्व उन्ही पर पडा। वैसे तीनों ही नौकर पर आश्रित थे, साहित्यिक संगम मे रहते हुए तीनों ही भिन्न मन: स्थितियों और भिन्न कर्म-क्षेत्रों में लीन थे। बच्चन जी अपनी पत्नी श्यामा जी की मृत्यु के कारण घोर अवसाद से घिरे 'निशा निमंत्रण' का प्रणयन कर रहे थे; पंत अपने एकाकी विचार जगत्, मानसिक-आर्थिक संघर्ष की कारा में बँधे निर्लिप्त थे; और नरेन्द्र जी कांग्रेस ऑफिस में काम करते हुए प्रेम एवं भावना जगत् की समस्याओं से जूझ रहे थे।

दिलकुशा में रह कर बच्चन जी, नरेन्द्र जी तथा पंत एक दूसरे के स्नेह आलिगन में बँध गए। तीनों को ही मानो हो-हुल्लड़ की छूट मिल गई, एक दूसरे से खूब छेड़ा खानी करते। अधिकतर यह स्नेहिल विनोद गानों और तुकबंदियों में प्रवाहित हो जाता। तीनों कुमार एक दूसरे के स्नेह से आश्वस्त हो बालक बन जाते। बच्चन जी उन दिनो अत्यधिक नैराश्यपूर्ण मनोवृत्ति, घोर उदासीनता के अंधकार में डूबे रहते थे। उन्हें सामान्य मन:स्थिति में लाने के लिए नरेन्द्र जी और पंत दुनिया भर के प्रयत्न करते और अधिकतर इन्हें अपने प्रयास में सफलता प्राप्त होती। यदि कभी असफल हुए तो पंत अपने अमोघ अस्त्र का प्रयोग करते। बच्चन जी को तब तक डाँटते रहते जब तक कि वे हँसने न लगते। बच्चन जी का पंत के प्रति 'लड़ैता भाई' का भाव है। उन्हें कुछ ऐसा करना अच्छा ही लगता है जिससे पंत का स्नेह कृत्रिम कठोरता में बदल जाए, वे साधिकार उनसे कुछ कहें और तब वे प्रसन्न हो उठते हैं। नरेन्द्र जी के दफ्तर से आ जाने पर घर का पारिवारिक वातावरण चहकने लगता। मृदुल मधुर हास-परिहास से तीनों ही अपना मनोरंजन करते। कभी नरेन्द्र जी को घसीटा जाता तो कभी बच्चन जी को। पंत अपने व्यक्तित्व के आवरण में अपने को अधिकतर बचा लेते। वैसे वे समानता का व्यवहार ही

अच्छा मानते है। उन्हें प्रिय है कि वे दूसरों से मजाक करे तो दूसरे भी उनसे करें।[१]

एक दिन श्री बालकृष्ण शर्मा (स्वर्गीय नवीन जी) इन लोगो से भेंट करने पहुँचे तो देखा घर अस्त व्यस्त पड़ा है। तीनों को प्रसन्न मुद्रा में देखकर वे अपनी मस्ती में बोले—"क्या यारों, तीन-तीन रँडुवे और राँड एक भी नहीं।" नवीन जी के अट्टहास के साथ दिलकुशा का छोटा-सा घर गूँज उठा। पंत ने नवीन जी को इसी बार प्रत्यक्ष रूप से देखा यद्यपि उनके काव्य का आस्वादन पहिले कर चुके थे। उनसे मिलने के इच्छुक भी थे किंतु "बड़े लोगों के दर्शन तो देव-इच्छा से ही होते है।"

दिलकुशा का यह घर विचारकों, साहित्यिको एवं लेखकों का मिलन-केन्द्र बन गया था। साहित्यकारों की गोष्ठियाँ तथा कवि-सम्मेलन यहाँ हुआ करते थे और इनके कारण पंत अनेक समकालीन साहित्यकारो के घनिष्ट संपर्क में आए। कुछ दिनों बाद ही नरेन्द्र जी को बनारस जाना पड़ा। परिणामस्वरूप अविवाहितो की गृहस्थी टूट गई। पंत कालाकांकर चले गए और फिर वहाँ से पहाड़। पहाड़ से लौटने पर लगभग छह महीने श्री रामप्रताप बहादुर के साथ रहे। इस बीच कई बार श्री सुरेश सिह ने इलाहाबाद आकर उनसे कालाकांकर लौट चलने का आग्रह किया।[२] पंत का मन भी उनके स्नेह से प्रसन्न रहता—भाई का घर सदैव ही अच्छा लगा, केवल अब 'युगवाणी', 'ग्राम्या' का काव्य मानस अधिक विस्तार का आकाक्षी हो गया था। श्री सुरेश सिंह के चाहने पर पंत कालाकांकर चले गए। कुछ काल बाद वे फिर इलाहा-बाद आ गए। इस बार स्वतंत्र रूप से रहने की इच्छा से डा० रंजन के मकान

---

१. "विनोदशीलता नरेन्द्र में भी है और उनका हास्य कभी-कभी पना भी हो सकता है। नरेन्द्र से पंत जी की बातचीत, जिसमें दोनों निरन्तर एक दूसरे को छेड़ते रहते थे, तीसरे व्यक्ति के लिए रुचिकर और मनोरंजक होती थी, पर उसका रस संदर्भ से अलग करके उसे दोहराने से नहीं मिल सकता। अल्मोड़ा में भी पंत और नरेन्द्र दोनों का साथ हुआ, और वहाँ अविवाहित नरेन्द्र को चिढ़ाने में पंत जी की बातों में योग भी देता रहा, कभी कुछ तुकबंदी भी विनोद के लिए होती रही, किंतु इसका आस्वादन भी स्मृति कर ही सकती है, करा नहीं सकती।"
अज्ञेय 'स्मृति चित्र' : पृ० ६३, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली : प्रथम संस्करण।

२. श्री रामप्रताप बहादुर का पत्र : ६-१०-६६

की कॉटेज, १० बेली रोड किराए में ले ली। घर ले तो लिया पर नितांत अकेले रहना अच्छा नहीं लगा, विशेषकर इसलिए भी कि बच्चन जी के साथ रहने की बात मन को भा रही थी, और फिर, उन्हें दुःखी देखकर पंत के अंदर का 'बड़ा भाई' अपने 'छोटे भाई' के साथ रहना चाहता था। उन्होंने बच्चन जी से अपने साथ रहने का आग्रह किया। पंत के अकेले न रहने की प्रवृत्ति का विश्लेषण करते हुए अज्ञेय जी का कहना है, "पंत जी सदैव किसी न किसी के साथ ही रहते रहे है, रहने की क्रिया स्वतंत्र रूप से भी हो सकती है ऐसा मानो उन्होने सोचा ही नही या उसके भौतिक पक्ष को निरा जंजाल मानकर उससे बचे ही रहना श्रेयस्कर समझा है।"[1]

पंत ने कॉटेज का नामकरण किया 'बसुधा' अर्थात्—बच्चन सुमित्रानंदन धाम। दिलकुशा के घर की भाँति इस घर में भी दोनों ही नौकर पर आश्रित थे। हाँ, नौकर को नियत्रण में रखना बच्चन जी का सहज अधिकार हो गया क्योकि इस कार्य मे वे पत से अधिक निपुण थे। 'बाँध दिए क्यों प्राण प्राणों से', 'बज पायल छम छम', 'शरद चाँदनी' 'रस बन' आदि प्रेम-गीत पंत ने इन्ही दिनों लिखे। इन गीतों के बारे में पंत का कहना है—"बसुधा मे मैंने लगभग एक दर्जन प्रणय गीत लिखे, जो कभी से मेरे मन में उदित हो रहे थे।"

अंतर की यह सरसता और मधुरता बाह्य जीवन का संबल बनी हुई थी—जीवन साथी एवं भाई बच्चन घोर अवसाद, झक तथा निराशा की चित्तवृत्ति से पीड़ित रहते—उन्हें दुःखी देख पंत का मन विह्वल हो जाता। इस स्थिति से उबारने के लिए वे उन्हें अक्सर डाँटते, "क्या मुँह लटका रखा है? भाई बच्चन, तुमने यह मनहूस सूरत बनाई तो मैं घर छोड़ कर चला जाऊँगा।" और बच्चन जी डाँट खाकर, अपना मानसिक अवसाद उन पर उड़ेल कर, कुछ देर के लिए प्रसन्न हो जाते, मचलते, टहलते, चहकते तथा तन्मय होकर कविताएँ सुनाते। अपने हस्तरेखा ज्ञान के आधार पर सन् '४० में बच्चन जी की हथेली अपनी हथेली पर रखते हुए पंत ने कोमल दृढ़ स्वर मे कहा—"साल भर के भीतर एवं १९४१ ई० में तुम्हारी शादी हो जायेगी। बस देखते ही प्रेम मे पड़ जाओगे—जिसे 'लव एट फर्स्ट साइट' कहते हैं, वही होगा। तुम्हारी शादी अभी हुई कहाँ है—वह तो अब होगी।" बच्चन जी के चेहरे पर विस्मय भरे आल्हाद के चिह्न देख कर उन्होंने पुनः अपनी भविष्य वाणी दुहराई, "यदि मेरी बात ठीक नहीं निकली तो आगे से हाथ देखना

---

१. 'स्मृति चित्र' : पृ० ९३

छोड़ दूंगा।" बच्चन जी बड़े आश्वस्त हुए और सचमुच साल भर के भीतर ही, पंत के पहाड़ से लौटने तक, प्रथम दृष्टि-विनिमय मे उनकी शादी हो गई।

इलाहाबाद मे पंत बस तो गए किन्तु मन नक्षत्र के स्वप्न-नीड़ का ही पंछी था। यहाँ के घर में झंझटें और असुविधाएँ पर्याप्त थी। पत और बच्चन दोनों मिल कर घर का खर्च चलाते थे—दोनों की आर्थिक दशा अति सामान्य थी। छोटे-से कारोबार ने पंत के सृजन-चिंतन को अवरुद्ध कर दिया था। वैयक्तिक सुख-सुविधा मे समय नष्ट करना उनके कवि को मान्य नही था। उस पर उन्मुक्त ग्राम अंतरिक्ष की निर्मल स्नेह स्मृति उदासीन आकुलता से मन को भर देती। नक्षत्र का वातावरण, वहाँ के प्रति दीर्घ प्रवासजन्य ममत्व, गाँव की धरती से आत्मीयता और साथ ही सुरेश दम्पति का निश्छल स्नेह! प्रयाग के परिचित किंतु नए वातावरण में रहने और संयोजित होने की शक्ति न जाने क्यों विचलित हो उठी। मन ने कालाकाँकर जाने का निर्णय ले लिया और एक दिन यों ही बच्चन जी से बातों-बातों में पता लगा लिया कि यदि वे कालाकाँकर चले गए तो उनकी क्या प्रतिक्रिया होगी। जब लगा कि वे विशेष क्षुब्ध नहीं होंगे, तब वे कुछ महीनों के लिए दिसम्बर '४० में कालाकाँकर चले गए। दो-तीन माह कालाकाँकर रह कर वे दिल्ली, लखनऊ गए, दो-चार दिन के लिए इलाहाबाद भी आए।

कालाकाँकर मे अच्छा लग रहा था किन्तु मानसिक सघर्ष तथा 'अकथनीय आघात'[१] कभी-कभी उन्हें बहुत उद्विग्न कर देता। 'ग्राम्या' के निष्कर्ष को अधिक व्यापक और गहन पृष्ठभूमि पर आधारित करने के लिए अनवरत विचार मंथन चल रहा था। बच्चन जी के प्रति ममत्व, उनकी नैराश्यपूर्ण मानसिक स्थिति तथा उनकी आजीविका का ध्यान मन को विह्वल कर देता। इलाहाबाद आने का, इस अवधि में, कई बार निर्णय किया किंतु फिर प्रियजनों का स्नेह एवं स्वयं पंत का हृदय इस निर्णय को क्रियान्वित नहीं होने देता।[२] पर जब भी उनके मन में द्विविधा एवं संघर्ष उत्पन्न होता है वे कवि-कर्म के मार्ग को चुन लेते हैं। भावोद्वेग ने उनको व्यथित किया है किंतु उन्हें झुकाने तथा प्रणत बनाने में वह नितांत असफल रहा है। उन्हें ईश्वर एवं कवि-कर्म ने ही

---

१. 'सुमित्रानंदन पंत जीवन और साहित्य' : प्रथम भाग : पृष्ठ ४०४

२. बच्चनः 'कवियों में सौम्य संत', पृ० ५–६, 'कुछ पत्र', राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली : द्वितीय संस्करण

परिचालित तथा तन्मय किया है। कवि-कर्म के लिए उन्होंने परिस्थितियों के प्रति तटस्थ रहना सीख लिया है।

अप्रैल '४१ में पंत स्थायी रूप से इलाहाबाद आ गए और अपना सामान बच्चन जी के संरक्षण में छोड़ कर मई के द्वितीय सप्ताह में देहरादून चले गए। फिर वहाँ से १६ जून को अल्मोड़ा आ गए। अल्मोड़ा में देवीदत्त तथा गोविन्द बल्लभ पंत जी (तब उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री) अन्य कांग्रेसी नेताओं के साथ अल्मोड़ा डिस्ट्रिक्ट जेल में दंड भोग रहे थे। पंत के लिए यह आवश्यक हो गया कि देवीदत्त के परिवार की देखभाल करने के लिए वे अल्मोडा ही रहें। देश की राजनीतिक-सामाजिक स्थिति में सृजन, चिंतन अथवा कवि-कर्म संभव भी न था। युद्ध विभीषिका, 'भारत छोडो' आंदोलन, दमन-अत्याचार ने मन को गहन विषाद से भर दिया था एवं परिस्थिति की असहनीय भावना ने निष्क्रिय औदास्य को जन्म दे दिया था। लगभग एक साल तक पंत अल्मोडा में ही रहे, अपने स्वर्गीय मंझले मामा जी, हरदत्त जोशी के परिवार के साथ क्योंकि उनका घर 'ईश्वरी भवन' डिस्ट्रिक्ट जेल से ही चिपका था। साथ ही उनके ममेरे भाई लक्ष्मी चन्द जोशी का—जिन्हें उनकी खर्चीली आदतों के कारण अल्मोड़ा निवासी 'सेठ जी' कहते थे, बहुत आग्रह था कि वे उन्हीं के साथ रहें, उन्हें अपने पारिवारिक झंझटों के लिए पंत की सलाह एवं मध्य-स्थता की आवश्यकता थी। देवीदत्त का घर छोटा होने के साथ ही जेल से बहुत दूर था। उतना चल सकना उनके लिए संभव न था। मामा जी के घर में रहने के कारण ही उनके लिए यह संभव हो सका कि वे प्रायः शाम को जेल में देवीदत्त तथा गोविन्द बल्लभ पंत जी से मिलने चले जाते थे और सप्ताह में एक-दो बार देवीदत्त के परिवार की कुशल-क्षेम का पता लगा लेते।

इसी बीच बच्चन जी ने 'बसुधा' छोड़ दी तथा एलनगंज में एक मकान किराए में ले लिया। एक घर से दूसरे घर में सामान रखने में पंत का बक्सा तथा अन्य सामान चोरी चला गया। उसमें पंत के मन पसंद कपड़े, पुस्तकें और अनेक प्रिय तथा मूल्यवान् वस्तुएँ थीं। निरालाजी के दो-तीन पत्र भी थे।[1]

---

१. पंत ने इन पत्रों के बारे में, यहाँ तक कि अपने और निराला जी के कटु संबंधों के बारे में कभी कोई बात घर में नहीं की, जब एक जीवनीकार के रूप में पूछा तब भी नहीं। यह तो 'निराला की साहित्य साधना' पुस्तक की

अपनी प्रिय वस्तुओं की जब उन्हें याद आती है तो बतलाते है कि बक्से में उनकी क्या-क्या प्रिय वस्तुएँ थी। गरम कपड़ों से भरा एक अन्य बड़ा बक्सा भी पंत इलाहाबाद ही छोड़ गए थे। बरसात मे ऊनी कपड़ो मे कीड़े लग गए। इस घटना की चर्चा करते हुए बच्चन जी लिखते हैं, "पत जी ने मेरे ऊपर गृहिणी का उत्तरायित्व छोड़ा था पर मै सुघड़ नही साबित हो सका। जब वे गर्मी मे पहाड़ चले गए तो उनका एक बक्स नौकर उठा कर ले गया और मुझे पता भी न चला, बरसात मे मेरी लापरवाही से उनके सारे ऊनी कपड़े कीड़े खा गए।" पत जी ने कान पकड़ा, "बाबा, अब जब तक, तुम बीवी नही लाते तब तक मैं तुम्हारे पास नही फटकने का।"[१]

अगस्त, '४१ मे पंत इलाहाबाद आने का कार्यक्रम बना ही रहे थे कि सुरेश सिंह अल्मोड़ा में नजरबन्द हो गए। उनसे मिलने के लिए जाने में दो-ढाई मील चलना पड़ता था। दोनों के ही घर दो छोरो पर थे। सुरेश सिंह कैन्टोनमेन्ट के एक घर मे नजरबन्द थे और पंत डिस्ट्रिक्ट जेल के पास रहते थे। किंतु स्नेह ने इस दूरी को सह्य बना दिया था। वे तीसरे चौथे दिन उनसे मिलने अवश्य ही पहुच जाते थे।[२] इन दिनों आने-जाने का कार्यक्रम एक प्रकार से बँधा हुआ सा था—या जेल या कैन्टोन्मेन्ट। घर से बाहर ही रहने एवं नित्य भाइयों से मिलने जाने के कारण लिखना-पढ़ना रुक सा गया था। कुछ नवीन सृजन संभव भी नही था। यद्यपि मन में अबाध गति से विचारो की उथल-पुथल मचती रहती थी। कोई भी सवेदनशील प्राणी देश पर विपत्ति आने पर तटस्थ, निष्क्रिय या सुखी नही रह सकता है। प्रत्येक अपने अस्त्र का प्रयोग

दया है कि प्रमाण के आधार पर उन्होंने कहा, "अब अफसोस होता है कि वे चिट्ठियाँ खो गई। मैं कभी किसी के पत्र नहीं रखता। किंतु वे ऐसी तिक्तता पूर्ण चिट्ठियाँ थीं कि मैंने स्तम्भित होकर सम्हाल दीं। खोई नहीं होतीं तो डा० रामविलास को उत्तर मिल जाता। एक पत्र में निराला जी ने अपने प्रयोग को अपनी कला बतलाया था।"

१. 'कवियों में सौम्य संत,' पृ० ६५

२. "जेल में जब सुरेश जी की हालत ज्यादा खराब हो गई तो उन्हें अल्मोड़ा में एक बंगले में नजरबन्द कर दिया गया, और मुझे भी उनके साथ रहने की आज्ञा मिल गयी। श्री पंत जी भी वहाँ थे। वे दूसरे-चौथे हम लोगों को देखने जरूर आते थे।" श्रीमती प्रकाशवती : 'धर्मयुग' पृ० ४६, वर्ष १५, अंक ४० : ४ अक्टूबर '६४

करता है, अपनी व्यथा को अभिव्यक्ति देता है। पंत के पास अभिव्यक्ति माध्यम उनका सृजनशील मानस है किन्तु यह मानस अवसाद की कालिमा से स्तब्ध था।

इन्हीं दिनों हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ने अपनी 'आधुनिक कवि'[1] पुस्तकमाला के लिए पंत से उनका संकलन माँगा। तब हिंदी साहित्य सम्मेलन के साहित्य मंत्री निर्मल जी थे। उनका कहना है, "मैंने ही जबर्दस्ती पंतजी से 'आधुनिक कवि' भाग २ की भूमिका[2] लिखवाई। वे उस समय (१९३९) 'बसुधा' मे रहते थे। मैं उनके पास गया और वचन लेकर ही माना। पंत जी पहिले आदमी थे जिसे हिदी साहित्य सम्मेलन ने ३५०) रु० अग्रिम पारिश्रमिक के रूप में दिए। इस बीच निराला जी ने अपना काव्य संग्रह भेज दिया था। उनसे भूमिका लिखवाने की बात उठी उन्होंने ५००) रु० अग्रिम पारिश्रमिक के रूप में माँगे। मैंने 'चेक' भेजने की व्यवस्था कर दी थी किंतु पुरुषोत्तम दास टण्डन जी ने नही भेजने दिया, कहा—निराला को पैसा देना व्यर्थ है। वह लिखें-लिखायेगा नही। यह सार्वजनिक संस्था का पैसा है। इस भाँति नष्ट नही किया जा सकता। अग्रिम पारिश्रमिक न मिलने पर निराला जी ने संग्रह वापिस मांग लिया।"[3] कविता चुनने की मनःस्थिति में अपने को न पाकर पंत ने यह कार्य भार नरेन्द्र जी पर डाल दिया। 'आधुनिक कवि' भाग २ के अंतर्गत पंत की 'वीणा' से 'ग्राम्या' तक की रचनाओं का जो सुरुचिपूर्ण चयन मिलता है उसका श्रेय नरेन्द्र जी को है। इसकी भूमिका पंत ने स्वयं लिखी—जिसमें उनके उस समय के विचार-जगत् की स्पष्ट झाँकी मिलती है। भूमिका मे अपने तत्कालीन विचारों को संगृहीत करने के साथ ही पंत ने अपनी सांस्कृतिक मान्यताओं और भौतिक दृष्टिकोण के समन्वित रूप को प्रस्तुत किया है। इसकी उन्हें आवश्यकता भी प्रतीत हुई क्योंकि 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' के प्रकाशन ने उस भ्रम को उत्पन्न कर दिया था, जिसका निराकरण यद्यपि बाद को 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि' के प्रकाशन से अपने आप ही हो गया, किंतु

---

१. वर्तमान प्रकाशक, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

२. अनिच्छा एवं औदास्यपूर्ण मनःस्थिति में लिखी गई 'आधुनिक कवि' की भूमिका में उस संश्लिष्ट शैली का अभाव झलकता है जो पंत गद्य की विशेषता है।

३. भेंट वार्ता : १३–७–६९

उसका तत्काल प्रतीकार करने के लिए साहित्य सम्मेलन द्वारा 'आधुनिक कवि' की भूमिका का प्रस्ताव एक समयोचित घोषणा भी बन गया।

'आधुनिक कवि' भाग २ की भूमिका एवं पर्यालोचन द्वारा पंत ने अपने व्यापक जन मंगलकामी दृष्टिकोण पर भी प्रकाश डाला है अथवा "पल्लव की भूमिका में काव्य के बहिरंग पर अपने विचार प्रकट करने के बाद यह प्रथम अवसर है" कि वे काव्य के अंतरंग का विवेचन कर रहे हैं। इस दृष्टि से डॉ० नगेन्द्र का कहना है,—"'आधुनिक कवि' के पर्यालोचन मे काव्य की अंतश्चेतना का भी विस्तार के साथ विश्लेषण किया गया है। यद्यपि पत जी ने यहाँ मुख्य रूप से अपनी विकासमयी काव्य-चेतना का विश्लेषण प्रस्तुत किया है फिर भी विशिष्ट के साथ सामान्य का विवेचन भी हो गया है। कविने यहाँ आत्म-निरीक्षण तथा आत्म-विश्लेषण करते हुए अपने काव्य के विषय में अनेक मौलिक तथ्यों का उद्घाटन किया है, 'वीणा' से लेकर 'ग्राम्या' तक कवि की अंतश्चेतना किस प्रकार सुन्दर से शिव की ओर सत्य के मार्ग से बढ़ी है, किस प्रकार प्राकृतिक सौदर्य से प्रेरित उनकी कल्पना क्रमशः ऐतिहासिक विचारधारा से प्रभाव ग्रहण करने लगी—इस विकास-क्रम का अत्यंत सफल निरूपण प्रस्तुत पर्यालोचन में मिलता है।"[1]

पर्यालोचन मे पंत ने प्रकृति के प्रति अपने 'अगाध मोह' का वर्णन करते हुए कहा है, "मानव स्वभाव का भी मैंने सुंदर ही पक्ष ग्रहण किया है, इसी से मेरा मन वर्तमान समाज की कुरूपताओं से कट कर भावी समाज की कल्पना की ओर प्रवाहित हुआ है।......

'मनुज प्रेम से जहाँ रह सकें—मानव ईश्वर,
और कौन-सा स्वर्ग चाहिए तुझे धरा पर?'

......(हम) अपने प्रति किए गए अत्याचारों को थोथी दार्शनिकता का रूप देकर, चुपचाप, सहन करना सीख गए हैं।......हमारा विश्वास मनुष्य की संगठित शक्ति से हटकर आकाश कुसुमवत् दैवी-शक्ति पर अटक गया है जिसके फलस्वरूप देश विपत्ति के युगों में सीढ़ी दर सीढ़ी नीचे गिरता गया है।......

---

१. 'विचार और विश्लेषण', पृष्ठ ६६ : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली : प्रथम संस्करण

'जग के उर्वर आँगन मे बरसो ज्योतिर्मय जीवन,
बरसो लघु-लघु तृण तरु पर, हे चिर अव्यय चिर नूतन'

इसी सविशेष की कल्पना के सहारे, जिसने 'ज्योत्स्ना' को और 'गुंजन' की 'अप्सरा' को जन्म दिया है, मैं 'पल्लव' से 'गुंजन' मे अपने को सुंदरम् से शिवम् की भूमि पर पदार्पण करते हुए पाता हूँ।......जब तक रूप का विश्व मेरे हृदय को आकर्षित करता रहा, जो कि एक किशोर प्रवृत्ति है, मेरी रचनाओं मे ऐन्द्रिय चित्रणों की कमी नही रही।......'गुंजन' और 'ज्योत्स्ना' मे मेरी सौंदर्य-कल्पना क्रमशः आत्म-कल्याण और विश्वमंगल की भावना को अभिव्यक्त करने के लिए उपादान की तरह प्रयुक्त हुई है।"[१]

कला के स्वरूप की चर्चा करते हुए पत ने दृढ़ शब्दो में कहा है कि इस संक्रांति कालीन युग में 'कला के लिए कला' कहना हानिप्रद और निरर्थक है। कला जीवन मंगल के लिए होनी चाहिए, जीवन विकास के लिए उपयोगी होनी चाहिए। "इस ह्रास और विश्लेषण के युग के स्वल्पप्राण लेखक की सृजनशील कल्पना अधिकतर नवीन मानो की खोज ही में व्यय हो जाती है, उसका कलाकार स्वभावतः पीछे पड़ जाता है......जब हम कला को जीवन की अनुवर्तिनी मानते हैं तब कला का पक्ष गौण हो जाता है। विकास के युग मे जीवन कला का अनुगामी होता है।"[२] इसलिए छायावाद का मूल्यांकन करते हुए उन्होंने कहा, "छायावाद' इसलिए अधिक नही रहा कि उसके पास, भविष्य के लिए उपयोगी नवीन आदर्शो का प्रकाश, नवीन भावना का सौंदर्य बोध और नवीन विचारों का रम नही था। वह काव्य न रहकर केवल अलकृत संगीत बन गया।"[३] अतः 'ग्राम्या' का जीवंत स्वर है—

'तुम वहन कर सको जन मन मे मेरे विचार
वाणी मेरी, चाहिए तुम्हें क्या अलंकार!'

काव्य के अंतरंग पर प्रकाश डालते हुए पत यह भी स्पष्टतः कह देते है कि 'जीवन का सम्यक् विकास' भौतिकता और आध्यात्मिकता के समुचित समन्वय की अपेक्षा रखता है, "ऐतिहासिक भौतिकवाद और भारतीय अध्यात्म दर्शन में

---

१. 'आधुनिक कवि' : भाग २, पृ० ३८ : दसवाँ संस्करण
२. वही पृ० १०
३. वही पृ० ११, प्रकाशक : हिंदी साहित्य सम्मेलन,

मुझे किसी प्रकार का विरोध नही जान पड़ा, क्योंकि मैंने दोनों का लोकोत्तर कल्याणकारी सांस्कृतिक पक्ष ही ग्रहण किया है।......मैं अध्यात्म और भौतिक, दोनों दर्शनों के सिद्धांतों से प्रभावित हुआ हूँ। पर भारतीय दर्शन की, सामंतकालीन परिस्थितियों के कारण जो एकांत परिणति व्यक्ति की प्राकृतिक मुक्ति में हुई है.....और मार्क्स के दर्शन की पूँजीवादी परिस्थितियों के कारण, जो वर्ग-युद्ध और रक्तकाति मे परिणति हुई है—ये दोनों परिणाम मुझे सांस्कृतिक दृष्टि से उपयोगी नही जान पड़े।......एक जीवन के सत्य को ऊर्ध्वतल पर देखता है, दूसरा समतल पर।......भौतिक दर्शन 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के सत्य को सामाजिक वास्तविकता मे परिणत करने योग्य समाजवादी विधान का जन्मदाता है।......जीवन की जिस पूर्णता के आदर्श को मनुष्य आज तक अंतर जगत् में स्थापित किए हुए था, अब उसे, एक सर्वांगपूर्ण तंत्र के रूप मे, वह बहिर्जगत में स्थापित करना चाहता है।...... यदि इस विज्ञान के युग में, मनुष्य अपनी बुद्धि के प्रकाश और हृदय की मधुरिमा से, अपने लिए पृथ्वी पर स्वर्ग का निर्माण नही कर सकता...... तो यह कहीं अच्छा है कि इस 'दैन्य जर्जर, अभाव ज्वर पीडित', जाति वर्ग में विभाजित, रक्त की प्यासी मनुष्य जाति का अंत हो जाए। किंतु जिस जीवन शक्ति की महिमा युग-युग के दार्शनिक और कवि गाते आए हैं,......वह सर्वमयी शक्ति केवल पृथ्वी के गौरव मानव जाति के विश्व को ही इस प्रकार जीता-जागता नरक बनाए रहेगी, इस पर किसी तरह विश्वास नही होता। ......आधुनिक भौतिकवाद का विषय ऐतिहासिक (सापेक्ष) वस्तु चेतना है और अध्यात्म का विषय शाश्वत (निरपेक्ष) चेतना। दोनों ही एक दूसरे के अध्ययन और ग्रहण करने मे सहायक होते है और ज्ञान के सर्वांगीण समन्वय के लिए प्रेरणा देते हैं।"[1]

अल्मोड़ा निवास की मनः स्थिति के बारे में पंत का कहना है, "इस काल में मैंने 'आधुनिक कवि : भाग २, के लिए विस्तृत भूमिका लिखी थी।[2] शेष

---

१. **'आधुनिक कवि' : भाग २ पृ० २४–३५**

२. **पंत का कहना है, "इस भूमिका में मैंने उस प्रश्नावली के उत्तरों का भी समावेश कर दिया है, जो सुहृद्वर श्री वात्स्यायन जी ने, मेरे आलोचक की हैसियत से आल इंडिया रेडियो, लखनऊ से प्रसारित किए जाने के लिए तैयार की थी।" वही, पृ० ३६, यह परिसंवाद कुछ आकस्मिक किंतु अनिवार्य कार्यक्रमों के कारण प्रसारित नहीं हो पाया था।**

समय हिन्दी-अंग्रेजी के कथा—साहित्य के पठन-पाठन में चला जाता था। अधिकतर मैं चुपचाप चारपाई पर लेट कर या एकांत किसी वन प्रांत में बैठ कर अपने मनोभावों का विश्लेषण कर उन्हें समझने की चेष्टा करता था। वह कौन शूल है जो दिन रात मेरे भीतर कसकता रहता है और मुझे घड़ी भर चैन नही लेने देता, इसका समाधान पाने का प्रयत्न करता था। इस मानसिक अशांति के कारण मेरा मन धीरे-धीरे अतर्मुखी होने लगा था।"[1] अशांत मन में एकाध बार प्रयाग जाने का विचार उठा भी, किंतु सुरेश सिह तथा भाई देवीदत्त को छोड़कर बाहर जाने के लिए मन ने निर्णय नही लिया। इलाहाबाद जाने का कोई विशेष आकर्षण था भी नही। पुराना घर 'बसुधा' रह नहीं गया था—नए ढंग से रहने की व्यवस्था करनी थी।

स्वर्गीय अमरनाथ झा—तब उपकुलपति प्रयाग विश्वविद्यालय—को जब मालूम हुआ कि पत अल्मोड़ा ही हैं तो उन्हें उनकी आर्थिक स्थिति के बारे में चिता हुई। पंत के लिए उन्होने पत्र लिखा कि तत्काल इलाहाबाद आ जाओ और विश्वाविद्यालय मे हिदी के 'सेमिनार क्लासेज़' लेना प्रारभ कर दो। साथ ही आश्वासन दिया था कि निकट भविष्य मे वे अवश्य ही स्थायी रूप से उन्हें विश्वविद्यालय से सबद्ध कर सकेंगे। पंत ने झा साहब के स्नेह और सहानुभूति के प्रति कृतज्ञता का अनुभव किया किंतु देवीदत्त जी के परिवार तथा कु० सुरेश सिंह के कारण अल्मोड़ा रहना अनिवार्य था। तथा तब वे उदय शंकर संस्कृति केन्द्र[2] से सबद्ध भी हो चुके थे इसलिए उनके प्रस्ताव को स्वीकार करने में अममर्थ ही रहे। झा साहब ने सदैव ही पंत का बहुत ध्यान रखा तथा उन्हें समयानुकूल उचित राय भी देते रहे।

देवीदत्त और सुरेश सिह के अतिरिक्त अल्मोड़ा में पंत के लिए तीन और भी आकर्पण के केन्द्र थे। श्री उदय शंकर का संस्कृति-केन्द्र, अमरीकी कलाकार मिस्टर तथा मिसेज ब्रूस्टर तथा मां आनंदमयी का आश्रम। नगर से प्रायः दो-ढाई मील की दूरी पर पहाड़ की एक सघन वनाली के बीच एक एकांत मनोरम स्थल था। यहीं मिस्टर ब्रूस्टर जो चित्रकारी के अतिरिक्त साहित्य और दर्शन में भी गंभीर रुचि रखते थे कला की एकांत साधना में रत 'स्नो व्यू' नाम के बंगले में रहते थे। ब्रूस्टर दम्पति बड़े स्नेही, सरल और अल्मोड़ा के शांत

---

१. भेंट वार्ता।
२. सन् १६४० में उदय शंकर ने अल्मोड़ा में यह केन्द्र खोला था।

वातावरण के प्रेमी थे। देवीदत्त और मि० ब्रूस्टर परस्पर मित्र और एक दूसरे के बड़े प्रशंसक थे। देवीदत्त के कारण ही पंत का मि० ब्रूस्टर से परिचय हुआ था और उन्हीं के साथ वह कभी-कभी उनके यहाँ चले जाते थे। देवीदत्त को कारावास मिलने पर वयोवृद्ध ब्रूस्टर उनके समाचार जानने के लिए पंत को बुलाते रहते थे तथा अधिकतर चित्रकला, सहित्य, दर्शन, प्रकृति-सौंदर्य आदि अनेक विषयों पर बातचीत करते। मि० ब्रूस्टर ने अपने चित्र भी पंत को दिखलाए, जिनमें अधिकांश अल्मोड़ा की आस-पास की पहाड़ियों तथा हिम-शिखरों के रंग-मुखर धूप-छाहों के दृश्य थे। पंत को मि० ब्रूस्टर के रंगों के विविध मिश्रण तथा प्रयोग बहुत पसंद आए। दोनों में कभी-कभी दार्शनिक वाद-विवाद भी छिड जाता। बातों ही बातों में एक दिन मि० ब्रूस्टर ने पंत और श्री अरविंद के विचारों के साम्य की चर्चा की तथा अपने पुस्तकालय से, जिसमें विविध विपयों की पुस्तकें रहती थी, श्री अरविंद की 'लाइफ डिवाइन' का प्रथम भाग निकालकर पंत की ओर बढ़ाते हुए कहा—"तुम्हारे विचार श्री अरविंद से बहुत मिलते-जुलते है। मुझे स्वयं उनके दर्शन से बड़ी शांति तथा प्रेरेणा मिली है तुम इस पुस्तक को अवश्य पढ़ो।"

उन्हीं दिनों श्री अरविंद के प्राइवेट सेक्रेटरी, श्री अम्बालाल पुराणी जी की पत्नी, जिन्हें सब लोग 'माता जी' कहते थे, अपनी पुत्री अनुसूया को उदय शंकर संस्कृति केन्द्र में नृत्य सिखाने केअभिप्राय से अल्मोड़ा आई हुई थीं। वे पंत के मामा जी के घर के ही एक भाग में ठहरी हुई थीं। माता जी की सात्विकता, सरलता और सौजन्यता के साथ ही लोगों का मुख देख कर उनके भविष्य के बारे में बता देने की उनकी अद्‌भुत क्षमता से पंत प्रभावित हुए। माता जी सौम्यता की मूर्ति थी—स्नेही, ममतामयी और परम भक्त। उनसे परिचय तथा हेलमेल हो जाने के कारण पंत की आश्रम के बारे में सुंदर कल्पना हो गई। माता जी की पुत्री अनुसूया ने उन्हें श्री अरविंद की कई पुस्तकें पढ़ने के लिए दीं—'द मदर', 'लाइट्स आनद योग', 'थौट्स एण्ड ग्लिमसैज' तथा 'एसेज़ आन गीता' आदि। श्री अरविद के सिद्धांत के प्रति पंत की जिज्ञासा बढ़ी। माता जी के कारण ही सन् '४१ में उनका उनके पति श्री अम्बालाल पुराणी जी से, जो एक महान् साधक तथा श्री अरविंद के प्राइवेट सेक्रेटरी थे, पत्र-व्यवहार के माध्यम से परिचय हुआ। धीरे-धीरे यह परिचय और प्रगाढ़ हो गया। पंत आश्रम में पुराणी जी से भेंट करने की लालसा से भी जाने लगे और पुराणी जी भी प्रयाग में पंत के ही पास आकर ठहरते थे। श्री अरविंद आश्रम के प्रति श्रद्धा तथा मां एवं श्री अरविंद दर्शन के प्रति आस्था के साथ ही यह पुराणी

जी के प्रति सहज स्नेह भी था जो पंत से तीन दिन, तीन रात की यात्रा करवा देता।[1]

अल्मोड़ा में मां आनन्दमयी का आश्रम भी पत का प्रिय स्थल था। वहाँ वे जब तब पहुँच जाते, उनकी पुनीत वाणी तथा पवित्र साहचर्य का उपभोग करते। मां के शुभ्र, ममतामय, आनंदमय, दिव्य चैतन्य-स्वरूप के प्रति वे मुग्ध हैं। श्रद्धा से मा की बातें सुनाते हैं। मां उन्हें लक्ष्मण कहती थी।

उदय शंकर सस्कृति केन्द्र के प्रति भी पंत का हृदय स्वभावतः आकर्षित हो गया। वह उसके संपर्क में आए और उदय शकर जी के आग्रह करने पर अस्थाई रूप से सन् १६४१ में उससे संबद्ध हो गए। प्रारंभ मे कुछ समय तक नाटक की कक्षा लेते रहे। श्री उदय शंकर तब 'कल्पना' चित्र निर्माण करने का विचार कर रहे थे। वे चाहते थे कि पंत संस्कृति केन्द्र के स्थायी सदस्य बन जाए किंतु पंत का मन अल्मोड़ा रहते-रहते ऊब गया था। फिर वे निर्णय भी नहीं कर पा रहे थे कि बंधन में बँधना उनके लिए कहाँ तक हितकर होगा।

संस्कृति केन्द्र में पत उस्ताद अलाउद्दीन तथा श्री विष्णुदास शिराली के सपर्क में आए। शिराली जी का कहना है, "पंत जी से सबसे पहले मेरा परिचय अल्मोड़ा में हुआ १६४१ मे। अल्मोड़ा के सांस्कृतिक केन्द्र मे हम नृत्य, संगीत और गीत के नये प्रयोगों में जुटे हुए थे।......पतजी को समझने में मुझे देर न लगी। जीवन, कला और साहित्य के प्रति अपने दृष्टिकोण को वे बड़े ही सरल सुगम और सरस ढंग से व्यक्त कर सकते हैं।......पंत जी विश्व इतिहास, राजनीति, दर्शन और साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित है। वे महाकवि हैं—एक ऐसे कवि, जो शताब्दियों बाद भी जिंदा रहेंगे। लेकिन हमें, जो उनके निकट सम्पर्क में आये, वे जीवन-भर इसलिए याद रहेंगे कि उनका जीवन सादगी की पाठशाला है, इसलिए कि पंत एक संत पुरुष हैं।"[2]

पंत का मन अल्मोड़ा से बाहर जाने का अवसर खोज ही रहा था कि राजा साहब कालाकांकर की पुत्री का विवाह जुलाई '४२ में होना निश्चित हो गया। उन्होंने संस्कृति केन्द्र छोड़ दिया और कालाकांकर आ गए। दो-ढाई

१. वे सन् १६४७ से सन् '७४ तक इलाहाबाद से, दो बार आश्रम हो आए हैं। वैसे मद्रास निवास काल में, जून '४५ से अप्रेल, '४७ तक पांच-छः बार आश्रम जाने का अवसर उन्हें मिला है।

२. 'स्मृति चित्र' : पृ० ८०–८१

महीने कालाकाकर रह कर 'भारत छोडो' आंदोलन के निर्मम दमन से छाए हुए अवसाद से पीड़ित होकर वे 'कोल गैस की लौरी' मे, किसी प्रकार अपने लिए, सिमट कर बैठने भर को, जगह बनवा कर अक्टूबर में इलाहाबाद आ गए। प्रतापगढ़ से जब वे गाड़ी पर सवार हुए तो उनके पीछे एक सी० आई० डी० लग गया और जब तक वे बेली रोड नही पहुँच गए उसने उनका पीछा किया। ग्रामीणों पर दमन संबंधी अकथनीय अत्याचार, उनकी पीड़ा, मार्ग के दारुण दृश्य ! क्या कभी भूले जा सकते हैं ? अश्रु विगलित रोमांचकारी दर्दनाक बातें......पंत की स्मृति कलप उठती हैं।

इलाहाबाद में आकर वे ६ बेली रोड में रुके। १९४२ के आदोलन के निर्मम दमन चक्र एवं राजनीतिक आंदोलनो की एकांगिता के कारण उनके मन में जो अवसाद छा गया था उसने उनके चितन मे एक नवीन रूप धारण कर लिया था। उन्हें आज के युग मे एक नवीन सांस्कृतिक आंदोलन की आवश्यकता प्रतीत हुई। 'ग्राम्या' की वाणी गहन हो उठी—"आज वृहत् सांस्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित।" इसे साकार रूप देने के लिए उन्होंने अपने बेली रोड निवास में 'लोकायतन' नामक एक संस्कृति केन्द्र की योजना की रूपरेखा बनाई। अधिकत्तर शाम को बच्चनजी के यहाँ जाते, सभी प्रकार की बातें होतीं। 'लोकायतन' की योजना के बारे में उन्होने चर्चा चलाई। बच्चन जी तथा मित्रों के सहर्ष अनुमोदन करने पर उन्होंने उसे कार्यान्वित करने की अपनी व्यग्रता के कारण बच्चनजी के पास रहना उचित समझा—वहाँ रह कर ही वे उनका तथा अन्य मित्रो का सरलता से सहयोग पा सकते थे। पत के अपने घर, ७ ए, बैंक रोड, आने के विषय में तेजी बच्चन का कहना है :

"वह सध्या मुझे आज भी अच्छी तरह याद है। अक्टूबर का महीना था, हम दोनों बाहर अपने बगीचे में बैठे थे, बड़ी सुहावनी शाम थी वह। पंत जी आए तो उन्हें देखकर मैं देखती ही रह गई—कितने सुंदर, कितने कोमल, कितने सरल-गंभीर, इस दुनिया में रहते हुए भी इस दुनिया के नहीं। मैंने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और एकाएक मेरे मुख से उनके लिए 'साँईदा' का संबोधन फूट पड़ा। ऐसे ही वह शाम को आते और हम लोग सग बैठते। दोनों कवि अपनी बातें करते रहते, कभी साहित्यिक, कभी आध्यात्मिक, कभी सामाजिक, कविता-पाठ भी होता। मैं चुप सुनती रहती, पर उस सुनने में कितना आनंद मिलता, कितनी शांति मिलती। जब वह चले जाते तो मैं सोचती कि यह व्यक्ति थोड़े ही समय में इतनी शांति दे सकता है, यदि वह घर में रहें तो घर का

वातावरण कितना शांत होता। एक दिन मैने उनसे पूछा—"साँईदा, आप हमारे यहाँ रहने के लिए कब आ रहे है ?" वह बोले—"मै तो सोच ही रहा था कल आने की, पर आपको किसी तरह का कष्ट तो नही होगा !"

कष्ट, उफ़, उन्हें हर बात का ध्यान आता है, क्योकि उन दिनो मै मां के जीवन में पहला कदम रखने जा रही थी। मैंने उन्हें विश्वास दिलाया कि मुझे कुछ भी कष्ट नही होगा और कहा कि कल हम दोनों आपकी प्रतीक्षा करेंगे, लेकिन प्रतीक्षा तो उन्हें करनी पड़ी, क्योंकि सुबह होते ही मैं अस्पताल पहुँच गई। शाम को वह मेरे पति के साथ आए और उन्होंने मेरे पहले पुत्र को देखा, उसे आशीर्वाद दिया और वही उसका नामकरण भी किया। कहने लगे 'यह तो अमिताभ है।'······पंतजी हमारे घर मे रहने लगे। कभी ऐसा नही लगा कि कोई बाहरी आदमी ठहरा है।····· वह बहुत खुश रहते। अपने कमरे में लिखते-पढ़ते रहते, पता न चलता कि वह घर में है या नही।····· उन्होने 'लोकायतन' का सपना देखा······वह चाहते थे कि कुछ ऐसा किया जाए कि कविता की दुनिया जीवन मे उतरे, जिसकी कल्पना हमे सुख देती है वह व्यवहार मे आए तो पृथ्वी स्वर्ग न बन जाए। कम-से-कम अपने जीवन को तो उन्होने कविता का रूप दे दिया था और इसका अनुभव हमें उनके साथ रहते हुए हर क्षण होता था। शीलवान् और विनम्र तो वह है ही। केवल कल्पना की दुनिया को नही, हमारी आपकी दुनिया को देखने और समझने बूझने का भी उनका व्यापक दृष्टिकोण है। जब कभी मै अपनी कोई समस्या उनके पास ले जाती, तो वह उसे ऐसे हल करते, ऐसे रख देते कि वह समस्या ही नही दीखती थी।······वह जब कभी घर से बाहर जाना चाहते थे, किसी से भी मिलने मिलाने के लिए, तो मुझसे पूछ कर जाते थे, मिलने वाला चाहे सड़क के उस पार ही क्यों न रहता हो। इस बात पर मुझे बहुत आश्चर्य होता और मै कहती—"पंत जी, आप घर में सबसे बड़े है, पूछ कर तो मुझे जाना चाहिए।" लेकिन उनके लिए यह साधारण बात थी, क्योंकि उन्हें हमेशा ध्यान रहता है कि उनके कारण किसी को, किसी तरह की असुविधा न हो, चिंता न हो। पंत जी का ज्ञान अपार है। किसी भी विषय पर उनसे बात करें, वह उस विषय में सब कुछ जानते हैं। पर उनसे सब से बड़ी तसल्ली मुझे उनके दवाओं के ज्ञान से मिलती थी······उनके कमरे से जो तसल्ली लेकर मैं वापस आती, वह डाक्टर भी नहीं दे सकते थे।"[1]

---

१. **'कवियों में सौम्य संत', पृ० १२६–१२८**

तेजी जी की गृह-कार्य कुशलता से घर का रूपांतर हो गया। सुंदर सुसज्जित घर जिसका सुरुचिपूर्ण वातावरण हिंडोले मे झूम रहा था। अब नवजात शिशु को लेकर नए उल्लास के पैंग भरने लगा। 'सतरगिणी' के लेखक की 'वर्ष नव, हर्ष नव' में लीन प्रेम-प्रसन्न मनःस्थिति तथा गृह-स्वामिनी का स्नेहपूर्ण स्वभाव, संगीत और नाटक मे अभिरुचि, पंत को यह अच्छा लगा। विशेषकर इसलिए भी कि तेजी जी तथा बच्चन जी ने 'लोकायतन' की योजना का हृदय से स्वागत किया। लोगो के सांस्कृतिक जागरण के लिए पत एक व्यापक संस्कृति पीठ की स्थापना करना चाह रहे थे जो मनुष्यों को मानवता के बोध से संपन्न कर सके, उनमे सत्तात्मक एकता की भावना जाग्रत करके मानव जीवन के मूलगत मूल्यों से उन्हें अवगत करा सके।

"सन्'४२ में 'भारत छोड़ो' आंदोलन के फलस्वरूप विदेशी सरकार के दमन ने छोटे-बडे कस्बों तथा शहरों में जो वीभत्स रूप ग्रहण किया उससे मेरा चित्त अत्यंत क्षुब्ध तथा अशान्त हो उठा। बहिर्जीवी राजनीतिक मान्यताओं तथा आर्थिक मूल्यों के प्रति धीरे-धीरे द्वितीय विश्व-युद्ध की विभीषिका तथा 'भारत छोड़ो' के बाद मेरा दृष्टिकोण बदलने लगा था और मुझे लोक मंगल के लिए एक विश्व व्यापक मानवीय सांस्कृतिक आंदोलन की आवश्यकता प्रतीत होने लगी थी। राजनीतिक संघर्ष के साथ ही मनुष्य की मानस रचना के लिए, या उसके भीतर के सोए मनुष्य को जगाने के लिए, आज के युग मे एक समांतर सांस्कृतिक आंदोलन की भी उतनी ही आवश्यकता है, ये विचार फिर-फिर मेरे मन में उठने लगे। अपनी इस प्रेरणा के वशीभूत हो मैंने 'लोकायतन' के नाम से एक व्यापक संस्कृति पीठ की योजना बनाई, जिसमें रंग मंच को सांस्कृतिक प्रेरणा का माध्यम बनाने का विचार प्रस्तुत किया गया था।"[१]

'लोकायतन' संस्था के निम्नलिखित उद्देश्य रखे गए: (१) संस्कृति के उन्नयन के लिए वातावरण तथा परिस्थितियाँ निर्माण करना, (२) भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के विरोधों से मनुष्य की चेतना को मुक्त करना। (३) धार्मिक, सामाजिक, नैतिक एवं अन्य विभेदों को मानवीय एकता में ढालना। (४) विकसित वस्तु-परिस्थितियों के अनुरूप जीवन की मान्यताओं को दुहरा कर लोक-चेतना का नवीन रूप से सांस्कृतिक संगठन करना तथा (५) विश्व सांस्कृतिक जागरण के लिए अन्य व्यापक उद्देश्यों को अपनाना। यह निर्धारित किया गया कि इस केन्द्र की कार्य-प्रणाली वैज्ञानिक एवं प्रयोगात्मक होगी।

---

१. **'साठ वर्ष : एक रेखांकन, पृ०५८ : राजकमल प्रकाशन', दिल्ली : प्रथम संस्करण**

एक ओर यह अध्ययन, मनन तथा विचार-विनिमय द्वारा लोक-संस्कृति की रूप रेखाओं का स्पष्टीकरण करेगा, दूसरी ओर लोक-कला के माध्यम द्वारा उसका प्रचार कर, उसे लोक-जीवन का अंग बनाने का प्रयत्न करेगा। संस्था का संचालन 'लोक-सभा' 'संचारिणी-सभा' 'विधायिनी-सभा' और द्वार-समितियों द्वारा होगा। 'लोकायतन' मुख्यतः हिन्दी भाषा को अपना माध्यम बनायेगा और आवश्यकतानुसार अन्य भाषाओं का भी उपयोग करेगा। अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए 'लोकायतन' मुख्यतः चार विभाग खोलेगा; जिनके नाम होंगे—(१) ज्योति-द्वार, (२) संस्कृति-द्वारा, (३) कला-द्वार और (४) जीवन-द्वार। यह भी निश्चय किया गया कि अपनी आवश्यकतानुसार 'लोकायतन' अन्यान्य विभाग भी खोल सकेगा। 'लोकायतन' की प्रथम योजना का प्रारूप, जो सन् १९४२ में इंडियन प्रेस से छपा था, तब इस प्रकार था। उसमें हिन्दी साहित्य सम्मेलन की उच्च परीक्षाओं के लिए अध्ययन कक्षों का भी प्रबंध श्रीनारायण जी चतुर्वेदी के आग्रह पर रखा गया था।

'लोकायतन' की योजना वैज्ञानिक, आध्यात्मिक और मानवतावादी है। यह स्पष्ट है कि ऐसी विशाल और महत् योजना को कार्यान्वित करने के लिए न केवल आर्थिक सहायता चाहिए, वरन् सामाजिक प्रेरणा तथा आध्यात्मिक जागरण भी। त्यागी, दृढ़व्रती और कर्मठ युवकों की यह अपेक्षा रखती है। उस समय की राजनीतिक परिस्थितियों, नैराश्य तथा औदास्य के वातावरण में 'लोकायतन' को मूर्त रूप देने में पंत ने अपने को असमर्थ पाया। पराजय, दैन्य, दमन से त्रस्त जनता निष्क्रिय, उदासीन और पंगु थी। निराशा और कुंठाग्रस्त जन-मानस किसी भी योजना के प्रति आकर्षित होने में असमर्थ था। अत्याचारों एवं अमानवोचित दमन ने सांस्कृतिक चेतना को भू लुण्ठित कर दिया था। 'लोकायतन' की रूपरेखा के पत्रक पंत ने कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियों के पास भेजे, उनसे सहयोग और सुझाव माँगे पर यह सब व्यर्थ ही था। 'लोकायतन' के उद्घाटन के अवसर के लिए उन्होंने दो एकांकी भी लिखे, 'चौराहा' और 'युगपुरुष' किंतु उद्घाटन समारोह का अवसर ही नही आया। वास्तव में, एक महान् योजना को कार्यान्वित करने के लिए जिस व्यवहार-चातुर्य, दूरदर्शिता, सामाजिक संपर्क की आवश्यकता होती है उससे पंत का व्यक्तित्व अछूता ही है। उनके पास तो केवल उद्देश्य है, पवित्र महान् उद्देश्य, जिसे प्रबुद्ध स्त्री-पुरुष ही ग्रहण कर सकते हैं।

'लोकायतन' के विषय में बच्चन जी ने प्रकाश डाला है—"कुछ पत्रक छपवाए गए और उन्हें कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियों के पास भेजा गया कि वे हमारी

योजना पर अपनी राय दें और यदि वे हमारे उद्देश्य से सहमत हो तो हमें अपना सहयोग भी दें। एक मित्र ने गंगा पार झूँसी मे एक छोटा सा मकान बनाने के लिए जमीन और धन देने का वादा किया। पंत जी ने कुछ एकाकी नाटक लिखे। श्री गणेश करने के ध्येय से एक नाटक हमने अपने कपाउड में ही खेलने का निश्चय किया और कई दिनों तक एक सिरे से दूसरे सिरे तक जमीन की नाप-जोख होती रही। ऐसी योजनायें तभी सफल होती हैं जब उन्हें जनता का सहारा मिले। इने-गिने लोगो ने ही हमारे पत्रों के उत्तर दिए। जिस जमीन और धन का वादा किया गया था उसके मिलने में कई कानूनी दिक्कतें पेश आई। समय भी उपयुक्त नही था। १९४२ का आंदोलन कुचल दिया गया था। भय और अनिश्चय की भावना हर जगह फैली हुई थी······और किसी भी नई चीज को लेकर आगे बढ़ने का उत्साह कहीं भी नही दिखाई देता था।"[1]

स्पष्ट ही है 'लोकायतन'[2] को स्थापित करने का विचार, अपने आप में पवित्र होने पर भी, सफल नहीं हो सका। लोगों की नैराश्यपूर्ण मनोवृत्ति एवं किसी प्रकार की कोई प्रेरणा उनमें न देख कर पंत को अपनी योजना स्थगित करनी पड़ी अथवा उसे क्रियान्वित करना संभव न देख, मन ही मन उस परिस्थिति की प्रतीक्षा करने लगे जब लोग 'लोकायतन' की धारणा को उसके वास्तविक मूल्य के आधार पर ग्रहण कर सकेंगे। वे गर्मियो मे अल्मोड़ा चले गए। "एक ओर मन का घाव दुखता रहता था दूसरी ओर नयी कल्पनायें तथा जीवन स्वप्न मेरे भीतर उदय होने लगे थे। किन्तु अग्रेजों द्वारा नृशंस दमन का जो निदारुण चक्र चल पड़ा था उसके कारण देश में अवसाद का तिमिर छा गया था। 'लोकायतन' की कल्पना को मूर्त करने के लिए उपयुक्त उत्साह तथा साधन का अभाव लोगों में न देखकर मैं सन् '४३ की गर्मियों के प्रारभ में फिर अल्मोड़ा चला गया। मेरे भाई दुबारा पकड़े गए थे और इस बार बरेली जेल मे रखे गए थे। घर में भाई के परिवार तथा बच्चो को धीरज देना भी आवश्यक था।"[3]

● ●

---

१. 'कवियो में सौम्य संत', पृ० ७६-७७
२. 'लोकायतन' की रूपरेखा एवं नियमावली, परिशिष्ट में दी गई है।
३. भेंट-वार्ता।

२

संस्कृति केन्द्र तथा भ्रमण चक्र

•

पत अल्मोड़ा आ तो गए किंतु चित्त अशांत था। देश की परिस्थितियों के कारण एक ओर मन घोर निराशा और अवसाद से अवसन्न था, दूसरी ओर वर्तमान राजनीति के जर्जर कुरूप वातावरण में एक बृहत् सांस्कृतिक जागरण एवं 'लोकायतन' की स्थापना उन्हें अनिवार्य प्रतीत हो रही थी। परिस्थिति सुधरने पर 'लोकायतन' को मूर्त रूप मिल सकेगा, यह उन्हें विश्वास था। अल्मोड़ा आने पर जब श्री उदय शंकर ने अल्मोड़ा के सौंदर्यस्थल में स्थित अपने सांस्कृतिक केन्द्र का सदस्य बनने के आग्रह को पुनः दुहराया तो उन्होने सहर्ष स्वीकार कर लिया। उन्हें लगा कि मंच तथा अभिनय सम्बन्धी कला सीखने तथा केन्द्र-संचालन सम्बन्धी अनुभवों का ज्ञान प्राप्त करने का यह शुभ अवसर है। स्वभावतः कला प्रेमी होने के कारण उन्हें केन्द्र प्रिय था ही, अब 'लोकायतन' की दृष्टि से भी उन्होंने इस आग्रह का स्वागत किया। उदय शंकर केन्द्र से उन्होने अपने को इसलिए सम्बद्ध नहीं किया कि वह जीविकोपार्जन के लिए आवश्यक था अथवा न इसलिए कि वे कालाकांकर राज्य से बिदा ले चुके थे।[1] कालाकांकर, सुरेश सिह का घर उनका ही घर है—वे जब चाहें वहाँ जा सकते हैं। किंतु उनकी सृजनशील वृत्ति अब जिस नये अंतरिक्ष की माँग कर रही थी वह कालाकांकर में संभव नही था। साथ ही देवीदत्त जी के फिर से जेल चले जाने के कारण उनके परिवार की देखभाल के लिए भी अब अल्मोड़ा मे रहना अनिवार्य हो गया था। कवि कर्म का बोध पंत को सांसारिक ममत्व में नही पड़ने देता है किंतु "कुछ

---

१. तुलना कीजिए—बच्चन : 'कवियों में सौम्य संत', पृ० ७७ : द्वितीय संस्करण

बातें जो करनी ही होती है उनसे सृजन के नाम पर मुँह नही मोड़ा जा सकता। ऐसी स्थिति मे यदि कवि कर्म स्थगित भी करना पड़ता है तो उसे भगवत्-इच्छा समझ कर स्वीकार कर लेना चाहिए।" इसके अतिरिक्त अभिनय, नाट्य और नृत्य कला के ज्ञान एवं अनुभव की वृद्धि की लालसा से भी उन्होंने अपने को संस्कृति-केन्द्र से सबद्ध कर लिया और इस भांति अल्मोड़ा निवास उनके लिए उपयोगी बन गया। "दायित्व को अच्छी तरह निभा लेना मनुष्य की अंतः शक्ति तथा बाह्य परिस्थितियों की सुविधा पर निर्भर करता है।"

"श्री उदय शकर के आग्रह से मैं उनके संस्कृति केन्द्र का अंग बन गया और उनके 'कल्पना' चित्र के लिए 'सिनैरियो' की बाह्य रूप रेखा गढ़ने में उनकी सहायता करने लगा। सन् '४० मे भी मैंने कुछ महीने उदय शंकर संस्कृति केन्द्र में ड्रामा-क्लासेज लिए थे और चार-पाँच एकांकी नाटक भी लिखे थे जिनकी पांडुलिपि पीछे प्रयाग में खो गई थी। सन् '४३ में संस्कृति केन्द्र में रह कर मेरे मन को यत् किंचित् सांत्वना मिली किंतु मन की अस्थिरता तथा थकान बनी ही रही।"[१] २ फरवरी '४३ को पंत संस्कृति-केन्द्र के स्थायी वैतनिक सदस्य बन गए, केन्द्र से संयुक्त होने के साथ ही उन्होंने श्री उदय शंकर के साथ 'कल्पना' 'सिनैरियो' का काम आरम्भ कर दिया। १८ फरवरी को सिनैरियो की बाह्य रूपरेखा पूरी बना लेने के पश्चात् वे मार्च में केन्द्र के ही बंगले, 'जयकृष्ण कुटीर' में आ गए। खाने की व्यवस्था मि० किचलू के साथ कर ली जो वहाँ 'बरसर' थे। अब अधिकतर पंत रिहर्सल्स देखते तथा 'शूटिंग स्क्रिप्ट' तैयार करने में सहायता करते। यह काम उनके अनुकूल था। केन्द्र के सभी सदस्य स्नेही और सज्जन थे जिनके साथ उनकी रुचि का मेल था। उन्होंने 'कल्पना' के लिए कुछ गीत भी लिखे। सिने-संसार का अनुभव मिलने का मन में उत्साह था। किंतु भ्रमण के प्रति मन में कोई आकर्षण नहीं था। इस कारण जब श्री उदय शंकर ने सदस्यों के साथ तीन-साढ़े तीन महीने के लिए भ्रमण करने का निश्चय किया तो उनका मन दोलायमान हो उठा। निर्णय लेना पर्याप्त कठिन था—एक ओर साथियों एवं सहयोगियों का स्नेह पूर्ण आग्रह, अनुभव प्राप्त करने को दुर्निवार आकांक्षा और दूसरी ओर वह मन जो यात्रा की असुविधाओं तथा भीड़-भाड़ से दूर रहना चाहता है। अंत में

---

१. भेंट-वार्ता।

केन्द्र के मित्रों की इच्छा तथा अनुभव प्राप्ति की आकांक्षा विजयी हुई। उन्होंने भ्रमण करना स्वीकार कर लिया।

संस्कृति केन्द्र अल्मोड़ा की जो सबसे करुण, आश्चर्यमय अविस्मरणीय घटना पंत को याद है, वह है, उदय शंकर के गुरु शंकर नम्बूदरी जी का देहावसान। ज़िन्द के महाराजा के अभिनंदनार्थ केन्द्र ने एक नृत्य प्रदर्शन करने का विचार किया, जिसमें गुरु नम्बूदरी ने दुःशासन वध शीर्षक कथाकली नृत्य करना स्वीकार किया था। गुरु राम के महान् भक्त थे, अखण्ड भाव से 'राम राम' कहा करते थे। उस दिन मंच पर दुःशासन वध का भावावेश पूर्ण नृत्य दिखलाने के बाद वे क्लांत होकर सहसा मंच पर गिर पड़े और हृदयगति रुकने से उनका प्राणांत हो गया। सभी गुरु के देहावसान से स्तब्ध और शोकग्रस्त हो गए यद्यपि वह एक महान् कलाकार के योग्य ही मृत्यु थी। शाम के आठ-नौ बजे का समय होगा, गुरु की देह उनकी कुटी के बरामदे में रख दी गई। आसपास कई गैस के हुंडे रात्रि के अंधकार को विदीर्ण कर प्रकाश विकीर्ण कर रहे थे। केन्द्र के लोग बारी-बारी से बैठ कर रात भर पहरा देते रहे। रात्रि के अंधकार के साथ ही लगभग पाँच सौ बन्दर चुपचाप सिर झुकाए शोकमग्न होकर, गुरु के शव को घेरे, चारों ओर की आसपास की भूमि पर बैठ तथा पेड़ों पर लटक कर एकत्रित हो गए। किसी के मुँह से एक शब्द भी नही निकला। सब मानों गुरु की मृत्यु पर मौन संवेदना सी प्रकट कर वहाँ नत मस्तक बैठे रहे। वैसे नगाड़े की आवाज से डर कर बन्दरों ने केन्द्र के प्रांगण में आना छोड़ दिया था। आज इतनी संख्या में उन्हें वहाँ देख कर सभी स्तब्ध तथा चकित थे कि यह क्या रहस्य है। सम्भव है गुरु राम के बड़े भक्त थे, इसी से उनकी आत्मा के प्रयाण के समय बन्दरों ने वहाँ रहना उचित समझा हो क्योंकि वे श्री राम के सैनिक तथा सहायक रहे हैं।

अक्टूबर-नवम्बर में देवीदत्त जेल से छूट गए, किंतु छूटते ही टाइफॉएड से आक्रांत हो गए। रोग चिंताजनक था। जेल से दुर्बल होकर आए थे— बीमारी ने उन्हें अत्यधिक दुर्बल तथा चिड़चिड़ा बना दिया। अल्मोड़ा के प्रसिद्ध चिकित्सक डाक्टर खजानचंद्र देवीदत्त के परम मित्र थे—उनकी व्यक्तिगत देखभाल से वे रोग-मुक्त हो गए। पर अभी दुर्बलता बहुत थी। अल्मोड़ा में देवीदत्त के हितैषियों की कमी न थी—फिर वे अपनी ननिहाल के घर के एक भाग में रहते थे। छोटे मामा सपरिवार वहीं थे और देवीदत्त उनका प्यारा भांजा था। देवीदत्त की ओर से पंत निश्चित हो गए तथा

ट्रुप के साथ दिसम्बर, '४३ मे वे भी टूर मे चले गए। "१९४३ के अत से, '४४ के मार्च तक मैंने सस्कृति-केन्द्र के नृत्य-प्रदर्शनों के कार्यक्रमो के साथ भारत के अनेक नगरो मे भी भ्रमण किया—जिनमे मुख्य लखनऊ, दिल्ली, इदौर, अहमदाबाद, बम्बई तथा मद्रास थे। यह समय अनेक दृष्टियो से मेरे लिए शिक्षाप्रद ही रहा होगा। किंतु मेरे अतरतम में एक अवसाद तथा अतृप्ति मुझे कुरेदती रही और अपने जीवन के साथ ही मानव जीवन की सार्थकता खोजने की साध निरतर मेरे मन मे चलती रहती थी।"

दो-तीन महीने तक देश के मुख्य-मुख्य नगरो में भ्रमण करने के पश्चात् अहमदाबाद, बम्बई, इंदौर होते हुए पंत मार्च, '४४ मे दिल्ली लौटे। इसके पूर्व तीन सप्ताह बम्बई रहे थे। बम्बई में बहुत समय बाद नरेन्द्र जी तथा पी० सी० जोशी[१] से मिलकर उन्हे बड़ी प्रसन्नता हुई। अवकाश का समय वे इन्ही लोगों के साथ बिताते थे। प्रदर्शनों के कार्यक्रमो मे व्यस्त होने के कारण मन बाहर से भूला रहता था किंतु भीतर से उसमें इतनी दुविधा, अस्थिरता तथा क्लांति भर गई थी कि भ्रमण से लौटने पर बीमार पड़ गए। भ्रमण उपयोगी होने पर भी स्वास्थ्य की दृष्टि से उनके लिए अहितकर रहा। उसका प्रथम आक्रमण आँखो पर हुआ। तब वे बम्बई में थे। रंगमच में तीव्र 'आर्कलाइट' के मुँह पर पड़ने के कारण आँखे खराब हो गई। उनके इलाज के लिए दिल्ली आए। दिल्ली मे डाक्टरो से आँख की चिकित्सा करा कर मई, '४४ में वे फिर नरेन्द्र जी के साहचर्य के लोभ से बम्बई आ गए और

---

१. **इस बीच जब भी बम्बई आए पी० सी० जोशी से अवश्य मिले। देश, देश की राजनीतिक गतिविधियों एवं विश्व राजनीति को समझने की मन में अगाध जिज्ञासा थी। जोशी के अनुसार,** "while in Bombay he would come quite often to our Party Head-quarters and insist that for a quiet chat I come over for a meal······ and in their house not only the talk but the meal too was delightful. Sumitranandan would give me, while parting, not less than double the taxi fare and I would think till late hours in the night, of his intellectual curiosity about world affairs, the outcome of the war and the shape of the post war future".

इस बार उन्ही के साथ ठहरे। 'स्वर्ण किरण' तथा 'स्वर्ण धूलि' की कुछ रचनाएं उन्होंने यहाँ लिखी तथा अमृतलाल नागर के निकट संपर्क मे आए।

पंत के साथ अपने संपर्क एव सम्बन्ध की चर्चा करते हुए नागरजी का कहना है, "पत जी मुझे बबई में मिले। तब मैं एक सफल व्यक्ति था। बंबई ने मुझे हर किसी के प्रति न झुकने लायक एक अकड़ भी दे रखी थी, लेकिन पतजी के सामने मन पानी-पानी हो गया। यहाँ मैं निरालाजी का एक उपकार मानता हूँ, साक्षात् न देखे हुए पंत के प्रति निराला से यदा कदा सुनी हुई प्रशसा। मैंने पत के लिए अक्सर उनके तीखे बोल भी सुने थे पर उनका असर मेरे मन पर निरालाजी की आवेश भरी बडबड़ाहट से अधिक नही। जान लिया था कि उनकी आदत है। खैर ! प्रत्यक्ष मिलने पर पहली बात यह जान पड़ी कि "बड़े आदमियो में पत जी जैसा सरल मन वाला अब तक मैने और कोई नही देखा।" पंत का व्यक्तित्व मुझ पर जादू-सा असर करने लगा।······मैं ही नही मेरा घर भर पत के प्रति श्रद्धावान् है। मेरी स्व० मां तक कहती थी कि ऐसा देवता आदमी कम देखने को मिलता है। स्व० रतन, चि० मदन, यह सब बच्चे—घर में ऐसा कौन है जो पतजी का नही है। मेरी और मेरी 'दुश्मन' प्रतिभा की बात तो आप जाने ही दें।······पंत को उदार और दूसरों की सहायता करने वाला, शिशुवत् आचरण और प्रौढ़ विचारों के गंभीर मनोहर झरने सा झरता मैंने इतना देखा है और उससे इतना प्रभावित हूँ कि उस प्रभाव को नामेट नही कर सकता।

"आपको एक निजी सकोच की बात बतलाऊँ। सन् '६६ मे सौ० अचला के पथरी के आपरेशन के समय मुझे······आवश्यकता पड़ी।······बेझिझक एक ही नाम मन में आया, मन पर बिना किसी प्रकार का संकोच दबाव पड़े बिना ही मैं पंतजी से······मांग सका और वह भी ऐसे जैसे मेरी ही हो। पंतजी के प्रति एकात्म हुए बिना मैं······ऐसा नही कर सकता था। पंतजी के प्रति मेरी इस अनुपम सुन्दर 'मजबूरी' को ही मेरा असली भाव मानिए।"[1]

बम्बई की जलवायु ने पंत की पाचन-शक्ति को क्षीण कर दिया और इस कारण नियमपूर्वक टहलने जाना उनके लिए आवश्यक हो गया। किंतु वे दारुण से दारुण कष्ट सह सकते हैं पर अकेले घूमने नहीं जा सकते। उनके भाग्य का यह विचित्र खेल रहा है······एक ओर निःसंग स्वभाव दूसरी ओर निर्भरता।

---

१. नागरजी का पत्र, २ दिसम्बर, '६६, लखनऊ

उनका कहना है उनके मस्तिष्क में दिशा-बोध के लिए स्थान नहीं है, केवल काल-बोध ही उसमें व्याप्त है। घर से बाहर अकेले निकलने में उनका सम्पूर्ण मन विद्रोह कर उठता है। दो गज की दूरी के लिए भी उन्हें साथ चाहिए। साथ न मिलने पर ढेरों कारण दे सकते है--आवश्यक कार्य भी टाल सकते हैं, रेल से यात्रा करनी हुई तो अवश्य ही पूछताछ करते हैं कि किसी को उस ओर तो नहीं जाना है। दो-चार लोगो से आग्रह करना भी नहीं भूलते कि कृपया स्टेशन आकर गाड़ी में अवश्य बैठा दीजिएगा। एकाध बार कहा भी कि क्यों दूसरों को कष्ट देते हो, 'रिजर्वेशन' है, सामान नगण्य है। किंतु वह कुछ नही सुनना चाहते, बहुत हुआ कहेंगे "कुछ समझ भी है। गाड़ी में कितनी भीड़ होती है।" हँसी आती है जब गाड़ी में भीड़ के नाम पर केवल खाली डिब्बा होता है और पत सिर से भारी बोझ-सा उतारते हुए प्रसन्न होकर कहते हैं— "चलो ठीक से बैठने को जगह मिल गई, देखा इतने लोगों ने सहायता न की होती तो बैठ पाते ?"

नागरजी और नरेन्द्रजी का घर एक दूसरे के निकट ही था। यह निश्चित कर लिया गया कि पत नागरजी के घर तक अकेले चले जाएंगे फिर वहां से दोनों समुद्र तट घूमने जाया करेंगे। नागर जी पंत के स्वभाव से पर्याप्त परिचित हो गए थे। आवश्यक-अनावश्यक सभी काम छोड़ कर वह भरसक पाँच बजे तक अपने घर पहुँच जाते। पंत जल्दी आ गए या नागरजी को कुछ देर हो गई तो वे उनकी पत्नी श्रीमती प्रतिभा नागर तथा पुत्री अचला से बातें करते रहते। पंत की जन भीरुता का वर्णन करते हुए नागरजी लिखते हैं— "पंतजी भीड़ से बहुत घबड़ाते थे। कुछ दिनों पहले ही नरेन्द्रजी पंतजी के सामने ही उनका मीठा मजाक उड़ाते हुए मुझे यह किस्सा सुना चुके थे कि एक बार पंतजी कही भीड़ में फँस गए तो लौटकर नरेन्द्रजी से कहा—"अरे नरेन्द्र, वहाँ तो इतनी भीड़ थी इतनी भीड़ थी कि देखो मेरे कोट का बटन टूट गया।"[१]

एक दिन नागरजी को घर आने में देर हो गई तो पंत अकेले ही घूमकर जल्दी से वापिस आ गए। प्रण कर चुके थे कि नित्य घूमूंगा—अब जब नागर जी नहीं दीखे तो लाचार अकेले घूमने चले गए। आज बात ही दूसरी थी। आते ही नागरजी से बोले—"अरे बंधु वहाँ तो बहुत लोग थे।" नागरजी के कहने

---

१. 'स्मृति चित्र', पृ० ६४

पर कि चौपाटी पर तो रोज ही इतने लोग रहते है, पंत ने कहा—"रोज तो आप साथ रहते हैं इसलिए भीड़ पर ध्यान नही जाता, सुख-दुख (बातचीत) करने में ही मन लगा रहता है।" नागर जी का कहना है—"जब पंतजी अपने मन में रम जाते है तो उन्हें बाहर के लगाव का होश नही रहता। जब पंतजी का विचार-स्रोत फूटता है तो एक साथ सहस्र धाराएँ बह चलती है। पंतजी के सुख-दुख के मूड वाली बातों और साधारण बातों मे निश्चित रूप से अतर होता है। सुख-दुःख मे प्रायः वे ही बोलते थे, मै सुनता था। पंतजी की वाणी में बात का रस मूर्त हो उठता था। मैं कोरी काव्य-शैली में लफ्फाजी नहीं कर रहा वरन् यह सच है कि पंतजी तब बच्चो के से सरल, माता के समान अमित करुणामय, हठयोगी साधक-से कठोर और प्रकृति के समान विविध चित्र भरे होते हैं। तब किसी बात पर यदि उनकी ना निकलती है तो वह हिमाचल सी अडिग होती है। उनका स्वर अपनी सारी मिठास लेकर वज्रादपि कठोर हो जाता है।"[1]

बम्बई से पंत अहमदाबाद और अहमदाबाद से उदय शंकर के साथ दिल्ली आए। 'कल्पना' चित्र के निर्माण के आर्थिक पक्ष का भार वहन करने के लिए उदय शंकर को किसी सेठजी से बातें करनी थी। पंत इस बार दिल्ली में डॉ० जोशी के अतिथि-गृह में ठहरे। डॉक्टरों ने टोनसिल्स के आपरेशन की सलाह दी। सितम्बर '४४ को आपरेशन होना निश्चित हो गया। फिर कलकत्ता जाना था जहाँ श्री उदय शंकर थे। कितु आपरेशन के पूर्व ही वे चिंताजनक रूप से रुग्ण हो गए।

दिल्ली में एक विशिष्ट आमंत्रण में भोजन करते ही उन्हें लगा कि बीमार पड़ना है और बीमार पड़ गए। बीमारी क्या, जीवन को चुनौती थी। नौ महीने के अंदर तीन बार सन्निपात का पुनरावर्तन हुआ। एक बार तो यमराज के दूत आ ही गए थे, अखबारों में शोक समाचार भी छप गया। रोग और रोगी के संघर्ष में रोग परास्त हो गया—किन्तु कुछ दिन के बाद पुनः रोग ने आक्रमण कर दिया। पंत की बीमारी की बात सुन कर देवीदत्त जी उन्हें देखने अल्मोड़ा से दिल्ली आए और एक दिन दिल्ली रह कर वापिस लौट गए। पंत की स्थिति चिन्ताजनक थी। उनके कमरे में प्रवेश निषेध था। अतः उन्हें बाहर से ही देख कर वे अल्मोड़ा वापिस लौट गए। पंत का कहना है कि उन्होंने डाक्टर को कहते सुना भी कि अब बचेगा नहीं। "किन्तु मुझे कोई घबड़ाहट नही

---

१. 'स्मृति चित्र', पृष्ठ ६४-६५

हुई। मृत्यु से डरना ही क्या ? यदि फिर भी घबड़ाहट हो तो अपने आप को भगवद् इच्छा को समर्पित कर देना चाहिए। शाति की अनुभूति होती है।" दिल्ली के डाक्टर रोग के पुनराक्रमण का कारण खोजने मे असमर्थ थे। उन्हें लगा कि गलत पथ्य दे दिया गया है जो घातक हो ही जाता है। सयोग से दिन की नर्स जो 'ज्यू' थी बदल गई। रात्रि की परिचर्चा के लिए एक बूढ़ी स्काच नर्स थी। वह बहुत योग्य और अनुभवी थी। अब वह दिन मे परिचर्या करने लगी। उसकी परिचर्या तथा उचित पथ्य के ज्ञान ने पत को ठीक कर ही दिया था कि रोग का फिर से पुनराक्रमण हो गया। रोग के पुनराक्रमण का मुख्य कारण यह था कि रोग का उचित निदान नही हो पा रहा था। भाग्य से डा० विधान चन्द्र राय दिल्ली आए। उन्होंने बताया कि पंत को टाइफोएड के साथ कालाजार भी है। और इस निदान के अनुरूप चिकित्सा ने ही उन्हे पुनर्जीवन प्रदान किया।

देवीदत्त जी ने पंत की चिताजनक दशा के बारे मे रघुवरदत्त जी के बेटे अम्बादत्त को लिखा जो तब इलाहाबाद विश्वविद्यालय का शोध छात्र था। अम्बादत्त अपने ममेरे चाचा हरीकांत पांडे के साथ सितम्बर-अक्टूबर '४४ को दिल्ली गए। सबेरे वहाँ पहुंचे और शाम को वापिस लौट आए। अब उनका कहना है, "स्कॉच नर्स ने मेरा यह तर्क नही सुना कि मै कका (चाचा) का भतीजा हूँ। बडी खुर्राट थी। उसने कहा चाहे कोई हो इस कमरे मे नही बैठ सकता। बड़ी मुश्किल से घडी देखकर दो मिनट बैठने दिया।"

पंत ठीक हो रहे थे कि दुबारा देवीदत्त जी दिल्ली पहुंचे। उनका पहिली बार का आना पंत को पता नही चल पाया था। अतः उनके आने से मन प्रसन्न हुआ। अम्बादत्त के अतिरिक्त और कोई सबंधी एवं परिवार का सदस्य उनसे मिलने आ भी नही पाया था। इसलिए देवीदत्त के आने से बहुत अच्छा लगा। पिता की मृत्यु के बाद से परिवार के प्रति निःसगता अपना लेने पर भी मन स्व-निर्मित सीमाओं को झकझोर देता ही है। सबको समान मानने की बुद्धिजनित नैतिक मर्यादा हृदय के अवचेतन ज्वार को सह नही पाती है। डा० नगेन्द्र, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि अनेक मित्रों-साहित्यिकों के मिलने आने पर भी देवीदत्त के आने से मन को विशेष सतोष मिला। इसी बीच निराला जी भी दिल्ली पहुंचे। तब नर्स उनके बदन मे कोड लिवर आइल की मालिश करवा रही थी। उसने निराला जी को दो मिनट से अधिक कमरे में रुकने की अनुमति नहीं दी—वह किसी को भी नहीं देती थी, अत्यधिक स्पष्ट-

वक्ता और तर्रार थी ।[1] और सभवतः उसके इसी स्वभाव के कारण पत रोग-मुक्त भी हो पाए ।

उदय शंकर केन्द्र ने बीमारी के दिनो भी पत को उनका वेतन दिया । वेतन मिलने के कारण ही वे अस्पताल के भारी बिल, तेईस हजार रुपये का भुगतान कर पाए । इसके अतिरिक्त दो हजार रुपये के उन्होने उपहार अपनी नर्सों, डाक्टरों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिये दिए, स्कॉच नर्स को तो उन्होंने पर्याप्त उपहार दिए—रेडियो, पर्शियन कार्पेट आदि । योग्य होने के साथ ही वह लालची भी थी । पत के अनुसार वह वृद्ध थी और वृद्धावस्था ने ही संभवतः उसे लालची बना दिया था । जब बीमारी से मुक्त होकर पंत स्वास्थ्य लाभ करने लगे तो वह लगभग नित्य ही एक न एक उपहार की मांग करती और साधिकार कहती—मैंने तुम्हें मृत्यु के मुंह से बचाया है, तुम्हें मुझे यह देना ही होगा । स्कॉच नर्स के प्रति आंतरिक और बाह्य रूप से कृतज्ञ होते हुए पत मुस्करा कर उसकी मांगे पूरी कर देते । उपहार देने के लिए दो-तीन हजार रुपए उन्हें अपने मित्रों से भी लेने पड़े थे जिन्हें कालक्रम मे ही वे लौटा पाए ।

यह बीमारी मानसिक असंतोष देकर विदा हुई, असंतोष उन लोगों से भी था जिनसे वे सहायता की अपेक्षा रखते थे । इसी अवधि मे उन्हें मानसिक आघात भी सहने पड़े । जिस जीवन को वे युवावस्था मे अस्वीकार कर चुके थे उसे स्वीकार करने के लिए एक परिवार का आग्रह, आर्थिक निश्चिन्तता का प्रलोभन ! पंत के दृढ़तापूर्वक अस्वीकार करने पर तीव्र प्रतिक्रिया । किंतु इस प्रतिक्रिया को चुपचाप धैर्यपूर्वक स्वीकार करना ही ठीक था, "लोग तो सदैव ही कुछ न कुछ कहते रहते हैं, उनकी बातों पर कौन ध्यान दे सकता है । जो ठीक है, वह करना चाहिए ।" फिर जिस आर्थिक कठिनाई और असह्य शारीरिक दुर्बलता ने उन्हे जकड़ लिया था उसके सम्मुख यह सब नितांत उपेक्षणीय ही था । आर्थिक स्थिति ने दुर्बलता पर सोचने का उन्हें अवसर ही नही दिया । -सबल से हीन जीवन मे कठिनाई स्वय ही झेलनी पड़ती है ।

श्री उदय शंकर मद्रास मे थे । उन्होंने 'जेमिनी स्टूडियो' मे 'कल्पना' चित्र बनाने का निश्चय कर लिया था । वे चाहते थे कि पंत यथा शीघ्र अपना दायित्व संभाल लें । रोगमुक्त होने के साथ ही जून '४५ में पंत मद्रास पहुंच गए । मद्रास पहुंचने पर दो महीने तक उन्होंने दिन में कुछ ही घण्टे काम किया ।

---

१. **'सुमित्रानन्दन पंत : जीवन और साहित्य' : प्रथम खण्ड, पृष्ठ ३८८**

अभिनेताओं-अभिनेत्रियों का हिन्दी उच्चारण ठीक करना तथा गीतो की धुन एवं स्वर-लिपि बनाने मे सहायता देना।[1] इससे अधिक काम करना न तो स्वास्थ्य की दृष्टि से संभव था और न उदय शंकर को ही प्रिय था कि वे अपने को थकाएँ।

पंत को अब यथेष्ट पारिश्रमिक, ६०० रु० महीना, मिलने लगा था। चित्रपट के काम तथा चिंतन-मनन में दिन बीतने लगे। मद्रास में श्री विष्णुदास शिराली थे। वे भी 'कल्पना' चित्र से संबद्ध थे। शिराली जी से पुराना परिचय होने के कारण पंत ने उन्ही के साथ रहने-खाने की व्यवस्था कर ली—घर का आंशिक किराया देते तथा खाने का खर्च। 'कल्पना' चित्र के निर्माण के दिनों उन्होंने कुछ गीत भी लिखे। इन गीतों को स्वर-बद्ध करना शिरालीजी का काम था। इसका वर्णन करते हुए वे लिखते है—"१९४५-'४६ के दिन थे। मद्रास में 'कल्पना' चित्र का निर्माण हो रहा था। पंतजी के निकट सम्पर्क में रहने का तब मुझे और अवसर मिला। पंतजी मेरे साथ ही रहते थे। उनके सान्निध्य के वे क्षण मैं कभी भूल नहीं सकूँगा। 'कल्पना' में उन्होने कई सुन्दर गीत लिखे जैसे कि 'हिंदुस्तान का बल है हल', 'भारत जय जन' और 'दीप जलाओ।' उनके गीतों की धुन बनाना कोई आसान काम नहीं था, फिर भी उनके शब्दों को अपने सुरों में बाँधने मे मुझे अधिक समय नहीं लगता था। शायद यह पंतजी के प्रभाव का ही परिणाम था। 'कल्पना' में जो गीत उन्होंने लिखे उनसे मुझे नई धुनें बनाने की प्रेरणा मिली।

"युग की सांझ आज गहराई,' उनकी इस पंक्ति की धुन बनाते समय मैंने पंतजी के एक महामानव के हृदय की आवाज सुनी। पंतजी पंक्ति सुनाते, धुन अपने आप बन जाती।"[२]

'कल्पना' चित्र के निर्माण में संस्कृति-केन्द्र के सभी सदस्य उत्साहपूर्वक योगदान देने लगे। उदय शंकर बहुत चाहते थे कि 'कल्पना' के कथानक में एक कवि भी हो और कवि के रूप में पंत भाग लें। पंत पर कोई बन्धन नहीं

---

१. अहमदाबाद तथा मद्रास निवास की इसी अवधि में वहाँ के सिने-जगत आदि के लोगों के संपर्क में आए। ललिता, पद्मिनी, भारती तथा मृणालिनी साराभाई आदि से जान-पहिचान हुई।

२. 'स्मृति-चित्र', पृष्ठ ८०

था, वे अपनी ही वेशभूषा में अपने स्वाभाविक ढंग से अभिनय कर सकते थे। उन्हें यह प्रस्ताव अच्छा लगा, मनोनुकूल ! इलाहाबाद और अल्मोड़ा के छात्र जीवन में सफल अभिनय कर चुके थे। किंतु नरेन्द्रजी तथा अन्य मित्रों को पंत का चलचित्र में भाग लेना विशेष पसद नहीं आया, कही कवि व्यवसाय का माध्यम न मान लिया जाए ! उन्होंने सिद्धांततः आपत्ति की। आधी इच्छा होने पर भी पंत ने 'कल्पना' मे भाग लेना स्वीकार नही किया। यह उनका सदैव का स्वभाव है—अपनी इच्छा एवं व्यक्तिगत संतोष को दूसरे को आहत न करने के विचार से नगण्य मान लेना और फिर मुस्कुरा देना, भगवान् की इच्छा।

दीर्घ बीमारी जिस विश्राम की अपेक्षा रखती है वह पंत को नहीं मिल पाया। अच्छे होने के साथ ही वे 'कल्पना' चित्रपट के काम में व्यस्त हो गए। नवीन अनुभव—चलचित्र निर्माण करने आदि का विविधांगी अनुभव तथा व्यापक ज्ञान संतोषकारक था। यद्यपि स्टूडियो का काम एवं अश्रांत कार्य-श्रृंखला दुर्बल शरीर के लिए हितकर नही ही थी। परिस्थितियाँ उन्हें पराजित नहीं कर पाती हैं। शारीरिक-मानसिक श्रम के सम्मुख उन्होंने शायद ही कभी घुटने टेके हों। किंतु मान्यताओ का पालन करना उन्हें सदैव ही अनिवार्य लगा है। 'कल्पना' चलचित्र के निर्माण में उन्होंने पर्याप्त रुचि ली और 'सिनेरियों तैयार करने में भरसक सहायता दी। किंतु मुख्यतः कथा-सम्बन्धी मान्यता के सम्बन्ध में मतभेद तथा गौण रूप से अस्वस्थता के बाद 'नाइट शूटिंग' का रात्रि-जागरण उनके स्वास्थ्य के बिलकुल भी अनुकूल न पड़ने के कारण उन्होंने 'कल्पना' चित्रपट से छुट्टी ले ली और सिने-जगत् के अनुभवी संलाप-लेखक श्रीअमृतलाल नागर को अपना कार्यभार सौंप दिया। उदय शंकर और अमला जी ने बहुत चाहा कि वे उन्हीं के साथ रहें, कम-से-कम 'कल्पना' चित्र के निर्माण तक, किंतु उनका स्नेह, भावनात्मक आग्रह पंत को अपने संकल्प से डिगा न सका। उनका कहना है, "व्यक्तिगत स्तर पर मैं सब कुछ स्वीकार कर सकता हूँ। व्यक्ति है ही क्या जो उसके अहं को महत्त्व दिया जाय। किंतु जहाँ सामाजिकता का प्रश्न उठता है, सामाजिक न्याय, सिद्धांत और मान्यता का, मैं उसका पक्ष लेने में संकोच नहीं कर सकता।" उदय शंकर तथा उनके संस्कृति-केन्द्र को प्यार करते हुए भी पंत ने उससे सम्बन्ध विच्छेद कर लिया क्योंकि 'कल्पना' की कथा में उन्हें सामाजिक न्याय के बदले वैयक्तिक कुंठा का आरोपण अनुचित लगा। वे अब भी श्री उदय शंकर के प्रति स्नेह-आदर का भाव रखते हैं। उनके कलाकार के प्रतिभा संपन्न व्यक्तित्व पर वे मुग्ध हैं। श्री उदय

शकर अथवा 'दादा' के अनेक गुणों—अश्रांत कार्यदक्षता, गभीर कलादृष्टि तथा सृजनशक्ति के मुक्त हृदय से प्रशंसक है।[१]

दीर्घ अस्वस्थता अथवा काम के कारण पंत मद्रास रहते हुए यह भूल गए कि थोडी ही दूर पर पाडिचेरी आश्रम भी है जिसे देखने और समझने की आकांक्षा अल्मोड़ा मे उदय हुई थी। पाँच-छः महीने बाद जब उदय शकर ट्रूप के लोगों ने आश्रम जाने का कार्यक्रम बनाया तो पत भी उनके साथ चले गए[२]। उनके मन को पुनर्वार शांति और पवित्रता का अनुभव हुआ। आश्रम पहुंच कर उन्हे आत्मिक आनंद का बोध हुआ तथा उनके मन के सभी प्रकार के व्रण भर गए—मानसिक स्तब्धता तथा जीवन मूल्यों सम्बन्धी संघर्ष का कुहासा अपने आप ही छँट कर स्वस्थ प्रकाश पा गया। "वहाँ के वातावरण मे मुझे एक अज्ञात आकर्षण तथा वहाँ के जीवन में एक विशिष्ट सौंदर्य गरिमा तथा शांति मिली। उन दो-तीन वर्षो में जब तक मैं दक्षिण भारत में रहा, मुझे अनेक बार पांडिचेरी जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। दो बार नरेन्द्र और दो बार अमृतलाल नागर जी भी मेरे साथ आश्रम गए। आश्रम के स्वच्छ प्रभाव तथा श्री अरविंद के उज्ज्वल सम्पर्क में आने के कारण मेरी आध्यात्मिक मान्यताओ सम्बन्धी धारणाएँ अधिक उन्नत, विकसित तथा पुष्ट हुई। 'ग्राम्या' के बाद मेरे मन में जो चिंतन धारा चल रही थी, उसका यहाँ आकर परिपाक हुआ।"[३] आश्रम का शुभ उन्नत वातावरण, साधना पद्धति, श्री अरविंद एवं माँ का दिव्य व्यक्तित्व, वहाँ के स्नेही साधक एवं बंधुगण, श्री पुराणी जी, श्री सुंदरम, डॉ० इन्द्रसेन आदि तथा आश्रम की सुव्यवस्था और प्रेरणा शक्ति पंत के श्रद्धालु हृदय को आकर्षित करते थे। आश्रम के साधकों का सम्पर्क उनके स्वभाव के सहज अनुकूल भी है। वैयक्तिक कुंठाओं तथा राग-द्वेष से मुक्त यहाँ के कर्मयोगी मानव आत्मा के उन्नयन के उद्देश्य से साधना रत रहते हैं। श्री अरविंद दर्शन की चर्चा करते हुए 'उत्तरा' की भूमिका में पंत ने कहा है— "इसमें संदेह नही है कि श्री अरविंद के दिव्य जीवन दर्शन से मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ हूँ। श्री अरविंद आश्रम के योगयुक्त (अन्तः संगठित) वातावरण

---

१. 'कला और संस्कृति', पृ० १२०-२१, प्रकाशक : किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण

२. इसी अवसर पर उन्हें श्री पुराणी का भी आग्रह भरा पत्र आश्रम में आने के लिए मिला था।

३. 'भेंट-वार्ता तथा साठ वर्ष एक रेखांकन', पृ० ६५

के प्रभाव से ऊर्ध्व मान्यताओं-सम्बन्धी मेरी अनेक शंकाएँ दूर हुई हैं। 'स्वर्ण किरण' और उसके बाद की रचनाओं में यह प्रभाव, मेरी सीमाओ के भीतर, किसी न किसी रूप मे प्रत्यक्ष ही दृष्टिगोचर होता है।" पंत का यह कथन कि अपनी सीमाओ के भीतर ही वे श्री अरविंद दर्शन को अभिव्यक्ति दे सके हैं, अर्थगर्भित भी है। यह उस भेद को लक्षित करता है जो पंत की निजी जीवन दृष्टि की विशेषता है।

व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन एवं विश्व जीवन को समझने की जिज्ञासा पंत के मन मे अतृप्ति बन छा गई थी। अंदर का द्वंद्वजन्य नैराश्य और अवसाद गहनतम होता जा रहा था। कोई भी विचारधारा उसका समाधान नही कर पा रही थी। वैज्ञानिक सिद्धांतों का अध्ययन जीवन को उसकी सम्पूर्णता में समझाने में अशक्त प्रतीत हुआ। पंत का मन साहित्य, संस्कृति तथा दर्शन-ग्रंथों में अधिक रमने लगा। दक्षिण भारत के नवीन कलात्मक वातावरण में उनका सुप्त सौंदर्य-प्रिय जीवन-द्रष्टा भी भीतर से जगने लगा। उन्हें स्पष्ट भासित होने लगा कि एक पूर्ण विकसित समाज में मनुष्य को अवश्य ही सौंदर्य-प्रेमी तथा संस्कृत होना चाहिए। "किंतु सौंदर्य और संस्कृति का व्यापक स्वरूप क्या हो और पूर्ण विकसित समाज की स्थापना कब, कैसे, किस रूप में सम्भव हो सकेगी, जिसमें सौंदर्य आत्मोन्नयन तथा लोक-जीवन की प्रगति का साधन बन सके, यह द्वंद्व मेरे भीतर निरंतर चलता रहता था। मार्क्स के अध्ययन के बाद सम्पन्न लोकजीवन का स्वप्न मेरी विचारधारा का एक अंग बन गया था, किंतु वह स्वप्न केवल राजनीतिक-आर्थिक मान्यताओं की वृद्धि तथा भौतिक उपकरणों के विकास द्वारा ही पूर्ण होगा, इस पर से मेरा विश्वास उठने लगा था। बाह्य रूप से एक सुव्यवस्थित तथा समृद्ध तंत्र में रहने पर भी यदि मानव-जीवन भीतर से उन्नत न हो सके और यदि उसमें उच्चतम मानवीय गुणों का विकास होने के बदले वह केवल समतल शक्तियों से जूझने के लिए यंत्र मात्र बन जाए तथा उसे मनुष्यत्व के मूल्य पर बाह्य व्यवस्था तथा संतुलन स्थापित करना पड़े तो ऐसा समाज या तंत्र और जिसके भी योग्य हो मनुष्य के रहने योग्य नही कहा जा सकता। भौतिक दृष्टि से सम्पन्न और मानसिक-आत्मिक दृष्टि से रिक्त अकिंचन मनुष्य संभवतः मनुष्य कहलाने का अधिकारी नही हो सकता। आज के राजनीतिक आंदोलनों की एकांगिता की पूर्ति तथा सर्वांगीण विकास की परिपूर्णता के लिए मुझे युग-जीवन के अनुरूप एक व्यापक सांस्कृतिक जागरण की भी अनिवार्यता प्रतीत हुई।"[1]

1. **'साठ वर्ष, एक रेखांकन', पृ० ६१–६२**

'हाड़ मांस का आज बनाओगे तुम मनुज समाज ?
हाथ पॉव सगठित चलावेंगे जग जीवन काज !
दया द्रवित हो गए देख दारिद्रय असंख्य तनो का ?
अब दुहरा दारिद्रय उन्हें दोगे निरुपाय मनों का ?'

पंत को गांधीवाद और भूतवाद का समन्वय आवश्यक प्रतीत हुआ। यदि भूतवाद आत्मिक तत्व से रीता था तो गाधीवाद वैज्ञानिक यथार्थवादी भौतिक आवश्यकताओं को मानने पर भी उनका औद्यौगिक युग के अनुरूप समुचित मूल्यांकन नही कर पाया था। पत का दार्शनिक अथवा आध्यात्मिक आदर्शवाद एवं चेतनावाद दोनो मे निहित मूल्यों का समावेश करता है। ऐतिहासिक भौतिकवाद और भारतीय आध्यात्मिक दर्शन में उन्हें किसी प्रकार का मूलगत विरोध नही दिखाई दिया क्योकि उन्होंने दोनो के लोकोत्तर कल्याणकारी सांस्कृतिक पक्ष को ही ग्रहण किया। ''गाधी जी के अहिसात्मक आदोलनो मे सांस्कृतिक पुनर्जागरण की सभावनाएँ थी। स्वामी विवेकानन्द के ओजस्वी विचारों मे जो एक उन्नत आध्यात्मिक जीवन तथा व्यक्तित्व की कल्पना मिलती है उसकी पूर्ति गांधी-दर्शन तथा उनका व्यक्तित्व करता था, किंतु युग की पलकों में जो एक विश्व-लोक-सस्कृति, रवीन्द्रनाथ के अर्थ मे अतर्राष्ट्रीय संस्कृति नही, तथा भू-मानवता का स्वप्न उद्‌भासित हो रहा था, दर्शन की ऊर्ध्व रीढ़ के साथ, नैतिक सदाचार के ऊपर, जो एक सहज रस तथा सौदर्य की परिष्कृत मांसलता के स्पर्श की आवश्यकता प्रतीत होती थी, उसकी संभावना, जागरण तथा सुधारवादी आंदोलन होने के कारण, तब मुझे मात्र गांधीवाद के ही सहारे सम्पन्न होती नही दीखती थी। गांधीवाद का आधार मुख्यतः दार्शनिक अथवा आध्यात्मिक आदर्शवाद रहा है; उसमें वैज्ञानिक यथार्थवाद का परिपाक नहीं ही मिलता है। अपने इस ऊहापोह में मुझे तात्विक चिंतन से लेकर भौतिक दर्शन तथा जैव-मनोविज्ञान तक एक अन्योन्याश्रित संगति तथा एकता का आभास तो मिलता था, जैसा कि मेरी 'युगवाणी-ग्राम्या' की रचनाओं से भी प्रकट होता है, पर उस एकता अथवा सामंजस्य का व्यापक स्पष्ट चित्र तब मेरी कल्पना में नही उतर पाया था।''[१]

'कल्पना' से त्याग पत्र देकर वे मद्रास में स्वतंत्र रूप से लिखने-पढ़ने में तल्लीन हो गए। 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि' की कुछ रचनाएँ बम्बई में

---

१. 'साठ वर्ष, एक रेखांकन', पृ० ६२–६४

नरेन्द्र जी के यहाँ लिखी थी और अन्य मद्रास में ही लिखी। मद्रास से पंत 'दर्शन के दिनों' पांडिचेरी भी जाते रहते थे। अपने दो-ढाई साल के प्रवास मे उन्हे पाँच छः बार पांडिचेरी जाने का अवसर मिला। 'स्वर्ण धूलि' और 'स्वर्ण किरण' की प्रेस कापियाँ उन्होने मद्रास ही मे तैयार की थी। पांडिचेरी में उन्हें वैदिक साहित्य का अध्ययन करने का भी अवसर मिला। 'स्वर्ण धूलि' में सगृहीत वैदिक ऋचाओं का अनुवाद उनके इसी अध्ययन का परिणाम है। अपनी दोनों कृतियों की पांडुलिपियाँ भारती भण्डार, इलाहाबाद को प्रकाशनार्थ भेज कर वे निश्चिन्त हो गए। दक्षिण प्रवास काल मे उनका सुप्त सृजन संचरण फिर से जागृत हो उठा और तब से उनका मन निरंतर उद्‌बुद्ध तथा सृजनशील बना रहा। "जिस अंधेरे वातावरण में मन बिखर गया था उससे अब वह मुक्त होकर पहिले की ही भाँति आशा आस्थावान् हो गया।"

मद्रास का यह प्रवास पंत के लिये सुखद ही रहा जिसमे अनेक प्रकार के नृत्यों, वाद्यों, वेश-भूषाओं एवं प्रदर्शनों का सौंदर्य-रस पान करने का उन्हें अवसर मिला और उनकी कला-पिपासा को सांस्कृतिक शोभा के वातावरण में परितृप्ति मिली। साथ ही सिने-जगत का अनुभव भी उन्हें प्राप्त हो सका। मानसिक आघातों एवं अवसाद के बादलों के छँट जाने के कारण मन पुनर्जीवित होकर सृजन आनंद में रमण करने लगा।

मई, '४७ में नरेन्द्र जी की शादी होनी निश्चित हो गई। शादी में सम्मिलित होना पंत के लिए अनिवार्य था। अतः अप्रैल में वे नरेन्द्र जी के पास बम्बई चले गए। इस बीच नरेन्द्र जी को 'प्रभात स्टूडियो' के काम से पूना जाना पड़ा। पंत भगवती बाबू के यहाँ आ गए। उन दिनों भगवती बाबू बम्बई ही में थे, वे तथा नरेन्द्र जी सिने जगत से संबंधित थे, विशेषकर 'बाम्बे टाकीज' से। भगवती बाबू का कहना है, "पंत जी मेरे यहाँ दो-तीन दिन रहे और उनका यह अल्प-प्रवास हम लोगों के घनिष्ट संबंध का सूत्रधार बन गया।"[1]

● ●

---

१. 'भेंट वार्ता'।

३

'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि'

●

यह एक नवीन आशा, नवीन उल्लास, नवीन दृष्टि थी जिसको पंत के अंतर ने पा लिया था, वर्षो से उनकी खोई निधि मानो मिल गई हो। अपने ही अंदर वे जिस सत्य को समेटे थे वह अब प्रवाहित होने लगा। पंत की रचना प्रक्रिया के क्षण आत्मलीनता के क्षण है—"कविता कलम पकड़ कर बैठने से तो आती नही है। न जाने वह कौन अनजाना क्षण है, जो काव्य प्रेरणा का स्रोत बन जाता है।" "कविता न सोचकर लिखी जाती है और न कलम पकड़ कर। वह तो बस अपने आप ही प्रवाहित होने लगती है।"

मद्रास में पंत का मन शांत था, भाव स्रोत अभी अभिव्यक्ति पाने को रुका था। प्रेरणा के अभाव में वे कुछ खोए से रहने लगे थे, लगता था मानो उदास हों। उनकी 'स्वर्ण किरण' लिखने की मनः स्थिति का वर्णन श्री अमृतलाल नागर ने किया है—"उन दिनों वे प्रायः बड़े खोये हुए रहते थे। उनके उदास चेहरे पर कान्ति विराजती थी। एक दिन बंगले के लॉन में, बाँह पर हाथ रखे मौन टहलते-टहलते वे सहसा खड़े होकर सामने वाले वृक्ष को सिर उठाकर देखने लगे। क्रमशः पलों के हेर-फेर में उनकी खोई आँखों में चमक बढ़ने लगी। मेरी बाँह पर उनके पंजे का उल्लास भरा दबाव बढ़ा, उमंग से बोले "सामने देखिए बंधु, कविताएं झर-झर झर रही है।"[१] यह 'स्वर्ण किरण' और स्वर्ण धूलि' की रचनाएँ थी जो अबाध गति से झर रहीं थी।

'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि'[२] सह-विचारधारा को अभिव्यक्ति देते हैं। इनका रचना स्थान मद्रास और बम्बई है तथा रचना काल सन् '४६-'४७ है।

---

१. 'स्मृति चित्र' पृष्ठ ६५,

२. प्रकाशक : प्रथम संस्करण : भारती भंडार इलाहाबाद,
वर्तमान प्रक शक : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,

इन संग्रहों में कुछ रचनाएँ, इससे पूर्व की भी संगृहीत है विशेषकर 'स्वर्ण धूलि' की प्रणय सम्बन्धी रचनाएँ जिनके लिए बच्चनजी का कहना है, "सन् १६४० में मेरे ऊपर गृहस्थी का भार छोड कर पंत प्रणय-गीत 'बाँध दिए क्यों प्राण प्राणों से', 'बज पायल छम छम,' 'शरद चांदनी', 'रस बन', आदि लिखने में लीन हो गए।" दोनों ही सकलनो की रचनाएँ मानवतावादी, अध्यात्मवादी, तथा विकसित सांस्कृतिक चेतना से ओतप्रोत है। चितन,मनन तथा अनुभूति ने पंत को जीवन के आंतरिक और बाह्य दोनों ही पक्षों के प्रति प्रबुद्ध कर दिया था। स्वतन्त्रता-संग्राम, विश्व-युद्ध, गांधी के तप:पूत व्यक्तित्व तथा महान् वैज्ञानिक आविष्कारों के प्रभावों के साथ वेदों और उपनिषदो के अध्ययन मनन, चिंतन ने उनका उस सत्य से साक्षात्कार करा दिया जिसके पैर धरती पर हैं, हृदय सौंदर्यपूर्ण ऊर्ध्वमुखी स्वर्गिक क्षितिजो में तथा मन बौद्धिक शिखरों के पार शाश्वत के आनंद स्पर्श से प्रेरित है। औपनिषदिक सत्य को अपनाते हुए कवि कहता है—

> 'अंध तमस में गिरते वे जो मात्र अविद्या में रत,
> उससे भूरि तमस में वे जो विद्या में रत संतत !
> विद्याऽविद्या उभय एक में, भेद जिन्हें यह अवगत,
> विद्याऽमृत पी, मृत्यु अविद्या से वे तरते अविरत !'

विद्या-अविद्या, पारमार्थिक-लौकिक दृष्टिकोण, ज्ञान-विज्ञान एक ही सत्य के दो रूप है। विद्या एकता का बोध देती है तो अविद्या अनेकता का। दोनों मिलकर सत्य की सर्वांगीणता की व्याख्या करते हैं। एकता में अनेकता, अनेकता में एकता देखने वाला ही ऐहिक आत्मिक वैभव संपन्न बन सकता है। पंत के इस दृष्टिकोण पर श्री इलाचंद्र जोशी ने प्रकाश डाला है— "अपनी दो नवीनतम कृतियों ('स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि') में पंत जी ने वास्तव में एक ऐसे सुन्दर, स्वास्थ्यकर और सामंजस्यपूर्ण जीवनादर्श की ओर अपनी मर्म-कर्षिणी प्रतिभा को प्रेरित किया है जो जितनी ही विराट् है उतनी ही गहन भी, जितनी ही नवीन है उतनी ही पुरातन भी। ......इस असाधारण कला में पंत जी असाधारण ही रूप से सफल हुए हैं, इसमें मुझे तनिक भी संदेह का अनुभव नहीं होता।"[१]

---

१. 'संगम', वर्ष १, अंक ३६, पृष्ठ ७१, १६४८

'ग्राम्या' के प्रणयन के पश्चात् पंत को अपना बोध अपूर्ण लगने लगा। उन्हें उस स्वस्थ संशय, जिज्ञासा और व्यावहारिक समस्याओं ने घेर लिया जो प्रगतिकामी सत्यान्वेषी मन तथा बुद्धि के अनुकूल हैं। 'राजनीति का प्रश्न नहीं रे आज मनुज के सम्मुख', 'आज बृहत् सांस्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित'। संस्कृति के शाश्वत मूलतत्वों को आत्मसात् करने एवं उन्हें वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए ही वे संपूर्णता से उपनिषदों की ओर झुके और 'विद्याऽविद्या उभय एक में' के रहस्य को ग्रहण कर सके। शांकर मायावाद को उनकी प्रगतिकामी दृष्टि स्वीकार नही कर पाई। क्योंकि उनके अनुसार एक और अनेक, दोनों की स्वीकृति ही भागवत जीवन है। उनका ब्रह्मवाद या चेतनावाद मानता है कि अनेकता के भीतर से हमे एकता को ग्रहण करना होगा। इसमें संदेह नहीं कि उपनिषद् की ऐसी व्याख्या को अधिक स्पष्ट करने में श्री अरविंद दर्शन ने सहायता दी किंतु यह भी निर्विवाद है कि बिना अरविंद-दर्शन के भी वे इसी परिणाम पर पहुँचते।[१] हाँ, अपने दर्शन का प्रतिपादन करने में उन्हें श्री अरविंद से इस अर्थ में प्रेरणा मिली कि उसे व्यापक तौर पर एक महत् मनीषी का समर्थन प्राप्त हो गया। जिस किसी ने पंत को निकट से देखा है, 'स्वर्ण किरण,' 'स्वर्ण धूलि' के पूर्व की समस्त रचनाएँ पढ़ी हैं, 'ज्योत्स्ना' एवं 'आधुनिक कवि' की भूमिका को ठीक से पढ़ा है उसके लिए यह पारदर्शी सत्य है कि पंत अन्य किसी परिणाम पर नही पहुँचते। इसके अतिरिक्त जिसने ऋग्वेद और उपनिषद् पढ़े हैं, जो भारतीय चितन और दर्शन से परिचित हैं उसे न केवल पंत का काव्य सुगम लगेगा वह उन्हें नव्य-औपनिषद् विचारक एवं वैज्ञानिक अद्वैतवादी कहेगा।

---

१. "स्वर्ण धूलि' और स्वर्ण किरण' का प्रकाशन और उनमें अभिव्यक्त पंत का परिवर्तित दृष्टिकोण हमारे लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है। मानव-मनोविज्ञान से अभिज्ञ, संस्कारों में विश्वास रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति उसे स्वाभाविक घटना मानेगा।

डा० नगेन्द्र : 'सुमित्रानंदन पन्त', पृष्ठ १६७, साहित्य रत्न भण्डार, आगरा (नवम संस्करण) तथा देखिए इस पुस्तक का अध्याय ४

तुलना कीजिए "स्वर्ण किरण' पर अरविंद दर्शन छा गया है। ...... परन्तु फिर भी यह कहा जा सकता है कि पंत जी को इस कठिन कार्य में जितनी सफलता मिली उतनी शायद ही किसी और को मिल सकती थी।"

बच्चन : 'कवियों में सौम्य संत' पृष्ठ १०२ तथा डा० सत्यकाम वर्मा : 'महाकवि पंत,' पृष्ठ १०२, भारतीय प्रकाशन, नई दिल्ली, १९६४

श्री अरविंद अथवा उनके दर्शन के संपर्क मे आने से पूर्व ही पंत भारतीय सस्कृति को दायरूप में प्राप्त कर, उपनिषदों के अध्ययन एवं अपनी सांस्कृतिक प्रवृत्ति के कारण, इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके थे कि आत्म-सत्य अथवा चेतना का सत्य ही परम वांछनीय सत्य है जिसकी प्राप्ति इस जीवन को अंगीकार करके ही संभव है।

'भूतवाद उस धरा-स्वर्ग के लिए मात्र सोपान,
जहाँ आत्म-दर्शन अनादि से समासीन अम्लान।'

श्री दिनकर जी का कहना है, "अरविंद दर्शन की एक सूक्ति को अंगीकृत करके पंत जी ने 'युगवाणी' की भूमिका मे कहा है कि "पदार्थ (मेटैर) और चेतना (स्पिरिट) को मैंने दो किनारों की तरह माना है जिनके भीतर जीवन का लोकोत्तर सत्य प्रवाहित होता है।" इसी तथ्य पर प्रकाश डालते हुए दिनकर जी आगे कहते है—"वे मैटर के गुणों पर मुग्ध थे, किंतु आत्मा के अस्तित्व मे विश्वास रखने के कारण भूत उन्हें सर्वतोभावेन ग्राह्य नहीं था। अरविंद दर्शन ने उन्हें बताया कि भौतिक गुण भी बिलकुल त्याज्य नही, एक सीमा तक ग्राह्य हैं, बशर्ते कि इन गुणों के विकास से आत्मा के उत्थान में कुछ बाधा न पड़ती हो।"[१] इसी संदर्भ मे दिनकरजी की 'स्वर्ण किरण' की कुछ रचनाओं के प्रति यह भी आपत्ति है कि उनका कलेवर शृंगारिक है—"शृंगार के रंग में डूबे हुए इन चित्रों पर शुद्ध साहित्य की दृष्टि से कोई बड़ी आपत्ति नहीं की जा सकती। जहाँ तक शील का प्रश्न है, उसका भी इतना भर उल्लंघन, प्रायः कवि करते ही आए है। शंका मेरी यह है कि आध्यात्मिक प्रसंगों में नारी-रूप और काम-भावना का ऐसा वर्णन किया जाना ठीक है या नही।"[२] दिनकरजी की इस शंका को इंगित करते हुए पंत का उत्तर है, 'स्वर्ण किरण' और 'उत्तरा' में कहीं-कही दीप्त लावण्य के स्थल आए हैं जिनसे मेरे कुछ

---

१. 'पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण', पृ०, १०२-१०३, १०४ उदयाचल, पटना-४ द्वितीय संस्करण। उत्तर के लिए देखिए इस पुस्तक का अध्याय ६ तथा अध्याय १८

२. वही, पृ० ११६ तथा डा० शिवकुमार मिश्र 'नया हिन्दी काव्य', पृ० ८६ तथा देखिए रामविलास शर्मा : 'स्वर्ण किरण और स्वर्ण धूलि', सुमित्रानंदन पंत : सम्पादिका : शचिरानी गुर्टू, पृ० ३२०—३२३

मित्रो तथा आलोचको को आपत्ति है। विशेषत: इसलिए कि उनकी सगति मेरे आध्यात्मिक काव्य के साथ नही बैठती। कवि-दृष्टि निर्वैयक्तिक होती है, वह स्त्री-सौंदर्य को उपभोग के गुठन मे सुरक्षित रखने के बदले उसे व्यापक आनन्द के लिए वितरित कर देती है। यह आदि कवि वाल्मीकि-काल से प्रचलित व्यास, कालिदास की परम्परा है, जिसके गवाक्ष से स्त्री-सौदर्य पर मधुर प्रखर भावोष्ण प्रकाश पड़ता रहा है। स्त्री की शोभा पृथ्वी पर कला की पीठिका है, उसका शील सदाचार और अध्यात्म का द्वार······आने वाली सस्कृति के धरातल पर नारी-सौदर्य मानव-जीवन के उन्नयन मे बाधक न होकर सहायक ही होगा।······यह मात्र मध्ययुगीन नैतिक दृष्टिकोण है जो स्त्री-सम्पर्क को आध्यात्मिकता का विरोधी मानता है।····· पिछली आध्यात्मिकता तथा नैतिकता की धारणा ही खोखली, एकांगी तथा अवास्तविक रही है, जिसे स्त्री-स्पर्श तथा सम्पर्क उन्नत करने के बदले कलुषित कर सका है। निश्चय ही वह जीवनोन्मुख अध्यात्म न होकर रिक्त, जीवन-विरत तथा अप्राकृतिक अध्यात्म रहा है, जिसका दूसरा छोर हमारा वाममार्गी, वज्रयानी साधना-पथ तथा पंडों, पुरोहितों और महन्तों का धार्मिक जीवन रहा है।"[1]

जड़ और चेतन को एक ही सत्य के दो रूप कह कर पंत ने औपनिषदिक कथन, 'पदभ्यां पृथिवी' अथवा 'विद्यांचविद्यां च यस्तद्वेदोभय सह' का ही प्रतिपादन किया है। वैसे यह उनकी सभी कृतियों का स्वर, उनके व्यक्तित्व का प्रतिबिंब है। 'मत हो विरक्त जीवन से, अनुरक्त न हो जीवन पर।' विरक्ति और अनुरक्ति को राग और विराग के द्वंद्वात्मक अर्थो में समझने के कारण ही बच्चन जी भी उनके स्वभाव और रचनाओं के बारे में विभ्रम में पड़ गए हैं।[2] श्री अरविंद ने जड़ को चेतना ही का एक स्तर माना है, जो ठीक भी है पर उन्होंने बल चेतन तत्त्व पर ही दिया है, पंत की तरह जीवन तत्त्व पर नही। सत्य को परम साध्य मानते हुए भी पंत ने जीवन तत्त्व को प्रधानता दी है।[3] 'ज्योत्स्ना' अथवा 'युगवाणी' काल से ही कवि सामाजिकता या लोक-जीवन में सर्वभूतांतरात्मा के दर्शन करने लगा था। स्पष्ट ही उसे वैय-

---

१. **'शिल्प और दर्शन', पृ० १२४–१२५, रामनारायण लाल बेनी माधव, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण १९६१**

२. **'कवियों में सौम्य संत', पृ० ४२–४५।**

३. **देखिए–'चिदम्बरा' की भूमिका तथा 'पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण': दिनकर, पृ० १०६**

क्तिक मुक्ति नही चाहिए, वह मध्ययुगीन धर्म को उसकी इस आकांक्षा के कारण अग्राह्य मानता है। पंत सोलह वर्ष की आयु से ही सामाजिक कल्याण के आकांक्षी बन गए।[1] उनका दुर्बल तन, कलुषों से रिक्त मानस एवं मानवीय क्षुद्रताओं के प्रति अजानता, ऊर्ध्वाभिलाषी बुद्धि तथा दूरदर्शिता एवं व्यवहार कुशलता-शून्य व्यक्तित्व, सहज जीवन की आकाक्षा एवं सभी मे अच्छाई खोजने वाली दृष्टि, एक संत की सी दृष्टि है। क्षुद्रताओं को वह समझना ही नही चाहते है, देख-सुनकर भी उनके प्रति वधिर और अंध रहना चाहते हैं।

सामाजिक कल्याण की भावना जगत् की सत्यता के बोध से उद्भूत होती है। मानवता से रिक्त आत्मवाद या चेतनावाद पंत के लिए कोई अर्थ नहीं रखता। अरविंद की मूल दृष्टि यदि आध्यात्मिक है तो पंत की मानवता-वादी।[2] वे मानव को अतिमानव में रूपांतरित करने के उतने आकांक्षी नही है जितना कि उसे सामाजिक जीवन के स्तर पर मनुष्यत्व के बोध से युक्त करने के। मनुष्य को अपने अंतःसत्य तथा हृदय की दिव्यता के प्रति प्रबुद्ध करना पत के स्वर्ण-काव्य का लक्ष्य है। 'स्वर्णधूलि' का 'मानसी' रूपक तथा 'स्वर्ण किरण' का 'स्वर्णोदय', 'अशोकवन' तथा अन्य रचनाएँ विशेषतः इसी आकांक्षा को अनेक रूप में अभिव्यक्ति देती हैं। श्री अरविंद अतिमानस के प्रादुर्भाव को अनिवार्य मानते है और मनुष्य की समस्याओं का सम्यक् समाधान एवं उसके दुःख, विषमताओं और क्लेशों का अवसान अतिमानस के स्तर पर ही संभव मानते है। पंत वर्तमान आत्म-चेता मानव पर ही अपना स्वर्ण हास बिखेरते है।

'हँसी, लो, स्वर्ण किरण,
शिखर आलोक वरण।'

उनके लिए सभी समस्याओं के निदान का धरातल मानव प्रेम और एकता का धरातल है—

---

१. देखिए पंत का उपन्यास 'हार', हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण, १९६०

२. दिनकर : 'पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण', पृ० १०६

'निज जीवन का कटु सघर्षण
भूल गया अब मानव अंतर
जग जीवन के नव स्वप्नों की
ज्योति वृष्टि मे अमर स्नान कर !'

श्री अरविंद, गाधीजी और कवीन्द्र रवीन्द्र को पत ने अपनी अनेक रच-नाओं द्वारा श्रद्धांजलि अर्पित की है। अपने युग की महान् विभूतियों की महानता को उन्होंने सदैव ही विनत होकर माना है। उनमे वह 'अहं' कभी नही उपजा जो अपने बाहर नहीं देखना चाहता। महान् विभूतियाँ तो महान् है ही, पंत सामान्य से सामान्य व्यक्ति मे अच्छाई खोजकर प्रसन्न हो उठते हैं। इतना गुणगान कर देते हैं कि सुनने वाला ऊब जाता है। उन्होंने अपने समकालीन लेखको और विशिष्ट व्यक्तियों पर भी स्तुति गान लिखे हैं क्योंकि स्वभावतः इसमे उन्हें सुख मिलता है। जब जो विभूति उनके सम्मुख आई उसकी महानता को उन्होने मुक्त हृदय से स्वीकृति दी है और उसकी महा-नता की पराकाष्ठा बतलाने के लिए ही वे विनम्रतावश कहते है, "मैं उनसे प्रभावित हुआ हूँ।" जिस अर्थ मे वे प्रभावित हुए हैं या होते है उस अर्थ में प्रत्येक व्यक्ति, यदि वह जाग्रत् है, अपने देश-काल की विभूतियों से प्रभावित होता है। सभी विश्व प्रकृति के प्रांगण में जन्मे है, विश्व प्रकृति की अमृत श्वासों से पोषित होते हैं। विश्व जननी प्रकृति से कोई अछूता नही रह सकता, और इसलिए सभी एक दूसरे के भावों, विचारों, सिद्धांतो से प्रभावित हैं। पंत इस प्रभाव को प्रणत होकर स्वीकार करते है, क्योंकि उनमें वह विनम्रता है जो अपनत्व की सीमा का अतिक्रमण कर लेती है। "हम सत्य के विधायक नहीं हैं—भागी और साझेदार हैं।"

'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि' औपनिषदिक गंभीरता को लिए हुए हैं। इनकी हस्तलिखित प्रतियाँ, जो प्रयाग सग्रहालय में रखने के लिए ब्रजमोहन व्यास जी को दे दी गई थीं और अब खो गई हैं, प्रमाण स्वरूप थी कि इनकी दार्शनिकता का मूलाधार ऋग्वेद और सामवेद की ऋचाएँ है। प्रारंभिक चार पृष्ठों में न केवल ऋचाएँ लिखी हुई थी, उनके शब्दों का हिंदी में अर्थ भी लिखा हुआ था। 'स्वर्ण धूलि' की प्रारभिक चौदह कविताएँ ऋग्वेद के सूक्तों के भावानुवाद हैं जिनको पंत ने अपने दृष्टिकोण से भी युक्त किया है। "मेरे भाव-बोध ने उन मत्रों को जिस प्रकार ग्रहण किया है वही उनका मुख्य तत्त्व और स्वर है। कही-कही तो मैंने उन मंत्रों की व्याख्या कर दी है।" यह

पंत की भारतीय दर्शन को देन है। आप्तवचन (श्रुति) अपने आप में वांछनीय होने पर भी समयानुकूल पुनर्व्याख्या की अपेक्षा रखते है। युग आवश्यकता और युग चेतना के अनुरूप उनका स्वस्थ निर्देशन करना मानवता की माँग है। पंत की 'स्वर्ण धूलि' और 'स्वर्ण किरण' इसी मॉग की पूर्ति करते हैं। 'स्वर्ण धूलि' की पंद्रहवी कविता स्वामी विवेकानंद के 'सोंग आफ द सन्यासिन्' का अनुवाद है जो उन्होने सन् १६३४-'३५ में परमहंस देव की शताब्दी के अवसर पर किया था। 'स्वर्ण किरण' की अधिकांश कविताएँ प्रतीकात्मक हैं। प्रतीकों की व्याख्या औपनिषदिक ज्ञान के आधार पर ही सभव है। 'स्वर्ण किरण' मे कई ऐसे शब्दों का भी प्रयोग है जिन्हें वेदों तथा उपनिषदों के संदर्भ मे ही समझा जा सकता है। कुछ प्रतीकों को पंत ने स्पष्ट कर दिया है: रजतातप (आत्म निर्माण), स्वर्ण निर्झर (सौंदर्य चेतना), स्वर्णिम पराग (मन), ऊषा (मनः स्वर्ग), हरीतिमा (प्राण), नीलधार (विश्व यमुना), सविता (सूर्य), अरुण ज्वाल (नव चेतना) आदि। पंत के स्वर्ण-काव्य मे सविता अथवा पूषण आत्म तेज का प्रतीक है, हरीतिमा प्राण शक्ति एव प्राणिक जीवन की, नील-धार एवं यमुना विश्व चैतन्य की, रजतातप चेतना के पावित्र्य का, मात-रिश्वा मातृ चेतना आदि का। पंत ने वैदिक प्रतीकों का 'स्वर्ण किरण' में अतुल प्रयोग किया है। किंतु यह प्रयोग, प्रयोग मात्र नही हैं।[1] वे उनके अपने दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति के साधन भी है।

'हाउ हाउ, वह स्वर्ण पुरुष,
वह ज्योति पुरुष मैं हूँ, अजर अमर !
झरते सप्त धार सोने के,
सतत मातरिश्वा से निर्झर !'

---

१. 'स्वर्ण धूलि' के वैदिक ऋचाओं के अनुवादों में कवि ने गहन आध्यात्मिक तथ्यों को व्यक्त करने की एक नवीन शक्ति का उपार्जन किया है। इस नवीन शक्ति का रहस्य है प्रसंगानुकूल आर्य-शब्दावली का प्रयोग—

'ब्रह्म ज्ञान रे विद्या, भूतों का एकत्व समन्वय
... ...
आज जगत में उभय रूप तम में गिरने वाले जन
ज्योति-केतु ऋषि-ऋषि करे उन दोनों का संचालन'

'हाउ हाउ' देशज शब्द नही है जैसा कि 'ज्योति विहग' के लेखक[1] का विचार है और न इसका अर्थ 'हाँ-हाँ' ही है। यह वैदिक ऋषि की आत्म-बोधजन्य प्रसन्नता और आश्चर्य को अभिव्यक्ति देता है। इसका सीधा सा अर्थ है, कैसा आश्चर्य है कि जो तुम हो वही मैं हूँ: 'हाउ, हाउ, हाउ जोसावसौ पुरुष: सोऽहमस्मि।'

जीवन का उपभाग बिना आत्म-प्रकाश के सभव नही है। आत्म-प्रकाश से दीपित हृदय भूतों की चिर पावनता मे सहज अवगाहन कर भव की खंडित विशृंखलता को चेतना की अमर गति-लय मे बाँध देता है। व्यक्ति और विश्व में व्यापक समता स्थापित कर देता है:

'मुक्त चेतना के प्लावन सा
उमड़ रहा रजतातप निर्झर,
आज सत्य की बेला बहती,
स्वप्नों के पुलिनों के ऊपर।'

'रजतातप' (आत्मा का प्रकाश) बाह्य और अंतर, जड़ और चेतन को समन्वित कर तथा भू जीवन के प्रति जन मे अभिरुचि उत्पन्न कर श्रद्धा, विश्वास, प्रेम से मानव को अंत:स्मित कर देता है।

आत्मा के प्रकाश से मानव जीवन को मण्डित करने तथा मानव जीवन के निर्माण के लिए 'इंद्रधनुष' कविता आवश्यक सात तत्वों पर प्रकाश डालती है। 'इंद्रधनुष' में जिस भाँति सात रंग है उसी भाँति जीवन निर्माण के लिए आवश्यक सप्त स्तरों का मूल्य है। सामूहिक श्रम (जीवन का आर्थिक पक्ष—क्षुधा पूर्ति), युग्म प्रीति (प्राणों का स्तर-प्रेम पूर्ति), जन शिक्षा, ललित कला, विश्व-संस्कृति और आध्यात्मिक उन्नयन, चेतना के इन सातों स्तरों का प्रयोजन सप्त-वर्ण स्मित भू-स्वर्ण रूपी इंद्रधनुष की रचना का रूपक है। 'असतो मा सद्गमय' का आंचल पकड़ कर कवि समदिग् गति को ऊर्ध्वगति के आदर्श से युक्त करता है। ऊर्ध्व संचरण को लोकहित के लिए सम भूमि प्राप्त करनी है, वह आकाश कुसुमवत् नही रह सकता। समदिग् संचरण को स्वस्थ सामा-

---

१. डा० नगेन्द्र: 'सुमित्रानंदन पंत', पृ० १८६ १८७
शांतिप्रिय द्विवेदी: 'ज्योति-विहग', पृ० ३८७, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, द्वितीय संस्करण

जिकता की स्थापना के लिए आत्मिक उच्च आदर्श से अपने को युक्त करना है। प्राणिशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, राजनीति, नैतिकता और धर्म ऊर्ध्वोन्मुखी होकर ही भू जन के जीवन को बाह्य और अतर वैभव से युक्त कर सकते हैं। भौतिक समस्याएँ आत्मिक स्तर पर ही सुलझ सकती है। सांसारिक सौदर्य दिव्य अंतः सौदर्य से समन्वित होकर ही जन मगल कर सकता है।

> 'नील गगन मे सुरधनु घन, घन उर मे चपला कपित,
> तरुओं पर कलि कुसुम, कुसुम में मधु, मधु पर अलि गुजित,
> ... ...
> ज्योति चूड लहरें उठ उठ नित करती गोपन इंगित,
> निखिल प्रकृति रे कहती उसमे अमृत सत्य अंतर्हित।'

प्रकृति सौदर्य के अंतर मे जीवन का ज्योतिर्मय सारतत्व अंतर्हित है। सारतत्व एवं अमृत तत्व से युक्त होकर ही जीवन सर्वांगीण ऐश्वर्य से महिमान्वित हो सकता है एवं ज्ञान-विज्ञान, विद्या-अविद्या, सासारिक और पारमार्थिक सत्ता के तथाकथित विरोधों को अपने आत्मप्रकाश की एकता में संयोजित कर सकता है। दुर्बोध तात्विकता को 'इन्द्रधनुष' जीवन की सहजता में ढाल कर सरस बना देता है।

ब्रह्म-ज्ञान एवं विद्या जो कि भूतों के एकत्व का ज्ञान है तथा भौतिक ज्ञान अथवा अविद्या जो कि एक ही सत्य की विविधता का परिचय देता है, इनमें समन्वय देखने वाली कवि दृष्टि भूतवाद की एकांगिता के प्रति क्षुब्ध है। आत्मिक सत्य के अज्ञान तथा भौतिकता पर अंध आस्था ने मानव जीवन को बहिर्भ्रांत सामाजिक संघर्षण का क्षेत्र बना दिया है। सुदरता, आनंद, प्रेम अब काल्पनिक प्रतीत होते हैं। सामाजिक साधारणता के सिद्धांत ने वैंयक्तिक आत्मिक स्वतंत्रता का अपहरण कर लिया है।

> 'यह सामाजिक साधारणता
> मूल्य व्यक्ति का करे नियंत्रित ?
> जंगम जीवन ज्वर की जडता
> करे मनुज आत्मा मर्यादित ?'

मानव समाज जड़ समुदाय नही है। वह जीवंत आत्म-चेतन प्राणियों की वह अविभाज्य एकता है जिसमे प्रत्येक का अपना निजत्व, महत्त्व और सक्रिय

सहयोग है। व्यक्ति और समाज में राजनीति की भाँति द्वैत नही है। व्यक्ति मे ही ब्रह्माण्ड और ब्रह्मांड मे ही व्यक्ति है। अतः व्यक्ति की स्वतंत्रता और विकास सामाजिकता का विरोधी नही है। 'स्वर्ण धूलि' में कवि कहता है—

'व्यक्ति समाज ? व्यक्ति में रहता,
अखिल उदधि अंतर्हित।'

यह न प्रगति का विरोध है और न तथाकथित व्यक्तिवाद ही है। राज-नीति के द्वंद्वात्मक झरोखे से देखने पर ही यह भाव व्यक्तिनिष्ठ अथवा समाज या साम्यवाद का विरोधी दीखेगा। किंतु जो औपनिषदिक दर्शन के ब्रह्माण्ड और अण्ड को जानता है, वह इसमें उसी की अनुगूंज पायेगा। प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक मूल्यों के साथ आत्मिक मूल्यों को एवं आत्मिक मूल्यों के साथ सामाजिक मूल्यो को भी स्वीकार करना चाहिए तभी वह अपना एवं समाज का निर्माण कर सकेगा। व्यक्ति नगण्य नहीं है, समाज का विकास स्वचेतन व्यक्तियों द्वारा ही संभव है। अथवा आत्म प्रकाश की स्वर्ण चेतना ही जीवन को पल्लवित पुष्पित कर सकती है।

'तुम रक्त सुरा-सी सुर मादन,
जड़ तुमको पी बनते चेतन,
गुंजरित भृंग, कूजित कोकिल,
... ...
नव स्वप्न-रुधिर से सिहर सिहर,
प्राणो का सागर लहराया।

'रुधिर' शब्द अर्थ-गर्भित है, इसका प्रयोग साभिप्राय किया गया है। यह उस रुधिर का सूचक नही है जो अमानवीय कर्मों की वीभत्सता है, जैसा कि कुछ आलोचक सोचते हैं।[१] चेतना मन की नाड़ियों में प्रवाहित होकर उसी तरह उसको पोषित करती है जिस प्रकार रक्त हमारी देह की स्नायुओं में बह कर उसका पोषण करता है।

---

१. मानव : 'सुमित्रानंदन पंत', पृष्ठ ३६३, किताब महल प्रा० लि०, इलाहाबाद तृतीय संस्करण, १९६२

समुद्र के निकट पंत को अपनी जन्मभूमि, कूर्मांचल की याद आई। 'हिमाद्रि'[1] इसी स्मृति को संजोए है। सौदर्य का कवि सौंदर्य के क्षेत्र में फिर से उन्मुक्त आनंद का अनुभव करने लगता है। यह उसका जन्मजात क्षेत्र है जिसमें उसका स्वाभाविक मधुर गान 'पल्लव' की कोमल कांत पदावली मे फूट पड़ा है। इसके साथ ही कालिदास के काव्य का स्मरण 'संभव, पुरा तुम्हारी द्रोणी' सजीव हो उठता है। 'हिमाद्रि और समुद्र' मे न केवल हिमालय और समुद्र का वर्णन है वरन् उन्हें ऊर्ध्व और सम संचरण का प्रतीक बना कर एक ही जीवन सत्य का पूरक माना गया है।

'अंगुंठिता' में देह के प्रेम तथा विदेह प्रेम का संघर्ष चित्रित किया गया है। केवल देह प्रेम को महत्त्व देने वाली वृत्ति पर उसमें व्यंग्य भी मिलता है। यह अपने चतुर्दिक के समाज एवं परिचित व्यक्ति के जीवन से प्रेरणा पाकर लिखी हुई रचना है।

'लज्जा पर न तुम्हें आती,
बन सकते नही प्रेम संन्यासी।'

'चिन्मयी', 'छायापट' और 'निवेदन' आत्म-परिचयात्मक रचनाएँ हैं। 'चिन्मयी' विश्वव्यापी चेतना है जो अवनि, अनिल, आकाश में बसी है और जिसका कवि आराधक है। छायापट में स्थूल-सूक्ष्म प्रवृत्तियों के चित्रण तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध पर प्रकाश डालकर मन के स्वभाव का परिचय दिया गया है। 'निवेदन' विश्व वेदना विगलित हृदय का चित्र है :

'रँग दो मेरे उर का अंचल।
युग-युग के आँसू से गीला
मेरा स्नेही का अंतस्तल।'

'आवाहन' न केवल नव्य चेतना को भू पर प्रतिष्ठित करने की प्रार्थनारत कविता है वरन् समांतर भाव से लौकिक वैभव की आकांक्षिणी प्राचीन स्तुति, 'मुझे स्वर्ग दो, मुझे मुक्ति दो, मुझे बांधव, पुत्र, पौत्र, स्त्री धन दो' की रुढ़ि-

---

१. "हिमाद्रि' में 'पल्लव' की कोमल-कांत पदावली का आनंद फिर से लिया जा सकता है। मेरी सम्मति तो यह है कि पंत जी सबसे पहले प्रकृति के कवि हैं और आज भी उनका प्रौढ़तम स्वर प्रकृति-संबंधी रचनाओं में सुना जा सकता है।" बच्चन : 'कवियों में सौम्य संत', पृष्ठ ८७

वादिता पर सक्षम प्रहार है। संस्कृत मानस मात्र वैयक्तिक भौतिक ऐश्वर्य का अभिलाषी नही हो सकता। उसे उन मान्यताओ को अपनाना होगा जो स्वर्णिम शाति के वातावरण मे ऐक्य और मुक्ति के स्वर्ग को भू पर स्थापित करेंगी। 'भू लता' परम्परागत आस्था पर कुठाराघात है। यह भाग्यवाद के उस पक्ष का अनावरण है जिसने जन मन के मानस पर निष्क्रिय विश्वासों की काई जमा दी है। 'कौवे के प्रति' में कवि ने समदृष्टि अपनाई है। काले को काला या घृणित कहना असत्य है। काले सभी काले (दूषित मन के) नहीं होते और उज्वल सभी उज्वल नही होते। कौवे को विपश्चित (पण्डित) मानकर कवि उससे जग के दूरित दैन्य का कारण पूछता है ओर वह कांव-कांव कह कर मानो काम, कामना एवं पक्षपात की प्रवृत्ति को काला घोषित कर देता है।

'द्वा सुपर्णा' में उपनिषद् का रूपक लेकर विकसित मानव में जीव और ब्रह्म का संश्लेषण किया गया है। ऐसा मानव जिसके अंतर और बाह्य, द्रष्टा और भोक्ता में संतुलन हो वही उचित मानव है। इससे ध्वनित होता है कि तरु जीवन अथवा विश्व जीवन का निर्माण करके ही व्यक्ति का जीवन सफल एवं सुखी हो सकता है।

ऊषा (मन:स्वर्ग) के माध्यम से, जो वैदिक शब्दावली में सहज प्रकाश की प्रतीक है, पंत ने मन:शक्तियों के विभिन्न वातायनों में सहज प्रकाश के सचरण पर सूक्ष्य प्रकाश तो डाला ही है साथ ही उनका दार्शनिक विवेचन भी किया है। मानसिक शक्तियां कैसे विकसित अथवा अस्तित्ववान् हुई हैं, इसका मनोहारी वर्णन ही ऊषा है। परिवर्तित छंदों के साथ शक्तियों का आविर्भाव एवं मनो-विलास मनोजगत का गूढ़ परिचय देता है। स्वर्ग चेतना भू चेतना का मधुर स्पर्श पाकर खिल उठती है :

> 'स्वर्ग विभा रज तन को छूकर,
> खिलती सकुचाती क्षण क्षण पर।'

पृथ्वी पर उच्च चेतना का अवतरण सर्वत्र आनंद और सौंदर्य की वृष्टि करता है। प्रकृति का ऐश्वर्य अतुलनीय है।

> 'ज्योति नीड़ के विहग जगे, गाते नव जीवन मंगल,
> रजत घंटियाँ बजीं अनिल में, ताली देते तरुदल !'

दिव्य चेतना का अन्न, प्राण, मन के स्तरों पर क्या प्रभाव पड़ा, 'ऊषा' इसका व्यापक दिग्दर्शन है। दिव्य चेतना के अवतरण एवं उसके तथा भू चेतना के मिलन द्वारा पंत ने यह बतलाया है कि अन्न, प्राण, मन और चेतना अविच्छिन्न हैं। अध्यात्म और यथार्थ, आदर्श और वस्तु एक ही सत्य के ऊर्ध्व और समदिक् संचरण हैं।[1] क्षुधा, काम की तृप्ति उचित है किन्तु उन्हें आत्मा के ऐश्वर्य में बांध कर संस्कृत बना देना होगा। आत्मिक और भौतिक सत्य का ऐक्य विश्व प्रांगण को जीवन सौंदर्य से आलोकित कर देगा। विश्व में शिवमय प्रवृत्तियां अवतरित हो जावेंगी—व्रीड़ा, आशा, सेवा, ममता, कृतज्ञता, विनय, क्षमा, न्याय, श्रद्धा, भक्ति, दिव्य प्रेरणा, सत्य और श्रेय का अवतरण एक ही सत्य के ऊर्ध्व और सम संचरणों एवं सर्वसमावेशी सत्ता का बोध है।

'सत्य सुदूर समीप, सत्य था भीतर बाहर,
सत्य एक बहु, सूक्ष्म स्थूल, केवल, क्षर-अक्षर।
धरा सत्य थी, सत्य पवन जल पावक अंबर,
सत्य हृदय मन इंद्रिय, सत्य समस्त चराचर!'

संसार की असारता की कल्पना द्रष्टा कवि को स्वीकार्य नही है। एक ही सर्वव्यापी सत्य सीमायुक्त और सीमातीत है।

'बंधनहीन विविध बंधन में बँधती वह नित'

सर्वव्यापी और सर्व-समावेशी सत्य कुप्रवृत्तियों का हनन या निराकरण नहीं करता। वह उनको भी अपने वशीभूत कर उन्नत कर देता है।

'काम क्रोध मद मत्सर थे उसके पद अनुचर,
वह स्वर्णिय किरणों से मंडित, पाप तमस हर।'

यह पंत का व्यक्तित्व ही है जो इन पंक्तियों के माध्यम से मुखर हो उठता है। उनकी दृष्टि में कुछ भी घृणित या निम्न नही है, वरन् वे भ्रांति में है, जो दूसरों की छोटाई को परिस्थिति विशेष के संदर्भ में नहीं समझ पाते हैं।

---

१. उपनिषद के अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनंदमय कोष यही परिलक्षित करते हैं।

'स्वर्णोदय'[१] और 'अशोकवन ,'स्वर्ण-किरण' की अद्वितीय रचनाएं हैं। सूक्ष्म चित्रण की दृष्टि से यद्यपि 'ऊषा' स्तुत्य है तथापि व्यापक पृष्ठभूमि पर आधारित होने एवं जीवन के सम्यक् चित्रण और पौराणिक आख्यान को जीवन यथार्थ की गध से युक्त कर देने के कारण 'स्वर्णोदय' और 'अशोकवन' रचनाएं श्रेष्ठता के उच्चतम शिखर को छूने लगती है। 'स्वर्णोदय' में जीवन का, जीव की सांसारिक यात्रा के आदि और अंत का सांगोपांग यथार्थमय दार्शनिक चित्रण है। 'लोरी गाओ,' 'संध्या बूढ़ा ने सूरज का गेंद छिपाया', 'कोकिला करती कल कूजन', 'जननि जनक अब बने युग्म,' 'चल रहा झुक लाठी पर आज', 'ऊंऽक्रतोऽस्मर कृतऽस्मर' आदि सांसारिक जीवन की विभिन्न स्थितियों के ही सूचक हैं। अमर्त्य की मर्त्य यात्रा के अंत एवं नश्वर के देह त्याग को इंगित करने के लिए ही पंत ने इशोपनिषद् के स्वर में कहा है, ऊंऽक्रतोऽस्मर कृतऽस्मर। यह भय या निराशजनक स्वर नहीं हैं। मात्र जीवन सत्य की पुनरुक्ति है। भौतिक लोचनों का निर्निमेष हाना प्रभु और प्रभु भक्त का अभिन्न हो जाना है।

'स्वर्णोदय' में यौवन का वर्णन, जीवन विकास की एक आवश्यक स्थिति का वर्णन है, जो यथातथ्य और मनोवैज्ञानिक है। ऐसे वर्णन की तुलना देव-बिहारी की उन रचनाओं से करना जो मात्र उद्दीपन के लिए है, अन्याय है। 'स्वर्णोदय' में जीवन का कलात्मक जीवंत वर्णन है। काव्य में नाटकीयता और मधुर दार्शनिक विवेचन के साथ शैशव, किशोर, यौवन, प्रौढ़ि और वार्धक्य का हर्षोत्फुल्ल आत्मीय परिचय दिया गया है।[२] प्रत्येक अवस्था का वर्णन इस अर्थ में पूर्ण है कि वह उसकी सभी विशेषताओं को प्रकाश में ला देता है। षड् ऋतुओं और जीवन की भिन्न अवस्थाओं में साम्य ही मानो एक दूसरे के आगमन का सूचक एवं सौंदर्य और जीवन यथार्थ का अपूर्व मिलन है।

---

१. "कहने की आवश्यकता नहीं कि सम्पूर्ण जीवन को अंकित करने के लिए इतना विशाल पट हिन्दी में पहली बार यदि किसी ने लिया है तो पं० सुमित्रानन्दन पंत ने।"
मानव : 'सुमित्रानंदन पंत,' पृ० २६५

२. "......पंत जी की रचना निश्चित रूप से श्रेष्ठतम है। एक तो इसलिए कि उनका विषय तुलसी और वर्ड्सवर्थ दोनों से अधिक व्यापक है और दूसरे इसलिए भी कि उनका जीवन दर्शन अपेक्षाकृत अधिक गंभीर, सहज-ग्राह्य और सरस है। तुलसीदास का उद्देश्य (विनय-पत्रिका) तो जीवन के प्रति विरक्ति उत्पन्न करना है।......वर्ड्सवर्थ

इस लम्बी कविता में 'जय अमर्त्य का मर्त्य पर्यटन' मुख्य रूप से मुखर हो उठता है। यह भारतीय विचारधारा का मूल तथ्य है। अनंत का सीमाकरण ही सांत है। सांत एवं जीवात्मा जन्म के बन्धन में पड़ता है। मध्ययुगीन विचारधारा के विपरीत पंत अमर्त्य के मर्त्य पर्यटन पर दुःखी नहीं होते। परमात्मा से वियुक्त जीवात्मा मल का सागर नहीं है और न दुःख-कष्ट ही उसका एक मात्र दाय है। वह अपने जीवन का निर्माता है, अपनी सभी अवस्थाओं का उचित उपयोग कर सकता है। 'मानव तू शुक्रोसि स्वरसि भ्राजोसि ज्योतिरसि, सत्य ऋषि वचन !' कह कर उन्होने न केवल उपनिषद् के कथन की पुनरावृत्ति की है वरन् आत्मा के ज्योतिर्मय पवित्र स्वरूप की मान्यता तथा मनुष्य को अच्छा जीवन जीने की प्रेरणा दी है।

> 'संस्कृति रे परिहास, क्षुधा से यदि जन कवलित,
> कला कल्पना, जो कुटुम्ब-तन नग्न, गृह-रहित।'

कवि का विद्रोही मन प्रतिक्रियावादी नहीं है, प्रतिक्रिया ध्वंसात्मक होती है। उसका विद्रोह तो निर्माणात्मक है। वह भू-मंगल की आकांक्षा से नर-नारियों को प्रबद्ध कर लोक-सेवा में जीवन-पुष्प अर्पित करने की याचना करता है। पृथ्वीवासी, विशेषकर भारतवासी जो आध्यात्मिक सम्पदा से युक्त हैं, को चाहिये कि अपने चेतना के रत्न का अभिज्ञान प्राप्त करें, क्योंकि इसी में एक मात्र वह क्षमता है जो उनके दुःख-दारिद्रय को दूर कर सकती है। भारतवासी कर्मशीलता तथा आत्म-प्रयास द्वारा अपने भाग्य विधायक बन सकते हैं। मनुज की नियति दुःख नही है। भाग्यवाद एवं निष्क्रियता तथा स्वार्थ ने उनका

की भावना (Our birth is but a sleep and a forgetting……) तुलसी से मुझे अधिक स्वाभाविक प्रतीत होती है। वर्ड्सवर्थ का उद्देश्य अपनी खोई हुई वृत्ति को फिर प्राप्त करना है।……परन्तु पंतजी की चिंता-धारा ने जन्म, बचपन, किशोरावस्था, यौवन, प्रौढ़ावस्था, जरा और मरण पर समान रूप से प्रकाश डाला है और यह अत्यंत विदग्धता से सिद्ध किया है कि जीवन की सभी अवस्थाएँ आवश्यक और उपयोगी हैं।

वही, पृ० २९९-३००

तथा देखिए प्रो, अरविंद : 'पंत की काव्य साधना,' पृ० १५० : शुक्ला बुक डिपो, पटना १९५३

जीवन दुःखपूर्ण बना दिया है। अब भाग्य के पंखों को कुतर कर लोक नीति की बेलि से जग जीवन को सुंदर बनाना होगा। जब मानव उर विश्व प्रेम की व्यापकता का आलिंगन कर लेगा तब वह परम्पराओं के कर्दम से ऊपर उठ जावेगा—'मोह विगत का तज, नूतन को मूर्त बनाओ।' भारत ने ईश्वर को सर्वव्यापी, आत्मा को चिरंतन, मुक्त व्यर्थ ही नहीं कहा है। मानवता शाश्वत की आकृति में विकसित होकर, अंतर्मन अपने आंतरिक सत्य से मिलकर, अपना कल्याण और अमरता प्राप्त करेंगे। मानव शाश्वत का कण है, शाश्वत को प्राप्त करके ही वह सत्य, ज्योति, अमरत्व, सुंदरता, प्रेम और आनन्द को भोग सकेगा।

'जो अपने में सीमित, मरते रहते प्रतिक्षण,
... ...
ईश्वर जग में व्याप्त, त्याग से भोगो भव जन,'

वार्धक्यावस्था को प्राप्त करने पर प्रबुद्ध मनुष्य का दृष्टिकोण संतुलित हो जाता है। विश्व में उसे अखण्ड एकता की अनुभूति होती है।

'आज समस्त विश्व मंदिर सा
लगता एक अखंड चिरंतन,
सुख दुख जन्म मरण नीराजन
करते, कही नही परिवर्तन

भू रचना का भूति-पाद युग
हुआ विश्व इतिहास में उदित'

कवि भूति-पाद युग की स्थापना करना चाहता है। यह पुराणों के अनुसार वह युग है जिसमें भागवत वैभव उद्भूत हो जाता है। यह वैश्व संस्कृति, वैश्व चेतना का युग है। आत्मिक एकता का बोध पूर्व-पश्चिम के अस्वाभाविक भेदों, भौगोलिक विभाजनों को मिटा देता है—ज्ञान-विज्ञान एक दूसरे के पूरक बन जाते हैं। पंत का विश्वास है कि आत्मिक बोध युक्त विपश्चित एवं ज्ञानी लोग ही लोक नियति निर्माण करने का दायित्व वहन कर सकते हैं।

'अशोक वन' पंत के दार्शनिक दृष्टिकोण की परिचायक रचना है।[1] इसे श्री अरविंद के दर्शन का एक मूल सिद्धांत वही कह सकता है जिसने उनका नाम भर सुना हो, उनके दर्शन का अध्ययन न किया हो। पंत 'ग्राम्या' की 'ग्रामदेवता' नामक रचना में भी, संक्षेप में, सीता-राम के इस रूपक पर प्रकाश डाल चुके हैं। इस रचना में कवि ने वंदिनी सीता के रूप में धरती के अज्ञान से निरुद्ध चेतना के विकास की व्याख्या की है। सीता जी, धरती की अभीप्सा; राम मनुष्य के अंतश्चैतन्य; रावण, मनुष्य के अहंकार का प्रतीक है। गीतो की शैली में कवि ने धरती की चेतना के संघर्ष को व्यक्त किया है और यह दिखलाया है कि मनुष्य की चेतना मोह-ममता के आवरण में सीमित नही रह सकती। उसको अपने ऊर्ध्वमुखी सत्य को प्राप्त कर धरती के जीवन में चरितार्थ होना है। सीता जी रावण से कहती है :

'धरती की आकांक्षा सीता
त्रिभुवन के पति से परिणीता
भू पर उसके पद, भव में मन
हृदय राम में लीन निरंतर
सतत लोक मंगल में जो रत
भू का हृदय राम का अनुगत
क्या तुम, बाँध सकोगे उसको,
घट में समा सकेगा सागर!'

'स्वर्ण किरण' के कला-पक्ष के बारे में डॉ० नगेन्द्र का कहना है, "शिल्प बहुत-कुछ साधना की वस्तु है। उसके लिए परिष्कृत रुचि के अतिरिक्त कल्पना की समृद्धि और प्रयत्न-साधन अपेक्षित होता है। पंत में यह तीनों गुण प्रभूत मात्रा में हैं, अतएव उनकी कला सदैव विकासशील रही है और 'स्वर्ण किरण' में वह अपनी चरम प्रौढ़ि पर पहुँच गई है। यह प्रौढ़ि तीन दिशाओं में लक्षित होती है। काव्य-सामग्री की समृद्धि, परिष्कार और विस्तार, प्रयोग-कौशल की सूक्ष्मता और अभिव्यक्ति की परिपक्वता। 'स्वर्ण किरण' में पंत ने अत्यन्त समृद्ध काव्य-सामग्री का प्रयोग किया है। अनेक कविताओं का कलेवर रूप-रंग के ऐश्वर्य से जगमगा रहा है।

१: "अशोक-वन, में श्री अरविंद के दर्शन का एक मूल सिद्धांत कह दिया गया है।" बच्चन : कवियों में सौम्य संत, पृ० ८८

'कलरव, स्वप्नातप, सुरधनु पट,

... ...

खोल तृणों के पुलक पंख उड़ने को 'भू-रज के कण।'

······पंत का प्राकृतिक वैभव पर तो पूर्ण अधिकार रहा ही है, प्रकृति के रम्य रूप······सभी अपने रूप-रंगों का वैभव लिए कवि-कल्पना के संकेतों के साथ नाचते हैं।

'स्वर्ण किरण' में यह क्षेत्र और भी विस्तृत हो गया है, और रूप-रंग के रूमानी उपकरणों के अतिरिक्त यहाँ आध्यात्मिक जीवन के मांगलिक उपकरणों ······का भी यथेष्ट प्रयोग है।

'चन्द्रातप-सी स्निग्ध नीलिमा

... ...

... ...परिवर्तन !'

······छायावादी कवियों में सबसे सीमित क्षेत्र सुश्री महादेवी वर्मा का है······पंत का क्षेत्र अपेक्षाकृत कहीं अधिक विस्तृत है। उन्होंने भी केवल मनोरम रूपों को ग्रहण किया है, प्रसाद और निराला की भाँति विराट् और अनगढ़ रूपों को नहीं, परन्तु उन्होंने इस क्षति की पूर्ति अपनी सामग्री के सूक्ष्म नियोजन द्वारा कर ली है। वास्तव में चयन और नियोजन की इतनी सूक्ष्मता, रूप और रंग का इतना बारीक मिश्रण अन्यत्र नही मिलता :—

'स्वर्ण-रजत के पत्रों की रत्नच्छाया में सुन्दर

... ...

तुहिनों का छायातप नित, कंपता रहता तारोज्ज्वल !'

उपर्युक्त पंक्तियों में आप देखिए कि सौंदर्य के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अणुओं के प्रति पंत का ऐन्द्रिय संवेदन कितना सचेत और तीव्र है।"[1]

'स्वर्ण धूलि' की कविताओं में शीतलता, स्निग्धता, गहनता और सहजता के साथ कला तथा अभिव्यक्ति का स्वाभाविक प्रवाह है। डा० देवराज के

---

१. 'सुमित्रानंदन पंत', पृष्ठ १८४-१८६

अनुसार इसमें "अभिव्यक्ति की दृष्टि से पंत जी अपने विकास की चरम भूमिका में पहुँच चुके हैं, तत्सम शब्द प्रधान हिन्दी भाषा पर हमारी सम्मति में, उनका प्रसाद से अधिक दृढ़ अधिकार है। अभिव्यक्ति के एक धरातल का जितना सफल निर्वाह पंत कर सकते हैं, वैसा प्रसाद नहीं। इसकी परीक्षा के लिए आप 'स्वर्ण धूलि' की प्रथम कविता लें, और 'कामायनी' के एक जगह से उठाए हुए, किन्हीं भी आठ पद्यों से उसकी तुलना कर लें।"[1]

'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण धूलि' के छंदो के बारे मे पंत का कहना है कि अपनी इन रचनाओं में उन्होंने "यत्र-तत्र छंदों की सम-विषम गति की एकस्वरता को बदलने की दिशा में भी कुछ प्रयोग किए हैं। जिससे ह्रस्व दीर्घ मात्रिक छंदों की गति में अधिक वैचित्र्य तथा शक्ति आ जाती है। यथा-'सुवर्ण किरणों का झरता निर्झर' में 'सुवर्ण' के स्थान पर 'स्वर्णिम' कर देने से गति में तो संगति आ जाती है, पर सुवर्ण किरणों का प्रकाश मंद पड़ जाता है। इसी प्रकार 'जल से भी कठोर धरती' में 'कठोर' के स्थान पर 'निष्ठुर' हो सकता था,......, और ऐसे ही अनेक उदाहरण दुहराए जा सकते हैं; किंतु मैंने सम विषम गति से शब्द-शक्ति को ही अधिक महत्व देना उचित समझा है। इस युग में जब हम ह्रस्व-दीर्घ मात्रिक के पाश से मुक्त होकर अक्षर-मात्रिक तथा गद्यवत् मुक्त छंद लिखने में अधिक सौकर्य अनुभव करते हैं, मेरी दृष्टि में, ह्रस्व-दीर्घ मात्रिक में यति को मानते हुए सम-विषम की गति में इधर-उधर परिवर्तन कर देना कविता पर किसी प्रकार का अत्याचार नहीं होगा, बल्कि उससे ह्रस्व-दीर्घ-मात्रिक में स्वरपात का सौंदर्य आ जाता है। इन रचनाओं में मैंने ह्रस्व अंत्यानुप्रासों का अधिक प्रयोग किया है—यथा कोमल, लोचन, सुरभित इत्यादि। ह्रस्व मात्रिक तुक अधिक सूक्ष्म होने से एक प्रकार से छंद प्रवाह में घुल-मिलकर खो जाते हैं। गीतों को छोड़कर प्रबंध एवं इतर काव्य में मैंने इस प्रकार के सूक्ष्य या नम्र अंत्यानुप्रासों से ही अधिक काम लिया है—गीतों में ह्रस्व-दीर्घ दोनों प्रकार के तुकों से।[2]

कथोपकथन की शैली अथवा कथा-शैली को अपनाने वाली 'स्वर्ण किरण,' 'स्वर्ण धूलि' की कविताओं ने विचारों तथा भावनाओं को जीवन की तरलता दे दी है। 'स्वप्न निर्बल', 'लोक सत्य', 'सामंजस्य' में माधव और यादव के पारस्परिक संवाद द्वारा कवि ने युग-विचारों का संघर्षण एवं भाव सत्य (अध्या-

---

१. 'सुमित्रानंदन पंत', : संपादिका, शचीनरानी गुर्टू, पृष्ठ १७६
२. 'उत्तरा' की प्रस्तावना पृष्ठ २८

त्मवाद) और वस्तु सत्य (भूतवाद) की एकांगिता को समन्वित कर उन्हें व्यापक आत्म-सत्यता प्रदान की है। तीनों का नारी रूप मोहक है :—

'भाव सत्य बोली मुख मटका
तुम—मैं की सीमा है बंधन
मुझे सुहाता घन सा नभ मे
लय हो जाना, खो अपनापन !
... ...
बोली वस्तु सत्य मुंह बिचका,
... ...
भिन्न देह है जहां, भिन्न रुचि,
भिन्न स्वभाव, भिन्न सब के मन !
... ...
आत्म सत्य बोली मुसका कर,
... ...
पंख खोल सपने उड़ जाते,
सत्य न बढ़ पाता गिन गिन पग।
सामंजस्य न यदि दोनों मे
रखती मैं, क्या चल सकता जग ?'

'ग्रामीण' में श्रीधर और मनोहर के कथोपकथन द्वारा, लगता है, लेखक ने अपने ही बारे में कहा है। इस भांति अपने सामाजिक आचरण का स्पष्टीकरण करने वाली कविताएँ पंत साहित्य में दुर्लभ ही हैं। इस कविता के अनुरूप पंत का मन ग्रामवासी ही है। ग्राम जीवन की दयनीयता तथा अभाव ने उन्हें सदैव विक्षुब्ध किया है। जब भी वे भारत या भारत के बाहर के किसी विशाल नगर का वर्णन करने बैठते हैं, वह अधूरा ही रह जाता है। तत्काल उन्हें ग्रामीणों की दुर्दशा, उनका कंकाल-सा जीवन याद आ जाता है और वे क्षुब्ध होकर उनकी नारकीय स्थिति के बारे में बतलाने लगते हैं।

'मुक्ति बंधन' समर्पण पूर्ण रचना है। भगवान को संबोधित कर कवि अपने क्षणिक अवसाद को अभिव्यक्ति देता है, तुमने मुझे निरीह बनाया है, किंतु फिर भी मेरा यह समर्पित जीवन सुखी है।

'क्यो तुमने निज गीत विहग को
दिया न भू का दाना पानी,
... ...
उसके आर्त हृदय से फिर फिर
उठती सुख की कातर वाणी।'

'परिणति' आत्म-विश्लेषणात्मक कविता है जो पंत की मनोकांक्षा, उनके स्वभाव का प्रतिबिंब है। पंत के भावनात्मक जगत की गाथा—'बाले तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दू लोचन'—अब असीम के प्रति समर्पण है, 'इस असीम सौंदर्य सृजन को आत्म समर्पण।' पार्थिव इच्छा, आकांक्षा, यौवन जो किसी के नहीं बन पाए थे अब असीम के प्रति समर्पित हैं। सांसारिक दृष्टि से पंत का जीवन संघर्ष, अभाव, रिक्तता और अस्वस्थता का जीवन रहा है किंतु उनका मन सदैव एक आंतरिक संतोष, पूर्ण निवेदन और शरणागति से स्पंदित रहता है। जीवन के शुभत्व में एकांतिक विश्वास एवं भगवान के विधान में शिवत्व देखने की प्रवृत्ति उन्हें चिर उल्लासमय रखती है। 'छाया दर्पण' में उन्होंने अपने जन-मंगल के स्वप्न का आभास दिया है तथा 'आह्वान' में इस स्वप्न को साकारता प्रदान करने की मगलमय से प्रार्थना की है—'बरसो है घन'।[1]

---

१. "एक और कविता है 'तालकुल'। पंत जी ने सामान्य वस्तुओं में सौंदर्य खोजा है, परन्तु केवल गंदगी को सूंघते रहने वालों को इस कविता में केवल कुकड़ूँ कूं, ही अच्छी लगी...... इस कविता में ताल के वृक्ष के ऊपरी भाग को भील के मुकुट से उपमा देकर, उसके आकार, पवन द्वारा उत्पन्न पत्तों की गति आदि का चित्रात्मक वर्णन है परन्तु ..... यदि हम केवल कुकड़ूँ कूं पढ़कर वैसी ही आवाज़ में दूसरों की नींद खराब करने लग जांय तो उसका न्याय तो पाठक ही करेंगे। पंतजी के साथ ऐसा अन्याय एक जगह नहीं, कई जगह हुआ है।"
विश्वम्भरनाथ उपाध्याय : 'पंत जी का नूतन काव्य और दर्शन', साहित्य-रत्न भण्डार, आगरा। प्रथम संस्करण १९५६, पृष्ठ ६०८
तुलना कीजिए, रामविलास शर्मा: स्वर्ण किरण और स्वर्ण धूलि, सुमित्रा-नंदन पंत : संपादिका शचीरानी गुर्टू पृष्ठ ३०४
तथा यशदेव शल्य : 'पंत का काव्य और युग, पृष्ठ ३४०।' किताब महल, इलाहाबाद : प्रथम संस्करण, १९५१

'काले बादल' सांप्रदायिक-दंगों की कटु अनुभूति के साथ ही देशों-जातियों को नव मानवता के ऐक्य मे विकसित देखने की आशा को व्यक्त करता है। 'मनुष्यत्व' और 'क्षणजीवी' भी इसी भांति मनुजों को रक्त, जाति, वर्ग और धर्म का प्यासा देखने के विपरीत उन्हें सत्य, प्रेम एवं व्यापक मनुष्यत्व का प्यासा देखना चाहती हैं। 'परकीया' और 'पतिता' रूढ़िवादिता एवं बाह्याचरण के विपरीत आंतरिक पवित्रता की श्रेष्ठता स्थापित करती है। पंत का हृदय सदैव ही गलित, जर्जरित एवं जीवन-अवरोधक परम्परा का विरोधी रहा है, ये उस पर तीखा व्यंग्य हैं।

'नव वधू के प्रति' कविता नरेन्द्र जी की पत्नी सुशीला जी के प्रति है। 'अंतिम पैगम्बर' मुहम्मद साहब की जीवन दृष्टि की विशालता पर प्रकाश डालती है।

'तालकुल' नारिकेल के पादपों का उपहास है क्योंकि वे पथिकों को छाया नहीं देते एवं देवों-सी काया रखते हैं। पंत का स्वभाव है यदि बात तनिक कठोर हो गई तो परिहास में सरस मधुर हास बिखेर कर स्थिति को कोमल बना देते हैं। 'तालकुल' को लांछित करने के बाद वे स्थिति को सरस कर देते हैं, वैसे, यह एक हल्की मनःस्थिति में लिखी कविता है।

> 'अगर न ऊँचे होते दादा,
> कब का ऊँट तुम्हें खा जाता।'

'भावोन्मेष, 'आवाहन', 'प्राणाकांक्षा', 'रस सुवर्ण', 'साधना', 'प्रेम मुक्ति', 'प्रतीति', 'सार्थकता' भावभीने रससिक्त गीत हैं जिनकी आशा आकांक्षाएँ निश्छल प्रेम की सरिता में कल-कल करती हुई बढ़ती हैं। एक अद्वितीय आकर्षण में बहता हुआ जीवन दिव्य रहस-मिलन से सार्थक हो उठता है।

'कुंठित' तथा 'आर्त' रचनाएँ गीता की भाँति आर्त प्राणियों को भगवत् आश्रय देती हैं। वह जो सभी प्रकार से अयोग्य, निर्बल, कुंठित और लुंठित हैं, जो परितापित, शापित और त्रासित हैं, जिनका उद्धार करने में समाज तथा राजनीति भी समर्थ नहीं है, वे अवलंबहीन नहीं हैं क्योंकि निराश्रितों का संबल भगवान हैं। भागवत करुणा का उपभोग कर वे भाग्यवाद के निष्क्रिय अंधकार में पड़े रहने के विपरीत अंतःप्रयास द्वारा अपने जीवन को सह्य और सफल बना सकते हैं।

'अंतर्वाणी' प्रेम की वाणी है। जिसने इसके मर्म को समझ लिया है, उसके लिए दुःख और व्यथा का अस्तित्व नहीं रह जाता है। पंत का विश्वास है विशुद्ध प्रेम भगवान के प्रति ही संभव है। अंतर्वाणी में भगवान का यह प्रेमी सर्वत्र प्रेम की ही अनुभूति करता है। 'मातृ चेतना', 'मातृ शक्ति', 'निर्झर', 'ज्योति झर', 'प्रीति निर्झर', 'अंतर्लोक', 'स्वर्ग अप्सरी', 'चित्रकरी', 'दिवा-स्वप्न' तथा 'चेतन', भक्ति रस प्लावित पूर्ण शरणागति एवं आत्म निवेदन से युक्त रचनाएँ हैं। 'प्रीति निर्झर' में तो अनुभूति दिव्य का सरस आनदमय स्पर्श पाकर साकार हो गई है—

'यहां तो झरते निर्झर
स्वर्ण किरणों के निर्झर
स्वर्ण सुषमा के निर्झर
निस्तल हृदय गुहा में
नीरव प्राणों के स्वर।'

'मृत्युंजय' में पंत की लोक-कल्याणकारी कामना सबल होकर रूढ़िवादी मृतप्राय मानस को झकझोर देती है: 'ईश्वर को मरने दो हे, मरने दो।'[१] वह ईश्वर जिसे आज गलित, जर्जरित प्रथा, अशिव आस्था, कटु विद्वेष, मृत मान्यताओं का प्रतीक बना दिया गया है उसे मर कर फिर से नवीन मानव-मंगलकारी रूप में व्यक्त होना होगा। ईश्वर एक, अद्वितीय, सर्वगत, अक्षर, अमर और शाश्वत है। वह मानवता का लक्ष्य और संबल है। मनुष्य बुद्धि ने इस अक्षर, सर्वगत सत्य को विभिन्न रूपों (प्रतिमाओं) में विभाजित कर उसे पारस्परिक कलह का कारण बना कर दूषित कर दिया है। ईश्वर की मृत्यु, वास्तव में, दुर्बुद्धि की मृत्यु है ताकि हम ईश्वर के जन मंगलकारी स्वरूप को समझ सकें। 'छायाभा' मायावाद का खण्डन है। छाया और आभा एवं सत्य और माया अविच्छिन्न हैं।

'सुख दुख के सुरधनु रंगों की,
यह स्वप्न सृष्टि अज्ञेय, अमर।'

---

१. "कविता विचारात्मक भी हुआ करती है, पंत जी ने स्वयं इसके उत्कृष्ट प्रभावोत्पादक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। उस विचारात्मकता में जीवन

'नरक में स्वर्ग' क्षुधा और सुधा इन दो सहेलियो के पारस्परिक स्नेह और त्याग की कहानी मात्र नही है, यह वर्गयुद्ध को त्याग और प्रेम का मानवोचित संदेश देती है। जब तक मनुष्य अंदर से संस्कृत नहीं होगा धरती की क्षुधा दलित और पीड़ित ही रहेगी। घृणा का प्रीति में, भेद-भाव का अभेद दृष्टि में परिणत होना ही क्षुधा का सुधा बनना है।

'सावन' में चित्रमत्ता की विशेषता है। ध्वनि सगीत की स्वाभाविकता सावन की मनभावनी छटा को प्रस्तुत कर देती है। चातक की पिउ-पिउ, झिल्ली की झन-झन, मोर की म्याऊँ-म्याऊँ ध्वनि संगीत को उत्पन्न करती है। संस्कृत में मोर को मार्जार-रव कहते है, वह जो बिल्ली की भाँति रव करता है।[1]

मर्म झलक उठते हैं। विचार नहीं, वरन् वे जीवन मर्म कवि की भाव-दृष्टि के रूप में अवतरित होते हैं।......'मृत्युंजय' नामक कविता ले लीजिए। 'ईश्वर को मरने दो हे, वह फिर जी उठेगा, ईश्वर को मरने दो।' इस कविता में जो विचारात्मकता है वह वस्तुतः एक भावदृष्टि की विचारात्मकता है। विचार स्वयं एक अनुभूति बनकर एक समष्टिचित्र प्रस्तुत कर रहा है। उस कविता में एक वैचारिक कल्पना है—जिसके भीतर एक भाव-दृष्टि झलकती है। सच तो यह है कि जहाँ-जहाँ भी पंत जी ने सहानुभूति के क्षेत्र का विस्तार किया है, वहाँ-वहाँ उनकी वैचारिकता भी काव्य-गुण सम्पन्न हो उठी है। पंत जी की सहानुभूति का जिस क्षेत्र में सहज विस्तार है उस क्षेत्र में पाये जाने वाले विचारों को पंतजी चमकीले मूल्यवान मणियों की भाँति एकत्र कर लेते हैं। वे विचार उनके लिए कान्तिमान रंग-बिरंगे मनोहर मणि हैं, जिनमें से जीवन की नवनवोन्मेषमयी किरणें विकसित हो रही हैं।"

मुक्तिबोध : 'नयी कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबंध', विश्वभारती, प्रकाशन, नागपुर : प्रथम संस्करण, १९६४, पृ० ८३-८४

१. देखिए यशदेव शल्य : 'पंत का काव्य और युग', पृ० ३३९

तथा—"मोर का शब्द मुमकिन है, किसी ने दूसरे ढंग से सुना हो, लेकिन कवि-कंठ से होता हुआ वह किंचित रूप परिवर्तन करके म्याऊँ-म्याऊँ बन गया है।" राम-विलास शर्मा : 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि', 'सुमित्रा-नन्दन पंत' : संपादिका शचीरानी गुर्टू, पृ० ३०६।

दिव्य अनुभूति सिक्त कविताओं के अतिरिक्त 'स्वर्णधूलि' की विशेषता उसके प्रेम गीत और 'मानसी' रूपक है।

'बाँध दिए क्यों प्राण प्राणों से !
तुमने चिर अनजान प्राणों से !
गोपन रह न सकेगी
अब यह मर्म कथा
... ...
प्राणों में चिर व्यथा बाँध दी !
वृथा प्रणय की अमर साध दी !'

तीव्र अनुभूति की सजीवता, मार्मिकता लिए हुए ये गीत प्रणय-काव्य की अनमोल निधि रहेंगे, इसमें संदेह नही। किंतु आश्चर्य तो यह है कि प्राणों को चिर व्यथा से बाँधने वाली स्वप्नवासिनी रूपसी ही है। वह स्वप्न देही है—

तुलना कीजिए—'सावन' शीर्षक कविता का चित्र स्वाभाविक प्रतीत होता है......परन्तु 'विकृतिवादियों' की दृष्टि केवल नीचे की पंक्तियों पर ही पड़ी—

'दादुर टर टर करते, झिल्ली बजती झन झन।
म्याऊँ, म्याऊँ रे मोर, पीउ पीउ चातक के गण।।'

"वारि की धार पकड़ कर झूलते हुए' कवि मन को न देखकर म्याऊँ, म्याऊँ सुन कर जिन्हें केवल बिल्लियों की याद आती है, उनकी सहृदता की दाद देने के अलावा और क्या चारा है ! मैंने पहले भी कहा है कि 'कुत्सित समाजशास्त्री' अपने मन का उद्धरण बीच कविता से चुन लेते हैं, पूरी कविता पर विचार नहीं करते अतः उनका ध्यान केवल बिल्ली की म्याऊँ, म्याऊँ पर ही जाता है।......कवि प्रकृति को अब भी जब तब तटस्थ दृष्टि से देखकर उसके सौंदर्य को अंकित करता है और आध्यात्मिक प्रकाश डालकर उत्पन्न नवीन सौंदर्य का चित्रण तो वह बराबर करता ही है। 'स्वर्ण धूलि' में ऐसे चित्र कम हैं परन्तु 'स्वर्ण किरण', 'उत्तरा,' 'अतिमा' तथा काव्य-रूपकों में ऐसे चित्रों की संख्या बहुत है।"
विश्वम्भरनाथ उपाध्याय : 'पंतजी का नूतन काव्य और दर्शन,' पृ० ६०७-६०९

'स्वप्न देही हो, प्रिये, तुम,
देह तनिमा अश्रु धोई।
... ...
प्रेम पलकों पर अकल्पित
रूप की सी स्वप्न सोई।
... ...
क्यों न होता प्यार अंधा
छवि अपार निहार निरुपम'

'मानसी' एक गीति-नाट्य है। पुरुष-नारी के रूपक में पंत ने स्त्री-पुरुष के प्रेम की, आधुनिक युग की माँग के अनुरूप, व्याख्या की है। विकास की विभिन्न स्थितियों में उनका क्या सम्बन्ध रहा है एवं राम, कृष्ण, और बुद्ध काल की नारियों का चित्रण करते हुए वे कहते हैं कि आधुनिकाएँ सामाजिक दायित्व के बोध से रिक्त मात्र रूप शिखाएँ है।

'तुम विभव स्वप्न में अलसाईं
अयि प्रीति शिखा!
तुमको प्रिय प्राणों का जीवन'

अंतिम दृश्य में ये रूप शिखाएँ प्रबुद्ध होकर भू निर्माण में संलग्न हो जाती हैं:

'धिक्, हम कैसे प्रेम पथिक!
प्रीति सूत्र में बँधकर जो हम,
बन सकते भू के न श्रमिक!'

'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि' में न तो वीणाकालीन चापल्य है और न रहस्यमयता; न पल्लवकालीन विशुद्ध सौंदर्य का पान है, न रूप माधुरी का उन्मत्त गुंजार ही; न युगांत का विद्रोही विप्लवकारी स्वर एवं आक्रोश है जो जगत के जीर्ण पत्तों को द्रुत झड़ने का आदेश देता है; और न 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' का सा यथार्थ का धरातल है, जो जीवन के अभिशापों को समझाने में व्यंग्यपूर्ण हो जाता है। यहाँ तो प्रौढ़ावस्था की गंभीरता, जीवन का विस्तृत बोध एवं एकता की आनंदानुभूति है। यदि काव्य सौंदर्यानुभूति और रसानुभूति

है तो यह वह सौंदर्य और रस है जो मनुष्य का मूलधन है। साहित्य का ध्येय निर्माणात्मक और कल्याणकारी है—उसे पहिले मनुष्य को मनुष्य बनाना है। यदि वह मानव को मानवता के प्रति प्रबुद्ध नहीं कर सकता तो वह निरर्थक है। काव्य के माध्यम से अपनी ही आशाओं निराशाओं को अभिव्यक्ति देना, उसे अपनी व्यक्तिगत कुंठाओं का प्रतीक बना देना, पंत के कवि हृदय को मान्य नहीं है। कवि द्रष्टा एवं संदेशवाहक है, वह क्षुद्रताओं और मानव सीमाओं का दिग्दर्शन वहीं तक करता है जहाँ तक कि वे सुंदर मानव समाज के निर्माण में सहायक हैं। कवि का हृदय विश्व हृदय है जिसमें वैश्व चेतना स्पंदित रहती है। वह मानव-सौंदर्य, मानव-कल्याण एवं जीवन सत्य का वाहक है।[1]

पंत के स्वार्णिम काव्य का लक्ष्य मनुष्यत्व को जगाना है। उन्होंने साहित्य-स्रष्टा के सामाजिक दायित्व को समझा और अपने काव्य द्वारा मानव-चेतना, मानव-बुद्धि के बंद गवाक्षों को खोलने का प्रयास किया। मानव-सत्य, मानव-संस्कृति का इतिहास सत् साहित्य का ही अमर गान है। 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि' में 'ज्योत्स्ना' कालीन मानवतावादी चेतना अधिक प्रस्फुटित हो गई है। उसमें निखार एवं सत्य की पकड़ है। जीवन का फैलाव और उसकी गहराई एक ही है, व्यक्ति और समाज अन्योन्याश्रित हैं। यह जीवन सत्य का सम्यक् बोध है जो पंत काव्य में स्वर्ण ज्योति का हास बन जाता है तथा जिसमें व्यक्ति और समाज, उर्ध्व और सम चेतना मिल जाते हैं।

●●

---

१. मानव समानता के घोर विरोधी नृशंस विचारक नीत्से के साहित्य का दुष्परिणाम स्पष्ट है, वह दो विश्व युद्धों का जनक एवं प्रेरक है।

४

पंत काव्य की प्रगतिशील भूमिका

●

पत द्वारा सपादित 'रूपाम' का प्रथम अक जुलाई, १९३८ मे निकला और इस प्रथम अक का सम्पादकीय इस दृष्टि से अत्यत महत्त्वपूर्ण है कि इसने युग चेतना के अनुरूप काव्य दिशा का निर्देशन किया, लोक-कल्याण को वाणी दी. "कविता के स्वप्न भवन को छोडकर हम इस खुरदुरे पथ पर क्यो उतर आए, इस सबध मे दो शब्द लिखना आवश्यक हो जाता हैं। इस युग मे जीवन की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार धारण कर लिया है उससे प्राचीन विश्वासो मे प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गए हैं। ' अतएव इस युग की कविता स्वप्नो मे नही पल सकती। उसकी जडो को अपनी पोषण-सामग्री ग्रहण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है। और युग जीवन ने उसके चिर सचित सुख स्वप्नों को जो चुनौती दी है उसको उसे स्वीकार करना पड रहा है। ' ' हम तो चाहते हैं उस नवीन के निर्माण मे सहायक होना, जिसका प्रादुर्भाव हो चुका हैं। वह नवीन समाज वैज्ञानिक विचारो और आदर्शों से पुष्टि पाता हुआ असख्य जनता के कल्याण को ही अपना ध्येय मानता है। यदि हम मे सत्य के प्रति वास्तविक उत्साह है तो हम अपने महान् उत्तरदायित्व की अवहेलना नही कर सकते। ' अपने मध्ययुग के सकीर्ण व्यक्तिवाद से हृदय को मुक्त कर सामूहिक जीवन की ओर अग्रसर होने का सदेश दे सकें। ऐतिहासिक दर्शन के एक दृष्टिकोण से विश्व जीवन को प्रगति देने के लिए प्रतिक्रिया भी अप्रत्यक्ष रूप से सहायक होती है। किन्तु उस दृष्टि से भी प्रतिक्रिया को हम प्रयोजन मात्र समझ सकते हैं, अपना इष्ट नही। इसलिए उसके शमन के हेतु, यद्यपि हम प्रतिक्रिया का अध्ययन करेंगे और उसकी चुनौती को भी स्वीकार करेंगे, किंतु हमारा निश्चित ध्येय प्रगति की शक्तियो को सक्रिय योग देना होगा।"[१]

---

१. 'रूपाभ', पृष्ठ ६३-६४

"रूपाभ का सम्पादकीय जिस 'खुरदुरे पथ' का आवाहन करता है उसके बीज विश्व जीवन मे पड चुके थे। वैज्ञानिक उन्नति, औद्योगिक क्राति, रूसी क्राति, प्रथम महायुद्ध, आसन्न द्वितीय महायुद्ध एव वर्गहीन समाज की स्थापना, आर्थिक-राजनीतिक सकट तथा सामाजिक वैषम्य के बोध ने योरोपीय बुद्धिजीवियो को जीवन की भीषणता और विषमता पर चिन्तन करने के लिए प्रेरित किया। सन् '३५ मे एक अतर्राष्ट्रीय सस्था 'प्रगतिशील लेखक सघ' (प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन) की स्थापना पेरिस मे हुई जिसका सभापतित्व मिस्टर ई० एम० फार्स्टर ने किया। इस सस्था से प्रेरणा ग्रहण कर मुल्कराज आनन्द, सज्जाद जहीर, भवानी भट्टाचार्य आदि भारतीय लेखको ने इसी वर्ष लन्दन मे 'भारतीय प्रगतिशील लेखक सघ' की स्थापना की तथा इसका प्रथम अधिवेशन ६-१० अप्रैल, '३६ को लखनऊ मे हुआ। सभापति पद से अपना भाषण समापन करते हुए मुशी प्रेमचन्द ने कहा, "जिन्हे धन-वैभव प्यारा है, साहित्य-मदिर मे उनके लिए स्थान नही है। यहाँ तो उन उपासको की जरूरत है जिन्होने सेवा को ही अपने जीवन की सार्थकता मान लिया हो, हम तो समाज का झण्डा लेकर चलने वाले सिपाही हैं ।"[1]

यह सयोग की ही बात है कि इसी वर्ष और इन्ही दिनो नेशनल काग्रेस की बैठक भी लखनऊ मे हुई। इसके अध्यक्षीय पद से बोलते हुए जवाहर लाल नेहरू ने समाजवादी सिद्धात को महत्त्व दिया।[2] ऐतिहासिक सत्य यह है कि सन् '३६ का भारत समाजवाद के जागरण का भारत था। सन् '३० के साथ ही सामाजिकता के जिस बोध ने जन्म ले लिया था वह सन् १६३३-३४ तक राष्ट्रीय साहित्यिक चेतना का अग बन गया। सन् '३६ के 'प्रगतिशील लेखक सघ' के अधिवेशन ने लेखको और बुद्धिजीवियो को साहित्य के प्रयोजन की ओर आकृष्ट किया। मार्च सन् '३७ के 'विशाल भारत' मे शिवदान सिंह चौहान का एक लेख 'भारत मे प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता' प्रकाशित हुआ

---

१. अमृत राय: 'कलम का सिपाही', पृष्ठ ६२१, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद: प्रथम संस्करण।

२. सन् '३६ में कम्युनिस्ट पार्टी नहीं बनी थी। वामपंथी प्रवृत्ति के सभी लोग कांग्रेस के अंदर थे। वास्तव में सन् '३४ में कांग्रेस के अंदर ही कांग्रेस समाजवादी दल की स्थापना हो चुकी थी जिसमें कम्युनिस्ट और रॉईस्ट सभी प्रवृत्तियों के वामपंथी साथ थे।

ओर इसके बाद अक्टूबर, १६४० के 'विशाल भारत' मे इलाचन्द्र जोशी का लेख, 'छायावाद का विनाश क्यो हुआ' छपा। सन् '३८ मे 'प्रगतिशील लेखक सघ' का द्वितीय अधिवेशन कलकत्ता मे हुआ जिसकी अध्यक्षता गुरुदेव टैगोर ने करनी स्वीकार कर ली थी। किंतु अस्वस्थ हो जाने के कारण वे अधिवेशन मे उपस्थित नही हो पाए, उनका लिखित भाषण पढ कर सुनाया गया।

विश्वव्यापी आदोलन एव जागरण से पत का मानस अछूता नही रह सका। इस सदर्भ मे पूरन चद्र जोशी का कहना है, "मुझे इस मनगढत किंतु बहु प्रचारित तथ्य का निराकरण करना आवश्यक प्रतीत होता है कि मुझसे प्रभावित हो जाने के कारण पत ने छायावाद की भूमि छोडकर समाजवाद को अपनाया और कम्यूनिज़्म की ओर झुके। उन दिनो समाजवाद वातावरण मे था। सुमित्रानन्दन ने इसे उतना ही अपनाया जितना मैने या अन्य जनो के साथ जवाहरलाल नेहरू ने। निर्धारित वर्ष के अदर स्वराज्य न प्राप्त कर सकने की हमारी असफलता, जिसे लोगो ने सहज विश्वास के साथ स्वीकार कर लिया था, और इसके समातर मे उन्ही दिनो जाराना बदी गृह एव रूस मे बदी अप्रसिद्ध लेनिन की विजय एक इतनी बडी वास्तविकता थी जिसे सरलता से कोई भी झुठला नही सकता था विशेषकर पत के समान सवेदनशील कवि अथवा उतने ही सवेदनशील समाजवादी राजनीतिज्ञ नेहरू।"

पत का मानवतावादी हृदय, विकासकामी व्यक्तित्व जो 'वीणा' की अबोधावस्था मे—

'तेरी आभा को पाकर मा,
जग का तिमिर त्रास हर दूँ।'
विश्व प्रेम का रुचिकर राग,
पर सेवा करने की आग,
इसको सध्या की लाली सी
मां ! न मद पड जाने दे,'

आदि की याचना करता है वह सन् '२५ में छायावाद की सीमाओं के प्रति प्रबुद्ध हो जाता है। 'पल्लव'[1] की 'छायाकाल' रचना जिसका रचना-

---

1. "पंत जी के संबंध में यह बात उल्लेखनीय है कि वे प्रारंभ से ही प्रगति के समर्थक रहे हैं, जीवन-संघर्ष से भागने की प्रवृत्ति उन पर अधिकार न

काल दिसम्बर, '२५ है स्पष्ट रूप से छायावादी स्वप्निल आशाऽकाक्षाओ को विदा दे देती है—

'स्वस्ति, जीवन के छाया-काल !
सुप्त स्वप्नों के सजग-सकाल !
... .
तुम्हारा मानस था सोच्छ्वास,
अलस-पलको मे स्वप्न-विलास
... ...
तुम्हारा जग था छाया शेष'

'गुजन' तथा 'ज्योत्स्ना' के चिंतन तथा भाव-पक्ष द्वारा पत ने 'छायावाद' के व्यक्तिनिष्ठ विचार, भाव और सौदर्य को मान्यता प्रदान की। 'युगात'[1] की प्रथम कविता 'द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र !' (फरवरी, '३४) उनके उस दृढ सुचिंतित परिवर्तन को लक्षित करती है जो छायावादी भावात्मक सौदर्य के साथ ही कोमल-कात पदावली का भी त्याग कर देता है। प्रकृति और सौदर्य को अब मानव-कल्याण का वाहक बनना है क्योकि कवि की एक मात्र प्रार्थना है—

'हो पल्लवित नवल मानवपन'
... ...
मैं उसका प्रेमी बनूँ, नाथ !
जिसमें मानव हित हो समान।'

पत का यह दृष्टिकोण उनके काव्य की दृष्टि से नवीन नही होने पर भी एक साहसिक किंतु स्वस्थ परिवर्तन का सूचक है। इसके साथ ही 'पाँच

कर सकी। 'पल्लव' में भी उन्होंने 'परिवर्तन' का स्वागत किया और 'गुंजन' में ····लोक कल्याण की भावना।"
शिववान सिंह चौहान : 'प्रगतिवाद', पृष्ठ ६२ : प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद : प्रथम संस्करण, १६४६

१. इलाचंद्र जोशी ने 'युगांत' से छायावाद का अंत तथा 'ग्राम्या' से प्रगतिवाद का अंत माना है।

कहानियाँ' (विशेषकर 'पानवाला' कहानी), 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' एव 'रूपाभ' का प्रकाशन, उसके प्रथम तथा द्वितीय अको के सपादकीय, और सन् '४२ मे प्रकाशित 'आधुनिक कवि भाग २' की भूमिका, अपने आप मे मूल्यवान् होते हुए, पत की काव्यगत मान्यताओ एव जीवन दृष्टि पर प्रकाश डालती हैं। पत के ही शब्दो मे, "मेरी जीव-दृष्टि का मोह एक प्रकार से छूटने लगा   मेरे हृदय की समस्त आशा-काक्षाए और सुख-स्वप्न अपने भीतर और बाहर किसी महान् चिरतन वास्तविकता का अग बन जाने के लिए लहरो की तरह, अज्ञात प्रयास की आकुलता मे, ऊबडूब करने लगे।'   मेरे 'पल्लव' काल की रचनाओ मे, तुलनात्मक दृष्टि से, मानसिक सघर्ष और हार्दिकता अधिक मिलती है, और बाद की रचनाओ मे आत्मोत्कर्ष और सामाजिक अभ्युदय की इच्छा।"[1]

'रूपाभ' प्रकाशन ने पत के प्रगतिकामी साहित्य और व्यक्तित्व को व्यापक सपर्क का अवसर प्रदान कर दिया। प्रयाग आने पर वे न केवल 'रूपाभ' के लिए सामग्री एकत्रित करते वरन् यहाँ की नवयुवक प्रतिभा, नए दिशा बोध से चमत्कृत प्रगतिशील लेखक एव प्रगतिशील लेखक सघ के सदस्यो के साथ मार्क्सवादी विचारधारा की, देश की प्राचीन सस्कृति एव दार्शनिक विरासत के अनुकूल, भारतीय भूमि के लिए उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता की चर्चा आत्मविश्वास पूर्वक करते। उस समय 'प्रगतिशील लेखक सघ', साम्यवादी दल के पूर्ण प्रभाव मे था। "बुद्धिजीवी पाश्चात्य शिक्षा और सस्कारो के कारण और रूसी क्राति की मोहनी में, उस विचार धारा से प्रभावित थे। साम्राज्यवादियो ने शिक्षा के माध्यम से हमे अपने अतीत से भटका दिया था। युवा लेखक ने इस आन्दोलन को साम्राज्यवादियो के निरकुश शासन से लडने का एक हथियार सा स्वीकार कर लिया। इसलिए आन्दोलन से सबधित लेखको के उत्तरदायित्व के बारे मे कई भ्रम उठ रहे थे।'[2]

प्रोफेसर रामप्रताप बहादुर के अनुसार पत प्रगतिवादी दृष्टिकोण से सहानुभूति तो रखते थे किंतु 'प्रगतिशील लेखक संघ' के वे सदस्य नही बने क्योकि इस 'सघ' की मूलभूत मान्यताए तब जनता के सम्मुख स्पष्ट नही थी, लोग इस बारे मे अधकार मे थे कि यह सचमुच मे ही साम्यवादी दल का अग

---

१. 'आधुनिक कवि भाग २' : नौवां संस्करण, पृष्ठ, ११ तथा १३,
२. पहाड़ी।

है या नही।[1] किंतु पत अपने प्रगतिकामी एवं समाजवादी विचारो तथा मित्रो, पूरन चद्र जोशी, नरेन्द्र शर्मा[2], शिवदान सिंह, रामप्रताप बहादुर, शमशेर, सज्जाद जहीर आदि, के कारण 'प्रगतिशील लेखक सघ' की गतिविधि मे रुचि लेने लगे थे, साथ ही उनकी यह भी हार्दिक इच्छा थी कि इस मरणोन्मुख पलायनवादी एव वैयक्तिक मुक्ति के देश मे स्वस्थ समाजवाद का प्रचार होना ही चाहिए। 'प्रगतिशील लेखक सघ' पत को अपने बीच पाकर गौरव भी अनुभव करता था। और इसीलिए जब पत की 'ग्राम्या' और 'युगवाणी' छपी तो एक स्वर से प्रगतिशील आलोचको ने उनका गुणगान किया। "यह इसलिए भी आवश्यक था कि मान्य साहित्यकारो से सहयोग मिल जाने पर 'प्रगतिशील लेखक सघ' साम्यवादी पार्टी का 'सास्कृतिक मच' है, यह भ्रम लोगो के मन से मिट जायगा। उस समय इस आन्दोलन से सभी शीर्ष साहित्यकारो, प्रोफेसरो तथा अन्य बुद्धजीवियो की सहानुभूति थी। १९४२ के 'भारत छोड़ो'

---

१. पत्र (९-१०-६९)।

२. २० मार्च, १९२९ को पूरन चंद्र जोशी 'मेरठ षड्यंत्रकारियों' के साथ पकड़े गए थे। सन '३३ के अंत मे वे जेल से छूटे किंतु तभी कानपुर मिल हड़ताल के कारण वे फिर से बंदी बना दिए गए। इस बार जेल से बाहर आने पर उन्हे सालो तक कलकत्ता में अज्ञातवास करना पड़ा। अवसर मिलने पर वे वेश बदल कर एक-दो बार अपने काम से इलाहाबाद आए। पंत तथा अपने अन्य मित्रो से भी मिले। जोशी का कहना है कि जब वे कलकत्ता में थे तो 'प्र० ले० सं०' की बैठकों के बारे में सज्जाद जहीर ने उन्हे सूचना देते हुए लिखा, "पंत इनमें अभिरुचि लेते हैं। साम्राज्यवाद विरोधी राष्ट्रीय संघर्ष एवं विश्वव्यापी फ़ासिस्त विरोध पर जब विवाद छिड़ता है तो वे एक लेखक और कवि के रूप में सुन्न सहायक होते है।" और बाद को जोशी से भेट होने पर सज्जाद जहीर ने कहा, "पंत तुम्हेयाद करते हैं, अपना स्नेह भेजते है।" फिर कुछ रुक कर कहा, "उनकी राय अच्छी और विवेकपूर्ण होती है।"
श्री जोशी के ही कारण पंत ने सालों तक चंदा भी दिया है—किंतु इस चंदे का पंत के मन में पार्टी से कोई संबंध नहीं था—"मित्र और वह भी पूरन-सा निश्छल व्यक्ति! उसकी बात टाली नही जा सकती थी। जब भी वह लोक कार्य के लिए रुपए मांगता अथवा मंगवाता तो देने ही होते। पूरन तो पूरन, कोई और भी मांगता तो देता ही।"

आन्दोलन मे जब 'प्रगतिशील लेखक सघ' ने साम्यवादी दल की नीति का पूर्ण रूप से समर्थन किया, तो भारतीय विचार धारा और राष्ट्रीय चेतना से प्रभावित लेखको ने इससे अपना सबध विच्छेद कर लिया।

"१९४२ से १९४५ तक के भटकाव के बाद 'सघ' के महारथियो ने सन् १९४६ से अपने समर्थक और विरोधी लेखको को दो अलग-अलग खेमो मे बांट दिया। वे अपने विरोधियो को 'दक्षिण पथी' कह कर उनकी मनमानी आलोचना करने लगे तथा १९४८ मे इसने उग्र रूप ले लिया।"[१]

पत के उन्मुक्त प्रगतिकामी रूप, सुदरम् और शिवम् के सयोजन ने, साहित्य जगत् मे एक बवण्डर उपस्थित कर दिया। रस्सी की कशाकशी! कौन अपनी ओर उन्हे खीच सकता है—प्रगतिवाद या छायावाद ताकि जो 'वाद' उन्हे खीच ले उसी की दुन्दुभी बजा दी जाए। कुछ काल के लिए लगा कि प्रगतिवादी जीत गए है और पत के छायावाद-प्रेमियो को कहना पड़ा, "जहाँ तक प्रगति-काव्य का सबध है, हिन्दी का शेली हिन्दी मे आता-आता ही रह गया।"[२] इसी स्वर मे बालकृष्ण राव ने कहा, "पहिली बार जो मुझे धक्का लगा वह 'ग्राम्या' और 'युगवाणी' देखकर। इन दोनो मे मुझे 'कला' का अत्यधिक प्रदर्शन लगा। 'धोबियो का नृत्य' रचना वस्तुपरक दृष्टि से अच्छी है। फिर भी लगता है यह विश्वसनीय कम है, इसमे कला अधिक है। इसके पूर्व की पत की रचनाओ मे कवि और व्यक्तित्व 'वागर्थ' की भांति जुडे हैं।"[३]

पंत के इस नए मोड का प्रगतिवादियों ने स्वागत किया, "प्रगतिवादी आंदोलन कुछ पहिले चल चुका था। उनको अपने साथ सम्मिलित करने के लिए एक बडे नाम की जरूरत थी। 'युगवाणी' मे 'मार्क्स के प्रति,' 'साम्राज्य-वाद,' 'धनपति,' 'मध्यवर्ग' 'कृषक,' 'श्रमजीवी, 'क्राति' आदि रचनाए देखकर वे पत जी की ओर लपके और उन्हें प्रगतिवादी आदोलन का नेता घोषित करने लगे। यह तो उन्हे थोडा बाद को पता लगा कि पंत जी मार्क्सवाद को बिना अध्यात्मवाद के स्वीकार नही कर सकते थे।[४] पर तब तक गुड भरी हँडिया

---

१. पहाड़ी

२. नन्ददुलारे बाजपेयी : 'आधुनिक साहित्य', पृ० ३३ भारती भण्डार, लीडर प्रेस इलाहाबाद, प्रथम संस्करण।

३ भेंट-वार्ता, १९-९-६९

४. तुलना "प्रगतिवादी दृष्टि से पंत जी ने जो कुछ भी लिखा है उसकी मूल चेतना कवि के आदर्शवादी विचारधारा में निहित है।" विनय कुमार

गले मे अटक चुकी थी, न उसे निगलते बने, न उसे उगलते बने। उनकी पुरानी कविता के प्रेमी कह रहे थे कि पत जी का ह्रास हो रहा है, प्रगतिशील कह रहे थे कि उनका विकास हो रहा है और वे बहुत दिनो तक आशा लगाए रहे कि वे धीरे-धीरे अध्यात्म-वध्यात्मभूल विशुद्ध साम्यवादी ब्रान्ड के प्रगतिवादी बन जायेंगे।"[1]

प्रगतिशील आलोचक प्रकाशचद्र गुप्त के अनुसार, "प्रेमचन्द के बाद श्री सुमित्रानदन पत का नाम इस सबध (प्रगतिशील लेखक सघ) मे उल्लेखनीय है। सामाजिक व्यथा के प्रति पत सचेत थे, यह उनकी 'परिवर्तन' आदि कविताओ से विदित था। प्रगतिशील विचारधारा से नाता जोड कर पत जी ने अधिक वैज्ञानिक दृष्टि विकसित की।"[2] "'युगवाणी' और 'ग्राम्या' मे श्री सुमित्रानदन पत की कविता का विकास एकदम नये ढग का हुआ है। आधुनिक हिन्दी-काव्य-साहित्य मे यह विकास बेजोड है।"[3] "पत ने रहस्यवाद-छायावाद की शृखलाए तोड दी है और वे कदाचित् उन्हे फिर कभी धारण नही कर सकेंगे क्योंकि आज उनका मन सचेत है। रहा भाषा का प्रश्न · 'जन-मन के भावो के गीत यान' बनाने के लिए उन्हे सरल, सुबोध भाषा का विकास करना ही अपेक्षित है।"[4]

अपने इन प्रेमियो-आलोचको के बीच पत सम भाव से प्रसन्न थे—उन्होने न तो छायावाद से सबध विच्छेद किया था और न प्रगतिवाद को ही उसके नए अर्थ (कम्युनिस्ट पार्टी मेनिफेस्टो के रूप) मे स्वीकारा था। पत की प्रगतिकामी काव्य-दृष्टि उन्ही के व्यक्तित्व का विकसित रूप थी, यह उन्हे एकाएक कही बाहर से प्राप्त नही हुई थी। अतः इसने उनके अदर किसी हलचल को उत्पन्न नही किया, सब कुछ पूर्ववत था, अतर्निहित बीज कालक्रम मे पौधे से वृक्ष हो गया था, सौकुमार्य परुष हो गया, कोमल-कात पदावलि रूपी फूल फल मे परिणत होकर धरती की ओर झुकने लगे थे।

शर्मा : पंत की काव्य-साधना,' पृ० १३५। श्री पी० सी० जोशी का भी कहना है कि पत ने सदैव ही आदर्शवाद के भीतर से समाजवाद को ग्रहण करने का प्रयास किया है।

१. बच्चन : 'कवियो में सौम्य संत, पृ० १८१

२. 'साहित्य धारा', प्रथम संस्करण, पृ० २१

३. शिवदान सिंह चौहान 'प्रगतिवाद' पृ० ५१ : प्रथम संस्करण १९४६, प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद।

४. वही पृ० ९६

"जिस प्रकार पतजी एक ओर एस्थीट हुए, उसी प्रकार दूसरी ओर पंत जी मार्क्सवादी विचारो के प्रभाव मे आए। वास्तव के उसके अपने रूपाकार से मोहित पत, वास्तव ही का तकाजा भी सुन सकते थे– अन्यमनस्क होकर नही, तन्मनस्क होकर। ' वास्तव का जो तकाजा था उसे पत ने पूरा करना चाहा। पत जी की सहज कवि सुलभ सहानुभूति थी जनगण के प्रति। पत जी का राष्ट्रवाद इसी प्रकार प्रकट हुआ। 'भारत माता ग्रामवासिनी' से लेकर तो आगे 'तुम हँसते-हँसते घृणा बन गए मन मे, जन-मगल हित हे' तक जो जनोन्मुख भावनाएँ पत जी ने प्रकट की, वे उनकी सहज सहानुभूति ही का विस्तार थी। वास्तव की सवेदना मे पत ने अपनी ओर से कुछ नही मिलाया, उसका कोई रासायनिक घोल तैयार नही किया, उसका कोई मन' पूर्वक सपादन-सशोधन नही किया' । उन्होने निर्मम और मुक्त भाव से वे सवेदनाएँ ग्रहण की, और इस प्रकार अपने हृदय का विस्तार किया। फलतः वे कई दार्शनिक पूर्वग्रहो से बच गए। या यो कहिए कि वास्तव के प्रति उनकी सहानुभूति के मार्ग मे आने लायक, उनके पास कोई दार्शनिक सभार नही था। पतजी का अद्वैतवादी रहस्य, मूलतः, एक दार्शनिक भावुकता का ही रूप हो सकता था। वास्तव से पत जी का जो हार्दिक सम्बन्ध था—वह दार्शनिक कुठाओ से रहित था। फलत वे मुक्त-मन और मुक्त-हृदय होकर, वास्तव से समागम कर सके। इसीलिए, मार्क्सवाद का पथ उनके लिए ऋजु पथ था। पत जी मार्क्सवाद के प्रति बौद्धिक ढग से आकर्षित नही हुए, वरन् सवेदनात्मक मार्ग से चलकर अर्थात् भावानुभूति द्वारा आकर्षित हुए। भौतिक जीवन का पक्ष मार्क्सवाद द्वारा और अन्तर्जीवन का पक्ष उच्च नैतिक—आध्यात्मिक गुणो द्वारा—अध्यात्मवाद द्वारा निष्कण्टक और समृद्ध होगा, ऐसा उनका विश्वास रहा आया। पतजी का अध्यात्मवाद वस्तुतः आध्यात्मिक-गुणसम्पन्नतावाद है, उच्च मानवीय गुणसम्पन्नतावाद है। वह बौद्धिक दार्शनिक ज्ञानव्यवस्था का कोई शिकजा नहीं है। उनका मार्क्सवाद जनगण के प्रति उनकी सहज सहानुभूति ही का वास्तववादी विस्तार है।"[१] अथवा शिवदान सिंह चौहान के शब्दो मे "पत जी ही ऐसे युग द्रष्टा विचारक हैं, जिन्होने मार्क्सवादी विचार

---

१. मुक्तिबोध : 'नयी कविता का अत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध', पृ० ७९-८०, विश्व भारती प्रकाशन, नागपुर : प्रथम संस्करण, १९६४

दर्शन की सीमाओ को उस समय ही देख लिया था, जब कि उसके नाम से चन्द इने-गिने व्यक्ति ही इस देश मे परिचित थे। पत जी का नाटक 'ज्योत्स्ना' इसका प्रमाण है। आज उस नाटक को लिखे लगभग तीस वर्ष हो गए। साथ ही उन्होने उस समय यह अनुभव कर लिया था कि भौतिकवाद (मार्क्सवाद) और भारतीय अध्यात्म-दर्शन का समन्वय जरूरी है। यह समन्वय किस रूप मे हो, इसकी रूपरेखा उनके 'नूतन काव्य और दर्शन' मे मिलती है। यह आवश्यक नही है कि हम उनकी प्रस्तुत की गई रूपरेखा से पूर्णत. सहमत ही हो, लेकिन विचार क्षेत्र मे उन्होने इतना साहसिक कार्य किया है, यह अपने आप मे अभिनन्दनीय और हमारी कृतज्ञता की अपेक्षा रखता है। मार्क्सवाद और मार्क्सवादियो की जिन त्रुटियो या सकीर्णताओ की वे आरम्भ से ही आलोचना करते आए है, उनकी आलोचना (उनसे भी अधिक कटु शब्दो मे) अब स्वय उदारचेता मार्क्सवादी करने लगे हैं। तो फिर इस आलोचना के कारण उन्हे प्रतिक्रियावादी घोषित करना या मार्क्सवाद-विरोधी पुकारना उचित है या इसके लिए मार्क्सवादियो को उनका कृतज्ञ होना चाहिए। उन्होने (पी० सी० जोशी) अन्य साथियो की सकीर्णता पर क्षोभ प्रकट करते हुए कहा कि 'मार्क्सवाद एक मशाल है रोशनी फैलाने के लिए, हमारा दुर्भाग्य है कि 'हम' अँधेरा फैलाने के लिए उसका इस्तेमाल करते है।' मैंने कहा कि 'मार्क्सवाद एक मशाल है, किंतु 'एकमात्र' नही कि केवल उसकी रोशनी मे ही हमे मनुष्य के समस्त इतिहास, सस्कृति और ज्ञान को देखना-परखना चाहिए। यह एक भ्राति है। यह भ्राति ही हमे सकीर्ण बनाती है। विश्व के महान विचारकों की पक्ति मे मार्क्स भी एक महान् सत्यान्वेषी विचारक हैं, लेकिन यह समझ लेना कि वह त्रिकालदर्शी थे और उनके साथ ही सत्यान्वेषण की प्रक्रिया समाप्त हो गई, सर्वथा ग़लत है। स्वय मार्क्स ने अपने द्वद्वात्मक भौतिकवाद को एक प्रणाली (मेथड) कहा था''' 'सत्यान्वेषण की प्रक्रिया बिना पूर्वग्रहो के निर्बन्ध जारी रहनी चाहिए।' '''जरूरी है कि मानवीय जीवन का नियमन करने वाला सिद्धात इतना व्यापक हो कि उसमे मनुष्य की भौतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओ मे से किसी की उपेक्षा न हो। एक विचारक के रूप मे पत जी की यह महानता है कि वे मानव जीवन की सयुक्त आवश्यकता को देख सके हैं। पत जी ने 'मार्क्सवाद' को त्यागा नही है, वे उसे 'समतल विकास' के लिए जरूरी समझते है, अर्थात् एक शोषण-मुक्त समृद्ध समाज के निर्माण के लिए संभव है कि एक-आध शताब्दी मे यह 'समतल-विकास' पूरा हो जाय।

इस बीच आध्यात्मिक विकास की प्रक्रिया भी लगातार जारी न रही, और आज की ही तरह उसकी उपेक्षा होती रही तो उसके बाद ? क्या मनुष्य यत्र नही बन जायेगा या यत्रो का दास ? उनके जैसे सवेदनशील, युगद्रष्टा मनीषी-विचारक के मन मे ऐसी चिता का उत्पन्न होना, सहज-स्वाभाविक है। पत जी टी० एस० इलियट आदि की कोटि के विचारक नही है, जो केवल वर्तमान की ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियो को देखते है और उन्हे ज्यो का त्यो अकित कर देते है। पंत जी सही अर्थों मे प्रगतिवादी विचारक हैं, क्योकि उनके काव्य मे 'प्रगति-भावना' ने ही आदि से अत तक अभिव्यक्ति पायी है।"[1]

इसमे सदेह नही कि 'प्रगतिशील लेखक सघ' ने अपने सन् '३६ तथा सन् '३८ के अधिवेशनो द्वारा प्रेमचद और रवीन्द्रनाथ का आशीर्वाद प्राप्त करने के साथ ही अनेक लेखको का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। देश की राजनीतिक-सामाजिक स्थिति भी इसके अनुकूल थी। यही मुख्य कारण था कि कालक्रम मे कम्युनिस्ट लेखको के अतिरिक्त अन्य लेखक भी इसके सदस्य एव इससे सहानुभूति रखने वाले बन गए।[2] किंतु साथ ही ये लोग यह जानने के इच्छुक थे कि 'प्र० ले० स०' कम्युनिस्ट पार्टी का मच तो नही है क्योकि इस विषय मे 'प्र० ले० स०' अपनी निश्चित नीति घोषित नही कर रहा था। वैसे पत्र-पत्रिकाओ मे यह प्रकाशित हो रहा था कि 'प्र० ले० स०' कम्युनिस्ट पार्टी का सास्कृतिक मच है।

---

१. 'पंत-'काव्य के मूल्यांकन की समस्याएँ' : अप्रकाशित लेख।

२. रामकुमार वर्मा सन् '३८ में 'प्र० ले० सं०' के संस्थापक सदस्य बन गए। अज्ञेय, नरेन्द्र शर्मा, श्रीपाल सिंह क्षेम, धर्मवीर भारती, जगदीश गुप्त, लक्ष्मीकांत वर्मा, गंगा प्रसाद पांडे, फिराक आदि 'प्र०ले०सं०' की बैठकों में भाग लेते थे। पत इस अवधि में मुख्यतः इलाहाबाद से बाहर ही रहे, किंतु जब भी इलाहाबाद आते, बैठकों में भाग लेते। सन् १९३८-४० में पंत कालाकाकर में थे। पर वे इलाहाबाद भी आते रहते थे। फिर लगभग सात वर्षों तक वे इलाहाबाद से बाहर ही रहे। "इन सात वर्षों (१९४०-४७) मे प्रगतिवादी ही सबसे अधिक मुखर रहे। पंत जी प्रायः साहित्य के सक्रिय क्षेत्रों से दूर रहे—या तो उत्तराखण्ड में, या सुदूर दक्षिण में।" 'कवियों में सौम्य संत' पृ० १८२
सन् '४२ में पंत चार-पांच महीने इलाहाबाद बच्चन जी के साथ रहे।

सन् '४२ में रूस के मित्र-राष्ट्रो की ओर हो जाने के कारण कम्युनिस्ट पार्टी ने द्वितीय विश्वयुद्ध (साम्राज्यवादी युद्ध, १ सितम्बर '३९) को लोकयुद्ध (People's war) घोषित कर दिया तथा 'जनयुग' के बदले अब वह 'लोकयुद्ध' नामक पत्र भी निकालने लगी।[1] इसी बीच 'प्र० ले० स०' के मच से फासिस्ट आक्रमण के विरुद्ध भारतीय लेखको का घोषणा-पत्र भी प्रकाशित हो गया। उन लेखको ने जो 'प्र० ले० स०' से उसके प्रगतिकामी एवं जन-मगलकामी स्वरूप के कारण, न कि कम्युनिस्ट होने के कारण, सहानुभूति रखते थे सन् '४२ के इस घोषणा-पत्र के परिणाम स्वरूप अपना मतभेद व्यक्त किया। बच्चन जी से जब 'लोकयुद्ध' खरीदने के लिए कहा गया तो उन्होंने न केवल दो आने के इस पत्र को लेना अस्वीकार किया वरन् उनकी प्रतिक्रिया भी तीव्र हो उठी। उन्होने कहा—मजदूरो और कार्यकर्ताओ को गोलिया लगी है। इसे आप किस आधार पर लोकयुद्ध कहते है ? पत ने कहा कि हमारी एक राष्ट्रीयता है। कल तक जिस युद्ध को 'प्र० ले० स०' साम्राज्यवादी युद्ध कह रहा था उसे अब किस रूप मे 'लोकयुद्ध' कहा जा रहा है। इसी भाँति नरेन्द्र जी आदि साहित्यकारो ने भी अपने मतभेदो को अभिव्यक्ति दी। अज्ञेय जी भी जो अभी तक 'प्र० ले० स०' की बैठको में भाग लते थे, उससे विरक्त हो गए। सन् १९४३ मे 'तार सप्तक'[2] के प्रथम भाग का सम्पादन करने के साथ वे सेना मे भर्ती हो गए।[3] स्पष्ट ही 'प्र० ले० स०' के बारे मे लेखको के सद्भाव टूटने लगे और परिणामस्वरूप सन् '४२ मे 'प्र० ले० स०' के सदस्यो तथा उससे सहानुभूति रखने वाले लेखको के सयुक्त परिवार मे मनोमालिन्य एव मतभेद का बीजारोपण हो गया। किन्तु तब देश की स्थिति ऐसी थी कि इस सयुक्त परिवार मे विस्फोट

---

१ कम्युनिस्ट पार्टी से संपृक्त लेखक सुभाषचंद्र के विरुद्ध कविता लिखकर उन्हे देशद्रोही कहने लगे।

२. छायावादोत्तर काल के बाद जो काव्य-धारा (प्रयोगवाद) हिन्दी मे प्रवाहित हुई उसका पहिला प्रतिनिधि संकलन 'तार सप्तक' प्रथम भाग था। नागार्जुन जी के अनुसार कई वर्ष पहिले से साहित्यकारो के फासिस्ट विरोधी जिस मंच की तैयारी हो रही थी उसके प्रस्फुटन के रूप में भी 'तार सप्तक' के प्रकाशन को समझा जा सकता है।

३ १९४३-१९४६

नही हो पाया। मनोमालिन्य को अपने अंदर दबाए लेखक आपस मे मिलते एव कार्य करते रहते थे।

द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण सपूर्ण देश सघर्षरत था। ब्रिटिश सरकार ने भारत की ओर से भी युद्ध घोषित कर दिया था। भारतीय नेता और भारतीय जनता इससे क्षुब्ध हो गई थी। काग्रेसी मन्त्रिमण्डल ने त्याग-पत्र दे दिया था। और अगस्त '४२ मे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी की जो बैठक बम्बई मे हुई उसमे 'भारत छोडो' प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। जब नेताओ ने देखा कि उचित समझौता के नाम पर ब्रिटिश सरकार धोखा ही दे रही है अथवा उचित समझौता करना ही नही चाहती तो उनके पास 'भारत छोडो' आदोलन को क्रियान्वित करने के अतिरिक्त और कोई उपाय न था। इसका परिणाम भी स्पष्ट था—सभी बडे नेताओ को बदी बना दिया गया एव स्वतत्रता की माग करने वालो को अमानुषीय यातनाएँ सहनी पडी।

'भारत छोडो' आदोलन ने एक ओर लोगो की राष्ट्रीय चेतना को जाग्रत कर उन्हे 'करो या मरो' का अमोघ मत्र दे दिया और दूसरी ओर देश ब्रिटिश सरकार के दानवी दमन तथा निर्मम अत्याचारो से कराह उठा। इस बीच ब्रिटिश सरकार ने भारत के विभिन्न भाषा के प्रगतिशील बदी कम्युनिस्टो को छाँट-छाँट कर छोड दिया।

सन् '४२ के अमानवीय दमन ने पत को 'लोकायतन' की प्रेरणा दी और उन्होंने इसकी विज्ञप्ति भी कर दी। इस विज्ञप्ति के बारे मे बच्चन जी का कथन है, "पत जी इस समय सामाजिक सास्कृतिक विकास की एक स्वतत्र योजना बना रहे थे। 'लोकायतन' के नाम से इसकी विज्ञप्ति भी कर दी गई थी।·· ·· सौभाग्य से उन दिनो पत जी मेरे साथ ही निवास कर रहे थे। पत जी की इस विज्ञप्ति से प्रगतिवादियो के कान खडे हुए और वे आकर घटो उनसे सैद्धांतिक आधार पर वाद विवाद करते। विशेष रूप से श्री अमृतराय जी आते जो उन दिनो युनिवर्सिटी मे पढते थे।·· · मैं प्रायः तटस्थ श्रोता की भाँति इन बहस-मुबाहसो को सुनता। न प्रगतिवादी पत जी को अपदस्थ कर सके, न पत जी प्रगतिवादियो को आश्वस्त कर सके। वह अवस्था आ गई जिसको अग्रेजी मे 'पार्टिंग ऑफ दी वेज़' कहते है—'तुम अपनी राह जाओ, मैं अपनी राह जाऊँ।"[१]

---

१. 'कवियों में सौम्य संत', पृ० १८१-१८२

ब्रिटिश सरकार के भीषण दमन से युक्त हो गया सन् '४३ का बगाल का अकाल, विश्व-इतिहास की वह हृदय विदारक घटना जिसमे चालीस लाख मनुष्य मिट्टी मे मिल गए। बगाल के अकाल मे 'प्र० ले० स०' का परिवार एक होकर चदा एकत्रित करने तथा 'राशन कार्ड' बाँटने लगा। जो साहित्यकार 'लोकयुद्ध' की बात पर 'प्र० ले० स०' की परिधि से अलग हो गए थे वे भी अपनी मानवीय दृष्टि के कारण सक्रिय सहानुभूति देने लगे।[1] किंतु यह एकता बाहरी थी, हृदय फट चुके थे, प्रगतिशील सगठन शिथिल पड गया था। अकाल के बाद ही महामारियो के प्रकोप ने देश की जनता और बुद्धिजीवियो को दु.ख दग्ध एव अवसन्न कर दिया। इसके पश्चात् सन् '४५ मे युद्ध की समाप्ति के साथ भारतवासियो ने अनुभव किया कि उनका देश अधिक निर्धन, दरिद्र और हतप्रभ हो गया है। और पूर्णाहुति के रूप मे मि० जिन्ना द्वारा प्रस्तावित १६ अगस्त, १९४६ का दिन और उसके बाद के वे दिन आए जो नोआखाली मे व्यापक नर सहार के पर्यायवाची है। नोआखाली के परिणामस्वरूप बिहार का साप्रदायिक दगा देश का अहित ही अहित।

सन् १९४५-४७ मे कम्युनिस्ट प्रगतिशीलो ने मुस्लिम लीग का द्विराष्ट्रवादी सिद्धात अक्षरशः मान लिया। तब एक बार लोग फिर से भडक गए। १९४६ मे नेताओ के जेल से छूटने पर बम्बई के खुले अधिवेशन मे नेहरू ने कम्युनिस्ट पार्टी को उसके अराष्ट्रीय स्वरूप के कारण गद्दार घोषित कर दिया। समाजवादी विचारधारा वाले साहित्यकारो ने, जो जेल से छूटकर बाहर आ गए थे, अपने आदर्शानुसार साहित्यकारो का एक अलग व्यापक मच गठित करने का प्रयास किया। इस मच को आचार्य नरेन्द्र देव, जयप्रकाश और लोहिया जैसे प्रख्यात समाजवादी नेताओ का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। आगे चलकर उन्होने स्वतत्र रूप से एक मासिक पत्र निकाला, 'जनवाणी'।

इन स्थितियों के बीच कम्युनिस्ट पार्टी के अदर सदैव से वर्तमान दो दल सन् '४६ मे अधिक स्पष्ट रूप से सम्मुख आए—उग्र दल और नम्र दल अथवा

---

१. महादेवी वर्मा ने 'बंग-दर्शन' काव्य-संग्रह का सम्पादन किया जिसका संपादकीय साहित्यकारों के सम्मुख एक जीवंत चुनौती प्रस्तुत करता है। बच्चन ने 'बंगाल का काल' नामक अपना काव्य-संग्रह लिखा। इनके अतिरिक्त निराला, सुमन, रांगेय राघव, रामविलास शर्मा आदि ने अकाल पर कविताएँ लिखीं एवं अमृत लाल नागर, पहाड़ी आदि अन्य लेखकों ने भी कहानियाँ, उपन्यास तथा नाटक लिखे।

रणदिवे दल और जोशी दल । यह माना जाता था कि जोशी दल के अनुसार 'प्र० ले० स०' एक जन सगठन है जिसका अपना अनुशासन है और जो स्वतत्र लोकतात्रिक ढग से काम कर सकता है । कम्युनिस्ट भी इसके सदस्य है किंतु वे अपने कार्य द्वारा जन सगठन मे ही सहायक होगे । रणदिवे दल के नाम पर कट्टरता एव सकीर्णता को महत्त्व दिया गया, 'प्र० ले० स०' को कम्युनिस्ट पार्टी का मच मात्र माना गया । कम्युनिस्ट पार्टी के प्रमुख नेताओं और उससे सहानुभूति रखने वालो की सहायता से कलकत्ता मे वह प्रस्ताव गुप्त एव आतरिक रूप से स्वीकार कर लिया जिसके अनुसार 'प्र० ले० स' कम्युनिस्ट पार्टी का सास्कृतिक मच है ।

सन् '४७ मे नरेन्द्र जी की शादी के अवसर पर पत बम्बई गए और लगभग दो माह वहाँ रहे । इस बीच 'प्र० ले० स०' की एक गोष्ठी (सभवत· मई '४७) मे उन्होने स्पष्टतः कहा, "यदि 'प्र०ले०स०' कम्युनिस्ट पार्टी का सास्कृतिक मच है तो हम वामपथी विचारधारा से सहानुभूति रखने वाले लेखक कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य न होने के कारण उसके अग कैसे रह सकते है ।" इस पर उसी समय पार्टी के कुछ सदस्यो ने कहा कि 'प्र०ले०स०' स्वतत्र वामपथी विचार-धारा के लेखको का सघ है, उसका कम्युनिस्ट पार्टी से कोई सम्बन्ध नही है । "मैने तब उनसे कहा—चूँकि आजकल अनेक लोग इस प्रकार की बाते कहते हैं और पत्र-पत्रिकाओ मे भी ऐसी भ्रात धारणाएँ घोषित की जा रही हैं इसलिए अच्छा हो कि आप 'लोकयुद्ध' मे यह घोषित कर दे कि 'प्र०ले०स०' कम्युनिस्ट पार्टी का सास्कृतिक मच नही है । किंतु 'लोकयुद्ध' मे यह देने से पार्टी के सदस्यो ने अस्वीकार कर दिया । इस पर हममे से कुछ लोगो ने 'प्र०ले०स' से अपना सम्बन्ध विच्छेद करने की इच्छा प्रकट की ।"[1]

कम्युनिस्ट पार्टी के लोग पत के इस भाति सबध-विच्छेद को सरलतापूर्वक एव चुपचाप स्वीकार नही कर पाए । उनके विरुद्ध दो बातें थी जिनके कारण उग्र दल क्रुद्ध हो उठा—एक वे महत्त्वपूर्ण एव प्रतिष्ठित लेखक थे तथा दो वे जोशी दल से सहानुभूति रखते थे । इन दो दुर्दमनीय आक्षेपो को लेकर उग्र दल बौखला उठा । उसकी दृष्टि मे यह न केवल शक्तिशाली लेखक द्वारा धोखा देना था वरन् यह जोशी दल की विजय थी । जहाँ तक पंत का प्रश्न था वे न जोशी दल के थे और न रणदिवे दल के । उन्होंने अपना सदैव स्वतंत्र मत रखा है । समाजवाद एवं मार्क्सवाद को वे भारतीय अध्यात्म के

---

१. 'भेंट-वार्ता', २६१०-१६-६६

भीतर से ही स्वीकार करते है अथवा उन्होने सदैव मार्क्सवाद को एक विशिष्ट सीमा के अदर ही अपनाया है। अपने तथा पत के दृष्टिकोण की चर्चा करते हुए पूरन चद जोशी ने बताया, "१६२६ के अत तक मैंने मार्क्स-लेनिनवाद को स्वीकार कर लिया था और पहिले की भाँति इन दिनो भी मैं अपने विचारों को सुमित्रानदन के सम्मुख गभीरतापूर्वक प्रस्तुत करता था किंतु वह चुपचाप सुन तो लेता था (यह उसका सदैव का गुण है) पर अपना निजी मत रखता था ·· मुझमे और उसमे यह अतर था कि मैंने वातावरण मे सद्य· स्पदित मार्क्स-लेनिनवाद को गहराई और सपूर्णता से स्वाकार कर लिया था। उन दिनो इलाहाबाद तथा उत्तर प्रदेश का मैं पहिला पक्का कम्युनिस्ट बन गया था और नए रगरूट के उत्साह तथा युवकोचित हठधर्मिता के साथ मै अनत जिज्ञासु किंतु धैर्यवान एव शात सुमित्रानदन से देर तक बाते करता। वह मेरी बाते खुले मन से सुनता किंतु अपना भी स्पष्ट अभिमत रखता। हमारे समाप्त न होने वाले विवादो का निष्कर्ष यही निकलता कि वह यह तो स्वीकार कर लेता कि मार्क्स-लेनिनवाद मे साम्राज्य-विरोधी संघर्ष के लिए पर्याप्त प्रमाण होने के साथ ही एक सामाजिक व्यवस्था को भी सगठित कर सकने की क्षमता है, किंतु इन बातो के अतिरिक्त वह मानता था कि भौतिक जगत के परे अनेक वस्तुएँ और सत्य, आध्यात्मिक और अतीन्द्रिय, ऐसे है जिन्हे भारतीय दार्शनिक परम्परा ही प्रतिबिंबित करती है। तब और आज भी हम दोनो के बीच यह स्थिति अथवा अतर वर्तमान है। सुमित्रानदन ने अपना शेष जीवन समाजवादी विचारो को भारतीय आदर्शवादी दर्शन के साथ सयोजित करने मे व्यतीत किया और मैंने मार्क्स-लेनिनवाद के वैज्ञानिक समाजवादी विचारो का भारतीय वास्तविकता के अनुरूप प्रयोग करने के प्रयत्न मे। मैं मानता हूँ वह मुझसे अधिक सफल रहा है किंतु हमारी भ्रातृत्व-पूर्ण प्रतियोगिता अभी समाप्त नही हुई है।"

पत जोशी दल के इस अर्थ मे कदापि नही है कि वे कम्युनिस्ट है वरन् इस अर्थ मे कि जोशी उनके अच्छे मित्र हैं, दोनो ही एक दूसरे को हृदय से प्यार करते हैं।[1] जोशी यदि किसी और दल के भी होते तो भी पत उनके जीवन एव कार्यक्रमो मे रुचि लेते और उन्हे चदा देते, चदा पंत सदैव ही व्यक्तिगत स्तर पर दिया करते हैं। इस बात की चर्चा करते हुए पहाडी जी

---

१. **अभी हाल में जब जोशी से पंत के व्यक्तित्व के बारे में पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया**—"······and meet your demand, which

का कहना है, "चदा देना पतजी के लिए कोई विशेष बात नही है। प्रकाशचन्द्र गुप्त या मैं आज चाहे उनसे चदा वसूल कर सकते हैं। किंतु यह वे मित्र एव परिचित के नाते ही देंगे। पतजी का यह गुण है कि वे राजनीति से अधिक मानवता पर विश्वास करते है, मुझे सदा ही बडे भाई के समान उनका स्नेह मिला है।" पंत प्रगतिकामी रहे है, जन-कल्याण एव मानवतावादी रहे है। इसी अर्थ मे वे प्रगतिशील है न कि मार्क्सवादी अर्थ मे। कम्युनिस्ट पार्टी के सास्कृतिच मच 'प्र०ले०स०' से जब उन्होने अपना सम्बन्ध-विच्छेद किया तो यह स्पष्ट ही सकुचित प्रगतिवाद एव 'कुत्सित समाजवाद' पर एक करारा प्रहार था जिसे 'ग्राम्या' के उपासक प्रगतिवादी अथवा कम्युनिस्ट सह नही पाए। रणदिवे दल मे, वैसे, उस समय पत के मित्र लोग ही—नेमीचद्र जैन, रागेव राघव, पहाडी, रामविलास शर्मा, एहतिशाम हुसेन, अलीम, सज्जाद जहीर, नरोत्तम नागर आदि थे। किंतु पार्टी का अनुशासन तो अनुशासन ही है, उग्र दल का अनुशासन उस पर लोक मान्यता एव प्रतिष्ठा की बात ? एक मान्य साहित्यकार द्वारा खुली भर्त्सना ! यद्यपि व्यक्तिगत स्तर पर किसी को पत के व्यक्तित्व एव स्वभाव से कोई शिकायत नही थी। "पत हमारे बहुत समीप थे, सरल-निश्छल व्यक्ति जिन्हे गाली भी दो तो भी साथ रहेंगे। उनसे मेरा पहला परिचय लैन्सडाउन मे हुआ था। मेरे भाई रत्नाम्बर चदोला उनका आदर करते थे, पर राजनीति मे मानवता को इसान विसार देता है। हम 'पार्टी' के सैनिक थे और पतजी हमारे विरोधी खेमे मे। आज वह सब सोचता हूँ तो हृदय ग्लानि से भर जाता है कि उस महामानव के प्रति मैंने वैसा रुख क्यो अपनाया। हमारे आलोचक 'गोर्की' के उन उद्गारो को भूल गए जो उसने अपने पूर्ववर्ती तथा अपने समय के साहित्यकारो के प्रति प्रकट कर, उनकी प्रगतिशील परपरा का अभिनन्दन किया था।"[1] किंतु दलीय प्रतिष्ठा

---

is like meeting loves own demand on me". Joshi, 27 th Oct,' 69.

"Shanta has asked me to do the impossbile, send her a critical estimate of Sumitra Nandan Pant. I am the last person to be able to do it for I have been in love with him all my life and continue to be so. So a few remniscences is all that I can help her with '' ''" letter dated 4-11-69.

१. पहाड़ी।

के बोध ने रणदिवे दल के लोगो को कटु विद्वेष से भर दिया ।[1] सन् '४७-'४८ मे कम्युनिस्ट पार्टी का नेतृत्व रणदिवे के हाथ मे आ गया । यह अति साहसिक, अति वामपथी नीति की विजय थी । और सन् '४८ मे ही इस पार्टी ने एलान कर दिया कि देश मे क्राति आ गई है । इसके बाद पार्टी की अतरग बैठक मे पत के खिलाफ लिखने वालो को अप्रत्यक्ष रूप से (?) प्रोत्साहित ही किया गया—कुछ लोगो मे ऐसी कानाफूसी हुई कि निराला को उछालो और पत को गिराओ । और निराला एकाएक प्रगतिवादी घोषित कर दिए गए ।[2] "नेता की खोज मे अब कुछ प्रगतिवादियो की आँखे निराला जी पर पडी । उन्हे अपने मदिर मे किसी प्रधान मूर्ति का अभाव हमेशा अखरा है छोटे-मोटे देवी-देवता तो उनके पास बहुत थे, पर कोई महादेव नही था । उन्होने निराला जी मे अपना महादेव पा लिया । निराला जी अपने पूर्ण कृतित्व से अथवा आधुनिक रचनाओ से प्रगतिवाद के सिद्धात का कितना पोषण करते है, वह तो प्रगतिवादी जाने ? ·· अब वे (प्रगतिवादी) मानते हैं कि निराला जी ने जो लिखा था वह सब प्रगतिशील था, जो लिखते हैं, वह प्रगतिशील है, जो लिखेगे वह प्रगतिशील होगा, और निराला जी बाबा भोले-नाथ के समान इससे निर्लिप्त हैं, · ।"[3] खुले आम पार्टी के सदस्यो ने पत को

---

१. पहाडी : भेंट-वार्ता, २१-१०-'६६

२ तुलना कीजिए—"पंत का प्रगतिशील आंदोलन के साथ जाना भी उन्हें (निराला) पसंद न था । उनका विचार था कि वदात की भूमि से जनता की जैसी सेवा की जा सकती है, जैसा क्रांतिकारी साहित्य रचा जा सकता है वैसा अन्य किसी दर्शन की भूमि से नहीं । वेदांत की भूमि छोड़ने का मतलब उनकी दृष्टि में यह था कि अब तक उन्होने या पंत ने जो कुछ लिखा था, वह प्रगतिशील नहीं था । उन्होंने प्रगतिशील कविता का मजाक उड़ाते हुए ·· "

रामविलास : 'निराला की साहित्य-साधना', पृ० ३५१ : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण ।

तथा देखिए "निराला जी से जब 'प्रोग्रेसिव' कविता की चर्चा की जाती तो अपनी निराली प्रकृति के अनुसार दो कदम और आगे बढ़ कर वे कहते कि 'प्रोग्रेसिव' तुम लोग बनो, मैं तो 'एग्रेसिव' हूँ । और इसका सबूत उन्होंने 'कुकुरमुत्ता' शीर्षक कविता लिखकर दिया ।"

बच्चन : 'कवियों में सौम्य संत,' पृ० १८१

३. वही, पृ० १८२

प्रतिक्रियावादी,[१] पलायनवादी और जनद्रोही कहना प्रारभ कर दिया। एक विद्वेषपूर्ण तीखेपन की वह स्थिति आ गई जबकि ये लोग अपनी पार्टी अभियान के अनुचित आवेश मे पत के अजेय साहस से इतना चिढ गए कि वे पत को 'लँगडी देने' 'उनकी पिटाई करने' की बाते करने लगे, "और इस सबके मूल मे नि.सदेह पार्टी की आतरिक लडाई थी जिसमे पत अनजाने तथा अनचाहे फँस गए थे।" वस्तुतः सन् '४७ से सन् '५२ के वर्ष वे वर्ष थे जिनमे प्रगतिशील आलोचको ने न केवल पत, राहुल वरन् रवीन्द्रनाथ, ताराशकर आदि सभी स्वतत्र चेता मानवतावादी महान् साहित्यकारो की खुले आम भर्त्सना की। 'प्र० ले० स०' से खिन्न होकर ताराशकर ने भी अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया था।

सन्'४८ से प्रगतिशील साहित्यकार राहुल जी के विरुद्ध भी हो गए। राहुल जी ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्षीय भाषण मे उर्दू के सम्बन्ध मे जो विचार प्रकट किए वह कम्युनिस्ट नेताओ के लिए असह्य थे। पार्टी ने राहुल जी की सदस्यता खतम कर उन्हे बहिष्कृत कर दिया और रामविलास शर्मा ने इन्ही दिनो राहुल जी के विरुद्ध अपना आलोचनात्मक वार तेज कर दिया।[२] इसके साथ ही उनकी कृपा नवीन जी पर हुई तथा अपने खेमे के पुराने साथियो पर—अमृत राय, रागेव राघव, यशपाल, चौहान आदि पर भी हुई। और पत पर तो उनकी कलम इतनी तेज चली कि पार्टी वाले तक चौक गए—"रामविलास जी से प्रश्न करने की बात उठ गई—उन पर अभियोग लगाने की। इस सम्बन्ध मे एक समिति गठित हुई। रामविलास इलाहाबाद आए, पर फिर आपसी मतभेद न बढे इससे कोई निर्णय नहीं लिया गया।" इस बैठक को नियोजित करने का भार पहाड़ी को सौपा गया था। पहाडी का कथन है, "पार्टी की उग्रवादी नीति ने हमारा आत्म विश्वास छिन्न-भिन्न कर दिया था। भाई प्रकाशचद्र जिनका मैं आदर करता था वे तक लगा कि शत्रु के समान विरोधी खेमे मे हैं। हम आपस मे भी खुलकर बाते नही करते थे। अलमोडा

---

१. "सन् '४८ में जब रणदिवे नेतृत्व चल रहा था मैंने उग्रसेन हाईस्कूल के समारोह में अपने अध्यक्षीय भाषण में उन तमाम साहित्यकारो की सूची पेश की जो उस समय पार्टी की निगाहों में प्रतिक्रिया की कतार में खड़े थे—राहुल, पंत, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि।"
नागार्जुन : भेट, 'वार्ता' ५-११-'६६

२. देखिए अमृत राय : 'साहित्य में संयुक्त मोर्चा', हिन्दुस्तानी पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद : प्रथम संस्करण

मे १६४८ मे एक साहित्यिक गोष्ठी मे मैंने पत जी और यशपाल जी की भौडी आलोचना की थी। प्रकाशचद्र जी उसमे थे। वे बहुत दुःखी थे। पत जी बार-बार मुस्कराते थे। मैं जेल चला गया तो वही साथी नागार्जुन से इसकी चर्चा की। हमने हृदय मथन कर पाया कि हम साहित्य के प्रति गलत रुख अपना रहे हैं। यह भी एक कारण था कि रामविलास जी वाली बैठक न हो सकी।"

फिर भी आलोचक रामविलास जी इस दृष्टि से अभिनदनीय है कि उन्होने सच्चाई के साथ पार्टी के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को स्वीकार किया है। सभी काव्यो विशेषकर पत-काव्य पर प्रहार (न कि मूल्याकन !) करने के साथ ही वे खुले पृष्ठ की भाँति यह व्यक्त कर देते हैं कि उनके मूल्याकन का आधार 'कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो' एव 'अति पार्टीवाद' है।

'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण धूलि' की रचनाओ की आलोचना करते हुए वे कहते है, "इन रचनाओ को ध्यान से पढने पर यह बात खुले बिना न रहेगी कि दरअसल पत जी ने मार्क्सवाद को पूरी तरह कभी स्वीकार नही किया था।" "उनकी तमाम कविता भौतिकवाद और जनवादी सघर्ष को अस्वीकार करती है और वह दरअसल समन्वय करती है तमाम देवी-देवताओ की उपासना के साथ पूँजीवाद की उपासना का।"[१] इसी स्वर मे वे 'उत्तरा' की आलोचना प्रस्तुत करते हैं, "पंत जी ने ऐतिहासिक भौतिकवाद का अध्ययन वेदाती दृष्टिकोण से किया है।" "पत जी का वास्तविक अर्थ जीवन-सघर्ष से परे रहना है। वह वर्गों और नैतिक दृष्टिकोणो से ऊपर उठ कर सौदर्य देखने का आग्रह करते है।"[२] और रामविलास जी की इस परम्परा मे यशदेव शल्य से अन्य आलोचक भी मिलते है जिन्हे न केवल इसलिए झुँझलाहट होती है कि पत-काव्य कम्युनिस्ट सिद्धात का मुख्य-माध्यम नही बन सका वरन् इसलिए भी कि पत के अनेक प्रेमी पाठक और प्रशसक है। "छायावादी आलोचक ··· इस दृष्टिहीन दार्शनिकता के बडे पुजारी रहे हैं और पत जी उनके बडे 'समझदार' देवता।" आलोचक ऐसी दरिद्र कविताओ (आँसू की आँखो से मिल···"गुजन) को कैसे अभिनदित करते रहे, समझ मे नही आता।" "सर्वश्री अचल, बच्चन, सुमित्रानदन पत और कभी-कभी श्री अज्ञेय जी इनके पीछे श्रद्धालु शिष्यों की एक बडी श्रेणी समित्-पाणि मत्रोच्चार करती काव्य-यज्ञ शाला को मुख-

---

१. 'सुमित्रानंदन पत' : संपादिका शचिरानी गुर्टू, पृ० ३०७, ३१०

२. 'प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ', पृ० ५१, ५६

रित कर रही है।"[1] शल्य जी के अतिरिक्त विश्वम्भरनाथ उपाध्याय की भी 'कम्युनिस्ट ब्रेड' आलोचना उनकी पुस्तक[2] मे मिलती है किंतु उपाध्याय जी की आलोचना 'डडा मारो', 'अखाडे मे उतरो' नीति को नही अपनाती।

"पत के विरुद्ध प्रगतिशील आलोचको की पार्टी-प्रेरित आलोचना सन्'५२ तक चली, तब तक जब तक कि रणदिवे को हटाकर अजयघोष और डाँगे शक्तिशाली नही हो गए। उस समय रणदिवे वाला 'अति पार्टी अभियान' जो 'मारो', 'गाली दो' के नारो वाला अभियान था दब गया और सन्'५३ मे स्टालिन की मृत्यु एव खा्रुश्चेव के पार्टी का नेता हो जाने के साथ प्रगतिशील

---

१ यशदेव शल्य : 'पंत का काव्य और युग,' पृ० १२६, १३२ तथा १८१

२. 'पत जी का नूतन काव्य और दर्शन'।

इस पुस्तक के बारे में शिवदान सिंह का कहना है, "यह देखकर आश्चर्य हुआ कि इस पुस्तक 'पंत जी का नूतन काव्य और दर्शन' में ऐसे वक्तव्य असंख्य है जिनका प्रयोग कुत्सित-समाजशास्त्री ही कर सकते हैं। पाठकों को स्वयं ऐसे उदाहरण ढूंढने मे अधिक कठिनाई नहीं होगी। इतना ही नहीं, उपाध्याय जी की तर्क-शैली में ही मूल्यांकन का यह साहित्येतर दृष्टिकोण ताने-बाने की तरह गुंफित है। प्रश्न उठता है कि क्या मार्क्सवाद को वैज्ञानिक या वस्तुवादी सिद्धांत मानते ही अन्य सभी सिद्धांतो को अबुद्धिवादी, अवैज्ञानिक तथा अंततः प्रतिक्रियावादी घोषित कर देना अनिवार्य हो जाता है? क्या मार्क्सवादी दृष्टिकोण मन पर ऐसे असहिष्णु तथा एकाधिकारी प्रभाव डालता है कि मानव-चेतना की अब तक की सभी महान् सांस्कृतिक तथा कलात्मक उपलब्धियाँ एक क्षण में ही तुच्छ, नगण्य और वर्ग-स्वार्थ प्रेरित नजर आने लगती हैं? क्या मन में यह संस्कार जड पकड़ लेता है कि जो 'हमसे' (तत्कालीन मार्क्सवादी प्रवक्ताओं से) अक्षरशः सहमत नहीं हैं, वे व्यक्ति या विचार-धाराएँ लाजमी तौर पर प्रतिक्रयावादी और जनविरोधी है? क्या अध्यात्मवाद और भौतिकवाद की दार्शनिक विचारधाराओ के ऐतिहासिक संघर्ष का फैसला हो गया है हम अध्यात्मवादी दर्शनों को बर्बर (अबुद्धिवादी और अवैज्ञानिक) युग की निशानी के रूप में उठाकर म्यू-जियम के तहखानों में बन्द कर दें और यदि कोई आज थोड़ी-सी भी आस्था प्रकट करे तो उसे समाज-द्रोही घोषित करके समाज के रचनात्मक जीवन से बहिष्कृत कर दें? ......" 'पंत काव्य के मूल्यांकन की समस्याएँ।'

साहित्यकारो ने अनुभव किया कि पत के प्रति अन्याय हुआ है। अभी तक निराला के प्रति अकारण अति भक्ति और पत के प्रति अकारण अति द्वेष का जो 'हिस्टीरिया,' प्रगतिशील आलोचको मे मिलता था वह मद पड़ने लगा। यह दूसरी बात है कि अब भी कुछ एक प्रगतिशील आलोचक उस पुरानी परिपाटी के 'हिस्टीरिया' का परिचय देते रहते है।"[1] इस सदर्भ मे पूरन चद्र जोशी का भी कहना है कि पार्टी के उन्मत्त एव विक्षिप्त वामपथी रुझान ने पत को प्रतिक्रियावादी घोषित कर अपनी ही मूर्खता, दुराग्रह और मतान्धता को अभिव्यक्ति दी।[2]

ऐसी ही विचारधारा को अपनाते हुए शिवदान सिंह चौहान ने अपने निबध 'पत-काव्य के मूल्याकन की समस्याएँ, मे कहा है, "पत जी ने अपने निबधो मे और कही-कही कविताओ मे भी मार्क्सवाद या भौतिकवाद की कडी आलोचना की है, लेकिन वह आलोचना न अकारण है और न अनुचित ही। इसके विपरीत तथाकथित प्रगतिवादियो ने पत जी की जैसी सिद्धातहीन और अनधिकार

१. नागार्जुन : भेंट-वार्ता, ५-११-'६६

२. "After the end of the war and the achievement of Indian independence our Party and its line went insanely Left The reality of Indian independence was vehemently denied* and as an inevitable corollary Sumitra nandan vieicusly denounced as a reactionary and worse. He hardly answered back, leave aside hit back, even when my comrades hit him below the belt. It was an exhibition of unworthy fanatical frenzy on the part of us—Indian communists contiasted with the grand spirit of tolerance of the greatest humanist poet in Hindi of our age. We have made formal amends but I know as a Communist that real amends have yet to be made. It is not for the gieat Poet's sake who does not care for such trivialities, but for our sake, for the common cause and above all to be truer to the principles of communism that we owe it to ourselves. Idealogical

*देखिए अमृत राय: 'साहित्य में संयुक्त मोर्चा,' पृ० १-४८ तथा १०३-१०७

आलोचनाएँ की है, उन्हे पढ कर शर्म से सिर झुका लेना पडता है। यह एक विचित्र भौतिकवादी दृष्टिकोण है कि हम अपने देश की महानतम विभूतियो को तो गाली बकते है और बाहर के अधकचरे तुक्कडो को कधो पर उछालते है। मानव सस्कृति की उपलब्धियो के प्रति यह नकारात्मक ही नही कृतघ्नता का भी दृष्टिकोण है। पत जी ने मार्क्सवाद की जो आलोचना की है, उस पर उद्धत भाव से उनके मुह लगने की बचकाना हरकत प्रगतिवादी आलोचको को नही करनी चाहिए, बल्कि एक युग-द्रष्टा विचारक के उन सुचिन्तित शब्दो को आदरपूर्वक और ध्यान से सुनना चाहिए। पत एक महाकवि है, यह बात तो पहिले ही सर्वमान्य हो चुकी थी।'' ' कुछ कविताओ मे दार्शनिक विचारो का इतना अधिक बाहुल्य है कि भाषा काफी नीरस और साकेतिक बन गई है। लेकिन इन कविताओ मे निबद्ध दार्शनिक वक्तव्य इतने चुस्त और गभीर हैं कि केवल पत की क्षमता का महाकवि ही उन्हे इतनी स्पष्ट और सक्षिप्त अभिव्यक्ति दे सकता था। फिर भी उनकी किसी भी दार्शनिक कविता मे मुझे रागात्मकता का सर्वथा अभाव नही दीखता। उनकी हर कविता मे जन-मगल की भावना कवि के हृदय का सहज और पवित्र उद्‌गार बन कर ध्वनित हुई है, जो एक नए ही चिन्तन-युक्त मगल-रस की सृष्टि करती है। अपनी सकीर्णताओ से उत्पन्न उतावली के कारण यदि हम बिना समझे-बूझे ही इस नयी भावधारा की ओर लाल-पीली आँखो से न देखने लगे तो निश्चय ही कुछ दिनो मे इस नए रस का आस्वादन हमे अधिक सुसस्कृत और सवेदनशील मानव बनने की प्रेरणा दे सकता है। काव्य का इससे बडा प्रयोजन क्या हो सकता है।"

●●

---

infection is a disease and it does not disappear by saying : I am sorry Pantji, and Pantji giving us back his winsome smile".—P. C. Joshi's letter dated 21-11-69.

५

'मधुज्वाल' और 'लोकायन' की योजना

●

मई, १९४७ मे पत बम्बई चले गए। शरीर स्वस्थ था, मन प्रसन्न एव सृजन-चेतना उर्वर थी। इस बार बम्बई महानगरी प्रिय लगने लगी थी। समुद्र का उच्छ्वसित वक्ष अपने ही वक्ष की याद दिलाता था। साँझ को नित्य समुद्र तट तक जाते, यह स्वास्थ्य के लिए आवश्यक होने के साथ ही मानसिक भोजन सपन्न था। पत नरेन्द्र जी के साथ गाधी-भवन तैकलवाडी मे ठहरे हुए थे। एक ही कमरा था जिसमे दोनो रहते थे। नरेन्द्र जी का व्यस्त जीवन! कोई न कोई उनसे मिलने आता रहता और दिन भर सिनेरियो, गीतो तथा अभिनय आदि पर बातें होती रहती। सिने-जगत के कई लोगो, विशेषकर दिलीप कुमार, अमिय चक्रवर्ती, अनिल विश्वास आदि से पत का परिचय हो गया। नरेन्द्र जी की अनुमति लेकर उन्होने 'द्रोपदी' चल-चित्र के लिए दो-तीन गीत भी लिख दिए। मित्रो मे नरेन्द्र जी के अतिरिक्त भगवती बाबू, नागर जी, डा० मोतीचद्र, शमशेर और पूरनचन्द्र जोशी से प्राय. भेंट होती रहती थी।

इसी बीच नरेन्द्र जी की शादी तय हो गई। उनके प्रति पत के मन मे अज्ञात रूप से छोटे भाई का सा ममत्व रहा है। नरेन्द्र जी की शादी का पत के मन मे अपार उत्साह था। छोटे भाई की ओर से वे ही अभिभावक थे, उन्ही के नाम से निमत्रण पत्र छापे गए थे। नागर जी, नरेन्द्र जी और पत का अधिकाश समय शादी का कार्यक्रम बनाने मे ही बीतता। बहू सुशीला जी के घर आ जाने पर उनकी सौम्यता सुशीलता से प्रसन्न होकर पत ने 'स्वण धूलि' मे सगृहीत 'नव बधू के प्रति' कविता लिखी। नरेन्द्रजी का घर पारिवारिक आनद से आच्छादित हो गया। शाम को नागर जी सपरिवार आ जाते और फिर पत नरेन्द्र जी तथा नागर जी को चिढाते हुए अपनी बहुओ (प्रतिभा जी, सुशीला जी) का पक्ष लेते। नागर जी का कहना है, "नरेन्द्र जी की

पत्नी सौ० सुशीला तथा मेरी पत्नी को वे हम लोगो से अपने पैरो मे महावर लगवाने का उपदेश दिया करते थे। मै और नरेन्द्र जी एक तरफ तथा ये तीनो एक तरफ होकर घण्टो मजेदार वाक्युद्ध किया करते थे।"[१] नरेन्द्र जी को चिढाने मे पत को सदैव ही रस मिला है। नागर जी के अनुसार, "बन्धुवर नरेन्द्र जी और पत जी दोनो ही आपस मे एक दूसरे का खूब मजाक उड़ाते है। बडा मजा आता है। मद्रास मे मैने तमिल पढने के लिए एक अध्यापक रखा था। श्री कृष्णस्वामी मुदालियार काशी मे सेंट्रल हिंदू स्कूल मे अध्यापक रह चुके थे। हिंदी, बगला और फारसी भाषाएँ भी जानते थे। पत जी के प्रति उनका आदर भाव था। एक बार नरेन्द्र जी वहाँ थे। प्रातः काल छ. साढे छः के लगभग जैसे ही मुदालियारजी मुझे पढ़ाने आए, वैसे ही पत जी ने कमरे मे प्रवेश कर धीमे स्वर मे उनसे पूछा, "पडित जी, तमिल मे सबसे बड़े मूर्ख को क्या कहते है?"

मुदालियार जी एक बार तो हक्के-बक्के होकर पत जी को देखने लगे, फिर कहा, 'मुट्टाड!' पत जी मेरी ओर देख कर बच्चो की तरह हँसे और शब्द को दो बार दुहराकर चले गए। मुदालियार जी से न रहा गया, मुझसे पूछा "पत जी ने यह शब्द क्यो पूछा?"

मुझे हँसी आ गई। मुदालियार जी बोले, "मैं तो इन्हे बहुत गभीर समझता था।" मैंने कहा, "गभीर तो वे है ही, पर बड़े विनोदी भी है।" उस दिन बार-बार नरेन्द्र जी को 'मुट्टाड' कह कर सबोधित किया गया। और फिर कुछ वर्षो तक यह शब्द हमारे बीच खेलता रहा।"[२]

बम्बई के घर का स्नेहपूर्ण वातावरण पत को प्रिय लगा— किंतु मन मे सकोच रहता था। नरेन्द्र जी के पास एक ही कमरा था जिसमे पर्दा डाल कर दो भाग कर दिए गए थे। दम्पति की असुविधा को ध्यान मे रख कर पत ने शादी के आठ-दस दिन बाद १६-१७ मई तक प्रयाग होते हुए पहाड जाने का निश्चय कर लिया था। किंतु अस्वस्थ हो जाने के कारण यात्रा स्थगित करनी पडी। फिर जून के अत तक बम्बई ही रहे।

बम्बई के इस प्रवास काल मे पत ने अपने ज्योतिष ज्ञान की वृद्धि के साथ ही मणि-माणिको की परख करना भी सीख लिया। बचपन मे पिता के पास आने वाले प्रसिद्ध ज्योतिषियो तथा किशोरावस्था मे बड़े भाई के सपर्क मे आने के कारण, जो ज्योतिष तथा सामुद्रिक मे पारगत थे, पत की

१. 'स्मृति-चित्र,' पृष्ठ ६६
२. वही, पृष्ठ ६६

जिज्ञासा को भी ज्योतिष तथा हस्तरेखा शास्त्र ने आकर्षित किया। पत का कहना है कि ज्योतिष मे उनका विश्वास जो बचपन मे ही उत्पन्न हो गया था अब तक बना हुआ है। वे कौसानी मे आने वाले ज्योतिषियो की भविष्य वाणियो की चर्चा आश्चर्य के साथ करते हैं, "जब मैं बहुत छोटा था, घर मे लक्ष्मी की पर्याप्त कृपा थी तथा पिता अल्मोड़ा का घर बनवाने जा रहे थे तब एक गढवाली पण्डित ने मेरे पिता से तीन बाते कही थी। एक—घर क्यो बनवा रहे हैं ? यह आपके सामने ही बिक जावेगा, दो—छोटे लडके की शादी नही होगी, न योग है और न प्रवृत्ति ही, तथा तीन—आपका एक बेटा आपके सामने ही चल बसेगा। तीनो ही बाते सच निकली। अब कैसे कहते हो कि ज्योतिष सच नही होता ? अनुमान के आधार पर वे घर बिकने की बात कह नही सकते थे, तब पिता जी की समृद्धि देख कर ऐसी कल्पना करना सभव न था।"

बडे भाई से प्रभावित होकर सन् '२४ मे वे हस्तरेखा ज्ञान की ओर विशेष रूप से झुके जिसकी कालक्रम मे वृद्धि होती ही गई। मद्रास मे ऐसे दो-एक श्रेष्ठ पण्डितो से उनकी भेंट हुई जिन्होने उनका हाथ देखकर न केवल उनकी कुण्डली बना दी वरन् चद्रमा की ठीक स्थिति भी निर्धारित कर दी। अपने हस्तरेखाज्ञान के आधार पर पत ने अपने सम्पर्क मे आने वालो को प्रभावित भी किया है। अधिकाश का कहना है उनकी हस्तरेखा विज्ञान मे अच्छी अतर्दृष्टि है। नरेन्द्र जी तथा उनके मित्रो के साहचर्य मे उनकी अभिरुचि ज्योतिष की शास्त्रीय पुस्तको की ओर बढी। ज्योतिष के कई श्लोक उनको कंठस्थ है। वे बतलाते हैं कि किस ग्रथ विशेष मे, किस महान् ज्योतिषी ने ग्रहो की किस प्रकार की व्याख्या की है। ग्रहो की युति, उनके भेद, उपभेद के बारे मे वे देर तक मग्न होकर बतला सकते हैं। ज्योतिष पर उन्होने अनेक पुस्तके, मासिक पत्र-पत्रिकाएँ पढी तथा उन पर विचार किया है। किंतु उनका कहना है कि ज्योतिष की सच्चाई शास्त्रीय ज्ञान से अधिक स्फुरित ज्ञान पर निर्भर है। विशिष्ट समय मे ही अच्छा हाथ या कुण्डली देखी जा सकती है और उस काल की भविष्यवाणी अधिकतर ठीक ही निकलती है। बैंगलौर से प्रकाशित 'एस्ट्रोलाजिकल मेगजीन' के वे सन् '४७ मे ग्राहक बन गए और फिर सन् '६० तक बने रहे। डाक-घर की लापरवाही अथवा न जाने किस कारण से जब यह स्थिति आ गई, कि वी० पी० पी० वाले अंक के अतिरिक्त और अंक नही मिलते तो उन्होने उसका ग्राहक बनना

छोड दिया। फिर कुछ वर्ष तक वार्षिक अक ही खरीदते रहे जो रेलवे स्टेशन अथवा ह्वीलर की दूकान मे मिलता है।

३ जुलाई '४७ को इलाहाबाद आकर पत बच्चन जी के साथ ठहरे। बच्चन जी उन दिनो 'एडैल्फी' मे रहते थे। 'प्रगतिशील लेखक सघ' के साथ बम्बई मे हुआ पत का विवाद हवा मे फैल चुका था। उनके इलाहाबाद पहुँचने के साथ ही सभी प्रकार के लोग अपनी जिज्ञासाएँ लेकर उनके पास पहुँचे। विजय, प्रसन्नता, आक्रोश की भावनाएँ प्रतिक्रियाओ के रूप मे पनपने लगी। अधिकतर सभी को इस बारे मे कुछ न कुछ कहना था। 'पल्लव'-प्रेमी प्रसन्न थे—भ्राति से पत जिस शुष्क सिद्धातवादिता के चक्कर मे पड गए थे, यह उससे मुक्ति का सूचक है और उन्हे लगने लगा कि फिर से पंत का मानस किशोरावस्था मे पहुँच (निवर्तन) 'वीणा-ग्रथि' और 'पल्लव' के सुकुमार भावबोध, कोमल-कात-पदावली से उन्हे मोह मुग्ध करने लगेगा। एक प्रभावशाली व्यक्ति के 'सघ' से खुले आम अलग होने एव उससे स्पष्ट विरोध व्यक्त करने पर उग्र दलवाले आक्रोश से हाथ मलने लगे तो उनका विरोधी दल विजयोल्लास से भर गया। एक बार पुन. रस्सी खिची, पिछली बार प्रगतिवादियो को लगा था कि पत उनकी ओर खिच गए है और इस बार रस्सी को लेकर कबूतर उड गया। पत के विरुद्ध दाँत पीस कर एक संगठित, विचारित तथा सुनियोजित अभियान जन्म लेने लगा।

श्री पुरुषोत्तम दास टडन, पत्रकार, ने बच्चन जी के घर जाकर इस विषय मे पत की प्रतिक्रिया जाननी चाही, उनकी 'इन्टरव्यू' ली। पत ने अपने भतीजे अम्बादत्त पत को जिसकी उसी वर्ष इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे नियुक्ति हुई थी, श्री टडन के पास इस आशय से भेजा कि 'भेंट-वार्ता' समाचार पत्रो मे प्रकाशित करवाने के पूर्व वे उसे अवश्य उन्हे दिखा दें। किंतु एक सनसनीदार घटना जल्दी से जल्दी विज्ञापन एव प्रकाशन की अपेक्षा रखती है। श्री टण्डन के पास इतना समय ही नही था कि वे पत को 'भेट-वार्ता' दिखाते। जैसा कि अलिखित भेट-वार्ताओ मे होता है, वार्ताकार की ओर से सच्चाई बरतने पर भी, उसी का दृष्टिकोण मुखर हो जाता है। श्री टण्डन की 'भेट-वार्ता जब पत्रो मे छपी तो प्रगतिशील लेखको मे खलबली मच गई, वे सतर्क हो गए। बम्बई से रमेश सिनहा ने ('जनयुग' के सम्पादक) प्रकाशचद्र जी को पत्र लिखा और उनका पत्र पाकर वे पत से मिलने 'ऐंडल्फी' गए। उन्होंने पत को अपनी पार्टी की ओर से सतुष्ट करना चाहा किंतु पत के लिए प्रश्न वैयक्तिक सम्मान का नही था, साहित्यिक मान्यता की बात थी, देश और

जीवन के प्रति मानवतावादी दृष्टिकोण की बात थी। प्रकाशचद्र जी के अनुरोध पर पत ने 'भेंट-वार्ता' मे निहित उन अतिशयताओ का खण्डन कर दिया जो उनके नाम से युक्त कर दी गई थी।[1] इस बीच प्रगतिशील लेखको ने इलाहाबाद मे एक बृहत् सम्मेलन किया जिसके बारे मे प्रकाशचन्द्र जी का कहना था "हम लोगो ने अग्रवाल विद्यालय मे ६, ७ और ८ अगस्त '४७ को एक बडा भारी सम्मेलन किया। पत जी अप्रसन्न थे। फिर भी मेरे तथा पहाडी के कहने पर उन्होने कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता की।"[2]

देखते-देखते सन् '४७ का अगस्त हर्षोल्लास और सघन वेदना लिए हुए आ गया। स्वतत्रता की घोषणा के साथ ही साप्रदायिक झगडा, ऐसा झगडा जो बर्बरता और पाशविकता को भी पार कर जाता है, सपूर्ण भारत मे काले बादल सा छा गया। चारो ओर मारो-काटो का सिंहनाद था—स्वप्न मे भी यही लोमहर्षक आवाज सुनाई देती थी। घण्टे, आधा-घण्टे मे आतक फैल जाता—हिंदू बस्ती मे मुसलमानो के आक्रमण का और मुसलमान बस्ती मे हिंदुओं के आक्रमण का। 'ऐंडल्फी' मे खबर आई कि मुसलमान धावा बोलने वाले हैं—आततायी के सामने भयभीत होना, अपने को निर्बल मान कर पिटने देना 'ऐंडेल्फी' के वासियो ने नही सीखा था 'ऐंडेल्फी' मे दो परिवार थे। स्त्रियो को छत पर चढा दिया गया और पुरुष रक्षण के लिए सन्नद्ध हो गए। किंतु आत्म-रक्षण बिना हथियार के सभव न था, अतः पडोस के घर से लोहे के छड लाए गए। बच्चन जी का कहना है-"कुछ लोग फाटक पर डटे और मेरे साथ हाथ मे लोहे का छड लेकर श्रीयुत पत जी सीढी पर खडे हुए। उनका वीर वेश उस दिन देखने लायक था। उनके वीर पूर्वज श्री पुरुषोत्तम पत की कोई शिरा उस दिन जैसे उनमे स्फुरित हो आई हो।"[3] कौन कह सकता था कि वह सुकुमार कवि है, वह ता योद्धा लग रहे थे। पत का सदैव अलसाया सा रहने वाला शरीर स्फूर्तिमान था। इसमें भी सदेह नही वह एकाध का सिर फोड कर ही अपना सिर फुडवाते। अपने निश्चय से पीछे हटने वाले वह है नही, ओखली मे यदि समझ-बूझकर सिर दिया है तो उसका फूटना ही ठीक है, न फूटना मर्मातक है।

---

१. प्रकाशचंद्र जी से भेंट-वार्ता, 'सितम्बर' '६९

२. भेंट-वार्ता तथा 'आज का हिंदी साहित्य' पृ० २१४-२१५ : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली-७ प्रथम संस्करण १९६६

३. 'कवियों में सौम्य सत', पृ० ९८

नि सदेह पत का सकल्प अपूर्व है । दामिनी की दमक की भांति वे निर्णय कर लेते है—उनका कहना है यह मेरे निष्पक्ष मन का सत् सकल्प है जो मुझे मार्ग दिखलाता है और उससे डिगना आत्महत्या है । "मै जी ही नही सकूगा । मेरी अतश्चेतना मुझे कुरेदती रहेगी, मुझे कुरेदती रहेगी जब तक कि मैं तदनुरूप कार्य न कर लू या फिर मैं खतम न हो जाऊ ।" इस अतर निर्णय के सम्मुख न पत का स्वार्थ टिकता है और न प्रियजन । कभी-कभी वे कहते है, "मेरी छाती मे बडा दर्द है ।" उँगली से उस स्थल को दबाते है, "यह, यहाँ, फोडा पकने का सा दर्द है । ऐसा ही रहा तो शीघ्र 'हार्ट-फेल' हो जायेगा ।" यह सब उन बाधाओ को लक्षित करता है जो उनके सकल्प को कर्मरत नही होने देती है । पत के अतर और बाहर, एक ही सचरण है । वे जो सोचते है वही करते है और जो करते है वही सोचते है । उनके सपूर्ण व्यक्तित्व—आतरिक और बाह्य—का लक्ष्य भी एक ही है—मानव, मानवता का आदर । इसके विरोध मे कोई भी कुछ कह दे वह हँसकर टाल देंगे । आत्मीय हुआ तो खीझकर कह देंगे—"कैसी बात करते हो ? कमी या दुर्बलता किसमे नही होती ? क्या इस कारण मैं उसका बुरा चाहू ?" पत के समवयस्को, सहयोगियो, मित्रो और सबधियो का पर्याप्त उलाहना है कि वे सभी को प्रोत्साहित करते हैं । "सुमित्रानदन पत का कार्य जन-कल्याण का मार्ग है, वे दूसरे का अकल्याण नही कर सकते । अगर उनमे कोई कमजोरी है तो वह बिना भेदभाव के अच्छे और बुरे का समान भाव से कल्याण करने की प्रवृत्ति है । कुपात्र के कल्याण अथवा समर्थन से सुपात्र का अहित हो सकता है । ' सुमित्रानन्दन पत मे जिसे हम व्यावहारिकपन कहते है, उसका अभाव है । वे कभी-कभी मुझे बडे निरीह प्राणी लगते है क्योकि दुनिया मे रहकर उन्हे दुनियादारी निभानी पडती है और इस दुनियादारी के निर्वाह मे उन्हे कभी-कभी भयानक कठिनाई और कष्ट का सामना करना पडता है । सत् और कल्याण के मार्ग पर उनके रत होने के कारण वे इस दुनियादारी के मामले मे नितात असफल तो नही कहे जा सकते, असत् और अकल्याणकारी प्रवृत्तियो से युक्त लोगों के प्रति सहनशीलता, असत् और अकल्याणकारी प्रवृत्तियो के प्रति सहनशीलता मे परिणत हो जाती है—यह सत्य मैंने सुमित्रानन्दन पत के जीवन मे देखा है । उनके अन्दर वाली सहयोग और कल्याण की भावना व्यक्ति और व्यक्ति के कर्मों मे भेदभाव नही देख पाती । सुमित्रानदन पत का मार्ग विरोध का नही है, और इसलिए जिसे हम सामाजिक उत्तरदायित्व कह सकते हैं, उसकी उनमे कमी है । साहित्य मे अराजकता और असयम के प्रचार और

प्रसार मे मेरे मत मे सुमित्रानदन पत की बहुत बडी जिम्मेदारी रही है क्योकि हरेक दल और हरेक विचारधारा को उनके आशीर्वाद के रूप मे उनका समर्थन सहज मे ही मिल गया है। ' ' यह गुण सुमित्रानदन पत के व्यक्तित्व की महानता को भले ही प्रदर्शित करे, पर इस गुण के असामाजिक पहलू से किस प्रकार इन्कार किया जा सकता है ?"[1] "वे प्रत्येक व्यक्ति का अच्छा करना चाहते है इसमे अनजाने ही किसी की हानि भी हो सकती है, इस ओर सोचने का न उनके पास समय है न प्रवृत्ति ! निकट वाले उनसे मनमानी करा लेते है, वे उनके कहने मे आ जाते है। पत को एक मध्यवर्गीय शिष्टाचार घेरे हुए है, उनमे अप्रिय सत्य नहीं कहने की प्रवृत्ति है, जन्मजात शालीनता है (शालीनता का भय) जिस कारण वे सदैव सचेत रहते है कि कही वे मन-वचन-कर्म से शालीनता का अतिक्रमण न कर दे और इस भय से आच्छादित होने के कारण भूल जाते है कि सभी के साथ शिष्ट होने की चाह एव सभी का अच्छा करने मे अयोग्यो का हित हो जाता है और यह अप्रत्यक्ष रूप से योग्य लोगो का अहित करना है।"[2]

पत का मन जो प्रत्येक व्यक्ति का आदर करना चाहता है, प्रत्येक के भीतर और बाहर को एक ही मानता है अथवा यह सोच ही नही सकता कि कथनी और करनी मे भेद हो सकता है, किसी को भी निराश नही करना चाहता है। हजारो बार वे दूसरो की कथनी और करनी मे भेद देख चुके है किंतु फिर भी उनका मनुष्यत्व का वरण करने वाला आशावादी अस्थावान् हृदय समस्त तर्कों और प्रत्यक्ष का निराकरण करते हुए कहता है, "नही वह ऐसा नही है। पहिले उसने ऐसा कई बार किया था किंतु अब वह बदल गया है। फिर तुम यह क्यो नही सोचती कि प्रत्येक की आत्मा अपापविद्ध है, अदर से अकलुषित।' अभी हाल ही मे, सभवत २० जुलाई '६९ मे शाति मेहरोत्रा ने उलाहना करते हुए पत से कहा, "बडा गुस्सा आता है जब ' ' आपके पास मतलब से आते है तो आप उनसे कुछ कहने के विपरीत उनका काम कर देते है। मालूम भी है बाद को ये लोग क्या कहते हैं, इनका कहना है कि आप दुर्बल है, ... "आपकी खूब बुराई करते है, कहते है कि आपके पास आकर वह आपको प्रसन्न कर लेगे और अपना काम करवा लेगे।" पत हँस दिए,

---

१. भगवती चरण वर्मा : 'ये सात और हम,' पृ० ५०–५१ राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-७

२. भगवतीचरण वर्मा : भेंट-वार्ता, मई '६९

"कहने दीजिए। मैं यह सब समझता हूँ किंतु यह बाते मुझे छूती नही है। वे लोग बच्चे है, मैं उनका भला ही चाहूँगा। फिर आपके और मेरे दर्शन मे बडा भारी अतर यह है कि मैं मानता हूँ कि कोई दुष्ट नही होता, परिस्थितियाँ व्यक्ति को दुष्ट बनाती है। मैं इसी के लिए जीता हूँ।" सच है, पत का मन बाहरी भेदभाव को स्वीकार नही करता है। वह वही करना चाहते है जो प्रत्येक के मनुष्यत्व के अनुरूप हो। यही कारण है कि वे भरसक किसी लेखक को निराश नही करते है, भूमिका या दो शब्द लिख ही देते है। उनकी भूमिकाओ, प्रमाणपत्रों का मूल्य आशीर्वादात्मक ही है। मनुष्यत्व के आदर के लिए पत झूठ का प्रश्रय भी लेते है। वैसे, वे कहते, है, "झूठ बोलने मे मेरा मन काँप उठता है। बाप रे! जो चाहे करा लो, झूठ नही बोल सकता।" और वे कानों को हाथो से पकड जीभ दाँत से दबा लेते है। किंतु निष्कलुष झूठ, जिसे वे 'इन्नोसेन्ट लाई' कहते है अथवा वह जिसमे किसी की कोई हानि नही होती, जिसका स्वार्थपूर्ण प्रपच से छत्तीस का सम्बन्ध है, यदि दूसरे को आहत करने से बचा सका है तो उसका प्रयोग करना अनुचित नही है। "अरे वह झूठ हुआ ही कहाँ ?"

इस बार वे बच्चन जी के साथ नौ-दस महीने रहे, अपने भोजन-आदि का भार अपने ही ऊपर डाल कर। राष्ट्रीय दुःख ने सृजन प्रेरणा अनुर्वर कर दी थी। मन किसी भी काम मे भीग नही रहा था—औदास्य को भुलावा देना कठिन था। फिर भी समय व्यतीत करने के लिए काम तो करना ही होता है, "कुछ न कुछ करते ही रहना चाहिए, खाली बैठना अशोभन है, वह मृत्यु है।" अरविंद आश्रम से आते समय वे अरविंद साहित्य ले आये थे। वे 'अदिति' के लिए श्री अरविंद की कविताओ का अनुवाद करने लगे। इस बीच 'मधुज्वाल' मे भी कुछ आवश्यक परिवर्तन और सशोधन किए तथा उसे भारती भण्डार को प्रकाशन के लिए दे दिया।[1]

1. 'मधुज्वाल' की पाडुलिपि रामचद्र टण्डन के पास थी। टण्डन जी का कहना है कि पंत 'मधुज्वाल' को प्रकाशित नहीं करवाना चाहते थे। वाचस्पति पाठक ने उनसे यह पांडुलिपि पढ़ने के लिए यह कहकर मांगी कि वे दो दिन में अवश्य लौटा देंगे। लौटा उन्होंने निश्चित अवधि में दी पर इसकी नकल कर ली। और फिर पंत को इसे प्रकाशित करवाने के लिए राजी कर लिया। पंत ने कुछ संशोधनों के साथ छपवा दी। 'मधुज्वाल' की असंशोधित मूल पांडुलिपि टण्डन जी के ही पास है। टण्डन जी से भेंट-वार्ता ८-११-'६६

उमर खैयाम की रूबाइयो का गीतातर उन्होने १९२९ मे उर्दू के प्रसिद्ध शायर स्वर्गीय असगर साहब गोडवी की सहायता से किया था। असगर साहब गोडवी जिस भावुक तल्लीनता से उनको रूबाइयो का भावार्थ समझाते थे उससे प्रेरणा पाकर उन्होने इसका इण्डियन प्रेस के लिए अनुवाद किया। किंतु अनुवाद पूरा होने के साथ ही बीमार पड जाने के कारण न केवल 'मधुज्वाल' का प्रकाशन स्थगित हो गया वरन् इसकी पाडुलिपि भी खो गई। सालो तक पाडुलिपि खोई रही और सभवतः खोई ही रहती यदि रामचद्र टण्डन जी ने अपने व्यावहारिक कौशल से इसकी खोज खबर न ली होती। उमर की रूबाइयो के अनुवाद मे जो मासल सौदर्य और प्रेम की तीव्रता मिलती है उसे पत ने 'मधुज्वाल' मे अपनी ही कल्पना मे लपेटकर सुदर प्रगीतात्मक रूप दे दिया है। उमर की रूबाइयो का जो फिट्जरलैण्ड द्वारा अग्रेजी मे अनुवाद मिलता है, जिसके आधार पर हिंदी के अधिकाश अनुवाद मिलते है, उसमे भाव उमर के है किंतु कल्पना सौदर्य फिट्जरलैण्ड का है। पत की 'मधुज्वाला' असगर साहब द्वारा चुनी हुई फारसी रुबाइयो का अनुवाद है, पत ने भी फिट्जरलैण्ड की भाँति अपने गीतो को अपनी ही कल्पना से मण्डित करने की स्वतत्रता ली है। शब्द योजना तथा भाव व्यजना की दृष्टि से पत का अनुवाद अत्यधिक मधुर है। उन्हे उमर की रूबाइयो मे विचारो की प्रधानता तथा काव्यमय कल्पना का अभाव लगा और इस अभाव की पूर्ति के लिए ही उन्होने 'मधुज्वाल' को अपने कल्पना सौदर्य से मण्डित कर मासल बना दिया। 'मधुज्वाल' का प्रकाशन काल सवत् २००५ है।[1]

साप्रदायिक दगो के कारण बच्चन जी का घर 'छोटा-मोटा शरणार्थी शिविर' बन गया था। घर मे खासी भीड थी, दस पद्रह शरणार्थी तथा घर के सदस्य। किंतु उन दिनो भीड की किसे चिन्ता थी? सभी का ध्यान उन भयकर घटनाओ पर था जो नव स्वतत्र भारत के आँचल मे दुख लपेट लाई थी। हृदय विदारक घटनाओ ने पत को चितामग्न कर दिया था—क्या जीवन है? यह कैसी स्वतत्रता है जो रक्त रजित है? भारत माता के हृदय का घाव विश्वजनीन बन कर असह्य टीस उपजा रहा था। यह टीस अकथनीय हो गई, जब रेडियो ने महात्मा गाधी की निर्मम हत्या का समाचार दिया। दिन रात कान में वही गूँजने लगा— गोड्से और उसकी गोली की विध्वसकारी गर्जना जो तुरत ही 'वैष्णव जन तो तेने कहिए' की मधुर प्रार्थना मे बदल कर 'हे

---

१. वर्तमान प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-६

राम' मे विलीन हो जाती। अमर्त्य के मर्त्य पर्यटन के प्रति मर्त्य के आँसुओ की माला 'खादी के फूल' (बच्चन और पत का सयुक्त सकलन) मे सगृहीत है जिसका अधिकार बच्चन जी के पास है।

राजनीतिक स्वतत्रता ने पत के मन मे यह धारणा दृढ और दृढतर कर दी कि सास्कृतिक जागरण के बिना मानव कल्याण असभव है। सन् '४२ मे उन्होने 'लोकायतन' की जो रूपरेखा बनाई थी वह देशव्यापी विद्रोह और लामहर्षक दमन के कारण मात्र सकल्प का रूप लेकर ही सुप्तप्राय हो गई थी। अब पत को उसके लिए यह अधिक उपयुक्त समय लगा। स्वतत्रता के साथ ही अमानवीय वीभत्सता ने यह स्पष्ट कर दिया था कि मानव का अदर से रूपातरण करना आवश्यक है—राजनीतिक स्वतत्रता सास्कृतिक पुनर्जागरण की अपेक्षा रखती है। पत ने 'लोकायतन' का 'लोकायन' नाम से पुनर्नामकरण किया। भारतीय विचार मे जिस स्थूल, इद्रिय सुख का 'लोकायत' पर्यायवाची है उससे भिन्नता तथा पृथ्वी के जीवन की सारता को व्यक्त करने के लिए ही 'लोकायन' नाम उन्होने अपनी इस सस्कृति पीठ को प्रदान किया।

'लोकायन' की स्थापना के लिए उन्होने बडी-दौड-धूप की मानो वे कोई भिन्न ही व्यक्ति हो। काम चाहे कैसा ही क्यो न हो, यदि उनके मन को स्वीकृत हो या उन्हे लगे कि यह करना ही है तो वह तन-मन-धन से उसके पीछे लग जाते हैं। 'लोकायन' की स्थापना मे न केवल रुचि का प्रश्न था, वह जीवन की अनिवार्यता एव एक महत् सास्कृतिक उद्देश्य को अपनाए था। यह उस विश्व जीवन की कल्पना को अपनाए था जिसके लिए 'हार' का युवा योगी स्वभावत अपने को समर्पित कर देता है। "करने वाला तो सब कुछ वही है, जो वह चाहेगा, वही होगा। किंतु अच्छे उद्देश्य के लिए व्यक्ति अपने को समर्पित तो कर ही सकता है।" और समर्पण मे 'मै' रहता ही कहाँ है। उन दिनों पत अपने आपको भूलकर 'लोकायन' के लिए ही जीने लगे। लोकायन समिति के सदस्य चुने गए, व्यापक नियमावली[१] छपाई गई। यह 'लोकायतन' की नियमावली का ही विस्तृत रूप थी। नियमावली अपने आप मे एक काव्य है। 'ज्योत्स्ना' के कथापक्ष को हटा दीजिए तो 'लोकायन' की नियमावली मिल जायेगी। किंतु पत को इसे गत्यात्मक बनाने के लिए 'ज्योत्स्ना' का आत्म-प्रबुद्ध परिवार नही मिल सका। इस अर्थ मे 'लोकायन' की योजना भाव-सत्य मात्र रह गई।

---

१. देखिए परिशिष्ट-२

'लोकायन' का रजिस्ट्रेशन कराने नवम्बर, '४७ के अत मे पत अज्ञेय जी के साथ लखनऊ पहुँचे। सन् १८६० के ऐक्ट २१ के अनुसार 'लोकायन' एक रजिस्टर्ड सस्था मान ली गई। गुप्त जी का आशीर्वादात्मक सहयोग प्राप्त करने ये लोग लखनऊ से ही सीधे चिरगाँव चले गए। वहाँ ४ दिसम्बर, '४७ को पहुँचे। फिर वहाँ से इलाहाबाद आए, एक रात इलाहाबाद रहकर लखनऊ चले गए और लखनऊ से इलाहाबाद होते हुए दिल्ली, तथा दिल्ली से इलाहाबाद। 'लोकायन' की दृष्टि से यह दौड-धूप व्यर्थ ही रही। किंतु इससे पत का सहज आशावादी मन निराश नही हुआ था, "अच्छे काम के लिए प्रयास करते रहना चाहिए। असफलताओ से निराश होना मनुष्य को शोभा नही देता।"

'लोकायन' की सी विशाल योजना जिस अपार धनराशि की अपेक्षा रखती है उसे एकत्रित करना उनके लिए सभव न था। अपने पास स्वय धन हा तो लगाया जा सकता है। किंतु यहाँ तो उस कौशल की आवश्यकता थी जो अनुदाता को पिघला दे। इसमे वे नितात असफल रहे। स्वय उनके पास पूँजी थी नही, यात्रा तथा वाहन का खर्च, डाक-व्यय आदि का भार अपने ही ऊपर डाला, यही बहुत था। प्रारभ मे उत्तर प्रदेश सरकार के जिस आश्वासन से प्रोत्साहित होकर यह योजना बनाई गई थी, वह आश्वासन समय आने पर मूर्त रूप ग्रहण नही कर सका। उत्तर प्रदेश सरकार ने केवल दस हजार का अनावर्तक अनुदान दिया। उस समय स्वर्गीय गोविन्द बल्लभ पत मुख्य मत्री थे। उन्होने अनुदान देते समय कहा कि वे अधिक अनुदान दिला सकते थे किंतु उसमे गलतफहमी की सभावना है—"लोग कहेगे कुमाउनी को सहायता दी।" पत को ऐसा तर्क बुरा लगा—यदि ध्येय उचित है, सयोजक की ईमानदारी पर विश्वास है तो ऐसे लोकापवाद से डरना ! इससे सास्कृतिक सामाजिक कार्य तो कभी सभव ही नही हो सकते।

अन्य किसी से अनुदान मिलने के कोई लक्षण नही थे। निःस्वार्थ ध्येय को पहचानने और उसमे सहयोग देने वाले कम ही होते हैं। अपने लिए किसी से कुछ कहने या आशा करने की बात उन्हे सदैव अचिन्त्य लगी—अपनी व्यक्तिगत कठिनाइयो के बारे मे किसी से कहना तो दूर, उन्हे अपने मन मे भी महत्त्व नही दिया। पर यह तो समाज का काम था जो बिना उसके सक्रिय सहयोग के हो ही नही सकता था। अतः वे कई लोगो के पास गए किंतु निःस्वार्थ भाव से ···फिर भी वे हताश नही हुए। श्री अमरनाथ झा, डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० बाबूराम सक्सेना, श्री रामचंद्र टण्डन, श्री सच्चिदानन्द

हीरानन्द वात्स्यायन तथा श्री हरिवशराय 'बच्चन' लोकायन की कार्यकारिणी समिति के सदस्य चुने गए। इस समिति मे अवैतनिक मत्री के रूप मे पत का निर्वाचन हुआ, डा० बाबूराम सक्सेना कोषाध्यक्ष तथा श्री अमरनाथ झा सभापति चुने गए। बाद मे बच्चन जी कुछ समय के लिए इसके वैतनिक कार्य-सचालक नियुक्त किए गए।

उत्तर प्रदेश सरकार से अल्प अनुदान मिलने के कारण पत को यह आवश्यक लगा कि वे केन्द्र सरकार से भी आर्थिक सहायता के लिए कहे। वे दिल्ली गए और वहाँ नवीन जी के साथ नेहरू जी से मिलने गए। नेहरू जी ने इसकी योजना ध्यान से सुनी, फिर 'लोकायन' का अर्थ पूछा। नवीन जी को न जाने क्या प्रेरणा हुई। उन्होने एकाएक पत से प्रश्न किया, "इसका सबध 'लोकयुद्ध' से तो नही है।" 'लोकायन' की बात वही पर खत्म हो गई, 'लोकयुद्ध' एव साम्यवाद! नेहरू जी चौक कर चुप हो गए। फिर पत जी ने 'लोकायन' के सास्कृतिक उद्देश्य को समझाना चाहा किंतु नेहरू जी का दृढ़ उत्तर था, "बाद को।"

इलाहाबाद आकर पत 'लोकायन' के मृग-जल मे फँसे रहे। न अर्थ, न अनुकूल वातावरण, न सक्रिय कार्यकर्ताओ का सहयोग, और सर्वोपरि पत की स्निग्ध सहज बुद्धि जो उस व्यावहारिकता की छाया भी नही पकड सकती जिसके बिना समाज मे सादा सा कार्य करना भी कठिन हो जाता है। इन सब कठिनाइयो के साथ जब इलाहाबाद मे ही श्रद्धेय गुप्त जी ने अग्रज की स्नेहिल एव हितैषी हंसी के साथ उनके कधे पर हाथ रखा और व्यावहारिक सुज्ञता से कहा—"पत जी इस योजना को स्थगित कर दीजिए, कम से कम कुछ वर्षों के लिए क्योंकि यह सदेह किया जा रहा है कि इसकी विशालता 'साहित्यकार ससद्' से टकरायेगी।"[1] पत जी चुप रह गये, गुप्त जी की राय स्नेहपूर्ण लगी।

१. तुलना कीजिए—"महादेवी जी का साहित्यिक व्यक्तित्व 'साहित्यकार संसद्' की स्थापना और राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू द्वारा उद्घाटन के बाद वे एक नयी साहित्यिक जीवन्तता की केन्द्र बन गईं थीं ... उसके कुछ ही दिनों बाद उनके एक समकालीन छायावादी कवि ने एक संस्था की योजना बनायी—बड़ी विराट्, न केवल साहित्य वरन् संगीत, चित्रकला आदि बहुविध कला विकास की। ... यह प्रवाद फैला कि यह संस्था 'साहित्यकार संसद' की तुलना में खड़ी की जा रही है। ... उस संस्था का प्रस्तावित नाम था 'लोकायतन' और उसके संस्थापक प्रस्तावक थे

पर उसने साहित्यकारो की जिस प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला वह प्रिय नही ही थी—दोनो सस्थाओ के उद्देश्यों मे अतर, दोनो के जन्म मे अतर। 'लोकायन' अपने 'लोकायतन'[1] 'नाम से सन्'४२ मे जन्म ले चुका था और यह कम से कम, प्रयागवासियो से छिपा नही है। 'साहित्यकार ससद्' सन् '४४ मे स्थापित हुआ है। उसका उद्देश्य साहित्य तथा साहित्यकारो का सरक्षण तथा कल्याण है। 'लोकायन' विश्व सास्कृतिक जागरण, मानवीय एकता की स्थापना तथा सास्कृतिक विकास के लिए लोक-गीतो, अभिनयों, नृत्यो, विभिन्न देशो के सास्कृतिक आदान-प्रदान का आकाक्षी है। स्पर्द्धा पत से अपरिचित ही रही है, बिलकुल लका-निवासिनी। उस पर उस काम को स्पर्द्धा से युक्त करना जो मानव-कल्याण के लिए किया जा रहा है, सब कुछ अटपटा, अर्थहीन एव मूल्यहीन था। मन को सब दुविधाओ से मुक्त कर वे उद्देश्य की पवित्रता मे अवगाहन करने लगे, अपने ध्येय मे सकल्परत। किंतु जैसा सदैव से होता आया—बुरा काम करने मे लोग तटस्थ रहते हैं किंतु अच्छे काम मे चौक उठते हैं। प्रयाग की साहित्यिक-सास्कृतिक सस्थाओ का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष विरोध मुखर होने लगा।

इसी बीच मई का महीना आ गया। अपना दायित्व एव 'लोकायन' की गोष्ठियो और नाटको के अभिनयो के लिए एक बडे हाल वाले घर खोजने का दायित्व अपने सहयोगियो पर छोडकर प्रथम सप्ताह मई '४८ मे पत अपने भतीजे अम्बादत्त पत तथा शेखर परिवार[2] के साथ अल्मोडा आ गए। मार्ग

पं० सुमित्रानन्दन पंत।" धर्मवीर भारती, धर्मयुग, वर्ष १८ अंक : १७ (४ जून १९६७), जिस स्पर्द्धा एवं तुलना की ओर भारती जी ने इंगित किया है यदि उसकी चर्चा के पूर्व वे 'साहित्यकार संसद्' की स्थापना का वर्ष पता लगा लेते तो अपने आप बहुत बड़ी तथा अनुचित भ्रांति का निराकरण हो जाता। पंत ने अगस्त-सितम्बर १९४२ में 'लोकायतन' की योजना बनाई और 'साहित्यकार संसद' की स्थापना सन् १९४४ में हुई।

१. देखिए परिशिष्ट—१

२. पंत के साथ उनके वकील मित्र श्री शेखर शरण की पत्नी श्रीमती सावका शरण, उनके दो बच्चे तथा श्रीमती सावका शरण की भतीजी भी अल्मोड़ा गए। श्रीमती सावका शरण बीमार थीं। डॉक्टर ने जलवायु

मे साथ वालो के दायित्व बोध ने मन को इतना घेर लिया कि बरेली मे गाडी बदलते समय उनका सामान, दो बक्से जिनमे कपडे तथा रुपए थे, गाडी मे ही छूट गए। सामान खो जाने से पर्याप्त कठिनाई उठानी पडी। तत्काल बदलने के लिए कपडे चाहिए थे। दूसरो के कपडे वे पहिन नही सकते है और फिर ऐसे माँग कर काम कब तक चल सकता था? अल्मोडा पहुँचते ही उन्होने अपना पुराना दर्जी ढूढ निकाला—हर एक दर्जी उनके कपडे सी भी तो नही सकता था। थोडे से कपडे बनवाए ही होंगे कि देहरादून से एक सज्जन का पत्र उन्हे मिला कि बक्से उनके पास सुरक्षित है—एक बक्स के अदर पत की तस्वीरें थी जिससे उन्होने अनुमान लगाया कि बक्से पत के है और साथ ही उन्होने एक तस्वीर लेने की इच्छा भी प्रकट की थी। इसमे क्या आपत्ति हो सकती थी। पत ने तत्काल अम्बादत्त को देहरादून भेज कर अपना सामान मँगवा लिया।

अपनी व्यक्तिगत कठिनाइयो से उबरते ही उन्हे 'लोकायन' की चिता सताने लगी। निरतर अपने मित्रो विशेषकर बच्चन जी, टण्डन जी को पत्र लिख कर घर खोजने का प्रयत्न करते। स्वय भी 'लोकायन' की प्रगति के बारे मे सोचते, भावी कार्यक्रमो की रूपरेखा बनाते। उनकी दृष्टि मे रगमच सास्कृतिक जागरण एव विचारो के सप्रेषण के लिए एक सशक्त माध्यम था। अत उन्होने इस काल मे दो नाटक लिखे 'चौराहा' और 'खँडहर'। साथ ही 'लोकायन' की मुख पत्रिका 'लोक चेतना' के दो अको की सामग्री भी एकत्रित की। पत्रिका का प्रकाशन तथा नाटको का अभिनीत होना एक ऐसे घर की अपेक्षा रखता था जहाँ कम-से-कम एक अच्छा हॉल तथा एक छोटा ऑफिस का कमरा हो और इसके लिए प्रयाग आकर स्वय प्रयास करने की आवश्यकता थी। अब केवल प्रतीक्षा थी जुलाई के आगमन की क्योकि जुलाई मे ही इलाहाबाद के लिए प्रस्थान कर सकते थे। जून मे पहाड से इलाहाबाद जाना न विवेकसम्मत था और न जून की असह्य गर्मी एव लू मे दौड धूप ही सभव थी। अत जुलाई प्रारंभ होते ही वे इलाहाबाद आ गए।

जुलाई १९४८ मे प्रयाग आकर पत बेली रोड ठहरे। एक घर स्वतत्र रूप से लेने का विचार कर रहे थे जिसका आधा भाग 'लोकायन' के काम

परिवर्तन की उन्हें राय दी थी। शेखर शरण कार्याधिक्य के कारण पहाड़ नहीं जा सके। अतः पंत शेखर शरण के परिवार वालों के साथ देवदार होटल की काटेज में इस बार ठहरे।

आता और आधे मे स्वय रहते। पूरा घर न भी मिलता तो उसी के पास किसी अन्य घर मे कमरा लेकर रह लेते। 'लोकायन' की प्रेरणा ने सभवतः प्रथम और अतिम बार पत को स्वतंत्र रूप से रहने के लिए प्रोत्साहित किया, क्योकि दूसरे के साथ रह कर उनकी सुख-सुविधा को भूला नही जा सकता और ऐसे सास्कृतिक सामाजिक कार्य इस प्रकार के नियत्रण को स्वीकार करके प्रगति नही कर सकते। कलक्टर और टाउन राशनिग अफसर के पास जाते-जाते वे थक गए। कुछ खाली घरो के बारे मे भी लोगो ने उन्हे बताया किंतु यह सब बालू को सीचना ही था—घर देने के नियम, मुख्यतः अधिकारी एव शासक वर्ग की आवश्यकता की पूर्ति के लिए होते है न कि नागरिको के सास्कृतिक जीवन की अभिवृद्धि के लिए। उस पर प्रयाग के साहित्यिक वातावरण मे 'वादो' के मेघ मँडराने लगे थे। यह साहित्यिक गुटबदियो का जन्म काल था। विचारो की विभिन्नता सदैव ही स्वस्थ दृष्टिकोण के विकास मे सहायक होती है पर जब मतभेद कटुता को जन्म देता है तो गुटबदी प्रतिबद्धता को अपना लेती है और वह अपनी गति अवरुद्ध करने के साथ ही चारो ओर के वातावरण को भी विषाक्त कर देती है। पारस्परिक 'वादो' की ध्वजाओ ने प्रयाग के साहित्यिक समाज को प्रगतिवाद-प्रयोगवाद आदि शिविरो में विभाजित कर दिया था। प्रयाग मे वही कुछ कार्य कर सकता था जो इनमे से किसी एक मे सम्मिलित हो जाए क्योकि इनमे न केवल नया आवेश, नया रक्त तथा आयु और क्षमता थी वरन् सगठन की वह शक्ति भी थी जो किसी योजना को कार्यान्वित करने के लिए अनिवार्य है। अपनी तथा नयी पीढी से किसी प्रकार की आशा रखना व्यर्थ ही था। पुरानी पीढी के पास आयु की सीमा के कारण कार्य शक्ति की न्यूनता थी और नयी पीढी—नए क्षितिजो के प्रति प्रतिश्रुत थी, उसके अपने आदर्श थे, अपना आवेश एव कुछ करने की आकुलता से वह स्वय उद्वेलित थी। फिर पुरानी और नयी-पीढी इतिहास और मनोविज्ञान ने दोनो के अतर को माना है। सरकार की ओर से किसी प्रकार की सहायता का योगदान मिल नही रहा था। पत को 'लोकायन' की गति ढीली करनी पडी यद्यपि उसके लिए भवन वे पूर्ववत् खोजते रहे। और उपाय ही क्या था ?

बेली रोड मे वे जुलाई '४८ से अप्रैल '४६ तक रहे, सशुल्क अतिथि के रूप मे। यहाँ का जीवन नियमित था। बहुत सबेरे उठ जाते, नहा कर ध्यान करते और फिर चाय पीकर अपने काम मे लग जाते थे। ध्यान और नहाने का पत के लिए कोई अनिवार्य सम्बन्ध नही है। किंतु जहाँ जैसी सुविधा होती

है वहाँ उस ढग से वे अपनी दिनचर्या निर्धारित कर लेते हैं। अपने मे ही सतुष्ट उनके मन को बाहरी बाधाएँ कुछ क्षणो के लिए ही छू पाती है। जहाँ दूसरो के साथ रहने की बात है वहाँ उनके सौजन्य के आभार मे ही मन इतना डूबा रहता है कि वह कठिनाई का आभास तक नही पाता। बेली रोड निवास काल मे ही उन्होंने 'युगातर' की कुछ रचनाएँ तथा 'उत्तरा' लिखी, 'लोकायन' के सबद्ध मे कुछ गोष्ठियाँ की तथा साथ ही आकाशवाणी के सास्कृतिक कार्य-क्रमो मे अभिरुचि लेने लगे। यही सन् '४८ मे उन्हे २०००) रुपये का देव-पुरस्कार तथा सन् '४६ मे इसी राशि का डालमिया पुरस्कार मिला।

● ●

६

'युगपथ' तथा 'उत्तरा'

●

बापू की निर्मम हत्या से सतप्त होकर पत और बच्चन जी ने अपनी श्रद्धाजलि स्वरूप जो कविताए लिखी थी वे 'खादी के फूल' के नाम से एक सयुक्त सकलन के रूप मे मई १९४८ में भारती भण्डार से प्रकाशित हो गयी थी। पत ने 'खादी के फूल' मे सगृहीत अपनी रचनाओ का समावेश 'युगपथ'[1] मे 'युगातर' के अतर्गत भी कर लिया, जो कि इसी साल, सन् '४९ मे, भारती भण्डार से प्रकाशित हुआ। 'युगपथ'[2] दो भागो मे विभक्त है। प्रथम भाग 'युगात' है जो १९३६ मे स्वतत्र पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ था जिसमे सन् '३४ से लेकर सन् '३६ तक की तैंतीस छोटी-बडी रचनाए सकलित हैं और जो पहिले इन्द्रा प्रिन्टिग वर्क्स, अल्मोडा से प्रकाशित हुआ था। 'युगपथ' का दूसरा भाग 'युगातर' है जिसमे सकलित रचनाए १९४८ मे लिखी गई थी। 'युगांतर' के अतर्गत छोटी-बडी तैंतीस रचनाए हैं। इसकी अधिकाश रचनाए बापू की पुण्य स्मृति मे ही है, जो 'खादी के फूल' मे भी सकलित हैं। इसकी शेष रचनाएं भी, जिन्हे पत ने अपने बेली रोड निवास काल मे लिखा, मुख्यत भारत के युग पुरुषो पर ही हैं। इस प्रकार 'युगातर' की रचनाए भारत की महान् विभूतियो तथा भारत और भारत की स्वतत्रता सम्बन्धी हैं। तीन रचनाए अतुकांत भी है—कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति, श्री अवनीन्द्र नाथ ठाकुर की ७५वी वर्षगाठ पर तथा मर्यादा पुरुषोत्तम के प्रति।

---

१. प्रथम संस्करण : भारती भंडार, इलाहाबाद। वर्तमान संस्करण : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-६

२. देखिए—प्रथम खण्ड अध्याय १९ 'सुमित्रानन्दन पंत : जीवन और साहित्य' : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-६

'युगातर' अवसादकालीन रचनाओ का सग्रह है। कवि का मन व्यथित है किंतु व्यथा की तीव्रता को वह आत्मिक सत्य का सदेश देता है।

'क्या क्षण भगुर तन के हो जाने से ओझल
सूनेपन मे समा गया यह सारा भूतल ?'

और इसलिए वह कहता है कि नाम-रूप की सीमाओ से मन को मुक्त कर हमे उस आदर्श को मूर्तिमान करने का प्रयत्न करना चाहिए जिसके बापू प्रतीक थे।

'आओ, उसकी अक्षय स्मृति को नीव बनाए,
उस पर सस्कृति का लोकोत्तर भवन उठाए।'

... ...

'देव तुम्हारी पुण्य स्मृति बन ज्योति जागरण
नव्य राष्ट्र का आज कर रही लौह सगठन।'

भारतीय परम्परानुकूल गाधी जी पर आँसू बहाने के बदले पत उनकी पुण्य स्मृति को अक्षुण्ण बनाए रखना चाहते है। गाधी जी सास्कृतिक जागरण के प्रतीत हैं, उनका व्यक्तित्व जन भारत को गंभीर सास्कृतिक प्रेरणा देता है तथा नश्वर देह-त्याग उनकी आत्मा को विश्वात्मा बना देता है। अब वे जन-मन मे प्रतिष्ठित हो गए है ·

'आत्मा का वह शिखर, चेतना मे लय क्षण मे,
व्याप्त हो गया सूक्ष्म चाँदनी सा जन मन मे !'

बापू ने अहिंसा एव व्यापक मनुष्यत्व का सदेश देकर मानव हृदय को आलोकित किया है। आज उनके निधन पर समस्त प्रकृति, प्रकृति के तृण तरु मूक प्रार्थनारत तथा समीरण श्वास रोक कर ध्यान मग्न है। किंतु ये सब भूल गए हैं कि क्षणभगुर तन के ओझल हो जाने से आत्मा का विनाश नही होता है। वह मात्र नाम रूप का अतिक्रमण कर, अरूप बन, पृथ्वी पर अपना आशीर्वाद बरसा रही है। मा धरती के नत आनन को आँसुओ से ढका देख कवि उसे सान्त्वना देता हुआ कहता है कि तू विषाद की शिला क्यो बन गई है। गाधी की धरित्री तूने अमरो को जन्म दिया है। तू तो स्वर्ग से परिणीता रही है।

हिम किरीटिनी अब तू शीश मत झुका। गाधी ने देह त्याग द्वारा अमरता को प्राप्त कर लिया है और अब धरती पर गाधी युग अवतरित होगा।

'देख रहा हूँ, शुभ्र चाँदनी का सा निर्झर
गाधी युग अवतरित हो रहा जन धरणी पर।'

पत के 'खादी के फूल' श्रद्धा के फूल है जो गाधी जी की चेतना के प्रतीक है।

कवीन्द्र रवीन्द्र, श्री अरविंद तथा मर्यादा पुरुषोत्तम के प्रति कविताए भारत के सास्कृतिक जागरण के लिए आशीर्वादपरक प्रार्थनाए है। द्रष्टा कवि ने देख लिया कि राजनीतिक जागरण और स्वतत्रता बिना सास्कृतिक जागरण के व्यर्थ है। कवीन्द्र से वे कहते हैं :

'भूल गया मानव निज अतर्जग का वैभव,
जीवन का सौंदर्य, प्रेम, आनद सूक्ष्म से
उत्तर नही पाते जन भू पर ! सृजन चेतना
निष्क्रिय होकर पगु पडी है। धरा स्वर्ग को
स्वप्न चपल पंखों से आज नही छू पाती'
... ...

'मानव के नयनो से शाश्वत का प्रसन्न मुख
अस्त हो गया यह वसुधरा निरानद है'
... ...

'आओ तुम, जीवन वसत के अभिनव पिक बन,
धरा चेतना हँसे सास्कृतिक स्वर्णोदय मे!'

यही प्रार्थना मर्यादा पुरुषोत्तम से भी की गई है·

'एक बार फिर उतरो, अतर्मन के सारथि,
भू की आकाक्षा के नव विकसित शतदल पर,
आज मनोजीवन, प्राणो के जीवन के स्तर
जीर्ण, विरस, विश्री लगते, सौदर्यहीन हो'
× × × ×
'नव जीवन सौंदर्य पद्म मे विहँस उठें फिर
अंतर मे भर अतिचेतन पावक पराग कण,

प्राणो की सौरभ-विद्युत् से हर्षित कर दिक् !
हृदय कमल मे भू के फिर उतरो पुरुषोत्तम !'

और फिर श्री अरविंद से जन-जीवन के कल्याण के लिए याचना करते हैं :

'स्वर्मानिस से उठ, उतरो, प्रभु, जन मन के शिखरो पर,'

पत का सपूर्ण अध्यात्म, चेतनावाद एव आस्था जन-जीवन मे केंद्रित है। इससे भिन्न वे किसी सत्य को स्वीकार नही करते है। विश्व जीवन के कल्याण के लिए ही वे श्री अरविंद से स्वर्मानिस से उतर कर धरा मुख सस्मित करने अथवा मर्त्य शोक को अमृत चेतना के प्लावन मे मज्जित करने की मनुहार करते हैं।

'युगातर' मे तीन भारत गीत, भारत की यशोगाथा के ओज और शौर्य से पूर्ण हैं। साथ ही वे भारत के भौगोलिक-सास्कृतिक रूप के परिचायक हैं। भारत की मुक्त चेतना के गीतो की ये झकारे भारत की आत्मा का प्रतिबिंब हैं।

'स्वतत्रता दिवस', 'स्वाधीन दिवस', 'जयगान', 'स्वाधीन चेतना' 'जागरण', 'दीपलोक', 'दीप श्री' और 'आवाहन' भारत की राजनैतिक स्वतत्रता की जय-ध्वनि मात्र है। कवि का मन हर्षोन्मत्त नही है क्योकि बिना आतरिक जागरण एव व्यापक जीवन जागरण के राजनैतिक स्वतंत्रता देश की उन्नति और कल्याण मे सहायक नही हो रही है।

'मिट्टी से ही सटे रहेगे
क्या भारत भू के भी जन गण
क्या न चेतना शस्य करेंगे
वे समस्त पृथ्वी पर रोपण ?'

× × × ×

'शत सहस्र दीपो से भी, अह,
बन न सकेगा जन पथ विस्तृत
दीप शिखा कहती सिर धुन कर
जब तक होगा हृदय न ज्योतित।'

मिट्टी के खिलौने' मे भी पत जन जीवन के कल्याण के लिए व्याकुल हैं :

'तुम कैसे रह सकते केवल
अंतर प्रकाश ही मे सीमित
तुम मूर्तिमान बनते जन मे
क्षर रूप धन्य होता निश्चित।'

'स्वप्न-गीत' लोरी की सरसता, मृदुता और ममत्त्व लिए वह गीत है, जो सौ० सुशीला जी के शीघ्र ही माँ बनने की सूचना प्राप्त होने पर लिखा गया तथा जिसमे नरेन्द्र जी को चिढाने के लिए 'बापू को पाओगे बदर' कहा गया है।

'अवतरण', 'स्वप्न पूजन', 'प्रकाशक्षण', 'अतर घन', 'अमर स्पर्श', 'प्रीति परिणय' तथा 'नव आवेश' तादात्य के बोध से भीगी हुई अनुभूति और साधना प्रधान रचनाएँ है :

'खुल गए साधना के बधन,
सगीत बना, उर का रोदन,
अब प्रीति द्रवित प्राणो का पण;
सीमाएँ अमिट हुईं सब लय।'

× × × ×

'जग से परिचय, तुमसे परिणय।'

× × × ×

'बजते नि.स्वर नूपुर मर्मर,
सुन पडते अश्रुत वशी स्वर,
बुद्धि चकित रहती, बज उठता
उर मे स्वागत गायन'

पत के लिए दिव्यानुभूति विश्व-जीवन से परे नही है। वैयक्तिक अनुभूति का उल्लास विश्व जीवन मे गहरी पैठ दे देता है

'जब तक होगी क्राति समापन
वाछित होगा विश्व सगठन,
एक नवल आवेश करेगा
मानव अतर धारण।'

और 'उद्बोधन' मे वे आत्म-चेताओ से जीवन के प्रति भावात्मक दृष्टिकोण अपनाने के लिए कहते है। यही 'त्रिवेणी' का भी विषय है। गगा यमुना तथा सरस्वती के वार्तालाप के माध्यम से भारत के अतीत की स्मृतियो के छाया-प्रकाश द्वारा अतर और बाह्य सचरण के ऐक्य को अनिवार्य बतलाते हुए वे जन मगल का आवाहन करते है।

'युगपथ' भारत की सक्रातिकालीन स्थिति का दर्पण है। भारत के सास्कृतिक शैथिल्य तथा रूढि रीति जर्जरित जीवन पर दु खी होने पर भी पत को विश्वास है कि भारत का भविष्य उज्वल है क्योकि वह आत्मिक सत्य का वाहक है। अवश्य ही एक दिन भारत प्रबुद्ध होकर न केवल अपना कल्याण करेगा वरन् वह विश्व जीवन का प्रतिनिधित्व करेगा, उसी मे वह क्षमता है जो विश्व मे नव-जीवन सचार कर सकती है। युग जीवन युद्ध के बादलो से विषाक्त हो रहा है एव वैज्ञानिक बुद्धि ने मानव को त्रस्त कर दिया है। पत को पूर्ण विश्वास है कि भारत अपने सास्कृतिक जागरण द्वारा धरती को शिवमय बना देगा—उसका सास्कृतिक आदर्श अवास्तविक नही है, वह भू एव पृथ्वी का जीवन है।

'इस धरती के रज के तम मे
अग्नि बीज रे दबे चिरन्तन,
फूटें ज्योति प्ररोहो मे वे
पा जागृति का लोक समीरण।'

'उत्तरा'[1] का प्रकाशन सन् १९४९ मे हुआ। इसकी प्रस्तावना का एक विशिष्ट महत्त्व है। इसमे पत ने 'स्वर्ण किरण, स्वर्ण धूलि' के उन प्रगतिशील आलोचको को उत्तर दिया है[2] जो काव्य को 'रूस और चीन की प्रशसा,' 'कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो' 'वर्गयुद्ध', 'पूजीवाद की रक्त पिपासा', 'सर्वहारा वर्ग की दशा' के वर्णन तक सीमित रखना चाहते हैं अथवा उन सिद्धातो की बेसिर पैर की खिल्लियाँ उडाने तक जो 'कुत्सित समाजवाद' को पूर्णरूपेण नही अपना लेते हैं। 'उत्तरा' की प्रस्तावना मे पत का कहना है, "मैं मार्क्सवाद की उपयोगिता एक व्यापक समतल सिद्धात की तरह स्वीकार कर चुका हूँ।

---

१. 'उत्तरा,' प्रथम संस्करण : प्रकाशक—भारती भण्डर, इलाहाबाद वर्तमान संस्करण : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-६

२. डा० नगेन्द्र : 'विचार और विश्लेषण', पृ० १०१

किंतु सास्कृतिक दृष्टिकोण से उसके रक्त क्राति और वर्ग युद्ध के पक्ष को मार्क्स के युग की सीमाएँ मानता हूँ मेरा दृढ विश्वास है कि केवल राजनीतिक, आर्थिक हलचलो की बाह्य सफलताओ द्वारा ही मानव जाति के भाग्य (भावी) का निर्माण नही किया जा सकता। इस प्रकार के सभी आदोलनो को परिपूर्णता प्रदान करने के लिए, ससार मे, एक व्यापक सास्कृतिक आदोलन को जन्म लेना होगा जो मानव चेतना के राजनैतिक-आर्थिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक—सपूर्ण धरातलो मे मानवीय सतुलन तथा सामजस्य स्थापित कर आज के जनवाद को विकसित मानववाद का स्वरूप दे सकेगा, जिसका पूर्वाभास हमे, इस युग की सीमाओ के भीतर, महात्माजी के व्यक्तित्व मे मिलता है। ''मैं वर्गहीन सामाजिक विधान के साथ ही मानव अहता के विधान की भी नवीन चेतना के रूप मे परिणति सभव समझता हूँ और युग-सघर्ष मे जन सघर्ष के अतिरिक्त अतर्मानव का सघर्ष भी देखता हूँ। बाह्य जीवन के साथ ही उसकी अतश्चेतना मे भी युगातर होना अवश्यम्भावी है। ('युगवाणी')— इसी, नवीन चेतना की मन क्रीडा, उसके आनन्द और सौंदर्य, उसकी आशा-विश्वासप्रद प्रेरणाओ के उद्बोधन गान मेरी इधर की रचनाओ के विषय है, जो जन-युग के सघर्ष मे मानव-युग के उद्भव की स्वप्न सूचनाएँ भर है। यदि पुरानी दुनिया (मध्य युग) अति वैयक्तिकता के पक्षपात से पीडित थी तो नई दुनिया अति सामाजिकता के दलदल मे फँसने जा रही है, जिसका दुष्परिणाम यह होगा कि कालातर मे मनुष्य की सुख-शाति एक किमाकार यात्रिक तत्र के दुःसह बहिर्भूत भार से दब जायेगी और वैयक्तिक अत'सचरण का दम घुटने लगेगा। हमे व्यावहारिक दृष्टि से भी व्यक्ति तथा समाज को दो स्वतत्र अन्योन्याश्रित सिद्धातो की तरह स्वीकार करना ही होगा। ' मुझे ज्ञात है कि मध्य युगो से हमारे देश के मन मे अनेक प्रकार की विकृतियाँ, सकीर्णताएँ तथा दुर्बलताएँ घर कर गई हैं,' किंतु बाहर की इस काई को हटा लेने के बाद भारत के अतश्चेतन मानस मे जो कुछ शेष रहता है, उसके जोड का आज के ससार मे कुछ भी देखने को नहीं मिलता है, और यह मेरा अतीत का गौरवगान नही, भारत के अपराजित व्यक्तित्व के प्रति विनम्र श्रद्धाजलि मात्र है। 'आज की विनाश की ओर अग्रसर विश्व-सभ्यता को अत स्पर्शी मनुष्यत्व का अमरत्व प्रदान करने के लिए हमारे मनीषियो, बुद्धिजीवियो तथा लोकनायको को कितना अधिक प्रबुद्ध, उदार-चेता तथा आत्म-सयुक्त बनने की आवश्यकता है।' ''''भारत का दान विश्व को राजनीतिक तत्र या वैज्ञानिक

यत्र का दान नही हो सकता, वह सस्कृति तथा विकसित मनो यत्र की ही भेंट होगी अणु-मृत मानव-जाति के पास अहिंसा ही एकमात्र जीवन-अवलम्ब तथा सजीवन है। ··मैं जनता के राग-द्वेष, क्रोध तथा असतोष को भी आदर की दृष्टि से देखता हूँ, क्योकि उसके पीछे मनुष्य का हृदय है, किंतु युग-सचरण को वर्ग-सचरण मे सीमित कर देना उचित नही समझता।······ सामाजिक दृष्टि से मै असगठन को माया तथा सगठन (जिसमे बहिरतर दोनो सम्मिलित है) को प्रकाश या सत्य कहता हूँ····'सस्कृति को हमे अपने हृदय की शिराओ मे बहने वाला मनुष्यत्व का रुधिर कहना चाहिए, जिसके लिए मैंने अपनी रचनाओ मे सगुण, सूक्ष्म सगठन या मनःसगठन तथा लोकोत्तर, देवोत्तर मनुष्यत्व आदि शब्दो का प्रयोग किया है। 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण धूलि' मे मेरी 'ज्योत्स्ना'-काल की चेतना सभवत. अधिक प्रस्फुटित रूप मे निखर आई है। अपनी नवीन अनुभूति के लिए, जिन्हे मैं अपनी सृजन-चेतना का स्वप्न-सचरण या काल्पनिक आरोहण समझता था मुझे किसी प्रकार के बौद्धिक तथा आध्यात्मिक अवलम्ब की आवश्यकता थी। इन्ही दिनो मेरा परिचय श्री अरविंद के 'भागवत जीवन' से हो गया' मैंने अपने समकालीन लेखको तथा विशिष्ट व्यक्तियो पर समय-समय पर स्तुति-गान लिखने मे सुख अनुभव किया है। हमारे तरुण बुद्धिजीवी श्री अरविन्द के जीवन दर्शन से भारत की आत्मा का परिचय तथा मानव और विश्व के अतर-विधान का अधिक परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लाभान्वित हो सके। आज हम छोटी-छोटी बातो के लिए पश्चिम के विचारको का मुँह जोहते हैं, इसका कारण यही हो सकता है ''मानसिक दासता की शृखलाएँ अभी नही टूटी है'' जिससे हम आज की जाति-पाँति वर्गों मे विकीर्ण तथा आर्थिक राजनीतिक आदोलनो से कपित धरती को उन्नत मनुष्यत्व मे बाध कर विश्व मदिर या भू-स्वर्ग के प्रागण मे समवेत कर सके।"[१]

'उत्तरा' की इस प्रस्तावना ने लोगो के मन से मार्क्सवादी कट्टरता के भ्रम का तो निराकरण कर दिया किंतु अपनी सहज अभिव्यक्तियो द्वारा एक दूसरे

---

१. पृ० ६-२६ तथा देखिए 'पंत का पत्र बच्चन के नाम' (बच्चन: 'कवियों में सौम्य संत' कुछ पत्र, पृ० ७०) "श्री अरविंद के बारे में मैंने जो लिखा है ('उत्तरा' की भूमिका में) वह केवल भारतीय दर्शन-धारा की ओर आज के पश्चिमी विचारों से पराजित युवकों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए" (२६ जून १६४६)।

महत्तर श्रम को भी जन्म दे दिया। इस प्रस्तावना मे पत ने गाधी जी, श्री अरविंद तथा भारत की आध्यात्मिक थाती के महत्त्व को समझाया है। लेकिन आलोचको एव पाठको ने इस सत्य को विस्मृत कर सपूर्ण भूमिका का अर्थ न जाने किस भाति लगाया कि उन्हे सर्वत्र केवल श्री अरविंद ही दिखाई दिए। उन्होने एकदम निर्णय दे दिया कि 'उत्तरा' मे पत अरविंद के स्वर मे बोल रहे है अथवा पत पूर्ण अरविंदवादी हो गए हैं। ऐसे तथ्य की अकस्मात् प्राप्ति ने पत के ज्योत्स्ना कालीन (१९३३-३४) मोड एव विकास को श्री अरविंद के दार्शनिक सिद्धात का विषय बना दिया। पत के काव्य का मूल्यांकन करने के विपरीत वे श्री अरविंद दर्शन पर शोध करने लगे और 'उत्तरा' की प्रस्तावना के इस मूल वाक्य को भूल गए—"अपनी नवीन अनुभूतियो के लिए, जिन्हे मै अपनी सृजन-चेतना का स्वप्न-सचरण या काल्पनिक आरोहण समझता था मुझे किसी प्रकार के बौद्धिक तथा आध्यात्मिक अवलम्ब की आवश्यकता थी।"[1] साथ ही पत काव्य एव पत व्यक्तित्व से परिचित व्यक्ति कैसे इस तथ्य को सरलता से भूल जाते हैं कि पत जब भी किसी की प्रशसा करते है तो मुक्त कठ एव उन्मुक्त हृदय से।

'उत्तरा' आने वाली एव आगामी पीढी के जीवन का चित्रण है। युगात से 'स्वर्ण धूलि' तक विशेषकर 'ग्राम्या' तक पत के स्वर मे जो विद्रोह और अंतः सघर्ष था वह 'उत्तरा' मे आकर शात हो जाता है।[2] नदतिक अनुभूति

---

१. 'उत्तरा', पृ० २१-२२

२. "'युगांत' में जिस नयी काव्य-कला का आरंभ हुआ, 'युगवाणी' में जिसे तारुण्य और 'ग्राम्या' में सारल्य मिला, 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि' में जिसका यौवन अन्तःप्रस्फुटित हुआ, उस काव्य-कला की गीतमयी आत्मा 'उत्तरा' में है।'' ' छायावाद का माधुर्य प्रगतिवाद के ओज में परिणत हो गया है। प्रायः एक दशाब्दी बाद 'उत्तरा' में वही (छायावाद) नवीन रोमान्टिसिज्म जीवन्त हो उठा है।"

शांतिप्रिय द्विवेदी : 'ज्योति-विहग' पृ० ४२८-२९, हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग : (द्वितीय संस्करण)।

"'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि' में जो भावना अरविन्द दर्शन का आश्रय लेकर खड़ी हुई थी वह 'उत्तरा' में आकर अपने पैरों पर गतिशील होती है। भावना, विवेक से बल संचित करती है और श्रद्धा और विश्वास से ऊर्जस्व।" बच्चन : 'कवियों में सौम्य संत,' पृ० १२३

और भाव वैभव मे डूबे हुए 'उत्तरा' के गीत तादात्म्य, समर्पण और आनन्द के गीत है। न इन गीतो मे 'गुजन-सा' चमत्कृत उल्लास है और न 'वीणा' की वह आश्चर्यमय भावना जो अपनी प्रसन्नता के रहस्य से अनजान है। 'उत्तरा' मे विचार और भावना दोनो ही शात है— चेतना विभा से सद्य स्नात है, मात्र अनुभूति का प्रकाश, सत्य के स्वत' प्रस्फुटित होने का आनन्द ! 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि' की आस्था और परम्परा 'उत्तरा' मे घनीभूत हो जाती हैं। अब हृदय मे कोई सशय नही है, सत्य का प्रकाश स्वतः प्रामाण्य है जिसे युग की वास्तविकना से सींच कर कवि ने ग्राह्य तथा यशस्वी बनाया है। व्यक्ति और विश्व, विचार और भावना, आत्मिक और भौतिक उन्नति एक ही होकर जीवन विकास की प्रगति मे सहायक हो गए है।

> 'बदल रहा अब स्थूल धरातल,
> परिणत होता सूक्ष्म मनस्तल,
> विस्तृत होता वहिर्जगत अब
> विकसित अतर्जीवन अभिमत।'[१]

"'उत्तरा' मे न केवल लम्बी कविताओ का पूर्ण अभाव ही है, वरन् कवि ने पंक्तियो को विचार या भाव-बोझिल होने से प्रायः बचाया ही है। 'उत्तरा' मे पंत पूर्णतः प्रगीत-मुक्तक के कवि हैं, अतः इसकी रचनाओ में सर्वत्र गेयता का प्राचुर्य हमें मिलेगा।"

प्रो० अरविन्द : 'पंत की काव्य साधना', पृ० १५६, शुक्ला बुक डिपो, पटना (१९५३)।

१. 'इस प्रकार के भाव को ध्वनित करने के लिए कवि ने अनेक कविताएँ लिखी हैं। 'युग विषाद', 'युग छाया', 'युग संघर्ष', 'जागरण गान', 'गीत विहग', 'उद्‌बोधन' आदि कविताओ में जिस नव-मानवता की ओर संकेत किया है उसकी पृष्ठभूमि में आध्यात्मिकता का गभीर पुट है। उसे हृदयंगम करने के लिए सहृदय को वैसे ही मानस-आवेष्टन की आवश्यकता है जैसे आवेष्टन में कवि ने उसे अंकित किया है। इसके साथ ही एक बात और ध्यान मे रखनी होगी कि इनमें एक प्रकार का मानसिक अध्याहार भी है। उसे ग्रहण किए बिना कविता के अन्तस्तल में पैठना संभव न होगा।" विजयेन्द्रस्नातक : 'उत्तरा' में पन्त का अध्यात्मवाद'। 'सुमित्रानंदन पंत' : सं० शचिरानी गुर्टू, पृ० ३३४

प्रेम, प्रार्थना और आनन्द एव चेतना के सौदर्य की 'उत्तरा' निर्झरणी है। इस निर्झरणी की तरगे अपने अनत रूप रगो मे एक ही स्त्रोत और लक्ष्य की प्रतीक है। इसकी तरगमयी प्रगीतो की भाषा मे सारल्य तथा प्रवाह मे वैचित्र्य है। विचारो और प्रेरणाओ के अनुरूप वे विभिन्न छंदो से युक्त हैं।

भौतिक जगत् मे जो सर्वत्र कटुता, निराशा, विद्रोह और ध्वस की अग्नि धधक रही है वह विश्वव्यापी चेतनात्मक क्राति को जन्म दे रही है। कवि का यह ध्रुव विश्वास है कि महत् अतःक्राति ही मानव जीवन मे एक महान् परिवर्तन तथा रूपातर उपस्थित कर सकेगी। वह करुणाकर से अतर को प्रकाशित करने की याचना करता है.

'गरज रहा उर व्यथा भार से
गीत बन रहा रोदन,
आज तुम्हारी करुणा के हित,
कातर धरती का मन।

... ..

'नाचेगा जब शोणित चेतन,
बदलेगा तब युग निरुद्ध मन,
कट मर जाएगे युग दानव,
सुर नर होगे भाई।'

'उत्तरा' के गीतो द्वारा कवि ने सकेत किया है कि मानव मन तब तक दग्ध रहेगा जब तक कि उसमे अत. सत्य का सास्कृतिक ऐश्वर्य, मनोवैभव और जीवन-सौदर्य पूर्ण प्रस्फुटित नही हो जावेंगे। अत. उसके गीत अतः सत्य के सदेशवाहक है :

'जीवन मन के भेदो मे सोई मति को
मैं आत्म एकता मे अनिमेष जगाता;
तम-पगु, बहिर्मुख जग के बिखरे मन को
मैं अतर सोपानो पर ऊर्ध्व चढाता!

× × × ×

'स्वर्ग भूमि हो भू पर भारत,
जन मन धरणी सदर

अतर ऐश्वर्यों से मंडित
मानव हो देवोत्तर'

'जगत घन' विश्व मे दिव्य अनुकपा की आकाक्षिणी रचना है।

'जब जब घिरें जगत घन मुझ पर
करूँ तुम्हारा चिंतन,
ढँक जावे जब अतर्नभ मैं
करूँ प्रतीक्षा गोपन !'

यह आत्मपरक याचना नही है जैसा कि कुछ आलोचक समझते है। स्वयं भू-जीवन से युक्त होकर वे दिव्य से भू जीवन को मगलमय एव ज्योतिर्मय करने की प्रार्थना करते हैं क्योकि भू-जीवन और दिव्य चैतन्य को एक ही होना है। अतश्चेतना से रिक्त जीवन ही विषादपूर्ण जीवन है।

'जो बाहर जीवन सघर्षण,
जो भीतर कटु पीडा का क्षण,
वह तुम मे सतुलन ग्रहण कर,
बने उन्नयन नूतन !'

यही भाव अतर्व्यथा और उन्मेष मे है:

'खोलो उर वातायन
आए स्वर्ग किरण छन
भू स्वप्नो का नूतन
रचें इद्र धनु मोहन !

× × ×

श्रद्धानत हो जाता मस्तक
पा भव छाया दर्शन !'

'वन-श्री'; 'शरद चेतना', 'वसंत', 'चद्रमुखी', 'मुक्ति क्षण', 'जीवन प्रभात', 'भू-जीवन', आदि रचनाएँ प्रकृति वर्णन का रूप लिए नव जीवन एवं भागवत चेतना का निरूपण करती हैं। 'उत्तरा' की प्रकृति विषयक कविताएँ विशुद्ध प्राकृतिक सौंदर्य सपन्न नही हैं। प्रकृति के उपमान अतर्जीवन के आनद-

उल्लास को अभिव्यक्ति देते है। अब न तो कवि विशुद्ध प्राकृतिक सौदर्य मे रमता है और न प्रकृति के सुखद-मधुर रूप को देखकर विमुग्ध होता है। वह प्रकृति के विविध रूप-रगो मे भू-जीवन का ही प्रतिबिंब पाता है।

'फिर वसत की आत्मा आई
देव, हुआ फिर नवल युगागम
स्वर्ग धरा का सफल समागम !
× × ×
लो, अब खुला क्षितिज वातायन,
आई वन मे स्वर्ण किरण छन;
जगे नीड़ के मुखर विहग गण,
बरस रहे नभ से मगल स्वर !'

'उत्तरा' का आशावादी स्वर वर्तमान मानव को अभय का सदेश देता है। नव मानवता जन्म ले रही है। अत खर्व मनुजता का क्षय अवश्यम्भावी है। मनुज के अह का विश्वात्मा से, स्थूल भौतिकता का अध्यात्म से परिणय जीवन की अनिवार्य परिणति है। 'परिणय' इसी भाव को अभिव्यक्ति देता है,

'शाश्वत के मुख का
मानव मन जो हो दर्पण।
× × ×
फिर स्वर्ग बजाए
भू की हृत्तंत्री निश्चय,
जो ज्ञान भावना,
बुद्धि हृदय का हो परिणय !'

जीवन के बाह्य आकार का परिवर्तन उसकी अतर चेतना के वातायन खोल रहा है जो भू मगल की कामना को साकार कर देगा।

'मेघो के पर्वत' रचना प्रकृति के रूप और नाम के माध्यम से मानव मन की सीमाओ का विश्लेषण करती है। अवचेतन का तम आदोलित है क्योकि तृष्णा, अज्ञान, अह रूपी मेघ उसे घेरे हुए हैं। धरा चेतना सिंधु को ये उन्मथित कर रहे हैं किंतु इन मेघो को शीघ्र ही अंतर आभा का स्वर्णिम प्रकाश नव जीवन से युक्त कर देगा।

'शरद श्री' प्रकृति विषयक होने के साथ ही आत्म-विश्लेषणात्मक रचना है। यौवन के पश्चात् प्रौढ चेतना का शात स्वभाव दिव्य है।

'एक शाति सी, पावनता सी
विचर रही धरती पर नि स्वर,
छायातप मे, तृण अचल मे,
ज्वाल वसन कुसुमो के तन पर !'

'ममता', 'शरदागम', 'स्मृति', 'प्रतीक्षा', 'अनुभूति', आदि रचनाएँ भावावेग की दृष्टि से, प्रेमपरक कविताओ के वर्ग मे आती है। 'उत्तरा' भागवत प्रेम का गीतकाव्य ही है। जिसमे सब कुछ भागवतमय है :—

'तुम हँसते हँसते घृणा बन गए मन मे,
जन मंगल हित हे !
... ...
तुम देव, बनो चिर दया प्रेम जन जन मे,
जग मंगल हित हे !'

दिव्य के प्रति यह भाव जो उसे सर्वव्यापी और करुणामय के रूप मे देखता है 'उत्तरा' का जीवन है। यही 'उसकी' भावी पीढी के स्वर्णिम जीवन के आशावाद का जनक हैं। 'उत्तरा' के गीत जन मगलाशा और मानवता के गीत है; उनमे शिल्प की नवीनता है, भावभूमि की सरसता और प्रेरणा की सद्यःस्फुटता है। दिव्य और मानवता, भू जीवन और भागवत जीवन एक ही है। पत का कहना है कि 'उत्तरा' की कुछ रचनाएँ प्रतीकात्मक हैं, कुछ प्रकृति विषयक, कुछ धरती, कुछ युग-जीवन सबंधी तथा कुछ वियोग-शृगार विषयक तो कुछ प्रार्थनापरक गीत हैं।[1] किंतु 'उत्तरा' की रचनाओं को उनकी मूल चेतना के आधार पर समझने मे उनमे सर्वत्र प्राणो का स्वर्णिम पावक ही मिलता है, वे एक ही अमर आकाक्षा को विभिन्न स्वरों मे रूपायित करती हैं।

'जीवन-बाँहो में बाँध सकूँ
सौदर्य तुम्हारा नित नूतन,

---

१. 'उत्तरा' की प्रस्तावना।

जन मन मे मैं भर सकूँ अमर
सगीत तुम्हारा सुर मादन !
... ...

एक गीत हो जन भू जीवन
तुम जिसमे हो वदित !
...

मुझे प्रणति दो
प्रीति समर्पित प्राण कर सकूँ,
निज पद रति दो ।

और समर्पण का रहस्य दिव्य आभा का स्पर्श है :

'कब खुल गए हृदय के बधन,
अपलक-से रह गए विलोचन
... .

पलके भर अपार शोभा से
पाती तनिक न झँपने ।
. . ..

मोह भार से मुक्त हृदय मे
लगा हर्ष नव कँपने !"

हर्षाकुल मन निरह होने के कारण पत्र-पुष्प की अंजलि स्वरूप अपने को अर्पित कर देता है :

एक कली यह मेरे पास ।
तुम चाहो, इसको अपना लो
कर दो इसका पूर्ण विकास[1]

---

१. "पंत जी की स्तुतियो व आत्म-निवेदनो में 'अभिलाषा' कविता सर्वश्रेष्ठ मानी जा सकती है। कवि का सारा व्यक्तित्व हमारे सम्मुख उतर आता है :

'एक कली है मेरे पास,
.
'नव बीजो से, हो न विनाश ।'

यह कली भू-जीवन का अग है। इसका विकास भू-जीवन का विकास है। कवि वैयक्तिक मुक्ति को विश्व-मुक्ति के भीतर से ही वाछनीय मानता है।

कोमल भावनाएँ जगाने में पंत जी की कला अद्वितीय है। सिपाही समीक्षक लोग ऐसी कविताओं को भी स्वीकार नहीं करते। उन्हे सर्वत्र चीत्कार व चिंघाड़ना ही पसंद है यद्यपि उसका भी महत्व है, परन्तु मनुष्य की कोमल भावनाओ–शाति, सहानुभूति, स्नेह, विनीतता आदि को जो कला स्फुटित करती है उसका अपनी सीमा में मूल्य अवश्य है, अन्यथा सारे आत्म-निवेदन संबधी साहित्य को जला देना होगा। शास्त्र-कारो ने मन को द्रवित कर देने वाली इसी पद्धति को 'कान्ता सम्मित' कहा था। ऐसी कोमलता तो जीवन के लिए वांछनीय है ही, इस संबंध में दो मत नहीं हो सकते। जीवन में सब कुछ है, उसमें उपरोक्त कोमलता भी है तथा ललकार और चीत्कार भी। अपने में प्रत्येक महत्वपूर्ण है·· ·।"

विश्वम्भर नाथ उपाध्याय : 'पंत जी का नूतन काव्य और दर्शन', पृ० ६५८-६५९

"प्रकृति के काव्य प्रतीको में कवि की काव्य चेतना कहीं रसानुभूति (भक्ति और शृंगार) बन गई है और कहीं रागात्मिका वृत्ति (अभिलाषा, संवेदना, स्मृति)। इन प्रतीक चित्रो में प्रकृति केवल दृश्यमयी ही नहीं, बल्कि प्राणमयी भी हो उठी हैं; यथा—

'ऊषा आज लजाई,
ओसों के रेशमी जलद से
अधर रेख मुसकाई।
·· ···
एक कली जो मेरे पास
··· ··· ··· ···
यह हँसते-हँसते झर जावे,
एक कली जो मेरे पास
वह अभिलाष !

इस एक रूपक में पंत का समग्र जीवन दर्शन आ गया है, इसमें लोक-चेतना और ईश्वरीय-चेतना का समावेश हो गया है।"

शांतिप्रिय द्विवेदी : 'ज्योति-विहग', पृ० ४३९-४०

'यह हँसते हँसते झर जावे,
जग मे निज सौरभ भर जावे,
भू रज को उर्वर कर जावे,

अथवा उसकी आकाक्षा है :

'मैं मुट्ठी भर भर बाँट सकूँ
जीवन के स्वर्णिम पावक कण,'

विश्व मे दिव्य सौरभ बिखेर कर 'उत्तरा' का कवि जग के जीवन के प्रति पूर्ण प्रणत हो जाता है।

'नमन तुम्हे करता मन !
हे जग के जीवन के जीवन,
प्रीति-मौन प्रति उर स्पदन मे,
स्मरण तुम्हे करता मन !'

पत की 'उत्तरा' स्वप्नवासी की कल्पना नही है वरन् एक युग प्रबुद्ध द्रष्टा, जीवन ज्ञाता की सत्य वाणी है, मानव-जीवन एव मानव-कल्याण की वाणी है। बाह्य क्रातियाँ, ध्वस, युद्ध विभीषिकाए एद्रयिक पशुता, रक्तपात, शक्ति लोलुपता मानव को अप्रत्यक्ष रूप से उसका बोध कराने मे सहायक हो रही है जो शुभ और मगलमय है। यदि मनुष्य अपने जीवन का सरक्षण एवं सासारिक जीवन का आनद भोगना चाहता है तो मात्र बाह्य योजनाओ और कागजी समझौते से उसका काम नही चल सकता। उसे अपनी चेतना को दीपित करना, विश्व जीवन को नवीन अर्थ, सच्ची समता का अर्थ देना होगा। प्रेम और एकता ही मानवता की स्थायी निधि है। इनसे विमुख होना जीवन से विमुख होना है।

'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण धूलि' तथा 'उत्तरा' विशेष रूप से पत की उदात्त विचारधारा, दार्शनिक प्रवृत्ति की द्योतक मानी जाती हैं। इन्हें पत के जीवन दर्शन का प्रतिबिंब कहना, इनके काव्यतत्व को एक सुस्पष्ट आधार भी देना है। "उत्तरा' का अध्यात्मतत्व न तो किसी शास्त्रीय दार्शनिक सिद्धात का प्रत्यक्ष में पोषक है और न वह प्रच्छन्न मे किसी साम्प्रदायिक धार्मिकता मे

विश्वास रखता है। उसका विषय मानवात्मा के विकास से सम्बद्ध होने पर भी आत्मा की औपनिषदिक व्याख्या करना नही है। स्वस्थ-मानव-विकास के सिद्धात को दृष्टि मे रख कर कोई भी जागरूक साहित्यिक आज ऐसे सूक्ष्म पारलौकिक विषय-वर्णन से परितुष्ट नही हो सकता जो इस लोक की स्थूल एव प्रकृत समस्याओ की सवथा अवहेलना करके हमे उस लोक की झाँकी दिखावे जो हमारी भावना या अनुभूति मे कम और कल्पना मे अधिक रहता है। युग-सस्कृति और युग-चेतना को उपेक्षा करके कोई भी कलाकार अध्यात्म-पथ को प्रशस्त नही कर सकता। 'उत्तरा' का क्रान्तदर्शी कवि इस तथ्य से पूर्णतया अभिज्ञ है, इसलिए वह युग-चेतना की सुदृढ भूमि पर पाँव जमाकर ही अध्यात्म के पथ पर चलता है। दार्शनिक अद्वैतवाद या ब्रह्म चिन्तन की परिपाटी से तथाकथित अध्यात्मवाद का पोषण उसका ध्येय नही है। अपने गीतो के शीर्षको मे ही उसने इस तथ्य को स्पष्ट कर दिया है। ···पत जी ने अपनी नवीन रच-नाओ का ध्येय 'युगचेतना को अपने यत्किचित् प्रयत्नो द्वारा वाणी देना' कहा है। ··· उनका विश्वास है कि 'युगपुरुष को पूर्णत: सचेष्ट करने के लिए यदि लोक सगठन के साथ गाधीवाद को पीठिका बनाकर मन: सगठन (सस्कार) का भी अनुष्ठान उठाया जाय और मनुष्य की सामाजिक चेतना (सस्कृति) का विकसित विश्व-परिस्थितियो (वाष्प, विद्युत आदि) के अनुरूप नवीन रूप से सक्रिय समन्वय किया जाए तो वर्तमान के विक्षोभ के आर्तनाद तथा क्राति की क्रुद्ध ललकार को लोक-जीवन के सगीत तथा मनुष्यता की पुकार मे बदला जा सकता है। 'इस युग के क्राति, विकास, सुधार, जागरण के आन्दो-लनो की परिणति एक नवीन सास्कृतिक चेतना के रूप मे होना अवश्यम्भावी है' इसी सास्कृतिक चेतना को मैं अन्तर्चेतना या नवीन सगुण कहता हूँ।' मार्क्सवाद मे विश्वास करने वाले यदि वर्गहीन समाज की कल्पना कर सकते है तो साथ ही साथ पत जी 'मानव अहन्ता के विधान की भी नवीन चेतना के रूप मे परिणति सभव समझते है।' उनका परितोष राजनीतिक, आर्थिक या समाजवादी सुधार जागरणो तक ही सीमित नही, उनका तो विश्वास है कि इन बाह्य (समतल) आन्दोलनो और वादात्मक क्रातियो की चरम परि-णति एक व्यापक सास्कृतिक चेतना के रूप में होना अवश्यम्भावी है। इस सांस्कृतिक चेतना के मूल मे सूक्ष्म मनस्तत्व के व्यापक भाव तथा अतर्जीवन के विकास-बीज निहित है। सक्षेप मे इन्ही को हम उनके अध्यात्म-वृक्ष के बीज कहते हैं। बाह्य और आभ्यन्तर जीवन के दो रूप है। ···'ऊर्ध्व संचरण के लिए हमे जीवन के समस्त बाह्य आदोलनो को एक नूतन सास्कृतिक धारा मे

परिवर्तित करना होगा, जीवन की इन बहिरन्तर मान्यताओ का प्रकृत समन्वय ही मानव-विकास का सोपान है।"[१]

किसी भी काव्य रसिक का निष्पक्ष हृदय 'उत्तरा' की रचनाओ के काव्य सौष्ठव, प्राजलता और प्रवाह का स्पर्श पाए बिना नही रह सकता। वह काव्य एव काव्य सौरभ जो व्यक्ति को छू कर उसे उठा भी देती है अवश्य ही वाछनीय है। गणिका की भाँति कला-प्रेमियो को कुछ क्षणो के लिए रिझाना मात्र कला का ध्येय नही है। उसके नूपुर जब तक अतर की वीणा को झकृत नही कर देते तब तक वह मूल्यहीन है। कला को मूल्य एव शाश्वत जीवन एक स्वस्थ मानवोचित दर्शन ही प्रदान कर सकता है। पानी का क्षणजीवी बुलबुला भी उस पानी पर निर्भर है जो शाश्वत है। वस्तुत किसी भी श्रेष्ठ कला अथवा कलाकृति को दर्शन से वियुक्त करने के प्रयास के मूल मे वह सामान्य अज्ञान है जो दर्शन को अमूर्त चितन से युक्त करके जीवन की मूर्तिमत्ता तथा सजीवता के प्रति विरक्ति और वितृष्णा उपजाता है। इसी भ्राति-जाल मे फँसे पत के अधिकाश पाठक और आलोचक उनके यह कहने पर कि विद्या और अविद्या दोनो ही सत्य है' अथवा 'मत हो विरक्त जीवन से, अनुरक्त न हो जीवन पर' आदि उक्तियों से अवाक् हो जाते हैं। वे उनके काव्य पर विरोधाभास, शुष्क चिंतन, और भी न जाने कितने व्यक्तिगत आरोप लगाने लगते है।

उपर्युक्त भ्राति से स्तभित आलोचक जब देखते है कि पत का स्वर्ण काव्य मासलता पर वितृष्णा से सिहर उठने के विपरीत उसे अपनी आध्यात्मिक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाता है तो वे अपने समस्त प्राणिशास्त्रीय मनोवैज्ञानिक ज्ञान के आधार पर कहते है कि पत के नारी रूप के चित्रण मे 'उत्कट वासना की गध' आती है। पवित्रता, सयम का अभाव अतिमानसी धरातल की नारी को उद्दीपनमयी बना देता है। अथवा 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि' की भाँति ही 'उत्तरा' मे अध्यात्म और शृगार का अनुचित मेल है। पत के सपूर्ण स्वर्ण-काव्य का लक्ष्य ही उर्ध्व और समदिक् सत्यो में समन्वय स्थापित करना है। उन्होने अमूर्त औपनिषदिकता को जीवन-यथार्थ मे उतारने का वह नव्य और स्तुत्य प्रयास किया है जो आज के युग की आवश्यकता है। वे मानते हैं—'मत हो विरक्त जीवन से, अनुरक्त न हो

---

१. विजयेन्द्र स्नातक : 'उत्तरा' में पंत का अध्यात्मवाद, 'सुमित्रानंदन पंत' : सं० शचिरानी गुर्टू पृष्ठ ३३१-३३३

जीवन पर' और इसी सतुलित दृष्टि को अपनाने के कारण उन्होने उस सबका खुल कर विरोध किया है जो पलायन, कठोर वैराग्यवाद एव सन्यासवाद अथवा उस निषेध को प्रश्रय देता है जिसने भगवान् की यह सुदर सृष्टि अशिव कर दी है। कनक-कामिनी को उसका उचित स्थान देने के विपरीत उसकी वर्जना करना, हड्डी की ठठरी, या चाम की क्षुद्र थैली, या पाप का घडा कहना उस दृष्टिकोण को अपनाना है जिसने सचमुच मे ही, भारतीय सामाजिक जीवन को कुत्सित और मरणोन्मुखी बना दिया है। इसीलिए वे कहते है, "कनक-काम से विमुख अध्यात्म मे मरुजल की दमक भले ही मिले वह जीवन पोषक एव उन्नायक चिद्रस मूल्य से वचित ही रहता है। हमारे चारित्रिक पतन का एक कारण हमारी कनक काम सबधी आध्यात्मिक दिग्भ्राति भी है।" अथवा "भारतीय साहित्य परम्परा मे शृगार और अध्यात्म एक दूसरे के विरोधी न समझे जाकर परस्पर पूरक ही माने गए है और उनका पोषण, भाई-बहनो की तरह, एक ही साथ, एक ही रस तत्व द्वारा होता आया है। लोक-दृष्टि से ये दोनो मूल्य भले ही विभक्त कर दिए गए हो—पर रहस्य, और कुछ अशो मे, भक्ति साहित्य मे भी जहाँ कही रस, चेतना या भावना को अलौकिक का स्पर्श मिला है, वहाँ शृगार और अध्यात्म के उपादानो एव प्रतीको ने एक दूसरे के प्रस्फुटन तथा विकास मे सहायता दी है। कालिदास ने कुमारसभव मे शिव-पार्वती जैसे उच्चतम चेतना मूल्यो को शृगार भूमि पर अवतरित कराकर तथा उनकी अतः रस क्रीडा को मानवीय परिधान पहिना कर अपनी काव्य कल्पना का चरमोत्कर्ष दिखलाया है। शाकुतल मे भी अध्यात्म की भूमि पर शृगार ही का परिपाक हुआ है। शृगार और अध्यात्म भारतीय चैतन्य मे श्री राधाकृष्ण के प्रतीको के रूप मे एक दूसरे के अत्यत निकट आकर परस्पर तन्मय हो गए है वास्तव मे शृगार का सतुलन तथा उन्नयन ही अध्यात्म है। शृगारहीन अध्यात्म गीत स्वर लय विहीन रिक्त हृदय बाँसुरी सा है। जहाँ अध्यात्म शृगार को व्यापक धरातलो पर न उठाकर उसके मासल भार एव रगीन परिधान से दब या छिप जाता है वहाँ कुछ मध्ययुगो हिन्दी कवियो की तरह वह नि.सदेह विकासोन्मुखी न रहकर ह्रासोन्मुखी बन जाता है।' 'कृष्ण-साहित्य मे तत्वत. जहाँ श्रीराधा परम चेतना स्वरूपा ह्लादिनी शक्ति की प्रतीक है वहाँ वह शृगार सिंधु लहरी भी है—शृगार की सर्वोच्च शिखर लहरी पर खडी परम चेतना की यह वैष्णव कल्पना शृंगार और अध्यात्म के अन्योन्याश्रित सबध तथा अंतरैक्य के सत्य को जैसे अपनी समग्रता मे मूर्तिमान कर उसे सहृदय जन-साधारण

के लिए सहज सुलभ कर देती है। कबीर की 'कर ले शृगार चतुर अलबेली साजन के घर जाना होगा' अथवा 'घूँघट के पट खोल री' जैसी उक्तियो मे हम देखते है कि शृगार अध्यात्म के गले मे बाँहे डाल कर स्वय तो ऊपर उठ ही जाता है, वह अध्यात्म को भी भावबोध अथवा रस-बोध के निकट ले आता है। मध्य युगों से भारतीय मानस मे जीवन चेतना तथा सासारिकता के प्रति जो एक निषेध तथा वर्जना की धारणा प्रवेश कर गई है उससे शृगार तथा अध्यात्म दो विभिन्न विरोधी इकाइयो मे सीमित होकर स्वर्ग और नरक के अतिमूल्यो की तरह विभक्त हो गए है।" जिस प्रकार चेतना ही पदार्थ बन कर अपनी अभिव्यक्ति के लिए भौतिक आधार या माध्यम प्रस्तुत करती है उसी प्रकार अध्यात्म ही शृगार बन कर नित्य नवीन सौंदर्य बोध के क्षितिजो को उद्घाटित करता है। शृगार-सतुलित सामाजिक जीवन का सौदर्य ही आध्यात्मिक चेतना का शरीर है, जिसके बिना उसका अस्तित्व पूर्ण सक्रिय नही हो सकता। आज नारी तन के स्तर पर शृगार भावना का मूल्य आकना अनुचित होगा, उसे धरा जीवन के स्तर पर देखना स्वाभाविक होगा।' अपनी अनेक रचनाओ मे मैंने राग भावना के उन्नयन के साथ ही नवीन प्राणिक जीवन की स्वीकृति पर प्रकाश डालने की चेष्टा की है और शृगार और अध्यात्म के बीच पडी प्राचीन खाई को तथा मध्य युगीन नैतिक अवरोधो को अतिक्रम कर नवीन विश्व-जीवन की सौदर्य चेतना के अस्फुट स्वप्न सचरण के शील-सौम्य, सौन्दर्य-मुखर, गतिमय सगीत को अपने छदो मे बाँधने की चेष्टा की है। 'आत्मिका' मे मैंने कहा है -

'इस जन-भू पर सस्कृत जीवन, मानव आत्मा को रे अभिमत
ईश्वर को प्रिय नही विरागी, सन्यासी, जीवन से उपरत।'
... ...
ईश्वर से इन्द्रिय जीवन तक एक सचरण रे भू पावन।[1]

जो आलोचक पंत के काव्य का विरोध भारतीय अध्यात्म के नाम पर करते हैं वे जान-बूझकर भूल जाते है कि जीवन का चित्रण उसकी सपूर्णता मे करने के लिए भारतीय अध्यात्म ने उसके स्थूल एव मासल पक्ष पर भी समान

---

१. 'शिल्प और दर्शन', पृ० २७३, २७६ (शृंगार और अध्यात्म शीर्षक निबंध)।

भाव से दृष्टिपात किया है। एद्रियता अपने आप मे शुचिता या अशुचितापूर्ण नही है—यह उस ध्येय और उद्देश्य पर निर्भर करता है जिसके लिए उसका प्रयोग किया जाता है। इसके लिए श्रीमद् भागवत को दृष्टात स्वरूप ले सकते है। भक्ति-काव्य एव भक्ति भावो से अधिक पूर्ण और वाछनीय भाव गोपी या माधुर्य भाव माना है। उपनिषद् के अनुसार प्रपत्ति की स्थिति मे द्वैत की भावना या बोध नही रहता है। इस स्थिति मे निहित पूर्ण भावनात्मक तादात्म्य को लक्षित करते हुए वह आलिंगनबद्ध प्रेमियो का उदाहरण देता है। किंतु ऐसे दृष्टात को जिस भाँति काम की दिशा मे प्रेरित करने वाला नही कह सकते, उसी भाँति सौदर्य चेतना सम्बन्धी रसात्मक चित्रण को भी 'अत्यत मादक, उत्तेजक और मन को काम की दिशा मे प्रेरित करने वाला'[1] नही कह सकते है। वैसे इस सम्बन्ध मे प्रत्येक व्यक्ति की वैयक्तिक एव स्वभावगत प्रतिक्रिया हो सकती है जो उसकी विकसित-अविकसित राग स्थिति पर निर्भर करती है क्योकि एक ही विषय विभिन्न व्यक्तियो के गुणात्मक—सत्व, रजस और तमस—भेद के अनुरूप विभिन्न भाव अथवा प्रतिक्रिया को जन्म देता है।

इसी सदर्भ मे श्री विजयेन्द्र स्नातक का कहना है, "'उत्तरा' मे आध्यात्मिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करने मे कवि ने अपनी चिर-अभ्यस्त मधुर शैली को—जिसके प्रसाधन मे शृगारिक कल्पनाएँ, उपमा और उत्प्रेक्षाओ का बाहुल्य रहता है—छोडा नही है। ' "उन्हे देखकर ही कदाचित् आलोचको ने कहा है कि अब भी पंत जी की कविताओं मे "अतृप्त वासना के सूखे बादल मँडरा रहे हैं।" इस रिमार्क पर मेरा विनम्र निवेदन है कि काव्य शैली की प्रभविष्णुता को ध्यान मे रखकर भी इन उपमानो मे वासना की गध पा लेना या तो पक्षपात का सूचक है या फिर प्राण शक्ति का दोष। 'कान्तासम्मित' सुरुचिपूर्ण मार्ग जैसा काव्य मे पंत जी का है कदाचित् हिन्दी के किसी कवि का नही। 'उत्तरा' चिंतन मूलक कविताओ का सग्रह होने पर भी दुरूहता और दुर्बोधता के गम्भीर आरोप से बहुत कुछ बचा रहा है, इसका मात्र कारण उनकी सरस शैली ही है। प्रकृति के चित्रोपम वर्णन करके भी कवि ने अध्यात्म के शुष्क विषय में सरसता का सचार किया है। जिस व्यक्ति की समस्त कृतियो के मूल मे नैतिकता के प्रति दृढ अनुराग और आग्रह रहा है उसे 'वासना के सूखे बादलो'

---

१. 'सुमित्रानंदन पंत' : स० शचिरानी गुर्टू, पृ० ३२०-३२३
रामविलास शर्मा का निबध : 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि' लथ्य
दिनकर : 'पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण,' पृ० ११६

से घिरा कहना या तो पाश्चात्य मनोविज्ञान शास्त्री का अवचेतन सिद्धात है या स्वय आलोचक मे सहानुभूति तत्व की कमी ।'[1]

सर्वव्यापी सत्य को सहज, मूर्त और आकर्षक रूप देने के लिए यदि पत ने मनीषियो द्वारा स्वीकृत माध्यम को अपनाना उचित समझा तो यह उनकी 'अतृप्त वासना' का विस्फोट नही है, वरन् यह मानवीय इच्छाओ की स्वीकृति और उनका दिव्यीकरण है । पत के जीवन दर्शन मे दूषित काम की गध देखने वाले न केवल नदतिक बोध ओर वासना के अतर को समझने मे असमर्थ हैं, वरन् दर्शन एव अध्यात्म को जीवन से वियुक्त करने की भूल करते है । नदतिक बोध और काम वासना के अतर की दृष्टि से पत का प्रणय काव्य भी सौंदर्य या नदतिक काव्य है । प्रेयसी के अधरो की प्याली का पान करने के विपरीत वे उसे प्रकृति की सुषमा और पावनता से इतना अधिक आच्छादित कर देते है कि वह अशरीरी हो जाती है, यहाँ तक कि स्वय कवि अपने प्रेमी हृदय को सुला देता है और अल्हडता से कहता है ·

'तुम्हारे छूने मे था प्राण
सग मे पावन गगा स्नान ।'

●●

---

१. 'उत्तरा' में पंत का अध्यात्मवाद : सुमित्रानन्दन पत' : सं० शचिरानी गुर्टू, पृ० ३३६

७

प्रयाग में स्थायी निवास तथा आकाशवाणी

'उत्तरा' का पूरा होना तथा गर्मी का आगमन साथ ही हुआ। सन् '४६ की मई के प्रथम सप्ताह मे पत अल्मोडा चले गए। 'लोकायन' के लिए घर मिल नही पाया था। उसकी चिन्ता थी, यद्यपि मन उसकी योजना के कार्यान्वित होने के प्रति सदिग्ध हो चुका था फिर भी जब तक द्वार स्पष्टतः बद न दीखे मार्ग मे रुक जाना उचित नही लगा। इस बार अल्मोडा मे कुछ विशेष काम करना सभव नही हो सका, केवल अज्ञेय जी, बच्चन जी, पाठक जी आदि को 'लोकायन' अथवा घर खोजने के बारे मे पत्र लिखने के अतिरिक्त। 'लोकायन' का सीकचियो से झाकता हुआ भविष्य तथा छोटे मामा जी का दुर्घटनाग्रस्त हो जाना--समय इसी मे बीत गया। वैसे 'लोकायन' की योजना मे मानस सक्रिय था, उसी के विषय और उद्देश्य मे लीन!

साहित्य जगत मे 'प्र० ले० स०' की वक्र गति वेगपूर्वक प्रवाहमान थी। वे अपने आलोचना-शरो द्वारा पत को अपने 'सघ' से युक्त करने के लिए प्रयत्नशील थे। व्यक्तिगत स्तर पर 'प्र० ले० स०' अथवा प्रगतिशील आलोचक पंत को विस्मृत हो गए थे--उनसे जो कुछ कहना था वह वे बम्बई मे ही कह चुके थे। अब उनके सृजन तथा व्यक्तित्व के लिए यही अनुकूल था कि वे उससे तटस्थ होकर अपने काम मे लीन हो जाएँ। किंतु 'प्र० ले० स०' जब उन्हे भूले तब न! उसने उसी कहावत को चरितार्थ किया जिसके अनुसार— मैं छोडू तो छोडू कम्बल भी मुझे छोडे! और इस कम्बल ने एक दिन (जून-'४६) अकस्मात् पत का 'घेराव'[1] कर दिया—शाम के समय जब वे अपने कमरे मे बैठे थे प्रकाशचद्र गुप्त, आशाराम, पहाडी, यशपाल, देवीदत्त आदि ने

---

१. पहाड़ी भेंट वार्ता (२१-१०-'६६)।

उनके कमरे मे धावा बोल दिया। पहाडी जी ने पहुँचते ही कहा, "जब एक ओर लेखक लोग गोली खा रहे हैं आप इस प्रकार की पलायनवादी जनद्रोही प्रवृत्ति को नही अपना सकते। हम लोगो ने आपसे लोहा लेने का निश्चय किया है।"[1] पत ने सयत मुस्कान के साथ बात टाल दी, "लोहा जल्दी लेना चाहिए। देर करने से लोहा मे जक लग जायेगा।" नेमीचद्र जैन ने कहा, "जब सौ आदमी आपको 'डिक्राई' करेंगे तब आप कैसे 'काउ डाउन' नही होगे?" पंत का उत्तर था, "आप सौ आदमी की बात करते हैं। हिटलर तो हजार की करता था।" इसी भाँति उन्होने मोर्चाबदी के अन्य सदस्यो को भी सयत किंतु दृढ स्वर मे उत्तर दिया।

पत का अजेय सकल्प, परिस्थिति को समझने की निष्पक्ष अंतर्भेदी दृष्टि सदैव निर्भय और स्वतत्र रहती है। उनका स्पष्ट मत है कि राष्ट्रजनीन समस्याएँ और लोक मागलिक सत्य दलीय प्रतिबद्धता का अतिक्रमण करते हैं। ऐसे मे व्यक्ति को अपने आप को भूलना होता है, अपने छोटे अह को, ताकि वह परिस्थितियो से टकरा कर अधिक खर्व न हो जाए।

१४ जुलाई, '४९ को पत प्रयाग पहुँच गए। ६ बेली रोड मे पाडेजी से साथ रहने मे सकोच हुआ। अप्रैल मे उनसे कह चुके थे कि अल्मोडा से वापिस लौट कर वे स्वतंत्र रूप से रहेंगे, 'लोकायन' के लिए कोई बडा घर मिल गया तो उसी के एक भाग मे अन्यथा उसके निकट ही कोई घर लेकर। अल्मोडा से भी उन्हे इस आशय का एक पत्र लिख चुके थे किंतु इलाहाबाद पहुँचने के दिन तक जब कोई घर नही मिला तो दुविधा मे पड गए—अज्ञेय जी से पूछा और उनके राजी होने पर कुछ दिनो तक उनके साथ हेस्टिंग्स रोड मे रहे। फिर सभवत. जुलाई अत मे, सी० वाई० चिन्तामणि रोड मे आ गए, अपने भतीजे

---

१. मई-जून में अश्क जी सपरिवार अल्मोड़ा गए थे, वहाँ वे देवदार होटल की कॉटेज में ठहरे। उनका कहना है कि इस घटना के पूर्व ही वे इलाहाबाद चले आए थे। अतः उन्हे अल्मोड़ा में इस घटना का कोई पूर्वाभास नहीं मिल पाया था। उन्हें इतना अवश्य मालूम पड़ा था कि पहाड़ी के यहाँ एक गोष्ठी में गरमागरम बहस के पश्चात् मोर्चाबंदी की बात निश्चित हुई थी।
अश्क के साथ भेंट वार्ता (२६-११-'७६) तथा देखिए बच्चन : 'कवियो में सौम्य संत' (कुछ पत्र) पृ० ६८

अम्बादत्त पत के पास, जो तब प्रयाग विश्वविद्यालय मे अध्यापक हो गया था।

अगस्त या सितम्बर का महीना था। 'सगम' के सम्पादक के आग्रह पर उन्होने बक्से से अपने नाटको की पाडुलिपि निकालकर उसमे से 'छाया' नामक एकाकी की प्रतिलिपि करवा कर उसे 'सगम' मे प्रकाशनार्थ दे दिया। बाहर के कमरे एव बैठक मे प्रतिलिपि करवाई थी। दुर्भाग्यवश नाटको की वह पाडुलिपि बाहर ही रह गई और पत अन्य कार्यों मे व्यस्त हो गए। जब पाडुलिपि की याद आई तो वह घर मे नही मिली। बहुत ढूँढी किंतु खोई हुई वस्तु का मिलना सभव न हो सका। उस सग्रह मे उनके छः एकाकी सगृहीत थे—युग पुरुष, छाया, चौराहा, क्रीडा, परी और खडहर। अब केवल 'सगम' मे प्रकाशित 'छाया' तथा 'युग पुरुष' नामक एकाकी ही शेष बचे है।

'लोकायन' के लिए घर खोजने की चिन्ता पूर्ववत् थी। जब देखा बडा घर मिल नही रहा है तो २२ हैमिल्टन रोड के घर मे चार कमरो का एक भाग ११०) रुपया माह किराए मे ले लिया। सोचा, 'लोकायन' का दफ्तर तो कम से कम खुल ही सकता है। एक चौकीदार भी रखा, कुछ कुर्सियाँ और एक मेज किराए पर ले लिए। दो सौ रुपये माह का यह खर्च स्वय ही उठाया क्योकि जब तक 'लोकायन' के काम मे प्रगति नही होती, वह सक्रिय रूप से स्थापित नही हो जाता तब तक उसकी अल्प राशि को छूना अनुचित था। ढाई माह तक नियमित रूप से 'लोकायन' के दफ्तर मे जाकर बैठने पर भी जब 'लोकायन' का काम प्रारभ ही नही हो पाया—न किसी सदस्य ने काम मे तत्परता दिखाई और न रुचि ली तथा साथ ही सदस्यता की शुल्क राशि भी एकत्रित नही हो पाई तो परिस्थिति को अनिवार्य मानकर स्वीकार कर लिया। उस समय प्रयाग मे साहित्यिक दलबदी का वातावरण भी पर्याप्त घनीभूत हो गया था। इस कारण किसी व्यापक सहयोग की आशा करना आकाश कुसुम तोड़ना ही था। मान्यवर गुप्तजी, भारतीय आत्मा, सियारामशरण जी तथा रायकृष्ण दासजी की भी कुछ ऐसी ही धारणा थी कि प्रयाग मे पर्याप्त संस्थाए है, एक और नयी सस्था खोलना समयोचित नही होगा क्योकि विद्यमान सस्थाओ को हानि ही पहुच सकती है।

अक्टूबर, ४६ मे पत ने 'लोकायन' का विचार तीन-चार साल के लिए स्थगित कर दिया। सोचा जब साहित्यिक दलबदी कम हो जायेगी और कुछ अधिक धन भी एकत्रित हो जायेगा तब 'लोकायन' के सास्कृतिक अनुष्ठान के

कार्य को फिर से उठायेंगे। सास्कृतिक जागरण, महत् अत. क्राति, जीवन सौंदर्य, नवीन चैतन्य, भौतिक-आध्यात्मिक, बाह्य-आतरिक एव समदिक् सचरण तथा अतश्चेतना आदि के जिस सत्य के लिए 'युगवाणी' ने अपने अलकरण उतार दिए, उसी सत्य को 'ग्राम्या', 'स्वर्ण किरण' 'स्वर्ण धूलि' 'युगपथ' तथा 'उत्तरा' के माध्यम एव 'लोकायन' की मूर्त स्थापना द्वारा वे मानव जीवन मे प्रतिष्ठित करना चाहते थे। किंतु परिस्थिति की विषमता, जीवन के विरूप सत्यो का सक्रिय हो जाना, पत निराश नही हुए क्योकि उनका विश्वास है कि अतत' निर्माणात्मक शक्तियाँ तथा जीवन के मगलमय विकास मे सहयोगी तत्व ही विजयी होगे, जीवन एवं प्रकृति अपने अभ्यतर मे शिव और सुदर है।

२८ जुलाई '४८ मे प्रयाग विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग मे पत के छोटे मामा की लडकी की नियुक्ति हो गई थी। सरोजनी नायडू छात्रावास के नियमो के अनुसार अब वह छात्रावास मे नही रह सकती थी। अत. अपने एक दूर के सबधी एव परिचित परिवार के साथ वह एक सत्र रही। छोटे मामा-मामी के लिए यह सुखप्रद नही था कि उनकी लडकी अपनी सुविधानुसार न रह पाए, और वैसे भी, वह कब तक दूसरे के घर रह सकती थी। किंतु इलाहाबाद मे घर खोजना सीधी अगुली से घी निकालना था क्योकि उन दिनो खबर यह थी कि पैसो के बल पर ही घर मिल सकता है। साल भर तक वह घर के लिए पर्याप्त भटकी, न जाने कितनी बार वह जिलाधीश तथा 'टी० आर० ओ०' के पास गई। कटरा और चौक का भी चक्कर लगाया। पर कही भी दो कमरे किराये मे नही मिल पाए। वैसे स्वतत्र घर का न मिलना, मामा-मामी की दृष्टि मे बुरा नही हुआ। परिवार मे सबसे छोटी तथा रुग्ण स्वास्थ्य की होने के कारण उसका छोटा सा छोटा काम घर तथा छात्रावास मे दूसरो ने ही किया है। अत' उसका पर-निर्भर स्वभाव! मामा-मामी इस बात को समझते थे। पर इससे कही अधिक उन्हे चिंता मे डालने वाला उनका परम्परा पोषित मानस था जिसे यह अप्रिय एव असह्य था कि उनकी लडकी अकेले घर लेकर रहे। मामी का तो उससे बार-बार कहना था कि अकेले रहना पडेगा तो प्रयाग की नौकरी छोड देना। अल्मोडा मे किसी स्कूल या कालेज की नौकरी कर लेना। किंतु मामा-मामी की चिंता दूर हो गई जब उन्हे '४९ जून को अल्मोडा मे पता चला कि उनका भाजा प्रयाग मे स्वतत्र रूप से रहने का विचार कर रहा है। जुलाई मे जब पत अपनी ममेरी बहिन तथा भतीजे के साथ प्रयाग आने लगे तो मामा ने अपनी लड़की का दायित्व उन पर डाल

दिया—किराए का घर अवश्य ले लो, तब शाता तुम्हारे साथ रह लेगी। वह घर की देखभाल कर देगी और हमे यह भरोसा रहेगा कि इलाहाबाद मे वह अकेली नही है, तुम उसके सरक्षक हो। पत को इसमे कोई आपत्ति नही दीखी। अपने ननिहाल वालो मे उनका सबसे अधिक आत्मीयता का सबध अपने छोटे मामा एव उनके परिवार वालो के साथ ही रहा है। ममेरी बहिनों और भाई को तब से देखा है जब वे दो-दो चार-चार महीने के थे। बिलकुल स्वतत्र रूप से घर इसके पूर्व उन्होने कभी नही लिया था, सदैव किसी न किसी का साथ— कु० सुरेश सिंह, नरेन्द्र जी, टडन जी, बच्चन जी, अज्ञेय जी, शिराली जी और अब उसी कडी मे ममेरी बहिन थी। फिर एक स्वतत्र घर का सपूर्ण आर्थिक भार उठाना उनके लिए सभव भी नही था। अतः बहिन के साथ घर का साझेदार बनने मे उन्हे कोई आपत्ति नही दीखी। 'रँडुए परिवार' के मित्रो के साथ अब रहा नही जा सकता था, उनकी अपनी गृहस्थी थी। ऐसे ही किसी परिवार के साथ रहना, असाहित्यिक वातावरण मे ' 'यह सभवतः उससे अधिक सुविधाजनक स्थिति थी। छोटी बहिन के अभिभावक के रूप मे घर पर पूर्ण अधिकार भी सहज ही हो गया था।

पत किसी के लिए भार स्वरूप हुए हो, कहना कठिन है। जिस किसी के साथ भी वह रहे—बच्चन जी, नागर जी, नरेन्द्र जी, अज्ञेय जी, रामचंद्र टण्डन, शिराली जी आदि—उनकी सुविधा-असुविधा को अपनी ही मानकर रहे। आश्चर्य होता है पत-सा भुलक्कड़ स्वभाव, सामाजिक व्यवहार-कुशलता से अछूता एक अभ्यागत के रूप मे कैसे इतना अधिक सचेत रहता था। इन सबमे सबसे अधिक वे बच्चन जी के साथ रहे है किंतु बच्चन जी अपने मेहमान से घबडाने के बदले उसके लिए पलक पाँवडे बिछाए रहते थे—ताकि वे 'साइंदा' के आने पर अपना भार (न जाने कैसा भार क्योकि उनका तथा घर का सब काम तेजी जी करती एव देखती हैं) उन पर डालकर वे बच्चे-सा चहक लें, कुछ नटखट बातें कर लें। नागरजी ने तो पत को अपने 'घर का देवता' ही कहकर सबोधित किया है। पर मित्रों और स्नेहियो की चर्चा क्यो की जाए। वे तो प्यार करेंगे ही' ····अभ्यागत के आने पर झंझट तो उनकी पत्नियों को उठानी पडती है। और बच्चन जी का कहना है, "पत जी को अपने चारों ओर सबको, स्त्रियो को खासकर, प्रसन्न-सतुष्ट रखने की कला खूब आती है।" सच भी है तेजी बच्चन तथा प्रतिभा नागर पत को अपने सबंधियो की तुलना

मे अपना अधिक सगा मानती है । सुरेश सिंह और उनके परिवार के साथ पत का सबध उनके ही शब्दो मे, "उनका घर मेरा ही घर था।"

इसमे भी सदेह नही कि पत ने किसी न किसी रूप मे उऋण होने का प्रयास किया है । उनसे स्वाभिमानी के लिए दूसरे के सौजन्य और प्रेम का लाभ उठाना जीवित मृत्यु है । जहाँ हो सका वहाँ उन्होने अपना भार स्वय वहन किया और जहाँ नही हो सका वहा उन्होने कोई अन्य उपाय खोजने का प्रयत्न किया । 'शुल्क अतिथि' होना, उनके अनुसार कोई व्यावसायिक समझौता नही है । यदि वे ऐसा समझते तो आर्थिक कष्ट न रहने पर होटल मे भी रह लेते । यह पारिवारिक स्नेह-बधन था, स्नेह का वह स्वाभाविक आदान-प्रदान जो एक-दूसरे की सुविधा को महत्व देता है, एक-दूसरे के साहचर्य मे सुखी अनुभव करता है । एक-दूसरे के साहचर्य से लाभान्वित होता है एव जीवन को समझ और परख कर अपना विकास करता है ।

२२ हैमिल्टन रोड वाले मकान मे पत अक्टूबर, '४६ को आ गए। बहिन के साथ रहने के कारण अब किसी का 'शुल्क अतिथि' बनकर रहने का प्रश्न नही था । अपना घर था—अपना सौकर्य और व्यवस्था ! यह नवीनता अपने आप मे एक अनुभव थी । इसके पूर्व यद्यपि अपने मित्रो एव स्नेहीजनो के साथ ही रहे किंतु मन अनचाहे ही एक सीमा, एक सकोच एव कृतज्ञता के बोध से दबा रहता । सदैव मन सचेत रहता कि उनके कारण दूसरो को किसी प्रकार की असुविधा या कष्ट न हो । अपने मन के अनुरूप अपने समय का उपयोग कर सकना मन को सभव नही लगता था। अब मन मे एक सहजता की भावना थी । प्रारभ मे दिनो तक आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता की अनुभूति हुई, स्वेच्छित कार्यक्रम—अपनी इच्छानुसार खाने का समय बदल लेना, मन चाहा तो बारह बजे दिन मे खाना खा लिया या काम मे लग गए तो खाना खाने मे ढाई-तीन बजा दिए । किसी प्रकार की आत्म-आरोपित अथवा परिस्थितिजन्य परवशता अनुभव करने की आवश्यकता नही रह गई थी। अपने घर पर पत का पूर्ण अधिकार था, पूर्ण नियत्रण, सब कुछ मनोनुकूल । फिर भी सामजस्य का प्रश्न था ही । अभी तक अपने मित्रों, साहित्यिक बधुओ के साथ रहे थे; सब कुछ परिचित, वैचारिक निकटता ! अब यह नया वातावरण अकसर एक ऊब उत्पन्न कर देता, मित्रों के साथ रहने की लालसा की तुष्टि अब सभव नही थी, मित्रों का अपना परिवार था, स्थायी रूप से उनके साथ रहना अब उचित और संभव न था ।

घर के लिए कुछ आवश्यक सामान चाहिए था । पैसा पास नही था, अतः भारती भण्डार से अपनी रायल्टी अग्रिम लेकर तत्परता के साथ उन्होने १५-२० दिन मे घर ठीक कर लिया। जहा तक उनकी अभिरुचि है वह नि सन्देह सुदर, कलात्मक और आभिजात्य है। किंतु जब सामान्य वस्तु खरीदने का लक्ष्य हो और मन जल्दी से जल्दी उसे प्राप्त करना चाहता हो तो असुदर भी ठीक लगता है क्योकि भारत से गरीब देश मे ठाठ से रहना शोभा नही देता। उस पर घर को तो काम-चलाऊ ठीक रखना चाहिए क्योकि मुख्य ध्येय तो लिखना-पढना है। "किसके पास इतना समय है कि चौक या सिविल लाइन्स की दूकाने देखे। जो कुछ पास ही सरलता से मिल जाय उससे सतोष करना चाहिए। फिर जब तक काम की वस्तुएँ नही आती मन मे बोझ रहता है, काम नही हो पाता है।" घर के लिए जो सामान वे आवश्यक सोचते हैं वही आवश्यक होता है और उसे खरीदने मे वे न तो किसी प्रकार का झझट सह सकते हैं, न घर के सदस्यो की रुचि मे ही वे विश्वास कर सकते है। अपने घर को वे अपने ही ढग से रखना चाहते है, एक कील भी यदि उनकी इच्छा के विरुद्ध ठुक जाए तो वे अन्यमनस्क हो जाते हैं और तब तक उसके आसपास मँडराते रहेगे जब तक कि उसे उखाड कर फेंक न दें। खोज-खाजकर एव समय लगाकर खरीदना उन्हें बुरा लगता है। उनके दो तर्क है—(एक), जिस दूकान मे जाओ उससे अवश्य कुछ खरीदो। न खरीदना दुकानदार का अपमान तथा उसका समय नष्ट करना है। (दो) यह अपने समय का भी दुरुपयोग है। घर के निकट की दूकानो मे जो दीखा या किसी दूकानदार ने अपनी कलात्मक रुचि की प्रशंसा करते हुए दूसरे दिन सामान घर पहुँचा देने का वचन दे दिया अथवा किसी भी बाहरी व्यक्ति ने सामान ला देने के लिए कह दिया तो उनका मन सतोष से भर उठता है, "भगवान् की दया है, झझट से मुक्ति मिली।"

जब वे स्वय खरीददारी करते है तो उनकी रुचि एव सुविधा ही सब कुछ रहती है उस समय वे दूसरे की बात सुन ही नही पाते, ध्यान चीज तथा दूकानदार की बातो मे केन्द्रित रहता है। दूध गरम करने के लिए हीटर की जरूरत थी और उन्होंने खरीदी 'हॉट प्लेट' और घर पहुँच कर कहने लगे, "तुम मना कर रही थी, दूकानदार क्या सोचेगा ? बेचारा भला आदमी है। अपना समझ कर उसने मुझे इतनी अच्छी राय दी।" लेकिन व्यवहार मे लाते ही 'प्लेट' का मूल्य उन्हे पता चल गया—दूध गरम करने के नाम पर उसने जो धीरज का परिचय दिया तो पत को कहना पडा, "मेरे यार (दुकानदार) ने क्या समझकर मुझे यह खरीदवा दी। वैसे चीज़ अच्छी है, उसकी दुकान मे बस एक

ही थी ।' "किंतु ये बाते उनकी खरीदने की मनोवृत्ति को बदल नही पाती । हर बार यही परिणति होती है । बिजली की केतली के लिए 'एक्सटेन्शन वायर' चाहिए था, डेढ-दो गज का तार और उन्होने जब दुकानदार की राय आमन्त्रित की तो उसने पच्चीस गज का तार लेने का सुझाव दिया क्योकि सभवतः उसे मालूम नही था कि किस काम के लिए खरीद रहे हैं । और उस तार मे इतना मोटा रबर लगा है कि भैस के गले की रस्सी उसके सामने पतली दीखने लगेगी । इस 'एक्सटेन्शन वायर' को उपयोग मे लाना भी समस्या है, दो-तीन बार के प्रयोग में वह अपने ही भार से खराब हो जाता है, कोई तार निकल आता है । सुई खरीदने से लेकर 'फ्रिज' या कन्डीशनर खरीदने तक वे मात्र अपनी या दूकानदार की रुचि से प्रेरित होते है । कभी किसी बात के लिए कहो—भद्दे पर्दों, प्याले-प्लेटो के लिए टोको तो वे मुक्त भाव से कहते है, "अरे मेरे पास इतना समय ही कहाँ है कि मैं सिविल लाइन्स या चौक जाऊँ । बेचारे'' ··· दुकानदार ने दे दिया, मेरा काम चल गया । दूसरो को पसद न आए तो विवशता है ।" चयन के समय उनकी स्वतत्र अभिरुचि रहती भी कहाँ है ? पडोसी, परिचित और प्रमुखतः दूकानदार की व्यावसायिक कुशलता पर निर्भर है कि वे क्या खरीदेंगे । वह दूकान मे पहुँच कर आवश्यक से आवश्यक सामान को भूल कर कुछ भी खरीद सकते है और फिर घर आने पर समस्या उठती है कि क्या उपयोग किया जाए । एक बार एक थान पोपलीन का खरीद लाए । पूछने पर आश्चर्य प्रकट करने लगे, "काम ? बहुत काम का है । चादरे और पर्दे बन सकते है ''मुझे बताया है ।" मित्र लोग मुस्करा कर रह गए । श्रीमती उमा राव की हँसी उन्मुक्त थी, "और जो करें खिड़की के पर्दे मत बनाइयेगा, अस्पताल की सी खिड़कियाँ लगेंगी ।" पर जो बात मन मे पैठ गई वह टल कैसे सकती थी । पर्दे बने, चादरें बनी । पर्दे तो साल-छह महीने मे फट गए लेकिन चादरें सन् ६५ तक चली, लम्बी चौड़ी चादरें जो साल मे एक-दो बार फर्श पर बिछाई गई और समय के गर्त मे चली गई ।

१६४६-'५० के जाड़ो मे आचार्य नरेन्द्र देव ने हिंदू विश्वविद्यालय, बनारस के उपकुलपति-पद के अधिकार से पत को हिंदू विश्वविद्यालय से संबद्ध होने तथा बनारस आकर रहने का प्रस्ताव भेजा । इस प्रस्ताव को लेकर दो प्राध्यापक बनारस से आए । आचार्य जी से पत की भेंट अल्मोडा मे हो चुकी थी,तब वे लखनऊ विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे । दमा से पीडित होने के कारण 'ब्राइटन कॉर्नर' मे एक घर लेकर रह रहे थे । अल्मोडा मे ही पत आचार्य जी की विद्वत्ता, प्रतिभा, सौजन्य और त्यागपूर्ण जीवन से प्रभावित हो चुके थे ।

मन मे उनके प्रति सद्भाव और आदर था। विश्वविद्यालय की नौकरी, यद्यपि सप्ताह मे सुविधानुसार कुछ भाषण देने की बात थी, पत के मनोनुकूल न थी। उस पर सन् १६१६ से प्रयाग के प्रति ममत्व! आचार्य जी की स्नेहपूर्ण सहृदयता का अभिवादन करते हुए उन्होने प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।

प्रयाग के प्रति पत का प्रेम प्रगाढ है। यह, सचमुच ही, उनका घर है। प्रयाग के अतिरिक्त और किसी स्थान को वे हृदय से नही अपना सकते हैं। उनके लिए इस स्थान को छोडना अकल्पनीय तो है ही, साथ ही उनका कहना है, "विभिन्न स्थानो मे रहने के पश्चात् मेरी यह धारणा दृढ हो गई है कि प्रयाग-सा अच्छा कोई अन्य स्थल नही है।" "दिल्ली के बारे मे केशव चद्र वर्मा के पूछने पर उन्होने कहा, दिल्ली भी कोई जगह है, गन्दी, भारत का भाग ही नही लगता।"[१] वैसे बातचीत मे जब जो जिस शहर की प्रशसा करता है वे उसके साथ तत्काल कहने लगते हैं, "मैं भी वहाँ रहना पसद करूँगा।" ऐसा कहकर पत केवल दूसरे के भाव का आदर करते है न कि अपने मन की बात को व्यक्त करते है।

सन् '४६ का अत था। रेडियो मे तब हिंदी का समुचित प्रतिनिधित्व न होने के कारण उसके विरुद्ध हिंदी प्रदेशो मे आदोलन चल रहा था। हिंदी प्रेमियो का कहना था कि स्वतंत्रता प्राप्त हुए दो वर्ष हो गए है और आकाशवाणी ने हिंदी के प्रति वही उपेक्षा का भाव रखा है जो पराधीनता के दिनो मे था। हिंदी के सभी लब्ध प्रतिष्ठ लेखको ने आकाशवाणी से एक प्रकार का असहयोग कर दिया था। विरोध पर्याप्त व्यापक तीव्र तथा सगठित था। असहयोग ने आकाशवाणी के उच्च पदाधिकारियो को सकट मे डाल दिया था। हिंदी वालो का सहयोग प्राप्त करने के लिए एक ऐसे व्यक्ति की खोज थी जिसे हिंदी के सभी गण्यमान लेखको का स्नेह सहयोग प्राप्त हो सके। उस समय रेडियो के सर्वोच्चस्तरीय अधिकारियो मे श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी थे जो हिंदी का कार्य औपचारिक रूप से सभालते थे तथा श्री बालकृष्ण राव सूचना प्रसार विभाग के मत्रालय मे डिप्टी सेक्रेटरी थे।

श्री राव का कहना है कि वे हिंदी वालो के असहयोग के कारण यह सोच रहे थे, "कि रेडियो मे कोई ऐसा परिवर्तन आ जाए जिससे यह स्पष्ट हो जाए कि रेडियो किसी प्रकार की हिंदी-विरोधी नीति को न अपनाएगा।" अचानक

---

१. २२-१२-६६

उनके मन मे किसी साहित्यकार को 'स्टाफ आर्टिस्ट'[1] बनाकर लाने की बात उठी और डायरेक्टर जनरल, मन्त्रालय के सचिव तथा मन्त्री महोदय (श्री दिवाकर जी) से बाते करने के बाद उन्होने डॉ० नगेन्द्र को यह दायित्व सौंपा कि वे इलाहाबाद जाकर पत से आकाशवाणी के कार्यक्रमो का भार सँभालने के लिए कहे। डॉ० नगेन्द्र इलाहाबाद आए और पत से मिले। किसी व्यक्ति के मुँह पर एकदम नही कहना पत के स्वभाव के बिलकुल विपरीत है। अक्सर कहते हैं कि मुझे लोगो की खुशी देखकर खुशी होती है। कोई किसी बात के लिए आए और उसे नकारात्मक उत्तर दे दे तो मुझे दिनो तक बुरा लगता है। डॉ० नगेन्द्र के साथ उन्होंने यही किया। उनकी उपस्थिति मात्र पत के लिए पर्याप्त थी। उन्होने उन्हे अपनी स्वीकृति दे दी। उनके जाने के बाद अदर आने पर पत ने अपने मामा-मामी तथा मुझसे कहा कि वे नौकरी हरगिज नही करेंगे यद्यपि वे रेडियो से असहयोग करने के पक्ष मे नही हैं। बच्चन को लिखे पंत के पत्र (१५-११-'४६) से यह स्पष्ट भी हो जाता है कि उन्होने रेडियो से असहयोग कभी नही किया।[2] रेडियो के कार्यक्रमो मे वे 'असहयोग' के दिनो मे भी पहिले की ही भाँति भाग लेते थे। जब इलाहाबाद मे 'स्टूडियो' खुला तो उसके उद्घाटन के अवसर पर उन्होने 'त्रिवेणी' कविता लिखी। सन् ४८-'४६ मे वे श्रीमती सादका सरन तथा तेजी बच्चन आदि के साथ रेडियो के कार्यक्रमो में व्यापक रुचि लेते थे। उन्हे यह काम सदैव 'लोकायन' के प्रयोजन को पूरा करता लगता था। रेडियो को उन्होंने उस सशक्त माध्यम के रूप में देखा है जो श्रोता की रुचि का परिष्कार एव सुधी जनो मे सास्कृतिक चेतना का सचार कर सकता है।

नगेन्द्र जी के जाने के साथ ही वे डॉ० अमरनाथ झा के पास सलाह के लिए गए। सोचा वे मना कर देंगे तो रेडियो की नौकरी अस्वीकार करने के लिए एक दृढ सबल मिल जायेगा।[3] और सभवतः नगेन्द्र जी तथा रेडियो वाले

---

१. 'स्मृति-चित्र' ६६–६७

२. बच्चन : 'कवियों में सौम्य संत' (कुछ पत्र, पृष्ठ ७१)।

३. पंत का यह स्वभाव है कि वह छोटी-से-छोटी या बड़ी-से-बड़ी बात के लिए भी स्पष्टतः नहीं नहीं कह पाते हैं। कोई बहाना चाहिए अथवा किसी के नाम का सहारा, अक्सर वे अपने मित्रों–परिचितों से कहते हैं, "मैं मना नहीं कर पाया। यदि आप मुक्ति दिला दें तो कृपा होगी।" और उनके कहने के साथ ही कि वे मुक्ति दिला देंगे, वे बहुत खुश हो जाते हैं बच्चों की भाँति खुश !

भी झा साहब के नाम से मना करने मे कम बुरा मानेगे। किंतु झा साहब ने उनकी आशा के विपरीत उत्तर दिया। उन्होंने पत से कहा कि उन्हे नौकरी अवश्य स्वीकार कर लेनी चाहिए एव सास्कृतिक-साहित्यिक कार्यक्रमो मे सहयोग देना ही चाहिए। उनका यह भी कहना था कि नौकरी स्वीकार कर लेने का अर्थ यह तो होगा नही कि वे उसे अपने लेखन मे बाधक लगने पर भी छोड नही सकेगे। अत. एक बार स्वीकार करके उन्हे देख ही लेना चाहिए। इससे उनका कुछ नही बिगड़ेगा, मात्र थोडे पैसे हो जायेगे जो समय-कुसमय काम आयेंगे। पत को यह बात बुरी नही लगी। 'लोकायन' का कार्य पैसो के कारण ही तो रुका हुआ है। तीन-चार साल बाद जब कुछ धन एकत्रित हो जायेगा तो 'लोकायन' को मूर्त रूप दे सकेगे। लोगो से चदा माँगना उन्हे कभी भी उचित नही लगा और सरकार से अनुदान मिलना टेढी खीर थी। अपने पैसो से काम कर सकेंगे, यह उत्साहवर्धक ही था।

झा साहब सदैव ही पत के हितैषी रहे है। 'लोकायन' की योजना मे उन्होंने सक्रिय सहयोग दिया था। पत वैसे भी उनके पास अपनी छोटी-बड़ी बातें लेकर पहुँचते रहते थे, अधिकतर लोगो की सिफारिश लेकर! टोकने पर कहते, "मेरा अपना कोई स्वार्थ नही है। अरे, मै तो उसे ठीक से जानता भी नहीं हूँ। झा साहब से कहने मे क्या बुराई। वे जो ठीक सोचेंगे करेंगे। मैं तो केवल सदेश पहुँचा देता हूँ, किसी विपत्तिग्रस्त का भला हो गया तो इसमे खुशी ही होगी।" एक बार हँसकर झा साहब ने कह ही तो दिया, "बस तुम सदैव ऐसे ही काम से आते हो। कहो तो तुम से ही राय लिया करूँ।" तब से पंत ने लोगो की प्रार्थनाएँ झा साहब तक पहुँचानी छोड दी किंतु दोनो के बीच सौहार्द्य तथा स्नेह सदैव बना रहा।

झा साहब की राय उचित लगने पर भी मन का प्रतिबध बना रहा। नौकरी करने का अर्थ दिल्ली जाना था तथा दिल्ली जाना उनके ही शब्दो मे "अपने को खतम करना है क्योकि वहाँ इतनी हलचल रहती है कि आदमी चैन से नही रह सकता। और दिल्ली, वह भारत का भाग ही कहाँ लगती है जो वहाँ रहा जाय।" वे फिर शाम को झा साहब के पास गए और वहाँ से आकर एक पत्र नगेन्द्र जी के लिए लिख दिया—अपनी तथा झा साहब की अनिच्छा व्यक्त कर दी।

एक बार 'हाँ', फिर 'नही', दिल्ली रेडियो के पदाधिकारी दुबिधा मे पड गए। उन्होने इलाहाबाद रेडियो स्टेशन के स्टेशन डाइरेक्टर मि० मूर्ति को

फोन किया कि वे पत से इस विषय मे बातचीत कर उन्हे दिल्ली आने के लिए आमन्त्रित कर दे। राव साहब का कहना है, "यह मेरा दृढ विश्वास था कि वे दिल्ली आ जाते तो डाइरेक्टर जनरल उनसे मिलकर स्वय भी पत जी को रेडियो मे ले आने के लिए कृत सकल्प हो जाते और पत जी भी निकट से रेडियो के अधिकारियो को जानकर और वस्तु-स्थिति का और वातावरण का सही परिचय पाकर उनकी सदाशयता के प्रति आश्वस्त हो जाते। इस कारण जब यह ज्ञात हुआ कि पत जी मुझसे मिलने और बातें करने के लिए दिल्ली आयेंगे तभी मेरी आशा दृढतर हो गई कि रेडियो को पत जी के सक्रिय सहयोग का सौभाग्य प्राप्त हो जायेगा।"[1]

श्री मूर्ति ने पत से कहा कि दिल्ली स्टेशन उनकी कविता 'जय जन भारत जन मन अभिमत' की रिकार्डिंग करना चाहता है और साथ ही यदि वे चाहेंगे तो उनके "स्टाफ आर्टिस्ट" होने के बारे मे भी वे लोग कुछ बातचीत करना पसंद करेगे। 'जय जन भारत' पत का प्रिय गीत है, इसे वे गाते भी बहुत अच्छे ढग से है। अतः इसकी रिकार्डिंग करवाने का प्रस्ताव अच्छा लगा। किंतु मन मे कही एक आशका थी—इस बहाने वे लोग फाँस न ले। कहने लगे अगर मि० राव ने दबाव डाला तो मना नही कर पाऊँगा। ऐसे ही मैं किसी को मना नही कर पाता हूँ। उन्हे तो मैं अच्छा मानता हूँ, भले आदमी है, साहित्यिक और प्रतिभावान् है।" और उसके साथ ही उन्होने कहा "कर्त्तव्य की दृष्टि से रेडियो अधिकारियो का प्रस्ताव स्वीकार कर लेना चाहिए। पर मैं स्वीकार नही करूगा, कौन इस आयु मे झझट मोल ले, दिल्ली मे तो मैं स्थायी रूप से रह ही नही सकता हूँ।"

रिकार्डिंग, सचमुच में, निमित्त मात्र था। वहाँ पहुँचने[2] पर उनसे पहिली बात नौकरी के विषय में की गई। जब अधिकारियो ने उनसे विशेष रूप से

---

१. 'स्मृति-चित्र' पृष्ठ ६७

२. पंत के दिल्ली पहुँचने के बारे में नगेन्द्र जी का कहना है, "मै रेडियो की ओर से उनको लिवाने स्टेशन गया; कई बार गाड़ी इधर से उधर देख ली पर पंत जी नहीं मिले और मैंने लौट कर श्री राव को उनके न आने की सूचना दे दी। पर कुछ ही देर में उनका टेलीफोन आया कि पंत जी आ गए हैं और सुश्री निर्मला जोशी के यहाँ ठहरे है। मुझे हैरानी हुई। शाम को जब श्री राव के यहाँ हम मिले तो पता लगा कि गाड़ी में और

आग्रह किया तो उनके पास अस्वीकार करने के लिए कोई पुष्ट तर्क न था, केवल यह कहना कि "मन मे उत्साह नही है" पर्याप्त नही लगा। तत्काल उनके ध्यान मे आया कि वे यह कह दे कि वे दिल्ली रहना पसद नही करेंगे क्योकि इससे उनके लेखन कार्य मे बाधा पहुँचेगी और न वे दस से चार-पाँच बजे शाम तक दफ्तर ही मे बैठ सकते है। पत का कहना है, "यह कहकर मैंने बडा हल्का अनुभव किया क्योकि मुझे विश्वास था कि ये ऐसी शर्ते हैं जो स्वीकार नही की जा सकती।" पर वे विवश हो गए जब उनकी सभी बाते मान ली गईं—मुख्यतः यह कि दिल्ली हेडक्वार्टर से सबधित होते हुए भी वे इलाहाबाद ही रहेगे और वही से निर्देशन-कार्य करेगे तथा वे अपनी सुविधानुसार ही घटे-दो घटे के लिए दफ्तर जायेगे। ऑफिस के नियम उन पर लागू नही होगे। वे गर्मियो मे हैडक्वार्टर को सूचित कर पहाड जा सकते है।[1] लेखन तथा प्रयाग रहने की ओर से आश्वस्त होकर पत ने आकाशवाणी का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। जहाँ तक 'असहयोग आदोलन की बात थी वह उनके लिए उपेक्षणीय थी,' जो व्यापक स्तर पर ठीक है उसे अपनाने मे छोटी-छोटी बातो को महत्त्व

गाड़ी के बाहर भीड़ अधिक थी और धूल भी कुछ ज्यादा थी इसलिए पंत जी पन्द्रह-बीस मिनट अपना डिब्बा बद किए गाड़ी में ही बैठे रहे। उस संभाषण में पंत जी की सभी शंकाओं का समाधान हो गया—वे प्रयाग ही रहेगे, दिल्ली वर्ष में चार-छः बार आ जाया करेंगे, दिन में घर पर ही रहकर कार्य की देखभाल कर लेंगे, केवल अपरान्ह में रेडियो स्टेशन जाना पर्याप्त होगा। उनके साथ कार्य करने के लिए एक सहायक की भी नियुक्ति। श्री विश्वम्भर मानव की पंत के सहायक के रूप में नियुक्ति हुई जो बाद को असिस्टेन्ट प्रोड्यूसर हो गए थे।"
'स्मृति-चित्र', पृ० १०२

१ दिल्ली में रहने के लिए उन्हे ढाई हजार मासिक का ऑफर मिला था। और जब इलाहाबाद में रहने की बात निश्चित हुई तो "एकाध बार हल्के स्वर में वेतन का भी प्रश्न उठाया गया, किंतु पंत जी ने उसमें कोई रुचि नहीं दिखाई।" अतः अधिकारियों ने उनके वेतन के लिए १०००) मासिक निर्धारित कर दिया। पंत की इस ओर कोई अभिरुचि नहीं थी। उन्होंने तथ्यात्मक ढंग से यह बात समझ ली।
डा० नगेन्द्र : 'स्मृति-चित्र', पृ० १०२

कैसे दे सकता हूं ? मैंने ऐसी बातो को अपनाने मे कभी इस पर ध्यान नही दिया कि दूसरो की इस पर क्या प्रतिक्रिया होगी। वे क्रुद्ध तो नही हो जायेगे। ये बाते केवल व्यक्तिगत स्तर पर विचारणीय है न कि सास्कृतिक-सामाजिक स्तर पर।

श्री बालकृष्ण राव ने पत की इस मनोवृत्ति पर उचित प्रकाश डाला है। "यह तो तुरन्त मालूम हो गया कि पत जी हिन्दी वालो के रेडियो-विरोधी आदोलन को 'जिहाद' के रूप मे नही, मात्र एक असतोष की सबल, सामूहिक अभिव्यक्ति के रूप मे देखते है। यह भी मालूम हो गया कि न तो उन्होंने कभी अपना निर्णय स्वय करने के सहज अधिकार का उपयोग करने की बजाय इस सामूहिक आदोलन मे बेसमझे-बूझे कूद पडने की इच्छा की थी और न इस समय वे समूह से पृथक् एकाकी खडे होने की कल्पना से आतकित थे। पत जी की सरलता और स्वाभाविक कोमलता के पीछे छिपी इस नैतिक दृढता से मुझे आश्चर्य नही हुआ था। इसका मुझे विश्वास था कि यदि वे स्वीकार करेगे कि रेडियो के सचालक-वर्ग हृदय से हिन्दी-विरोधी नही है और यदि उन्हे इसकी आशा हो सकी कि उनके रेडियो मे आ जाने से हिन्दी का हित होगा, तो सामूहिक आदोलन के बावजूद, अकेले अलग खडे होने का साहस उनके मन मे स्वतः उत्पन्न हो जायेगा । पत जी मे जहाँ बच्चो की-सी सरलता है, बच्चो का-सा सहज साहस है, आसानी से उत्साहित हो जाने की क्षमता है, अपने परिवेश के प्रति निःशक रागात्मक कौतूहल है, वहाँ वह बाल-सुलभ अवगुण जिसे हठ कहते है, उनमे नाम को भी नही है। पत जी ने रेडियो मे आना क्यो स्वीकार किया ? मेरा उत्तर होगा-अपने सहज, स्वाभाविक गुणो के कारण, उस परिस्थिति मे वे मेरा अनुरोध टाल ही नही सकते थे। प्रथम उन्हे यह विश्वास हो गया कि रेडियो-विरोधी आदोलन समाप्त करके रेडियो से सहयोग करना हिन्दी के हित मे होगा, द्वितीय, मेरा जी दुखाना उन्हें मजूर नही था। पत जी में यह गुण (या अवगुण ?) अवश्य है कि जिस पर स्नेह और विश्वास करते है उसकी बात टाल नही पाते। यहाँ दोनो ही बातें थी, अनुज की बात भी रह जाती थी और जिसे उचित समझते थे वह काम भी हो रहा था।"[1]

दोपहर मे स्वीकृति देकर पत जैनेन्द्र जी के घर वापिस आ गए। उन्ही के पास ठहरे हुए थे। जिस औचित्य के बोध और इससे भी अधिक श्री राव

---

१. 'स्मृति-चित्र', पृ० ६८

के प्रति अपने स्नेह और उन्हे निराश न करने की भावना से नौकरी करना स्वीकार किया था उसे मन सहज मे स्वीकार नही कर पाया—यह बधन है। उदास मन दिन की गाडी से इलाहाबाद के लिए रवाना हो गए। शाम को घर पहुँचे तो खिन्न दीखे। परिवार के सभी लोगो ने पूछा, उनका सक्षिप्त उत्तर था, "बडा व्यस्त कार्यक्रम रहा। थक गया हूँ। रात्रि को सोकर ठीक हो जाऊँगा।" आकाशवाणी से सबद्ध होने के बारे मे उन्होने कुछ नही बताया, घुमा-फिराकर पूछा भी तो टाल गए, "आकाशवाणी गया था, रेकार्डिंग ठीक से हो गई।" दूसरे दिन उन्होने बताया, "सबेरे उठने पर मन मे एक बोझ था, बधन का बोझ, आँख खुलते ही याद आया—अब मुक्त नही हूँ। किंतु फिर मैंने मन को ठीक किया—जो काम उचित है, स्वेच्छा से स्वीकार किया है उसे प्रसन्न होकर करना चाहिए।" मामा-मामी की चिन्ता दूर हुई कि भाजा दिल्ली नही जायेगा, वे खुश थे। फिर भी मामा ने पूछा, "दिक्कत तो नही होगी?" पत का आश्चर्य मिश्रित भाव, "कैसी बात करते है? वह मनुष्य ही क्या जो काम से डर जाए," और उनकी कल्पना सजग हो उठी, मन उत्फुल्ल। फिर उन्होने विस्तार से बताया दिल्ली मे क्या-क्या बाते हुई और वे स्वय किस भाँति आकाशवाणी को सहयोग देंगे।

आकाशवाणी का काम बधन स्वरूप नही था, वह पत का अपना ही काम था जिसे वे उत्साहपूर्वक मनोयोग से करने लगे। सास्कृतिक कार्यक्रमो के प्रति उनमे अथाह उत्साह था, कार्यक्रमो की रूपरेखा बनाने एव उनका उन्नयन करने के लिए उन्होने उस व्यावहारिक दक्षता का परिचय दिया जो व्यक्तिगत जीवन मे उनके पास नही आने पाती, मृगजलवत् रहती है। दर्शन, साहित्य, मनोविज्ञान, राजनीति, सगीत कला तथा स्त्रियो और बच्चो के कार्यक्रमो की विषय सूची बनाने, उन पर प्राप्त आलेखो को देखने मे उन्होने न केवल अपनी लगन तल्लीनता और अध्ययनरत स्वभाव का परिचय दिया, वरन् उस सूक्ष्मभेदी दृष्टि का भी जिसके बिना सफलता दुर्लभ ही है। आकाशवाणी इलाहाबाद से प्रसारित होने वाले सुगम सगीत का भी उन्होने कुछ समय तक निर्देशन किया।[1] "पत जी ने 'आकाशवाणी' को जो-कुछ दिया उसका 'आकाशवाणी' ही नही भारतवर्ष के वर्तमान सांस्कृतिक इतिहास मे विशेष महत्व है।"[2] उनके व्यक्तित्व की 'अबोध पावनता' के कारण अनेक

---

१. कई नए कार्यक्रम भी प्रस्तावित किए यथा 'स्वर बेला', 'भारत-भारती'।
२. जगदीश चंद्र माथुर : 'स्मृति-चित्र', पृ० १७८।

मित्र अत्यत सद्भावपूर्वक यह शका करते थे कि यह निर्वाचन ठीक नही हुआ है। किंतु विगत दशक मे भारतीय प्रसारण का इतिहास साक्षी है कि यह शका सर्वथा निर्मूल थी, पत जी के ज्योति-स्पर्श से रेडियो का वायुमण्डल एक स्निग्ध-स्वर्णिम प्रकाश से दीपित हो उठा। उन्होंने अत्यत परिश्रम के साथ आकाशवाणी के कार्यक्रम का सस्कार परिष्कार किया और उसे भारतीय सस्कृति का उपयुक्त माध्यम बनाने मे अपूर्व योगदान दिया।"[1] इसी स्वर मे बालकृष्ण राव का भी कहना है, "उनके सम्पर्क से रेडियो को जो मान मिला, उसकी जो श्रीवृद्धि हुई, उसका सही मूल्याकन वे ही कर सकते है जो उनके पदार्पण के पूर्व की स्थिति से भली भाति परिचित है। वे ही यह भी समझ सकते है कि उस परिस्थिति मे एक ऐसे नितात नवीन और सर्वथा अनजान पथ को ग्रहण करने का साहस पत जी के लिए कितना सहज, स्वाभाविक रहा होगा। यदि पत जी मे इतनी बाल-सुलभ सरलता न होती तो इतना साहस भी न होगा।[2]

सास्कृतिक कार्यक्रमो तथा नवीन विषयो को प्रस्तावित करना तब तक व्यर्थ था जब तक कि आकाशवाणी को हिन्दी के साहित्यिको का व्यापक सहयोग प्राप्त न हो जाता। पत को आकाशवाणी के माध्यम से साहित्य और सस्कृति के प्रचार के लिए यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि वे हिन्दी वालो के असोहयग को सहयोग मे परिणत कर दे। इस ओर पहला चरण उन्होने पटना जाकर उठाया। वहाँ बिहार वालो का स्नेह तो मिला ही, साथ ही, जगदीश चद्र माथुर और दिनकर जी के निकट सपर्क मे आने का सुअवसर प्राप्त हुआ। जगदीश चन्द्र माथुर[3] से दस वर्ष बाद भेट हुई तो दिनकर जी[4] से दो वर्ष बाद।

---

१. डा० नगेन्द्र : वही पृ० १०४

२. श्री बालकृष्ण राव : वही पृ० ६८

३. श्री माथुर से पंत की प्रथम भेंट १६३६ में हुई जब वे अध्ययन के लिए प्रयाग आए। सन् '४१ में सरकारी नौकरी मिल जाने के कारण उनका प्रयाग से संपर्क छूट गया था।

४. पंत के साथ अपनी प्रथम मुलाकात के बारे में दिनकर जी का कहना है, "यह भी भाग्य का व्यंग्य है कि जिस कवि पर आसक्त में १६२५ ई० के करीब हुआ था, उससे मेरी पहली मुलाकात सन् १६४८ ई० में हुई जब मैं इलाहाबाद भी शायद पहली ही बार गया था ......। प्रणाम

अपनी इस भेंट के बारे मे श्री माथुर का कहना है, "पटना कालेज मे उनके सम्मान मे उत्सव हुआ · मैंने पत जी का भाषण सुना—तसवीर का दूसरा पहलू, जिससे मैं उस वक्त तक बिलकुल अपरिचित था। लिखित गद्य पत जी का मैंने पढा था, लेकिन सभा भवन की कला मे भी पत जी इतने पारगत होगे इसका मुझे अनुमान भी न था। छोटे-छोटे और मार्मिक वाक्य, प्राजल शब्द योजना, उपयुक्त स्वराघात, स्पष्ट और ओजस्वी धारा प्रवाह ·· लेकिन पत जी का वह महत् स्वरूप मेरी तरुण-स्मृतियो को मिटा नही पाया है, और न ऐसा होने की कोई सम्भावना ही है।"[1]

जब सन् '४८ की औपचारिक भेट होने के पश्चात् सन् '५० मे दिनकर जी को पत के निकट सम्पर्क मे आने का अवसर मिला तो उन्होने अपना समस्त प्यार तथा आदर उडेल दिया। यद्यपि पत जगदीश चन्द्र माथुर के पास ठहरे थे तथापि दिनकर जी के आग्रह पर एक रात उनके यहाँ भी रहे—दोनो मे खब घुलमिल कर बाते हुई, पारिवारिक और साहित्यिक। दिनकरजी के स्नेह मुक्त हास तथा स्पष्टवादिता पर वे मुग्ध है, उनके घर का वातावरण और परिवार उनका सदैव प्रिय रहेगा। दिनकर जी की छोटी लडकी विभा (तब सभवत. वह ३।४ वर्ष की होगी।) पर तो उनका सहज ममत्व उमड पडा। वर्षो तक कहने मे थे, "दिनकर अपनी छोटी लडकी मुझे दे दें तो मैं

करके बैठते ही मेरी दृष्टि उनकी आकृति में खो गई और कई मिनट तक हममे से कोई कुछ बोल नहीं सका। अंत में, मौन भंग करते हुए पंत जी ही बोले, "अब क्या देखते हैं ?" मुझे सहसा कोई जवाब नहीं सूझा, फिर भी मुँह से निकल गया, "अभी भी बहुत कुछ है जो दर्शनीय है।" ···पंत जी को देखते ही सहसा यह भान होता है, "मानो आप परियो के देश से उतरे हुए किसी देवर्षि के सामने खड़े हो। छोटा, हलका शरीर, चेहरे पर सौम्य शान्ति, जो सचमुच ही देवताओ की शांति है, और सिर पर घने लहराते बाल, जो सुन्दर-से-सुन्दर रमणी को भी और सुन्दर बना सकते हैं·· ···। केवल बाल ही नहीं, पंत जी का कोट, पंत जी की पतलून, यहाँ तक कि उनका कुरता भी ऐसे काट का होता है जिससे नारी-जाति के प्रति उनके असीम आदर की सूचना मिलती है · ।"

'स्मृति-चित्र', पृ० १२६-१२७

१. 'स्मृति-चित्र', पृ० १७८

बडे प्यार से उसे पालूँ।" सन् '६३ मे जब वे दिल्ली गए तो उन्हे दिनकर जी का मस्ताने ढग से 'सत् श्री अकाल' कहना बडा अच्छा लगा। दिनकर जी एक-दो बार जब भी उनके साथ रहे उन्हे प्रसन्नता हुई। उनके साहचर्य के वे आकाक्षी रहे है। अकसर कहते हैं, "क्या बताऊँ, दिनकर का जीवन व्यस्त है। नही तो उससे कहता कुछ दिनो के लिए यहाँ आओ। उसके आने से सच, बड़ा अच्छा लगता है। और अब जब दिनकर जी पर विपत्तियो का पहाड टूट गया है, पत उनकी याद के साथ ही उनके दुःख से दुखी हो उठते हैं। आज (सन् '७४) उनकी मृत्यु से उन्हे एक अभिन्न आत्माय की मृत्यु का-सा आघात पहुँचा है।

दिनकर जी का सहयोग प्राप्त करने के पश्चात् पत ने श्री मैथिलीशरण गुप्त जी का भी सहयोग प्राप्त कर लिया। वैसे गुप्त जी ने पत के रेडियो मे आने का स्वागत ही किया क्योकि उनके रेडियो से युक्त होने के साथ ही गुप्त जी ने रेडियो वालो का हुक्का पानी चलाने का आग्रह किया था। यह मानो उत्तर प्रदेश और बिहार के साहित्यिको का सहयोग[1] प्राप्त करना था। किंतु

---

१. भगवती चरण वर्मा, इलाचंद्र जोशी, अज्ञेय, नरेन्द्र शर्मा, अमृतलाल नागर, उदयशंकर भट्ट, बच्चन, रामचंद्र टंडन, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, लक्ष्मीनारायण लाल, विश्वम्भर मानव, केशवचंद्र वर्मा, रमानाथ अवस्थी, शांति मेहरोत्रा, विमला रैना, कमलेश्वर, नर्मदेश्वर उपाध्याय, प्रफुल्लचंद्र, राजहंस आदि सभी ने कालक्रम मे रेडियो की नौकरी स्वीकार की। धर्मवीर भारती ने भी रेडियो से संलग्न होने के लिए स्वीकृति दे दी थी किंतु वित्त मंत्रालय ने वेतन की जिस राशि को निर्धारित किया था वह उन्हें मान्य न थी। इनके अतिरिक्त आकाशवाणी को हजारी प्रसाद द्विवेदी, नंददुलारे बाजपेयी, मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह दिनकर, नरेन्द्र जी, महादेवी वर्मा, अज्ञेय जी का भी सहयोग प्राप्त हो गया था। इसमें भी संदेह नहीं कि कई साहित्यकार रेडियो से संबद्ध होने के लिए तत्परतापूर्वक उत्सुक हो गए क्यों कि रेडियो का काम सृजन के प्रतिकूल नहीं ही माना जा सकता। जिन्हे रेडियो की नौकरी नही मिली, या जिस स्तर की वह चाहते थे उससे निम्न स्तर की मिली अथवा देर से मिली उन सबने पंत को ही दोषी ठहराया। रेडियो के एक-दो अधिकारियों का नाम लेकर उन्होंने कहा कि वे लोग कहते हैं कि पंत आपको नहीं चाहते। अजीब बात थी—अपने साथियों को कौन नहीं चाहता? वे ऐसा सोचने

इसके साथ ही साहित्यिक बधुओ के समुदाय मे एक छोटा-मोटा विप्लव भी मच गया। १ मार्च, '५० को पत ने आकाशवाणी के परामर्शदाता के पद को स्वीकार किया कि उनके विरुद्ध एक दबी हुई चिनगारी आग बनकर फैल गई— सभी परोक्ष रूप से उनके विद्वेषी बन गए, उनकी प्रतिभा, साहित्यिक स्वाभिमान और व्यक्तित्व के सरक्षक ! साहित्यिक और राज्याश्रय, साहित्यिक और वेतनभोगी। क्या यह एक साहित्यिक के लिए घोर अपमानपूर्ण, लज्जास्पद और लाछनापूर्ण नही है कि वह अपने राज्य एव देश की सेवा द्वारा अपने लेखकीय स्वातत्र्य का स्वय अपहरण करे। यह तथ्य व्यापक चर्चा का विषय बना। चर्चा ही क्यो, इसने उन सबको मुखर कर दिया जो अदर-ही-अदर कुठाग्रस्त थे।[1] आश्चर्य तो तब होता है जब यह ध्यान मे आता है कि उदयशकर केन्द्र

या मान लेने के पूर्व आकाशवाणी के दिल्ली के दफ्तर में जाकर पंत की चिट्ठियाँ देख लेते तो भ्रांति दूर हो जाती। एक साहित्यकार मित्र ने बहुत पूछने पर पंत को कुछ ऐसा ही स्नेहपूर्ण उलाहना दिया किंतु बहुत वर्षों बाद, सन् १९६९ में। यदि उन्होंने ७-८ वर्ष पूर्व कहा होता तो पंत उन्हे दिल्ली ले जाकर परिस्थिति स्पष्ट कर देते।

१ जिस किसी साहित्यिक ने आकाशवाणी की नौकरी के लिए पंत से कहा पंत ने उसके लिए प्राणपण से प्रयास किया। पर इसका परिणाम विचित्र ही रहा, आकाशवाणी में नौकरी न मिलने अथवा मिलने के पूर्व पंत के राज्याश्रय पर प्रहार किया गया मानो पंत ने स्वदेश, स्वदेश की सरकार को ठुकाकर विदेशी सरकार के पैर पूजे हो। परिमल के सदस्यो ने डॉ० हरदेव बाहरी के संयोजकत्व में सन् १९५७ (३, ४, ५ मई) में 'लेखक और राज्याश्रय' नाम से एक बृहत् गोष्ठी की जिसमें अज्ञेय जी ने विशेष वक्ता के रूप में भाग लिया। अज्ञेय जी स्वयं आकाशवाणी की नौकरी कर चुके थे।

पंत के लिए 'लेखक और राज्य' ढग की गोष्ठियां और आक्षेप लोगों के बचपन, उनकी हताशा और कुंठा को व्यक्त करते हैं, "क्या करें ये लोग जीवन इतना विषम हो गया है। पैसे का अभाव, परिवार की झंझटें तथा अपरिपक्व मानस जो जीवन को समझ ही नही पाता है।"

भारती जी ने प्रयाग विश्वविद्यालय के अध्यापन कार्य से छुट्टी लेकर १५ जनवरी १९६० को धर्मयुग का सम्पादकत्व स्वीकार कर लिया। इसने

के जब पत वेतनभोगी बने, स्वभाव और शारीरिक प्रकृति के विपरीत धुँआधार यात्राएँ की एव टाइफाएड के बाद तत्काल मद्रास चले गए और वहाँ उदयशकर सस्कृति केन्द्र एवं स्टूडियो से सलग्न होने के कारण रात-रात भर जगे जो कि उनके जीवन के लिए अभिशाप हो सकता था, तब उनके ये साहित्यिक सरक्षक न जाने क्यो, तटस्थ रहे। "१६५० मे पत हिंदी परामर्शदाता के रूप मे रेडियो मे आए। उस समय हिंदी साहित्य मे पत के विरुद्ध एक आदोलन उठा जिसमे प्रयाग के तो सभी साहित्यकार—महादेवी[१] सबसे अधिक—मुखर थे। किंतु मुझे उनका कदम ठीक लगा। जब १६५० मे उन्होंने मुझे 'सलाहकार' का निमत्रण दिया तो मैंने सहर्ष-सधन्यवाद स्वीकार किया।"[२]

पत के रेडियो से सबधित होने की बात सुन भदन्त आनन्द कौसल्यायन उनसे मिलने एक दिन रात को आठ बजे के लगभग आए। काफी देर तक दोनो मे बातचीत हुई। पत का निर्णय पर्याप्त विचारपूर्ण था। आकाशवाणी का बहिष्कार उन्हे कभी भी मान्य नही था। सभवतः वे एकमात्र (स्वतत्र) लेखक थे जिन्होंने इस असहयोग मे भाग नही लिया था। क्योकि और जो लेखक सहयोग दे रहे थे वे सरकारी कर्मचारी थे। इनके अतिरिक्त यह सभव हो सकता है कि कुछ और साहित्यिक भी सहयोग देना चाहते हो पर दृढ सगठन

'लेखक और राज्य' की भाँति के दूसरे आंदोलन 'लेखक और सेठाश्रय' को प्रेरणा दी।

'रेडियो हिंदी न्यूज' विभाग के अंतर्गत एक कोष बनवाया गया था जिसके तीन सम्पादको में से एक सम्पादक अज्ञेय जी थे, सन् १६४४ से '४६ तक वे सम्पादक के रूप में रेडियो से संबद्ध रहे। फिर नवम्बर १६५२ से जनवरी '५५ तक अज्ञेय जी ने रेडियो में 'हिंदी सुपरवाइजर' के पद पर काम किया। इससे पूर्व यह काम नगेन्द्रजी करते थे।

१. "साहित्यकारों को रेडियो ले गया या सरकार ले गई 'पंत जी तक रेडियो का विरोध नहीं कर सके ‥ "
'महादेवी संस्मरण ग्रंथ' : संपादक सुमित्रानंदन पंत पृ० ११७

२. भगवती बाबू : 'भेंट-वार्ता' मई, ६६।
"बाबू जी (निराला जी) पंत के रेडियो में जाने से असंतुष्ट थे। अक्सर इसके विरोध में कहा करते थे।" रामकृष्ण त्रिपाठी, भेंट-वार्ता, ७ सितंबर, ६६)।

का विरोध करना, बिल्ली के गले मे कौन घटी बाँधे का प्रश्न था। पत का निश्चित मत था कि समुचित सहयोग एव रचनात्मक कार्य ही देश को उन्नति की ओर ले जा सकता है। हिंदी का कल्याण हिंदी के भीतर से ही सभव है, उसके सक्रिय निर्माण द्वारा न कि किसी नीति के विरोध द्वारा। फिर अपना देश, अपने लोग, अपनी सरकार के साथ असहयोग हानिप्रद हो सकता है।[1] अपनी निर्वाचित सरकार के देश मे हम एक बृहत् परिवार के अग हैं, इस परिवार का तभी कल्याण हो सकता है जब कि हम सम्हलकर नपे-तुले निर्माणात्मक चरण रखें। अतः लोगो के आक्रोश के प्रति निर्लिप्त होकर पत अपने विश्वास और निर्णय पर दृढ रहे। आवश्यकता पडने पर सभी प्रतिवादो और कटूक्तियो का उन्होंने सयत शब्दो मे उत्तर दिया। कालक्रम मे अपने स्नेहियो की चिता एव जिज्ञासा का उन्होने अपनी कार्य कुशलता और क्षमता से समाधान कर दिया[2] तथा अस्नेहियो के द्वेष, कुठित व्यक्तित्वो की फूत्कार उनके लौह शाँत व्यक्तित्व से टकरा कर शिथिल पड गई।

रेडियो की नौकरी पत ने कभी नौकरी एव बाध्यता के रूप मे नही ली। यह उनके लिए एक प्रकार से सर्जनात्मक कार्य था, 'लोकायन' का ही व्यावहारिक पक्ष था। यह वह काम था जिसे उन्होने अपनी वैयक्तिक सुख-सुविधा को भूलकर आश्चर्यजनक स्फूर्ति, लगन और प्रसन्नता के साथ किया एव यह काम उनके सपूर्ण व्यक्तित्व के अनुकूल था। अत. यह उन्हे दुर्गम, अनजाना या अपरिचित भी नही लगा। जहाँ तक उनका तथा आकाशवाणी से सबधित अधिकारियो और कर्मचारियो का प्रश्न है उन्हे सदैव यही लगा कि वे एक परिचित परिवार के साथ बैठे हैं। जब भी किसी असिस्टेन्ट स्टेशन डाइरेक्टर या स्टेशन डाइरेक्टर का स्थानान्तरण हुआ उन्हे व्यक्तिगत स्तर पर बुरा लगा है—श्री एस० एन० मूर्ति, गोपालदास, गिरजा कुमार माथुर, श्री शास्त्री, श्री बरुआ, श्री कौल आदि उनके प्रिय रहे है। और दिल्ली मे मिनिस्टर तथा

---

१. स्वतंत्रता आंदोलन के दिनों पंत खादी के ही कपड़े पहिनते थे किंतु स्वतंत्रता मिलने के बाद उन्होने मिल के वस्त्रो का प्रयोग प्रारंभ कर दिया। कहने लगे, "दोनों ही अपने देश के हैं, अपने ही देशवासियो को लाभ होगा। सिद्धांततः मिल के वस्त्र धारण करने में मुझे कोई हानि नहीं दीखती।"

२. पंत के रेडियो से संबद्ध होने पर सूचना प्रसार मंत्री ने लोक सभा में कहा था कि पंत से योग्य व्यक्ति का सहयोग पाने का रेडियो विभाग को गर्व है।

सेक्रेटरी आदि ने न केवल उनके सुझाव आमत्रित किए वरन् उन्हे कार्यान्वित भी किया है। पत के सुझावो का औचित्य इतना स्पष्ट निष्पक्ष और ज्वलत रहा है कि उन्हे सहज ही मान्यता मिल गई। अपने वैयक्तिक सबधो मे पत अवश्य ही भोले हैं, नगेन्द्र जी के अनुसार उनमे 'अबोध पावनता' है, वे 'बच्चा' है,[१] दो साल के बच्चे से लेकर सुज्ञ कुटिल व्यक्ति भी सभवत. उन्हे अपने जाल मे फँसा सकता है, अपनी बात मनवा सकता है। ऐसे मे वे सब कुछ जानते, देखते और समझते हुए भी भोले रहते है, "ऐसी छोटी बाते मुझे नही छूती है।" किंतु जहाँ राष्ट्र, समाज और सस्कृति की रक्षा तथा मर्यादा का प्रश्न है उनकी मान्यताएँ वज्र कठोर है, व्यावहारिक बुद्धि सजग और पैनी है तथा दृष्टि व्यापक और न्यायसगत है। दिल्ली आकाशवाणी की मीटिंग्स के बारे मे कभी कोई बात घर मे उठती तो वे सयत स्वर मे कहते, 'मैं तो वही कह सकता हूँ जो मुझे उचित लगता है। मुझे किसी को खुश नही करना है। नौकरी का मुझे कोई प्रलोभन नही है, मैं तो इसलिए करता हूँ कि यह मेरे मनोनुकूल काम है। इसके द्वारा कुछ अच्छा कर सका तो सतोष होगा। नही तो अपने राम कह देगे कि आप अपनी पॉलिसी को लेकर रहिए, इसमे मै सहयोग नही दे सकता।"

इसमे सदेह नही कि पत ने आकाशवाणी को जितना दे सकते थे उतना दिया—उसके सास्कृतिक कार्यक्रमो के स्तर को उन्नत कर उन्हे गरिमा से मण्डित किया। 'लोकायन' के प्रचार के लिए उन्होने नाटक लिखे थे—सोचा था साहित्यिक और सास्कृतिक जागरण के लिए नाटक एक सशक्त माध्यम का काम करेगे। इसी दृष्टि से आकाशवाणी मे आकर उन्होने रेडियो गीति-नाट्य एव श्रव्य-काव्यो को जन्म दिया जो प्रबुद्ध श्रोताओ को प्रशिक्षित करने का एक भावनात्मक-बौद्धिक प्रयास है, "पहले शिक्षित वर्ग जीवन के ध्येय को समझ ले, तत्पश्चात् ही हम सामान्य जनता को जाग्रत् कर सकेंगे।" आकाशवाणी के कार्यक्रमो का सस्कार-परिष्कार कर उसे भारतीय सस्कृति का उपयुक्त माध्यम बनाने मे योगदान देने के अतिरिक्त पत ने अनेक लब्ध-प्रतिष्ठित साहित्यिको को रेडियो मे लाने का प्रयास किया, कई युवक प्रतिभाओ को इससे सलग्न किया। और यह भी सच है कि आवश्यकता-ग्रस्त योग्य प्रतिभाओं की आजीविका समस्या को सुलझाने के लिए उन्होने कई बार प्राणपण से चेष्टा की। सभी सबधित व्यक्तियो को पत्र लिखने के अतिरिक्त स्वय दो-दो तीन-तीन बार

---

१. 'स्मृति-चित्र,' १०३–१०४

दिल्ली गए, व्यक्तिगत रूप से परामर्श एव सुझाव देने । यह दूसरी बात है कि उनमे से कुछ नही लिए गए हो क्योकि पत द्रवीभूत होकर भी लोगो की प्रशसा करने लगते है । एक-आध बार जब कहा कि वह व्यक्ति तो बडा मूर्ख है, झगडालू या चार सौ बीस है, अथवा कई जगह नौकरी करके छोड चुका है तो उन्होने विह्वल होकर कहा "कुछ जानती भी हो कितना दुखी है, दुष्ट है तो मैं क्या करूँ, इतने लोग दुष्ट होते है, ' क्या तुम सोचती हो नौकरी मे मूर्ख लोग नही है, एक एक से मूर्ख है, ' ' बेचारा कितने कष्ट मे है। नौकरी मिलने पर वह निभा लेगा ।"

अप्रैल सन् '५७ तक पत आकाशवाणी दिल्ली से प्रत्यक्ष रूप से सबन्धित रहे । इसी बीच डेढ-दो वर्ष तक वे 'चीफ प्रोड्यूसर' रहे । चीफ प्रोड्यूसर के रूप मे दायित्व बढ जाने के कारण उनके लिए आवश्यक हो गया कि वे महीने मे दस-पद्रह दिन दिल्ली रहे और इसमे उन्हे कठिनाई अनुभव हुई । दिल्ली जाना उन्हे प्रिय था—बच्चन जी, नरेन्द्र जी, रामचद्र टण्डन, दिनकर जी मैथिलीशरण गुप्त, जगदीशचद्र माथुर, नगेन्द्र जी आदि के साहचर्य मे वे प्रसन्न रहते थे । किंतु दिनो तक दिल्ली रहना, "दिल्ली मुझे बहुत अच्छा लगता है ।··· ·पर बाप रे, वहाँ का व्यस्त जीवन । सबेरे आठ बजे जो कपडे पहिनता हूँ तो रात को ही उतार पाता हूँ । सोने को तो वहाँ मिलता ही नही है । कितनी जगह जाना पडता है । वहाँ रहना पडे तो खतम हो जाऊँ ।" हिंदी रेडियो-स्टेशनो से प्रसारित होने वाले कार्यक्रमो का मुख्यत· निरीक्षण करने के अतिरिक्त अन्य अहिंदी स्टेशनो के कार्यक्रमो का भी पत पर दायित्व था । लिखित राय देना, प्रसारित होने वाली वार्ताओ की सूची देखना अथवा कभी मुख्य वार्ताओ को पढना, यह सब उन्हे अच्छा ही लगा । इससे विविध विषयो का ज्ञान अधिक विस्तृत हुआ । 'चीफ एडवाइजर' के रूप मे उनसे यह भी अपेक्षा की जाती थी कि वे साल मे एक बार प्रत्येक रेडियो स्टेशन मे अवश्य जायेगे । किंतु यह उन्होने अपनी नियुक्ति के साथ ही स्पष्ट कर दिया था कि ऐसा करना उनके लिए सभव न होगा । फिर यह निश्चित हुआ कि वे डाक द्वारा अपना परामर्श भेज देंगे । अपनी सात साल की नौकरी की अवधि मे पत दो बार पटना गए और एक बार नागपुर । नागपुर वे श्री मूर्ति के स्नेह से अधिक गए, कर्त्तव्यवश कम ! लखनऊ सात-आठ बार गए और दिल्ली अनेक बार ।

अपने इन सात वर्षों के आकाशवाणी के जीवन मे पत ने तीन बार त्याग-पत्र दिया पर सफलता नही मिली । अधिकारियों के स्नेहपूर्ण आग्रह के कारण

अथवा अपने स्वभाव की उस विवशता के कारण जो दृढतापूर्वक 'नही' नही कह पाती उन्हे अपने त्याग-पत्र वापस लेने पडे । पहिली बार जब त्याग-पत्र दिया तो श्री बालकृष्ण राव, जो तब आकाशवाणी मे डिप्टी सेक्रेटरी थे, इलाहाबाद आए । उनके आने से पत को बहुत अच्छा लगा, आत्मीय स्वजन का ही आना था, सकोच भी हुआ कि ऐसे अनुचित अवसर पर त्याग-पत्र दिया कि श्री राव को कष्ट उठाना पडा । इस सकोच के कारण उन्होने स्वय ही त्याग-पत्र की बात हल्के से टाल दी । किंतु श्री राव ने पत के लिए अब अधिक सुविधाएँ कर दी । पत को सप्ताह मे तीन ही बार दफ्तर जाना होता था वह भी दो घण्टे के लिए । त्याग-पत्र वापिस ले लेने पर भी पत को यह लगने लगा था कि रेडियो को वे जितना दे सकते थे वह दे दिया है और अब उससे मुक्त हो जाना ही अच्छा होगा और यह वही मनोवृत्ति थी जिसने कालाकांकर छोडने को प्रेरित किया था ।

सूचना प्रसार विभाग के मत्री (श्री आर० आर० दिवाकर तथा डॉ०केसकर) तथा अधिकारी, (विशेषकर श्री राव और जगदीशचद्र माथुर) अधिकतर इस बीच वे ही लोग थे जो पत की साहित्यिक प्रतिभा और व्यक्तित्व का आदर करते थे । सन् '५७ मे पत किसी तरह आकाशवाणी के लोगो को इस बात के लिए राजी कर पाए कि वे 'चीफ प्रोड्यूसर' नही रहेगे, आकाशवाणी के 'आनरेरी एडवाइजर' रहेगे[1]—प्रयाग अथवा अन्य स्टेशनो से उनका कोई

---

१. 'ऑनरेरी एडवाइज़र' का काम करते हुए उन्हे साहित्यिकों की मनोवृत्ति का और अच्छा परिचय मिला । आकाशवाणी दिल्ली के मुख्य दफ्तर में उनके खिलाफ उन लोगो की चिट्ठियां खने को मिलीं जो पहिले पत के प्रशसक थे और चाहते थे कि वे रेडियों में काम करें । एक घटना तो बहुत ही मनोरजक घटी । पत दिल्ली जा रहे थे, वाचस्पति पाठक ने उनसे कहा कि ' '' का आवेदन पत्र यदि आप ले जायें तो अच्छा हो, क्योंकि डाक से गड़बड़ी हो सकती है । पंत को क्या आपत्ति हो सकती थी, उस पर किसी साहित्यिक को नौकरी मिलने की बात उन्हे सदैव अच्छी लगी है । पत अपनी प्रशंसा के साथ आवेदन पत्र दिल्ली दे आए और निश्चित हो गए कि उन्हें नौकरी मिल जाएगी । किन्तु कुछ समय बाद आवेदन कर्ता का एक पत्र उन्हें मिला—उनकी चिट्ठी का अभी तक उत्तर नहीं आया है । वे पंत को नोटिस देंगे । पंत

प्रत्यक्ष सबध नही रहेगा और न वे इन स्टेशनो के कार्यक्रमो के लिए ही उत्तरदायी रहेगे । सुझाव मागने पर ही वे अपने सुझाव इन स्टेशनो को देगे । साल मे दो बार दिल्ली जायेंगे और वहाँ की मीटिंग्स मे भाग लेगे । 'आनरेरी एडवाइजर' के रूप मे उन्हे ५००) माह आनरेरियन मिलने लगा । जुलाई '६७ से पत ने 'आनरेरी एडवाइजरशिप' से भी अवकाश ग्रहण कर लिया है ।

आकाशवाणी के 'परामर्शदाता' तथा 'चीफ प्रोड्यूसर' के रूप मे हिन्दी कार्यक्रमो के सास्कृतिक उत्थान, उनके प्रसारण और विकास के लिए पत सतत प्रयत्नशील रहे । साहित्यिक कार्यक्रमो के अतिरिक्त उन्होने अन्य कार्यक्रमो का भी सफलतापूर्वक निर्देशन किया है । इस अवधि मे पंत के निरीक्षण मे आकाशवाणी के लिए दो-तीन काव्य सकलन (सरल सुगम गीतो के सकलन) भी सम्पादित हुए, प्राचीन काल, मध्य काल तथा आधुनिक काल की कविताओ के । इन तीनो खण्डो के सम्पादन मे मानव जी उनके सहायक रहे हैं । पत को अपने कार्य मे जो सफलता मिली उसके लिए आकाशवाणी के अधिकारियो को भी श्रेय देना होगा । उन्होने पत को सदैव स्नेह और आदर दिया उनकी सुविधा तथा स्वास्थ्य का ध्यान रखा और सर्वोपरि उनके सुझाओ को महत्त्व दिया ।

स्वत: पत अपने आकाशवाणी के अनुभव को एक स्वस्थ अनुभव मानते है । उनका विचार है कि आकाशवाणी से सबद्ध होकर उन्हे साहित्यिक और सामाजिक दृष्टि से लाभ हुआ । अब वे 'जन-भीरु' नही रह गए हैं, सकोच दूर हो गया है । सभी से बातचीत कर लेते है ।[1] इसके अतिरिक्त अखिल भारतीय प्रतिभाओ के सपर्क मे आने का सौभाग्य, विचारो का आदान-प्रदान और सप्रेषण आकाशवाणी के कारण ही सभव हो सका । एकाध बार कहा भी, "ऐसे मुझसे घर से निकला नही जाता है । इसी बहाने निकल जाता हूँ, दूसरो के सपर्क मे आने तथा विचारो के आदान-प्रदान के लिए यह अच्छा अवसर

को एक ओर तो बुरा लगा कि उन्हे नौकरी मिलने के कोई लक्षण नहीं दीख रहे हैं, बेचारा परिवार वाला व्यक्ति है दूसरी ओर 'नोटिस' की बात ने उन्हें हँसा भी दिया । तत्काल एक कार्ड लिखा—मै आकाशवाणी का 'एडवाइजर' हूँ, मेरा काम चिट्ठी ले जाना नहीं है । यदि चिट्ठी ले गया तो अपनी सौजन्यतावश । फिर बात यही पर खतम हो गई ।

१. केशव चंद्र वर्मा से पंत की भेंट-वार्ता (नवम्बर '६६) ।

है।" इसके अतिरिक्त सरकारी नीति, उसकी आतरिक गतिविधियाँ, राजनैतिक बातो को समझने का भी उन्हे अवसर तथा साहित्यिको के स्वभाव का खुला परिचय मिला।

पत के आकाशवाणी से सबधित होने पर साहित्यिक मनोमालिन्य ने तो बाढ का ही रूप धारण कर लिया। ऐसा विरोध शायद ही किसी का हुआ हो जेसा पत का हुआ। अधिकाश साहित्यिक नौकरी करके ही जीविकोपार्जन करते है। हिन्दी के साहित्यिको के लिए यह अनुभूत सत्य है कि लेखन मात्र से परिवार का भरण पोषण करने मे उन्हे कितनी कठिनाई होती है, कुछ न कुछ धनोपार्जन का अन्य माध्यम अपनाए बिना अनेक असुविधाएँ सहनी पडती हैं जो कुठा को ही जन्म देती हैं। जिस धनोपार्जन की अपनी विरक्ति के कारण पत ने पारिवारिक जीवन स्वीकार नही किया और जो पचास वर्ष तक आत्म-सम्मान पूर्वक जीवन निर्वाह कर सका उसने औचित्य के मार्ग पर चलने के लिए यह नही देखा कि वह इस पथ पर एकाकी चरण बढा रहा है अथवा उसे एक सगठित विरोध का सामना करना पडेगा। यह भी एक रहस्य ही था कि जिस नौकरी को स्वीकार करने से वे हिन्दी की, सभवत. सबसे अधिक सेवा कर सकें हैं, हिन्दी प्रेमियो और साहित्यिको का हित कर सके उसी के विरूद्ध अधिकाश वे व्यक्ति मुखर हो उठे जो स्वय आकाशवाणी से सबधित थे या होना चाहते थे।[1] और इससे भी महान् आश्चर्य यह है कि अन्य दिग्गज साहित्य महारथियो ने जब रेडियो की नौकरी स्वीकार की तो साहित्यिकों के समुदाय मे विद्वेष की चिनगारी नही भडकी।[2] जहाँ तक पत का प्रश्न है

---

१. "सिनेमा और रेडियो आज के सब से अधिक शक्ति-सम्पन्न साधन हैं। वे विश्वमन के प्रतीक हैं। जन-शिक्षा की असख्य संभावनाएँ वे अपने में छिपाए हुए हैं।" नई मान्यताओं का प्रचार उनके माध्यम से किया जा सकता है। ''हिन्दी को मैं कोरी भाषा ही नहीं मानता, एक सस्कृति मानता हूँ। रेडियो द्वारा हिन्दी की शक्ति से सांस्कृतिक निर्माण का कार्य संभव हो सकेगा।"
पंत—मानव भेंट-वार्ता।
मानव : 'सुमित्रानंदन पंत', पृ० १२, किताब महल, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, १९६२

२. यह भी विचित्र है कि श्री राव ही पंत को प्रारंभ मे आकाशवाणी में लाए अथवा मात्र उन्हीं के स्नेह के कारण पत ने आकाशवाणी की नौकरी

आकाशवाणी का काम उनके सृजन के लिए अहितकर नही रहा क्योकि उनका कहना है, "जब मैं किसी काम को करता हूँ तो मन को तटस्थ रखता हूँ। फिर सृजन मे वह बाधक नही रहता।" रेडियो से सबधित होने के कारण ही पत ने एक नयी काव्य-विधा काव्य-रूपको को जन्म दिया जो 'रजत-शिखर,' 'शिल्पी' तथा 'सौवर्ण' नामक पुस्तको मे सगृहीत है। वैसे सन् १६५० से सन् १६५७ की अवधि मे इन काव्य रूपको के अतिरिक्त 'अतिमा' और 'वाणी' काव्य सग्रहो का भी उन्होने प्रणयन किया। इनके अतिरिक्त 'गद्यपथ' एव 'शिल्प और दर्शन' के उत्तरार्ध के अधिकाश निबध इसी काल की रचनाएँ है। सृजन की दृष्टि से आकाशवाणी से सलग्न अवधि पत के लिए उर्वर रही, इसमे सदेह नही है। साथ ही इस नौकरी के कारण ही वे पारिवारिक कुछ उन आकस्मिक दायित्वो को निभा सके जिनका न निभा सकना मर्मांतक होता अथवा कर्ज के भार मे सृजन को तिलाजलि दे देनी होती। और सबसे स्पष्ट तथा सच्ची बात तो यह है कि जिस व्यक्ति ने अपने जीवन मे सृजन कर्म के अतिरिक्त किसी अन्य को महत्व ही नही दिया तथा युवावस्था मे कविता कामिनी का वरण करने के साथ ही सभी प्रकार के प्रलोभनो के प्रति जो तटस्थ रहा, वह यदि किसी काम को प्रौढावस्था मे अपनाता है, अपने लिए हितकर पाता है, उसका सृजन अविरोध आगे बढता है, अथवा जब उसका सृजन विश्राम करता है तो मात्र इस कारण कि उसकी आतरिक प्रेरणा वेगवती नही हुई है क्योकि वह नियमित या यात्रिक रूप से नही लिखता तो ऐसे मे क्यो किसी को आपत्ति होती है यह एक बूझी अबूझी पहेली है। 'ग्राम्या' के प्रणयन के बाद पत ने लगभग छह-सात वर्षो तक सृजन कर्म नही किया, तब किसी पत-काव्य प्रेमी

स्वीकार की और उन्होने, जब तक स्वयं वे आकाशवाणी में रहे पंत को त्याग-पत्र नहीं ही देने दिया। ऐसे ही बाद को पत के लिए आकाशवाणी का कार्य अहितकर मानते हैं, "Pant has written nothing since the publication of Atima a couple of years ago. If, however, the rumour that he is about to quit the service of All India Radio is to prove true this time, we may look forward to many another poetical works of high significance from his masterly pen." Sunday Standard (24-3-'57)—The Old Guard.

एव आलोचक का ध्यान इस ओर नही गया। और आकाशवाणी अवधि के सात वर्षो मे तीन काव्य-रूपक सग्रह, दो काव्य सग्रह तथा 'युगपथ' का प्रकाशन उसके सृजन कर्म के विश्राम एव सृजन के लिए समय न मिलने की अवधि मानी गई—तुलसी के ही शब्दो मे, 'जाकी रही भावना जैसी।' किंतु यदि उसकी अनुभूति को मान्यता दी जाय जो भोला है, निष्ठावान् और सच्चे अर्थों मे काव्य-जीवन जीता है तो उसे आकाशवाणी से सलग्न होने का सतोष है और इस दृष्टि से पत के स्नेही मित्र श्री राव ने उन्हे आकाशवाणी मे लाकर उनका कल्याण ही किया।

● ●

८

श्रव्य काव्य में नवीन जीवन निर्माण—रजत-शिखर

●

आकाशवाणी से सलग्न होकर पत की प्रतिभा ने अधिक जागरूकता और व्यापकता का परिचय दिया। उसने श्रव्य-काव्य की एक नयी विधा चुनी थी, काव्य रूपको की नयी विधा जो कि सभवत उस समय हिन्दी के लिए नयी थी। क्योकि जहाँ तक मैं जानती हूँ, इसके पश्चात ही काव्य रूपको की परम्परा का जन्म हुआ या हो सकता है इसके कुछ ही पहिले हुआ हो। काव्य रूपको द्वारा पत ने न केवल अपनी काव्याभिव्यक्ति के लिए एक नवीन मार्ग खोजा वरन् साहित्य और सस्कृति के विकास, प्रचार तथा प्रसार को भी ध्यान मे रखा। साथ ही उन्हे लगा कि जिस सांस्कृतिक कार्य को 'लोकायन' साकार रूप नही दे सका उसे वे आकाशवाणी द्वारा प्रसारित काव्य रूपको द्वारा मूर्त कर सकेंगे।[1] पत का श्रव्य-काव्य यथार्थ की पृष्ठभूमि पर विचरता हुआ सामान्य वार्तालाप एव घटना के माध्यम से 'लोकायन' के सास्कृतिक सदेश को श्रोता के हृदय तक पहुँचा देता है। वातावरण के जीवत चित्रण तथा परिस्थिति विशेष के सृजन के माध्यम से उनका ध्येय पक्ष-विपक्ष का प्रस्तुतीकरण एवं बाह्य और आतरिक सघर्ष द्वारा श्रोता के नीर-क्षीर विवेक को जाग्रत करना

---

१. '''विचार की दृष्टि से काव्य रूपक पंत जी के नव मानव की कल्पना से परिपूर्ण हैं और काव्य प्रतिभा की दृष्टि से कवि ने उत्तुंग चोटियों का स्पर्श किया है।
काव्य रूपक हिन्दी के लिए नवीन विधा है। वैसे यदि इसको नाटकीय कविता से पृथक् देखा जाए तो पाश्चात्य काव्य में भी इसे अधिक प्राचीन नहीं कहा जा सकता।"
विनय कुमार शर्मा : 'पंत की काव्य साधना', पृष्ठ २३०

हैं। शिव-अशिव, आसुरी-दैवी शक्तियो का सघर्ष ही जीवन है। इस जीवन को मागल्य श्री से ज्यातित करने को मनुष्य के लिए सम्यक्-ज्ञान और सम्यक् चरित्र का उपार्जन करना अनिवार्य है। श्रव्य-काव्य द्वारा साहित्यिक सस्कार सम्पन्न मानसो एव प्रबुद्ध श्रोताओ को पत स्वस्थ समाजवाद, यथार्थवादी अध्यात्मवाद एव मानवता के उस सत्य को आचरित करने की प्रेरणा देते है जिसे विस्मृत करने के कारण जीवन विषाक्त, कटु और असह्य हो गया है। इन श्रव्य-काव्यो अथवा काव्य-रूपको की भाषा विषयानुरूप है, शब्द भावो को वहन करने का माध्यम भर है, उनमे अभिव्यक्ति की सहजता और कल्पना की वह विशालता है जो वातवरण को जीवत-स्पदन प्रदान कर देती है, "जहाँ तक वातावरण के सृजन का प्रश्न है वहाँ तक ये काव्य रूपक आदर्श हैं। इनमे कल्पना का भव्यतम रूप मिलता है। विशेष रूप से अपने प्रिय कल्पना के स्वर्ग का तथा आगामी युग का चित्रण मोहक है। सम्मोहन पत जी की कला की मुख्य विशेषता है। पाठक को ऐसे दृश्यो मे निमग्न कर देने की शक्ति यहाँ पूर्ण रूप से मिलती है। कल्पना के द्वारा लाए गए चित्रो के विरोध मे वर्तमान काल का यथार्थ चित्रण भी कवि ने विस्तार से यत्र तत्र किया है। इनमे भी वातावरण को जीवत रूप मे प्रस्तुत करने की शक्ति मिलती है परन्तु चूँकि वर्तमान का चित्रण सिद्धात विशेष की सिद्धि के लिए किया गया है अत उसमे वास्तविकता पूर्ण रूप से अवतरित नही हो सकी है। इस प्रकार के चित्रणो मे लेखक अपने विरोध को पूरी कटुता के साथ व्यक्त करता है अतः वे आकर्षक हो गए हैं।"[1]

उपाध्याय जी की उपर्युक्त व्याख्या पूर्वग्रह और भ्राति का ज्वलत उदाहरण है। काव्य-रूपक वाला उनकी पुस्तक का सपूर्ण परिच्छेद एक ओर तो मार्मिकता, चित्रमत्ता, कल्पना की भव्यता, स्वप्नो का चित्रण, काव्य का सौन्दर्य, सम्मोहन, विशुद्ध काव्य आदि की प्रशस्ति करता है, दूसरी ओर, समातर रूप से वह याद दिलाता रहता है कि यह काव्यनुभूति निन्दनीय है क्योकि यह अरविन्दवाद है। पत के काव्य को अरविंदवाद सिद्ध करने की प्रतिबद्धता— "इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य अरविंद दर्शन के प्रभाव का अनुसधान तथा कवि की काव्य कला का विवेचन है"—उनके काव्यानद को 'स्मेलिंग सौल्ट' सुँघाती रहती है। इसी प्रतिबद्धता के गवाक्ष से वे पत के व्यक्तित्व एव काव्य-रूपको का स्पष्टीकरण करते हुए कहते है, "यदि यह कहे

१. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय : 'पंत जी का नूतन काव्य और दर्शन' पृ० ७३७

कि पत जी को जानबूझ कर यथार्थवादी शिविर से निकाला गया तो यह गलत होगा क्योकि पत जी अपने विचार-परिवर्तन के लिए स्वय ही उत्तरदायी है परन्तु इसमे सदेह नही कि उन्हे कुत्सित समाजशास्त्र का शिकार होना पडा और इसीलिए अपने काव्य-रूपको मे उनका आक्रोश 'कुत्सित समाजशास्त्र पर नही, सीधा मार्क्सवाद पर ही व्यक्त हुआ है। उन्होने कुत्सित 'समाज-शास्त्रियो की निन्दा के बदले मार्क्सवाद की निन्दा करने का कार्य बडी तत्परता से किया है। विशेषकर काव्य-रूपको मे उनका स्वर बहुत उग्र है।"[1]

पत के काव्य-रूपको के प्रति बच्चन जी को भी एक विशिष्ट प्रकार की आपत्ति है, "पत जी सर्वप्रथम अपने जीवन मे सरकारी वेतन-भोगी बने, राज्य की नीति और समय के बधन मे रहकर उन्होने अपना काम शुरू किया। उन्होने अपनी सृजन-प्रक्रिया को माध्यम के अनुरूप बनाया, उससे अनुशासित किया। प्रतिभा न परिस्थितियो से झगडती है, न उससे पराजित होती है। वह हर परिस्थिति को अपने अनुकूल बना लेती है।"[2]

अपने देश की सरकार के सास्कृतिक कार्यक्रमो मे भाग लेना, उनके निर्माण और प्रसारण मे सक्रिय योग देना, किस मूलभूत मान्यता की अवमानना करना है ? और फिर, पत ने अपने सिद्धातो से कहाँ पर समझौता किया ? वह उनका कौन-सा सिद्धात है जो अपने देश के सास्कृतिक कार्यक्रमो मे भाग लेना अनुचित मानता आया है, क्या 'लोकायन' की धारणा देश और सस्कृति की विरोधी थी ? पुन यदि वेतन भोगी होना लेखक की अतर्जात प्रतिभा को नष्ट कर देना है तो अधिकांश लेखक, स्वय बच्चन जी इस अभियोग से मुक्त नही हो सकते—प्राध्यापक, आकाशवाणी और विदेशी मत्रालय की नौकरी सभी उन्होने की हैं। अपनी स्वेच्छा से वरण की हुई नौकरी किसी को भी बधन स्वरूप नही लग सकती। जहाँ तक काव्य रूपको का प्रश्न है, उनकी सृजन प्रक्रिया को 'लोकायन' जन्म दे चुका था, आकाशवाणी ने उसके पल्लवित-पुष्पित होने के लिए मनोनुकूल परिस्थितियाँ मात्र प्रदान की, न कि किसी प्रकार का आदेश दिया। आदेश दिया भी कैसे जा सकता था, किसी लेखक से यह कहना कि साहित्य की एक नई विधा को जन्म दो—अपने आप मे निरर्थक है। क्योकि जन्म देना एव सृजन करना सच्चे कवि की अतर्जात प्रतिभा का प्रस्फुटन है न कि अफसरी आदेशो का। और

१. वही पृ० ७३९ तथा देखिए 'कवियो में सौम्य संत पृ० १३६
२. 'कवियो में सौम्य संत', पृ० १२५

साथ ही पत का अतर्जात कवि इतना सबल है कि परिस्थितियाँ उसे दबा नही पाती है, विषमतर परिस्थितियो मे तक अपने व्यक्तित्व की रक्षा वे, इसी कारण, करने मे सफल हुए है ।

पत के श्रव्य काव्य तीन पुस्तको, 'रजत-शिखर,' 'शिल्पी' और 'सौवर्ण' मे सकलित हैं । आकाशवाणी के सास्कृतिक कार्यक्रम के अतर्गत 'भारत-भारती' मे, समय की सीमा के कारण, ये श्रव्य काव्य सक्षिप्त रूप मे प्रसारित किए गए थे। इन श्रव्य-काव्यो की पूर्व पीठिका के रूप मे त्रिवेणी ('युगपथ') 'अशोकवन' ('स्वर्णकिरण') और 'मानसी', ('स्वर्ण धूलि') को स्वीकार कर लेना उचित होगा । यद्यपि 'अशोकवन' तथा 'मानसी' मुख्यतः गीति रूपक है ।

'रजत-शिखर' का प्रकाशन काल सन् १९५२ है ।[1] अपने इस सकलन के बारे मे पत का कहना है, "इन रूपको मे चौबीस मात्रा का अतुकात रोला छद प्रयुक्त हुआ है, जिसमे नाटकीय प्रवाह तथा वैचित्र्य लाने के लिए यति का क्रम गति के अनुरूप ही बदल दिया गया है एव तेरह-ग्यारह के स्थान पर दो-बारह अथवा तीन-आठ मात्रा के टुकडो को रखना अधिक आलापोचित सिद्ध हुआ है। पद के अत मे दो गुरु मात्राओ के स्थान पर लघु-गुरु या दो लघु मात्राओ का प्रयोग कथोपकथन की धारावाहिता के लिए अधिक उपयोगी प्रमाणित हुआ है। 'सौवर्ण' आदि मे प्रवाह के अनुरूप छद की मात्राएँ घटा बढा दी गई है । पद्य नाट्य मे लय की गति को अक्षुण्ण रखने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि पढते समय प्रत्येक के अत मे यथेष्ट विराम दिया जाए ।" इसी सदर्भ मे बच्चन जी का कहना है—"खडी बोली को अन्त्यानुप्रासहीन रोला मे इतना ढालने, माँजने का काम इससे पूर्व किसी कवि द्वारा नही हुआ था । सीमित क्षेत्र मे ही सही, इसने वर्णनात्मक और, प्रकार के अर्थ मे, नाटकीय काव्य के लिए रोला की उपयोगिता सिद्ध की । अग्रेजी काव्य का हिंदी मे अनुवाद करने वाले 'ब्लैकवर्स' छद के जोड के हिंदी छद की तलाश मे रोला पर ही आकर अटके । शेक्सपियर, मिल्टन, एसकिलस (जो अग्रेजी के माध्यम से अनूदित हो रहा है) के अनुवाद, अतुकात रोला मे, इन रूपकों के बाद ही सामने आए और जाने या अनजाने रूप से उनसे प्रेरित और प्रभावित रहे... "। 'मैकबेथ' और 'ओथेलो' के अनुवाद मे

---

१. **प्रथम संस्करण : भारती भण्डार, प्रयाग ।**
वर्तमान संस्करण : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-६ ।

रोला के प्रयोग मे मैंने पत जी द्वारा ली स्वतत्रता पर दो कदम और आगे बढाए। कथोपकथन मे स्वाभाविकता लाने के लिए मैंने 'रन आन' चरणो का प्रयोग किया, जिसमे चरण के अत मे नही, विचार के अत मे रुका जाता है, चाहे वह जगह पक्ति के बीच मे पडे। दूसरी बात मैंने यह की कि चरण मे २४ मात्रा रखने के बजाए दो पक्तियो को मिलाकर, कही-कही ४८ मात्राएँ रखी या तीन को मिलाकर ७२ जिनमे अकेली पक्तियाँ २३,२५ या २६, २३,२३ की भी हो सकती है।"[1] अपने द्वारा ली गई स्वतत्रता का विवेचन करते हुए बच्चन जी जिन दो तथ्यो पर प्रकाश डालते हैं; यदि तनिक-सा भी ध्यान देकर पत के काव्य रूपक पढे जाए, तो वे तथ्य इन रूपको मे वर्तमान मिलेगे।

'रजत शिखर' के अतर्गत छ काव्य रूपक है—'रजत शिखर', 'फूलो का देश', 'उत्तर शती', 'शुभ्र पुरुष', 'विद्युत् वसना' और 'शरद चेतना'। प्रत्येक मे जीवन को उसकी सपूर्णता मे ग्रहण करने का आग्रह है।

'रजत शिखर' रूपक जीवन की वास्तविकता के यथातथ्य चित्रण के माध्यम से ऊर्ध्व और सम सचरण के समन्वय एव जीवन को उसकी सपूर्णता मे अपनाने की अनिवार्यता को घोषित करता है। मानवता तभी तक विषण्ण है जब तक मनुष्य ऊर्ध्व और सम सचरण की मूलगत एकता और पारस्परिक सहयोग भूल कर उन्हें द्वद्व तथा भेद के रूढाचार में बदी कर देता है।[2] जीवन अपनी पूर्णता मे ही मगलमय, मानवोचित सुखद और शिवमय हो सकता है। ऊर्ध्व और सम का आरोहण तथा अवरोहण किसी अयथार्थ सत्य की स्वप्निल गुत्थिया नही सुलझाते वरन् इस जीवत तथा अनुभूत तथ्य पर प्रकाश डालते हैं कि ऊर्ध्व और सम एक ही सत्य के दो पक्ष हैं। मनुष्य तभी स्वस्थ अनुभव

---

१. 'कवियो मे सौम्य संत', पृ० १५३-१५४

२. "सास्कृतिक सामजस्य की प्रवृत्ति पंत के संपूर्ण आध्यात्मिक काव्य की विशेषता कही जा सकती है।"
"पंत के समन्वयात्मक दृष्टिकोण की परिणति विश्व-संस्कृति के निर्माण की आकाक्षा में होती है।"
शम्भूनाथ चतुर्वेदी : 'पत की नयी कविता'
'युग चेतना', वर्ष : ४, 'अंक : १० अक्टूबर '५८, पृ० १६-१७ (संपादक • डा० देवराज)।

कर सकता है जब कि उसके देह तथा मन के सभी अगो के बीच उचित सयोजन हो, जीवन तभी विकासोन्मुख और मगलमय हो सकता है जब कि हम उसके दोनो पक्षो के समुचित सयोजन के महत्त्व को समझ लें। समतल का आरोहण और तदनुरूप ऊर्ध्व का अवरोहण एक ही क्रिया के दो रूप है। 'रजत शिखर' मे स्त्री-पुरुष स्वर, युवक साधक, युवती, मनोविश्लेषक, राजनीतिज्ञ, विस्थापित आदि के पारस्परिक मनोविश्लेषण, राजनीतिज्ञ, विस्थापित आदि के पारस्परिक वार्तालाप द्वारा जीवन की एकागिता एव सकीर्णता पर प्रकाश डाला गया है। युवक का हृदय अतर्द्वंद्व से व्यथित है क्योकि वह मिथ्या विभेदो को सत्य मान लेता है। एक ओर वह वन मर्मर की इस सुदर घाटी के प्रति आसक्त है जहाँ प्राणो की मुखर सरिता कल-कल बहती है और आवेशो के फेनिल मानस पुलिनो को डुबा देती है। दूसरी ओर उसका विकसित बोध अदर ही अदर चेतना के शुभ्र प्रकाश को अपनाने के लिए आकुल हो उठता है। युवक यह समझने मे असमर्थ है कि बोध और आसक्ति एक दूसरे के पूरक है—आसक्ति बोध की बाँहो मे ही विकसित होकर अपनी सार्थकता प्राप्त कर सकती है। वह बोध का उज्वल आश्रय लेने के विपरीत राग-रग की स्वार्थपूर्ण सकुचित मायापुरी मे भटक जाता है। युवती, जो कि युवक की इच्छाओ से गुजरित घाटी की प्रेयसी है, जीवन को उसकी सतरगी किंतु सतही आभा मे सरलता से स्वीकार कर लेती है। उसका बोध युवक की भाँति जाग्रत् नही है अतः उसके लिए युवक का अंतर्द्वंद्व अबूझा है—

'.... ..ये दुर्बल उच्छवास मात्र हैं, !
तुम परिणीत नही इन थोथे विश्वासो से !'

युवक का मनोवैज्ञानिक मित्र सुखव्रत जीवन को निम्न प्रवृत्तियो एव अव-चेतन से शासित मानता है और यह विश्वास रखता है कि जब प्राणो का स्वास्थ्य मुक्त वेग से बहेगा तथा काम चेतना युग-युग की कृमि जटिल ग्रथियो के उत्पीडन से मुक्ति पा लेगी तब मनुष्य का अतर सुखी और सामूहिक सह-जीवन स्वस्थ हो जावेगा। किंतु युवक मानव मन को देवासुर सग्राम का क्षेत्र मानता है जहाँ उच्छृंखल मुक्त कामना के शासन ने जीवन को कुत्सित और अमानवीय बना दिया है। उसके अनुसार प्राण चेतना का ऊर्ध्व प्रवृत्तियो से युक्त हो जाना ही जीवन का स्वर्ग बन जाना है। निम्न और उच्च एक ही सत्य

के अग हैं, उच्च से विच्छिन्न निम्न अपनी एकागिता मे ध्वसात्मक और नारकीय है। किंतु सुखव्रत की स्थूल रागात्मक दृष्टि विस्थापितो को देख कर जीवन का सम्यक् यथार्थ परिचय पा लेती है।

'नारकीय प्रतिहिंसा, घोर घृणा का उत्सव !
नग्न वासना नृत्य, प्रेत ज्यो अवचेतन के
अट्टहास भर, बाहर सकल निकल आए हो।

फ्रॉएड और मार्क्स के सिद्धातो की एकांगिता तथा साप्रदायिकता एव धर्मांधता पर करारा प्रहार करने के साथ यह रूपक 'रजत चेतना' (बोधयुक्त भू चेतना अथवा ऊर्ध्व और सम के समन्वित जीवन) की शोभापूर्ण झाँकियाँ प्रस्तुत करता है।

'प्रीति पाश मे बाँधे हम नव मानवता को;
जिसका दृढ आधार एकता हो आत्मा की,'

× × ×

'आओ, हम अत· प्रतीति को धर्म बनाएँ'

× × ×

'आज बहुत ही बडा चॉद आया है नभ मे,
अतर का खुल गया रुपहला हो वातायन,—'

'फूलो का देश' सास्कृतिक चेतना का प्रतीक है। आज का युग वादो के सघर्ष से अभिभूत है विशेषकर वह भौतिकवाद आदर्शवाद एवं अध्यात्मवाद का गला अपने हिंसक हाथो से जकडे है। वह अध्यात्मवाद को पलायन, भीरुता और निष्क्रियता एव जीवन अनुभवो की रिक्तता की उपज मानता है। भौतिक-वाद के लिए आर्थिक समत्व, बाह्य सगठन शक्ति ही सब कुछ है। संस्कृति, सभ्यता साहित्य का मूल्य उपयोगितावादी है। 'फूलो का देश' विश्व जीवन मे बहिरतर सतुलन की अपेक्षा रखता हुआ मात्र बाह्य सगठन की अक्षमता को सिद्ध करता है। बाह्य सगठन न केवल अपने आप में थोथा है वरन् उसने मनुष्य को जड भौतिकता का दास बनाकर हृदयहीन बना दिया है। मनुष्य को मनुष्य बनाने एवं भगवान् की सृष्टि के सरक्षण के लिए उसे भीतर से प्रबुद्ध बनाना है। आत्मिक जागरण के समांतर ही बाह्य सगठन उपयोगी है। यह

आध्यात्मिक भौतिकवाद एव आदर्शवादी वस्तुवाद है जिसका गीत 'फूलो का देश' है। यह रूपक ज्योति मानस का ही रूपक है जिसके विजन छाया वन मे एक स्वप्न द्रष्टा कवि एकाकी जीवन व्यतीत कर रहा है। जीवन का सघर्ष, करुण क्रदन, चीत्कारें उसके भाव जगत् को छू कर मर्म गीत मे परिणत हो जाती है। विश्व को विनाश की ओर अग्रसर देख उसका मानस अनवरत चितातुर रहता है और एक दिन उसे अपनी जिज्ञासा का समाधान मिल जाता है —

'धरती का जीवन सहसा निज ज्योति केन्द्र से
पुन. युक्त होकर, हो उठता पूर्ण काम है।'

किंतु नगरो मे रहने वाले विद्रोही नर-नारी कवि की शात सतुलित और सयत मनोवृत्ति को उसकी असामाजिकता और अमानवीयता का चिह्न मान लेते है। उनकी घृणा 'पत्तो के प्रच्छाय नीड मे' रहने वाले पर फूत्कार कर उठती है। कवि अपने अतर्द्वद्व की दुहाई देते हुए कहता है कि शात मन से ही जीवन की दारुण समस्याएँ सुलझाई जा सकती हैं। मानव को उस मार्ग को अपनाना चाहिए जो कल्याणकारी है, न कि ध्वसकारी। पशु प्रवृत्तियो को उभार कर एव 'हिंसा का बदला हिंसा' के सिद्धात को अपना कर मनुष्य ध्वस की ओर ही बढ़ेगा।

'कलाकार हूँ मै, पर जीवन सघर्षण से
विरत नही हूँ !......'

× × ×

'मैं नव मानवता की प्रतिमा यहाँ गढ रहा
अतर्मन के सूक्ष्म द्रव्य से !'

जनगण के कटु नित वाक्य कवि को परास्त नही करते। उसका विश्वास अक्षुण्ण तथा अनुभूति सत्यता, सार्वभौमिकता और गहनता से ओतप्रोत है। इसीलिए वह कहता है कि आस्थाहीन सामूहिक जीवन मानव के लिए हितकर नही हो सकता।

'आज पुकार रहे चिल्लाकर—बाह्य सगठन
मात्र सत्य है! बाह्य सगठन चरम लक्ष्य है।'

× × ×

'भीतर ही रे मानव, भीतर ही सच्चा जग,
जाति वर्ग श्रेणी मे नही विभाजित है जो,
उसे नव्य सगठित, पूर्ण सक्रिय, चेतन कर
बहिर्जगत् मे स्थापित करना है मानव को।'

किंतु क्रोध के अध प्रवाह मे बहने वाले विद्वेषी एव विद्रोही जनगण कुछ भी सुनने को तत्पर नही हैं।

'ध्वस भ्रंश कर देगे हम इस आदर्शों की
माया मोहक पचवटी को, ...'
— — ...
'बहिर्जगत की लौहमुष्ठि फिर अतर जग का
नव निर्माण करेगी जीवित आघातो से! ... '

ज्ञान-विज्ञान, आदर्श-यथार्थ, भाव-रूप, अध्यात्मवाद-वस्तुवाद एक दूसरे से समन्वित होकर ही मानव-जीवन का कल्याण कर सकते है। कवि इस समग्र दृष्टि का प्रतीक है। उसकी दृष्टि मानवतावादी होने के कारण व्यापक है, यथार्थ और आदर्श के शिवमय समवेत जीवन की प्रतीक है। वैज्ञानिक आविष्कारो को श्लाघनीय और आश्चर्यजनक मानते हुए वह वैज्ञानिक से समयोपयोगी प्रश्न करता है—

'किंतु पूछता हूँ मैं तुमसे, आज मनुज क्या
स्वामी है या दास प्रकृति का? ' [१]

---

१. यही विचारधारा पत के काव्य सग्रह 'गीत हस' में भी मिलती है। चन्द्रलोक मे मानव के पदार्पण (एपोलो-११) करने पर उनकी भू-कल्याण की आशा बलवती हो जाती है—

'यह जो हो, दिग् चालक मानव
बने न जन भू घातक
भू को छोड़ चंद्र को वरना
होगा दारुण पातक!'

(गीत हंस)

मानव-कल्याण के लिए आर्थिक समत्व को आवश्यक मान कर वैज्ञानिक कहता है कि सयुक्त कर्म ही भू-तम का विनाश कर सकता है । किंतु कवि सगठित जीवन, सयुक्त कर्म एव बाह्य सगठन को बिना आत्मिक सगठन के अपूर्ण मानता है और अत मे इसे स्वीकार करते हुए वैज्ञानिक कहता है

'स्पष्ट देखता हूँ मैं, अतर का विधान ही
मानव है ! अत सयोजित, ऊर्ध्व समन्वित !
आज मनुज मर गया ! पराजित हो भीतर से
दौड रहा है वह बाहर, व्यक्तित्वहीन हो !
व्यक्तिहीन सामाजिकता निर्जीव ढेर है !'

कवि की आस्था चिर आशावान् है । उसकी अटूट आस्था वर्तमान के अधकार मे भविष्य का स्वर्णिम प्रकाश देखती है । भगवान् की सुदर प्रकृति मे लहरो की रुपहली पायलो की छम-छम उसे सुनाई देती है । वह कहता है खेतो मे हँसमुख हरियाली सोना उगल रही है । यह मनुष्य की पाशविक हिंस्र प्रवृत्ति है जो जीवन की रमणीयता को विनष्ट कर रही है। उसकी मानसिक सीमाओ ने ही सृष्टिकर्ता के सुदर सृजन को निष्प्रभ और विषण्ण बना दिया है । अवश्य ही मन की सीमाएँ दुर्लंघ्य नही है । मानव अमृत पुत्र है । एक दिन अमृत प्रकाश उसके जीवन को उज्वल बना ही देगा ।

'आओ, हम दोनो बहिरतर के प्रतिनिधि मिल
अमृत चेतना को इस फूलो के प्रदेश की,
नव युग जीवन मे परिणत कर, सत्य बनाए !'

'विंश शती' मे घटित सघर्ष और उसके साथ ही मानव को भविष्य के सुखद जीवन की आशा प्रदान करने वाला काव्य रूपक 'उत्तर शती' है । 'उत्तर शती' के पूर्वार्ध मे सग्राम का सक्षिप्त निदर्शन तथा उत्तरार्ध मे कल्याण-प्रद क्रम विकास की ओर सकेत है । गलित प्रथाओ, युग के परम्परागत बधनो, पाशविक प्रवृत्तियो के विनाश और मागलिक चेतना के अभ्युत्थान के लिए ही मानो महाकाल के मुक्त वक्ष पर 'निष्ठुर हासिनी' प्रकृति उन्मादिनी होकर नग्न नृत्य करती है । भुक्त अर्धशती अनेक सक्रामक स्थितियो को पार कर उत्तर शती मे पहुँची है । उसने बोअर युद्ध का दारुण क्रदन और भीषण गर्जन सुना है । दो महायुद्धो ने उसके जन-जीवन को रक्त तरगित कर दिया है । युग के कर्दम

से अब नई धरती निखर रही है। अर्धशती की समाप्ति के साथ ही विश्व दो महान् शक्तिशाली विरोधी शिविरो, साम्यवाद और पूँजीवाद मे विभाजित हो गया है।

वर्गहीन मानवता के उच्च ध्येय और अभिनव आकाक्षा से प्रेरित होकर साम्यवाद ने रक्तक्राति को अपनाया है। किंतु क्या रक्तक्राति द्वारा मानवता, सचमुच मे ही, वर्गहीन हो जायेगी ? कवि का निष्कर्ष है —

'आवेशो की नई धरा वह, ऊष्ण बहिर्मुख,
जिसे चाहिए जीवन मथन, अतर्दर्शन !'

फिर भी साम्यवाद की महत्ता का निराकरण नही किया जा सकता। उसकी आभा चतुर्दिक् फैल रही है। साम्यवादी रूस एव लोहिताक्ष नक्षत्र के सपर्क से भारत का पडौसी देश, रक्तजिह्वध्वज चीन भी लोक सगठन की करवट ले रहा है। आर्थिक साम्य, लोक-सगठन, जन मानवता के पत मुक्त प्रशसक है किंतु साथ ही, इस सबके लिए सास्कृतिक चेतना को मूलाधार मानते है। इसीलिए विंश शती मे भारत का सत्य, अहिंसा एव करुणा का धर्म, विश्व सभ्यता को मात्र अर्थभित्ति पर खडा देख चितननिमग्न है। धनिक-श्रमिक के बीच रक्त की खाई जीवन-विकास के लिए बाधक है। आत्मिक ऐक्य तथा मानव समानता का बोध ही जीवन को स्वस्थ और प्रसन्न बना सकता है।

सन् '५१ का आगमन युग चेता कवि के मन मे वर्गहीन नैतिकता और आतरिक उन्नयन मे समन्वय के स्वप्न सँजो ही रहा था कि विश्व क्षितिज मे युद्ध के मेघ दृष्टिगोचर होने लगे। पूँजीवाद ने हिंसा का 'धूमकेतु ध्वज' उठा लिया तो साम्यवाद लोक राष्ट्र की बृहत् जन साम्य योजना को भूल कर अपने जन तत्रो को सैन्य शिविरो मे बदलने लगा।

'घूम रही है धरा समर के घोर भँवर मे।
दम साधे है खडा भयकर अणु का दानव
भू व्यापी सहार, प्रलय हुँकार छेडने !!'

कवि कहता है कि भारत के पास वह आध्यात्मिक दायधन है जो विश्व का विनाश से बचा सकता है। भारतीय सस्कृति युग के बहिरतर को सगठित कर उस आत्म-शक्ति एवं विश्व चेतना को उद्बुद्ध कर सकती है जिसके बिना धरती का रूप कुत्सित तथा ध्वसात्मक हो गया है। यह धरती मानव प्रयास से मगलमय बन सकती है क्योकि केन्द्रीय चेतना एव आत्मिक सत्य शिवमय है।

महात्मा गाँधी की जन्म तिथि के अवसर पर लिखी श्रद्धाजलि ही 'शुभ्र पुरुष' है। इस रूपक मे कवि ने गाधी जी के राजनीतिक व्यक्तित्व के साथ ही उनके सास्कृतिक तथा आध्यात्मिक व्यक्तित्व के प्रति भी प्रणत श्रद्धा समर्पित की है। निःसदेह "ऐसा करके उन्होंने कोई नई बात नही की"[1] क्योकि वे गाधी जी को अपनी अन्य कविताओ द्वारा भी श्रद्धाजलि अर्पित कर चुके है। किंतु क्या युग पुरुष एव महापुरुष को श्रद्धाजलि कुछ निर्धारित बार, गिन कर, दी जाती है और गणना के सिद्धात की सहायता लेकर 'बस' कह कर हृदय को रीता कर दिया जाता है। क्या श्रद्धाजलि का मूल्य इस पर निर्भर नही है कि, चाहे वह सौवी बार क्यो न हो, वह कितनी भावभीनी सच्चाई तथा किस नई प्रेरणा से अर्पित की जाती है ?

गाधी जी भारतीय स्वातत्र्या सग्राम की आत्मा थे। भारत-भूमि को तमो-ग्रस्त देख कर उनकी महत् करुणा विगलित हो गई और वे जीवन रण मे जनता के सारथी बन गए। कवि को प्राचीन भारत का यशस्वी जीवन याद आ जाता है जिसे मध्ययुगीन पलायनवादी असामाजिक प्रवृत्ति ने विकृत कर दिया है। यह जीवन भागवत जीवन ही है। राष्ट्रपिता जगत् वद्य महात्मा जी के व्यक्तित्व ने भारत की सुप्त आत्मा को जा त् कर दिया है। अब वह जन हित के लिए नव जीवन का निर्माण करने के क्रम मे आतरिक एकता—आत्म-बल, अहिंसा की नीव— पर लोकतत्र का सुदृढ भवन खडा कर रही है।

गाधी जी के अहिंसक व्यक्तित्व ने भारत के 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के शाश्वत धर्म का पुनर्जागरण किया है। विविध मतो, वर्गों, प्रातो मे बिखरे जन मन को मनुष्यत्व के सूत्र में बाँधने का अथक प्रयास किया है। गाधी जी की महानता के प्रति भारत का हृदय सदैव आदर से प्रणत रहेगा। जिस समय हिंसा पृथ्वी पर नग्न नृत्य कर रही थी, भू का जीवन भौतिकता से जर्जरित हो गया था, अबर से महानाश का पावक बरस रहा था तथा राष्ट्रो के कटु स्वार्थों और स्पर्धा-लिप्सा से धरती मे जीवन यापन दुर्वह हो गया था उस समय वे सदाचार की रजत शिखा लेकर अवतरित हुए—

'अमृत स्पर्श से आहत जगती के व्रण भरने',

... ..

---

१. बच्चन : 'कवियों में सौम्य संत', पृ० १२७

'धन्य मर्त्य के अमर पाथ, तुम निखिल धरा को
गूँथ गए नव मनुष्यत्व के स्वर्ण सूत्र मे।'

'विद्युत् वसना' एक छोटा-सा रूपक है जो स्वाधीनता दिवस के उपलक्ष्य मे लिखा गया। प्रकृतित यह स्वाधीनता की चेतना को प्रतिच्छवित करता है। स्वधीनता की चेतना विद्युत् वसना के रूप मे नव युग के लिए अमर सदेश लाती है स्वाधीनता ध्येय नही, साधन मात्र है, ध्येय है, अतर्निर्भरता तथा एकता। विश्व बोध से सपन्न इस युग के लिए स्वतत्रता का अर्थ विश्व मानवता की स्थापना है एव 'लोक मगल', लोक एकता तथा लोक जीवन की चरितार्थता है। जीर्ण जर्जर का विनाश और नव्य चेतना का सृजन ही स्वतत्रता है। विद्युत् वसना दुर्गा ही है, वह दुर्गा के सहार और सृजन की प्रतीक है।

'महानाश के खडहर पर जन मन उन्मादिनि
नाच रही है विद्युत् वसना लोक चेतना
अट्टहास भर, शत स्फुलिंग बरसा अबर से,
नव जीवन के अग्नि प्ररोहो मे रोमाचित।',

'विद्युत् वसना' के सृजन और निर्माण से परिचित एव स्वतत्रता के बोध से युक्त जन के स्वर उसका अभिवादन करते है जिसे वह स्वीकार करते हुए कहती है —

'पतझर के वन को मासल कर,
नव रूप रग भर जाती हूँ।'

अभिवादन है इस परिवर्तन का जो गलित प्रथाओ, गत आदर्शो, जर्जर रूढि-रीति और स्वार्थी प्रवृत्ति का अत कर नव निर्माण की शक्तियो को जन्म देता है।

'आज खुल रहे युग युग के व्रण,
उमड रहा भू का अवचेतन
अयि जीवन तम अशने!
विद्युत् वसने!'

× × ×

'मैं महा प्रलय के पखो की
छाया मे सर्जन को सेती'

किंतु यह सर्जन, यह स्वतंत्रता किस मनोल्लास को अभिव्यक्ति दे रही है ? क्या इसका महत् उद्देश्य है, क्या प्रेरणा ! वह जीवन का कौन सा आदर्श है जो अगणित जनगण को एक प्राण कर चला रहा है ?

'साधन केवल जन-स्वतत्रता,' मनुज एकता
लोक साम्य औ-विश्व प्रेम ही प्राप्य ध्येय है ।
... .

'अतर्निर्भरता ही युग का परम लक्ष्य है !
अतर्निर्भरता ही 'मृत्योर्माऽमृत गमय' का बोध है ।'

'शरद चेतना' प्रतीतित प्रकृति सौंदर्य का रूपक है । इसमे पत ने अपने प्रकृति प्रेम का सर्वांगीण परिचय देते हुए प्रकृति के रूप-रगो मे मानवीय सवेदन को स्पदित कर दिया है । शरद चाँदनी का अद्वितीय सौंदर्य बाह्य रूप मे अत्यधिक मोहक होते हुए आतरिक है । मूलत यह सौंदर्य वह अमर चेतना है जिसके प्रकाश से ही फूलो की पखडियाँ कोमल रग बरसाती है, लोल लहरियाँ सरसी के उर मे लय हो जाती है तथा ताराओ की पलकें झिलमिल कर सो जाती है । 'शरद चेतना' द्वारा कवि ने अत सौंदर्य, अत· सत्य को वाणी दी है । अत. सत्य की अभिव्यक्ति होने के कारण समस्त प्रकृति उसके सम्मुख प्रणत है । धरती की ऋतुएँ—हेमत, शिशिर, वसत, ग्रीष्म, वर्षा आदि-चिर निर्मल नभवासिनी शरद ऋतु का अभिवादन करती हैं । ऋतुओ का प्रणत होना ही शरद ऋतु की 'अमर चेतना' का अवरोहण है ।[1] पृथ्वी पर चारो ओर श्री सुख शाति की वर्षा है ।

---

१. "शरद चेतना' कवि ने उस चंद्रिका को कहा है जो शरद चंद्र से पृथ्वी पर उतरती है । मानव के सम्यक् विकास के क्रम में केवल निम्न चेतना ही नहीं ऊपर उठती, ऊर्ध्व चेतना नीचे भी उतरती है । इसी को हमारे दार्शनिको ने मर्कट न्याय और मार्जार न्याय कहा है । बंदर का बच्चा ऊपर उछलकर माँ के पास पहुँचता है, बिल्ली नीचे झुक कर अपने बच्चे को उठा लेती है । इसी को श्री अरविंद ने Double ladder या दुहरी सीढ़ी कहा है ।"

रूपक 'शरद चेतना' के स्वागतपूर्ण वर्णन से प्रारभ होता है।

'शरद चेतना !
प्रीति द्रवित अमृत स्रवित'
... ...
'तृण तरु पर मुक्त हास,
लहरो पर ज्योति लास,
सारस रसना।'

इसके साथ ही वाचक वाचिकाएँ शारदागम का व्यापक मनमोहक वर्णन करते हैं। प्रकृति मे सर्वत्र स्निग्ध उल्लास है। हँसमुख व्योम की नीलिमा मे अधिक निखार आ गया है। वर्षा का रिमझिम आकाश झडियो मे बरस कर धरा मे छा गया है। रग-बिरगे फूलो की चचल चितवन इन्द्रधनुष का आभास देती है। फूलो की सौरभ धरती की सौधी सुगध से घुलमिल कर मुग्ध हृदय को सहज ही समुच्छ्वसित कर देती है। प्रकृति का यह आनद, उल्लास, मजरियो का नर्तन, मकरद की सुगध सुदर हँसमुख सुरबाला-सी शारदीया के धरती पर साकार होने को प्रतीक है। शारदीया अशरीरी होते हुए भी शरीरी है। वह धरती की गध है जिसका अर्थ है।

'मधुर प्रणय का स्वप्न हृदय की पलकों में ज्यो
प्रथम बार मुसकाया सद्योज्वल विस्मय मे !
नही भूमिजा वह, वैदेही भाव शरीरी,
उसके अचल की पावन छाया मे आओ !'

बच्चनः 'कवियो में सौम्य सत,' पृ० १३४

मर्कटन्याय और मार्जार न्याय को भक्ति और प्रपत्ति के संदर्भ में समझने का बच्चन जी ने यदि कष्ट किया होता तो Double ladder की महिमा स्पष्ट हो जाती। भक्ति आस्था और प्रेम की अनिवार्यता को मानती है, भगवत् अनुकंपा का इनके द्वारा उपार्जन किया जाता है। यह मर्कट न्याय है। जिस भाँति बंदर का बच्चा अपनी मां से चिपक जाता है (न कि उछलना !) उसी भाति भक्ति में भक्त भगवान के प्रेम में लीन हो पूर्ण आत्म-समर्पण कर देता है। मार्जार न्याय में बिल्ली अपने बच्चे को मुँह से पकड़ कर उठाती है अथवा प्रपत्ति में भगवत् अनुकपा अपने आप बरसती है।

शारदीया की पावन छाया मे क्रम से हेमत, शिशिर, वसत आदि ऋतुएँ आती हैं जिनके स्वभाव, रूप और व्यापार का जीवत, यथातथ्य किंतु हृदय-स्पर्शी वर्णन कवि ने किया है। शरद का गीत तो ऋतुओ की आभा को परि-पूर्णता ही प्रदान करता है। वह स्वच्छ चाँदनी मे विहँसता हुआ चद्र कमल है जो अतर की विशुद्धता और उल्लास मे एकाकार हो जाता है। फूलो और प्रकृति के मधुर गीत, प्रकृति का मुक्त हास, उसका इद्रधनुषी छायाचल, लहरो का नृत्य, उषा की मौन सलज लालिमा सुदर, सुखद, स्निग्ध जीवन की लोरी गाते है—

'जो घृणा द्वेष की अँधियाली इस धरती मे फैली रहती
तुम उर का प्यार उडेल उसे धो डालो है, ज्योत्स्ना कहती!'

यह मानवता का प्यार है जो मगल पीयूष की वर्षा कर जीवन को आनदित और उल्लसित करता है। मनुष्य को इस अतल प्यार के मर्म को समझने के लिए अपने हृदय के रुद्ध द्वार को खोलना होगा।

'जीवन रे वृथा भार
अतर मे जो न प्यास!'

अतर के प्यार की प्यास भू जनो को ज्योतिर्मय चेतना से सिक्त करके आह्लादित कर देगी, यही साध्य तथा इष्ट है।

'अब हसो के पखो मे उड
हँसता धरती का उर चेतन!'

'रजत शिखर' के काव्य रूपक अपने आप मे एक मापदण्ड स्थापित करते है।[1] ये कवि की व्यापक दृष्टि, शब्दो और छदो की आतरिक पैठ,

---

१. "कविवर सुमित्रानंदन पंत ने कई सफल संगीत-रूपक लिखे है—'फूलों का देश', 'मानसी,' 'विद्युत् वसना' इत्यादि। ये संगीत रूपक सांकेतिक हैं। इनमें नवयुग का संदेश भरा हुआ है। 'शरद चेतना' नामक संगीत रूपक मे आप ने प्रकृति सौंदर्य का बड़ा मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया है। ग्रीष्म, शरद, वसन्त, हेमन्त, शिशिर आदि इसके पात्र हैं, जो इन ऋतुओं में होने वाले वातावरण का सगीतमय वर्णन

अभिव्यक्ति की सक्षमता, चित्रयन्ता, ध्वनि-सगीत तथा सम्मोहन शक्ति के जीवत रूपक हैं। इन रूपको के सशक्त माध्यम द्वारा कवि सामाजिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक, आर्थिक, मनोज्ञानिक और जैव सिद्धातो की एकागित पर प्रकाश डालता है। विभिन्न विषयो का ज्ञान अपने आप मे स्तुत्य है किंतु जब इन विषयो के सीमित क्षेत्र को विस्मृत कर, प्रत्येक विषय को अपने आप मे पूर्ण मानकर उसके एकाधिकार के लिए मनुष्य प्रयत्नशील हो जाता है तो वह जीवन को अभिशप्त करने मे ही सहायक होता है। इसीलिए पत उस दृष्टिकोण को अपनाते हैं जो सब सिद्धातो का होते हुए भी किसी एक सिद्धात का नहीं , जो सपूर्ण जीवन एव समग्र मानवता का है। उनके लिए न सकीर्ण समाजवाद वरेण्य है, न सकीर्ण अध्यात्मवाद। उनका सिद्धात व्यापक प्रेम का सिद्धात है, वे उसी समाजवाद, अध्यात्मवाद, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, जीवशास्त्र अथवा विज्ञान के सम्मुख प्रणत हैं जो प्रत्येक मनुष्य के मनुष्यत्व एव व्यक्तित्व का आदर करता है, प्रत्येक को उसकी पूर्णता प्राप्त करने का अधिकार देते हुए उसे व्यापक प्रेम, मानव प्रेम और एकता के बोध से युक्त करता है। 'रजत शिखर' के सभी रूपको का केन्द्रीय सत्य एक है— जीवन के अपूर्ण एव एकागी अनुभव और ज्ञान ने मानव को उत्पीडित कर दिया है। किसी भी 'वाद' की अतिशयता अपने आप मे उत्पीडन एव आत्मपीडन है। इन रूपको के माध्यम से पत अपने पाठको के दृष्टिकोण को व्यापक बनाने का प्रयास करते है, जीवन सत्य के प्रति उन्हे प्रबुद्ध करते हैं।[1] युग जीवन एव युग चिंतन के विस्तृत वर्णन द्वारा वे जीवन के सभी प्रमुख अगो का आलोचनात्मक गीतिमय वर्णन करते है। पत के लिए काव्य जीवन का सत्य ही है। वही सच्चा गायक (कवि) है जो समग्र

करते है। पत जी का 'रजत शिखर' नामक एक सग्रह प्रकाशित हो चुका है, जिसमे काव्य-सौष्ठव तथा वर्णन की चित्रोपमता है । काव्य के क्षेत्र मे 'रजत शिखर' के सगीत-रूपक अपना स्थायी महत्व रखते हैं।"
रामचरण महेन्द्र : 'हिन्दी में ध्वनि—एकांकी की प्रगति' कल्पना, दिसम्बर, १९५२, पृ० ८८० ।

१. तुलना कीजिए : "'रेडियो से संबंध स्थापित हो जाने के पश्चात् 'विद्युत्-वसना' आदि उन्होने कई ध्वनिरूपक लिखे हैं, जिन्हे 'ज्योत्स्ना' की परम्परा की लघु रचना कह सकते हैं। इनके पात्र भावनाओं और प्रकृति के उपकरणों के प्रतीक होते हैं।"

रस के सत्य का द्रष्टा है। वार्तालाप की नाटकीयता के साथ वे इन रूपको मे व्यक्त कर देते है कि यथार्थ एव सत्य को सीमित सिद्धातो और वादो की लौह दीवारो मे बद नही किया जा सकता। पूँजीवाद, साम्यवाद, फ्रॉएडीय मनोविज्ञान, विज्ञान, मायावाद, रुढिवादी धर्म, नैतिक-सामाजिक मान्यताएँ आदि तभी उपयोगी हो सकती है जब उनका मूल्याकन सम्यक् सत्य के अविच्छिन्न अग के रूप मे युग के अनुरूप किया जाए। विकासशील जीवन के क्रम मे स्थिर या अपरिवर्तनशील नियम अपना अर्थ खो देते हैं। उनके सापेक्ष महत्व को स्वीकार करना ही होगा।

जिस स्पष्टता, दृढता, सहजता और विश्वास के साथ पत अपने मत का प्रतिपादन करते हैं वह स्वत प्रत्यक्ष होने के साथ ही अत्यधिक श्लाघनीय है। किसी भी प्रतिभावान् लेखक की प्रतिभा इसीलिए वदनीय कहलाती है कि उसने युग-सत्य का कितना सही मूल्याकन किया है, वह जीवन के निर्माणात्मक तत्वो के विकास मे कहाँ तक सहायक है। जन-मागल्य की आकाक्षी और सस्थापक प्रतिभा ही मानवता का अभिवादन प्राप्त करती है। पत के काव्य रूपको को, उनकी काव्य प्रतिभा को समझने के लिए,—जैसा कि उनके समस्त काव्य के बारे मे कह सकते है,—उनकी भावभूमि, मानवता के प्रति अगाध प्रेम एव भारतीय विचारधारा और सस्कृति का बोध अनिवार्य है। वे भारतीय सस्कृति और चेतना के अमर गायक है। उनके लिए भागवत जीवन प्रेम का जीवन है, प्रेम अर्थात् कल्याण, मानवता का कल्याण, भगवत की सृष्टि का सुदरतम तथा कल्याणतम रूप—यही पत काव्य का इष्ट है जिसे वे अपने भावभीने गीतो द्वारा मूर्त करने का अनवरत प्रयास करते है। कुछ आलोचको को उनके इन रूपको के लिए यह कहना, और बार-बार कहना आनद देता है कि इनमे अरविंदवाद के अतिरिक्त कुछ नही है।[1] जिस किसी ने भी अरविंद दर्शन पढा होगा वह उसकी श्रेष्ठता को

भवानीशकर त्रिवेदी : 'आधुनिक महाकवि,' भारती सदन, २० मॉडल बस्ती, दिल्ली : तृतीय संस्करण, १९५५ तथा "समतल और ऊर्ध्व-मानो की द्वन्द्वमय विवृति पत की एक काव्य-लब्धि है।" शभुनाथ चतुर्वेदी : पंत की नयी कविता। युगचेतना, अक्टूबर ५८, युगचेतना कार्यालय, लखनऊ, पृ०१३

१ देखिए अध्याय: पंत और वादों का विश्व

निष्पक्ष रूप से स्वीकार करेगा किंतु पत पर आरोपित 'अरविंदवाद' को समझने के लिए उन्हे मात्र 'हार' और 'ज्योत्स्ना' को उन्मुक्त हृदय से पढना होगा। 'ज्योत्स्ना' का भाव-तारल्य ही यहाँ यथार्थ की भूमि मे विचरण करके रूपायित होता है। 'ज्योत्स्ना' की सवेदना, स्वप्नलता का आभास देते हुए भी, सत्यनिष्ठ है क्योकि मानव-प्रेम का ठोस आलम्बन उसे वायवी नही रहने देता। 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण धूलि' और 'उत्तरा' की यथार्थता जो मूलत ज्योत्स्ना का सारतत्व है, 'रजत शिखर के' रूपको, विशेषकर प्रथम तीन रूपको, मे अत्यधिक व्यापकता, दृढता और विस्तार पा लेती है तथा इस कारण इनमे सर्वत्र जीवन स्पदित होता रहता है।

● ●

९

श्रव्य काव्य में नवीन जीवन निर्माण (क्रमशः)— शिल्पी, सौवर्णः गद्यपथ एव शिल्प और दर्शन

●

'शिल्पी' का प्रकाशन काल १५ सितम्बर, '५२ है। इसके अतर्गत तीन काव्य रूपक हैं—'शिल्पी', 'ध्वसशेष' और 'अप्सरा'। तीनो ही सघर्षरत वर्तमान भू जीवन पर प्रकाश डालते हुए यह प्रमाणित करते है कि अतत विश्व जीवन एक व्यापक अतः सयोजन की अपेक्षा रखता है। यह जीवन का गहन आतरिक बोध तथा आत्मिक ऐक्य का अभिज्ञान है।

'शिल्पी' मे कला-मूल्यो का सघर्ष प्रस्तुत कर उनका समाधान किया गया है। यह उच्च ध्येय से प्रेरित कलाकार के अत सघर्ष का दर्पण है। कलाकार के लिए कला, कला के लिए नही है। वह जीवन के लिए है, जीवन सत्य की अभिव्यक्ति है। मानव इतिहास के पृष्ठो पर उन साधको और कलाकारो का गौरव स्वर्णिम अक्षरो मे अकित है जिन्होने मानव के अतरतम को छुआ है, उसे विकसित और सुसस्कृत बनाया है। कलाकार एव 'शिल्पी' का अतर-द्वद्व उस तप और साधना को मुखरित करता है जो मानव कल्याण के लिए है। शिल्पी, शिष्या, आमन्त्रित जन तथा जननायक के स्वागत भाषण और कथोपकथन द्वारा कलाकार के चितन-मनन एव मानसिक मथन का व्यापक वर्णन स्वत स्पष्ट कर देता है कि वही कला श्रेष्ठ और सच्ची है जो महत् जीवन की प्रेरणा प्रदान करती है। महत् जीवन प्रेममय लोक मगल का जीवन है, वह जीवन की उसकी सपूर्णता मे स्वीकृति है, उसकी विभिन्नता मे एकता का आनद निहित है।

तीन दृश्यो मे विभाजित यह रूपक अपने प्रथम दृश्य मे कलाकार की मनःस्थिति का चित्राकन करता है—

'निर्मम हृदय शिला ! (निश्चल)
कैसे आँकूँ प्रियतम की छबि
जड पाषाण जिला !'

'मन ने ममता का तम पाला,
अमर चेतना स्पर्श बिना कब
मानस कमल खिला !'

शिल्पकार का मूर्ति निर्माण करना मानो वर्तमान जीवन को कुठाओ, स्वार्थो और अह से मुक्त कर नयी चेतना को रूपायित करना है। उसका सघर्ष आत्मिक होते हुए भी वस्तुपरक है। विस्तृत जीवन के सघर्षों मे साम्य-सगति स्थापित करने के लिए ही शिल्पकार पाषाणवत् मनुष्य हृदय को चेतना के अकुश द्वारा सचेत (आत्म-चेतन) करने का दुर्लभ प्रयास करता है। वह भलीभांति जानता है रुढिग्रस्त आत्मा के जड सस्कार बदलना किस महत् शक्ति, सकल्प और साधना की अपेक्षा रखते है। किंतु उसका तो जीवन ही कलाकार का है, इष्ट की प्राप्ति का जीवन। वह अपना सर्वस्व—गुलसुम, फुलना, तिलरा, खेरना तथा अपनी कला-शक्ति—ध्येय की प्राप्ति के लिए अर्पित कर देता है। प्रयोग के क्रम मे उसे प्रस्तर के अतर मे मनुष्यत्व की ज्योति जगती दीखती है

'ईश्वर ![1] अब जाकर पाषाण सजीव हुआ कुछ !

कलाकार का अह इस ज्योति के आभास मात्र से आत्म-प्रशसक हो उठता है, पर शीघ्र ही, उसे भासित हो जाता है कि यह वह अहकार है जो कला के प्रस्फुटन मे अवरोध उत्पन्न करता है —

---

१. "आस्थाहीन शिल्पी घोर परिश्रम करने पर भी मूर्ति-निर्माण मे सफल नही होता, तब उसके हृदय मे ईश्वर के प्रति आस्था उत्पन्न होती है, और सहसा ही मूर्ति सजीव हो उठती है —
ईश्वर ! अब जाकर पाषाण सजीव हुआ कुछ !"
विश्वम्भर नाथ उपाध्याय—'पतजी का नूतन-काव्य और दर्शन', पृ० ७३७
कहने की आवश्यकता नही कि एक सामान्य पाठक भी यह समझ लेगा कि 'ईश्वर' यहाँ पर सबोधन कारक है और शिल्पी पहिले से ही आस्थावान् व्यक्ति है अन्यथा उसका आतरिक सघर्ष अर्थशून्य है।

'कलाकार के अहंकार, तू बाधक मत बन'

अपने साध्य की खोज मे कलाकार अनेक निरुपम प्रतिमाओ[1] को गढ कर अधूरा ही छोड अथवा तोड देता है। यह उसका अपने सृजन के प्रति असतोष है, असतोष जो विकास का सूचक है। यह पत का अपनी कला के प्रति भाव को भी अभिव्यक्ति देता है। उनका कलाकार अपनी कला से सतुष्ट नही है, "कुछ अच्छा लिख पाता"—यही उनके मुँह से अधिकतर सुनने को मिलता है ।

जिस भगवान् की लीला यह विश्व है उसके स्वरूप को जगत् मे मूर्तिमान करने की आकाक्षा शिल्पी मे प्रबलतर होती जा रही है। वह नही समझ पा रहा है कि नित्य बदलती हुई वास्तविकता के पट मे मनुज आत्मा का चिरन्तन सत्य कसे मूर्तित हो सकता है। बाह्य क्राति के साथ ही अतर का आदर्श भी परिवर्तित हो रहा है,—इस सबको, युग की आत्मा को कला मे प्रतिष्ठित करने मे वह अपने आप को असमर्थ पाता है ।

इसी बीच कलाकार के कक्ष मे दर्शको का प्रवेश होता है। गाधी जी की विभिन्न मुद्राओ की प्रतिमाएँ, बुद्ध, ईसा, रवीन्द्र, पटेल, चन्द्र कौमुदी, मेघ दामिनी, पूर्ण चन्द्र सागर बेला, मनमोहन मुरलीधर की प्रतिमाओ से कला-कक्ष शोभित है। इन प्रतिमाओ का वर्णन चित्रमत्ता और प्रतीकात्मकता के

---

१. "शिल्पी आस्थाशील मन से गांधी, पटेल, गौरीशकर, राधाकृष्ण आदि की मूर्तियाँ बनाता है। इन मूर्तियो के चित्रों के वर्णन काव्य के सौंदर्य से ओत-प्रोत हैं। ·· शुद्ध काव्य की दृष्टि से शिल्पी के कुछ चित्र बड़े ही मोहक बन पड़े हैं —

'प्रस्तर के उर मे युग जीवन का समुद्र ही'

·

'अहा इधर शोभित है मनमोहन मुरलीधर

·

'मधु ज्वाला ने रोमाञ्चित गलबाहीं दी हो।'

··· ···

पंत के काव्य-रूपको की एक विशेषता है 'स्वप्नो का चित्रण'। कल्पना की भव्यता के लिए ये दृश्य दर्शनीय हैं।" वही, पृ ७३८-७४०

अद्वितीय सम्मिश्रण के साथ भाव-माधुर्यपूर्ण है। इन प्रतिमाओ के लिए बच्चन जी का कहना है, "उसने (शिल्पी) विघ्न विनाशन एकदत, मनमोहन मुरलीधर, गौतम बुद्ध, मसीह, गाधी जी, कवीन्द्र रवीन्द्र, सरदार पटेल आदि की प्रतिमाएँ बनाई है। क्या ये द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मक कविताओ और राजा रवि वर्मा के चित्रो की बहने नही है? फिर उसने शिल्प कला मे अभिनव प्रयोग किए है। उसने 'चन्द्र कौमुदी', 'मेघ दामिनी', और 'पूर्ण चन्द्र सागर बेला' की प्रतिमाएँ बनाई हैं। बायवीय कल्पना को मूर्त करने वाले शिल्प स्वप्न की ये स्वप्न सृष्टियाँ क्या छायावादी कविताओ और अवनीन्द्र नाथ ठाकुर के चित्रो की सहोदराएँ नही है।"[१] बच्चन जी की आपत्तियाँ विचित्र हैं। वे ये भूल जाते हैं कि यथार्थ की भूमिका पर आधारित काव्य नाट्य यदि उन चित्रो को मूर्तिमान कर देता है जिनका सबध उसके देश और काल से है तो यह उसकी सफलता मानी जाएगी। बिना यथार्थ को अपनाए उस आदर्श की सृष्टि नही ही हो सकती जो यथार्थ का ही विकसित मानवोचित रूप है। वैसे यह मनाना होगा कि छायावादोत्तर काल की कविताओ की मूर्तियाँ बनाना पत भूल गए हैं।

प्रथम दृश्य मे मुरलीधर की मूर्ति एक श्रेष्ठिपुत्र क्रय कर लेते है और द्वितीय दृश्य मे उनके द्वारा बनवाए हुए मनोरम देवालय मे मुरलीधर की मूर्ति की प्रतिष्ठा हो जाती है। भक्तिभावपूर्ण कीर्तन रामयुग, कृष्णयुग और पौराणिक गाथाओ के सत्य स्वरूप को जीवत कर देता है। श्रीराम ने आत्मा का उन्नयन किया था, मनोभूमि मे उतर कर मनश्चेतना को देह-भीति से विदेह कर दिया था। श्रीकृष्ण ने भावनाओ के समुद्र को ही मथित कर डाला। यमुना की लहरें, गोपियो का मधुमय जीवन, कृष्ण की वशी उस काल के प्रीतिमय जीवन को मर्मरित करते है। कृष्ण पूर्ण व्यक्तित्व के प्रतीक है, उनमे भक्ति, ज्ञान और कर्म मूर्तिमान हो उठा था। भक्ति प्रणत स्पदित अतर से भक्तजन कीर्तन मे लीन है। युग युग से वे कीर्तन-वदन तथा मुनियो के प्रवचन सुनते आए है। किंतु क्या धार्मिक उपदेशो ने चिर रहस्य को उनके हृदय मे व्यक्त कर दिया है? जनगण का जीवन अध प्रवाह मे बह रहा है। उनका कीर्तन परम्परागत है। उनका जीवन दैन्य, अविद्या, अधकार के अतल गर्त मे डूबा है। प्रतिमा पूजन के नाम पर वे मृत आदर्शों का पूजन कर रहे है।

---

१. बच्चन : 'कवियों मे सौम्य सत', पृ० १३५

'सस्कृति और कला के जीर्ण प्रतीक मात्र जो
उन प्रतिमाओ के सम्मुख नत मस्तक होना
अपमानित करना है मानव की आत्मा को,—'

— — ...

'कोई भी आदर्श नही जो पूर्ण चिरतन
इस परिवर्तनशील जगत मे,' ......,'

अपने स्वभाव के अनुरूप मनुष्य ने समस्त जड जगत् को आकृति दी है। प्रतिमा पूजन का यही महत्त्व है कि वह उसके हृदय की गहनतम आवश्यकताओ को मूर्त करता है। प्रतिमा वह मूर्ततत्व है जो उसके भावो को साकार करता है किंतु मानव दुर्बलता ! भावो, आदर्शो को भूल कर मात्र पाषाण पूजन करती हैं।

'जड प्रतिमा तो मात्र भाव का कला रूप है।
जीवन के प्रति श्रद्धा, मानव के प्रति आदर,
जीवो के प्रति स्नेह, यही प्रभु का पूजन है!'

× × ×

'कलाकार का हृदय विकल है नव जीवन की
प्रतिमा अकित करने को सर्वाग पूर्णतम—
जनयुग की निर्मम पाषाण शिला के उर मे !—'

तृतीय दृश्य मे अपने कलाकक्ष मे बैठा शिल्पी अपनी ‹.धूरी प्रतिमा के निर्माण मे मग्न है। प्रतिमा का निरीक्षण करते हुए वह सक्रमण काल पर विचार करने लगता है। मनुज का विगत मन. सगठन ध्वस हो रहा है। यह ध्वस निर्माण का उद्घोषक है। इसके समातर एक मनोरम दिव्य मूर्ति प्रस्फुटित हो रही है जिसका उर निखिल विश्व की आकांक्षाओ से स्पदित है और लोचन प्रीति मौन निस्तल करुणा से द्रवित है। मनुज आत्मा के इस वैभव को भू जीवन की निर्मम वास्तवता सवरण नही कर पा रही है। शिल्पी अपनी प्रतिमा को इस विरोध से मुक्त करने का प्रयास करता है और उसे सफलता भी मिल जाती है—

'आह, अत मे दृष्टि शून्य पाहन पलको पर,
मूर्त हो उठा स्वर्ण स्वप्न मानव अतर का !'

शिल्पी की उन्मेषिनी कल्पना जब तक जन मन को नव जीवन शोभा से वेष्ठित नही करती तब तक वह उपेक्षणीय ही है। कला चेतना लोक जागरण का मापदण्ड बनकर ही जी सकती है। जन समूह शिल्पी के कलाकक्ष मे प्रवेश करते ही कहता है—

'दु ख दैन्य से जर्जर जब जनगण का जीवन,—
... ...
'आप व्यस्त है, यश की लिप्सा से प्रेरित हो,'
... ...
'आत्मभाव रत, जीवित जनता से विरक्त हो।'

किंतु मूर्ति का दर्शन उनमे उच्च भावोन्मेष करता है। वह स्वीकार करते है कि कला और अन्न दोनो ही जीवन के सहधर्मी है। यदि श्रमजीवी अन्न-वस्त्र से प्राणो की रक्षा करते है तो कला प्राणो को मानवीय बनाती है। जीवन और कला एक ही है। मात्र अन्न की लालसा दुर्दमनीय प्रतिद्वद्विता, क्राति, विद्वेष को जन्म देती है तो मात्र स्वप्निल भाव बच्चे के दिवास्वप्न की भाँति हैं। दोनो का महत् योग भू जीवन को श्रेष्ठ बनाएगा।

'निज कर्मो मे मूर्त करेगे इसका वैभव !—
युग युग तक गाएगे जनगण इसकी महिमा !'

'शिल्पी' कला और जीवन के अनन्य समन्वय का पोषक होने के साथ ही विद्रोही है। यह विद्रोह जीवन-वियुक्त कला, स्थूल वस्तुवाद और रुढिवाद के प्रति है। वह जो मानव के लिए कल्याणकारी नही है, अवाछनीय है। पौराणिक आख्यानो की आस्था युक्त व्याख्या, 'कला के लिए कला' के सिद्धात तथा निर्जीव परम्परा पर मानव-कल्याण के खड्ग से समयोचित प्रहार पत के कलाकार हृदय की ही पुकार नही है, वरन् सभी सच्चे कलाकारो के हृदयो की व्यथा है। यह कलाकारो के आत्म-जीवन, आत्म-सघर्ष और आत्म-स्वरूप की गाथा है। इस अर्थ मे यह पत की स्व-जीवनी भी है। कलाकार युग-प्रबुद्ध मानस है। वह जीवन की प्रत्येक इच्छा-आवश्यकता से प्रत्यक्ष सपर्क स्थापित करने की क्षमता रखता है। वह जानता है कि धरती से अन्न उपजाने वाले प्राकृत शिल्पी अभिनदनीय है क्योकि क्षुधापूर्ति उन्ही के श्रम से सभव है। देह और आत्मा की अनिवार्य इकाई मनुज श्रमजीवी और कलाजीवी दोनो पर

समातर भाव से निर्भर है। दैहिक सतोष आत्मिक सतोष के बिना अधूरा है, अधोमुखी है। मात्र प्राणिक जीवन ने मानव सभ्यता को तिमिराच्छन्न कर दिया है। श्रमजीवी के प्रति पत का प्रबुद्ध हृदय युगवाणी-काल से ही प्रणत रहा है।

चार दृश्यो मे वर्णित 'ध्वस-शेष' का कथानक युद्ध विभीषिका के लोमहर्षक वर्णन के साथ नव जीवन निर्माण के स्वप्न को आकार देता है।[1] वृद्ध, युवती, पुरुष, प्रकृति, नागरिक, सैनिक, द्रष्टा और प्रतिनिधि अपने कथोपकथन द्वारा पृथ्वी के अणु-त्रस्त जीवन, ध्वस और पुर्ननिमाण पर प्रकाश डालते हैं। प्रथम दृश्य मे युवती वृद्ध को युग-मन के परिचय द्वारा आगामी विभीषिका का सकेत देती है। सन् '५२ मे लिखा गया यह रूपक उस समय की आशका, तृतीय युद्ध की सभावना पर आधारित है। विश्व मे सर्वत्र ध्वस, कोलाहल, आदोलन, सघर्षण ही वर्तमान है। भू जीवन की यह कुरूप वास्तविकता उसी के निर्मम जीवन सघर्षण का बाह्यरूप है।

---

१ 'ध्वसशेष' काव्य की दृष्टि से अत्यधिक सफल काव्य-रूपक है। धर्म, राजनीति, दर्शन, वर्ग संघर्ष के ऊपर आधारित दर्शन आदि का ध्वंसावशेष यहाँ चित्रित है। विज्ञान की चरम उन्नति के युग की विकृतियो को कवि ने सफलतापूर्वक चित्रित किया है। प्रकृति के ऊपर विजय के मद में मदान्ध मनुष्य के प्रयत्नों से प्रकृति क्रुद्ध है। यांत्रिक युग में महाविनाश के जो बादल उमड़ रहे हैं, उनका बड़ा ही विराट् व मार्मिक चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है, कामायनी के 'चिंता' शीर्षक सर्ग से इस प्रलय वर्णन की तुलना की जा सकती है।

'प्रलय-बलाहक से घिर घिर कर विश्व क्षितिज में'
... ...
'घुमड़ रहे विद्युत् घोषो के पंख मार कर'

"कवि ने पूरी शक्ति से विनाश के इस चित्र का अंकन किया है। लोमहर्षक विनाश के इस वर्णन को पढकर युद्ध-पिशाच केवल हँसकर ही रह जाएँगे किंतु शातिप्रिय जनता के लिए युद्धों का यह विरोध पंतजी के महत्व को निश्चित रूप से बढ़ाता है।"
विश्वम्भर नाथ उपाध्याय : 'पंतजी का नूतन-काव्य और दर्शन', पृ० ७४०-७४१

'शुभ्र शाति की छद्म ओट मे महाप्रलय का
खर ताडव रच रहे, भयकर अणु दानव को
पाल पोस कर, समर सगठित कर जन-बल को ।'

युवती के मुँह से जीवन विस्फोटकारी तत्वो के बारे मे सुनकर वृद्ध विस्मय विमूढ और अनुताप दग्ध हो जाता है किंतु हताश नही होता । उसका जीवन-अनुभव और दर्शन आश्वस्त है कि जब-जब मानव अतर मे विकास प्रेरणा प्रबल होती है दानवी शक्तियाँ क्रुद्ध होकर सघर्षरत हो जाती है । दानवी शक्तियो एव पशुता को ऊर्ध्व सचरण के वशीभूत करना मनुष्य का वास्तविक स्वभाव है—

'पर मानव शासक है भू की अध नियति का
पिघला सकता लौह वज्र की निर्ममता वह
और बदल सकता भू पथ जीवन प्रवाह का।'

यही सदेश द्वितीय दृश्य मे पुरुष और प्रकृति के सलाप द्वारा युद्ध त्रस्त मानवता को दिया गया है, जब महाध्वस की विकराल छाया देखकर प्रकृति कातर होकर पूछती है—

'अग्नि प्रलय क्या हाय, भस्म कर देगा मनु की
इस सुदर मानसी सृष्टि को, जिसे जल प्रलय
मग्न नही •कर पाया दुस्तर महा ज्वार मे ।'

और उसका ममत्व व्याकुल हो उठता है—माँ की मृदु ममता से जिस सृष्टि का मैंने पालन-पोषण किया है उसका दानवी शक्ति द्वारा ध्वस मै कैसे देख सकूँगी ? उसका क्रोध अणु दानव पर उबल पडता है—

'किसने जन्म दिया इस दुर्मद अणु दानव को,
कौन वज्र की कोख रही वह विश्व घातिनी ?'

पुरुष के आश्वासन की गहनता पत के आस्थावान् दार्शनिक मन की गहनता है जो यह मानता है कि सृष्टि का विनाश असभव है । अणु-विस्फोट मानसिक-विस्फोट का चरण-चिह्न है । मानव मनो मे गहन क्रांति जन्म ले रही है—नई सभ्यता, नव मानवता नव शिखरों पर आरोहण कर रही है ।

'नाश नही होता विकास प्रिय अमृत सत्य का
मिथ्या का सहार अवश्यभावी जग मे !'

तृतीय दृश्य दस वर्ष का अतराल लिए आता है। अणु-विस्फोट से बचे हुए लोगो को अनुभव की परिपक्वता ने दृष्टि की व्यापकता और ऊर्ध्वता प्रदान कर दी है। वे फावडे, कुदाल आदि लेकर बर्बरता और नृशसता के इतिहास का उत्खनन कर रहे हैं। खुदाई के क्रम मे रक्त पक इतिहास, वर्ग सभ्यता, भौतिक युग की विज्ञान मूर्ति, जीर्ण-धर्म, वासना गर्त मे डूबा मनो-विश्लेषक, मनुष्य को निम्न जीवयोनियो की भाँति मात्र परिस्थितियो के वश मे माननेवाला डार्विन, वर्गक्राति के दूत कार्ल मार्क्स की प्रतिमा तथा घिनौनी और जग जीवन की घातक राजनीति और अर्थनीति की यमज अनुकृतियाँ मिलती हैं। ये मृत प्रतिमाएँ नए अमृत सत्य के आविर्भाव की सूचक हैं—प्रलय और सृजन अमरता का लिवास पहने है। अशुभ का विनाश ही सत्य का अभ्युदय है। नव आभा देही सस्कृति की प्रतिमा स्वर्ण हस सी निःस्वर जन भू पर उतर रही है। उसका हृदय विश्व प्रीति से स्पदित है, मस्तक ज्ञान से दीपित और दृष्टि करुणा विगलित है। मानवता इसके पावन स्पर्श से नवीन चेतना सम्पन्न हो रही है।

सस्कृति वह शाश्वत गत्यात्मक सत्य है जो युग की आवश्यकताओ से युक्त होकर रूपातरित होता रहता है। चतुर्थ दश्य आध्यात्मिक द्रष्टा और वैज्ञानिक एव साम्यवादियो के वैचारिक आदान-प्रदान द्वारा उस विश्व सस्थान की स्थापना करता है जो सम्पूर्ण जीवन है, जीवन की व्यापकता और महानता है। द्रष्टा देखता है कि सास्कृतिक चेतना के प्रादुर्भाव से मानव जीवन मे सयोजन आ गया है। सास्कृतिक चेतना एव दिव्य चेतना से सचालित जीवन आनदमय हैं। आत्मिक ऐक्य के भाव ने अहता को मिटा दिया है, श्रद्धा और इडा सहज समन्वित हो गई है। मनुज-मन जीवन के प्रति विरक्त नही है, वह उसका वास्तविक भोक्ता है। आनन्दमय जीवन के भोक्ताओ के इस सस्थान मे सैनिको का प्रवेश होता है। द्रष्टा अपने आध्यात्मिक आश्रम का परिचय उन्हे देता है—

'यह जीवन सस्थान मात्र है !'

.. . ...

'आत्म समर्पण से, श्रद्धा, विश्वास, प्रीति से
आवाहन कर रहे महत् जीवन का भू पर।'
.. ..

'भगवत् जीवन ही भू जीवन का भविष्य है।'

तब जीवन की इच्छाओ से परितृप्त जन सहज ही उच्च सदेश को समझ लेगे। सच है, 'भूखे भजन न होइ गुपाला।' सफल लोकतन्त्र के भोक्ताओ का मन अत. शिखरो पर आरोहण के लिए उद्यत हो जाता है—

'महत् प्रेरणा, दिव्य जागरण के हित उत्सुक
बहिर्गमन से श्रात, खोजते जन अतर-पथ'

लोकतन्त्र और अध्यात्म का ऐक्य एव आध्यात्मिक सामूहिक जीवन को प्राप्त करना ही पत के 'ध्वसशेष' का ध्येय है। 'यह' लक्ष्य उदात्त और महान् है।'

'बौद्धिक वादो, स्थूल मतो से मुक्त धरा जन
स्वतः खिल रहे पुष्पो-से अत प्रतीति स्मित,
उर के सौरभ मे मज्जित कर स्वर्ग लोक को।'

चार दृश्यो से आवेष्ठित 'अप्सरा' रूपक अप्सरा, कलाकार, ध्वनियो, प्रतिध्वनियो द्वारा युग-जीवन के कर्दम से नवीन सौंदर्य चेतना को प्रस्फुटित करता है। पत के लिए सुदरम् और शिवम् एव मागल्यम् एक ही है और ये बिना मानवता से सपृक्त हुए अवांछनीय एव अमूर्त हैं। सौदर्य चेतना मानव कल्याण की चेतना है जो सच्चे कलाकार के अतरतम के सत्य की अभि-व्यक्ति है।

प्रथम दृश्य में कलाकार मनः क्षितिज की आभा चेतना मे ध्यान मौन बैठा है। उसके हृदय सरोवर मे भावोद्वेलन है। उसे लगता है जैसे कोई शोभा छाया उसके मन से लिपट गई है। यह सौदर्य मधुरिमा जिसे वह समझ नही पा रहा है उसके मन को बरबस खीच कर अव्यक्त आकुलता से भर दे रही है—

'चचल हो उठता फिर फिर मन ' ' ! यह क्या केवल
प्राणो का उद्वेलन है? या मन का भ्रम है?'

'एक नया सौदर्य ज्वार उठता अतर से
धरती के जड पुलिनो को प्रक्षालित करने।'

यह अकथनीय सम्मोहन, मादकता ओर उद्वेलन ही द्वितीय दृश्य मे मानसिक सघर्ष को जन्म देता है। कलाकार जीवन वास्तविकता से दूर असबद्ध इकाई का जीवन नही बिता सकता। उसके मन को लोक मगलमय सौंदर्य चेतना सम्मोहित किए हुए है। जीवन की असगति एव युग कुरूपता को इस सौदर्य से प्लावित कर देने की प्रेरणा ने उसे आकुल कर दिया है। उसके सम्मुख एक ही चिंता और प्रश्न है—युग कल्मष से पकिल धरणी के प्रागण मे नव्य सौंदर्य चेतना कैसे उतर सकती है? कलाकार के लिए यह एक जीवत चुनौती है। वह धरती की सौंदर्य चेतना का प्रतिनिधि है, मानव-कल्याण का शास्ता! उसे जीवन को मगलमय बनाना ही होगा—

'युग आवेशो के कटु कोलाहल मे उसको
नव जीवन की स्वर सगति भरनी है व्यापक'

यह भाव और विचारोन्मेष तृतीय दृष्य मे कलाकार का सर्वस्व बन जाता है। वह स्पष्ट देखता है कि कला का प्राण सौंदर्य, मानव शुभ एव मानव कल्याण है। जन भू पर जो देवासुर सग्राम छिडा हुआ है उससे धरा चेतना को मुक्त करने के लिए एक ऐसे लोक पुरुष को प्रतिष्ठित करना होगा जो जीर्ण मान्यताओ के जर्जर चाप को तोडने के साथ ही भू की विश्रृखलता मे नव्य सतुलन भर देगा और आर्थिक समता तथा वर्गहीनता के छोरो को अतरैक्य के रश्मिसेतु मे बाँध देगा। ऐसे व्यक्ति सत्य की प्रतिष्ठा करना जगती को ईश्वरमय बनाना है।

'ईश्वर का ही अश जगत, आरोहण पथ पर,
जिसका पूर्ण प्रकारातर होना निश्चित है।'

चतुर्थ दृश्य कलाकार के बोध, विश्वास और आस्था को मूर्तिमान करता है। वह जीवन सत्य को आत्मसात् कर लेता है। अप्सरा रूप मे उसकी सौंदर्य चेतना जीवन आनद को सर्वत्र बरसा देती है—

'सौदर्य चेतना मैं मन की,
... .
छिप हृदय कुज मे मुसकाती!'

कलाकार की यह सौदर्य चेतना अपने युग के क्रूर ह्रास-नाश को देखकर अनुतापित हो जाती है—

'शोभाजीवी उर को जीवन की कुरूपता
नागिन सी डँसती रहती शत फन फैलाए।'

उसकी प्राण चेतना प्रार्थनारत है—

'जीवन मगल का हो उत्सव
श्री सुख सुषमा का हो वैभव,
नव रस के निर्झर-से झर तुम
जन मन तृषा हरो ।'

शिल्पी के तीनो ही नाट्य-रूपक न केवल युग जीवन की विभीषिका और उसका समाधान प्रस्तुत करते है वरन् वह कलाकार के उच्चोन्मेषो का मनोवैज्ञानिक दिग्दर्शन भी कराते है। 'शिल्पी' और 'अप्सरा' आत्म-जीवनी, आत्म सघर्ष का आभास देते हुए वस्तुगत धरातल पर विचरण करते है। तीनो ही काव्य रूपको मे यथार्थ और आदर्श, प्राचीन और अर्वाचीन एव सापेक्ष और निरपेक्ष मूल्यो का सघर्ष है। तीनो का ही लक्ष्य यह समझाना है कि कवि, शिल्पी या द्रष्टा पुरुष युग-सत्य एव युग-धर्म को उसके मानव विकास और कल्याण मे सहायक होने पर ही स्वीकार कर सकता है। परम्परा एव मान्यताओ तथा विभिन्न 'वादो' को उनके सापेक्ष और परिवर्तनशील अर्थ मे ग्रहण करने के कारण ही वह एकागिता, असहिष्णुता, पक्षपात, पूर्वग्रह तथा घातक हठधर्मिता के उस दोष से मुक्त है जो जीवन को विषण्ण बना रहा है।

कवि का दायित्व महान् है। उसकी कल्पना बच्चे के दिवास्वप्न की भाँति नही है। कवि-कल्पना कवि का शिशु है, वह शिशु जिसे वह विश्व वास्तविकता का दूध पिलाता है, सार्वभौमिकता के परिवेश मे लालन-पालन करता है, जिसके विकास और कल्याण के लिए वह सब कुछ न्योछावर कर देता है तथा जिसको हृदय से चिपका कर वह जीता है। पत के लिए, इसी अर्थ मे, सृजन जीवन है। जीवन से अछूता काव्य स्वप्नो के इन्द्रधनुष से रजित रिक्त कुहासा है। उसे जीने के लिए यथार्थ मे चरण रखने ही होगे। शिल्पी, कवि एव कलाकार का सघर्ष--साहित्य और कला के जीवन सबधी मूल्यो, उनके आत्मगत और वस्तुगत सबध तथा सगति को सिद्ध करता है।

'सौवर्ण' के प्रथम सस्करण (प्रकाशन काल १९५६) के अतर्गत दो काव्य-रूपक है—'सौवर्ण' तथा 'स्वप्न और सत्य'। किंतु इसके द्वितीय सस्करण (प्रकाशन काल १९६३) मे एक तीसरा रूपक 'दिग्विजय' भी सकलित कर दिया गया है। 'स्वप्न और सत्य', 'सौवर्ण' तथा 'दिग्विजय' का रचना काल क्रमश नवम्बर १९५२, मार्च १९५४ तथा १९६१ है।

'सौवर्ण' मे भारतीय दर्शन एव ब्रह्मवाद के निष्क्रिय स्वरूप, वर्तमान का अति वैयक्तिकवाद, निजत्व को भूले हुए पाश्चात्य कलाकारो की प्रतिध्वनियाँ करने वाले रीढहीन कलाकार तथा रिक्त वितडावादो मे खो जाने वाले नेताओ पर प्रहार है। हिमालय को मानव जाति के सांस्कृतिक सचय का प्रतीक मानकर लेखक स्वर्दूत, स्वर्दूती, देव, देवी, कवि, सौवर्ण तथा अन्य स्त्री-पुरुष स्वरो द्वारा वर्तमान विश्व स्थिति पर मनन करता है तथा उस विश्व सत्य की स्थापना करता है जो लोक मगल के लिए अनिवार्य है।

हिमालय विगत सास्कृतिक वैभव की ही शुभ्र, सनातन स्थिति है। देवगण उसके परमोत्कर्ष की वदना करते हैं और नव्य युगातर का गुह्य सकेत पाते है। हिमाद्रि की वदना शिवरूप मे की गई है जिसका सृजन सहार है, सहार सृजन है। इसीलिए एक युग का अत दूसरे युग का आविर्भाव है यह आविर्भाव मगलमय है।

देव और देवी का सवाद भू मानस विकास की सक्रमण वेला पर चिंतन है। भूतनिशा (जो कि देवताओ के जागरण की बेला है) मे देवता देखते हैं कि उपचेतन गोपन-आभास पाकर आशान्वित सगीत की सृजनलय मे पल्लवित हो रहा है। मानव सस्कृति का अमर दाय-धन, अधिमानस का शैल हिमालय युगातर से जाज्वल्यमान है। उसके अतर से नवीन सभ्यता जन्म ले रही है। यह मानव सस्कृति की सक्रमण बेला है—विगत का समापन और आगत का आरभ।

'नया सास्कृतिक वृत्त उदित हो रहा क्षितिज मे'
... ...
'सक्रिय फिर से दिव्य चेतना, नव्य सचरण'
... ...
'जन भू को मज्जित करने जीवन शोभा मे!'

नए युग का आह्वान कर देव-देवी अतर्धान हो जाते है। स्वर्दूत और स्वर्दूती जगत् का पर्यवेक्षण करते है। वे देखते हैं कि सर्वत्र एकागिता का वरण किया जा रहा है। इस जगती मे उन ऋषि-मुनियो का वास भी है जो विश्व से विरत, पलायनवादी प्रवृत्ति को अपना कर ऊर्ध्व मानस श्रेणियो पर आरोहण कर रहे हैं।

'अखिल व्याप्त सत्ता के सक्रिय अमर सत्य को,
आत्म रूप मे परिणत कर निष्क्रिय साक्षीवत्!'

वैज्ञानिक उन्नति का शिरोमणि यह युग आत्म-विरोधी प्रवृत्तियो से भयभीत है। वैज्ञानिक अनुसधानो ने मनुष्य को महत् शक्ति प्रदान कर दी है—सब प्रकार की सुख-सुविधाएँ दे दी है। वह चाहे तो मानवता को अभाव मुक्त कर सकता है। किंतु रूढि-रीतियो ने उसे द्वेष, घृणा को अपनाना सिखा दिया है। विश्व का एक भाग पलायन एव मायावाद को अपनाए हुए है तो दूसरा भाग प्रतिद्वद्विता और विद्वेष से त्रस्त है। पूर्व और पश्चिम दोनो ही आत्म-घातक अतिवाद को अपनाए हुए है। किंतु यह अतिवाद पूर्ण विनाश का सूचक नही है, यह नवीन का उन्मेष है। स्वर्दूती कहती है—

'घनीभूत होती विनाश की भीषण छाया
.. ..
'नव्य युगातर का आवाहन करते भू पर!'

एक वृत्त शेष हो रहा है। क्राति, विप्लव, भू युद्धो, गृह सघर्षो से धरा चेतना त्रस्त और क्षुब्ध हो गई है, मनुष्य की बुद्धि भ्रात हो गई है। उसका जीवन बहिर्मुखी और लक्ष्यहीन हो गया है। किंतु यह सब घोर निराशामय नही है। शाश्वत अपने को विभिन्न रूपो मे व्यक्त कर रहा है—

'शाश्वत तथा अनित्य विरोधी तत्व नही दो,
एक सत्य ही विविध स्वरूपो मे अतर्हित,'
... ...
... ...
नव मानव मूल्यो मे कुसुमित सामाजिकता
विश्व विषमताओ मे नवल समत्व भर रही!'

यह नवीन मानव मूल्य कहाँ से आएगे ? पश्चिम का एक विशिष्ट बौद्धिक वर्ग जनवादी तत्रो से पीडित होकर प्रतिक्रियावादी हो गया है। वह जीवन के मौलिक प्रतिमानो को सकटपूर्ण देखता है क्योकि वह बाहुबल से शासित सामाजिकता से त्रस्त है—

'वही भविष्यत् होगा जिसे बनाएँगे हम !'
... ...
'हम्ही सत्य है ! वर्तमान क्षण के पुट मे ही
हमे बाँधना होगा जीवन के शाश्वत को !'

इस व्यक्तिवाद ने पूर्व को प्रभावित किया है। पूर्व के तोते अनुकरण के आनद मे डूबे हुए कहते है—

'हम थोडे, जो जीवित है, अस्तित्ववान हैं,
हम्ही सत्य है, शेष व्यर्थ भूभार मात्र है,–'

राजनीतिज्ञो ने भी जीवन को भय और अन्यायग्रस्त कर दिया है। दुखी जनता को धरा स्वर्ग का आश्वासन देकर जब वे शक्ति पा जाते है तो अपने क्रूर सघ स्वार्थो की प्राप्ति के लिए मनुज को साधन बना लेते है। बाहुबल से शासन करने वाले समाजवादी, अति व्यक्तिवादी बुद्धिजीवी और जीवन को अवास्तविक माननेवाले अध्यात्मवादी—सभी को अपना पुनर्मूल्याकन करना होगा।

स्वर्दूती-स्वर्दूत भारत आते हैं और देखते हैं भारत मे महत् सास्कृतिक सचरण जन्म ले रहा है। यहाँ उस युग मानव ने जन्म ले लिया है जो लोक सत्य से अनुप्राणित है। बर्बर हिंस्र जगत की उसने प्रेम का साधन एव अहिंसा का अस्त्र दे दिया है। ग्रामो के जन आज सृजन कर्म मे रत है।

'धन्य अहिंसक भूमि, सत्य पर प्राण प्रतिष्ठित,
मानवीय साधन से सुलभ जहाँ जन मगल !'

किंतु भू जीवन विरोधी शिविरो मे बँटा हुआ है—

'कुछ भी निर्णय नही कर सका शाँति मिलन यह,
... ...
रिक्त वितडावादो मे सब समय खो गया !'

× × × ×

'घृणा द्वेष स्पर्धा के दारुण दुर्ग सगठित
हिंस्र प्रचारो के झीगुर चीत्कार भर रहे,'

.. ..

रग बदलते रह-रह अवसरवादी गिरगिट,'

× × × ×

प्रतिध्वनित हो रही मृत्यु की चाप दिशा मे,
भीषण रण यानो से मथित उदर गगन का !'

किसी भी क्षण विश्व युद्ध की घोषणा हो सकती है। किंतु विश्व विनाश सभव नही है। मानवता के सरक्षण के लिए अवश्य ही कोई 'महत् कर्म' जन्म ले रहा होगा। स्वर्दूत और स्वर्दूती देखते है कि भारत मे एक क्रात द्रष्टा पुरुष लोक प्रेम के महत् ध्येय से प्रेरित हो स्वगत भाषण कर रहा है—

'व्यक्ति समाज, समाज व्यक्ति,—कैसी विडबना !'

... .

'बाहर भीतर,—शब्द जाल सब, केवल वाग्छल !
यांत्रिक बौद्धिक तत्व, रिक्त दर्शन के क्षेपक,

जीवन वर्जन के थोथे दर्शन ने मानव विकास की प्रगति को कुठित कर दिया है। इस आत्म-विघातक दर्शन की रिक्तता अब समझनी ही होगी—

'नेति नेति का, आत्म निषेधो का दुर्गम गढ !'

.. ..

'शीतल, हिम-शीतल जीवन की जड समाधि यह !
स्पद शून्य भैरव नीरवता महाशून्य की
घेरे इसको महामृत्यु के बृहत् पख सी !'

क्रात द्रष्टा के बोध की सच्चाई उस साकार मूर्ति को जन्म देती है जो विद्या और अविद्या, दर्शन और विज्ञान का सतुलन है। यह मूर्ति वह जीवत सत्य है जिसकी अनुभूति भू जीवन को स्वर्णिम बना देगी—

'नया सृजन आ रहा सूर्य के स्वर्णिम रथ पर
अग्नि पुरुष यह, प्राण पुरुष यह, लोक पुरुष यह !

'मैं हूँ वह सौवर्ण, लोक जीवन का प्रतिनिधि !
नव मानव मैं, नव जीवन गरिमा मे मडित,
..
'युग युग से विच्छिन्न चेतना के प्रकाश को
मैं जीवन सूत्रो मे करने आया गुफित !'

'सौवर्ण' पत की गहन अनुभूति, व्यापक दृष्टि, स्वस्थ चितन का प्रतीक होने के साथ ही उनके अडिग आत्म-विश्वास, आशावादिता, मानव-प्रेम तथा निर्भीकता का परिणाम है। पश्चिम के वैज्ञानिक भौतिकवादी मानस तथा पूर्व की निष्क्रिय, पलायनवादी, जीवन-निषेधात्मक प्रवृत्तियो का विश्लेषण करके कवि भारत के सास्कृतिक वैभव के प्रति आकर्षित होता है। वह मानता है कि भारत का सांस्कृतिक पुनर्जागरण ही विश्व मे शाति, साम्य और स्वातत्र्य को प्रतिष्ठित कर सकता है। जीवन को कुत्सित और घृणित बनाने वालो के प्रति उसका क्रोध व्यग्योक्ति की सीमा पर पहुँच जाता है। यह व्यग्योक्ति शिष्ट होते हुए भी पैनी है। अतिव्यक्तिवाद, अहतावाद, सघवाद, पलायनवादी वैराग्यवाद एव जीवन को अधोमुखी और मरणासन्न बनाने वालो को दण्डित और शिक्षित करने के लिए वह 'सौवर्ण' का आह्वान करता है। 'सौवर्ण' न श्री अरविंद हैं, न 'दि लाइफ डिवाइन' का 'डिवाइन मैन,' न कवि स्वय और न सावित्री काव्य का सत्यवान ही है।[1] यह वह औपनिषदिक शाश्वत सत्य है जो जीवन की हानि देख कर विदेह होने पर भी सदेह हो जाता है और धरती का प्रयोजन पूर्ण करने पर पुन अपने चिद्-विग्रह मे लीन हो जाता है। यह सौवर्ण मानव-कल्याण के लिए नीत्से के अतिमानव शौर्य से युक्त है।

'कौन आ रहा वह भीषण सुदर, भुवनो को
अपनी दुर्धर पदचापो से कपित करता ?
झझा सा, जन मन मे भैरव मर्मर रव भर,
भू समुद्र को हिल्लोलित, भय मथित करता !'

नीत्से का अतिमानव क्रूर शौर्य, घोर अहवाद, उच्छृखलता और तानाशाही सस्कृति का द्योतक तथा सभ्यता के लिए अभिशाप होने के साथ ही दो दुर्धर्ष विश्व युद्धो का कारण अथवा प्रेरक है। इसके विपरीत सौवर्ण का शौर्य गीता

---

१. बच्चन : 'कवियो में सौम्य संत,' पृ० १४९
   तथा डा० राजेन्द्र मिश्र : 'आधुनिक हिन्दी काव्य,' पृ० २०० ग

का वह् विश्व रूप है जिसे पन का वैज्ञानिक-वेदात विश्व सरक्षण और जन-मगल के लिए प्रतिष्ठित करता है। पत पहिले अभावगस्त प्राणियो के कल्याण के आकाक्षी है और उसके बाद ही किसी अन्य सत्य के। श्री अरविंद और उनमे यह् एक मूलगत अतर है।

भारतीय दर्शन की पलायनवादी प्रवृत्तियो तथा पाश्चात्य जीवन की दिग्भ्रात बुद्धि, उन्मुक्त वासना और औद्योगिक प्रतिस्पर्द्धा का जिस मुक्त दृढता और अभिज्ञानपूर्ण विश्वास के साथ पत विरोध करते है वह उनका कोरा चिंतन या कोरा ज्ञान नही है, न वह उनकी गगनचुम्बी कल्पना ही है, वरन् वह व्यापक और गहन जीवन अनुभूति है जिसके बिना लेखक और जो कुछ भी दे पर चिरस्थायी साहित्य का सर्जन नही कर सकता। जीवन सत्य से रिक्त काव्य भुजग की फुफकार, ताराओ की जगमगाहट, प्रतीको का चमत्कार, बादल की घडघडाहट उत्पन्न करने पर भी मानव-जीवन के लिए कल्याणकारी नही हो सकता।

जीवन मे सर्वत्र ही समन्वय और सयोजन की आवश्यकता है। अति एकागिता, चाहे वह आदर्शवाद मे हो या वस्तुवाद मे, टिक नही सकती। 'स्वप्न और सत्य' का यही विषय है। कलाकार, दो मित्र और छाया चेतनाओ के माध्यम से आदर्श और वास्तविकता, स्वप्न और सत्य के बीच युग सघर्ष का द्योतक यह काव्य-रूपक वार्तलाप की गहनता मे प्रवेश करता हुआ जीवन का पूर्ण विश्लेषण करता है। यह विश्लेषण दार्शनिक और गहन होते हुए पारदर्शी, सरल और सुगम है। लेखक कलाकार के अत सघर्ष, सामान्य जनश्रुति, लोक पुरुषो तथा जनप्रिय श्रद्धास्पद कवियो की वाणी द्वारा अपने अभिमत को स्थापित करता है।

प्रथम दृश्य मे कलाकार का प्रकृति प्रेमी हृदय रगीन खडियो से पतझर का रेखा-चित्र बनाता है। किंतु वह मानव जीवन से विमुख नही है—यह पतझर उसे जग जीवन के पतझर के विषाद से चितामग्न कर देता है। इसी समय उसके दो मित्र प्रवेश करते है--एक यथार्थवादी है दूसरा आदर्शवादी बौद्धिक। कलाकार की आतरिक स्थिति से अनभिज्ञ यथार्थवादी मित्र व्यग्य करता है—

'निर्निमेष, भावुक प्रेमी से
मात्र प्रेयसी का प्रिय मुख देखा करते हो।'

'एक ओर प्रासाद खडे है स्वर्ण विचुबित,
चारो ओर असख्य घिनौनी झाड फूँस की
झोपडियाँ है पशुओ के विवरो सी,—'

'और कलाकार, उसकी दृष्टि मे, जन समाज से विरत हो अपने ही भावलोक मे मुग्ध है।

कलाकार का सहज उत्तर है—

'कही छोड सकते है बच्चे !
मा का अचल ?'
× × ×
'कलाकार के लिए, सत्य ही, विश्व प्रकृति यह
निखिल प्रेरणाओ की जननी है रहस्यमय !'

आदर्शवादी मित्र वैज्ञानिक विजय को पराजय मानता है। प्रकृति पर विजय प्राप्त करके मानव विनाश के अध गर्त की ओर बढ रहा है—

'भौतिकता से बुद्धि भ्रात, जीवन तृष्णा से
पराभूत हो, भूल गया नर आत्म ज्ञान को !
× × × ×
'घोर अराजकता है प्राणो के जीवन मे !!'

अपने मित्रो के घोर विरोधाभासो को सुन कर कलाकार का मन ऊब जाता है तथा कल्पना क्लात हो जाती है। इसी समय बाहर से नारे लगाने की आवाज आती है. 'क्राति की जय हो ! प्रजातत्र की जय हो,'' '' जन मगल की जय हो।'

कलाकार सोचता है कि नीरस तर्को के बोझिल शब्दाडम्बर से कही अधिक प्रेरणाप्रद ये नारे है क्यो कि इनमे जन-प्राण शक्ति का स्पदन कपन है। वह भावमग्न हो सो जाता है।

दूसरा दृश्य 'स्वप्न दृश्य' है। कलाकार अपनी स्वप्न स्थिति मे अतर्जगत् के सूक्ष्म प्रसारो एवं स्वर्गो मे विचरते हुए महान् आत्माओ के सपर्क मे आता है। स्वर्ग की स्वर-सगति देख कर उसे मध्ययुगीन सस्कृति स्मरण आ जाती है। यह सस्कृति मात्रऊर्ध्वमुखी होने के कारण एकागी हो गई थी। मुक्ति, कोरी कल्पना होने के विपरीत, वह वास्तविक सत्य है जिसे जन समाज मे

प्रतिष्ठित होना है। स्वर्ग मे कवि को महापुरुषो की छायाओ के दर्शन होते हैं। ये धरा के स्वर्गिक प्रतिनिधि उससे कहते हैं कि हम सभी ने लोक कल्याण को अपनाया था और अब भी स्वर्गलोक मे हम भू जीवन के श्रेय के लिए सघर्षशील हैं। मानव जीवन आत्मोन्नति का प्रागण है, मानव ईश्वर ही है, उसे अपने जीवन और कला द्वारा जन जीवन को सार्थकता प्रदान करनी है। ईसामसीह की छाया उससे कहती है—

'वही प्रेम ईश्वर जिसका मदिर मानव उर :'

गोतमबुद्ध की छाया उसे समझाती है कि जीव दया और जन सेवा का पथ महत्त्वपूर्ण है तथा मोहम्मद की छाया का कहना है कि ईश्वर पर विश्वास रखना ही धर्म का सारतत्व है। महात्मा गाधी की छाया धर्म की सकीर्णता से ईश्वर को मुक्त करने की अनिवार्यता को बतलाती है —

'ई॰वर सत्य न कहके, कहूँ, सत्य ईश्वर है ?
.. ..
ज॰ जीवन पट बुना सरल लोकोज्वल मैंने
जनगण के श्रम बल के मूल्यो पर आधारित'

इन लोक पुरुषो की छायाओं के दर्शनो और वचनो के अतिरिक्त उसे सतो की वाणी सुनाई देती है। तुलसी का 'सियाराम मय सब जग जानी' का मत्र मानव जाति की एकता का मत्र है तथा सूर के 'श्याम रसो वैसेः है और मीरा के 'सर्वस्व' उसकी भावभीनी तन्मयता, सर्वव्यापी मधुर अनुभूति है। कबीर की 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' तथा अनिर्वचनीय प्रेमी हृदय लोक समाज को प्रेरणा देता है। कवीन्द्र की वाणी विश्वप्रेम तथा मानवता का नवीन मत्र देती है। इन वाणियो को सुन कर कलाकार अपनी स्वप्नावस्था से अर्ध जाग्रतावस्था मे आ जाता है, उसे लोक कला के लिए महत् प्रेरणा मिल जाती है—

'सभी महाकवियो की वाणी जन मगल की
महत् भावनाओ से प्रेरित रही निरतर !
... ...
'सभी महापुरुषो के लक्षण एक रहे हैं,—'

आत्मत्याग, जन सेवा, दया, विनय, चरित्रबल और उसकी आत्मा अनेक उच्च तथा सूक्ष्म प्रसारो मे विचरण करती है—

'यह प्राणो का हरित स्वर्ग सा लगता सुदर,
जीवन की कामना जहा हिल्लोलित अहरह ।'

. ...

'सदाचार के स्तम्भो पर, तर्कों से वेष्टित,
यहाँ जगन्मिथ्या की निष्क्रियता छाई है।'

× × ×

'अधोमुखी लघु स्वर्ग, सप्रदायो मे सीमित
लटके है अगणित त्रिशकु से, बहुमत पोषक, '

कलाकार का हृदय कराह उठता है

'कहाँ स्वर्ग सुख शाति, कहाँ रे
धरती के दुख भरे कलपने !'

× × ×

'क्यो विभक्त कर दिया सत्य को मानव उर ने, '

और उसके स्वप्न का द्वितीय दृश्य प्रारभ हो जाता है। वह जनश्रुति, अधविश्वास तथा निष्क्रिय आस्था के गीत से प्रारभ होता है।

'चार दिवस की मधुर चाँदनी
रैन अँधेरी फिर उदास है।'

. .. .

'मनुज प्रकृति का क्रीत दास है !
लिखा करम का नही टलेगा'

कलाकार कर्त्तव्य विमूढ होकर आलस्य, इद्रियलोलुपता और मूढ कर्मवाद की बाते सुनता है। वह समझ जाता है कि ये मनुष्य गत युग के जीवन-मृत शव मात्र है जो भाग्य भरोसे रेंग रहे है और एक दूसरे का जीवन-श्रम लूट रहे हैं। हठी, कुटिल-मति, भेदभाव से भरे विषैले, पर-द्रोही, प्रतिशोध क्षुधित, निर्बल के पीडक ये लोग नारकीय कीडो से है। अबलाओ, विधवाओ और शिशुओ की दशा भी अकथनीय है—

'हाय, कौन जीवन बदिनी सिसकती है वह ?'

'छिन्न लता सी कौन अधमरी वह ? क्या विधवा ?
कौन माँगते गा गा कर ये ? क्या आनाथ शिशु ?
अह, कैसी जीवन विभीषिका जन धरणी पर
जो मानव को वचित रखती मनुष्यत्व से !!'

सस्कृति पीठ, कला-साहित्य द्वार क्षुद्र मतो, कुटिल गुटो मे बदल गए है—

'पर-परिभव हित तत्पर रहते, स्पर्धा पीडित !'

'बुद्धि जीवियो का आहत अभिमान प्रदर्शन
यहाँ मात्र वाणी की सेवा, कलाकारिता !'

कलाकार अनुभव करता है कि किसी प्रकार के महत् साहित्य एव कला का सर्जन सभव नही है क्योकि व्यक्ति का जीवन शापित है, वह उस मन के घृणित विकारो की छाया है जो सामाजिक सतुलन खो चुका है। किंतु कलाकार का लोकमागल्यमय विश्वास उभरता है और उसे स्पष्ट प्रतीति होती है कि वैयक्तिक कुठाएँ तथा सघर्ष लोक-जागरण का कारण बन जाएगी। धीरे-धीरे निर्मम स्वार्थो की शृखला टूट कर जीवन मे मगल प्रभात ला देगी—

'विहँस उठा मानस-उज्वल मगल प्रभात मे !
निश्चय ही वह अधकार था नही अकेला,
अलसाया जीवन प्रकाश था, ..'

मनुष्य भौतिक-सामाजिक विकास की उस स्थिति को अवश्य ही प्राप्त कर लेगा जो 'शाश्वत मधु से सतत रहेगा गध गुजरित ।'

किंतु कलाकार के इस मधुर स्वप्न को रणनाद, विप्लव, सक्षोभ, चीत्कारें तथा कोलाहल युद्ध विभिषिका मे बदल देते है। वह ध्यान मौन अवस्था मे देखता है—

'युग परिवर्तन का दुर्वह क्षण
डाल अचेतन का अवगुठन
आरोहण करता नव चेतन
प्रलय सृजन क्रम दुर्निवार है !'

गगारिन की सर्वप्रथम अतरिक्ष यात्रा पर लिखा गया 'दिग्विजय' रूपक उसकी दिग्विजय पर हर्षोल्लास के साथ ही सदेशवाहक है। नि सीम नील मे; जहाँ अमर भी श्रद्धानत और नि शब्द विचरते है तथा अप्सरियाँ नूपुरो को उतार कर आती जाती हैं, आज प्रथम बार मनु का कोई प्रमत्त पुत्र उसकी शुभ्र शाति भग कर रहा है। क्षितिज मे मरुत और अप्सरा इस अघटनीय बात से आश्चर्यान्वित है। किंतु नभचर रजत-नील-प्रभ स्वप्नलोक मे विचरता हुआ प्रसन्न है। अमित नील के बारे मे जो वह धरतीवालो को बतलाता है वह पौराणिक आख्यानो की पवित्रता से सुगधित है। उच्च वायुओ की शुचिता मे अवगाहित और निखिल का महत् स्पर्श पाकर खेचर का मन तन्मय हो गया है—

> 'भार मुक्त तन तैर रहा आनद राशि मे!'
> ...
> 'आ, अति रोमाचक, रहस्यमय, महा दिशा का
> नि स्वर नीलम मणि प्रसार यह!—जहाँ धरा के
> लघु जीवन सघर्ष लीन हो आरोहो मे
> अर्थहीन से लगते घन नीरव अनत मे!—"

पृथ्वी की ओर जब नभचर देखता है तो उसे लगता है कि पृथ्वी मुग्ध अनत यौवना मुक्त उर्वशी सी असीम मे नाच रही है। भू के बहु देशो, राष्ट्रो, महाद्वीपो को वह पलक मारते पार कर ले रहा है। सभी देशो की विशेषताएँ उसे याद आ जाती है। उसे अपने स्वदेश, परिवारवालो, प्रियजनो की याद आ जाती है जो उसकी कुशल क्षेम के लिए चिंतित होगे तथा अपने शत्रुओ की जो,

> 'हँसते होगे मोम के पख लगा कर'

> "पर, मै मानव अतर की आशाऽकाक्षा का
> केवल प्रथम प्रतीक मात्र हूँ—जो अनादि से
> शब्दहीन इस महानील के चिर रहस्य को
> चीर, ज्योति स्वर-लिपि मे अकित, गुह्योच्चारित,
> उसके बीजाक्षर मत्रो को पढने के हित
> चिर आकुल था............ .... . "

पृथ्वी की परिक्रमा पूर्ण कर नभचर अतरिक्ष के रजत-हर्ष को धरती माँ के चरणो पर अर्पित कर अपने गोपन अनुभव का जन-जन को आभास देने को व्यग्र हो जाता है। हठात् निर्वाक् नि.सीम मे गहन गभीर ध्वनि उठती है,

'ठहरो दिग्चर ठहरो,—भू की परिक्रमा कर
खोल नील का वातायन, तुम गर्व स्फीत हो
लौट रहे अब दिग् विजयी बन कर धरती पर।
झूठा अरुणोदय ले जाकर—मानवेन्द्र बन!'
... ...

'क्या पाएगी मनुज जाति इस समदिग् जय से?—'
... ...

'आत्मवान्, तू धराधाम को बदल स्वर्ग मे।
बाँध विविध भू देशो को नव मानवता मे—
आज विरोधी शिविरो मे जो बँटे हुए है।'

मात्र भौतिक उन्नति अणु युद्ध को किसी भी क्षण आमन्त्रित कर सकती है, यह स्वत. स्पष्ट है। आत्म-उन्नयन करके ही मानव विजयी हो सकता है। मनुज, मनुज को समान मान कर ही वह जन-भू पर स्वर्ग बसा सकता है। अन्यथा दिग् विजय एव मात्र वैज्ञानिक वैभव और उन्नति मनुष्य की हिंस्र लालसा और अह को जीवन विनाश की ओर द्रुत गति से बढा रहे हैं। नभचर स्वीकार करता है कि,

'ज्ञान दीप्त विज्ञान पथ ही नया पथ है।
... ...
खुला सर्व हित मात्र यही सामूहिक पथ है।—'

नभचर के पृथ्वी पर उतरने के साथ ही नर नारी समवेत गान गाते हैं,

'अभिनदन, वदन है'।
पृथ्वी के हित खुला स्वर्ग का
स्वर्ण क्षितिज तोरण है!'

'शुभ्र चेतना की अप्सरियाँ,
धरा-स्वर्ग रचना मगल मे
भरती आलिंगन हे ।
वदन अभिनदन हे !'

इन रूपको को सैद्धातिक आलोचक 'वादो' की तुला पर कैसे उतारते है, यह उन्ही की एकागी हठधर्मिता बतला सकती है। सत्य की तुला मे ये अवश्य ही खरे उतरेगे—इनकी मनोभूमि उदात्त है और क्षेत्र अत्यधिक व्यापक, गहन तथा श्रेष्ठ । मानव स्वभाव का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक परिचय देते हुए ये मनुष्य की उच्च आकाक्षाओ से लेकर उसकी क्षुद्रतम प्रवृत्तियो तक का चित्रण करते हैं । इन रूपको ने भावना, कर्म और चेतना के किसी भी पक्ष को अछूता नही छोडा है। विविधागी जीवन का इतना जीवत चित्रण एवं दार्शनिक, राजनीतिक, धार्मिक सत्यो तथा सन्यासी, तत्वज्ञानी, समाज-सुधारक, कलाकार, साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक, श्रमजीवी आदि का वर्तमान विश्व-स्थिति के अनुरूप यथातथ्य व्याख्या व्याख्याकार के निष्पक्ष चितन, गहन, व्यापक अध्ययन, अनुभूति तथा जीवन दृष्टि को प्रतिबिंबित करती है। पत के नि स्वार्थ भावलोक तथा मानव प्रेम ने उन्हे किसी 'वाद' मे नही बँधने दिया किंतु साथ ही उन्हे उस वरदान से चरितार्थ किया जिससे प्रत्येक 'वाद' के अमृत-रस का पान वे कर सके । इस अमृत पेय ने उनकी व्यापक सहिष्णु दृष्टि को ज्योतित कर उन्हे उस सयोजनात्मक दृष्टिकोण से युक्त कर दिया जो मनुष्यत्व की पुकार और थाती है ।

पत के काव्य-रूपक यथार्थ की भूमि मे विचरण करते हुए समस्त जीवन का—विस्तृत भाव, विचार और कर्मभूमि का, भूत, वर्तमान और भविष्य का तथा समदिक् और ऊर्ध्व सचरण का विशद, मर्मभेदी, सहज, सम्मोहक तथा सम्यक् वर्णन करते है। भारतीय दर्शन एव अध्यात्म की विजय पताका फहराते हुए वे उसकी मध्ययुगीन निष्क्रिय और पलायनवादी प्रवृत्ति पर कठोर प्रहार करते है। इसका मुख्य कारण यह है कि उन्होने भारत की अतीत गाथा के बारे मे कुछ सूत्रो को ही कंठस्थ नही किया है, उन्होने स्वय इतिहास और दर्शन का गहन अध्ययन किया है, स्वतत्र चिंतन-मनन के माध्यम से तथ्यो को आत्मसात् किया है। भारतीय चैतन्य को चारो ओर से घेरी हुई कालिमा-मृत रुढ़ि-रीतियो, बाह्याडम्बर, पूजन के विधि विधान, जीवन निषेधात्मक तथा समाज और मानव-कल्याण से विमुख दृष्टि की इतनी विवेक सम्मत

स्वस्थ आलोचना करना भारतीय अध्यात्म के अनन्य उपासको और प्रेमियो के लिए असभव तथा वर्जित था। पत भारतीय सस्कृति एव अध्यात्म के अनन्य भक्त और प्रेमी है किंतु वे उसके अध प्रशसक नही है, उसकी सीमाओ के प्रति पूर्ण प्रबुद्ध है। उनकी आध्यात्मिक चेतना वैज्ञानिक विवेक तथा मानव-कल्याण की दृष्टि से युक्त है। काव्य एव साहित्य के क्षेत्र मे पत से पूर्व के लेखको एव उनके युग के लेखको मे भारतीय दर्शन—प्राचीन वेदात—का सभवतः इतना दृढ और न्यायसम्मत समर्थन किसी अन्य ने नही किया है। उनके विचार उस भारतीय मानस के विचार है जिसे वैज्ञानिक सभ्यता ने झकझोरा तथा जीवन के कटु यथार्थ ने प्रताडित किया है।

जिन्होने भी पत के इन रूपको का प्रसारण सुना होगा उनका हृदय इनकी मधुर मर्मस्पर्शी अनुगूँज मे अवश्य ही भीग गया होगा। बाद मे उनकी विद्रोही आलोचनात्मक बुद्धि ने विद्रोह किया हो, वह बात दूसरी है। कुछ लोगो को आपत्ति है कि इन रूपको की भाषा अत्यधिक क्लिष्ट है, इतनी अधिक कि वे हिंदी के अच्छे ज्ञाता एव प्रतिष्ठित लेखक होने पर भी उन्हे नही समझ पाए, और इसलिए, उनका कहना है, "रेडियो से तो ऐसी ही भाषा की प्रत्याशा की जाती है जो सचमुच ही श्रवण-सुबोध हो।" वे भूल जाते है कि ये रूपक 'भारत-भारती' के अतर्गत उच्च स्तरीय कार्यक्रम के नाम से प्रसारित किए गए थे, और साथ ही, रेडियो के कार्यक्रम सभी प्रकार की श्रेणियो के श्रोताओ के लिए होते है तथा 'भारत-भारती' के श्रोता केवल साधारण श्रोता के वर्ग मे नही आ सकते। रेडियो,—चाहे वह बी० बी० सी० हो, चाहे वॉयस ऑफ अमेरिका हो या आकाशवाणी,-सभी वर्ग, सभी श्रेणी के श्रोताओ को सतुष्ट और शिक्षित करने के लिए विभिन्न स्तरीय कार्यक्रमो का प्रसारण करता है—नन्हे-मुन्ने की शैतानी, पाक-शास्त्र, महिलाओ का फैशन, घरेलू झगडो से लेकर परिवार नियोजन, आइन्सटाइन का सापेक्षवाद, शकर का मायावाद, राजनीति आदि सभी विषयो पर वह वार्ताएँ या रूपक प्रसारित करता है।

पत के रूपको की भाषा विषयानुरूप है। किंतु ऐसे श्रोता के लिए क्या किया जाए जो हिन्दी-उर्दू के विरोध को मन मे रख कर उन्हे सुनता है अथवा अपनी भाषा के काव्य को अग्रेजी ज्ञान के आधार पर, कविता और नाट्य-रूपक आदि की शैली विशेष के भेद को भूल कर, समझना चाहता है। हिंदी भाषा का प्रश्न यदि यहाँ पर उठाना अनिवार्य ही है तो यह उसके उद्गम और विकास का प्रश्न है। किसी भी भाषाविद् के लिए यह स्पष्ट है

कि हिंदी अपनी समृद्धि और अपार क्षमता के लिए सस्कृत की ऋणी है। और यह बात हिंदी के लिए ही नही एक-आध को छोड सभी भारतीय भाषाओ के लिए सत्य है। सस्कृत के गर्भ से जन्म लेने के कारण ही हिन्दी भारतीय चेतना या राष्ट्रगत एकता की प्रतीक है। हिंदी को एक सरल एव सर्व-सुबोध भाषा बनाना खिचडी पकाना नही है। हमारे देश मे लोगो के भीतर भाव बोध के जितने स्तर है उन सब के समक्ष मे आने के लिए सरल भाषा की बात करना या अपनी सुविधानुरूप सोचना कि कुछ उर्दू के शब्दो के मिश्रण से भाषा सरल तथा सुबोध हो जाएगी कपोल कल्पना मात्र है। सुबोध भाषा का क्या अर्थ है, सुबोध भाषा किसके लिए चाहिए ? हिन्दी समझनेवाला उर्दू या फारसीमिश्रत हिदी से अधिक सरलतापूर्वक सस्कृतनिष्ठ हिंदी समझता है। जहाँ तक अहिंदी भाषियो की बात है वे सस्कृतनिष्ठ हिंदी के प्रेमी है। आकाशवाणी की 'सरल हिंदी' की नीति के विरुद्ध सन् '६३ का आदोलन स्पष्टत' सिद्ध कर देता है कि सस्कृतनिष्ठ हिन्दी ही अहिंदी भाषियो को प्रिय है। उनका विरोध था कि वे सस्कृतनिष्ठ हिंदी ही स्वीकार कर सकते है, सस्कृतनिष्ठ हिंदी न केवल भारतीय एकता का प्रतीक है वरन् वह अधिकाश भारतीयो के लिए सुबोध भी है। हिंदी को प्रत्येक प्रात का चोला पहिनना--उर्दूवालो के लिए उर्दूनिष्ठ, तमिलवालो के लिए तमिलनिष्ठ, कन्नडवालो के लिए कन्नडनिष्ठ, बगलावालो के लिए बगलानिष्ठ आदि— एव प्रत्येक प्रातवालो के लिए उन्ही की भाषा का रूप देना न उस प्रात की भाषा के हित मे होगा, न हिंदी के। 'जैसा देश वैसा भेष' की अवसरवादिता हिंदी के निजत्व को तो विलीन कर ही देगी यह भारतीय चेतना को विद्वेप की आग मे भी झुलसा देगी।

काव्य-रूपको की भाषा और अतर्तथ्य पर अपना अभिमत देते समय यह ध्यान मे रखना न्यायसगत होगा कि साहित्यिक और सास्कृतिक काव्य का श्रोता सामान्य नाटको, नौटकी, दशहरे के अवसर पर होने वाले अशिक्षित स्तर की नाटकीय धमाचौकडी के दर्शको से कही अधिक परिष्कृत रुचि का होता है। रगमच के सामान्य नाटक जनसाधारण के मनोरजन के हेतु होते हैं। किंतु इन सास्कृतिक नाटको का लक्ष्य मात्र मनोरजन नही होता है। श्रोताओ के मर्म को छूते हुए ये उनके आतरिक परिष्कार, सास्कृतिक रुचि के उन्नयन को लक्ष्य बनाते हैं। इन नाटको का मूल्य भी उन्ही के लिए है जो साहित्यिक और बौद्धिक सस्कार युक्त एकाग्रचित्त तथा सगीत और कला के प्रेमी हैं। चित्त की चचलता श्रोता को छद-नाट्य के सारतत्व से दूर रख

सकती है और फिर खीझते हुए वह कह सकता है—न जाने लेखक क्या कहना चाहता है, कुछ समझ मे नही आता ? चित्त की एकाग्रता एव मनोयोग परिष्कृत रुचि अभ्यास तथा छद लय के प्रति तन्मयता के द्योतक है। अच्छे श्रव्य काव्य की सफलता इसीलिए श्रोता की सस्कृत रुचि तथा उसके काव्य-प्रेम की अपेक्षा रखती है। काव्य का आस्वादन वही कर सकता है जिसका अतर पूर्वाग्रह और दलबदी से मुक्त तथा काव्य-रस से सिक्त हो। रगमचीय नाटको, चलचित्रो को देखने वालो ने यदि कभी अपना विश्लेषण करके देखा हो तो उन्हे विदित होगा कि प्रारभ मे उनकी समझ मे कम आता था। धीरे-धीरे अभ्यास, रुचि और मनोयोग से ही नाटच मचन उन्हे बोधगम्य हुआ। श्रव्य-काव्य के बारे मे तो यह महत्वपूर्ण तथ्य है, इसे भूला नही जा सकता एव इसकी उपेक्षा नही की जा सकती। क्योकि जहाँ केवल श्रवण से ग्रहण करना है, एक ही इन्द्रिय की सहायता लेनी है वहाँ अभ्यास और एकाग्रता का महत्त्व अधिक बढ जाता है।

रेडियो छद-नाट्य, जैसा कि स्पष्ट है, श्रव्य नाट्य है। इसमे स्वभावत शब्द ध्वनि की प्रमुखता है। शब्द ध्वनि को हृदयस्पर्शी, मार्मिक और प्रभावोत्पादक बनाने के लिए भाषा की सरलता, सजीवता तथा सगीतात्मकता अनिवार्य है तथा सरल शब्दो के साथ छोटे वाक्यो का होना भी आवश्यक है अन्यथा बोलने वाले की साँस भारी-भरकम, लम्बे शब्दो और वाक्यो मे उलझ जाती है। श्रव्य-काव्य का प्राण सगीत और लय है। इनके माध्यम से ही वह श्रोता के हृदय को झकृत कर उसे सत्य का बोध कराता है। पत के ये साहित्यिक-सास्कृतिक श्रव्य-काव्य अपने लक्ष्य मे सफल हैं, इसमे सदेह नही है। इनकी भाषा की स्निग्धता, सहजता, ओज, अभिव्यजना शक्ति तथा चित्रमत्ता ने इन्हे सजीवता और प्रेषणीयता से युक्त कर श्रव्य-काव्य की परम्परा का सूत्रधार बना दिया है।

'गद्यपथ'[1] का प्रकाशन सन् १६५३ मे हुआ। इसमे दो खण्ड है प्रथम खण्ड मे 'वीणा' की अप्रकाशित भूमिका, 'पल्लव', 'आधुनिक कवि', 'युगवाणी' तथा 'उत्तरा' की प्रस्तावनाएँ एव भूमिकाए है तथा द्वितीय खण्ड मे आकाशवाणी से प्रसारित सस्मरण एव वार्ताएँ हैं। गद्य पथ इस दृष्टि से भी अमूल्य है कि "वह पंत के काव्य रत्नागार की स्वर्ण कुञ्जी तो है, उसके द्वारा आधुनिक काव्य के अनेक रहस्यो का उद्घाटन भी सहज ही हो जाता है।" तथापि उसके प्रकाशन

---

१. प्रकाशकः साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद

से पत प्रसन्न नही ही हो पाए। उसका रूप तो सामान्य था ही, छापे की भी इतनी भूलें थी कि उनका मन उदास हो गया। अत 'रश्मिबध' के परिदर्शन, 'चिदम्बरा' के चरण-चिह्न तथा आकाशवाणी से प्रसारित कई अन्य वार्ताओ से युक्त होकर यह पुस्तक २० मई १९६१ मे एक नए रूप और आवरण के आवेष्ठन मे 'शिल्प और दर्शन'[1] के नाम से प्रकाशित हो गई। किंतु यह पुनर्जन्म इसे छापे की भूलो से मुक्ति प्रदान नही ही कर पाया, पुस्तक खोलते ही दो पृष्ठ का शुद्धि पत्र मुस्कुरा उठता है।

'शिल्प और दर्शन' की भूमिकाएँ अपनी सहज सश्लिष्ट भाषा मे पत-काव्य के आतरिक और बाह्य स्वरूप के विकास अथवा उनके जीवन दर्शन पर प्रकाश तो डालती ही है, वे अपने विश्लेषण मे वस्तुपरक और मूल्यपरक भी है। ये कवि की उस अतरात्मा को अभिव्यक्त करती है जो द्रष्टा होने के साथ ही सर्वात्मा से अभिन्न अनुभव कर विश्व कल्याण की याचना करती है। 'आधुनिक कवि' की भूमिका की चर्चा करते हुए नगेन्द्र जी का कहना है "पत जी की काव्य-चेतना का मूल आधार कल्पना है—इस तथ्य की अत्यत निर्भ्रान्त स्वीकृति भी यहाँ पहली बार मिलती है : 'मैं कल्पना के सत्य को सबसे बडा सत्य मानता हूँ—मेरा विचार है कि 'वीणा' से 'ग्राम्या' तक अपनी सभी रचनाओ मे मैंने अपनी कल्पना को ही वाणी दी है। ' ''' इस स्पष्ट स्वीकारोक्ति मे पत काव्य की शक्ति और परिसीमा निहित है। पत जी ने भाव अथवा अनुभूति के साथ कल्पना को जीवन का सबसे बडा सत्य माना है। इसी सदर्भ मे वे कल्पना के सत्य को अनुभूति के सत्य से रीता मान लेते है और प्रश्न करते है, "प्रत्यक्ष अनुभूति की आग मे तपे बिना जीवन की मूर्ति पूर्णतम कैसे हो सकती है?"[2] वे भूल जाते है कि कवि की कल्पना उसकी अनुभूति एव जीवन होना है, यथार्थ की तुलना मे जिसे कल्पना कहते है, वह उस वायवी दृष्टि की सूचक नही है, वरन् उस विराट् दृष्टि की जिसे जीवन मे प्रतिष्ठित होना है। सभी महान् कवियो ने इसी कल्पना के सहारे अपने काव्य को मानवोचित धरातल पर ग्राह्य एव शिवमय बनाया है।[3]

---

१. प्रकाशक : रामनारायण लाल बेनी माधव, इलाहाबाद
२. 'विचार और विश्लेषण', पृ० १००
३. देखिये 'सुमित्रनन्दन पंत—जीवन और साहित्य', प्रथम खण्ड, अध्याय ११, पृ० १९०, राजकमल प्रकाशन दिल्ली।

'शिल्प और दर्शन' का द्वितीय खण्ड पत के जीवन एव व्यक्तित्व के साथ उनकी साहित्यिक मान्यताओ को गुफित कर देता है, दोनो एक ही प्रतीत होते है । अत यह खण्ड भावना के तरल प्रवाह मे कई साहित्यिक तथ्यो, सस्कृति के विभिन्न पक्षो तथा मान्यताओ और विचारधाराओ एव 'वादो' पर प्रकाश डालता है । कुछ निबध महाकवियो एव महापुरुषो के प्रति श्रद्धासुमन अर्पित करते है और कुछ व्यक्तिगत जीवन-सस्मरण के आवरण मे अत्यत रोचक तथा मर्मस्पर्शी है जैसे–"पुस्तक, जिनसे मैंने लिखना सीखा, 'मेरी पहली कविता,' 'मेरी सर्वप्रथम रचना' आदि ।" वस्तुत पत का 'शिल्प और दर्शन' एव उनका गद्य कवि-हृदय के रूप-रग, उसकी आस्थावान् प्रगतिशील दृष्टि तथा प्रकृति प्रेम के स्वरूप को पाकर एक नवीन वातायन खोल देता है एव गद्य को सदरम् और शिवम् की स्निग्धता और मृदुता से प्रोज्वल तथा मार्मिक बना देता है । अथवा पत का गद्य एक छायावादी कवि का गद्य है जो सदर्भानुसार वैज्ञानिक और तार्किक शक्ति से युक्त हो जाता है । इस दृष्टि से उनका गद्य जीवन सौदर्य की वाणी को अपनाकर मानव मगलाशा को अभिव्यक्ति देता है ।

● ●

१०

घर, दायित्व और अस्वास्थ्य

धनाभाव, सकुचित अर्थ मे, पत के लिए पारिवरिक सबधो और दायित्व से मुक्ति वन कर रहा है। अपने ही एकाकी जीवन सघर्ष से जूझते, वैचारिक, सामाजिक एव विश्व समस्याओ मे डूबे हुए वे व्यक्तिगत तथा पारिवारिक झमेलो की वास्तविकता से दूर ही रहे। अत अर्थाभाव अपने नग्न रूप मे उन्हे कभी व्यथित अथवा खण्डित नही कर पाया। "जिस अल्मोडे मे उनके कई मकान थे, वही किराए की छोटी काटेज मे रहते हुए भी न उनकी हँसी मलिन हुई और न अभिमान आहत हुआ। वे किसी वीतराग दार्शनिक की तटस्थता की साधना नही कर रहे थे, वरन् उनकी स्थिति उस बालक से समानता रखती थी जो अपने घरौदे के बनाने मे जितना आनद पाता है मिटाने मे उससे कम नही।"[1] घर का भी उनके मन मे कभी कोई एक तथा स्थाथी ममत्त्वपूर्ण अर्थ नही रहा, जहाँ भी विचार और भावना का मेल बैठ गया वही घर बन गया और उस घर का सुख-दुख निजि सुख-दुख हो गया। किंतु आत्मीयता एव स्नेह का अनुभव कर सुख-दुख बँटा लेना, सलाह देना पारिवारिक झगडो को सुलझा देना, स्वय बडे बने रह कर सबको आदर-स्नेह देना तथा छोटी-छोटी बातो और वस्तुओ के लिए सप्ताह भर भटकना भिन्न तथ्य है। जहाँ तक काम करने का प्रश्न है उन्हे न कोई काम कठिन लगता है, न किसी काम को करने मे उन्हे समय नष्ट होता ही लगता है और न कोई काम इतना सामान्य या छोटा लगता है कि वह करने मे सकोच हो या उसमे मानहानि लगे। प्रसन्न होकर यदि वे कविता कर सकते है, तो प्रसन्न होकर

---

१ महादेवी वर्मा : 'पथ के साथी पृ०' ११०-११

अल्मोड़ा में पंत के पिता के कई मकान नहीं थे, एक ही विशाल कोठी थी।

राशन की दूकान से चीनी या बाजार से कोयला-लकडी भी ला सकते है। तेजी बच्चन के साथ वे कई बार तरकारी लेने बाजार गए, कोयले की राशनिंग के दिनो उनके साथ चौक की राशन की दुकान मे गए किंतु तब साथ देने अथवा दूसरे की झझट को हल्का करने की बात थी। पूर्ण दायित्व का अपने कधो पर पड जाना, रोज ही परेशानी उठाना, दौडधूप करना, आवश्यकता पडने पर गभीरतापूर्वक नौकरो से बोलना—यह सब मन को दु खी न करे तो आनन्द तो नही ही दे सकता हे।

अपने घर मे पत को छोटे से लेकर बडे कामो को स्वय ही समझना और स्वय ही करना प्रिय है। राशन कार्ड बनाना, पखो मे ग्रीज लगवाना, नौकर रखना, मेहमान का ध्यान रखना अथवा नोन-तेल-लकडी से लेकर सभी प्रकार के घर-बाहर के काम जब तक वे स्वय नही कर लेते है तब तक चिन्तित ही रहते है। कभी-कभी तो कहते भी है कि इन सब झमेलों से मुक्त था। किंतु अब उस जीवन की बात सोचना निरर्थक ही है। मित्रो के साथ रहना तो दूर, वे इलाहाबाद-वासी तक अब नही है कि फिर से, चाहे कुछ घण्टों को ही हो, पुराना वातावरण मिल सके। पत इलाहाबाद-प्रेमी, इलाहाबाद-वासी है। वे इलाहाबाद के जीवन के सम्मुख समस्त बाह्य सुख-सुविधाओ को त्याग सकते हैं। मित्रो की याद उन्हे बहुत आती हैं किंतु अब अपने घर के भी अभ्यस्त हो गए है। बधु सदृश मित्रो से साल मे दो-चार बार मिलकर अपने कमरे के एकात मे मोह-मुग्ध हो जाते है।[1]

एकात का आनद लेते हुए कभी कहते है," क्या करूँ अपनी भाभी-भतीजो के साथ आराम से रहता। 'आज बिजली वाले को बुलाओ तो कल नल वाले को—यह सब कुछ नही करना पडता किंतु शोरगुल नही सह सकता।" इसके साथ ही वह यह भी समझते है कि परिवार का अर्थ बहुत सारी उन बातो को करना है जो मन के अनुकूल नही है और बडे होने के नाते दायित्व

---

१. **एकांत की चित्तवृत्ति में उन्होंने कहा, "मै अपने कवि कर्म के कारण अल्मोड़ा में भाई-आवज के साथ नहीं रहा— छोटा घर और बच्चों के कारण मुझे वहाँ शात वातावरण नही मिल पाया। इसके बाद भी अन्य कुछ घरो में फिर इसीलिए नही रहा कि अध्ययन-लेखन के अनुरूप वातावरण नहीं मिला। और तुम्हारे साथ भी तभी तक हूँ जब तक कि इस घर का खर्च उठा सकता हूँ, जब तक तुम शांतिपूर्वक अपने काम में लगी हो, भीड़-हुल्लड़ में मै काम नहीं कर सकता।"**

भी अधिक बढ जाता है। परिवार वाले मना भी करे तो भी उनके स्वभाव की विवशता है, नगण्य सी बात को भी दयित्व के बोझ से इतना बाझिल बना लेना कि दूसरा उन पर तरस खा कर रह जाता है। परिवार मे रह कर अनेक त्योहार भी मनाने पडते है । छठी, नामकरण जन्मदिन, होली, दीवाली—सभी मे भाग लेना पडता है। रुढिवादी अर्थ मे पत कोई त्योहार नही मानते है— न वे पूजा करते है, न विधियो को मानते है। यदि उनसे कहो कि दीवाली मे खीले और पार्वती-गणेश मँगाना आवश्यक होता है तो वे आश्चर्य से 'अच्छा' कह कर बात टाल देगे।[१] बच्चो का हुल्लड, दिन भर रेडियो का बजना उन्हे प्रिय नही है। दस-पन्द्रह मिनट बच्चो के साथ खेल लिया पर्याप्त है। कभी हँसकर कहते है—भगवान् की दया है, बच्चो का भोलापन उनकी शैतानी को सह्य बना देता है अन्यथा ये जितना 'बुली' और परेशान करते है उसमे माँ-बाप उन्हे घर से बाहर निकाल दे। रेडियो का प्रयोग वे सास्कृतिक एव विशिष्ट कार्यक्रमो अथवा राजनीतिक गतिविधियो को जानने के लिए ही करते है। जब भी देश पर कोई विपत्ति आती है—बाह्य या आतरिक— तो वे खाना-सोना भूल कर रेडिया सुनते रहते है। सामान्य स्थिति मे उनका रेडिया चुप ही रहता है।

सितम्बर '५० को पत दिल्ली गए। वहाँ उनकी भेट अपने बचपन के एक सहपाठी भोलादत्त पत से हुई जो अमेरिका से उन्ही दिनो आए हुए थे। उन्होने अपने सुदर किंतु कृत्रिम दाँत दिखाते हुए कहा, "सब रोगो का मूल बुरे दाँत है।" पत उनके इस कथन से बहुत प्रभावित हुए। कुछ दिनो से दाँतो के दर्द से पीडित थे, उस दर्द से मुक्ति और अच्छा स्वास्थ्य—उन्हे मानो अश्वनिकुमार की बताई औषधि मिल गई।

दिल्ली से वापिसी यात्रा मे दाँत निकलवाने और अच्छे स्वास्थ्य का स्वप्न देखते आए थे। सवेरे दस बजे के लगभग घर पहुँचे और शाम को छः बजे दाँत के डॉक्टर के यहाँ, सामने के दो दाँत तुडवाने, चल दिए। जाते समय कहने लगे, "पता है दाँत तुडवाने से बच्चन बडा घबडाता है। उसे साथ चाहिए। मुझे घबडाहट नही होती, अकेले ही जाऊँगा।" बिना साथ के घर से न निकलने वाले तथा यात्रा के बाद तीन-चार दिन तक आवश्यक से आवश्यक काम के लिए भी निकलने के नाम पर चौक उठने

१. देखिए : 'सुमित्रानंदन पंत' : जीवन और सहित्य; प्रथम खण्ड, अध्याय ४, पृ० ६६,

वाले पत भावीवश अकेले ही दाँत निकलवाने चले गए। दाँत तोडने के पूर्व डॉक्टर ने इजेकशन दिया और उन्हे लगा कि मुँह खून से भर गया है। डॉक्टर ने दो दाँत तोडे, दस मिनट तक पत डॉक्टर की दूकान मे ही बठे रहे पर खून रुकने का नाम नही ले रहा था। उन्होने डॉक्टर को बतलाया। पर उसने कह दिया कि घबडाने को कोई बात नही है, घर चले जाइए, खून निकलना बद न हो तो बरफ चूस लीजिएगा। पत अभी कुछ देर वहाँ और बैठना चाहते थे, थोडी देर रुक कर स्थिति देख लेना चाहते थे। डाक्टर से कहा भी पर उसने अपना पहला कथन दुहरा दिया, "फिर मै क्या करता ? वहाँ बैठता तो उसे बुरा लगता। बाहर निकला और रिक्शा करके घर आ गया। रिक्शावाले को रास्ता बताने मे बडी दिक्कत हुई, बोला नही जा रहा था।" वे घर लौटे, रास्ते मे तीन-चार बार थूका, हर बार खून से मुँह भर जाता था।

घर पहुँचे तो नौकर के अतिरिक्त और कोई नही था। गर्मी के कारण वह रसोई के बाहर बरामदे मे खाना पका रहा था। उससे बरफ लाने को कहा तो उत्तर दिया, "खाना छोडकर कैसे जाऊँ, कही कुत्ता-बिल्ली ने मुँह मारा तो।" और पत अपने स्वाभाव से लाचार! कह नही पाए कि खाना अदर रख दो या खाना कुत्ता खाता है तो खाने दो, बरफ लाना आवश्यक है। वही पर कुर्सी रखवा कर लगभग आधा घण्टा बैठे रहे। दस कदम पर बरफ की दूकान, लेकिन नौकर तो समय लगाकर ही बरफ लाया। जब साढ़े-दस बजे के लगभग मै अपनी सहेली के पास से घर पहुँची तो देखा खून पानी (कुल्ला किया होगा) से भरी चिलमची गोसल-खाने मे रखी है और 'पिसपोट' सिरहाने एक तिपाई पर। कुछ समझ मे नही आया क्या करूँ—डॉक्टर को बुलाने तथा अम्बादत्त को खबर भिजवाने के लिए पूछा तो मना कर दिया, "रात को किसी को परेशान मत करो।" जब स्थिति सुधरती न दीखी तो बारह बजे रात पास के ही एक डॉक्टर को बुलाया। पर उसके उपचार से स्थिति तनिक भी नही सुधरी। डेढ बजे रात अम्बादत्त को सूचना दी। वह और उसका बडा भाई सतीश (जो छुटी लेकर आया था) आए। दोनो ने दौड धूप की, अम्बादत्त दाँत के डॉक्टर के पास गए और सतीश बडे ओहदे के सरकारी डॉक्टर के पास।[1] दो-दो तीन-तीन बार ये

---

१. तीन माह बाद सरकारी डॉक्टर पंत को किसी उत्सव में मिले और उलाहना देने लगे, "मैने 'एम्बुलैंस' भेजी थी, आप आए नहीं।" पंत

लोग इन डॉक्टरो के पास गए, इसी मे रात बीत गई पर सफलता नही मिली। फिर एक अन्य डॉक्टर को बुलाकर लाए जिन्होने सबेरे पाँच बजे विटेमिन 'के' का इञ्जेक्शन दिया, पर व्यर्थ ही। इसके बाद उन्होने विटामिन 'के' के चार-पॉच इञ्जेक्शन्स और दिए, लाभ न दीखने पर भी पत ने इञ्जेक्शस ले लिए, "बेचारे आ गए, यही बहुत है। इञ्जेक्शन न लेकर उनका जी दुखाना ठीक लगता क्या ?"

खून की धारा रुकने का नाम ही नही ले रही थी। दो मिनट को भी आँख लगी कि कुर्ता-चादर लाल हो गए। दो बार कुर्ता काटकर उतारा, तौलिया-चादरे गले के पास लगाई। खून से भरी (पानी मिला) चिलमची तथा 'पिसपोट' गुसलखाने मे साफ किया। नाली से खून-पानी बहने पर सागरपेशे के लोग चौके।

२२ हेमिल्टन रोड के सागरपेशे मे बहुत लोग रहते थे—नौकर नौकरानियाँ, भगी और धोबी, उनके परिवार। वे लोग आ-आकर पूछने लगे कि यह खून कैसा बह रहा है। सतीश तो बरामदे मे बैठ गया, घबडाहट से उसका सिर चकराने लगा। अम्बादत्त उस समय तो बैठा रहा। बाद को कहने लगा, "न मालूम कका कैसे शातचित्त लेटे रहे।"

सचमुच यह काल से सघर्ष था, वह सिरहाने आ ही गया था, कुछ देर बाद चला गया। सबेरे दस बजते न बजते यह आवश्यक प्रतीत होने लगा कि भाइयो (हरदत्त और देवीदत्त) को सूचना दे दें। पत का जीवन तिनके मे लटका था। अम्बादत्त हताश हो उठे, "दाँत के डॉक्टर को लाने की एक बार कोशिश और करता हूँ।" एक बजे डॉक्टर आया और उसने घाव को 'प्लग' कर दिया, रक्त स्राव थम गया। फिर ध्यान मे आया—भाग्य की विडम्बना! जो दो अन्य डाक्टर आए उन्हे 'प्लग' करने की बात सूझी ही नही और परिणाम ।

ने धन्यवाद देते हुए कहा, "उस समय घबड़ा गया था। गाड़ी आने तक ठीक हो गया था। इसलिए नहीं आया, क्षमा करें।" मुझसे घर आने पर कहा, "मन मे डॉक्टर पर तरस आ गया बेचारे को शरम आई होगी कि देखने नहीं जा पाया। इसलिए झूठ बोल रहा था। उसका दोष भी तो नहीं है, पीने का आदी है, बहुत पीता है, शाम को होश में ही नहीं होगा कि आता। मै जानता हूँ इसलिए वह उस दिन नहीं आ पाया। वैसे आदमी बुरा नहीं है, मिलता रहता है, होली खेलने आता है।"

उस घटना की याद कर आज भी विभ्रम मे पड जाती हूँ कि पत कैसे बच गए। और उससे भी बडा विभ्रम इस पर होता है कि वे कैसे बिना हिले-डुले शात पडे रहे, न उन्होने गुसलखाने जाने का नाम लिया, न किसी अन्य बात का। अनुभवहीन होने के कारण हममे से किसी का भी ध्यान इस ओर नही गया। तीसरे दिन अर्थात् पूरे चालीस घण्टे बाद जब वह गुसलखाने गए तो ध्यान मे आया और उनसे पूछा। कहने लगे, "क्या करता, गुसलखाने तक चल नही सकता था इसलिए चुप रहा।" बाद को एक दिन उनसे पूछा, "तुम्हे घबडाहट तो हुई होगी, डॉक्टर पर क्रोध!" वे मुस्कुरा दिए, "मैंने सब कुछ ईश्वर पर छोड दिया था। मै जानता हूँ उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ हो ही नही सकता। उसका दिया जीवन है। लेना चाहे ले ले, अपने को क्या।"

दॉत का डॉक्टर चारपाई से हिलने और बोलने के लिए बिलकुल मना कर गया था। मना करने की आवश्यकता भी न थी—उसकी भूल ने पत को निस्पद-सा ही कर दिया था। रक्त रुकने के चार घण्टे बाद उन्हे फल का थोडा रस दिया गया और धीरे-धीरे खाना। दॉत तुडवाने के तीसरे-चौथे दिन किसी ने अखबार मे दे दिया—एक स्थानीय डाक्टर से दॉत तुडवाने के कारण पत अस्वस्थ हो गए। अखबार की यह सूचना देने डॉक्टर घर आए और कुछ क्रोधित दुखी स्वर मे पत को बतलाया। इससे पूर्व घर मे किसी ने अखबार नही देखा था। जन्म-मृत्यु के सघर्ष ने मानो खबरो की ओर से तटस्थ कर दिया हो। पत को डॉक्टर के लिए बडा बुरा लगा यद्यपि और सब खुश ही हुए। उन्होने डॉक्टर से क्षीण स्वर मे कहा, "ठीक होने पर इस समाचार का खण्डन कर दूंगा।" वे करना भी चाहते थे किंतु १०-१२ दिन तक बिलकुल नि.शक्त रहे। फिर बात 'अब-तब' की हो गई।

तीन-चार दिन तक बोलना बिलकुल मना था। बोलने की शक्ति भी नही थी—सकेतो से काम चलाते या कागज़ पर लिखते थे। कुशल पूछने वाले प्रार्थना करने पर बाहर से ही चले जाते यद्यपि मन मे बुरा भी मानते। पर कुछ ऐसे भी होते हैं जो सब कुछ समझते, सुनते हुए अपने मिलने आने के उद्देश्य को गौण नही ही मान पाते है। जिस दिन सवेरे खून रुका उसी दिन शाम को छह-सात बजे के लगभग कश्मीर से एक दम्पति आए। कितनी ही प्रार्थना की किंतु वह सुशिक्षित दम्पति माने ही नही—उन्होने बिना दर्शन किए लौटना अस्वीकार कर दिया। उनका कहना था कि दो मिनट मौन

होकर खडे रहेगे और बाहर आ जाएगे। पत्नी किसी कॉलेज की प्रिन्सपल तो थी ही, उन्हे भ्रम भी था कि वे बडी अच्छी कवयित्री है और वे चाहती थी कि आठ-दस दिन के अदर पत उनकी काव्य पुस्तक के लिए एक भूमिका लिख दे तथा अनिवार्य प्रतीत होने पर कविताओ का सशोधन कर दे। पत कभी कागज पर लिखकर उनकी बातो का उत्तर देते, कभी सकेत से समझाते, कभी बोलते। दम्पति से कई बार कहा आप बोलते है तो बोलिए, पत से उत्तर न माँगिए। पत बार-बार आँखे भी मूँद ले रहे थे। पर दर्शनाभिलाषी श्रद्धालु दम्पति अपनी बाते सुना कर, आश्वासन लेकर डेढ घण्टे बाद ही कमरे से बाहर गए। किंतु यह कोई नई बात नही थी, ऐसा तो पत के साथ होता ही रहता है।

पत की उस स्थिति को याद कर लगता है कि यह उस 'टाइफोएड' से कम गभीर न थी जिसमे शोक समाचार छप गया था। सभवत आधे घण्टे की भी और देर हो जाती तो ...। वैसे, उचित निर्णय डाक्टर ही दे सकते है। ५०-५१ साल की आयु मे इतना अधिक रक्तपात स्वास्थ्य के लिए अहितकर ही है, आयु की सीमा क्षतिपूर्ति नही होने देती है। परिणाम भी स्पष्ट था। तीन-चार महीने ९९°-१००° बुखार रहा। उसके बाद भी साल भर तक तनिक सा अधिक काम पड जाने पर बुखार आ जाता था। महीनो तक नहा कर आने पर कहते लोटा उठाने मे हाथ काँप जाता है, हृदय मे ज़ोर पडता है। पर इस सबका प्रभाव मन पर गौण ही था क्योकि आकाशवाणी का काम उन्होने घर पर ही दस-पन्द्रह दिन बाद करना प्रारभ कर दिया। काम का मन मे अपार उत्साह था, यह हिन्दी तथा 'लोकायन' की सेवा थी फिर उस समय के स्टेशन डाइरेक्टर श्री मूर्ति का साहचर्य भी उन्हे बहुत प्रिय था।

गाधी जन्म-दिवस के लिए काव्य-रूपक 'शुभ्र पुरुष' लिखना बहुत पहिले स्वीकार कर चुके थे। दो अक्टूबर, १९५० निकट आ रहा था। प्रसारित होने की तिथि के पूर्व उसका पूर्वाभ्यास करवाना भी अनिवार्य था। पत चाहते तो इस लेख से अपने को मुक्त कर लेते। यद्यपि तब समस्या तो उत्पन्न होती—२-३ दिन मे कौन लिख कर देता। उन्होने स्वय ही लिखने का निर्णय ले लिया—वचन, दायित्व बोध और सृजनशीलता की सक्रियता ने उन्हे विश्राम नही करने दिया। चाय और फल का रस पीकर उन्होने

तीन दिन मे 'शुभ्र पुरुष' लिखा।[1] सामान्यत: इतने छोटे (बारह पृष्ठ) काव्य-रूपक को वे एक ही दिन मे लिख लेते है किंतु शारीरिक क्लाकि कमल पकडने दे तब न ! लिखने के लिए शारीरिक सीमाओ का वे यथासभव अतिक्रमण कर लेते हैं। काव्य प्रेरणा हो, वातावरण मे शाति हो—इससे अधिक क्या चाहिए ? सबसे प्रमुख तो उनके लिए काव्य-प्रेरणा ही है। बिना इस प्रेरणा के वे महीनो, साल-डेढ साल तक, सृजन नही करते है, "जब अदर से प्रवाहित होगा तभी तो लिख सकता हूँ" और सृजन न करने मे उन्हे असतोष नही होता क्योकि "विधि का विधान ऐसा ही होगा।" सृजन-प्रेरणा होने पर उन्होने ऐसी परिस्थिति मे भी लिखा है जब कमरे मे आने-जाने वाले लोगो की भीड लगी रहती थी। लेकिन यह बात पुरानी है, तब की, जब वे नरेन्द्र जी के साथ बम्बई मे उनके एक कमरे के घर मे रहते थे। नरेन्द्र जी के पास दिन भर सिने जगत् के लोग आते रहते थे किंतु अब ऐसी स्थिति मे लिखना असभव सा ही लगता है। अपने घर की शाति और एकाकीपन के वे अभ्यस्त हो गए है। परिस्थिति के साथ सयोजन की भावना उठती ही नही है। छोटा-सा भी व्याघात हो जाए कि वे लिख नही पाते—वातावरण मे एक परायापन लगने लगता है, उस पर दायित्व की भावना ! दूसरे की सुख-सुविधा का ध्यान !

---

१. मेरे यह कहने पर कि अपनी असमर्थता व्यक्त कर दो, श्री मूर्ति तो स्वयं ही कह चुके हैं कि न लिखा गया तो कोई बात नहीं, वे कोई दूसरा कार्यक्रम करवा देंगे। वे नाराज हो गए, "तुम कुछ समझती भी हो। मेरी कठिनाई आतरिक है। मै आकाशवाणी को दिए अपने वचन को भग नहीं कर सकता। करूँगा तो मन दिनो तक दुःखी रहेगा।" दो-तीन दिन के अंदर रूपक लिखने के साथ ही वह बोले, "मात्र संकल्प से लिखा है। लिखने मे रह रहकर सिर घूमता था और कलम पकड़ी नहीं जा रही थी। इसलिए दिन भी अधिक लगे। सामान्यतः एक दिन में लिख लेता।" किंतु इस सबके मूल में पंत की गाधीजी के प्रति अगाध श्रद्धा भी थी जो सृजन की बलवती प्रेरणा बन गई। गांधी जी के बारे में बातें करते हुए उन्होने कहा, "गांधी जी प्रार्थना-समय मे—बाइबिल, कुरान, गीता आदि के पाठ के समय—सबको देखते रहते थे किंतु 'रघुपति राघव राजा राम' की ध्वनि के साथ ही आँखें बंद कर लेते थे। भजन पूरा होने पर आँखें

उदयशकर केन्द्र से सबद्ध होकर उन्होने जो धनोपार्जन किया उसका व्यय विधाता की इच्छा से हुआ। टाइफोएड ने उस उपार्जन का स्वाहा ही नही किया, कुछ ऋण भी करा दिया, ऋण स्नेही बधुओ का ही था। किन्तु ऋण तो ऋण ही है।' मन पर तब तक बोझ रहा, जब तक कि वह थोडा-थोडा करके चुकाया न गया। रेडियो से सबद्ध होने के बाद जो दो दाँत तुडवाए उसमे न केवल एक हजार की राशि लगी, वरन् प्रौढावस्था मे रक्तन्यूनताजन्य उस दुर्बलता को भी भोगना पडा जिसने सालभर तक हल्का बुखार, बीच-बीच मे तेज बुखार तथा ब्रोन्काइटिस से आक्रात करके मधुमेह का रोगी बना दिया। दो दाँत क्या तुडवाए सभी दाँतो ने आक्रमण कर दिया। उसके बाद सात-आठ साल तक दाँतो ने बेहद कष्ट दिया, पीडा जो आखो से आँसू ला दे। इस अवधि मे पन्द्रह-सोलह दाँत और निकलवाए। जब दुबारा दाँत तुडवाने की बात आई तो उन्होने कहा, "उसी दत-चिकित्सक के पास जाऊँगा। वह मुझे बता रहा था कि रोज ही वह न जाने कितने दाँत तोडता है। बेचारा विशेषज्ञ है, एक बार भूल हो गई तो क्या हुआ। उसे पता चलेगा कि मैंने कही और दाँत तुडवाया है, उस पर अविश्वास करता हूँ, तो उसे बुरा लगेगा।" वे दत विशेषज्ञ कितने ही प्रवीण हो, मन मे भय छा गया था और इस अर्थ मे वे दोषी भी लगे कि गलत ढग से इजेक्शन दिया, पत के कहने पर भी नही चेते और बाद को भी किसी प्रकार का खेद नही प्रकट किया। खैर, पत को न उनके पास और न अकेले ही फिर दाँत तुडवाने जाने दिया गया।

रेडियो की नौकरी इस अर्थ मे वरदान ही रही कि कुछ दायित्वों को निभा सके। मित्र के बेटे को क्षय हो गया। उसके लिए डेढ-दो साल तक २००) रु० माह की आवश्यकता थी। अपने भाइयो की ओर से अभी तक निश्चित थे। मध्यवृत्तीय ढग से दोनो ही भाई—हरदत्त और देवीदत्त—अपने अपने परिवार का दायित्व निभा रहे थे। देवीदत्त योग्य वकील और काग्रेस के सदस्य तथा एम० पी० थे। फक्कड स्वभाव के होने पर भी किसी तरह परिवार का भरण-पोषण कर रहे थे। अकस्मात् उन्हे मनोवैज्ञानिक रोग हो गया। पार्लियामेन्ट का सेशन पूरा हो गया था। वे अल्मोडा आ गए थे।

खोलते थे। सजल द्रवीत आँखें! लगता था आँखें नहीं हैं, ओस की दो बूँदें हैं, स्वच्छ निर्मल आकाश-सी, बकार-रहित, आकांक्षारहित। वे अद्वितीय पुरुष थे।"

अजीब औदास्य, भय और आलस्य ने उन्हे घेर लिया था। जीवन चारपाई की कारावास मे बदी हो गया था। इस कारा काल मे रह-रह कर विचित्र बातें करने लगते—"सब नरक जाएँगे—मैं, गुसैं (पत), मेरे बच्चे, बीबी, मित्र··· ।" बरबस उन मित्रो ने उन्हे पकड कर मोटर मे बिठाया और राँची चिकित्सालय मे भर्ती कर दिया। भाई का चिकित्सालय का दायित्व, उनका परिवार जो अल्मोडा मे रहता था, छोटा लडका गोर्की (नैनीताल कॉलेज का विद्यार्थी) तथा बडा लडका लेनिन (प्रयाग विश्वविद्यालय का विद्यार्थी) इन सभी का दायित्व था। किंतु दायित्व निभाने मे कोई कठिनाई नही थी, किसी को भी नही हो सकती पर भाई की बीमारी का दु:ख तथा उनके परिवार की कुशल-मगल की चिन्ता सृजन कर्म मे अवरोधक ही थे।

देवीदत्त साल भर के अदर पूर्णतः स्वस्थ हो गए। राँची के मानसिक विशेषज्ञ का कहना था कि ऐसा रोग उन लोगो को 'आयु परिवर्तन' के समय हो जाता है जो अत्यधिक नैतिक और सदाचारी होने के साथ ही भावप्रवण भी होते हैं। बात ठीक भी थी। देवीदत्त जाने-अनजाने अनेक के सरक्षक एव पितातुल्य थे। उनके मित्र, मित्र क्या मित्रो की भीड उन पर जान देती थी। ठीक होने पर वे सभी मित्रो-सबधियो के पास गए, इलाहाबाद आए, तीन-चार दिन रहे। उनकी आर्थिक स्थिति के बारे मे पूछा और जाते-जाते दो-तीन बार कह गए, पत से पहिली बार व्यक्तिगत बातें की "अब अपना ख्याल रखना भी सीखो। हारी-बीमारी के लिए पैसे अवश्य बचा कर रखना।"

पत को अपने बडे भाई की भी चिन्ता थी—आयुजन्य शरीरिक शिथिलता और सामान्य आर्थिक स्थिति के कारण वे कष्ट मे थे। पत चाहते थे कि वे थोडा-बहुत आराम से रह ले। किंतु छोटे भाई अथवा किसी की भी सहायता वे नही लेना चाहते थे। बहुत आग्रह करने पर छोटे भाई का मन रखने के लिए उन्होने अपने तथा परिवार के लिए गरम कपडे बनवा लिए। और दो-तीन वर्ष बाद जब वे अधिक दुर्बल हो गए तो बडा आग्रह करने पर प्रति मास कुछ राशि लेना स्वीकार कर लिया।

रेडियो से सबद्ध होते ही पत के उन नाते—रिश्तेदारो, साहित्यिक एव असाहित्यिक मित्रो की सख्या बढ गई जो उनसे धन लेना अपना अधिकार समझते हैं। ५०-१००) की राशि लेने वाले तो कई हैं, उनके लिए जान-पहचान की आवश्यकता भी नही, मात्र आवश्यक है कि वे अपनी आवश्यकता को किस ढग से प्रस्तुत कर

देते है। किंतु कभी पुष्कल राशि माँगने वाले विचित्र तर्क देते हैं, ऐसे मे सहानुभूति नही ही उत्पन्न हो पाती है। अपना परिचय देते हुए एक " निवासी ने लिखा, "मैं एक निर्धन साहित्य प्रेमी हूँ। अच्छी नौकरी मे था, उसे मैंने ठुकरा दिया क्योकि नौकरी से मुझे वितृष्णा है। तत्काल १०००) भेजिए। यदि दस दिन के अदर पैसे नही मिले तो आपके फाटक के पास तारीख को सबेरे पाच बजे मेरी लाश मिलेगी और इस पाप के भागी आप होगे।" पत ने पत्र पढ कर फाड डाला मुझे चिन्ता हुई तो कहने लगे, "कह कर कोई आत्महत्या नही करता। एक बार तो एक अच्छी खासी नौकरी करने वाले सज्जन छह महीने तक पत से नही बोले क्योकि उनके किसी गुप्त मित्र की लडकी की शादी के लिए पत ने ५००) रु० देना अस्वीकार कर दिया था।" कभी ऐसे भी साहित्यजीवी आ जाते जो घर मे आकर रहते ही नही, सारे घर मे छा जाते और उनका अकाट्य तर्क होता। "हाईस्कूल, इटर या बी० ए० की परीक्षा छोडकर आया हूँ क्योकि किताबो के प्रति अरुचि है और शिक्षको को पढाना नही आता है।" "मै स्वतत्र रूप से लिखना चाहता हूँ" अथवा "परिवार वालो से चिढ है। आपकी छाया मे रह कर जीवन बिताना चाहता हूँ।" ऐसे लोगो को पाँच-छह दिन पास रखकर उन्हे मार्ग व्यय आदि दे बरबस रिक्शा मे बैठाना पडता है। क्योकि उनके रोने पर पत भी खिन्न हो जाते। कभी कहते, क्या करूँ, घर बडा होता तो सबको टिका लेता।

अन्य क्षेत्र के लोग और सबधी माँगते ही नही है, सभी प्रकार के माध्यमो का भी प्रयोग करते है। सन् '५१ मे पत के एक सबधी उन पर बेहद नाराज हो गए क्योकि पत का दोष, यदि उसे दोष कहा जाए तो यही था कि जब उन्होने पत को बताया कि वे शादी कर रहे है तो पत ने उन्हे प्रोत्साहित करते हुए भरपूर आशीर्वाद दे दिया। यद्यपि यह भी कह दिया कि उनकी नौकरी सामान्य है, वे अच्छी नौकरी पाने के बाद ही सफल पारिवारिक जीवन बिता सकेंगे। पर आशीर्वाद तो आशीर्वाद ही होता है। उन्होने शादी करने के बाद अपने रिश्तेदारो को भी अपने साथ रख लिया और पत के पास अपने घर का 'बजट' भेजते हुए लिखा कि उनके कहने के कारण ही उन्होने शादी की अतः पत को उन्हे प्रति मास ३००) रु० देने चाहिए। पत के मना करने पर एक लम्बा पत्र आया जिसमे उन्होने पत के इस छोटेपन के प्रति अपनी नैतिक प्रतिक्रिया का वर्णन किया—अनादर, अपमान, बदला लेने की भावना। उनके घर मे तब तक प्रवेश न करने की शपथ जब तक वे भी

पत के बराबर न हो जाँए। "बेवकूफ है" कह कर पत ने न पत्र का उत्तर दिया, न उनसे ही कुछ कहा और परिणाम अच्छा ही हुआ। युवावस्था को पार कर प्रौढावस्था मे पहुँचने तक वह स्वय ही सयत हो गए। किंतु एकाध रिश्तेदारो के धमकी भरे पत्र पत के पास आते ही रहते है। माँगी हुई राशि न देने पर उन्हे शिव के कोप, श्राप, उनके काले कारनामो को समाचार पत्रो मे छपवाने की धमकी · और भी न जाने कैसी-कैसी बाते। पत इन पत्रो, धमकियो, गालियो, के प्रति नि'सग होकर जितना उचित समझते है उतने का मनिऑर्डर कर देते है और अवसर मिलने पर उनसे स्नेह से मिलते है। कभी कोई टोकता है, कि आप कैसे शात भाव से मिल लेते है, कम से कम डाँटना तो चाहिए कि ऐसे पत्र क्यो भेजते हो तो वे अनुभवी हँसी हँस देते है "बच्चा है, अक्ल होती तो ऐसा कहता।"

सन् '५०-'५१ के जाडो मे पत ने एक बिल्ली का बच्चा पाला। जानवर उन्हे प्रिय है, इसमे सदेह नही। किंतु इस एक माह के बिल्ला मे तो उनके प्राण ही बस गए। साधारणत वह लिखते समय किसी प्रकार का विघ्न पसद नही करते, केवल अपनी ही चेतना का विस्तार। पर अब बिना इस बिल्ली को अपनी चारपाई या तख्त पर सुलाए वह लिख ही नही पाते। दिन भर बिल्ला को पकड कर पास सुला रखते-ठण्डा है, कही निमोनिया न हो जाए। उसकी सब प्रकार की सफाई भी वे स्वय करते। जितने भी गुण पृथ्वी पर सभव है उन्होने उसमे वे देख डाले। उसकी दुनिया उनकी दुनिया हो गई—उसके साथ गेंद खेलते, हँसते। इस बिल्ला के लिए एक छोटा सा बिछौना बनाया गया-रात को उसे उस बिछौने मे अच्छी तरह ओढा कर सुला देते। किंतु परेशानी तब हुई जब पत अपने बाहर के कमरे से दो कमरे पार कर बिल्ले को देखने के लिए रात को ३-४ बार उठ कर आते। पहिले समझ मे ही नही आया कि रात को उन्हे किस चीज की आवश्यकता पडती है। सबेरे उन्होने बताया कि एक बार उन्हे बिल्ला की 'म्याँऊँ' सुनाई दी, दुबारा, उन्हे ध्यान आया कि वह जाडे मे काँप तो नही रहा होगा, ठीक से ओढे है या नही, और तिबारा, कही उसे भूख लग गई हो। जब चार-पाँच दिन तक पत का रात्रि को यही हाल रहा तो उनके ऑफिस मे गए वह बिल्ला पडौसी को दे दिया। डर लगा इस प्रकार जग कर उनकी तबियत खराब न हो जाय फिर बुरा भी लगा जब वे दिनो तक बिल्ला को भूल नही पाए, रात को नीद मे और दिन मे काम करते समय उसकी 'म्याऊँ' उन्हे विह्वल कर देती।

१६५० मे प्रयाग के प्रतिभाशाली नव युवक लेखको को प्रयोगवादी सस्था 'परिमल' ने पत को मोहा, अपने जाग्रत क्रियाशील अस्तित्व के कारण। जब सस्था के सदस्यो ने पत से इसका सदस्य बनने के लिए कहा तो वे सहर्ष बन गए। परीक्ष रूप से जिस बात ने पत को सर्वाधिक प्रेरित किया वह था 'परिमल' का रगमच का कार्यक्रम। इन्ही दिनो 'परिमल' की एक गोष्ठी (१६५० के वर्षांत) मे पृथ्वीराज कपूर को मुख्य अतिथि के रूप मे आमन्त्रित किया गया। श्री हरदेव बाहरी की अध्यक्षता मे एक विचार-गोष्ठी हुई। जिसमे अन्य लोगो के साथ पत ने भी भाग लिया। २३ फरवरी १६५२ को 'परिमल पर्व' मनाया गया जिसमे स्वागताध्यक्ष का भाषण पत ने पढा था। इस अवसर पर श्री गुलेरी जी की कहानी 'उसने कहा था' के नाटकीय रूपातर का सफल मचन हुआ। 'उसने कहा था' के रिहर्सल्स देखने मे तो पत ने रुचि ली ही, सदैव वहाँ से आ कर सदस्यो की लगन, उत्साह तथा कर्मनिष्ठता की भी प्रशसा करते।[1]

सन् '५१ मे बच्चन जी ने अपने काव्य सकलन 'सोपान' की पाडुलिपि तैयार की और उसके साथ ही उन्होने पत से उसकी भूमिका लिखने का आग्रह किया। इसके अतिरिक्त पत के पास भूमिका लिखने के लिए कु० सोमेश्वर सिंह जी की कविताओ का सग्रह भी आया हुआ था। पत ने सोचा कि ये दोनो भूमिकाएँ अल्मोडा मे लिखेंगे किंतु विधना ने कुछ ऐसा मज़ाक किया कि दोनो ही पाण्डुलिपियाँ इलाहाबाद ही रह गईं। उन्होने अपने कुछ कपडे, एक जोडी चप्पल तथा ये दोनो पाडुलिपियाँ मुझे रखने के लिए दी थी पर एक घण्टा पहिले स्टेशन पहुँचने की अपनी आदत के अनुसार इतनी जल्दी मचा दी कि इन सामानो के साथ ही मैं कुछ अपना भी आवश्यक सामान भूल गई। मेरी आदत है चलने के आधा घण्टे पहिले सामान बाँधने

---

१. **"चद्रधर शर्मा गुलेरी की⋯ ⋯अमर कहानी का नाटकीकरण अच्छी सूझ थी। रघुवंश, गोपीकृष्ण गोपेश, धर्मवीर भारती और विजयदेव नारायण साही ने उसमें अभिनय किया। अभिनय बहुत सफल रहा⋯ ।**
"उसने कहा था' का निर्देशन सुमित्रानंदन पंत ने किया था, लक्ष्मीनारायण लाल ने मंच की व्यवस्था की थी, छायानाट्य तथा ध्वनि व्यवस्था केशव चद्र वर्मा के जिम्मे थी, और पार्श्वसंगीत श्याम वर्मा ने दिया था।
प्रतीक : संपादक, स० ही० वात्स्यायन, वर्ष ४ : संख्या ३, मार्च, १६५२, पृष्ठ १२ नवीन प्रेस, दिल्ली में मुद्रित, और 'प्रतीक' '१४, डी० फिरोजशाह रोड, नयी दिल्ली के लिए बलवन्त सहगल द्वारा प्रकाशित।

की और पत की आदत है एक सप्ताह पहिले से सामान ठीक कर लेने की, ताकि यदि तीन बजे की गाडी पकडनी हो तो एक बजे ही घर से निकल जाएँ। जब अल्मोडा पहुँचने पर पाडुलिपियाँ भूल जाने की बात पत ने बच्चन जी के लिए लिखी तो पत के सदश मे उनका अनुज अपने लक्ष्मण रूप क्रोध को सभाल नही पाया। उनका लौटती डाक से पत के लिए पत्र आया जिसका पता भी आक्रोश मे भर कर लिखा गया था—महाकवि श्री सुमित्रानदन पत सुपरवाइजर हिंदी प्रोग्राम्स्, ऑल इडिया रेडियो—कृष्णकुज, रानीधारा, आल्मोडा। और अदर था, "प्रिय सैदा मै एक बडा भारी मोह अपने मन मे पाले हुए था कि आप मेरी पुस्तक की भूमिका लिखें तो बहुत अच्छा होगा। परन्तु आपके पत्र से मैंने अपना निश्चय बदल दिया। आपसे मै भूमिका नही लिखाऊँगा आज तक मेरी पुस्तको के ५२ सस्करण निकल चुके।

दो लाख से ऊपर प्रतियाँ इनकी छप कर जनता के अदर पहुँच चुकी हैं। तब मै अपने से पूछता हूँ हे मूर्ख तुझे इस बात का प्रलोभन क्यो हुआ कि श्री सुमित्रानदन पत तेरी कविता की भूमिका लिख दे। यदि तेरी कविता मे अपने पैरो खडा होने का दम नही तो भगवान् भी अगर तेरी भूमिका लिख दे तो जनता उसको स्वीकार नही करेगी। परन्तु अब आपको अपनी प्रेरणा से काम करने की आवश्यकता नही रह गई। अब तो रेडियो जो काम आपसे कराना चाहता है वही आप करते है। यह तो भगवान् की कोई कृपा थी कि जब आपकी अतः प्रेरणा शिथिल हो रही थी तब उसने आपकी गर्दन पर एक जुआ डाल दिया कि बच्चू अब तो खीचोगे। और जो आप खीच-खाच मे लिखते है वह भी सुदर है और साहित्य की स्थायी सपत्ति है। भगवान् जो करता है अच्छा ही करता है। आपके लिए कोई काम कभी स्वार्थवश न किया है, न करूँगा। मकान ठीक कर दूँगा (७-६-'५१)।"

पत के जीवन मे कभी कुछ छिपा-ढका न रहा। उनकी चिट्ठियाँ परिवार की चिट्ठियाँ है, घर मे जो भी चिट्ठी आती है सभी पढते है। जब मामा-मामी, ममेरे भाई-बहिनो ने पत्र पढ़ा तो उन्हे क्रोध ही आया विशेषकर यह पढ कर कि 'खीच-खाँच मे लिखते है।' भूल किससे नही होती, और यह भूल तो पत से नही हुई थी, शाता से हुई थी, फिर यदि पन्द्रह दिन देर से भूमिका मिलती तो कौन-सा आसमान फट पडता। अबोध भाइयो का क्रोध समझ मे आता है किंतु '। पर यह सब बाते लोगो के ओठो तक ही आईं या अदर के कमरे मे गुपचुप रूप मे हुई, कोई खुल कर कह न सका क्योकि पत को अनुज के पत्र

मे प्रेम की फटकार ही दीखी, वह उनके स्नेह के बारे मे अधिक आश्वस्त हो गए, भर्राए गले से कहा, "बेचारा बडा दुखी हो गया।" तत्काल पत्र का उत्तर दिया, "उसे समझा देता हूँ। वह बहुत भाव प्रवण है, एकदम बुरा लग जाता है।" पत का कहना सच ही था। इलाहाबाद मे दोनो खूब प्रेम से मिले, एक दूसरे की हँसी उडाते हुए अधिक निकट हो गए। फिर अदाज आया छोटे भाई को जब-जब स्नेह-आश्वासन की आवश्यकता होती है वह ऐसे ही उपाय अपनाता है।

सन् '५१ मे मानव जी ने अपनी पुस्तक 'सुमित्रानदन पत' के लिए पत की 'भेट-वार्ता' ली। पत चाहते थे कि 'भेट-वार्ता' प्रकाशित करने के पूर्व वे उन्हे दिखा ले। मानव जी को इसमे कोई आपत्ति नही दीखी। गर्मियो मे पत पहाड चले गए। पुस्तक निकालने की जल्दी के कारण मानव जी 'भेंट-वार्ता' की हस्तलिखित या टकित प्रतिलिपि पत को नही दिखा पाए। जब पुस्तक मे प्रकाशित 'भेट-वार्ता' पत ने पढी तो उन्हे बुरा लगा। उनके वाक्यो को भिन्न रूप से प्रस्तुत किया देख उन्होने कहा कि कोई स्वय कुछ भी मेरे लिए कह ले नगण्य है किंतु मेरे मुँह से कहलवाना मुझे अनुचित ही लगता है। मानव जी का तर्क था कि पाश्चात्य लेखको के लिए लोग बहुत कुछ लिख देते है। पत का कहना था कि आलोचक का अपनी ओर से लिखना और लेखक के मुँह से कहलवाना दो भिन्न बातें है। फिर मानव जी ने दूसरे सस्करण मे इस 'भेंट-वार्ता' का सशोधन कर लिया। मानव जी से पत का वैसा ही सम्बन्ध बना हुआ है विशेषकर इसलिए भी कि वे आकाशवाणी मे पत के सहायक रह चुके हैं और इलाहाबाद मे ही रहते है। साल मे ऐसे कई अवसर आते हैं जब वे घर आ जाते हैं या कही और भेट हो जाती है। बडे होने के कारण पत को मानव जी का खयाल रहता है। जब मानव जी ने आकाशवाणी से त्याग पत्र दिया तो उन्हे बुरा लगा, विशेषकर इसलिए कि उनके ऊपर परिवार का दायित्व है। उन्हे बुलाकर उन्होने भरसक समझाया भी। और भी ऐसे अवसर आए हैं जब मानव जी के चाहने अथवा न चाहने पर भी उन्होने उनमे रूचि ली है क्योकि उनके अनुसार मानव जी आयु मे उनसे छोटे हैं और वे उन्हे अच्छा मानते है।

सामान्यत यदि कोई पत के नाम से कुछ ऐसा कह या लिख देता है जिससे उसका भला हो सकता है तथा जो उनकी मूलगत मान्यताओ—विशेषकर साहित्य और जीवन सबधी—के विपरीत नही है तो उनका मन आपत्ति नही करता है। "इसमे मेरा कुछ बिगडता नही है और उस बेचारे का भला हो जाएगा।" या यह कह कर सतोष कर लेते है, "ऐसा ही आदमी है।"

"बेवकूफ है ।" "बच्चा है," "परिस्थिति ने बाधित किया होगा ।" "भावना-वश किया होगा । सोचा होगा मेरा काम बन जाएगा ।" २६ अगस्त, '५३ को भारत भूषण अग्रवाल और ओकार श्रीवास्तव ने आकर कहा, "पत जी आपने कल्पना देखी ? उसमे आपके नाम से एक विज्ञप्ति है ।" विज्ञप्ति का आशय था—महाकाव्य मैंने पढा है । दुःख है इतने महान् काव्य को किसी प्रकाशक ने अभी तक प्रकाशित नही किया है । यदि कोई प्रकाशक प्रकाशित करना चाहे तो निम्नलिखित पते से पत्र व्यवहार करे—सुमित्रानदन पत, दारागज, इलाहाबाद । यह सब सुनकर पत हँसे, "अरे इन बातो मे क्या धरा है । दुनिया मे सबको अधिकार है कि पत के नाम से जो चाहे जोड दे, लिख दे । मित्रो-साहित्यिको के बहुत कहने पर कि ऐसी बातो को साहित्य मे प्रश्रय नही देना चाहिए उन्होने उनका मन रखने के लिए उस समय कह दिया, "अवश्य, अवश्य, खण्डन कर दूँगा ।" किंतु मुझसे कहा, "जिसने मुझे अपना ही समझ कर मेरे नाम से यह दे दिया है उसे आहत करके मुझे क्या मिलेगा ? और प्रकाशक ! वे बेवकूफ नही होते, सब समझ लेगे । मुझे कहना ही होता तो किसी प्रकाशक से कहता न कि पत्र मे छपवाता ।" इसी सदर्भ मे याद आता है कि सन '४० मे जब पत इलाहाबाद मे थे तो एक अच्छे साहित्यिक ने अपने सग्रह की भूमिका लिखने के लिए उनसे कहा । उन्होने भूमिका लिख तो दी किंतु साथ ही प्रूफ दिखाने का भी आग्रह किया क्योकि उनकी हस्त-लिपि पढना लोगो के लिए कठिन ही होता है । वह सज्जन आज-कल करते रहे कि गर्मी आ गई । पत अल्मोडा चले गए । वहाँ पहुँचे ही थे कि उन सज्जन का पत्र आ गया—"जल्दी के कारण आपको प्रूफ नही दिखा सका । भूमिका छोटी थी । मैंने अपनी ओर से उसमे दो पृष्ठ जोड दिए है । क्षमा कीजिएगा ।" पत के लिए उन सज्जन का सूचना देना ही पर्याप्त था, उस पर क्षमा याचना, वे कृतज्ञता से भर गए । किंतु कभी ऐसी बातें खलती भी है । अनेक इन्टरव्यू लेने वाले आते है और पत के मुँह से अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत कर देते है—व्यक्तिगत, साहित्यिक, सैद्धातिक तथा भाषा सबधी । यहाँ तक कि कुछ ऐसे भौडे शब्दो का प्रयोग कर देते है जिनका प्रयोग तो दूर पत सभवत जिनसे परिचित भी नही है । इसलिए 'भेंट-वार्ता' देनी उन्हे बुरी लगती है । कहते है अपने मुँह से जो चाहे कह ले, मुझे गाली भी दे लें, पर मेरे मुँह से तो न कहलाएँ ! ऐसी बातो से वे खिन्न हो उठते है । "कभी यह सब लिखूँगा ।" किंतु 'इन्टरव्यू' लेने जो उनके कमरे मे आता है वह ले ही लेता है । ऐसे भी आते है जिन्हे न भाषा आती है, न भाव एव न विचारधारा ही

मे पैठ है। उनके साथ २-३ घण्टा दिमाग खपा कर वे चारपाई मे लेट जाते हैं, "यही तो मेरी विवशता है। मना नही कर पाता। अरे वह बिल्कुल मूर्ख है। दो-तीन दिन और आया तो," वे दोनो हाथो से सिर पकडते हुए कहते हैं "भगवान् ही रक्षक है।"

पहाड से वापिस आए ही थे कि मकान मालकिन ने एक ऊलजलूल नौकर भिडा दिया। मानवजी को उस नौकर से बहुत आपत्ति थी। अक्सर कहते, "इसे क्यो रखा है ?" पत का अपना तर्क था, "सब समान है। किसी को छोटा या हास्यास्पद मानना गलत है।" और इसके साथ ही पडोसिन के बुरा मानने की बात तथा अवचेतन मे 'बिस्ना के भूत' का भय। वह नौकर काम के नाम पर मात्र अपनी आवश्यकताओ की बात करता। लगभग नित्य ही पाव भर दूध, आधा पाव चावल और छटाक भर घी माँगता, किसी दिन उर्द की दाल और गुड माँगता, या फिर चार आना, छह आना माँगता। यह सब वह भूत पूजने या सियारो को खीर खिलाने के नाम पर माँगता। पत उसके कहने के साथ ही एकदम दिलवा देते। एकाध बार आपत्ति की तो कहने लगे, "चुप रहो, भूत पूजता है, न जाने क्या करे," "मुझे रात को एकाएक लगा कि वह चुडैलो को खाना खिलाता है।" "काम नही करता है तो कोई बात नही। इसे निकाला कैसे जा सकता है ? कही नाराज हो गया तो ?" किंतु डेढ-दो माह बाद भूतराम ने स्वय हम पर दया कर दी। वह हमारी नौकरी छोड़ कर फिर मकान मालिकन की सेवा मे चले गए।

योग्य नौकर की खोज मे पत थे, किसी ने सुझाया, 'इम्प्लोयमेट एक्सचेंज' के लिए लिखिए। वहाँ एक-एक से कुशल खानसामो के आवेदन पत्र रहते है। एक दिन दस बजे सबेरे के लगभग ४५-५० वर्ष का एक आदमी मटरू आया, उसने मिलिट्री अदा से पूछा, "सा'ब, आप लोग घर मे कितने लोग है।" और सा'ब विनम्र होकर कह रहे थे, "दो है। बीबी जी तो युनिवर्सिटी चली जाती हैं। हम अपने काम मे लगे रहते है। सारा काम छुटा रहता है।" मटरू ने नवाबी गभीरता से सिर हिलाया, "ठीक है सा'ब हम काम करेगा। आपके यहाँ हमारा गुजारा हो जाएगा। हम सब जगह काम नही कर सकना। न जाने कितनो घरो की नौकरी हमने दो-दो, तीन-तीन दिन काम करके छोड दी।" सा'ब बड खुश हुए, उसकी पीठ ठोकते हुए बोले, "तुम्हे हम अधिक से अधिक आराम देने की कोशिश करेगे, खुश रखेंगे। बस तुम ठीक से खाना बना देना। खाना भी क्या बनाना है। हम तो बहुत सादा खाना खाते हैं। तुम्हें हमारे

यहाँ कोई परेशानी नही होगी । हम तो अपना सब काम खुद कर लेते हैं ।" प्रसन्नता मे मग्न होते हुए अदर आए, "बडा अच्छा नौकर मिल गया है । खुद कहता है हम आपके यहाँ काम कर देगे, सब जगह नही कर सकते । मुझे भी उसको देख कर अच्छा लगा । असल चीज मानसिक साम्य है । काम चाहे ठीक से करे या न करे कोई बात नही । पर एक बात है मनुष्योचित व्यवहार उसके साथ अवश्य करना । "और इस 'मनुष्योचित व्यवहार' का प्रारभ पत की ओर से ही हुआ । शाम को मटरू मुँह लटकाए आए "सा'ब आज हम खाना नही खाएँगे । बडे दु ख मे हैं । सबेरे भी नही खाया, सब कुत्ते को दे दिया ।" सा'ब ने आग्रह किया उसकी पीठ पर हाथ रखा, "कुछ तो बताओ, तुम्हारा दु ख हमसे दूर हो सकेगा तो हम अवश्य कोशिश करेंगे ।" मटरू ने सिर खुजाते हुए कहा, हमारी जोरू कहती है नाक की नथ दो तो साथ रहेगे । सा'ब जोरू तो हमारी बहुत अच्छी है पर हमारी तकदीर खोटी है। वह अमीर घर की बेटी है जेवर-कपडे की शौकीन है और हमारे पास पैसा है नही । बात यह है हम पैसे की परवाह नही करते । डेढ-डेढ सौ की नौकरी पर लात मार देते है ।" उसने खीस निपोर कर कहा, "बस आपके हाथ मे हमारी इज्जत है । अस्सी रुपया पेशगी दे दे । हम तो जिन्दगी भर यही पडे रहेगे, बुढौती आ गई है, अब और कहाँ जाएँ ।" रात को रुपया लेकर जो वह गया तीसरे दिन ही वापिस आया, मुँह लटकाता हुआ, रोगी शक्ल लिए, "क्या करें सा'ब जोरू की खुशामद ही करते रहे न वह आई, न हमे आने दिया । अब हमने उससे कह दिया है—हरामजादी हम तुम्हारा मुँह नही देखेगे ।" वह सिर थाम कर बैठ गया, "लगता है आपको बडी दिक्कत उठानी पडी होगी । बस सा'ब आज माफ कर दें । अब काम मे ढिलाई नही होगी ।" पत ने जल्दी से बिजली की केतली मे पानी खौला कर चाय बनाई और उसे चाय का प्याला पकडाते हुए दो-चार बिस्कुट तथा केले दिए, "आज तुम दु खी हो, सो रहो । कल से ठीक से काम करना ।" दस-बीस दिन मटरू ने खूब अच्छा काम किया । उसके बाद 'मारवाडी स्टोर्स' के पास उसे चेक देकर भेजा, ५-६ रुपये भी तरकारी फल लाने के लिए दिए । जब पहिले दिन दस बजे का गया वह दूसरे दिन रात तक नही आया तो तीसरे दिन मारवाडी स्टोर से चेक के बारे में पूछा, पता चला वह चेक दे गया है । शाम को ५-६ बजे मटरू घर पहुँचे, माथे पर अगोछा बाँधे, दाढी बढी तथा मुँह से स्पिरिट की बदबू "सा'ब लू लग गई । खडा ही नही हो पा रहा हूँ ।" वह अपनी कोठरी मे चला गया । सबेरे महरी ने बताया कि मटरू आज भी काम नही करेंगे क्योकि उसका कहना है कि उसे बुखार है । मनुष्योचित व्यव-

हार के नाम पर युनिवर्सिटी से 'इन्विजिलेशन' के बाद घर पहुँचते ही साबूदाना बनाया, बारह बजे की लू की उपेक्षा कर पत उसे साबूदाना उसकी कोठरी, जो थोडी दूर पर थी, मे देने गए पर वहाँ ताला लगा हुआ था। शाम को भी वही हाल था, दूसरे-तीसरे दिन भी। जब चौथे दिन वह मुझे दीखा तो उसने पूछने पर उत्तर दिया, "हम तगी मे है। साठ रुपया पेशगी दे दें तो काम करेंगे नही तो अपनी चाभी (रसोई घर के ताले की) ले ले। मेरे पेशगी देना मना करने पर उसने चाभी मेरे पैर के पास फेंकी और चला गया। मुझे उसका यह व्यवहार बहुत बुरा लगा। पत अपने कमरे मे थे, उनके पास दौडी-दौडी गई। सुनकर कहने लगे, "तुमने उसे ठीक से समझाया नही। मै उसे समझाता हूँ। बेचारा बडा दु खी है। तुमने उसे व्यर्थ मे आहत कर दिया। नही देना था तो किसी और ढग से उसे समझा देती।" और मेरे बुरा मानने पर भी वे मई की एक बजे दिन की गर्मी मे उसके कमरे मे पहुँचे, "तुम्हे हमसे कहना चाहिए था। बीबीजी से क्या मतलब ? तुम्हे पैसे नही देने का अफसोस है। लो यह चाय पी लेना।" उन्होने दो रुपये उसकी जेब मे डाल दिए। वहाँ के सागरपेशे मे चौदह-पन्द्रह लोग रहते थे। सभी यह देख कर आश्चर्य मे पड गए किन्तु पत का दिनो तक कहना था, "मुझे आदमी की पहिचान है। वह आदमी भला था।"

श्री अम्बालाल पुराणी (अरविंद आश्रम) का पत के लिए पत्र आया कि वे एक दिन के लिए इलाहाबाद आ रहे है। पत को बहुत अच्छा लगा—आश्रम की ढेरो बाते जानने एव पुराणीजी का स्नेह प्राप्त करने का अवसर मिल रहा था। अब एक ही चिंता थी—उन्हे किसी प्रकार का कष्ट न हो। घर की व्यवस्था की ओर ध्यान दिया। छुरी-काँटा का अभाव खटका, एक बढिया टी-सेट का भी। साथ ही मेवे, मिठाई, केक, पेस्ट्री मँगवाना भी अभ्यागत के स्वागत के लिए आवश्यक लगा। तत्काल निकट की दुकान मे गए। दुकानदार की दुकान बिलकुल ही भिन्न चीजो की थी। लेकिन उसने पत की कठिनाई सुन छुरी, काँटा, टी सेट तथा मेवे मँगवा देने का आश्वासन दिया। जब तक दूसरे दिन वह सामान नही आया पत बेचैन ही रहे। कितना ही कहा कि मैं और बद्रीदत्त सिविल लाईन्स से ला देते है। पर उन्हे हम लोगो की योग्यता पर विश्वास हो तब न ! "दुकानदार से अच्छी खरीददारी तुम लोग कर नही सकते। मैंने सोच-समझकर ही उससे खरीद लाने के लिए कहा है।" फिर वे दुकानदार की सज्जनता के अद्वितीय गुण का वर्णन करने लगे। खैर मेवे, छुरी, काँटा, टी-सेट आया। पत ने वह सब देखा, "इस समय काम चल जाएगा। क्या किया जाए जो मिल जाता है उसी से सतोष करना पडता है। मेरे पास

समय कहाँ है जो बाजार जाता ।" इन सब का दाम भी अच्छा था। मेवे का दाम इस वर्ष (सन् सत्तर) के दाम के बराबर था, छुरी, काँटा, टी सेट के दामो मे ध्यान न दिया जाय वही अच्छा है । पत खुश ही थे, "कितना मन मे बोझ था । सामान आ गया है, अब निश्चित हो सका हूँ ।" पर निश्चित वे नही ही हो सके । दो-तीन दिन, जब पुराणी जी नही पहुँचे, मेरी और बद्रीदत्त की आफत हो आई, स्वय उनकी भी—खाने का 'मेनू' बना, उनने मिलने आने वालों को चाय के समय देने की चीजो की लिस्ट, घर की सफाई मैं और बद्रीदत्त पत की डांट खाते रहते और उनकी अनुपस्थिति मे हँसते भी—एक दिन के लिए पुराणजी आ रहे है, अकेले ! लग रहा है एक सौ बराती आ रहे है । आश्रम के साधक और केक, पेस्ट्री ! गर्मी के दिनो मे दो दर्जन पेस्ट्री और एक बडा-सा केक ! खैर पुराणजी के आने पर सब कुछ सहज हो गया। भोजन को स्वास्थ्य, जीवन और साधना की दृष्टि से स्वीकार करने वाले पुराणी जी ने अपना नियमित ही भोजन किया—ऑमलेट, केक, पेस्ट्री, मिठाई एव मेवे अछूते ही पडे रहे । छुरी-काँटे अभी तक है, केक-पेस्ट्री फेंके या बाँटे याद नही । अडो और मिठाइयो का भी ऐसा ही भाग्य रहा होगा, क्योकि असह्य गर्मी और बिना फ्रिज के घर का सामान ! उसके बाद हेमिल्टन रोड के घर मे एक बार पुराणीजी दो-तीन दिन के लिए और आए । किंतु उस बीच पत दिल्ली मे थे । मेरा और बद्रीदत्त का घर मे राज्य था अथवा पितृतुल्य पुराणीजी के आदेशानुसार ही हम लोगो ने घर का काम किया । काम क्या ? नित्य का काम भी उन्होने कम करा दिया । बद्रीदत्त खुश होकर बार-बार कहता, "मामा दिल्ली है । डाँट से बच गए ।"

हेमिल्टन रोड के घर मे कई असुविधाएँ थी । मुख्यत: पानी और धूप की । वहाँ पत सर्दी और बुखार से अधिकतर ग्रस्त ही रहे । बेहद परिश्रम से मिले इस घर को बुरा या अस्वास्थ्यप्रद कहना भी उन्हे प्रिय नही था । दोष अपने फेफडो को बतलाते या दांतो के कारण प्राप्त दुर्बलता का । एक बार रेलवे के एक प्रसिद्ध बडे डॉक्टर ने घर का निरीक्षण करते हुए कहा, "तत्काल घर बदलिए । इस घर मे धूप ही नही आती । सूर्यहीन घर रोग का घर है ।" बात ठीक भी थी । कमरो की तो बात ही व्यर्थ, धूप बरामदे तक मे नही आती थी । अत. बात पत को जँच भी गई अन्यथा डॉक्टर से कहते, "आप ठीक कहते हैं, घर अवश्य बदलूँगा" और उसके जाते ही कहते, "मूर्ख है ! आजकल घर मिलना कितना कठिन है । यह घर क्या बुरा है ? मेरे फेफडे ही कमजोर हैं । घर क्या कर सकता है ।"

पत ने घर बदलने का निर्णय ले लिया। पर घर खोजना पहिले की ही भाँति निरुद्देश्य जगल मे भटकना था। जिले की सुरक्षा और सुव्यवस्था का भार सरकारी अफसरो के कधो पर था अत· वे ही अच्छे घरो मे रहने के अधिकारी थे। पर पत का निश्चय तो निश्चय ही है। घर बदलना लक्ष्य था, चाहे झूँसी या रसूलाबाद मे ही घर मिले। कलम किनारे रख कर उन्होने कहा "बहुत चिंतित हूँ। जब तक घर नही मिलता कुछ काम नही कर पाऊँगा।" कुछ निराशा के स्वर मे बोले, "इस घर के मिलने मे तीन साल लगे। अब न जाने कितनी झझट उठानी पडती है।"

सन् '५१ की गर्मियाँ आ गई और पत पहाड चले गए। वहाँ से बच्चनजी को घर खोजने के लिए पत्र लिखते रहे। फिर जुलाई मे इलाहाबाद आ गए। तबियत सामान्य ही थी। १०० ४° बुखार था। डाक्टर राम कुमार वर्मा के आग्रह पर उनके साथ डाइमण्ड जुबली छात्रावास गए। वहाँ से आए तो बुखार १०२° हो गया था। उसके बाद दस-पन्द्रह दिन तक बहुत कष्ट झेला। पूर्णत· स्वस्थ होने मे तो दो माह लग गए। अच्छा होने के साथ ही कहा, "घर बदल कर ही चैन लूँगा।" कभी-कभी काम जितना कठिन लगता है वह उतना ही सरल हो जाता है। भाग्यवश पटल बाबू, इण्डियन प्रेस के मालिक, टैगोर टाउन मे बारह घर बनवा रहे थे। पत उनके पास गए। उन्होने पत को आश्वासन दिया कि जो घर पहिले बन जाएगा या जो भी उन्हे पसन्द आएगा उसे वह ले सकते है। अब पत का काम था—दूसरे-तीसरे दिन टैगोर टाउन जाना, घर का बनना देखना और प्रसन्न होना। घर पूरा होते ही उसमे रहने के उत्साह ने पहाड जाने मे बाधा उत्पन्न कर दी। गर्मियो मे इलाहाबाद ही रहे। केवल तीन-चार दिन के लिए मथुरा गए क्योकि स्वामी श्रीकृष्ण प्रेम को कुछ माह पूर्व मथुरा जाने का वचन दे चुके थे। श्रीकृष्ण प्रेम का कहना था कि मथुरा एव वृन्दावन अवश्य जाना चाहिए। वहाँ सर्वत्र श्रीकृष्ण का वास है, प्रत्येक पेड़ से, प्रत्येक डाल से श्रीकृष्ण आँख मिचौनी खेलते है।

● ●

११

व्यावहारिकता विचार स्वातंत्र्य और भ्रातृ बिछोह

सन् '५२ की जुलाई मे हेमिल्टन रोड का घर छोड दिया। टैगोर-टाउन के घर मे अभी थोडा-बहुत काम हो ही रहा था। नए घर मे रहने के उत्साह मे शोरगुल, खट-पट सहना बुरा नही लगा। यह घर ढाई मजिल का था। पत ने ऊपर की मजिलो के तीनो कमरे ले लिए, वही रहते, अपना काम करते। इस घर मे आए, तीन-चार दिन हुए होगे कि आनदमयी माँ ने पदार्पण किया। वे और उनके कुछ भक्त दो दिन तथा एक रात रहे। जाते समय माँ कह गई कि इस घर को मत छोडना, यह शुभ है।[1] पत को माँ का रहना सुखद और सौभाग्यशाली लगा। अल्मोडा मे माँ के सान्निध्य की स्मृतियाँ जाग्रत् हो गई—माँ से कितनी बातें करते थे, माँ के दिव्य व्यक्तित्व तथा ममतामय रूप आदि मे बडा आकर्षण था। पत माँ के प्रति सदैव ही श्रद्धानत रहे हैं। इस बार उनके रहने से पुराना आकर्षण और प्रगाढ हो गया। तब से जब भी पत को माँ के इलाहाबाद आगमन की सूचना मिलती है वे यथा सभव उनसे मिलने अवश्य जाते है, "वे हमारे यहाँ रही, मुझे उनसे मिलने जाना ही चाहिए।"

इस वर्ष गर्मियो मे इलाहाबाद ही रहे। असह्य गर्मी झेलने के साथ ही अपनी ही मानसिक उलझनो से वे अत्यधिक चिंतित हो गए। उन्हे लगा इन दोनो के कारण ही वे अस्वस्थ हो गए है—हल्का ज्वर, दुर्बलता और थकान ! पत ने तत्काल अपनी डाक्टरी भिडाई—फेफडे कमजोर हैं, उस पर गर्मी और चिंता ! डाक्टर से पूछा और उसे अपनी शका के बारे मे बताया।

---

१. किन्तु पंत का मन ! चार-पाँच माह बाद ही उन्होने वह घर छोड़ कर, उसके आगे वाला घर ले लिया।

उसने 'इलिकसर निगोडीन' तथा 'ग्ल्यूकोज' मिलाकर नारंगी का रस लेने के लिए कहा। किंतु इस उपचार से बुखार नही गया। फिर वे फेफडो को मजबूत बनाने के लिए च्यवनप्रास लेने लगे। तथा गर्मी को रोग का अप्रत्यक्ष कारण मानकर नीबू का शर्वत, पन्ना, लस्सी, पेठा आदि जब-तब लेना प्रारभ किया। किंतु दुर्बलता दूर होने के विपरीत और बढती गई। डाक्टर निश्चित कारण देने मे असमर्थ था। फिर पत को ही लगा कि यह 'मधुमेह' के लक्षण हैं। डाक्टर से कहा। उसने जाँच की और मधुमेह निकला। मधुमेह के कई कारणो के साथ एक कारण उन्हे यह भी लगा कि इस बार जाडो मे मामा मामी एव परिवार के आने पर नित्य ही चाय के साथ मिठाई और एक प्लेट पहाडी ढग से पके आलू लेते थे उसने भी इस बीमारी मे हाथ बँटाया होगा।

मधुमेह के लिए इन्सुलीन इजेक्शन्स लेने लगे। पहिले दिन इजेक्शन डाक्टर ने दिया और दूसरे दिन से स्वय ही लेने लगे। भयभीत या दुखी होना अथवा रोग को छिपाना पत ने नही सीखा है। बीमारी लग गई तो उसका उचित उपचार कर लेना चाहिए। उससे मुक्त होने के लिए वे कटिबद्ध हो गए। जितना अधिक रोग उन्हे घेरते है वे उतना ही उनसे मुक्त होना एव स्वस्थ रहना चाहते है। डेढ साल पूर्व गोश्त खाना छोड दिया था किंतु विधाता उनकी जीभ की दुर्बलता को भाँप गया। अब ऐसा रोग उन्हे दे दिया जिसमे गोश्त खाना आवश्यक माना जाता है। गोश्त अब पत के भोजन का अभिन्न अग है। घर मे दो अक्टूबर, गाधी पुण्य तिथि, के अतिरिक्त सभी दिन गोश्त बनता है। कभी ऐसा भी होता है कि ५/१० दिन के लिए कोई साधु-सत आ जाता है। तब वे स्वय ही गोश्त बनाने के लिए मना कर देते हैं अन्यथा बिना गोश्त के सबेरे का भोजन उन्हे स्वादहीन और अपर्याप्त लगता है। यह भी सच है कि गोश्त लेने पर छोटी दो रोटियो से काम चल जाता है क्योकि अनाज अधिक लेना मधुमेह मे हानिप्रद है।

अप्रेल-मई सन् '५४ की बात है एक गोश्त वाले ने कहा कि वह घर पर आकर गोश्त दे जाया करेगा। एक सप्ताह तक तो उसने ठीक से दिया फिर नागा बहुत करने लगा, गोश्त भी अक्सर बुरा देता था, भूनते ही काला हो जाता था। उससे कहो कि कल से गोश्त नही लेंगे तो माफी मागने लगता था। अधिकतर इतवार के दिन नही आता था। पंत से कहा लेकिन उन्होने उसी का पक्ष ले दिया, "क्या करे बेचारा, इतवार के दिन बहुत माग रहती

होगी। लोग बहुत सबेरे पहुँच जाते होगे। गोश्त बचता नही होगा इसलिए नही लाता है।" "तो कह दे इतवार को नही दूँगा। पर अन्य दिनो जो नागा करता है तथा बुरा गोश्त लाता है वह! कितनी दिक्कत मुझे होती है—युनिवर्सिटी जाते समय जल्दी से कुछ और व्यवस्था करो।" मेरा तत्काल उत्तर था। किंतु उससे भी जल्दी पत ने स्पष्टीकरण दे दिया, "बात यह है कि यह गोश्तवाला बडा गरीब लगता है। इकट्ठे पैसे नही रहते होगे इसलिए सस्ता खरीदना पडता होगा। जिस दिन यह पैसे नही जुटा पाता या बोली बोली जाने पर कोई और अधिक बोली बोल देता होगा उस दिन वह खरीद नही पाता होगा।" एक दिन अत्यधिक खिन्न होकर कहा, "गोश्त वाला नही आता है तो परेशानी मुझे होती है। देखो आज नहीं आया। अब क्या होगा ? तुम क्या खाओगे ? कल से मैं दूसरी व्यवस्था करती हूँ।" एकदम कुछ याद करते हुए वे प्रसन्न हो गए, "आज शुक्रवार है। लगता है यह शिया है। बेचारा बडा भला है। कहता नही है कि मैं शिया हूँ।" उन्होने सिर हिलाया, "शुक्रवार को ही यह नही आता।" शिया लोग शुक्रवार को हलाल नही करते हैं—और उन्होने मुसलमानो की प्रशसा प्रारभ कर दी। मजहब के बडे पक्के होते हैं, रोजे मे एक माह तक एक बार ही खाना खाते हैं आदि।

'मधुमेह' पर जितनी पुस्तके प्राप्त कर सकते थे वे सब पढ़ डाली। फिर भी सतोष नही हुआ, जो आता उससे इसकी चर्चा करते ताकि वह भी, यदि कुछ जानता हो, इसके बारे कुछ बताए। मिलने वाले के कुर्सी पर बैठते ही कहते, "क्या बताऊँ मधुमेह हो गया है।" ऐसे ही एक बार कहने पर किसी सज्जन ने उन्हे बताया कि वसतकुसुमाकर का नियमित सेवन करने से मधुमेह शीघ्र अच्छा हो जाता है। पत के सम्मुख समस्या थी कि अच्छा वसतकुसुमाकर कहाँ से प्राप्त हो सकता है। उन सज्जन ने बतलाया कि भारत मे एक-एक से अच्छे औषधालय है। उनका व्यक्तिगत अनुभव था कि गुरुकुल का वसन्तकुसुमाकर सर्वश्रेष्ठ है। वे सज्जन तो सलाह देकर अपने घर रवाना हुए और हम रिक्शा पर सवार होकर चौक गए। जौन्सटनगज मे लगभग चार-पाँच औषधालय पास-पास हैं। पहिले हम बताई हुई दुकान मे गए। दुकान मे प्रवेश करने के साथ ही उन्होने पूछा, "आपके पास वसतकुसुमाकर है ?" 'जी हाँ,' दुकानदार का सक्षिप्त उत्तर था। "मैंने आपके यहाँ के वसतकुसुमाकर की बहुत प्रशसा सुनी है। मेरे एक मित्र आपके औषधालय के बडे प्रशसक हैं। आप भी क्या सोचते हैं कि आपके यहाँ का वसतकुसुमाकर

सर्वोत्तम है ?"—पत का प्रश्न था। "जी हाँ, इसमे क्या सदेह है ? हमारी दवा बडी अच्छी होती है।"—दुकानदार ने कहा। "क्या आप सोचते है कि मुझे आपके यहाँ का वसतकुसुमाकर खरीद लेना चाहिए, लाभप्रद होगा ? बात यह है मुझे मधुमेह हो गया है।" दूकानदार हँस दिया, "अवश्य खरीदिए। उसकी तो एकमात्र दवा यही है।" "अच्छा तो मुझे आधा तोला दे दीजिए और साथ ही चद्रप्रभाबटी भी। इसके सेवन की क्या विधि है ?" दूकानदार उत्तर देता न देता कि पत ने कहा, "दूध के साथ सेवन करूँ ?" दूकानदार ने प्रसन्न मुद्रा मे सिर हिला कर गुरुकुल की औषधियो का सूचीपत्र पकडा दिया। दूकानदार की इस सहृदयता के प्रति गद्‌गद होकर उन्होने उसे बहुत धन्यवाद दिया और बाहर आकर हम रिक्शा मे बैठ घर की ओर चले।

पत का बाईं ओर ध्यान गया तो झडू की एजेन्सी दीखी। बोले, "यहाँ उतर कर भी देख लूँ। भलीभाँति निरीक्षण करके सामान लेना चाहिए" और वे तेजी से दुकान मे घुस गए। वहाँ पहुँचकर उन्होने पूर्ववत् प्रश्न ज्यो के त्यो दुहरा दिए। उसने भी पहिले दूकानदार की बातो को रेकॉर्ड की तरह दुहरा दिया। पत ने इस दूकान से भी चन्द्रप्रभाबटी और वसतकुसुमाकर लिया। वह दूकानदार को धन्यवाद दे ही रहे थे कि उसने अपना सूचीपत्र पकडा दिया। अब क्या था, पत के हर्ष का पारावार न था। सूचीपत्र को उसी समय उलट-पुलट कर देखा—साश्चर्य प्रसन्नता से बोले, "इतनी सारी दवाएँ! बडा अच्छा है। मुझे दवाइयो की आवश्यकता पडती रहती है। अब आपकी ही दुकान से लूँगा।" उन्होने क्षमाप्रार्थी के स्वर मे कहा, "मुझे मालूम ही नही था कि यह औषधालय इतनी दवाइयाँ बनाता है।" फिर उन्होने सूचीपत्र जेब मे रखा। बाहर से जेब दबाई। सूचीपत्र को सुरक्षित सोच कर निश्चिन्त हो गए। सिर हिलाते हुए कहने लगे, "घर जाकर पढूँगा।"

दुकान से बाहर निकलने के साथ ही वे दुकानदार के सौजन्य से गद्‌गद थे, "देखा कितना सज्जन है ? सूचीपत्र भी दे दिया। इस औषधालय की दवाएँ अवश्य अच्छी होगी। दुकानदार की बातो से ही लग रहा था।" जेब को दुला-रते हुए उन्होने कहा, "अब यही से दवा लिया करूँगा।"

चौक से बाहर आने के लिए रिक्शावाला बडे बिजलीघर की ओर बढ ही रहा था कि पत ने दाहिनी ओर डावर औषधालय का साइनबोर्ड देखा। फौरन रिक्शावाले की पीठ थपथपाते हुए उसे आगे बढने से रोककर थोडा पीछे करवाया। रिक्शा से उतरते हुए बोले, "जरा वहाँ देख लूँ।" मुझसे रहा

न गया, "क्या कर रहे हो ? दो दुकानो से तो दवा ले ली हैं। वे प्रसिद्ध भी हैं। प्रत्येक दूकान से क्या लेना ? क्या दवाओ का अजायबघर बनाओगे ?" वे सहज भाव से बोले, "खरीदूँगा थोडी। यहाँ तक आ गया हूँ। जरा इसे भी देख लूँ। दुकान मे जाने मे कोई हर्ज नही है।" थोडा हँसे, "नही तो लिखा होता प्रवेश निषेध है।" फिर मेरे भाव को भाँपते हुए कहा, "तुम्हे शायद जल्दी है। देर नहीं करूँगा। दो मिनट मे आया।" दुकान मे जाते-जाते आधे रास्ते से आ गए, "जरा इन दवाइयो को पकडना। उसे बुरा लगेगा कि दूसरी दुकान से खरीदी हैं।" और वे लपककर दुकान मे चले गए।

पूरे पन्द्रह मिनट बाद जब वे दुकान से लौटे तो घडी देखते हुए कहा, "देखा, कितनी जल्दी आ गया। यहाँ तो दवाइयो का अबार था। दुकानदार सब दिखाना चाह रहा था, मेरा भी बहुत मन हो रहा था। तुम्हे जल्दी है, सोचकर, उसे फिर आने का वचन दे, लौट आया।" वे प्रसन्न थे, बहुत प्रसन्न। उसका कारण समझते मुझे देर नही लगी—उनके हाथ मे सूचीपत्र और जेब मे दवा थी। पूछने पर मालूम हुआ कि दुकानदार बहुत ही भला है। इससे अधिक सौजन्य क्या हो सकता है कि पूछने पर उसने बता दिया कि उसके यहाँ का वसतकुसुमाकर सर्वश्रेष्ठ है। और साथ ही उसने इतना सुदर सूचीपत्र मुफ्त दिया है। पत की बातो के साथ ही मेरे मानस मे पहिले तथा दूसरे दूकानदार के साथ हुई उनकी बातचीत बोलते चलचित्र की भाँति मूर्त हो गई।

रिक्शा थोडा-सा आगे बढा ही होगा कि उन्हे साधना औषधालय दीख गया। वे बोले, "हो सकता है यहाँ की औषधि बढिया हो। इसे भी अवश्य देख लेना चाहिए।" बहुत मना करने पर भी उन्होंने रिक्शावाले की पीठ थपथपाकर उसे रोका और लपककर दुकान मे गए, "एक मिनट मे आया।" वह एक मिनट पन्द्रह-बीस मिनट मे जब बदल गया तो पत की प्रसन्न मुद्रा दीखी। लगा वे मधुमेह से मुक्त हो गए हैं। उनके रिक्शा पर बैठने के साथ पूछा, "यहाँ से भी वसतकुसुमाकर तथा चद्रप्रभाबटी खरीदी होगी।" उन्होने तनिक खीझ से कहा, "बस तुम्हे टोकना आता है। देखो, सूचीपत्र।" पहिले साधना का ही वसतकुसुमाकर लूँगा, अवश्य लाभ होगा।

बिजलीघर के पास पहुँचने के पूर्व उन्हें 'ढाका शक्ति औषधालय' दीखा "अरे यहाँ भी देख लेना चाहिए", कहने के साथ ही उन्होंने रिक्शा रुकवाया। फिर बहुत मना करने पर तनिक असतोष के साथ वह घर आ गए। पर रास्ते भर कहते गए, "जब फिर कभी चौक आऊँगा तो ढाका शक्ति औषधालय को जरूर

देखूँगा ।" उनके चेहरे मे सतोष झलकने लगा, "मैंने बडा अच्छा किया जो चारो औषधालयो मे गया । प्रसिद्ध दूकाने हैं । सभी दूकानदार बडे विनम्र और उपकारी है । बेचारो ने स्वय बता दिया कि उनकी दवाइयाँ अच्छी है और उस पर इतने मोटे सूचीपत्र मुफ्त दे दिए ।" अपने आप कुछ स्मरण-सा करते हुए कहने लगे, "ज्योतिष बिलकुल ठीक लगता है । आज शुभ दिन था, देखो कैसी सफलता मिली ।" मैं खीझ उठी, "अपनी चीज की कौन बुराई करता है । उस पर जब कि बेचनी है ।" सुनी की अनसुनी करते हुए पत की अनुभवी मुस्कान खिल उठी, "जो लोग सोचते है कि सीधी अगुली से घी नही निकलता वे मूर्ख है । अच्छी तरह से स्नेहपूर्वक किसी से पूछो वह अवश्य ही सच बात बता देगा ।"

१-२ नवम्बर '५२ को इलाहाबाद मे प्रादेशिक प्रगतिशील लेखक सम्मेलन होना निश्चित हुआ । प्रकाशचन्द्र गुप्त और पहाडी ने पत से इस सम्मेलन के अध्यक्ष-मण्डल मे सम्मिलित होने का आग्रह किया । पत की स्वीकृति मिलने पर उन्होने समाचार-पत्र मे प्रकाशित करवा दिया कि प्रा० प्र० ले० स० के अध्यक्ष मण्डल के लिए सुमित्रानदन पत, राहुल साकृत्यायन तथा हजारीप्रसाद द्विवेदी चुने गए हैं तथा सभापति-मण्डल के लिए डॉ० भगवतशरण उपाध्याय और डॉ० अब्दुल सलीम । कवि-सम्मेलन मे नरेन्द्र शर्मा, केदार नाथ, ठाकुर प्रसाद सिंह, अली सरदार जाफरी, नरेश मेहता, फिराक आदि अनेक कवि भाग लेगे तथा शमशेर, अजित, ओकार, नरेन्द्र शर्मा आदि प्रतिनिधियो के रूप मे भी सम्मेलन मे उपस्थित रहेंगे । साथ ही विज्ञप्ति मे यह भी कह दिया गया था कि इन सभी की अनुमति मिल गई है ।

प्रादेशिक प्रगतिशील लेखक सम्मेलन के अध्यक्ष-मण्डल के सदस्यो का नाम समाचार पत्रो मे प्रकाशित होते ही प्रयाग के साहित्य-जगत मे खलबली मच गई । सन् '४४ मे 'परिमल' की स्थापना हो चुकी थी और इसके साथ ही प्रयोगवाद तथा प्रगतिवाद का अतर स्पष्ट हो गया था । दोनो के ही सदस्य कर्मठ थे, उनमे युवकोचित आवेश तथा अपनी सिद्धातवादिता एव आदर्श के प्रति मर मिटने की भावना थी । और इन सबसे अधिक एक शरारत, दूसरे को नीचा दिखाने की भावना जो अवसर पाते ही लगडी देने को आतुर हो उठती । प्रकाशचद्रजी के अनुसार प्रा० प्र० ले० स० के आयोजन की तैय्यारियो के साथ ही दोनो दलो के सदस्य रेस्ट्रां आदि मे जब भी मिलते गरमागरम बहस मे लीन हो जाते, एक दूसरे को निरर्थक ही चिढाने की भावना इन्हे प्रमुदित रखती थी ।

अध्यक्ष-मण्डल का नाम पत्र मे छपने के साथ ही 'परिमल' के कार्यकर्ता सजग हो गए। उन्होंने पारस्परिक विचार विमर्श के पश्चात् एक वक्तव्य की रूपरेखा बनाई और शाम को आकर पत से भी उस पर हस्ताक्षर कराए। ७ अक्टूबर '५२ की शाम को पत ने हस्ताक्षर किए और ८ अक्टूबर '५२ को दैनिक भारत मे प्रकाशित वक्तव्य को पढ कर वे चौक उठे, जिस वक्तव्य पर उन्होने हस्ताक्षर किए थे, उसमे शब्दो के हेर-फेर के साथ एक ऐसा वाक्य था जिससे वे सहमत नही हो सके, यह उनके विचार स्वातत्र्य का अपहरण था।

भारत मे प्रकाशित वक्तव्य इस भाँति हैं—"इलाहाबाद, ७ अक्टूबर—प० सुमित्रानदन पत, डॉ० रामकुमार वर्मा, श्री गगाप्रसाद पाण्डेय, श्री ओकार शरद, श्री धर्मवीर भारती और श्री वाचस्पति पाठक ने प्रगतिशील लेखक सघ के सम्बन्ध मे निम्नलिखित वक्तव्य प्रकाशित किया है : प्रगतिशील लेखक सघ सम्मेलन के सम्बन्ध मे होने वाली चर्चा की ओर हम लोगो का ध्यान आकर्षित हुआ। हमारा विचार है कि हिंदी साहित्यिको के लिए उसमे सम्मिलित होना तब तक उचित नही है जब तक कि अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक सघ की केन्द्रीय समिति यह स्पष्ट घोषणा न करे दे कि :

(१) उसकी नीति कम्यूनिस्ट पार्टी द्वारा अनुशासित नही हैं तथा वह यह भी मानता है कि प्रगतिशील होने के लिए कम्यूनिस्ट होना या उनकी वैदेशिक नीति से सहमत होना आवश्यक नहीं है।

(२) भाषा के सबध मे प्रगतिशील लेखक संघ का कोई सम्बन्ध कम्यूनिस्ट पार्टी की नोति से नही है। वह हिंदी को राजभाषा मानेगा और हिंदी तथा उर्दू का प्रश्न उठाकर स्थिति का राजनीतिक दुरुपयोग नही करेगा। वह केन्द्र मे कम्यूनिस्ट पार्टी की भाषा संबधी नीति का तथा उत्तर प्रदेश मे उर्दू को क्षेत्रीय भाषा बनाने के साम्प्रदायिक प्रचार का समर्थन नही करेगा। (भारत दैनिक-बुधवार, ८ अक्टूबर, १९५२)

स्पष्ट ही इस वक्तव्य की दोनो शर्तो से पत को मूलगत आपत्ति नही हो सकती थी वरन् प्रमुखत: प्रथम शर्त के कारण ही वह सन् '४८ मे प्रगतिशील लेखक सघ का विरोध कर चुके थे। किंतु पत को आपत्ति थी कि वक्तव्य की जिस मूल प्रति मे उनके हस्ताक्षर लिए गए थे उसमे तथा प्रकाशित वक्तव्य मे अतर है। यदि सशोधन किया गया था तो उन्हें सूचित करना आवश्यक था कम-से-कम फोन से तो सूचित कर ही सकते थे। अपने नाम से परिमल के अन्य सदस्य कुछ भी प्रकाशित कर देते उन्हे इतना बुरा न लगता किंतु उनके

नाम का प्रयोग करके उन्हे ही इस बारे मे अनजान रखना, पत को यह सर्वथा अनुचित लगा। साथ ही पत ने कभी भी अपने लेखकीय व्यक्तित्व को किसी वाद, गोष्ठी या समिति तक सीमित नही रहने दिया है। उनका सपूर्ण कृतित्व और जीवन इसका प्रमाण है। वक्तव्य का यह वाक्य "उसमे सम्मिलित होना तब तक उचित नही है " एक उस निषेधात्मक सीमा को आरोपित कर देता है जिसे पत का लेखक किसी भी शर्त पर स्वीकार नही कर सकता था, यह उनकी जीवन और लेखन सबधी मान्यताओ को चुनौती थी। उन्होने स्पष्ट कह दिया कि वे प्रा० प्र० ले० स० मे भाग लेंगे और यदि 'परिमल' इस प्रतिबध को उन पर लगाता है तो वे उसकी सदस्यता से सहर्ष त्याग पत्र दे देगे। इसके साथ ही उन्होने त्याग-पत्र दे दिया।

साहित्यिक हलचल, और हलचल ! वक्तव्य के प्रकाशित होते ही प्रगतिशील लेखको ने दौड-धूप प्रारभ की। एक ओर दोनो दलो (प्रयोगवाद तथा प्रगतिवाद) के उत्तेजित सदस्य एक दूसरे पर वाक्-शरो की वृष्टि करने लगे, दूसरी ओर चिट्ठिया और तार ! दूसरे जिलो और प्रातो के सदस्यो के सुझाव तथा प्रस्ताव ! दलीय प्रतिबद्धता के प्रति तटस्थ लेखको को बरगलाने की चेष्टा ! पत का दृष्टिकोण स्पष्ट था। अत. जब फिर से प्रकाशचद्रजी उनके पास आए तो उन्होने उनसे कह दिया, "आप निश्चित रहिए, मैं अवश्य आऊँगा।" और फिर, भ्रम निवारण हेतु उन्होंने एक वक्तव्य भी प्रकाशित करवा दिया।

"प्रगतिशील लेखक सघ के आयोजन की सूचना के प्रकाशन होने के उपरात हिंदी-अग्रेजी दैनिको मे जो तत्सबधी वक्तव्य तथा पत्र निकले है, उन पर मैं विचार करता रहा हूँ। मेरी समझ मे यह विवाद मूलत. प्र० ले० स० के आयोजन से उतना सबध नही रखता, जितना कि आज की वामपथी प्रगतिशीलता से, जो कुछ वर्षों से अत्यत सकीर्ण मतवाद के दलदल मे खो गयी है, और जिसका कारण सभवतः यह है कि प्रगतिशील लेखक सघ मे अप्रगतिशील सदस्यो की सख्या इतनी अधिक बढ गयी है कि उन्होने अपने और अन्य लेखको के बीच कुठित विरोध की गहरी खाई खोद दी है।

प्राय सभी देशो मे आज वाम और दक्षिणपथी प्रगतिशील विचारधाराएँ विद्यमान है और बहुत कम ऐसे लेखक है जो अपने युग की चेतना के स्पर्शो से वचित है। मैं तथाकथित वाम-दक्षिणपथी मान्यताओ को—जिनमे आर्थिक एव राजनीतिक के साथ सास्कृतिक तथा आध्यात्मिक मान्यताएँ भी सम्मिलित है, और जिन सबका विकास तथा रूपातर होना अवश्यम्भावी है—सदैव से अखड अथवा अविच्छिन्न सोपान की तरह मानता आया हूँ। दोनो प्रकार की मान्य-

ताओ मे परस्पर का विरोध खडा करना केवल अपने-अपने दल की सकीर्ण एकागी दृष्टि का परिचय देना है और दोनो ही दलो के अनुयायियो मे इस प्रकार की मनोवृत्ति अत्यधिक मात्रा मे वर्तमान है। मै चाहता हूँ कि साहित्य तथा सस्कृति के क्षेत्र मे लेखको अथवा विचारको को व्यक्तिगत या सघगत मानापमान की थोथी भावना पर नियत्रण रख कर परस्पर सहानुभूति तथा सद्भावना का वातावरण प्रस्तुत करना चाहिए जिससे दक्षिण-वामपथी मान्यताओ तथा प्रगतिशील प्रतिगामी विचारधाराओ सबधी दृष्टिकोण के स्पष्टीकरण तथा विकास के लिए उपयुक्त तथा उन्मुक्त परिवेश का निर्माण किया जा सके। मैं दोनो वर्गो से निवेदन करना चाहता हूँ कि सामूहिक तथा सास्कृतिक समन्वय के महत्त्वपूर्ण प्रश्न को उन्हे व्यक्तिगत या दलगत कुठा तथा अहकार से वशीभूत होकर और भी जटिल तथा दुर्बोध नही बनाना चाहिए।

प्रत्येक सस्था के सन्मुख उसके आत्मसम्मान का प्रश्न हो सकता है किन्तु यह आत्मसम्मान की भावना सामूहिक दर्प तथा सगठित बल-प्रदर्शन की सकीर्ण भावना से कही ऊँची होनी चाहिए। प्र० ले० स० के सदस्यो से मैं एक साहित्यिक बन्धु के नाते यह प्रार्थना करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि वर्तमान परिस्थितियो मे अधिक-से-अधिक सद्भाव, सहानुभूति तथा शाति का वातावरण उपस्थित कर साहित्य एव सस्कृति की रुद्ध चेतना को जागृत तथा प्रस्फुटित होने का अवसर दें और दक्षिण-वामपथी विरोधो की कृत्रिम भित्तियाँ उठाकर उस पर कुठाराघात न करें। भाषा सबधी विवाद ग्रस्त प्रश्न को भी उन्हे भविष्य के लिए स्थगित कर देना चाहिए। मानव-भावना की उपेक्षा कर उस पर बलपूर्वक बौद्धिक मान्यताएँ लादने का प्रयत्न बालू मे बीज बोने के समान है। इस समय किसी प्रकार का भी विरोध-वैषम्य बढाना उनकी महान् असफलता का द्योतक सिद्ध होगा और उनकी पिछली भूलो से कही बडी भूल होगी।

प्र० ले० स० के सयोजक के वक्तव्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका ध्येय साहित्यिक तथा सास्कृतिक मान्यताओ को राजनीतिक दलबदी के प्रतिदिन बदलते हुए सिद्धातो के अधीन रखना नही है। अतएव, अपने उपर्युक्त समन्वय के दृष्टिकोण को सामने रखते हुए मुझे इसमे किसी प्रकार की आपत्ति नही प्रतीत होती कि सभी भाषाओ के दक्षिण-वामपथी प्रगतिशील लेखक, अपने पथ की संकीर्णताओ से ऊपर उठकर आगामी आयोजन मे सम्मिलित हो और साहित्य तथा सस्कृति के स्तर पर इस युग की मान्यताओ सबधी उलझनो को सुलझाने का सयुक्त प्रयत्न करें। हमारे युग की सास्कृतिक पुकार है—सद्भाव, विद्वेष नही, व्यापक दृष्टिकोण,—सकीर्णता नही; *मनुष्यत्व का सर्वांगीण विकास*,

एकागी वृद्धि नही। वर्तमान परिस्थितियो मे राजनीति और सस्कृति दो समानानर सिद्धातो की तरह् रहकर ही एक दूसरे की पूरक बन सकती है। ऐसा जनवाद जो मनुष्यतव के व्यापक मूल्यो से रिक्त है केवल युग के कैलिबान का कुरूप विद्रोह भर है और ऐसा मानववाद जो लोक-जीवन की आवश्यकताओ की पूर्ति नही करता युग के एरियल की चचल भावुक उडान भर है। हम केवल ऐसी साहित्यिक तथा सास्कृतिक मान्यताओ को लेकर आगे बढ सकते हैं जो मनुष्य-चेतना के समस्त धरातलो मे सामजस्य स्थापित कर सके। मैने सयुक्त वक्तव्य मे अपना नाम इसलिए दे दिया था कि वह् एक समुदाय की भावना का द्योतक था, जिसे सबके सामने आना ही चाहिए था, जिससे दोनो पक्षो के समर्थको को अपनी सकीर्णताओ को अतिक्रम कर एक-दूसरे के सन्निकट आने मे सहायता मिले। प्र०ले०स० के आयोजन से क्षुब्ध अथवा भयभीत होने का मुझे कोई कारण नही दीखता, हमें अपनी दक्षिण-वामपथी सकीर्णताओ पर विजय पानी ही होगी, इसी मे समस्त देश तथा विश्व का मगल निहित है। आज के सृजन-प्राण साहित्यजीवी के कधे पर अत्यत महान् उत्तरदायित्व है। निकट भविष्य मे राजनीतिक दुराग्रह का स्थान सास्कृतिक सदाशयता को लेना ही पडेगा,—ऐसा मेरा दृढ विश्वास है।" (दैनिक भारत, बुधवार, २२ अक्टूबर सन् १९५२)

परिमल से त्यागपत्र परिमल सदस्यो से सम्बन्ध विच्छेद नही था। उसके प्रतिभाशाली सदस्य उनके आज भी स्नेह्-भाजन है, वे उन्हे प्यार करते है, उनकी प्रशसा करते हैं और उनकी खुराफातो को युवकोचित आवेश और युवा शक्ति की अभिव्यक्ति कह मुस्कुराते हैं। पत का भान्जा बद्रीदत्त उन्ही के साथ रहता था, वह 'भारत' से सम्बन्धित था। एक दिन (१५ नवम्बर '५२) बातो-ही-बातो मे हिंदी साहित्यिक जगत् मे फैली हुई विद्वेष की भावना के बारे में वह कह रहा था। कुछ देर चुपचाप सुनने के बाद पत ने कहा, "जहाँ तक मैं अपने को जानता हूँ मुझे सभी अच्छे लगते हैं। छोटी बडी कमियाँ मानव बुद्धि की सीमाएँ हैं। किसमे ये सीमाएँ नही होती, क्या मुझमे नही है जो मैं दूसरे को बुरा कहूँ। दूसरे मे अच्छाई देखनी चाहिए न कि बुराई। मेरे मन मे तो किसी के प्रति कोई बुरी भावना नही है। अपने जीवन मे मैंने सबसे मित्रता करनी चाही—यदि सफलता नही मिली तो इसे मैं अपने ही भाग्य का दोष मानूँगा।" "पर मामाजी! आपको मालूम है विभाग के एक गभीर अध्यापक ने मुझे बताया कि जब आपने त्यागपत्र दिया तो एक ने अध्यापक-कक्ष मे कहा कि हमने पतजी को 'परिमल' से निकाल कर छोडा।" पत झुझला

उठे, "क्या बुरी बात कही ? क्रोध मे आदमी न जाने कितनी बातें करता है। वे उसी क्षण के लिए होती है।"

मई '५३ को मैं और शाति मेहरोत्रा किसी की बुराई करने मे लीन थे। न जाने पत कहाँ से एकाएक आ गए और उन्होने हमारी बाते सुनी एव समझी क्योकि सामन्यत वह अपनी ही दुनिया मे रहते है। जब उन्होने देखा कि हम लोग बुराई कर रहे है तो पहले तो जरा जोर से कहा, "तुम लोगो ने व्यर्थ मे पढा है। अपढ औरतो की तरह दूसरे की बुराई मे समय नष्ट करती हो।" फिर चिन्तनशील हो गए, "मानता हूँ अधिकाश लोगो की धारणा के प्रति अत्यत बुरी है। पर हमारी भी भूल है कि हम अपने को अनावश्यक महत्त्व देते है और दूसरे के लिए अत्यत आलोचनात्मक हो जाते है। यही कारण है कि उन्नति नही कर पाते है। जब हम समाज के लिए अत्यत उदार तथा अपने लिए आलोचनात्मक होगे तभी हमारी उन्नति सभव है। हमे अपने आप का मूल्या-कन करने के लिए अत्यधिक कठोर बौद्धिक मापदण्ड का प्रयोग करना चाहिए एव निर्मम होना चाहिए और दूसरे के प्रति उदार तथा सहिष्णु।" कुछ रुक कर उन्होने कहा, " का व्यक्तित्व दुर्बल है किंतु बुरा, निर्मम या दुष्ट नही है। हमारी कठिनाई यह है कि हम व्यक्ति को एक स्वतत्र इकाई मानते है। अतः दोषी ठहराते है। हम यह भूल जाते हैं कि परिस्थितियाँ उसे प्रभावित करती है। अब मैं ही यहाँ से दिल्ली जाऊँ और मार्ग मे कुछ हो जाए तो मेरा क्या दोष?"

इसी सदर्भ मे १४ अगस्त '५३ की एक घटना याद आती है। पत खाना खा रहे थे। मैं कुछ लोगो की बाते कर रही थी। उसी मे मैंने किसी की बुराई कर दी। सच तो यह है कि मेरी दृष्टि मे वह बुराई नही थी, तथ्य का वर्णन मात्र था। पत खाना खाते-खाते अनमने-से हो गए फिर हँसकर बोले, "तुम्हारी बातें छोटी हरी मिर्च-सी होती है, मीठी!" व्यग्य स्पष्ट था। वह कई बार कह चुके हैं कि दूसरो की बुराई न किया करो, अपने को देखो।

साहित्य भवन, इलाहाबाद से गद्यपथ (१९५३) छप रहा था। छापे की भूले देख पत का मन बहुत खिन्न हुआ। किंतु जब साहित्य भवन की पुस्तको के प्रकाशन [illegible] नर्मदेश्वर जी [illegible] तो वे उनसे स्पष्टत कुछ कह नही पाए। मैंने ही कहा, "छापे की बेहद भूले है। पाठक क्या समझेगे ? ददा की पुस्तक है अन्यथा लोग सोचते लेखक को भाषा नही आती है।" उन्होंने छापे की भूलो के लिए खेद प्रकट करने के साथ ही पत को सभवत. सान्त्वना देने के अभिप्राय से कहा, "हिंदी के पाठक छापे की भूलो के अभ्यस्त हैं। आप परेशान न होइए।" पत चुप ही रहे। उनके जाते ही बोले, "ऐसा पता होता तो 'लथ-

पथ' नाम रखता। हमारी भी क्या मनोवृत्ति है ? उन्नति करने के विपरीत अपनी भूल और दुर्बलता पर सतोष कर लेते है।"

१६-२० दिसबर '५३ को मै युनिवर्सिटी से वापिस आ रही थी कि सुश्री ललिता पाठक (श्रीधर पाठक जी की सुपुत्री) ने कहा, "पत जी से कह देना रसूलाबाद मे स्वामी पुरुषोत्तमानद जी आए हुए है, पहुँचे हुए साधु है। वे रामकृष्ण परमहस के शिष्य ब्रह्मानद जी के शिष्य है। विवेकानन्द जी को परमहस जी से ज्ञान की सपत्ति मिली थी और ब्रह्मानदजी को आध्यात्मिक साधना की।" पत का यह सुनना था कि फौरन स्वामीजी से मिलने को जाने के लिए तैयार हो गए। और भी न जाने कितने प्रश्न पूछ डाले और साथ ही उन्होने जानना चाहा कि स्वामी जी रसूलाबाद मे कहाँ रहते है। मै किसी भी बात का ठीक से उत्तर नही दे पाई, न इस ओर रुझान ही है और न यही सोचा था कि सुनते ही वह ढाई बजे दिन को चलने के लिए तत्पर हो जाएगे। खैर जल्दी-जल्दी खाना खाया, पत के बार-बार जल्दी मचाने पर भी सवा-तीन बज गए। रिक्शा मे हम बैठे ही थे कि एक बडी-सी गाडी आकर रुक गई। उससे दो लोग उतरे, मालूम हुआ कि वे पत से मिलने कलकत्ता से आए है। पत को सकोच तो हुआ कि उन्हे बिना बैठाए एव बिना चाय पिलाए ही वे रसूलाबाद जा रहे हैं। पर स्वामीजी का दर्शनार्थी उनका मन, इस समय, अपने शिष्टाचार प्रेमी स्वभाव को तिलाजलि दे चुका था। उन्होने उन लोगो से खडे-खडे ही एक मिनट बातचीत की और रिक्शा मे बैठ गए। रसूलाबाद पहुँचने पर पता लगा कि स्वामी जी श्री कक्कड की कोठी मे ठहरे हुए है तथा शाम को पाँच बजे के लगभग उनके दर्शन हो सकेगे एव उनका प्रवचन सुनने को मिलेगा। सौभाग्य से स्वामी जी को पत के वहाँ आने के बारे मे पता लग गया और उनके दर्शन तत्काल ही हो गए। प्रसाद स्वरूप चाय पीने को भी मिली। पर गगातट का घर, गगा की ओर खुला बरामदा, प्रवचन सुनते समय जो हवा चली शौल को सम्हालना कठिन हो गया और गरम चाय बदन के अदर बरफ बन कर जम गई। बार-बार पत की ओर देखकर पश्चाताप हो रहा था कि इन्हे स्वामी जी के बारे मे बताना नही था, घर पहुँच कर अवश्य ही दस-पन्द्रह दिन के लिए चारपाई पकड लेंगे। जब वहाँ से आने लगे तो स्वामीजी ने दूसरे दिन आने के लिए कहा। पत तो पहले से ही यह चाहते थे। स्वामीजी के दर्शन मे रमा मन, दूसरे दिन पुन दर्शन की लालसा से लालायित ! वे मुझे बताना भूल गए कि उन्होने कलकत्ता के लोगो को चाय के लिए आमत्रित किया है। युनिवर्सिटी से घर पहुँची नही कि वे रसूलाबाद चलने के लिए तैयार बैठे मिले। शाम

सात बजे जब घर पहुँचे तो नौकर ने तो उन्हे बताया ही, साथ ही कलकत्ता के उन सज्जनो मे से एक का फोन आया कि वे लोग सपरिवार—बीवी-बच्चो सहित—आए थे। और पत ने उनसे क्षमा माँगते हुए दूसरे दिन आने की प्राथना की। किंतु उनका स्वामीजी के दर्शनो से गद्‌गद् मन पुन मुझे बताना भूल गया और तीसरे दिन जब सात बजे शाम हम घर पहुँचे तो उसी के दस मिनट बाद वे लोग पुन. सपरिवार आए तथा उन्होने बताया कि एक बार आकर वे लौट चुके है। जल्दी-जल्दी उन्हे सामान्य-सी चाय पिलाई। उस घटना के लिए पत लज्जित आज के दिन भी है किंतु बहुत दु खी नही—पुरुषोत्तमानद जी सी दिव्य विभूति का दर्शन दुर्लभ ही होता है।

पुरुषोत्तमानद जी ने जब तक इस पार्थिव देह को स्वेच्छा से नही छोडा था तब तक वे प्रत्येक वर्ष दिसम्बर अत या जनवरी प्रथम सप्ताह मे इलाहाबाद आते थे और एक माह रहते थे। वशिष्ट गुहा के इन देवोपम स्वामी जी से मिलने पत दाँत किटकिटाते जाडो मे सबेरे पाँच बजे नहाकर रिक्शा से रसूलाबाद अक्सर पहुँच जाते। वैसे सबेरे उठना या नहाना उन्हे बहुत बुरा लगता है। जाडो मे छह साढे छह बजे के पहिले वह नही ही उठते है और नहाना भी उन्हे ग्यारह के पहि दण्डस्वरूप ही लगता है। किसी विशिष्ट कारण से यदि जल्दी नहाने के लिए कहा जाए तो वे तत्काल आश्चर्य मे पड जाएगे, "अभी से ? क्या बजा है, दस, बापरे बहुत जल्दी है। कितनी ठण्डक है, कही बीमार न पड जाऊँ ?' फिर भी यदि आग्रह करो तो तख्त पर अधिक विश्राम की मुद्रा मे लेटते हुए कहेगे, "अच्छा, मैं नही नहाऊँगा।" यह पत का घर का स्वभाव है। अपनी इच्छा के विपरीत वे तिनका भी नही तोडेगे किंतु अभ्यागत या मेजबान के रूप मे वे बिलकुल ही भिन्न व्यक्तित्व है। बरफ पडती रात के दो बजे वे नहा सकते है। जब वे बेली रोड मे थे। तब वे जाडो मे सबेरे साढे चार, पाँच बजे उठकर नहा लेते थे। यही हाल भोजन तथा अन्य आदतो के बारे मे भी था।

साधु-सतो के लिए तो उनके मन मे अशेष आकर्षण है। स्वभाव से अल्पभाषी और चारपाई प्रेमी पत सत् सगति एव साधु दर्शन का नाम सुनते ही चारपाई छोडकर स्फूर्तिमय तथा मुखर हो जाते है। सतो की बाते बताते-बताते वे थकते भी नही हैं। साधुओ के प्रति अपने इस गहन आकर्षण के बारे मे, न जाने क्यो, वे दुराव रखते है। अधिकतर कहते हैं, "मैं तो किसी साधु-सत से अपने आप मिलने जाता नही हूँ। किंतु यदि किसीने मिलने की इच्छा प्रकट की तो उसकी अवज्ञा तो नही हो की जा सकती है। और प्रणत,

प्रणत तो मैं सभी के सम्मुख हूँ। बच्चा भी अपनी जगह पर महान् है। किसी का अनादर सभव ही कैसे हो सकता है ?" पत से कौन कहे आप साधुओ से मिलने एक नही, एक हजार बार जाते है, मित्र या किसी का आग्रह कहना बहाना मात्र है, आप अकेले भी खूब जाते हैं। किसी प्रसिद्ध बाबा का नाम सुनते ही वे उससे मिलने के लिए आतुर हो जाते है, उनके भक्तो से प्रार्थना करते है कि बाबा के दर्शन उन्हे अवश्य करा दे। जहाँ कही से भी बाबा की सूचना मिलने की लेशमात्र भी सभावना दीखी वे वहाँ तत्काल पहुँच जाते है—नही ही जा सके तो फोन कर लेते हैं या किसी को भेजकर पता लगाने की चेष्टा करते हैं। यदि बाबा के पास रिक्शा से पहुँचना सभव न दीखा तो वे अपने किसी कारवाले मित्र से तब तक कहते नही थकते जब तक कि वे उन्हे बाबा के पास न ले जा दे। बाबा के पास तक का मार्ग उनके लिए शुचितापूर्ण हो जाता है—तब न उन्हे कही बदबू लगती है, न गदगी या धूल। जेठ की तपती दुपहरी हो या जाडो की रात की वह ठण्डक जो दाँतो को बजा देती है, वह रिक्शा मे अकेले मीलो सानद जा सकते है। सन् '५६ तथा सन् '६१ मे ऐसे ही सम्मोहन के वशीभूत हो जाने के कारण उन्हे पहिली बार टाइफॉएड हुआ और दूसरी बार कोलरा का हल्का आक्रमण। लेकिन इससे उनके मनोभाव मे कोई अतर नही आया—सत दृष्टि से जो हो वह कल्याणकर है। सतो के लिए 'सामान्य हैं' या 'यो ही है' कहना उन्हे बुरा लगता है। सत तो इन सबसे परे हैं। जब कोई सत घर आ जाता है तो पत का मानो रूपातर हो जाता है। प्रसन्न, स्फूर्तिमान और पूर्ण प्रणत! उनकी तब कोई अपनी इच्छा नही रह जाती है। नियमितता प्रेमी पत को न सोने की आवश्यकता होती है, न भोजन-विश्राम की और न नैत्यिक कर्म की ही। वह घण्टो जमीन पर बैठकर उस दिव्य आनद मे तरगित होने लगते हैं जहाँ दैहिक आवश्यकताएँ नगण्य है। उनके भीतर और बाहर एक ही सगीत, आनन्द का सगीत गूँज उठता है।

१६ मार्च १६५३ को पटल बाबू के निधन का समाचार मिला। पटल बाबू के प्रति पत के मन मे प्रशसा और स्नेह का भाव है। उनके निधन का समाचार मन को पर्याप्त दुखी कर गया। "बीमारी का पता होता तो देखने जाता।" "सोचा था एक बार उन्हे चाय या खाने के लिए आमन्त्रित करूँगा, इच्छा इच्छा ही रह गई।" "मेरे लिए तो वे सदैव बडे सहृदय रहे। जब भाई बीमार थे तब मेरी स्थिति ही क्या थी ? हिन्दी को कोई विशेष मान्यता नही मिली थी, मै हिन्दी का नवयुवक लेखक था, निर्धन था। किंतु जब पटल

बाबू से मैंने अग्रिम पारिश्रमिक माँगा, उन्होने सहर्ष पारिश्रमिक तो दिया ही बडे भाई को भी अपने प्रेस मे नौकरी दी। इस घर मे भी मेरे कहने पर बहुत कुछ बनवा दिया और हमेशा कहा और जो भी आपको बनवाना हो मुझे बतला दीजिए मैं करवा दूंगा।" जब तक पटल बाबू जीवित रहे पत अक्सर उनके पास पहुँच जाते या फोन से बातचीत कर लेते थे। फिर कभी किसी को प्रेस मे नौकरी दिलवानी होती, तो किसी को इण्डियन प्रेस का घर दिलवाना होता। और पटल बाबू प्रायः सदैव पत की बात मान लेते। अपने व्यक्तिगत सबधो के अतिरिक्त भी पत पटल बाबू की क्षमताओं के बहुत प्रशसक है। जब उनके निधन (१७ मार्च १९५३) पर सरस्वती के सम्पादक ने पत से कविता मागी तो उन्हे उन पर कविता लिखना एव अपने स्नेह को अभिव्यक्ति देना ठीक लगा। एक आलोचक ने आपत्ति की कि पत ने पटल बाबू के निधन पर अपनी स्नेहाजलि क्यो अर्पित की जब कि पटल बाबू अमीर व्यक्ति थे, व्यावसायिक व्यक्ति थे।[1] किंतु यदि पत अपनी स्नेहाजलि, जो कि उनके हृदय का उद्गार है, अर्पित नही करते तो अपनी मनोवृत्ति को तो सकुचित करते ही, साथ ही नैतिक दृष्टि से भी यह उचित नही होता। मित्रता और स्नेह (तथा नैतिकता) मे व्यक्ति गरीब है या अमीर, यह महत्वहीन होता है। स्वस्थ मित्रता उन भावात्मक गुणो का मूल्याकन करती है जो मित्र को मनुष्योचित गौरव से युक्त करता है।

> 'स्वत. कलाविद्, कलाविदो से वेष्टित, सहज समादृत,
> स्नेह दया की प्रतिमा, अगणित जन थे तुमसे उपकृत।
> सिद्धहस्त व्यवसायी थे तुम, मुक्तहस्त थे दाता,
> सुज्ञ, ।दूरदर्शी, स्वक्षेत्र के बहुविध-अथ-इति ज्ञाता।

---

१. १९०० ई० के जनवरी मास में सरस्वती एवं हिन्दी पत्रिका का प्रकाशन, जब कि हिन्दी अज्ञातावस्था में ही थी सरस्वती के प्रकाशक, पटलबाबू के पिता एवं उनके परिवार के हिन्दी प्रेम का प्रतीक है। सरस्वती का स्वाभिमानी संपादक मण्डल—महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्यामसुंदर दास, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, देवीप्रसाद शुक्ल, श्रीनाथ सिंह, श्री नारायण चतुर्वेदी आदि इस बात का प्रमाण हैं कि सरस्वती के प्रकाशक न केवल साहित्य प्रेमी रहे वरन् उन्होंने साहियत्किों को समादर दिया है।

सन् '५४ के प्रारभ मे उन्हे किसी सबधी की व्यक्तिगत हताशा और घृणित कुठा का कोपभाजन बनना पडा। मन ही मन उन्हे जैसा भी लगा हो ऊपर से वे निर्लिप्त थे। पूछने पर कहने लगे, जिसका जो जी चाहे कह ले। यदि किसी को मुझ पर ऐसे आक्षेप करके सतोष मिलता है तो क्या करूँ। मैं क्षमाप्रार्थी हूँ उसके प्रति जो इससे आहत हुआ है।" ऐसे मे न उन्हे क्रोध आता है, न वे दु.खी ही दीखते हैं। बहुत हुआ तो कह देंगे, "मैं तो लिखने या कहने वाले का यही अहसान मानता हूँ कि उसने यह नही कहा कि पत जी ने किसी की हत्या की है। मेरे लिए कुछ भी लिखना सरल है।" "लोगो की बातो का बुरा नही मानना चाहिए। कहने वाले तो कहते ही हैं। जब गाधी से व्यक्तित्व के बारे मे छोटी बातें कह सकते है तो मैं हू ही क्या ? ऐसी बातो का मन मे नही रखना चाहिए। मैं तो अपना निर्माण या विकास करना चाहता हूँ। ऐसी बातो मे पडकर आदमी केवल कीचड मे धँसता है। यह तो व्यक्ति पर है कि वह अपना जीवन अच्छी तरह बिता सके।" दूसरे का अपमान या प्रतिशोध लेने की प्रवृत्ति तो उनके मन मे उठती ही नही है, बुलबुले के रूप मे भी नही, "छिः यह छोटी बातें है। क्या मिलेगा मुझे ? कीचड मे पत्थर डालो अपने ही ऊपर आता है। कोई मेरा कर ही क्या सकता है ? असल कर्त्ता तो वही (भगवान्) है। जो वह चाहेगा वही होगा। मैं तो इन लोगो की बातो का आनद लेता हूँ।"

विज्ञापन पत को बहुत मोहते है। लगता है सब विज्ञापन उन्ही के लिए हैं। सन्'५४ की स्वदेशी प्रदर्शिनी मे एक दूकान के सामने भोपू बजाकर दूकान का एक कर्मचारी सिर के एक विशिष्ट तेल की प्रशसा कर रहा था। पत भोपू की ओर लपके और देखते न देखते उनके हाथ मे तेल की एक बडी शीशी थी। स्वय तो वे तेल लगाते नही है, तेल के नाम से ही चिढते है। किंतु तेल लिया था तो किसी न किसी को तो लगाना ही था। घर आकर उन्होने मेरी तथा अपनी भाञ्जी इला, जो उन दिनो प्रयाग विश्वविद्यालय मे पढती थी, की आफत कर दी, "इसे लगाकर देखो तो कैसा है, नही तो मैं तुम लोगो के सिर पर शीशी उड़ेल दूँगा।" तेल जो खोला तो सल्फर की बदबू से कमरा भर गया। किंतु पत नही माने, "कहाँ, मुझे तो बदबू नही लगती। कुछ तो इस तेल मे बात अवश्य होगी, तेलवाला इतनी प्रशसा कर रहा था। वे शीशी मे लगा लेबुल मनोयोग से पढने लगे—सिर दर्द अच्छा होगा। आँखो की ज्योति बढेगी। बालों का झडना बद होगा, बाल काले होगे ।" उन्होने साधिकार कहा, "हर दूसरे दिन सिर दर्द कहती हो। इसे लगाने से सिर दर्द अच्छा

हो जाएगा। एक दो दिन लगाकर देख ही लो।" खैर, दूसरे ही दिन तेल की बात पत भूल गए या भूलने का बहाना कर गए क्यो कि घर मे अपनी गलती वे कभी स्वीकार नही कर सकते। एक-दो महीने शीशी पडी रही फिर उसे कूडे की टोकरी मे डाल दिया।

दूसरे वर्ष न केवल उन्होने प्रदर्शिनी से एक दत मजन की शीशी खरीदी वरन् उसी समय दूकानदार को, उसकी प्रशसा करने से प्रभावित हो, उसके चाहने पर एक सार्टिफिकेट भी लिख कर दे आए। वह दत मजन भी ऐसा कि दो-तीन बार लगाने पर मसूडो से खून आने लगा। अखबार मे एक बार विज्ञापन देखकर वे साबुन ले आए। बाजार जाने के नाम पर सामान्यतः वह महीने भर तक बहाना निकाल लेते हैं किंतु ऐसे मे वह 'स्पेस शिप' को मात कर देते हैं। पता ही नही चला कब गए, कब आए। वह तो जब 'चदा मामा' मिले की खुशी के साथ उन्होने सात-आठ टिकियो के पेकेट से एक टिकिया निकाल कर खोली और गहरी साँस लेते हुए कहा, "वाह बडी अच्छी खुशबू है। अब इसी से हाथ धोया करेंगे।" तो उनके बाजार जाने के बारे मे मालूम पडा। पर जब हाथ धोने के लिए 'वॉश-बेसिन' पर रखी साबुनदानी पर उस टिकिया को रखा और दिनभर की गर्मी पाकर वह डबलरोटी सी फूल और लेई-सा फैल गई तो पत ने अपनी अटेची मे रखे साबुनो के पेकेट को चुपचाप मेरे कमरे मे ला कर रख दिया। डाइबिटीज की कई दवाइयो का उनके कमरे की दीवार की खुली अल्मारी मे रखी किताबो के पीछे खासा अम्बार है। ये विज्ञापनो को देख कर वी० पी० पी० द्वारा मगाई गई दवाइयाँ है। आ जाने पर या तो खोली ही नही गई हैं या एक-दो बार लेने पर ही प्रत्यक्ष प्रमाण से घबड़ा कर छोड दी गई हैं। तालो का भी उन्हे विचित्र मोह है। घर मे आवश्यकता से भी अधिक ताले होने पर विज्ञापन से सम्मोहित हो वे नए ताले खरीदते रहते हैं। सन् १९६८ मे एक ताले को विज्ञापन देखकर उन्होने अपने रोज के दूकानदार बालसन की डेढ-दो महीने तक आफत कर दी। सिविल लाइन्स, कटरा मे स्वय खोज लेने पर जब उन्हे बडे आकार का ताला नही मिला तो उन्होंने 'बालसन' को दिन के दो-दो फोन करने प्रारभ किए। जब अठारह रुपए का ताला आया तो पत के अतिरिक्त सभी उसे देख कर हँसे—दो-टुकडों का ताला, जरा असावधानी हो जाए तो पैर टूटे, भारी इतना कि उठाते ही जमीन पर पटक दो या दरवाजे पर लगाकर खीचो तो दरवाजा ही टूट जाए। लेकिन पत उसे अपने कमरे मे लगाकर ही माने, बीस पच्चीस दिन लगाने पर ही लकडी के दरवाजे में उसका स्थायी चिह्न अकित

हो गया। लाचार मोटरखाने के टीन के दरवाजे मे उसे लगाना पडा। कभी ऐसे भी ताले आ जाते है जो एक झटके मे टूट जाँए या हफ्ते भर बाद चाभी न लगे। ऐसी स्थिति मे विज्ञापन पर हाथ फेरते हुए कहते है, "दुष्ट है, कितना झूठ लिखा है।" पर विश्वास है ऐसे तालो के लिए भी यदि प्रमाण-पत्र की आवश्यकता पडे तो उनकी लेखनी मचल उठेगी। एक दिन (१४ फरवरी '७०) देखती क्या हूँ कि पत 'नोर्दन इण्डिया पत्रिका' पढते-पढते तेजी से उठे और दूसरे कमरे से कैंची लाकर एक पृष्ठ का खासा बडा भाग (चौथाई पृष्ठ) काट कर कोट की जेब मे ठूँस लिया। फिर कहने लगे, "मेरे पास जूता ही नही है। आज कल घूमने जाता हूँ। फटा स्लीपर पहिनता हूँ। चलने मे बडी दिक्कत होती है।" "जूता ?" मैं चौकी, "तुम्हारे पास तो बहुत जूते हैं। हर साल लेते हो, पर पहनते हो नही।" अरे वो, वो तो सब छोटे हो गए हैं। एक मात्र यह स्लीपर पहनता था यह भी फट गया है, इसे पहन कर चला नही जाता।" उनका सयत उत्तर था। "इतनी दिक्कत थी तो पहिले क्यो नही कहा ?" उन्होंने मेरी बात सुनी या नही, नही जानती। तत्काल जेब से कागज निकालकर दिखाते हुए कहा, "देखो यह कितना अच्छा जूता है, मजबूत। दाम थोडे अधिक है, ४८) रु०। पर मैं जानता हूँ यह जूता होगा बहुत वढिया। 'बाटा' का है। तस्वीर देखो तो।" उसी दिन युनिवर्सिटी से आने के साथ ही हम सिविल लाइन्स गए। रास्ते भर 'बाटा' के जूतो की प्रशसा सुनी पर विडम्बना! पता चला यह नए 'डिजाइन' का जूता चार-पाच दिन बाद ही प्राप्त हो सकेगा, अभी इलाहाबाद की 'बाटा' की किसी भी दूकान मे नही है।

१० फरवरी '५४ की बात है। पत अस्वस्थ थे किंतु दफ्तर जाने का दिन था इसलिए चले गए। जाते समय कहा, "बस घण्टे भर मे आता हूँ, सिर दर्द है, बुखार है।" किंतु लौटने मे छह बज गए। घर पहुँचते ही चाय पी और कहा, "साढे सात बजे खाना खा लेना चाहूँगा। आठ बजे फिर से दफ्तर जाना है। अभी कमरे मे जा रहा हूँ, जरूरी काम है।" बहुत पूछने पर मालूम हुआ इलाहाबाद आकाशवाणी मे आज 'पेरोडी पर्व' है, "क्या बताऊँ गोपालदास जी दोस्त आदमी है। उनके कहने पर अस्वीकार नही कर पाया। मैं भी तुलसीदास की पेरोडी सुना रहा हूँ।" "तो क्या तुमने पेरोडी लिख रखी है ? तुम तो कहते हो बिना चित्तवृत्ति के तुम पत्र तक नही लिख सकते हो। फिर तुम्हारे साथ का कोई भाग भी तो नही ले रहा है।" वे मुस्कुराए, "यही तो

मेरी बात है। मना ही नही कर पाता। अब जैसे भी होगा लिखूंगा।" पत की यह पेरोडी गोपालदास जी तथा श्रोताओ के अनुसार बहुत अच्छी थी यद्यपि स्वय मैं सुन नही पाई क्यो कि प्रसारण-समय नही पता था। अब यह पेरोडी कहाँ गई पता नही। तभी मैंने पत से माँगी थी। उन्होंने कहा, "जिस कागज मे लिखी थी वह ऑफिस मे दे आए हैं।" पाच-छह साल बाद जब ऑफिस मे खोज करवाई तो फाइल मे उनकी कविता नही मिली। अब गोपालनास जी (१९६९) का कहना है कि पत ने आफिस को वह कागज दिया ही नही। जो भी हो, इतना सत्य है कि 'पेरोडी' खो गई है।

अप्रेल सन् '५४ से लेकर फरवरी '५५ अतिमा का सृजनकाल था। अतिमा की 'प्रेस कॉपी' बना कर पत ने दे दी थी। दो-चार माह तक अन्य कुछ करने का विचार नही था। "विचार करने की बात भी क्या, जब तक अदर से दुर्निवार प्रेरणा न उठे कोई लिख ही कैसे सकता है। लेखक 'यत्र' थोडी है। दो-चार वर्ष तक न भी लिखे कोई बात नही।'

गर्मी द्रुत गति से बढ रही थी। २० अप्रेल '५५ की सवेरे डाक से किसी की भेजी हुई अवलोकनार्थ एक पुस्तक मिली—भारत मे मृतक दाह की विधियाँ। सभी प्रकार की तस्वीरे थी। देखने मे न जाने कैसा-कैसा लगने लगा। पुस्तक बद करके अलग धर दी। ऐसी निर्मम पुस्तको की क्या उपादेयता है समझ मे नही आया—केवल शव को विभिन्न प्रकारो से बिठाया हुआ, खडा किया या लेटा देखना! तब समझ मे नही आया कि रात को ही यह पुस्तक दुर्भाग्य का सदेश ले आएगी। पत निश्चित होकर छत पर सोए हुए थे। अमावस की अर्ध रात्रि के समय सामने के घर के सज्जन, जो आकाशवाणी मे इन्जीनियर थे, नीचे से जोर से चीखें, 'पत जी, पत जी। आपके भाई देवीदत्त जी का देहांत हो गया है। लीडर प्रेस ने मुझे फोन किया है कि आपको बता दूं। टेक्सी दुर्घटना मे आपके भाई मर गए हैं।" मैं नीचे के मजिल मे सोई हुई थी। नीद टूटी और बात समझ मे आई तो दौड कर बाहर आई—सोचा सभवत पत ने न सुना हो, गाढ़ी नीद मे सोए होगे। धीरे-धीरे ही समाचार दूंगी। किंतु ऐसी बात कैसे कान मे नही पडती। मैं उन सज्जव से बात कर ही रही थी कि पत नीचे पहुँच गए आँखें मलते हुए। कोई दुर्घटना का आभास उन्हे हुआ। किंतु निधन की बात वे नही समझ पाए हैं, यह उनकी मुखाकृति से स्पष्ट था। मैं उनसे कहना चाह रही थी कि दुर्घटना से ग्रस्त हो देवदा अस्पताल मे है। लेकिन समाचार देने वाले सज्जन पत की सवेदना और वेदना से

अनभिज्ञ थे। उन्होने देवदा के निधन की बात बेहिचक दुहरा दी। पत ने दो-तीन बार पूछा "घातक दुर्घटना होगी, अस्पताल मे होंगे।" पर उन्होने अपने स्वर को दृढ करते हुए कहा, "मैं ठीक से जानता हू, उनका निधन हो गया है।" रात्रि का गहन एकाकीपन, नीद की नीरव शाति और हृदय विदारक घटना! उस पर कहने वाले का बिना व्यक्ति के ठीक से जगे अथवा बिना किसी भूमिका के एकदम कह देना। कुछ देर तो आँख खुलने मे ही लगी—स्वप्न और सत्य को समझने मे। नीद टूटने के क्रम मे स्वप्न ही भाले की चुभन के साथ सत्य बन गया।

पत के लिए भाई की मृत्यु, यह आकस्मिक मृत्यु, अकल्पनीय और असत्य थी। छाती पर हाथ रख कर वे रो उठे—"यह तो कलेजे मे भाला मारना है। दुर्घटना से क्यो मरा? यह मै नही सह सकूँगा। इतना दुःख तो मुझे कभी हुआ ही नही।" "ऐसे क्यो मरा! बीमारी और उपचार के बाद मृत्यु आती तो बुरा नही लगता।" "अब मै दिल्ली क्या जाऊँ? देवीदत्त की प्राणहीन देह मुझसे देखी नही जाएगी।" पत दिल्ली नहीं गए। देवीदत्त का बडा लडका लेनिन उस समय दिल्ली ही था। वह उनके अस्थिशेष लेकर इलाहाबाद आया। पत की मझली भाभी इलाहाबाद थी, अपने छोटे लडके अम्बादत्त के पास। उन्ही के पास लेनिन ठहरा और सब क्रिया कर्म विधिवत् अम्बादत्त ने किए क्योकि लेनिन का उपनयन सस्कार नही हुआ था और पहाडी समाज की प्रथा के अनुसार बिना उपनयन हुए लडका श्राद्ध कर्म नही कर सकता है। पत इस बात को मन से स्वीकार नही ही करते हैं। किंतु अपनी भाभियो की इच्छा के विपरीत वे स्वप्न मे भी मुह नही खोलना चाहते है। उनके प्रति मन मे आदर भाव तथा अत्यधिक कोमल भावना है। भाभियो के सदर्भ मे उनके मन को यह बात सतत सालती रहती है कि जिस घर मे वे ब्याही गईं, जिन भावनाओ के साथ उनके हृदय ने अपने वैभवपूर्ण ससुराल मे पैर रखा उसके विपरीत ही उनको जीवन व्यतीत करना पडे रहा है। अपने परिवार के किसी भी काम को करने के पूर्व पत का मन जानना चाहता है—बोज्यू (भाभी) क्या चाहती हैं? कही उन्हें बुरा न लगे। पत की भाभियाँ सकोचशील हैं। वे पूछने पर ही राय देती हैं, आदेश नही। किंतु उनकी राय पत के लिए आदेश ही है।

रात भर पत रोते-कलपते रहे, नीचे के कमरे मे उद्भ्रात-सा घूमते। दो-चार बार पास जाकर पूछा भी किंतु उनका एक ही उत्तर था, "कोई साथ

का नही है जिससे व्यथा-वेदना कह सकूँ। रात है अन्यथा मिस्टर राव (बालकृष्ण राव) को फोन करता, अम्बी (अम्बादत्त) के लिए कहलवाता, कोई तो आ जाता। यह व्यथा अकेले असह्य है।" सबेरा होने पर अम्बादत्त और मिस्टर राव आए। किंतु सबसे अधिक श्रीमती उमा राव ने ढाढस बधाया, सहारा दिया। वे दिनो तक आती रही, देर तक पत के पास बैठ इधर-उधर की बाते कर, ध्यान बँटाती रही, पर घाव तो समय से ही भरता है। टीम बनी रही, कचोटती रही। साल उदासी के साथ ही बीता।

मई मे वे अल्मोडा चले गए, अपने छोटे मामा के पास। इस बार अल्मोडा डेढ माह रहे—न कही जाना, न किसी से मिलना, न घर मे बाते करना अथवा बच्चो के साथ खेलना। दो-तीन बार अपनी छोटी भाभी (देवीदत्त की पत्नी) तथा उनके बच्चो से मिलने गए। भाभी का घर डेढ मील दूर था। अपनो के लिए इतना चलना कठिन न था पर भाभी का वैधव्यपूर्ण चेहरा । सामान्यत. जब घर मे बच्चे हो तो पत उनके साथ खूब हँसते-खेलते हैं। उन्हे रिझाने-चिढाने के लिए दुनिया भर के किस्से गढते हैं। कभी कहो कि बच्चो के साथ तुम्हारी खूब पटती है तो कहते है, "घर मे कितना हुल्लड होता है। ऐसे मे कोई काम कर ही कैसे सकता है। उदास बैठने से अच्छा यही है कि बच्चो के साथ हँस लूँ।" गर्मियो मे अल्मोडा आने पर बच्चो के साथ ताश भी खेलते है क्योकि "शोरगुल मे काम करना सभव नही होता।" ताश खेलते समय वे भी बच्चो के साथ बच्चा बन जाते है। यदि कोई ताश मे, बुरी तरह हार गया एव उस पर 'बडा कोट' चढ गया तो दिनो तक उसकी आफत कर देते है। उसकी पीठ छुएँगे और कहेगे, "कोट की गध आ रही है। अब दस बार 'डेटोल' से हाथ धोऊँगा तब जाएगी।" उसके पास आते ही नाक मे रुमाल लगा लेगे और कहेगे "दूर ही रहो तो अच्छा है।" कभी बच्चो की कोई चीज छिपा देंगे, दरवाजो के पीछे छिपकर उन्हे डराएगे। बच्चो से हिल जाने का आनद पत खूब लेते है। जब बच्चे उनके साथ बराबरी का व्यवहार करते है तो उन्हे अच्छा लगता है। बच्चे उनके पास मँडराते रहते है और उन्हे छकाने की तरह तरह की बातें सोचते हैं पर मन ही मन उनसे डरते भी है। घर के सभी लोगो को 'सैंदा' का सम्मान और आदर करते देख वे अपने आप उनका सम्मान करते हैं। फिर यह भी जानते है कि 'सैदा' का कहना घर के सब बडे मानते है। अत किसी बात की अनुमति लेनी हो तो 'सैदा' से कहलवा कर वे घर भर मे शोर मचा देते हैं—सैदा ने हाँ कह दिया है। घर मे अपनी तथा अपने से पूर्व की पीढी के लिए पत 'गुसैं' है तो बाद की पीढियों के लिए

'सैदा' ही है। मामा, चाचा, ससुर, जेठ, दादा, नाना, भाई अथवा सभी सबधो का सूचक है 'सैदा' सबोधन।

पत की एक छोटी भाजी (अब बडी हो गई है) जो तब ईसू की भक्त थी सोती बहुत थी। पत को उसे चिढाने का मसाला मिल गया, "भई सबसे अच्छा ईसू का भक्त होना है। खूब सोने को मिलना है।" जब कभी उसे चिट्ठी लिखते अपना 'मसीहो प्यार' अवश्य लिखते। उसकी एक एलशेयिन कुतिया थी, शैबा, जिसकी आदतें उसने बेहद बिगाड दी थी। उसके खिलाफ वह एक शब्द नही सुन सकती। कुछ कहो तो रोने लगती या बिगड जाती। पत अपनी चिट्ठियाँ मे उसे शैबा के बारे लिखते रहते है, "मैने उसे स्वप्न मे देखा। वह मुझे प्यार कर रही थी। कह रही थी मैं आभा को प्यार नही करती।" अथवा आभा से मिलने पर कहते, "मै भी एक ऐसी ही कुतिया पालूँगा। क्यो न तुम्ही शैबा को मुझे दे दो। तुम्हे तो यह प्यार भी नही करती। तुम दूसरी पाल लेना।" उनकी दूसरी भाञ्जी मछली की बहुत प्रेमी है। उसके घर मे मछली नही बनती। पत जब भी उसके लिए पत्र लिखते उसमे मछली अवश्य बना देते या फिर मछली के नाना प्रकारो की चर्चा कर देते।

लेकिन इस बार ऐसा कुछ नही था—बच्चे नज़दीक आकर चुपचाप लौट जाते। एकाध बार दबे स्वर ताश का भी नाम लिया, घर मे किसी को बनाने की बातें, कही जाने को चर्चा या फिर कोई प्रिय भोजन ' किंतु पत के मन मे किसी प्रकार का कोई उत्साह उत्पन्न नही हो पाया। अधिकतर गुमशुम कुर्सी मे बैठे रहते। न पढना, न लिखना, जीवन मे किसी प्रकार की कोई रुचि नही। उनको इतना उद्भ्रात तथा उदास देखकर कई बार आशका हुई कही ऐसे ही न रह जाए, औदास्य और अपनेपन के विश्व मे मानसिक सतुलन खो न बैठे। किंतु साल बीतते न बीतते उनकी मनोदशा मे हल्का परिवर्तन लक्षित होने लगा।

सितम्बर '५५ मे पत की जीभ मे घाव हो गया। डाक्टर और सिविल सर्जन ने रोग निदान किया—जीभ का कैसर। पंत एक क्षण के लिए चौके किंतु कोई विशेष चिन्ता व्यक्त नही की, "चिता की क्या बात है ? पहिले तो बिना उचित परीक्षण के कहा नही जा सकता कि यह कैसर ही है, और यदि हुआ ही तो मुझे अगले सप्ताह दिल्ली जाना है, वही से बम्बई चला जाऊँगा और अस्पताल मे भर्ती हो जाऊंगा।"

वे दिल्ली के लिए रवाना हो गए। ट्रेन मे सिगरेट पीते समय ध्यान आया कि कैसर के इलाज के लिए अस्पताल मे भर्ती होने पर सिगरेट, पान-तम्बाकू का सेवन नही कर पाएगे। इसी मनः स्थिति मे अलीगढ स्टेशन आ गया और उसके साथ ही सिगरेट का पेकेट खतम हो गया। अलीगढ स्टेशन मे सिगरेट, तम्बाकू न लेने के निश्चय के साथ ही सिगरेट का नया पेकेट नही खरीदा, न तम्बाकू एव पान लिया। दिल्ली के डाक्टर को जीभ दिखाने पर मालूम हुआ कि सिगरेट-तम्बाकू छुडाने के लिए कैसर निमित्त मात्र बन गया। एक दात अदर की ओर झुक गया था। उसी की रगड से जीभ मे घाव हो गया था। इलाहाबाद आकर दाँत रेतवाया तथा बीमारी से मुक्ति मिल गई। पत का निश्चय दृढ ही होता है। एक बार सोच लिया, चाहे किसी कारण से, फिर उसे पूर्णत अपना लेते हैं। अब वे सिगरेट और तम्बाकू नही लेते हैं, चाहे कोई कितना ही आग्रह क्यो न करे। कहते है," मेरा जी ही नही करता। एक बार छोड चुका हूँ। अब नही ले सकता।" सिगरेट–तम्बाकू के साथ एक प्रकार से पान खाना भी छोड दिया है। कभी किसी के आग्रह करने से ले लिया तो खाकर पछताते हैं—जीभ कट गई। बहुत ही अच्छा पान हो, और वह भी घर का बना, तो बात दूसरी है।

पत ने ३०-३१ साल की आयु से सिगरेट पीना प्रारभ किया था। इसके पूर्व, कभी किसी विशेष अवसर पर, होली या दिवाली अथवा मित्रो के आग्रह करने पर ही एक-दो सिगरेट पी थी। सिगरेट पीना प्रारंभ करने पर भी नियमित रूप से कभी नही पी, अक्सर दिनो या महीनो तक सेवन नही किया। 'चेन स्मोकर' वे कभी नही रहे। जिस दिन बहुत अधिक सिगरेट पी ली उस दिन सिगरेट की सख्या दस तक पहुँच गई। तम्बाकू पान का शौक उन्हे बेली रोड निवास काल (सन्' ४७-४८) मे लगा। किंतु तम्बाकू-पान तम्बाकू-पान खाने वालों की भाँति उन्होने कभी नही लिया। दिन भर मे चार-पाँच पान खा लिए बहुत है। टैगोर टाउन मे आकर, स्वच्छता, सुविधा तथा अतिथियो के अभ्यर्थनार्थ उन्होने एक बडा-सा पानदान भी रखा। यह पानदान सन् '५५ के सितम्बर से भण्डार मे एक किनारे रख दिया गया है। सन् '५५ से वे एक स्व-निर्मित पान का मसाला खाने के बाद लेने लगे। कत्था, चूना, बड़ी इलायची, छोटी इलायची, लौग, कपूर तथा काली छाली (दक्षिणी) अथवा और भी जो कुछ याद आ गया वह इस मिश्रण मे मिला देते। स्वय ही बैठकर अपने सामने कुटवाते, छनवाते तथा शीशी मे

भर कर अटेची मे रख लेते। इस मिश्रण मे वस्तुओ का अनुपात मन के अनुरूप रहता। बाजार से सामान मगवाते समय मन या कल्पना ने जो अनुपात निर्धारित किया वही ठीक लगता। सन् '६० से यह मसाला लेना भी छोड दिया। व्यसन के नाम पर अब उन्हे चाय का व्यमन है, वह भी दिन भर मे दो-तीन बार से अधिक लेनी अच्छी नही लगती। आयु ने एक सीमा निर्धारित कर दी है।

●●

१२

'अतिमा'

●

मई '५५ मे 'अतिमा' का प्रकाशन हो गया ।[1] इस पुस्तक के बारे मे, कवि के ही शब्दो मे, "अतिमा का प्रयोग मैंने अतिक्राति अथवा महिमा के अर्थ मे किया है, वह मन स्थिति जो आज के भौतिक मानसिक सास्कृतिक परिवेश को अतिक्रम कर चेतना की नवीन क्षमता से अनुप्राणित हो । प्रस्तुत सग्रह मे, प्रकृति सबधी कविताओ के अतिरिक्त, अधिकतर, ऐसी ही रचनाएँ सगृहीत है जिनकी प्रेरणा युग जीवन के अनेक स्तरो को स्पर्श करती हुई सृजन चेतना के नवीन रूपको तथा प्रतीको मे मूर्त हुई है ।" 'अतिमा' चरमोत्कर्ष की सदेशवाहिनी है यह वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के महत् उन्नयन का प्रकाश है । पुस्तक स्पष्टतः दिवगत भाई देवीदत्त को समर्पित की गई है किंतु मुद्रण के लिए देने के पूर्व–जब भाई जीवित थे—इसका समर्पण दिव्य चेतना को कर दिया गया था, जिसका प्रकाश ही 'अतिमा' या जीवन का चरमोत्कर्ष है ।

'मदिर के आँगन मे किसकी गूँज रही पद चाप ?
आ, यह गोपन हृदय प्रात या मधुर स्वर्ग का द्वार ?
देवदूत सा प्रेम, प्रतीक्षा मे कब से चुपचाप ।"

यह भक्त का प्रपत्ति क्षण है जिसका आनद 'अतिमा' की अधिकाश कविताओं मे मुखरित हो उठा है । इन कविताओ की भावभूमि अपनी सरलता और सरसता मे विशुद्धता को अपनाए हुए है । दिव्य का प्रेमी अपने वैयक्तिक सुख-

---

१. सभी संस्करणों के प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।

दुख से परे आतरिक आनन्द का भोक्ता है। बचपन, युवावस्था, वृद्धावस्था-जन्य कालिक स्थितियो मे रहता हुआ भी वह अक्षय है। प्रेम की अनुभूति, दिव्य के प्रति पूर्ण समर्पण, उसके जीवन को साध्य उदासी से आच्छादित नही होने देते हैं। प्रेम के अक्षय वय के धनी के लिए कैसा जीवन सूर्यास्त या उत्तरबेला! तभी तो 'नव अरुणोदय' मे वह कहता है—

'जग जीवन मे रे अस्तोदय,
मैं मानस धर्मा, अक्षय वय,
आओ, तम के कूल पार कर
नव अरुणोदय तुम्हे दिखाऊँ!'

'नव अरूणोदय' नव प्रकाश के सदेशवाहक 'गीतो का दर्पण' है। यह गीत आनदामृत का गीत है जिसकी लय और स्वर सगति मे सभी प्रकार की दुविधाएँ, समस्याएँ, प्रीति की मधुरिमा हैं। यह उस चेतना का दर्पण है जो नव-मानव के जीवन को प्रतिबिंबित कर रही है।

'यदि ह्रासोन्मुख वर्तमान से
ऊब गया हो अब मन,
गीतो के दर्पण मे देखो,
अपना श्री-नव आनन!'

× × ×

ऐसी कविता एव कविताओ को आत्म-केन्द्रिक[1] कहना अन्याय करना है। जीवन एव अनुभूत वर्तमान के रुदन को समझना, उसके निर्वैयक्तिक स्तर को वैयक्तिक स्तर पर घटित कर प्रकाश दीप जलाना, आत्मा के उस सत्य को अभिव्यक्ति देना है जो सार्वभौम है। ऐसी तादात्म्य की स्थिति साधना और अतर्दृष्टि की अपेक्षा रखती है। इसीलिए पत काव्य का 'मै' अह का सूचक नही है, यह मानवात्मा का प्रतीक है।

---

१. बच्चन : 'कवियों में सौम्य संत' पृ० १५८
तथा बालकृष्ण रावः 'आधुनिक और पुरातन का संतुलन'
'विवेक के रंग' : संपादक—देवी शंकर अवस्थी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्रथम संस्करणः पृ० २२–२६

'नव जागरण' नव बोध का सूचक है—'सुन पडता फिर स्वर्ण गुजरण'। मनुष्य मे दिव्य का प्रकाश उसके जीवन को शोभा, प्रीति, मधु और गधमय बना देता है।

मनुष्य के भीतर जो सहज स्फुरण होते हैं और उनकी परिणति मन और प्राणो मे जिस भाँति होती है उस पर 'जिज्ञासा' प्रकाश डालती है।

'कौन स्त्रोत ये !
ये किन आकाशो मे खोए
किन अवाक् शिखरो से झरते ?'

'नव जागरण' और 'जिज्ञासा' की इन पक्तियो की चर्चा करते हुए दिनकर जी कहते हैं, "ये पक्तियाँ चितन के जिस उच्च धरातल से उतरती हैं, उस पर खडी बोली-हिन्दी कविता के पाँव बहुत बार नही पडे है। ये कविताएँ रहस्यवाद-सी लगती हैं, किंतु, इसे जायसी अथवा कबीर का रहस्यवाद नही कह सकते। इनकी विशेषता किसी अपरिचित चितन को व्यक्त करने की बेचैनी से आक्रात भाषा मे है। "नील झील का जल" किस अतीन्द्रिय स्थिति का व्यजक है। ··"स्वच्छ अतलताओ की मौन नीलिमा" से समाधि की किस गहराई का बोध होता है? मन से हम भी उस स्थिति का धूमिल आ-भास पा रहे है जिनका सकेत इन शब्दो मे है। · 'उत्तरा' और 'अतिमा' को देखकर यह अनुमान होता है कि समर्थ कलाकार के हाथ मे हिन्दी भाषा वही चमत्कार दिखला सकती है जो विश्व की बडी से बडी भाषाओ ने दिखलाया है।"[1]

बालकृष्ण राव के अनुसार, "जिज्ञासा" शीर्षक विशुद्ध रूमानी कविता मे हमे कवि शिखरो की नही, अतलताओ की, पावनता की, बात कहता मिलता है, वह समतल प्रदेश पर खडा गाता है—

'कौन स्रोत ये ?
ये किन आकाशो मे खोये।
· · · · ·

कविता इतनी सुदर और सरस है कि उसकी थोडी-सी पक्तियाँ उद्धृत करके सतोष नही होता, पर एक छोटे से लेख मे थोडी सी पक्तियाँ ही उद्धृत की जा सकती हैं। कुछ पक्तियाँ और देखिए—

---

१. 'पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण : पृ० १३४

'कौन स्रोत ये ।
श्रद्धा औ, विश्वास—रुपहले
... ...
अलिखित गीतो के प्रिय पद बन ।'

निस्सदेह शैली मे नवीनता का आग्रह नही है, स्वर कवि का चिर-परिचित छायावादी स्वर ही है, फिर भी यह कविता बासीपन के दोष से मुक्त है, क्यो कि सुदर ही नही सरस भी है। मैने सरस जान-बूझकर कहा है, क्यो कि इस कविता की सहायता से पत जी के काव्य पर सामान्यतया लगाये जाने-वाले एक आरोप का आवश्यक खण्डन करना सुकर हो सकता है। रस की सर्जना नि सशय काव्य का धर्म है। रस केवल भावोद्वेग नही है, अनुभूति केवल इद्रियाश्रित नही है। 'जिज्ञासा' मे (और अपनी अधिकाश सफल कविताओ मे) पत जी जिस रस की सृष्टि करते है वह साधारणतया स्वीकृत परिभाषा से बँधा नही है, व्यापक अर्थ मे, व्यक्ति-चेतना का सहजग्राह्य अतीन्द्रिय रस है। पत जी की कविता का उस भावकवर्ग के लिए कोई मूल्य नही है जो रस की सकीर्ण परिभाषा करता है—पर उस भावक वर्ग के लिए सभवत. साँस लेने की प्रक्रिया ही जीवन है। नये विचारो का आघात जिनके लिए ऐन्द्रिय अनुभूति-सी प्रभावोत्पादिनी शक्ति नही रखता उनके लिए पत जी कह सकते हैं 'जानन्ति ते किमपि, तान्प्रति नैष यत्न .' है।"[1]

अपनी चौवन वर्षगांठ के उपलक्ष्य मे पत ने 'जन्म दिवस' कविता लिखी। यह कविता महिमान्वित है, प्रकृति की अद्वितीय चित्रमत्ता, घर और गाँव के नैसर्गिक वातावरण तथा नव युग प्रभात के आगमन से। प्रारभ मे कवि अपने अत. असतोष को वाणी देता है—

'आ, चौवन निदाघ अब बीते,
जीवन के कलशो-से रीते'

पत को अपनी रचनाओ से सतोष नही है। कहते रहते है, "मै क्या हूँ? किस योग्य? हाँ, कभी कुछ अच्छा लिख पाता!" जीवन के ये रीते कलश, वैयक्तिक और पारिवारिक सुख-दुख से तटस्थ, कवि कर्म की परिपूर्णता के

१. बालकृष्ण राव : 'आधुनिक और पुरातन का सन्तुलन'।
'विवेक के रंग' : संपादक देवीशंकर अवस्थी, पृष्ठ ३०-३२

आकाक्षी है और कवि कर्म विश्व मगल की आकाक्षा को आत्मसात किए है। कलशो के रीतेपन का बोध सौन्दर्यमयी प्रकृति के आँगन मे मातृहीन बालक की स्मृति को जाग्रत् कर देता है । पहाडी वसत का आगमन ! कूर्माचल की श्री सुषमा जब मदनोत्सव मना रही थी तब मातृ चेतना शिशु को प्राणो का सबल देकर अतर्हित हो गई। किंतु शिशु के जन्म गृह का विषाद गाँवो के खेतो की हरीतिमा, फेनिल झरनो के कलरव को छूता नही है। वहाँ तो युवक-युवती बातो ही बातो मे एक दूसरे के निकट आ गए है।

> 'आः, समदृष्टि प्रकृति ! विषण्ण आँगन मे स्वर्गिक स्मिति भर
> फूल उठे थे आड़ू, ललछौहे मुकुलो मे सुदर !'
> × × ×
> 'देख सुवा को छाई होगी आँखो मे हरियाली !
> छेडी होगी मस्त तान स्वर मिला मुखर मर्मर से,
> मधुर प्रतिध्वनि आई होगी घाटी के भीतर से'

यौवन के इस चापल्य के साथ ही विश्व प्रकृति मे नए भावो, नए उन्मेषो का जन्म हो रहा है। अवश्य ही यह उन्मेष विरोधो को विश्व ऐक्य मे, कुत्सित को सुदर मे, शिव को शिवतर मे और लोक सत्य को महत्तर मानव सत्य में परिणत करने के लिए हो रहा हैं।

> नही जानता, कब कृतार्थ होगा भू पर नव चेतन,
> तम पर अमर प्रकाश, मृत्यु पर विजयी शाश्वत जीवन!

कवि को पूर्ण विश्वास है कि भू जीवन महत्तर जीवन को अवश्य प्राप्त कर लेगा। इसलिए वह 'युग विनाश मे नव जीवन परिभाषा', 'विश्व ह्रास मे—नवल चेतना, सृजन प्रेरणा, भाषा !' को खोजता है। जिस दिन वह इन्हे प्राप्त कर लेगा उस दिन उसका जीवन सार्थक हो जाएगा—उसके जीवन के रीते कलशो को विश्व-मागल्य ही पूर्णता प्रदान कर सकता है ।

किंतु 'जन्म-दिवस' की विशेषता विश्व-कल्याण की आत्मिक आकाक्षा के साथ ही उसका प्रकृति चित्रण भी है।

> 'ताम्र हरित कुछ पल्लव, कुछ कलि कोरक स्वर्णिम
> जाडे से ठिठुरे, डालो पर बिलमाए थे,
> रजत कुहासे पट मे लिपटे अलसाए थे,

धरती पर जब शिशु ने पहिले आँखे खोली !
(आँगन के तरु पर तब क्या गिरि कोयल बोली ?'

"पत की काव्य-भूमि मे गिरि-कोयल की बोली हमे निरन्तर गूँजती मिलती है। नाना भाव-भूमियो को, नाना अनुभूति-प्रसगो को और नाना युग-कालो को पार करती गिरि कोयल की वह 'स्वर्ण-ज्वाल-सी तान' हिन्दी-मानस के 'तुहिन-वन' मे आज भी छाई हुई है। प्रकृति से साहचर्य एव निसर्ग से तादात्म्य कवि पत के व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषता है।"[1] इसी दृष्टिकोण को अभिव्यक्ति देते हुए बच्चनजी का कहना है, "प्रकृति पत जी की अभिन्न सगिनी है। वे प्रकृति के रूप, मन, आत्मा सबसे परिचित हैं। वे प्रकृति को देखते है, प्रकृति मे देखते है, प्रकृति को भेदकर उसके आरपार देखते है।
प्रकृति के पीछे जो शक्ति है उसका भी सकेत उन्होने बहुत जगहो पर किया है। अपने उत्तर काव्य मे उन्होने प्रकृति के विभिन्न उपादानो के द्वारा अक्सर अपने सूक्ष्म या दार्शनिक विचारो को प्रक्षिप्त (Project) किया है। 'जन्म-दिवस', 'गिरिप्रातर', 'पतझर', 'कूर्माचल के प्रति' शीर्षक कविताओ मे प्रकृति का विशुद्ध वर्णन बडी मनोज्ञता और मुग्धता से किया गया है। पर अब वे प्राय तब तक सतुष्ट नही होते जब तक प्रकृति के स्थूल रूपो मे किसी सूक्ष्म तत्व का अभिचित्रण भी नही देख लेते। 'अतिमा' की अतिम कविता मे विशेष रूप से उन्होने तलहटियो मे समदिक् सचरण और शिखर मे ऊर्ध्व सचरण को प्रतिच्छायित देखा है :

'मुखरित तलहटियो को, नि स्वर क्षितिजो को अतिक्रम कर'
.. ...
'आरोहो के वैभव से अवरोहो को कर कुसुमित ?'[2]

'रश्मि चरण-गीत', 'आवाहन' और 'तड़ित वीणा वाले गीत' मे नव्य चेतना का आवाहन है तथा उसका सर्वत्र सचरण देखने की आकाक्षा है। यह चेतना जब जन जीवन मे मूर्तिमान होगी तब युग मन जग जावेगा।

---

१. भारत भूषण अग्रवाल—'प्रकृति चित्रण : पत'
'रूपाम्बरा' : सम्पादक अज्ञेय, प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९६०
पृष्ठ ४०६,
२. 'कवियों में सौम्य संत', पृष्ठ १६०-१६१

'ओ जन युग की नव ऊषाओ,
× × ×
'अध गुहाओ मे प्रवेश कर
कुठित सत्यो के सोए स्तर
प्रीति शिखाओ मे प्रोज्वल कर
मनोभूमि पर उन्हे जगाओ ।'

यह मनुष्य के तामस प्रिय मानस एव प्राणिक जीवन का सात्विक पावक से युक्त होना है, सशय का विनाश और सत्य का प्रकाशित होना है ।

'दिङ् मडल हो मर्म गुजरित !'

'स्मृति' प्रेम प्रगीत है । इसकी व्यथा 'पी कहाँ' की मर्म वेदना मे है । यद्यपि काल क्रम मे यह 'पी कहाँ' स्वय पी बन जाता है, प्राणो की आकुलता शीतल धारा मे बदल जाती है ।

'अत क्षितिज' मे शुभ्र चैतन्य के प्रकाश को अभिव्यक्ति देता है, कचनार के पेड का रूपक । जिस भाँति हरे पत्तो के भीतर से कचनार के फूल निकलते हैं उसी भाँति प्राणो के हरित जीवन से एक नए जीवन का अभ्युदय हो रहा है—

'प्राणो की छाया मे श्यामल—
कचनारी कलियो का कोमल
क्षितिज खिला अरुणोज्वल !'

यह रस तन्मयता शश्वत सौंदर्य की चेतना को जाग्रत् करती है । आड् नीबू की डालो के पुलकित सौदर्य को बाँहो मे भरने के लिए कवि की बाँहे युग युग से लालायित है । आज उसे 'आत्म बोध' हुआ है कि वह शाश्वत सौदर्य ही है ।

'यह मेरी ही अमृत चेतना—
रिक्त पात्र बन जिसका पतझर
नई प्राप्ति के नव वसत मे
नव श्री शोभा से जाता भर !'

'मनसिज' 'आत्म बोध' के स्तर की ही कविता है । प्रकृति का मनोमुग्ध-कारी रूप—कामदेव—उर को मधु स्मृति मे लिपटा लेता है । कवि आनद

मधुरिमा की अनुभूति मे अपने आप को भूल जाता है। उसके बाहर-भीतर एक सर्वत्र आनद स्रोत प्रवाहित होने लगता है और उसे भासित हो जाता है कि 'तन मन प्राणो के जीवन' का आनदस्रोत कामदेव भी परम चैतन्य ही है।

'चद्र के प्रति', 'बाहर भीतर', 'ऊषाएँ' और गुजरण 'गीत' प्रार्थनापरक कविताएँ है जो प्रकृति और जीवन मे एक ही रस का सचार, एक ही ज्योति का प्रकाश देखती हैं।

'अतिमा' रचना का महत्त्व उसके पुस्तक के शीर्षक होने के सदर्भ मे भी समझना होगा। यह वस्तुतः शीर्षक का स्पष्टीकरण है, पुस्तक के अतर्तथ्य की व्याख्या है। 'अतिमा' अथवा दिव्य चेतना सर्वत्र प्रवेश करती है—जग जीवन की रज मे, उपचेतन के कर्दम मे, घायल खोहो मे, अधकार मे—और प्रकाश मे सबका उन्नयन कर देती है। सघर्ष-सघर्ष से परे, बाहर-भीतर, नीचे-ऊपर एव सभी मे छा कर यह जन भू जीवन का विकास करती है। यह मन से ऊपर उठकर शोभा क्षितिजो पर अपने पख खोल देती है। प्राणो के रथ पर चढ, मरकत रजत प्रसार पार कर यह भू विकास के पथ को व्यापक बनाती है। अत भू ऐश्वर्य ही अतिमा का सौदर्य और स्वरूप है, यही इसका गतव्य है क्योकि अत मे यह अपने आप को समर्पित कर देती है।

'नव गति, स्वर सगति के धर पग,
निज पथ दर्शक को श्रद्धा नत
सहज समर्पित कर उर अभिमत
भक्ति प्रीति युत शीश नवाती !'
यह अतिमा !'

'प्रार्थना', 'शाति और क्राति', 'सोन जुही', 'आ धरती कितना देती हैं' सदेशपरक रचनाएँ हैं। प्रार्थना का मुख्य स्वर है।

मानव को समझो हे, देवो के आराधक,
मानव के भीतर ईश्वर ही अविरत साधक।
महत् जगत जीवन की इच्छा ही प्रभु का पथ',
... ...

'प्रार्थना' का स्वर 'शाति और क्राति' मे ज्वलत हो जाता है :

'महत् युगांतर आज उपस्थित मनुज द्वार पर।'
... ..

'स्वय, युगो का मानव ईश्वर बदल रहा अब,

× × ×

'आज नाश के कर गढ रहे नवल मानव को'

नव निर्माण, नव जीवन पंत के काव्य का शाश्वत और स्वाभाविक स्वरूप है। उनके काव्य रूपको का तो यह ज्वलत स्वर रहा है जिसे उन्होने रूपको द्वारा व्यापक सामाजिक जीवन मे प्रतिष्ठित किया है। उपर्युक्त रचनाओ मे धरती की रत्नप्रसविनी क्षमता, 'सोनजुही की बेल' ऋतुओ एव प्रकृति के व्यापारो के माध्यम से कवि कहता है कि यदि मानव प्रकृति से सदेश ले तो वह दु ख से मुक्त हो सकेगा। पंत के इस आशावाद पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए दिनकर जी कहते है, "पत जी की इस आशा का स्रोत कहाँ से फूटता है? फिर भी इतना तो कहना ही पडता है कि अणुभीत सभ्यता के भीतर विश्व में आज एक ऐसा भी कवि है जो अत्यत आशामय और अभीत है तथा जिसे समस्त विनाश के भीतर भविष्य का दिव्य जीवन लहराता हुआ दिखाई दे रहा है। जहाँ तक नैतिक एव सामाजिक व्याप्तियो का प्रश्न है, पत जी का नवीन जीवन-दर्शन पूर्ण रूप से समझ मे आने योग्य एव व्याख्येय है। किंतु, उत्तरा तथा अतिमा का धरातल सामाजिक नही है। पाठको के सामने तो अभी जीवन की विभीषिकाएँ उल्लग होकर नाच रही हैं। फिर वह उस जगत् के चित्र मे विश्वास कैसे करे जो इन विभीषिकाओ के शमन के बाद प्रकट होने वाले हैं?[1] 'उत्तरा' और 'अतिमा' मे ऐसी कविताएँ है जिन्हे हम आध्यात्मिक कोटि से अलग रख सकते हैं। किंतु, सब मिलाकर इन दोनो पुस्तको का धरातल अध्यात्म का धरातल है, यद्यपि, यह, स्मरण रखने की बात है कि पत जी के अध्यात्म मे भौतिक स्पर्श भी समाहित रहता है। इन कवितायो की भाषा रन्दे और रुखान के यथेष्ट प्रयोग से अत्यत निखरी हुई है तथा उनके अदर जो भाव हैं वे बराबर हमे परिचित विश्व से निकालकर अपरिचित की ओर ले जाना चाहते है।

---

१ इसके उत्तर में एक ही बात कहनी है—जीवन में दुःख, अशुभ और अन्याय, के आधार पर क्या हम कह दें क ईश्वर नहीं है। दिनकरजी स्वयं आस्थवान् हैं। आस्था आशा की परिणीता है, न कि निराशा की।

'चीर बुद्धि के फेन, विचारो के बुद्बुद
जाने कब कूद पडा आकुल मन
नील झील के जल मे'[1]

'सोनजुही'[2] की बेल की समस्त सुदरता, कोमलता, और लावण्य का रहस्य उसका त्यागमय जीवन है .

सोनजुही की बेल
गध बन उडी, भरा नभ का मन ।
× × ×
'प्रेम हो जग का इति अथ,
त्याग जन सारथि अभिमत'

---

१. पंत प्रसाद और मैथिलीशरण; पृ १३१–१३३

२. इनमें सभवतः 'सोनजुही' सुंदरतम है 'सोनजुही' से कुछ थोड़ी-सी पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत करना निरर्थक होगा क्योकि एक तो यह समूची कविता उद्धृत करन योग्य है, दूसरे इसे सभी पाठक जानते ही हैं । इसके अंत में भी पंत जी दार्शनिक प्रवचन चिपका देने का लोभ संवरण नहीं कर पाए ·· · ।"

"बहुधा उनका दार्शनिक, उपदेशात्मक स्वर उन्हे मुक्त विगह-सा उड़ने न देकर पर काटकर पिंजड़े मे बन्द कर देता है ।"

बालकृष्ण राव : 'विवेक के रग' संपादक देवीशंकर अवस्थी, पृ० ३२ तथा २७

तथा देखिए, "प्रतीकात्मक कविता का उत्कृष्ट उदाहरण 'कौए बतखें मेढ़क' है। अंत की चार पंक्तियो · मे व्याख्या करने की कमजोरी तो आई है, पर कवि संयम कर गया हैं। 'सोनजुही' भी इसी श्रेणी में आएगी । ··· व्याख्या इसमें भी है पर संयमित ।"

बच्चन : 'कवियों में सौम्य संत; पृ० १६२

व्याख्या एवं उपदेश प्रौढ़ता और अनुभूति का प्रतिबिंब एवं जीवन को उसकी गहराई तथा सम्यक्ता में आत्मसात् करने का परिणाम है । सौंदर्य के माध्यम से जीवन सत्य का संदेश देने वाली रचनाएँ ही शाश्वत मूल्य की होती हैं क्योंकि सत्य और सौंदर्य, शिवं-सुंदरम् एक दूसरे के बिना अपूर्ण हैं ।

'अतिमा' की अत्यानुप्रासहीन कविता 'आः धरती कितना देती है !' पर्याप्त जनप्रिय हुई है ।[1] बचपन का भोलापन, शब्दो की सरलता तथा भावो की सहजता इस कविता मे भरपूर है। पहिले दिन पत आकाशवाणी के काम से लखनऊ गए थे और दूसरे दिन शाम सात बजे वापिस आ गए । सदैव की भाँति आते ही चाय नही माँगी । सीधे अपने कमरे मे चले गए, "दस मिनट का आवश्यक काम है।" कमरे से जब निकल कर चाय पीने के लिए चारपाई पर लेटे तो हाथ का कागज़ दिखलाते हुए कहा, "नदिता जी (श्रीमती भगवतीचरण वर्मा) ने सेम बोई थी । बता रही थी कि खूब फली। मित्रो, पडौसियों मे बाँटी ·····। रास्ते मे यह कविता मानस में उतर आई। सोचा,

---

१. "आः धरती कितना देती है" जैसी रचनाएँ 'धुआँधारवादी तथाकथित प्रगतिवादियों' में से कितने लिख सकते हैं ? उसके लिए आंतरिकता की आवश्यकता भी है ।"

उपाध्याय : 'पंत जी का नूतन काव्य और दर्शन', पृ० ७१६–७२० तथा "'अतिमा' में ऐसी रचनाओ की भी कमी नहीं है जो तुकाग्रह से मुक्त होकर शब्दार्थों की स्वाभाविक लय में बंधी हुई न जान पड़ती हों । एक बार कवि ने कौतूहल वश मिट्टी के नीचे सेम के बीज दबा दिए, कालान्तर में—

'देखा, आँगन के कोने में कई नवागत
· · ··· ···
'डिम्ब तोड़ कर निकले चिड़ियो के बच्चों से'!

छायावाद युग का कवि सेम के बीज और उनके फूटते हुए अंखुओ को शायद ही अपनी रचना-सृष्टि का विषय बना पाता, और वह भी निम्न-लिखित सादगी के साथ —

'बीज सेम के रोपे थे मैंने आंगन में
· · ··
'नन्हें नाटे पैर पटक बढ़ती जाती हैं ।'

रवीन्द्र भ्रमर : 'अतिमा के पंत', साहित्यकार, अगस्त १९५७ पृ० २१ साहित्यकार-संसद इलाहाबाद-२

घर पहुँच कर पहिले कविता लिख लूँगा—अन्यथा भूल जाता।" नदिता जी से प्रेरणा ग्रहण कर पत ने, सचमुच मे ही, सेम के बीज बोए। बचपन मे अपने एक नौकर के कहने पर कई बार पैसे बोए थे—दिनो तक पेड उगने की प्रतीक्षा की किंतु । इस बार सेम के बीज बहुत उत्साह से बोए यद्यपि बोने के बाद पौधे उगने की बात भूल गए थे। सेम के पौधे उगे, लताओ मे सेम की फलिया लगी और इतनी टूटी—

'आ इतनी फलियाँ टूटी, जाडो भर खाईं,
सुबह शाम घर घर मे पकी, पडोस पास के
जाने अनजाने मब लोगो मे बँटवाईं,

किंतु सेम की पत्ती का खुरदुरापन जब पत ने अनुभव किया तो उनकी कवि-कल्पना उदास हो गई—"पहिले यह पता होता कि इसकी पत्ती इतनी खुरदुरी और बदसूरत होती है तो यह कविता हरगिज नही लिखता।"

'कौए बतखें मेढक', 'प्रकाश पतिंगे छिपकलियाँ' तथा 'केंचुल' विशेष रूप से प्रतीकात्मक है। ये तीनो ही कविताएँ दलितो, दयनीय जीवन व्यतीत करनेवालो के प्रति सहज सहानुभूति व्यक्त करती है, लचीली, चचल एव मोहित भाषा मे उनके जीवन को स्वर्णाभा से युक्त करती है।

'कहाँ मढा लाए सोने से अपनी चोचें
सारे कौए, प्यारे कौए,
... ...
'पीले, हरे, मटैले मेंढक,
कहाँ गढा लाए कठो मे वीणा के स्वर,—
प्रेम तत्व यह ! सृजनातुर अगजग का अतर' !

यदि 'कौए बतखे मेढक' दिव्य चेतना के स्पर्श से निम्न जीवन के विकास एव रूपान्तर को अभिव्यक्ति देते हैं तो 'प्रकाश पतिंगे छिपकलियाँ' इस तथ्य पर प्रकाश डालती है कि समस्त जीवो मे एक ही चेतना का सचरण है—तुच्छ सरट से लेकर उच्च ज्योति तक एक ही सत्य है। यदि मानव मन की तुच्छ प्रवृत्तियाँ आत्मिक प्रकाश के अनुरूप कार्य करने लगें तो नि सदेह उनकी

तुच्छता का दिव्यीकरण हो जाएगा[1] 'केंचुल' के माध्यम से मन की जीर्ण-जर्जर प्रवृत्तियो का विश्लेषण किया गया है। ऐसी प्रवृत्तियो को अपनाने वाले

---

१. "प्रकाश पतिंगे और छिपकलियो में पतिंगो को भावनावादियो व छिपकलियो को भौतिकवादियो के रूप में प्रस्तुत किया है और भद्दे से भद्दे आरोप किए गए हैं। व्यंजना की दृष्टि से कविता अच्छी है परन्तु यह अच्छाई कितनी मँहगी है, यह कोई भी जान सकता है। डाँट के स्वर मे कवि कहता है—

'उच्च उड़ान नहीं भर सकते
तुच्छ बाहरी चमकीले पर
महत् कर्म के लिए चाहिए
महत् प्रेरणा बल भी भीतर'

···'देहवादियों को चाहिए वे आत्मा का आदर करें, यह है कवि का उद्देश्य और इस बहाने सामाजिक चेतना का उपहास करना, यह है महत् उद्देश्य !"

विश्वम्भरनाथ उपाध्याय : 'पंतजी का नूतन काव्य और दर्शन', पृ० ७२७
आलोचक की आलोचना में कितनी सच्चाई है, यह किसी भी निष्पक्ष मानस से छिपा नहीं रह सकता। स्वयं उपाध्याय जी अपने आरोप के झूठेपन को अपनी इसी पुस्तक के पृ० ७३१ में स्पष्ट कर देते हैं। "कवि सदा आदर्शवादी रहा है · अनेक उदार अध्यात्मवादियो में गहरी संवेदना, जनता के प्रति प्रेम तथा विश्व कल्याण की सच्ची भावना है। हम वर्ग के खूँटे से बाँधकर कला-कृतियो का अध्ययन करना पाप समझते हैं · कलाकार में स्वाभाविक 'सदिच्छा' अवश्य होती है यदि वह कलाकार है।''' पंतजी की कविता में शांति का जो स्वर है वह सामान्य जीवन में नहीं, राजनीति के क्षेत्र में भी कितना सहायक है यह हम कह चुके हैं। क्योंकि कवि मानवतावादी है वह विश्व का विनाश नहीं देख सकता।"
यह भी सामान्य बोध की बात है कि सामाजिक चेतना को अपमानेवाला मात्र देहजीवी नहीं हो सकता। उसे दैहिक धरातल से ऊपर उठकर सामाजिक जीवन, मानव जाति की सामाजिक एकता के अर्थ को समझ कर संकीर्ण प्रवृत्तियों पर नियंत्रण रखना एवं उन्हें संयमित करना होगा।

व्यक्ति मृतप्राय सिद्धातो का अस्थि-पजर मात्र हैं जिनका जीवन मिथ्या तृष्णा, असामाजिक ममता तथा अध परम्पराओं ने अवरुद्ध कर दिया है ।

'ये छूँछे केचुल, जड केंचुल,
दृष्टि भयावह, पर जीवन-मृत,—
कौन सत्य वह ? रीढ हीन जो
बाह्य तथ्य को रखता जीवित !'

मानव मन की सकीर्णआओ के प्रति सहिष्णुता की परिचायक रचना 'आत्म दया' है । 'पाप से घृणा और पापी को प्यार'—वह उक्ति है जो सामाजिक एव मानवतावादी नैतिकता और धर्म का मूल मत्र है ।

'मैं सामाजिक जीव, ज्ञात मुझको मानव मन,
दुर्बलताओ से जो लडता रहता प्रतिक्षण !
क्षमा नही, मैं उसे प्यार करता इस कारण !

ये पक्तियाँ पत के स्वभाव और व्यक्तित्व का ही मुखरित स्वर है। दुष्ट व्यक्तियो के लिए उदार भावना, आर्द्र आँखो से उन्हे बच्चा या मूर्ख कहना, उनकी बुराई करने वालो को ही 'छोटी बुद्धि' का कह देना या घरवालो पर ऐसी बाते करने पर झुँझला उठना, पत व्यक्तित्व की वह विशेषता है जिस कारण उनके इष्ट-मित्र उनसे कहते है—'आप दुष्टो को प्रोत्साहित करते है ।'

'स्वर्णमृग' सीता के अपहरण की कथा का रूपक लेकर जीवन एव मानस विकास पर प्रकाश डालता है। स्वर्ण मृग मर गया है किंतु मानव मन की पिपासा अभी शेष है ।

'शेष अभी जीवन मरीचिका,
तृषित रूप रस के माते दृग ।'

स्वर्ण मृग यद्यपि स्थूल रूप से अगोचर हो गया है किंतु वह मानव अतर मे जीवित है। कामना रूपी पशु का वध करने के विपरीत उसका उन्नयन करना होगा—

लक्ष्य न अब मानव पशु का वध,

× × ×

'अब सस्कृत होगा जीवन पशु
अतर की स्वर लय मे पोषित,
पचवटी की अमृत चेतना
धरा स्वर्ग मे होगी विकसित !

पत का यह दृष्टिकोण व्यापक, स्वस्थ और मनोवैज्ञानिक है। अभावात्मक वैराग्यवादी दृष्टिकोण एकागी और अवाछनीय तो है ही, जीवन के लिए अकल्याणकारी भी है। जीवन को उसकी सपूर्णता मे ग्रहण करना ही श्रेयस्कर है। स्वर्णिम चेतना किसी भी स्तर के जीवन का निराकरण नही करती। अधकार और प्रकाश उसी के रूप है। स्वर्ण मृग और अहेरी एक ही है ।

जाने कब बाहर कुदान भर
ज्योति बन गई थी अँधियाली।

स्पष्ट ही स्वर्ण मृग का वध सभव नही है। उसको शिक्षित करना होगा। स्वर्ण चेतना मनुष्य की पशुता का रूपातरण कर देगी। उसे अपने स्पर्श से शिवमय बना देगी क्योकि वह तथा स्वर्ण मृग मूलतः एक ही है।

'वही सुनहला वंशी का स्वर,
द्रष्टा, वही विषय पर मोहित !

'अतर्मानस', 'प्राणो की सरसी', 'गीत', 'दिव्य करुणा', 'ध्यान भूमि' तथा 'गीत' ध्यान मन की स्तुतियाँ है। ये दिव्य का समस्त जीवन मे आत्राहन और आस्वादन है। अनुभूति की मधुरिमा और उल्लास मे भीगी हुई ये नैसर्गिक अभिव्यक्तियाँ जीवन के शुभ्र, सहज और आनदमय रूप का वास्तविक और मूर्त प्रतिबिब है।

'जाने कब कूद पडा आकुल मन
नील झील के जल मे !'

× × ×

'किस निरभ्र नभ का यह आँगन
पख खोल उड़ता पागल मन,
झरते निभृत उषाओ के शत
स्वप्न गुजरित निर्झर !'

'नव चैतन्य', 'प्राणों की द्वाभा', सृजन वह्नि', 'स्वर्णिम पावक', 'जीवन प्रवाह' आदि रचनाएँ स्वर्णिम चैतन्य की आभा से ज्योतित है। मन, इन्द्रिय, भू-जीवन, मधुमास, पतझर ये सभी आत्मा के शाश्वत आनदमय उज्वल जीवन के पवित्र निर्झर गान हैं।

'विज्ञापन' शीर्षक व्यग्यात्मक है जो किसी भी दर्प-स्फीत लेखनी के आत्म विज्ञापन का सूचक है। यह मुक्त छद पर मुक्त व्यग्य है।[1]

'सोना पिघल कभी क्या
पानी बनता ? कैसी बातें !
... .
'तुक ? शुक मुक्त हुआ
स्वर की रट के पिंजर से सहसा,
मन की डाल डाल पर गाता
वह किंशुक सा मुँह बाऽ!'

'मुरली के प्रति' रचना मे कवि अपनी कविता को सबोधित कर कहता है—

'ऐसे जीव बहुत सुरपुर मे
साँप लोटते जिनके उर मे,
ये धामिन, कौडिया, गेहुँअन,
इनको लगा न कोल !'

पत का दृढ विश्वास है कि दुष्टो की दुष्टाई से दुःखी नही होना चाहिए और न उनके बुरे आचरण पर ध्यान ही देना चाहिए। ऐसे व्यक्ति मूर्ख होते हैं अथवा परिस्थितियो से जकडे रहते हैं। अन्यथा कोई भी समझदार व्यक्ति 'छोटी बात' कर ही कैसे सकता है। इसमे स्वय उसका अहित है, वह मानसिक शाति खो देता है।

---

१. तुलना कीजिए—"इस कविता (विज्ञापन) में कवि अपने आप से प्रश्न करता है कि मै जो कुछ लिख रहा हूँ वह क्या कोरा गद्य है ? मेरी कल्पना सुवर्ण की थी, किंतु, क्या सुवर्ण गल कर पानी बन सकता है ?··· ···" दिनकर : 'प्रसाद, पंत और मैथिलीशरण,' पृ० १३६

'अतिमा' मे युग की विद्रोही प्रवृत्ति को स्वर देने वाली रचना है 'विद्रोह के फूल।'

'कहाँ गूँथ लाई कबरी मे
रक्त जिह्व रतनार फूल
आँगन मे अडी जपा की झाडी ?'—

'गिरि प्रातर' और 'पतझर' प्रकृति वर्णन मे निमज्जित रचनाएँ है। 'पतझर' प्रकृति वर्णन के माध्यम से सदेशपरक रचना है। शायद ही किसी प्रकृति प्रेमी का मन पतझर पर रीझा हो। पत को पतझर का अनलकृत सौदर्य प्रिय है क्योकि उसकी 'अपरूप, दिगबर, दारुण, सुदर, चिर ताडव रत' प्रकृति नव निर्माण की सूचक है। पतझर को देख पत का मानव-कल्याणकारी विश्वास दृढ हो जाता है—यह पतझर जीवन वसत का अग्रदूत है।

आत्मा और देह के सबध पर प्रकाश डालने वाली कविता 'दीपक' है। जीवन अपनी पूर्णता मे इन दोनो का समुचित समावेश करता है। 'दीप रचना' भू को मगलमय बनाने के लिए सामूहिक जीवन के सौदर्य पर प्रकाश डालती है। 'दीप' और 'वेणु कुज' चेतना के पावक का वर्णन करते है। चेतना की अग्नि-लौ जीवन को मुग्ध राग भावना मे मज्जित कर देती है।

'गोपी मोही सुन मादन स्वन,
राधा रोई अर्पण कर मन,
यह प्राणो की पावक वशी
बजती रहती रे क्षण अनुक्षण !'

'स्फटिक वन' रूढिवादिता के विश्व पर व्यग्य है, जो दीखने मे शुभ्र है और अतर मे अस्थि ककाल तथा निर्जीव है वह जीवन को मरणोन्मुख बना रहा है। 'युग मन के प्रति' आज के युग मन की स्थिति को वाणी देती है जिसमे आशा-निराशा, तिक्तता-मधुरता, प्रकाश-अधकार, ह्रास और विकास की शक्तियाँ आँखमिचौनी खेल रही है। 'नेहरू युग' नेहरू जी की सस्तुति न होकर नवीन सचरण एव पत के आदर्शानुकूल आध्यात्मिक सामाजिकता का प्रतीक है जिसकी शुभ्रता का वे अभिवादन करते है।

'नव सर्वोदय, नव अरुणोदय।'

'सदेश'[1] व्यक्तिपरक होते हुए वस्तुपरक रचना है। पत की व्यक्तिनिष्ठ कविताओ की यह विशेषता है कि वह निजत्व का आभास देते हुए वस्तुगत सार्वभौम धरातल पर विचरती है एव इनकी चेतना जन-मगलाशा कामी है। सरल कथोपकथन प्रणाली, स्वाभाविक मानसिक सघर्ष अथवा अनुभूति के माध्यम से कवि एक महान्, व्यापक, जीवत दर्शन देता है। अनास्था, सदेह, अति व्यक्तिवाद और निराशा के युग मे 'सदेश' एक दृढ आत्म-बल एव प्रबल सबल का दायक है।

मै खोया खोया सा, उचाट मन, जाने कब
सो गया, तखत पर लुढक, अलस दोपहरी मे,
.. .

'मन को विराट् की आत्मा से कर सर्वयुक्त
तुम प्यार करो, सुदरता से रहना सीखो,—
जो अपने मे ही पूर्ण स्वय है, लक्ष्य स्वय !
कवि, यही महत्तर ध्येय मनुज के जीवन का।'

पत की ऐसी प्रतीकात्मक रचनाओ के बारे मे श्री राव का कहना है, "क्या मात्र नवीनता लाने के लिए ही कवि ने उनमे 'नवीन रूपको और प्रतीकों' की निर्माण-प्रक्रिया का समावेश किया है ? ऐसी भ्राति 'सोनजुही' को देखकर हो सकती है, क्योकि 'सोनजुही' इन नवीन प्रतीको का भार आसानी से नही उठाती—कहना तो यो चाहिए कि उठाती ही नहीं। पर अन्य रचनाओ के बारे मे यह कहना अन्याय होगा। 'कौए, बतखें और मेढक,' 'स्वर्णमृग,' आदि ऐसी कविताएँ भी 'अतिमा' मे मिलेंगी जिनका सृजन ही इन प्रतीको को काव्या-त्मक प्रेषणीयता देने का नाम है। इस तरह की रचनाओ मे सभवत. सबसे

१, "इस सग्रह मे विशेष ध्यान आकर्षित करनेवाली कविताएँ हैं—'आः धरती कितना देती है' और 'संदेश'। अंत्यानुप्रास हीन वृत्तों से कवि ने स्फुट रचनाएँ—मै तो उन्हें गीत भी कहना अनुचित न समझूँगा—लिखने का सफल प्रयोग किया है। छंद तुक से मुक्त होने के प्रयास में अगर इस मध्यवर्ती श्रेणी पर कदम रक्खा जाता तो शायद नई कविता इतनी विशृंखल न होती, जितनी कि वह आज हो गई है।"
बच्चन : 'कवियों में सौम्य संत,' पृ० १६२

सफल और ऊँची कविता 'सदेश' है, जो आरम्भ से ही अपनी शक्तिमत्ता का परिचय देती हुई प्रतीको मे प्राण-वायु का सचार करती चलती है और अन्त होते-होते सच्ची कविता की वह सपन्नता प्राप्त कर लेती है जो अक्षय और अपरिहार्य होती है और जिसका आशय उसके अर्थ से ही कही व्यापक और सबल होता है। 'सदेश' के आरम्भ की पक्तियाँ है—

'मै खोया-खोया-सा, उचाट मन, जाने कब

'थी चमक रही टूटे दर्पण के टुकडे सी'—

इस प्रकार कवि हमारा परिचय उस धूप से कराता है जो सदेश-वाहिका बन कर आयी थी। किसे सन्देह हो सकता है कि यह सचमुच धूप नही है, मात्र प्रतीक है। अपराह्न मे उदास मन लेटकर सो रहने के बाद उठने पर जिस रिक्तता का अनुभव हम सबको होता है, हो सकता है उससे यह, 'असतोष का भारी, रीता, बोझ' क्या भिन्न है? पर इस साधारणीकरण मे वैशिष्ट्य का लोप नही हुआ है। असाधारण, किंतु सहज, सिद्धहस्तता का परिचय देता हुआ कवि 'जाडे की चिट्टी, नरम धूप' को ऐसी विलक्षणता दे देता है कि उसके लिए सन्देशवाहक का कार्य अद्भुत या असाधारण नही रह जाता। यह कविता छायावाद और आधुनिक युग की भाव-भूमियो के बीच सेतु-सी, दोनो से कुछ भिन्न पर दोनो की सम्पत्ति है और पत जी के काव्य की अद्यतन परिणति का सुदर उदाहरण प्रस्तुत करती है। 'अतिमा' न आधुनिक है, न पुरातन : उसकी सार्थकता और सीमा इसी मे है कि वह दोनो को एक-दूसरे से मिलाती और एक को दूसरे का पूरक बनाने की चेष्टा करती है।"[1]

'अस्तित्वाद' एकागी दृष्टि की अयथार्थता लक्षित करता है और 'आत्म निवेदन' आत्मविश्लेषण द्वारा घटवासी की प्रणत अनुभूति है।

---

१. 'विवेक के रग' : संपादक देवीशंकर अवस्थी, पृ० ३३-३४ तथा देखिए,
"As Atima showed us convincingly, Pant is far, far from being a spent force. He is quite capable of throwing us a poem of surpassing beauty and freshness in the midst of a series of didactic keepsake verses under the weight of which a lesser reputation might crumble."—C. B. Rao Sunday Standard : the old Guard.

(dated 24-3-'57)

'पीकर तिक्त मधुर मधु ज्वाला
रिक्त किया जीवन का प्याला,
मैं सयत, चैतन्य रहा नित,
हुआ न मोह प्रमत्त एक क्षण !'

पत की इस रचना की चर्चा एव व्याख्या करते हुए बच्चनजी कहते है, "उनकी प्रारभिक प्रकाशित रचना 'वीणा' को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि वे काव्य-साधना का स्वप्न एव व्रत लेकर चले थे। इस आत्म-साधना के पथ मे जो प्रलोभन आए, जो सघर्ष करना पडा, जिन महत् उद्देश्यो और आदर्शो से कवि ने प्रेरणा ली, उनकी थोडी-सी झलक भर हमे गुजन' मे मिलती है अपनी पचपन वर्ष की अवस्था मे कवि अपने पिछले साधनामय जीवन पर दृष्टिपात करता है और कूर्मवत् दृढव्रत रह सकने का श्रेय 'भगवत् करुणा' और अपनी श्रद्धा को देता है—

'प्रतिपल दे कटु अग्नि परीक्षा,
पग पग पर ले असि पथ दीक्षा,
हुआ तप्त, मर्माहत भी मैं,
दु ख दग्ध, कुठित न किया मन !

इसमे कोई सदेह नही कि पत जी को वाणी उनके साधना-शुभ्र जीवन की वाणी है। उनकी समस्त रचनाओ पर तुलसी की यह अर्धाली विश्वास-पूर्वक लिखी जा सकती है—'इहाँ, न विषय कथा रस नाना।'"[1]

'अभ्यर्थना' कवि-कल्पनादर्श राष्ट्रपति की अभ्यर्थना है। सन् '५४ मे राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद इलाहाबाद आए थे। उनके आगमन की बात सुन 'सदेश' के कवि के मानस मे भारत के योग्य प्रिय राष्ट्रपति का व्यक्तित्व मूर्त हो उठा।

'लोक गीत' का रचना-काल सन्' ४८ है, वह वर्ष जब पत को पूर्ण आशा थी कि 'लोकायन' सस्था स्थापित करने मे उन्हे सफलता मिलेगी। उन्होने यह गीत तथा चोराहा, छाया, और युग पुरुष, नाटक अपनी सस्था की दृष्टि से ही लिखे थे। यह कहना नितात भ्रातिपूर्ण होगा कि "लोकगीत' कसफल स्वप्न 'लोकायन' का आदर्श बताता है। अवधी मे एक कहावत कही जाती है 'प

---

१. 'कवियो में सौम्य संत', पृ० १५६-१६०

मुई सास, एसौ आए आँस' यानी पारसाल सास मरी और इस साल आँसू आए ।"[1] 'लोकायन' मर नही सकता, न वह मरा ही है, क्योकि वह पत के समस्त काव्य का ज्वलत स्वर है। वैसे इसका जन्म काल 'हार' का अतिम परिच्छेद, 'एकादश पुष्प' है, 'ज्योत्स्ना' ने इसे यौवन प्रदान किया और 'लोकायन' ने परिपक्वता, अब यह अपनी बरगद-सी व्यापक बाँहो, शाखाओ, ढेरो हरे पत्तो की जीवन हरीतिमा से मुस्कुराती मानस सततियो द्वारा शाश्वत तारुण्य का भागी बन गया है । इस अर्थ मे 'लोकायन' चिर युवा अश्विनी कुमार है ।

सन् '५४ की गर्मियो मे पत का मन कौसानी से हिमालय का दर्शन करने के लिए लालायित हो उठा । किंतु आवास की सुविधा न होने के कारण वे वहाँ जा नही पाए। लाचार रानीखेत गए। वहाँ हिमालय के दर्शन करने के साथ ही उनका मन आनदविभोर हो उसके प्रति प्रणत हो गया । 'कूर्माचल के प्रति' रचना अपने अनिंद्य सौदर्य के कारण सदैव जीवत और शीर्षस्थ रहेगी । यह सौदर्यप्रधान, वर्णनात्मक सहज स्फुरित रचना है। अपने प्रिय तात कूर्माचल को अपने कूर्मवत् स्वभाव का आश्वासन देते हुए पत उसके सौदर्य और महानता का रस-प्लावित वर्णन करते है । कूर्माचल मे जिस भाँति छहो ऋतुएँ अपनी क्रीडा मे लीन रहती है और अपने क्रीडा-लास से कूर्माचल को विशाल सौदर्य वैभव प्रदान करती है, उसका असाधारण मनोरम वर्णन ही 'कूर्माचल के प्रति' कविता है। किंतु केवल रसवती अपने आप मे पूर्ण नही है। इन ऋतुओ के वैभव की सार्थकता स्वरूप कूर्माचल का 'ध्यानावस्थित ऊर्ध्व भाल' है, उसका तेजोमय, महिमान्वित, आत्म केन्द्रित जाग्रत आध्यात्मिक स्वरूप है ।

'बाल प्रवासी शिशु घर लौटा, वह भी क्या अभ्यागत ?
स्नेह उच्छ्वसित, हेमज पुलकित अचल का शरणागत !
... ...
'चित्र लिखी सी उडती तितली के सग सग उड मन मे
कैसे बडा हुआ मैं, घुटनो के बल चल आँगन मे,—
.. ...
कूर्माचल, प्रिय तात, पुत्र मैं रहा कूर्मवत् दृढ व्रत,
.. ...

---

१. वही, पृ० १५७

'अप्सरियो की पद चापो से कँपते झिलमिल सरिसर
नृत्य चपल वनश्री के हित नित बिछते कलि किसलय झर,
रग गध मधु रज मे रहता भू लुठित छायाचल ।।

"कूर्माचल के प्रति' कविता मे सहज भावुकता देखिए काव्य की यही स्वाभाविक पद्धति है। इस कविता मे मेषो के शिशुओ के समान बादल, गरजती हुई गुहाएँ, भरी दोपहरी मे ऊँघते पथिक सा ग्रीष्म, मोती के रश के धूम-पटल, मरकत मणि की हरियाली मे फेनो के हीरे, स्वर्ग की हँसी के समान गिरता हुआ हिम, स्फटिक शाति मे रंगो के बादशाहो से लोमश हिम खग, आप यदि सभी को एक साथ देखना चाहे—ग्रीष्म, पावस व शरद मे कूर्माचल की बदलती हुई छवियो को यही बैठ कर देखना चाहे तो कूर्माचल को पढिए। कवि का प्रकृति-प्रेम जैसे चरम सीमा पर पहुँचता दिखाई पडता है··· यहाँ सौदर्य की पकड देखिए, चित्र को भव्य बनाने व चित्र चयन की शक्ति देखिए। चित्रो के वैविध्य व सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का अन्दाजा लगाइए। देखिए और मुक्त होकर प्रशमा कीजिए। यह ठीक है कि अत मे कवि अपने प्रिय 'अरविन्दवाद'[1] पर आ जाना है परन्तु इससे उपर्युक्त सौदर्य पर कोई कुभाव नही पडता।"[2]

काव्य सौष्ठव, शिल्प सौदर्य, प्रकृति चित्रण तथा भाव गरिमा की दृष्टि से 'अतिमा' का दर्शन अनुभूति-जन्य है। भावना की गहराई और सजीवता विचार जगत को गौण कर देती है—वह हृदय को सहज ही मोह कर मानस की स्वीकृति पा लेती है। पल्लव, ग्राम्या और स्वर्णकिरण की भाँति 'अतिमा' अपना वैशिष्ट्य रखती है। यह नवीनतम काव्य-शिल्प को अभिव्यक्ति देती है तथा इसकी कई रचनाएँ विषय की दृष्टि से नयी और ताजी है। यह पत की काव्य यात्रा का चतुर्थ सोपान है, इसी यात्रा का पाँचवा सोपान 'कला और बूढा चाँद' है। 'पल्लव' मे प्रकृति तत्व, 'ग्राम्या' मे ग्राम जीवन, 'स्वर्णकिरण' मे नवीन अध्यात्म, 'अतिमा' मे प्रतीक, काव्य और शिल्प वैभव तथा 'कला और बूढा चाँद' मे अनुभूति की स्निग्धता का परम निखार मिलता है। 'अतिमा' की कठिनाई एव दुरूहता सामान्य पाठक की अपनी व्यक्तिगत कठिनाई है जो कविता को सदैव रसगुल्ला समझना चाहता है तथा यह भूल

---

१. देखिए इसी पुस्तक का अध्याय १८, 'पंत और वादों का विश्व : क्रमश.'
२. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय : 'पत जी का नूतन काव्य और दर्शन', पृष्ठ ७३१-७३२

जाता है कि शाश्वत साहित्य व्यापकता और गहनता की सूक्ष्म अभिव्यक्ति है। यह उच्च भावोन्मेष से तादात्म्य का गुजन है। इसी अर्थ मे अतिमा की अनुभूतियाँ सहज, मर्मस्पर्शी, मानवीय और दिव्य है। "प्रगतिवाद के भौतिक जीवन-दर्शन और अरविन्दिक अध्यात्मवाद की स्थूल-सूक्ष्म भाव-भूमियो को आत्मसात् करते हुए, पत जी निखिल मानवता के प्रति भी आकर्षित हुए है। मानव-मगल मानव-हित और विश्व-मानव के कल्याण की काक्षा से उनका कवि परिचालित हुआ है और उनकी चेतना मानववादी बनी है। 'युगात', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' मे यह मानवतावादी दर्शन भौतिक रहा है। परवर्ती रचनाओ मे, 'उत्तरा तक, उसे एक आध्यात्मिक आवरण मिला है, वह अतर्चेतनावादी हुआ है और 'अतिमा' मे एक हद तक उन दोनो परस्पर विरोधाभासिनी प्रवृत्तियो का समन्वय हो सका है। मानव-जीवन को पूर्ण बनाने के लिए केवल रज-तन की बौद्धिक प्रार्थना तो एकागी होगी, इसके साथ-साथ प्रकाशमय मानस की प्रेमयुक्त प्रार्थना भी अपेक्षित है—

आओ हे, समवेत प्रार्थना करे धरा जन"[1]

●●

---

१. रवीन्द्र भ्रमर: 'साहित्यकार', अगस्त १९५७ पृष्ठ ६६

१३

गंगा तट का घर

कई कारणो वश टैगोर टाउन के घर से मन ऊब गया था। गगा के मार्ग पर घर होने के कारण दिन-रात 'अमर यात्री' के दर्शन, विभिन्न धर्मो, पथो एव सप्रदाय के लोगो का विभिन्न ढग से अर्थी ले जाना और विचित्र प्रकार की शोक ध्वनि करना। रात्रि के अधकार और एकाकी शात कक्ष मे यह दुखप्रद ही था। जब तेज शोकध्वनि गहरी नीद से उठा देती तो मन की एक अव्यक्त व्यथा जग जाती—देवीदत्त की स्मृति का दशित कर जाना। पत के घर के आगे वाले घर मे रहने वाले सरकारी अफसर ने एक गाय और एक भैस पाल ली थी। अहाता न होने के कारण दोनो घरो के बीच अतर नही था। अत गोबर की दुर्गन्ध से रात को खुले मे सोना या दिन मे बरामदे मे खडा होना कठिन ही हो गया था। अपने मकान की गदगी देखकर मकान मालिक—पटल बाबू ने गाय भेस पालने वाले सज्जन के लिए लिखा कि इस मकान मे गाय-भेस के लिए जगह नही है। आप कमरे या बरामदे मे गाय-भेंस रखते हैं, इससे घर गदा हो जायगा। किंतु मकान मालिक निरुत्तर हो गए जब उन्हे उन सज्जन का पत्र मिला, "लोग कुत्ते-बिल्लियाँ पालते है, उसमे आपको आपत्ति नही होती है। मैंने गाय, भेंस पाले है, गाय-भेंस पालना प्रत्येक हिन्दू का धर्म है। आश्चर्य है इसमे आपको आपत्ति है।"

यह वही सज्जन थे जिन्होने पत को भाई देवीदत्त के निधन की सूचना दी थी तथा जिन्होने अपनी पुत्री की शादी के समय आर्यसमाज के महत्व पर लिखी एक पुस्तिका वितरित की। यह पुस्तक उनके समधी की लिखी हुई थी और समधी ने अपने बेटे की उनकी पुत्री के साथ शादी तय करते समय एकमात्र शर्त यही रखी थी कि वे उनकी (समधी) लिखी हुई पुस्तक की एक हज़ार प्रतियाँ छपवा कर शादी के समय वितरित करेंगे तथा पंत से उसकी

भूमिका लिखवाएँगे। आर्यसमाज की विशेष परिस्थितिजनित उपयोगिता को पत स्वीकार करते हैं किंतु वैसे उसके कुछ सिद्धात उनके मन को छू नही पाए है। पर भूमिका लिखने मे उन्हे कोई आपत्ति नही दीखी, विशेषकर समधी जी की शर्त को सुनकर बहुत मनोरजन हुआ। गाय, भैस वाले व्यक्ति भी, अपने कट्टर आर्यसमाजी व्यक्तित्व के होते हुए, भले आदमी थे, सीधे और सिद्धात वादी आदमी जिनसे किसी को भी शिकायत नही हो सकती। यदि वे बुरे भी होते तो भी पत को अच्छे ही लगते क्यों कि उनके अनुसार, "सभी आदमी अच्छे होते है। कमी हममे है जो हम दूसरो को बुरा मानते है, उनमे निरर्थक दोष खोजते हैं। दूसरे को प्यार दो तो वह भी कालक्रम मे प्यार करने लगेगा। मै मान ही नही सकता कि कोई व्यक्ति पूर्णत. बुरा हो सकता है। छोटी-मोटी बुराई किसमे नही होती ? क्या मैं या तुम अच्छे ही हैं ?"

३० सितम्बर ५५ को पत ने गाधी जी की तस्वीर हाथ मे पकडी, रिक्शा मे बैठे और स्टेनली रोड वाले घर मे अपने वर्तमान निवास स्थान (१८ बी ७, स्टेनली रोड) मे उस तस्वीर को रख कर घर ताला लगा दिया। इस बार घर मिलने मे कठिनाई नही हुई कलक्टर के हाथ मे घर देना था और वह अपनी पत्नी श्रीमती (अब स्वर्गीय) विमला रेना के कारण पत का आदर करते थे। सन् '२८ मे श्रीमती रेना के पिता पी० एन० साहब के वे किराएदार थे। उस समय श्रीमती रेना छोटी ही थी, सभवत दसवी कक्षा की विद्यार्थिनी। पत उन्हे अक्सर हिंदी पढा देते थे।

२ अक्टूबर, गांधी जन्म-दिन, को पत अपने इस नए घर मे आ गए। यहाँ आकर उन्हे अच्छा लगा। गगातट का घर, छोटा-सा अहाता, जिसे सामान्यतः अहाता कोई न कहे किंतु पूर्व के दो घरो की तुलना मे इस नए घर मे पर्याप्त अहाता है। छह माह तक पत इस अहाते को बगीचे का रूप देने मे व्यस्त रहे। अहाते के चारो ओर लोहे के छड और तार लगवाए, दो और फाटक लगवाए, लौन मोटर और कैंची पूना से मगवाई। एल्फ्रेड पार्क तथा दिल्ली और सहारनपुर से पेड-पौधे और लताएँ मगाई तथा लताओ को सहारा देने के लिए विभिन्न प्रकार के छड मुट्टी गज से लाए। इस सबमे केप्टेन बी० एम० लाल (अब स्टेशन डाइरेक्टर, आकाशवाणी) ने उन्हे बहुत सहायता दी। इस बीच पत बगीचे मे ही रहे, न गर्मी ने परेशान किया, न जाडे ने। कठिनाई से उन्हें अदर बुलाना पड़ता था, घर तो मानो काटने आता हो। खाने के बाद विश्राम करना भी भूल गए थे। सामान्यतः जब दिन मे विश्राम नही कर पाते तो आंखे मूंदकर अँगड़ाई लेते हुए कहते है, "अब तो सबसे अधिक

उनका आना खलता है जो दिन मे आते है। सच, दिन की नीद बडी अच्छी लगती है। क्या करूँ दुष्टो ने सोने नही दिया। कोई बात नही। दिल्ली मे तो कभी भी दिन मे नही सो पाता हूँ। मेरा तो साधना का जीवन है। आज ऐसा ही सही। चाय बना लेता हूँ। सुस्ती दूर हो जायगी।"

यह परिवर्तन अच्छा ही हुआ। देवदा की याद अब बगीचे की चिंता मे बदल गई। अपने छोटे से बगीचे की तितलियाँ, गगातट की विभिन्न प्रकारो की चिडियाँ, फूलो के कटोरो मे मुह डुबाती हुई फुलसुँघनी, अमरूद खाते हुए तोते, खाने की चीजो की ताक मे महन की दीवाल पर बैठे कौए और दो पैरो पर बैठी जल्दी-जल्दी गेहूँ खाती हुई गिलहरियाँ उन्हे आनन्दित कर देती। कौओ के साथ वे खुश होकर लुका-छिपी खेलते। उन्हे आँगन के ऊपर मँडराते देखकर छिप जाते और जब वे आँगन मे आकर कुछ खाने लगते तो छिपे-छिपे ही उन पर पानी फेकते। उनको भयभीत होकर उडते देख वे खुशी से किलकारी मारने लगते। देर तक यह खेल चलता रहता। यदि उस समय उनके निकट एव आँगन से लगे बरामदे मे बोलने या चलने लगती तो वे 'शू-शू' करके चुप रहने अथवा दूर ही खडे रहने का सकेत करते। वैसे कौओ को खाना देना भी वे नही भूलते। एक बार चूहो ने घर मे बडा ऊधम मचा दिया। कपडे, फल-तरकारी, कागज जो मिला कुतर दिया, यहाँ तक कि तखत भी कुतर दिया। यह पत का वह प्रिय तखत था जिसमे खरोच भी लग जाए तो दुखी हो जाए। जब इस ओर उनका ध्यान आर्कषित किया तो वे मुस्कुराते हुए प्यार से बोले, 'बडे बदमाश है।' उनकी आँखें आर्द्र हो गईं, 'दुष्ट है।' गुसलखाने की खिडकी बद करते समय कभी बाहर पेड पर महोख खजन, चकोर, कठफोडा या कोई अन्य रग-बिरगी छोटी सी चिडिया दीखी तो वे दबे पाँव जल्दी से आते और धीमे स्वर मे कहते, "जल्दी आओ, एक बढिया चीज दिखाता हूँ।" यदि दूध उबाल रही हूँ या कुछ ऐसा ही काम कर रही हूँ तो वे आग्रह करने लगते कि यह काम अधूरा ही छोड कर चली आऊँ अन्यथा चिडिया चली जाएगी। अभी कुछ दिनो पूर्व, फर्वरी' ७० मे एक दिन एक सुदर सी चिडिया उनके कमरे मे आ गई और बाहर जाने के लिए व्याकुल हो उठी। उसका इधर से उधर उडना, थक कर बैठ जाना या डर कर उडना बुरा लगा। सभी उपाय किए उसे बाहर का मार्ग दिखाने के—दरवाजे खोल दिए, बाहर की ओर जाने के मार्ग मे चावल डाल दिए तथा स्वय हम लोग कमरे से बाहर चले गए। आधा घण्टा बाद आकर देखते हैं चिडिया

नहीं है। किंतु दस मिनट बाद ही वह एक तस्वीर के पीछे से निकल कर रोशन-दान पर बैठ गई। पत बडे खुश हुए "लगता है अब यह यही रहेगी, बच्चे देगी।" और छोटे-छोटे बच्चो की कल्पना उनके भाव को सरस बनाने लगी। फिर उन्होने कहा यह भूखी होगी। तस्वीर से कुछ दूर उन्होने चावल डाल दिए। मैंने सोचा और निकट डाल दूँ, डालने लगी कि वह पर फडफडाते हुए उड गई। पत एकदम नाराज हो गए। खैर, रात हुई तो कमरे मे एक कटोरी मे पानी रख दरवाजा बद कर वे चारपाई पर लेट गए। मैंने बाहर से कुछ बात करनी चाही, उन्होंने अदर से डाँटा, "हल्ला मत करो, चिडिया सो रही है।" बार-बार अपनी मसहरी लगी चारपाई के गद्दे पर हाथ थपथपाते हुए कहते, "आ चिडिया, आ मेरे पास सो जा, तुझे प्यार से सुलाऊँगा। देख इतनी सारी जगह है, अच्छी तरह सो रहना।" पर चिडिया मौन साधे रही। जाडे के अलसाए अधकारपूर्ण सबेरे, पाँच-साढे पाँच के लगभग वह कमरे की खिडकी के दरवाजे पर बैठ कर सुरीली किंतु तेज़ आवाज मे गाने लगी कि दूसरे कमरे तक आवाज़ आई, मेरी नीद टूटी। जाडो मे सबेरे साढे छह से पहिले पत नही ही उठते हैं। बाद को मैंने कहा, "चिडिया ने जल्दी नोद तोड दी?" "नही तो, वडा अच्छा लग रहा था, कमरा भरा-भरा सा। यही रहती तो मैं उसे बहुत प्यार देता।" मैं हँसी, "साथ भी तो सुला रहे थे।" "हाँ, मैं तो बहुत चाहता, था पर वह आई ही नही। उसे दिक्कत होती तो मै पूरी चारपाई दे देता। खुद ज़मीन पर सो रहता।" "बडा ज़मीन पर सोते? कितनी ठण्डक है।" मैंने प्रतिवाद किया। पत का आश्चर्यमिश्रित भाव, "नही ठण्डक कहाँ है? वह सोती तो कितना अच्छा लगता?"

वे मई-जून के महीनो मे भी बिना गद्दा बिछाए चारपाई पर नही सोते है। जमीन पर उनके लेटने की कल्पना की ही नही जा सकती। घर पर जमीन पर बैठे भी उन्हे कभी नही देखा है, हाँ गोष्ठियो, आयोजनो की बात दूसरी है। जाडा उन्हे बहुत लगता है, जुकाम भी जल्दी हो जाता है। गरम बनिया-इन अक्टूबर अत से पहिनना प्रारभ करते है तो अप्रेल मे ही उतारते है, इसी भाँति अक्टूबर से मई तक वे गरम पानी से नहाते है। जाडो मे रात को सोते समय वे कमरे की खिडकी-दरवाजा बन्द रखते है तथा गरम बनियाइन, पुलोवर, ऊनी मोजे और ऊनी टोपी (बेरे) पहिने रहते हैं। वैसे जहाँ तक सोते समय खिडकी-दरवाजा बद करने की बात है, चाहे दिन हो चाहे रात, जाडा हो या गर्मी, वे विना खिडकी-दरवाजा बन्द किए सो ही नही सकते है। कमरे में अधकार करके सोना ही उन्हे प्रिय है, दरवाजा वे केवल बंद ही नही

करते है, अदर से चिटकन भी लगा लेते है। मेरे कमरे की खिडकी-दरवाजे खुले हुए देख वे अक्सर आश्चर्य प्रकट करते है, "तुम्हे ऐसे मे नीद आ जाती है ?" और कमरे से जाते समय वे खिडकी-दरवाजे भेड ही देते है। उनके दरवाजा अदर से बद करके सोने की आदत के कारण दो कमरे बन्द हो जाते है। उनका स्वय का कमरा तथा बैठक। वह अपने कमरे के नाम पर घर का अपना हिस्सा बद कर देते है। कई बार कहा कि केवल अपना कमरा बद किया करो किंतु वे बैठक (जो उनके कमरे से चिपकी है) का दरवाजा भी बद कर लेते है। उसके बाद गेलरी है, फिर और कमरे। इस कारण यदि कोई उनके सोए मे आ जाए तो उसे बैठाने की समस्या उत्पन्न हो जाती है। बैठक मे रखे फोन की घटी बजने पर, इसी कारण, कोई अन्य फोन नही सुन सकता है। और यह घटी अक्सर कुसमय मे बज जाती है तथा उन्हे दिन मे विश्राम नही लेने देती।

पक्षियो एव कोयल की कुहू-कुहू मे आनन्द निमग्न होते हुए एक दिन (मार्च '६८) उन्होंने कहा, "कवि को कभी अपनी कविता के भविष्य के बारे मे नही सोचना चाहिए। कोयल कैसे गाती है—कुहू-कुहू। यह आनद है, भगवान् का। इस आनद को सहज अभिव्यक्ति देते समय यह सोचना कि कौन क्या सोचेगा, क्या मूल्याकन करेगा, निरर्थक है। ......इस जीवन मे कर्म ही सब कुछ है। कर्म के लिए ही सृष्टि हुई है। बिना कर्म के यह धरती बजर होती। इसकी हरियाली का स्रोत कर्म है और यह कर्म एव हरियाली आनद है।"

अपने घर के छोटे से अहाते के बगीचे मे वे पर्याप्त रुचि लेते हैं, रुचि का प्रश्न ही कहाँ उठता है, वह उन्ही के जीवन का अग है। कोई पेड-पौधा ऐसा नही है जिसे वे लगाना नही चाहते हो। सन् '६०-'६५ मे तो एक छोटे-मोटे जगल की सघनता ने घर को चारो ओर से आच्छादित कर लिया था। कमरे मे सूरज का प्रकाश नही आ पाता था क्योकि मधुमाधवी, मालती, बेगनबेलिया और सतावर की लताओ ने खिडकियो पर अपना पूर्ण आधिपत्य स्थापित कर लिया था और उनको कटवाना-छँटवाना पत के मन को आघात पहुँचाना था। एक बार बरसात मे चारो ओर की जगल जलेबी, जैत और गुडहल का बाडा जब क्षितिज-चुबी हो गया, पेड तथा लताएँ, गधराज, अमलतास, अमरूद-सहजन, मौलसिरी, सिल्वर ओक, एकेसिया, आलमण्डा, कचनार, गुलाब, वधूलता, रेलवे क्रीपर, जैकरेण्डा, ट्रम्पेट फ्लावर

पेसना फ्लोरा, गुलमोर, मोगरा-बेला, लिलीज, रजनीगधा, हरसिंगार, रक्त अशोक, अशोक, सोनजुही, सोनचमेली, सरो, हमेलिया, सावनी आदि अपनी हरीतिमा मे लम्बी-चौडी होकर इस भाँति छा गईं कि एक स्थल से दूमरा स्थल न दीखे तो पत आनदमग्न हो गए, "देखा, ऐसे मे ही लिखा जाता है, प्रकृति की नीरव क्रोड मे। कितने प्रसन्न हैं ये पेड-पौधे और लताएँ, सब अपने मे मग्न ! मनुष्य ने अपना जीवन कितना विषम और कुत्सित बना दिया है। अपना कर्म भूलकर केवल राग द्वेष !" "फूल-पत्तियो को वे बेहद प्यार करते है। एक बार मैने सहजन का पेड कटवाना चाहा। सहजन कोई खाता नही हैं, नौकर भी नही। उसकी जड ने नाली के अदर की धरती मे घुस कर नाली ऊँची कर दी है अत· नाली का पानी बहने के बदले स्थिर हो जाता है। किंतु पत सहजन का पेड कटवाने को राजी नही हुए, "कितनी जीवनी शक्ति है। एक सूखी टहनी भी जमीन मे गाड दो तो पत्ते निकल आते है। ऐसी जीवनी शक्ति वाले पेड की प्रशसा करनी चाहिए, उसकी रक्षा न कर उसे काटना पाप है, निष्ठुरता निर्ममता है।" बाडे की झाडी मे आम-अमरूद के पेड उग गए, उन्हे भी उन्होने काटने नही दिया। कितना ही कहा छोटा-सा घर है, इन पेडो के कारण हरियाली के पतिगे-मच्छर हो जाएगे, इनकी छाया मे गुलाब के पेड पनप नही पाएगे। पर उनका अपना ही तर्क था, "मैंने इन्हे लगवाया थोडी है, अपने आप उग गए हैं।" "इसीलिए तो कट-वाना और जरूरी है, कलमी भी होते तो कोई बात थी," मेरे प्रतिवाद करने पर और कोई तर्क नही सूझा तो उन्होने मुझे ही अभियुक्त ठहरा दिया। मेरी ओर देखते हुए कहा, "तुम्हे शका तो नही है कि आम-अमरूद के पेड की शाखाएँ पडौसी के अहाते मे चली जाएगी। क्या बुराई है आधे वे खा लेंगे, आधे हम।" कौन कहे, आम के दिनो हम यहाँ रहते ही नही है। यदि पडौसी सब भी खा ले तो आपत्ति क्या हो सकती है। न हमे आम बेचने है, न उनका अचार डालना है, ऐसे मे यदि और लोग न खाए तब आफत ही आ सकती है। वैसे आफत आने का प्रश्न ही नही। पत के घर की वनानी के वृक्षो ने एक दूसरे को इतना अधिक अपना लिया है कि नीबू, मीठा नीबू, केले तथा शरीफे के पेड़ फलो से युक्त होना भूल गए है। बम्बइया केले के पेड ने २० साल के अन्दर दो नगण्य से पौधो को जन्म दिया है, नीबू भी इस अवधि मे ५०-६० लगे होगे। यही हाल अन्य पेडो तथा तरकारियो का है। माली पत की इच्छा के विपरीत तरकारी बोता है। उनके लिए अलग से

खाद मँगवाता है किंतु फलने-फूलने के पहिले ही तरकारियो के पौधे और लताएँ मुरझा जाती है। गुलाब लगाने का पंत को बहुत शौक है। पहिले अल्फ्रेड पार्क (इलाहाबाद), दिल्ली और सहारनपुर से पेड मँगाते थे। सन् '७० से श्रीमती सुधा राय दे देती है। बरसात प्रारभ होने के साथ ही पत सोचने लगते है कि सुधा इस वर्ष कौन से नए पौधे देगी। सुधा ढेरो पौधे देने को तैयार रहती है किंतु हँसते हुए कहती भी है, 'ददा पहिले जगह दिखाइए।" सन् '६६ से, स्वास्थ्य गिर जाने के कारण, पत बगीचे मे व्यक्तिगत ध्यान नही ही दे पाते है। अत गुलाब के पेड अब कहने भर को ही है। पहिले इतने अच्छे फूल खिलते थे कि मेरे ममेरे भाई ने चिढाते हुए कहा, "ऊँह, गुलाब है या फूलगोभी।"

नए फूल, प्रस्फुटित कलियाँ पत को आनदित कर देती है। सबेरे अपने बगीचे मे जब वह कोई सुदर-सा नया फूल खिलता देख लेते है तो प्रसन्नता से चहकने लगते है। उस दिन कई बार बगीचे मे जाकर उस फूल को देखते हैं और ओठो-ही-ओठो उसे चुमकारते है, हाथो की भगिमा से दुलारते है। फूल तोडने मे उन्हे दुःख होता हैं। माली की असावधानी से जब कोई पेड अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तो दिनो तक दुःखी होते है, "मैने उस पेड को पाला-पोसा था और माली ने मार डाला।" जब इलाहाबाद से बाहर जाते है तो लौटने पर पहले बगीचे मे घूमकर एक-एक पेड-पत्ते को देखते है तब अदर पैर रखते है। अक्सर माली से कहते है, "देखो माली जैसे तुम्हारे बच्चे है, वैसे ये हमारे बच्चे है। इनकी ठीक से देखभाल कर दिया करो। नही तो हमे बहुत बुरा लगेगा।" "तुम फूल मत तोडा करो। हमे बहुत बुरा लगता है, दुःख होता है।" गर्मियो मे स्वास्थ्य के कारण अपने इस छोटे-से परिवार के नन्हे-मुन्नो को छोडकर उन्हे पहाड जाना पडता है। जाने के दो माह पूर्व विशेषकर दस-पन्द्रह दिन पूर्व से वे पडौसियो, मिलनेवालो, मित्रो और सबधियो से कहना प्रारभ कर देते है कि अवकाश मिलने पर एक दृष्टि उनके बगीचे पर अवश्य डाल लिया करें, देख लिया करे कि माली ठीक से काम करता है या नही, सभव हो सके तो बगीचे के समाचार अवश्य भेज दे। पहाड पहुँच कर वह प्राय. सबेरे-शाम कहते रहते है कि बगीचे की न जाने क्या दशा होगी, "समाचार पत्रो से ज्ञात होता है कि लू जोरो से चल रही है। लू मे गुलाब मर गए होंगे। मैं जानता हूँ माली फूलो को प्यार नही करता है। पेड़-पौधे मर जाएगे तो उसे बुरा नही लगेगा।" "माली ने पेड-

पौधो को बिना पानी के सुखा दिया तो सच कहता हूँ उसे नही रखूँगा। मै जानता हूँ वह कामचोर है। तुम्ही ने रख रखा है। अब मै इलाहाबाद पहुँचते ही दूसरा माली रखूँगा तब चैन लूँगा"। "इलाहाबाद मे पानी बरस गया है। मेरे पेड-पौधे प्रसन्न होगे। पर माली अच्छा नही है। इस बार इलाहाबाद पहुँच कर अच्छा माली रखूँगा।" गरमी तथा माली की असावधानी हर वर्ष कुछ पेडो का प्राणहरण अवश्य करती है और पत माली को देखकर अपराधी की तरह अपने कमरे मे जाते हुए धीमे से भविष्यवक्ता की भाँति कहते है, "इस समय माली को डाँटना ठीक नही, कल अवश्य डाटूँगा।" यह कल कभी नही आता है। कभी ऐसे भी माली आ जाते है जो पेड-पौधो मे पानी डालने एव उनकी देखभाल करने के विपरीत उन्हे समूल नष्ट कर देते हैं। सन् '६८ मे एक बुड्ढा माली काम करता था—उसने मोगरा-बेला के पन्द्रह-बीस पेडो की दो ओर लगी झाडी न जाने कब गायब कर दी, समर साइप्रेस और फायर बोल लिली के गमले किसी को दे दिए या तोड डाले। पत दिनो तक कहने मे थे, "बडा बदमाश है। कल खूब डाटूँगा और अलग कर दूँगा।" पर उसे अलग करने की सायत साल भर बाद ही आई जब कि वह अपने दमे एव बुढापे के कारण काम पर आने मे असमर्थ ही हो गया। इधर कुछ वर्षो से जो माली है उसने पीस, एनविल स्टार, बल्यू मून, परफेक्टा, अमेरिकन हेरिटेज, सुरध्या, जनरल मेकार्थर, आइफिल टावर, जोसेफ कोट, लेडी मेरि एलिजाबेथ, मेग्रेडीज सनसेट, रेडियो, आर्म्सस्ट्रोग आदि की क्यारियो मे प्रत्येक गुलाब के चारो ओर सूरजमुखी और गेंदा के पेड लगा दिए हैं। सुधा जब आती है वह अपने पेडो की दयनीय दशा देख दुखी होती है, पत उससे भी अधिक दु खी होते है। पर बिल्ली के गले मे घण्टी कौन बाँधे—माली से इन पेडो को उखाडने के लिए या नियमित रूप से आने के लिए कहा कैसे जाए? जब उससे नियमित रूप से आने और पेड उखाडने के लिए कहने की पत दो माह तक सायत नही निकाल पाए तो यह काम मुझे ही करने पडे। पेड उखाडने के लिए उससे कहने से अच्छा मुझे यह लगा कि मैं स्वय पेड उखाड दूँ। तीन-चार दिन तक शाम को पेड उखाड कर फेके और पत प्रसन्न होकर बोले, "चाहो तो माली से पेड उखाडने के लिए कह दो। कल तुमने उखाडे थे। सबेरे वह कुछ कह तो नही रहा था। बडा मूर्ख है। गुलाब के पेड खतम हो गए होते। सोचा था डाटूँगा पर इधर समय नही मिला।" सबेरे उठकर उन्होने जब माली को उखाडे हुए पेड फेकते देखा तो कहा, "क्या करें बीबी जी को ये फूल पसद नही हैं। फिर जिन बीबी ने हमे ये गुलाब दिए हैं वे

कल आई थी। उन्होने जोर दिया कि गेदे और सूरजमुखी के पेड उखाड दो। हमको तो यह फूल बुरे नही लगते।"

प्रयाग मे माघमेला के अवसर पर गगातट की दूकानो एव मेले मे भागलपुरी रेशम की साडियाँ और चादरें मिलती है। सभी खरीदनेवाले जानते है कि यह साडियाँ, चादर और कपडा सस्ता तथा टिकाऊ होता है। सन् '५६ मे अपनी मा के लिए साडी खरीदने मैं माघमेला जाने लगी तो मुझे अकेले जाते देख पत भी साथ चलने के लिए तैयार हो गए। स्वभावत मेले के नाम से ही वे कोसो दूर भागते है किंतु इस समय बात दूसरी थी, दायित्व का बोध था। दुकान पर पहुँच कर मैंने साडी खरीदी और दुकानदार के कहने अथवा प्रशसा करने पर पत ने भी चादरे और कपडा खरीदा। सस्ती चीजें उन्हे कम ही आकर्षित करती है। उनका सिद्धात है—दाम अच्छा है तो चीज भी बढिया होगी। दूसरो को देते समय भी वे सुदरता, कलात्मकता या उपयोगिता से अधिक महत्व दाम को देते है। कई बार निरर्थक ही झगडा किया—"इस बदसूरत साडी को वह नही पहनेगी।" "आजकल का फैशन देखो, लडकियो की रुचि।" वे क्षुब्ध हो जाते है, "मैं जो ठीक गिनता हूँ वही दूँगा। दूसरे की रुचि से मैं क्या करूँ। अपनी रुचि का वह स्वय खरीदे।"

घर आकर दूसरो के पूछने पर कि वे गगातट से कैसा कपडा लाए हैं उन्होने खिन्न स्वर मे उत्तर दिया, "क्या बताऊँ। इसके कहने पर सौ रुपए बर्बाद कर आया।" मैं चौकी, "मेरे कहने पर, मैंने कहा?" "तुम्ही तो ले गईं थीं दूकान पर। तुम न ले जाती तो दूकानदार खरीदने के लिए क्यो कहता?" उनका सहज उत्तर था। मैंने फिर सफाई दी, "मैंने चलने के लिए नही कहा था। तुम्ही अपनी इच्छा से आए।" पत ने दूसरो को सफाई दी, "देखी इसकी बातें। सब दोष मुझ पर। अकेले मेला जा रही थी। यह अकेले बाजार जा भी सकती है, बेवकूफ है। भीड मे चोट खा जाती तो क्या होता? मामा जी मुझसे क्या कहते?" और फिर वे मुस्कुराए, "परबुद्धि विनाशाय स्त्री बुद्धि प्रलयकरी" तनिक रुक कर बोले, "कपडा अवश्य ही बुरा होगा। यदि अच्छा होता तो चोर की भाँति गगा किनारे इतना सस्ता क्यो बेचा जाता। किसी अच्छी जगह अच्छे दाम पर बिकता।"

उनके लिए यह सभव नही है कि वह किसी दूकान मे जाँए और दूकानदार के वस्तुओ को दिखाने या आग्रह करने पर वह कुछ न खरीदें। कई बार मुझ पर नाराज हो चुके हैं कि तुममे शालीनता नही है, "यदि खरीदना नही

था तो दूकान मे क्यो गई ? बेचारा कितना भला है, उतना सामान दिखाया। तुम्हे कुछ तो ले लेना था। शिव, शिव मुझे बहुत बुरा लग रहा है।" एक बार दूकानदार के कहने पर सामान खरीदने के साथ ही वे स्वय आलोचना करने लगे, "मेरे यार ने कूडा खरीदवा दिया, बिलकुल कूडा।" पत को टोकने का अच्छा अवसर था, "अजीब हो, जो जिसने कहा कर देते हो। मैने ऐसा किया होता तो आफत कर देते। मुझसे कहते रहते हो दूसरो के कहने पर नही आना चाहिए, तुममे अपनी सकल्प शक्ति नही है और स्वय !" "मेरी बात दूसरी है। तुम तो मूर्ख हो। अपनी बुद्धि से काम नही लेती। मै समझ थोडी-नही गया था कि वह कूडा खरीदवा रहा है। बेचारा इतना कह रहा था। उसका मन रखना मेरा कर्त्तव्य हो गया। कैसे कहता नही लेता।" सन् '५८ मे पत 'ट्राजिस्टर' खरीदने सिविल लाइन्स गए। घर आकर उन्होने बताया कि ट्राजिस्टर इलाहाबाद मे नही खरीदेगे क्योकि, "नेशनल ट्राजिस्टर एक ही दूकान मे है और वह दूकानदार बहुत दाम माँग रहा है।" उनके साथियो के अनुमार लगभग डेढ-दो सौ अधिक। दूसरे दिन युनिवर्सिटी से घर पहुँची कि दरवाजा खोलने के साथ पत ने ट्राजिस्टर खरीदने की सूचना दी और उसके साथ ही दूकानदार की अत्यधिक प्रशसा, "ऐसे सज्जन कम होते है। बेचारा बहुत भला है। अपने स्कूटर मे बैठ कर आज आया था। कहने लगा यह ट्राजिस्टर तो अब आपका ही है। और जानती हो, वह लाइसेस भी बनवा कर दे गया। तुम्हें मेरी बातो मे विश्वास नही होता है—अब मानोगी दुनिया के लोग कितने उपकारी होते है।" "तो क्या दाम कुछ कम कर दिए उसने अथवा लाइसेन्स बनवाए के पैसे नही लिए ?" वे झुंझला उठे, "कैसी बाते करती हो, छोटी बातें। आदमी को दूसरो के गुण देखने चाहिए, पैसो से क्या होता हे। बेचारा इतना भला है कि दिन की धूप (अगस्त) मे आकर दे गया। कौन इतना कर देता है ?"

सन् '५५ मे मैं अपनी सहेलियो के साथ चौक जाकर गजाधर प्रसाद की दूकान से कुछ धोतियाँ खरीद लाई। एक धोती के बारे मे दुविधा मे थी कि लूँ या न लूँ। जान-पहिचान का दूकानदार ! उसने हठपूर्वक धोती साथ रख दी और कहा, "घर ले जाइए। पसद आएगी तभी दाम दीजिएगा। लौटाने की चिता क्यो करती है। माह-छह-माह मे जब सुविधा हो लौटा दीजिएगा।" घर आकर वह धोती न लेनी ही ठीक लगी। दूसरे दिन पंत से कहा, "चौक जा रही हूँ, काम है।" "किसके साथ जा रही हो ?" उनका प्रश्न था। "अकेले" सुनकर वे भी चलने को राज़ी हो गए। जल्दी से तैयार

होकर चाय पीने लगे। उस समय मैने बातो ही बातो मे उन्हे बताया कि धोती लौटानी है। वह एकदम कुर्सी छोडकर चारपाई पर लेट गए, "इतनी भद्दी बात है, मैं नही जाऊँगा।" धोती लौटाने मे मुझे कोई बुराई नही दीखी। दुकानदार ने यही कह कर बरबस दे दी थी। किंतु अँधेरे मे मेरा अकेले चौक जाना पत को पसद नही था। और झूठ क्यो कहूँ, अकेले जाने की मेरी भी हिम्मत नही थी। उनसे 'चौक चल दो' कहना ठीक नही लगा। सोचा वता दूँ कि कहाँ जा रही हूँ, वे अवश्य ही साथ चले चलेगे। रिक्शा आने पर वे रिक्शा पर बैठ तो गए पर दुखी थे, "मै चल रहा हूँ। पर रिक्शा मे बैठा रहूँगा। दूकान के अदर नही जाऊँगा। मुझे तो लौटाने की बात सोच कर ही बहुत बुरा लग रहा है। बडी छोटी बात है। तुम कहो तो मै तुम्हारे लिए यह धोती ले दूँ।" गजाधर की दुकान से कुछ पहिले ही, इलाहाबाद शू स्टोर के पास, पत ने रिक्शा रुकवा दिया, "अब भी कहता हूँ धोती मत लौटाओ। तुम्हे पसद नही है तो किसी और को दे देना। इसके दाम झट से देकर आ जाओ।" और जब दूकान से आकर उन्हे बतलाया कि दूकानदार ने धोती लौटा ली, बुरा नही माना तो वे अधिक दु.खी हो गए, "क्या सोचता होगा? शालीनतावश कुछ नही कहा, तुमने भद्दी बात की। अब तो और शरम आ रही है।" सन् '६६ से पत ने इस विषय मे सोचना या कहना बद कर दिया है। सिविल लाइन मे सावलदास गोविन्ददास खन्ना की दूकान मे जाने पर वे अक्सर दो-तीन अधिक साडियाँ रख देते है। पत या तो अब अभ्यस्त हो गए है या फिर उनके मन ने मान लिया है कि यह भद्दी बात एव दूकानदार की अवमानना नही है। वैसे अब मुख्यत वे सिविल लाइन्स की दो दूकानो मे ही जाते है—सावलदास गोविन्ददास खन्ना की दूकान तथा पन्नालाल कपूर की दूकान (सैम्सन्स)। कपडा न भी खरीदना हो तो भी सिविल लाइन्स जाने पर इन दूकानो पर जाते है क्योकि ये अपने ही लोग है।

स्वभावत उन्हे दूसरे का जी दुखाना प्रिय नही ही है। सन् '५८ मे वे नहाने का साबुन लेने सिविल लाइन्स गए। वे सदैव ही 'पियर्स सोप' प्रयोग मे लाते है। यह सदैव का क्रम कभी दो-चार रोज के लिए भग हो जाता है। यदि किसी ने किसी अन्य साबुन की प्रशसा कर दी, या किसी साबुन का विज्ञापन आकर्षक और सुन्दर लग गया तो तत्काल उस साबुन की दो-तीन टिकिया खरीद लेते है। पहिले दिन उस साबुन से उत्साह से नहाते हैं, दूसरे दिन उत्साह के प्रवाह मे नहाते है और तीसरे दिन वह साबुन उनकी अटेची मे वापस आ जाता है, या फिर, खाने के बाद हाथ धोने के लिए रख दिया

जाता है।   जब दूकान मे पहुँचकर सेल्समेन से उन्होने 'पियर्स' साबुन मागा तो उसने उन्हे एक दूसरा साबुन देते हुए कहा, "आज तो आप मेरे कहने से यह साबुन ले ही लीजिए। दाम तो पाँच रुपया है पर इससे नहाने से तबियत खुश हो जाएगी। चारो ओर खुशबू फैल जाएगी।" पत ने तत्काल साबुन खरीद लिया। कुछ सुगध से प्रभावित होकर, कुछ दुकानदार के विज्ञापन से। पता नही साबुन नकली था या क्या, नहाने पर साबुन मे खुशबू का नाम नही। कई बार सूँघा, लगा सफेद पत्थर सूँघ रहे है। कुछ महीनो बाद जब हम उसी दुकान मे पहुँचे तब मैंने कह ही तो दिया, "आप तो अपने साबुन की बहुत प्रशसा कर रहे थे। उससे नहाया, पर सुगध का नाम तक नही था मानो खडिया का टुकडा हो।" वह कुछ उत्तर देता न देता पत तत्काल बोल पडे, "नही साबुन तो बहुत बढिया था। हमारी ही भूल थी, हमने उसे खुला छोड दिया। महीने भर खुला रहने पर उसकी सुगध उड गई।" उसे आश्वासन-सा देते हुये बोले, "कैसा ही साबुन हो, खुला रहने से सुगध उड जाएगी।" घर लौटने पर मैने कहा, "तुम दुकानदार से झूठ क्यो बोले ?" "उनका उत्तर था, "उसे झूठ कौन कहेगा। तुमने उसका दिल दुखा दिया था। बेचारे का मुँह उतर गया था।"

स्वभाव और व्यवहार मे इतने सरल एव सहज पत, आवश्यकता प्रतीत होने पर, सकल्प मात्र से क्रोधित भी हो जाते हैं। सन् '५८ मे अल्मोडे मे उनके छह साल के भतीजे ने हठ पकड ली। वह निरर्थक ही चीखने-चिल्लाने और दूसरो को मारने लगा। जब किसी भी भाँति उसे सम्हाल नही पाए तो पत से कहा कि उसे समझा दीजिए—घर के बच्चे उन्हे आदर्शस्वरूप मानने के कारण उन्हे प्यार करने के साथ ही उनसे मन ही मन बहुत डरते भी हैं। पत ने प्यार से उसे मनाया, समझाया पर उस पर तो भूत सवार हो चुका था, शात होने के बदले वह हिस्टिरिकल-सा हो गया। पत गभीर कर्कश स्वर मे बोले, "चुप हो जाओ। मुझे गुस्सा आ रहा है।" तत्काल उनके हाथ-पैर काँपने तथा नाक फडकने लगी, आँखें गुलाबी हो गईं। वे गरज उठे, "चुप हो जाओ, पीट दूंगा।" इसका जादू सा प्रभाव भतीजे पर पडा। मार खाने का वह अभ्यस्त था किंतु पत की सपूर्ण मुद्रा ! वह चुप ही नही हो गया, पत की ख़ुशामद भी करने लगा। अन्य बच्चे भी सहम गए। पत पूर्ववत् शात हो गए मानो कुछ हुआ ही न हो। बच्चो के वहाँ से चले जाने पर हँसने लगे, "देखा कैसा अभिनय किया ?" बडी भतीजी साश्चर्य से बोली,

"सैदा आपको गुस्सा नही आया", भाभी का आश्चर्य और भी अधिक था। "मन नही मानता कि सैदा को गुस्सा नही आया। मै तो खुद सहम गई थी।" पर सैदा का भाव सहज था, "गुस्सा, गुस्सा क्यो आता ? आलोक (भतीजा) नें सबको दिक कर दिया था और स्वय भी थक कर पसीने से तर हो गया था। क्रोध न दिखाता तो बुरा होता। हम लोग तो परेशान होते ही, वह हिस्टिरिकल हो जाता।" सैदा की बात जब बच्चो ने सुनी तो वे चीखे, "सैदा ने अपनी पोल खोल दी, नाटक कर रहे थे, गुस्सा नही आया था।" लेकिन तब से भयभीत हो गए यद्यपि इससे उनके तथा सैदा के बीच कोई दूरी नही आई। यदि बच्चो से कहा जाय कि सैदा के कमरे मे तुम्हे बैठने देंगे या वह तुम्हारे साथ ताश खेलेगे तो इस खुशी मे वे कैसा भी त्याग करने को तत्पर रहते हैं। पर साथ ही सैदा से छेडाखानी के मध्य वे सतर्क रहने लगे है कि कही सैदा को फिर से गुस्सा न आ जाए।

'अतिमा' के प्रकाशन के दो वर्ष तक पत ने कलम नही पकडी। देवीदत्त के निधन के कारण सृजन चेतनो अवसन्न थी। एक वर्ष घोर अवसाद मे बीतने के बाद भी जब पत उदासीनता से अपने को मुक्त नही कर पाए तो डर लगा कि कही अवसाद ही उनकी स्थायी मनोवृत्ति न बन जाए। यो ही, उन्हे समझाने के लिए पूछा, "आजकल कुछ लिख नही रहे हो !" उन्होने तत्काल उत्तर दिया, "बेवकूफ हो ! सृजन उन्मेष बिना कौन लिख सकता है ! कलम तो प्रेरणा पकडवाती है। बिना प्रेरणा के क्या लिखना ? ऐसे तो मैं ढेरो पृष्ठ भर दूँ पर क्या होगा वह, कूडा।" "जब जी चाहेगा तब लिखूँगा। कोई यत्र तो हूँ नही जो तुम्हारे कहने से लिखने बैठ जाऊँ। वह (भगवान्) चाहेगा तभी तो लिखूगा। उसकी ऐसी ही इच्छा है तो यही सही। आगे नही भी लिख पाया तो न सही।" सृजन ने पत को पूर्ण छुट्टी-सी दे दी। ऐसा वे अक्सर करते हैं। माह-दो माह मेल ट्रेन दौडाकर महीनो, साल-डेढ साल कलम नही पकडते है। किंतु यदि उनसे कहो कि "तुमसे उसी समय पूछना चाह रही थी। पर तुम्हारे कमरे मे आकर देखा तुम सो रहे हो।" वे तत्काल कहते है, "मैं सो थोडी रहा था, सोच रहा था। मेरा मन तो सदैव काम करता रहता है। असमय कौन सो सकता है ?" पत का मन जो भी ऊब-डूब कर रहा हो बाहर से वह सत-सगति मे रमने लगा। ध्यान का समय बढ गया, सबेरे दो घण्टा, दिन और शाम को पौन-पौन घण्टा कभी-कभी तो रात मे नीद-टूटने पर देखती वे अपनी चारपाई मे ध्यानमग्न बैठे है। बाद को प्रसन्न मुख मुद्रा मे आर्द्र आँखो से कहते, "ध्यान करना बहुत अच्छा

लगता है। जी चाहता है दिन भर यही करूँ।" इसके साथ ही नीमकरौली बाबा, आनन्दमयी माँ, स्वामी पुरुषोत्तमानदजी के दर्शनो का आनन्द भी लेने लगे। समय एव मौसम का व्यवधान हट गया। जाडो मे सवेरे चार बजे उठकर नहा लेते और स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी के दर्शनो के लिए रसूलाबाद पहुँच जाते। फरवरी की ठिठुरती शीत मे रात के आठ नौ बजे नीमकरौली बाबा के दर्शनार्थ निकल जाते—ऐसे मे न साथ की याद आती और न किसी मित्र की कार की। रिक्शा न मिलने पर वह पैदल ही चल देते और कहते, "अरे रसूलाबाद तो यही पर है।" "चलना मेरे लिए आवश्यक है। मे जानता हूँ मुझे इससे लाभ होगा।" "कैसी बातें करती हो ? जानती हो मुझे डाइबिटीज है। जितना चलूँ उतना लाभ होगा ? एक मील चलना एक यूनिट इन्सुलीन लेना है।" एकाध बार यह कहकर भी डाँट खाई है, "तो रोज चला करो।" "और बार तो कहते हो कि ठण्डक मे मै घर से नही निकल सकता। फेफडे कमजोर है, बीमार पड जाऊँगा।" वे झुझला उठे, "मै जानता हूँ मुझे क्या करना चाहिए। तुम्हारे कहने के अनुसार तो मै चल नही सकता।"

जनवरी सन् '७० मे ८½ बजे रात के समय किसी मित्र ने सूचना दी कि नीम करौली बाबा चर्च लेन मे श्री सुधीर मुकर्जी के यहाँ आए हुए है। पत बाबा जी से मिलने को व्याकुल हो उठे। पहिले सा (सन् '६७ के हार्ट अटेक ने उन्हे दुर्बल बना दिया है) स्वास्थ्य होता तो वे रास्ते से रिक्शा लेकर मिलने चले जाते पर अब दुर्बलता जल्दी घेर लेती है। अत वे चाहते थे कि मैं उन्हे कार से ले जा दू पर मुझसे कहते कैसे। मैं आठ-नौ दिन से बीमार थी। उस दिन बुखार कम था, ६०° था। पत उदास होकर तीन-चार बार मेरे कमरे मे आए, "बाबाजी के दर्शन करना चाहता हूँ।" मुझे लगा कि यदि वे बाबाजी के दर्शन नही कर पायेगे तो उन्हे रात को नीद नही आएगी और दिनो तक बुरा लगेगा। मैने उनसे कहा, "आज मैं ठीक हूँ। चलो मै चलती हूँ।" वे प्रसन्न हो गए, "तुम चल सकती हो, बडा अच्छा है। खूब गरम पहिन लेना। कही तबियत खराब न हो।" फौरन वे तैयार होकर आ गए, "बस दर्शन कर के आ जाएगे।" सामान्यत वह ऐसे मे कमरे से निकलने के लिए मना करते हैं पर इस समय तो बाबाजी के दर्शन की बात थी। बाबा जी के दर्शन के लिए माघमेला भी सहर्ष जा सकते है : वैसे, पच्चीस-छब्बीस साल की अवधि में पत बाह्यता एव

सौजन्यतावश पाँच बार माघ मेला गए है[1]—महादेवी जी के साथ, मेरे साथ भागलपुरी वस्त्र खरीदने, सन् '५२ के दुर्घटनापूर्ण कुभ के अवसर पर मुझे तथा मेरी मा को मेले से घर लाने के लिए, सूचना विभाग के माघमेला स्थित कैम्प मे एक परिचित से मिलने तथा एक स्वामी जी के शिष्यो के आग्रह पर उनके जन्मदिवस पर। यह सब बाध्यता ही थी जिन्हे निभाने के बाद उन्होने तत्काल मुँह-हाथ धोया, तौलिए से मुँह पोछते हुए कहा, "कितनी धल थी।" फिर मागने वाले साधुओ की वेशभूषा, उनका अपने आपको पगु बना लेना, गाय-बच्चो की दुर्दशा करने वाले मँगते जोगिय का वर्णन करते हुए वे धार्मिक अधविश्वासो की आलोचना करने लगे, "आज बुरा फसा। अबसे मेले मे कभी नही जाऊँगा।" पत के, 'कभी नही जाऊगा,' कहने से क्या होता ? जब स्वामी पुरुषोत्तमानद और आनदमयी मा गगातट पर माघ मेले के दिनो वास करने लगे तो वे वहाँ प्रसन्नतापूर्वक पाँच-बार गए, ऐसे जाने मे उन्हे माघ मेला की भीड या धूल का ध्यान नही रहता।

---

१. अपने जीवन में गंगा स्नान पंत ने दो बार किया। पहली बार अपने पिता के स्वर्गवास के पश्चात् और दूसरी बार सन् '६० या '६१ में जब नरेन्द्र शर्मा इलाहाबाद आए थे—उनके, महादेवीजी तथा गगाप्रसाद पांडेय के आग्रह से मई के महीने में पत ने रसूलाबाद की गंगा में नहाया—सभवतः अपनी प्रकृति के विपरीत क्यो कि उसके बाद वे खूब बीमार पड़े। गगा स्नान की प्रशसा अपने प्रेमी साधुओ के मुँह से सुनकर वह मुस्कराकर कह देते है—"गंगे गगेति यो ब्रूयात ''।" और दूसरो से कहते हैं—"हाँ, मुझसे कइयों ने कहा है गगास्नान स्वास्थ्यप्रद होता है।" व्रत रखने मे उन्हे विश्वास नहीं है—कभी साल, दो साल में व्रत रख भी लेते है, पर धर्म या पवित्रता की भावना से नहीं। मात्र उस दिन के खाने में मनोनुकूल परिवर्तन की इच्छा से "अच्छा है, कर लूंगा। आज खाने में बदलाव ही सही।" दिन में दही, दूध, फल का रस लेने मे विश्वास करते हैं और छह सात बजे शाम खाना। फलाहार—कोटू-सिघाडे के पकवान—वह छूते नहीं है। "यह मै नहीं खाऊँगा। बेस्वाद ! उस पर गरम तथा गरिष्ट। बढ़िया खाना बनवाओ—मखाने या छेने की खीर, रायता, पूरी, बढिया-सी प्याज पड़ी तरकारियाँ और हो सके तो आइसक्रीम। सन् '६० से उन्होंने व्रत रखना छोड़ दिया है।

जिन दिनो वे लिखते नही हैं उन दिनो छोटे-छोटे हास परिहास की झडी लगा देते है। स्निग्ध ज्योत्स्ना से ये परिहास दूसरे को उस विशिष्ट वातावरण मे आनदित कर विलीन हो जाते है। मेरी सहेली पत से शरबत पीने का आग्रह कर रही थी। अच्छी तरह से समझाने पर जब वह नही मानी तो उन्होने कहा, "मेरे लिए यह शर वत् है।" भान्जा बार-बार कह रहा था "डाक्टर ने माइसीन खिला कर आफत कर दी।" पत ने हसते हुए कहा, "माइसीन, माइसीन कह कर 'सीन' मत 'क्रिएट' करो।" अमृत ने फोन किया, "ददा आज आते पर गाडी बिगड गई है। लगता है बोरिंग करानी ही पडेगी।" "अवश्य, अवश्य" पत का तत्काल उत्तर था, "तुम्हे 'बोर' करे इससे पहिले तुम्ही उसकी बोरिंग करा दो।" दमयती परेशान होकर कह रही थी, "वे लोग मुझसे बार-बार 'बियर' पीने का आग्रह कर रहे थे।" "अरे तुम कह देती 'आई केननोट बियर विथ इट'", पत का कहना था। मैंने चदन का शर्बत बनाया था। सध्या ने यह सुनते ही कहा, "मै जरूर ले जाऊगी।" पत ने प्रोत्साहित करते हुए कहा, "जरूर ले जाइए, पीजिए फिर 'गर्ल्स विल नेसल राउन्ड यू लाइक स्नेक्स।" किसी ने कहा कि उसे 'गाधी और गालिब' पर लिखना है। पत हसे, "अवश्य लिखिए, दोनो मे बस 'गा' का ऐक्य है।" ठण्डक बहुत थी, महादेवी जी तखत पर पैर लटकाए बैठी थी। पत ने कहा, "पैर ऊपर करके बैठ जाइए।" "नही पैरो मे, धूल-मिट्टी लगी है। कहाँ-कहाँ गई हूँ मालूम है।" उनका उत्तर था। पत का आग्रह था, "नही पैर ऊपर कर ही लीजिए। यह धूल-मिट्टी, धूल मिट्टी नही है, चरण-रज है।"

पडोसिन एक ट्रे खरीदकर लाई थी। उनका कहना था, "ट्रे सुदर है, बिल्ली बनी है, पर चिंता है कि जल्दी टूट न जाए।" पत ने अपने ही ढग से समाधान किया, "अच्छी चलेगी सिर्फ इसमे मक्खन मत रखिएगा, बिल्ली खा जाएगी।" बातो ही बातो मे उसने कहा, "नई नौकरानी रखी है, उसमे सफाई नही है।" पत ने हँसी मे बात बदल दी, "हाथ की सफाई तो नही करती, वह नही करना चाहिए और सब तो निभ जाता है।" मेरी सहेली मजु ने कहा," आज से आटा ताले मे बद करने लगी हूँ क्यो कि मेरे पतिदेव पखावज मे लगा देते हैं। मेरा उनसे झगडा हो गया है, मैंने उनसे साफ कह दिया है कि पखावज के लिए घर के धुले-बीने गेंहूँ का आटा नही मिलेगा, बाजार से रद्दी आटा खरीदकर लाए और अपने पखावज़ मे लगाए।"

पखावज मे लगे आटे का पराठा बहुत बढिया बनता है। सच, बनाकर देखिए तो।" एक डेरी की पनीर की मुझसे सबने प्रशसा की। मैने पत से वहाँ से मँगाने की बात की, "तुम्हे पनीर अच्छी लगती है डेरी मे बहुत अच्छी पनीर बनती है। मै वहाँ से मगाने की सोच रही हूँ।" उनका दृढ स्वर था, "मै नही खाऊँगा। तुम अपने लिए मँगालो।" उन्होने चिढाते हुए कहा, "वहाँ सभी कुछ अच्छा मिलता है। सानी भी अच्छी मिलती है। चाहो तो अपने लिए मँगा लो।" पत से मिलने कुछ लोग आए थे। उनमे से एक सज्जन ने कहा," पतजी मेरे यहाँ बडे सुदर फूल खिले है। एक दिन आपके लिए लाऊँगा।" उन सज्जन के मित्र बोल उठे, "पतजी स्वय ही फूल है।' पत का उन्मुक्त हास था, "हाँ, एफ से।" मेरी भाजी इला मेरे पास रहकर आठवी कक्षा मे पढती थी। काम के नाम पर हाथ हिलाने मे वह रो देती थी। एक दिन डाँटते हुए मैंने कहा—"सास चक्की पिसवाएगी तो पता चलेगा" पत एकदम हँसे, "इला मैं बताऊँ तू चक्की ही तोड देना, फिर कैसे पिसवाएगी।" चन्द्रावती त्रिपाठी ने हमे चाय के लिए बुलाया था। सिर दर्द के कारण मैं नही जा पाई। पत से कहा क्षमा माँग देना। जब वे दावत से आए मैंने पूछा तुमने मेरी ओर से क्षमा प्रार्थना कर दी थी। उन्होने विस्फारित नेत्रो से जीभ निकालते हुए कहा, "आज तो गजब हो गया। मेरे मुँह से निकल गया 'शी इज ए हेडेक।' फिर फौरन सोरी कहकर मैने कह दिया 'शी हेज़ गोट हेडेक।" अश्क जी कह रहे थे "नौकरी मे इज्ज़त कहाँ है?" पत ने कहा," सरल उपाय है 'एस (ass) सर' कह दीजिएगा। उन्हे पता भी नही चलेगा।"

पड़ोसिन ने अपने सहेली के पति के बारे मे बताया—"लगता है उसके पति को अच्छी नौकर मिल गई है। अच्छी ही होगी तभी तो एक चपरासी भी मिला है।" पत हँस दिए, "अरे मै बताऊँ हेड चपरासी हो गए होंगे।" हम लोग बाते कर रहे थे—गाधी जी 'ऐसेटिसिज्म' मे विश्वास करते थे, यम—नियम जैन धर्म के मौलिक सिद्धात। पत एकदम बोल उठे, "असल बात तो यह है कि गाधी जी का उच्चारण खराब था। वह कहते थे 'एशियेटिक' (Asiatic) लोगो को सुनाई देता था 'ऐसेटिक' (Ascetic)" सिविल लाइन्स जाते हुए मैंने कहा, "सिविल लाइन्स जा रही हूँ। भाभी के लिए चप्पल खरीदना चाहती हूँ।" पत मुस्कुराए, "दिमाग खराब हो गया है। भाभी को चप्पल कौन देता हैं। चप्पल से पूजा की जाती है।"

सृजन उन्मेष की प्रतीक्षा मे सन्' ५७ का नवम्बर आ गया और पत 'वाणी' की कविताएँ लिखने मे व्यस्त हो गए। देवीदत्त के निधन के औदास्य से निखर कर मन पर्याप्त सक्रिय हो गया था। अत प्रेरणा का वेग जब आता है तो वह रोके नही रुकता। लोग बात करते हो तब भी सृजनशील मानस क्रिया–शील रहता है। सामान्य कोलाहल, वार्तालाप या परेशानी से सृजन चेतना अपने को तटस्थ कर लेती है, "मैने तो बाते सुनी नही। बीच मे उससे बात अवश्य कर ले रहा था। किंतु मैने क्या कहा या उसने क्या कहा मुझे याद नही, मैने तो उस बीच दो कविताएँ लिख ली।" छोटी कविताएँ तीन-चार लिख लेना सामान्य बात है, वह एकदम मानस मे उतर आती है। उसी क्षण की सम्यक् अनुभूति की उपज जो होती है, "अरे सोचना थोडी पडता है। खट से आ जाती है। तत्काल लिख लिया बस! न भी लिख पाए तो कोई बात नही। भगवान् की इच्छा होने पर ही लिखने का समय मिलता है।"

बुद्ध जयती (१९५७) के अवसर पर आकाशवाणी से बुद्ध पर अनेक कार्यक्रम प्रसारित हुए। पत को इन्हे पढने-सुनने तथा रेडियो-नाटको का निर्देशन करने का पर्याप्त अवसर मिला। आकाशवाणी इलाहाबाद के दो 'प्रोग्राम इग्जीक्यूटिव' मे मनमुटाव हो गया जिससे नाटको के निर्देशन का कार्य ढीला पड गया। मई का महीना था, पत को सौ से ऊपर बुखार था। जब उन्हे यह सब पता चला तो वे स्वय निर्देशन के लिए चले गए। कितना ही कहा कल एक सौ एक बुखार था, आज भी सौ से ऊपर है, यह तुम्हारा काम भी नही है, बहुत है तो असिस्टेन्ट स्टेशन डाइरेक्टर एव केन्द्र निदेशक से कह दो, वे बिगड गए, "कुछ समझ भी है। वे लोग सरकारी नौकर है। शिकायत कर दूँगा तो उनसे स्पष्टीकरण माँगा जा सकता है यह उनके लिए बुरा होगा। मैं दूसरे का नुकसान नही कर सकता। ये लोग बेवकूफ है, व्यर्थ मे एक दूसरे से चिढे बैठे हैं। मेरी तो इन नाटको मे रुचि है। इसलिए मैने पता लगा लिया। अन्यथा मेरा कोई प्रत्यक्ष सबध भी नही है। उन लोगो की नौकरी पर आए, आकाशवाणी की बदनामी हो, इससे अच्छा यही है कि मैं निर्देशन कर दूँ। मैं जानता हूँ मेरी तबियत ठीक हो जायगी। तुम घबडाओ नही।" और तीन-चार दिन तक वे बुखार मे ही दिन के समय रेडियो स्टेशन गए।

बुद्ध जयती के सदर्भ मे ही पत ने बुद्ध दर्शन का पर्याप्त अध्ययन किया। उस पर चिंतन मनन करने के परिणामस्वरूप वे उसकी सीमाओ से अवगत हो गए। बुद्ध के महत् त्याग, दिव्य व्यक्तित्व करुणाद्रवित विशाल हृदय के

प्रति श्रद्धानत होते हुये भी वे उनके दर्शन को सपूर्णता मे नही अपना पाए। किसी भी विचारधारा, सिद्धात एव दर्शन को जीवन सत्य से वियुक्त करके अपनाना उनकी दृष्टि मे मानवता की उपेक्षा करना है। बौद्ध दर्शन के परिणामस्वरूप भिक्षुओ की वह दयनीय निषेधात्मक दशा जिसके कारण उन्हे आक्रमणो का बलि पशु बनना पडा तथा बौद्ध विहारो की आतरिक स्थिति दर्शन तथा इतिहास एव मानवता प्रेमियो से छिपी नही है। वैसे, बुद्ध के महान् व्यक्तित्व के प्रति प्रणत हो वे उनके दर्शन और ऐतिहासिक परिवेश मे जीने लगे। न जाने कितने पाली शब्दो तथा प्राविधिक शब्दावलि का प्रयोग कर वे मनोरजन करते रहे। चाय पीते समय, एक दिन, उन्होने अपने चाय पीने की भी उसी भाँति व्याख्या करदी, "क्या करूँ, यही मुझे दायरूप मे मिली है। राहुल ने जब बुद्ध से कहा मेरा दाय धन दो तो बुद्ध ने कहा अच्छा, और उसे प्रव्रजित कर दिया। पर मेरे पिता तो बोधिसत्व थे नही, चाय के बगीचे के मेनेजर थे, अतः उनसे मुझे चाय पीने का ही मध्यम मार्ग मिला हैं, जो न पानी है, न मदिरा ही।"

अप्रेल सन् '५७ मे पत रेडियो से अपने को असबद्ध करने में सफल हो गए। किंतु यह असबद्धता अधूरी थी। आकाशवाणी के अधिकारियो ने उन्हे इसी आधार पर 'चीफ प्रोड्यूसर' के पद से मुक्ति दी कि वे 'साहित्य सलाहकार' बने रहना स्वीकार कर लेगें। पाँच सौ रुपया मासिक ऑनरेरियम तथा फोन की सुविधा थी। साहित्य सलाहकार के रूप मे दिल्ली हेड क्वाटर्स से ही वे सबद्ध थे। साल मे तीन बार दिल्ली जाना पडता था। अन्य रेडियो स्टेशन वाले चाहे तो राय माँग लें अन्यथा पत का दिल्ली रेडियो स्टेशन के अति-रिक्त अन्य किसी रेडियो स्टेशन से न प्रत्यक्ष सबध था और न उनका दायित्व ही था। पत को जो भी परामर्श देनी होती उसका सबंध आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र ही से होता था। सलाहकार के रूप मे स्पष्ट ही प्रयाग या कही अन्य स्टेशनो के कार्यक्रमो मे हस्तक्षेप करना न उचित था और न संभव ही था। किंतु बिहार तथा उत्तर प्रदेश के कुछ पत्र-पत्रिकाओ मे लखनऊ और विशेषकर इलाहाबाद आकाशवाणी मे आयोजित कवि-सम्मेलनो, साहित्यिक गोष्ठियों और कार्यक्रमो पर जो आलोचनाएँ निकली, उनका मुख्य लक्ष्य था पत पर दोषारोपण करना। अनेक पत्र भी लोगो ने पत के लिए लिखे, धमकी भरे अथवा क्रोधपूर्ण पत्र, पत पर यह लाछन था कि उन्होंने उनकी उपेक्षा की है एव आकाशवाणी के प्रोग्राम निर्देशक के चाहने पर भी उन्होंने उनका नाम गोष्ठियो या कवि-सम्मेलनों से कटवा दिया है। जिन कार्यक्रमो के बारे मे न

पत को पता था और न उनका दायित्व ही था उनके बारे मे वे कोई स्पष्टीकरण नही दे सकते थे। उन्होंने समाचार-पत्रो, मासिक पत्रिकाओ तथा लोगो के व्यक्तिगत पत्रो का न तो उत्तर दिया और न प्रतिवाद ही किया, "मूर्ख है, समझ होती तो वस्तुस्थिति का पता लगा कर लिखते।" मेरे तथा मित्रो के कहने पर कि अपनी स्थिति के बारे मे एक वक्तव्य प्रकाशित करवा दो वे अप्रसन्न हो गए, "तुम लोग सरकारी नौकरी की कठिनाई नही समझ सकते। नौकरी की दृष्टि से पत्रो की यह आलोचना अयोग्यता का चिह्न हो जाती है। इन लोगो ने सोचा होगा पत का नाम ले दो तो न हेडक्वार्टर कुछ कह पाएगा और न अन्य लोग ही।" वे हँसे, "मेरे बारे में जानते ही है—पतजी कुछ कहेगे नही।" अधिक आग्रह करने पर वे बोले, "…… ये अखबार वाले बेवकूफ है। बिना स्थिति समझे जो जिसने कहा छाप दिया। यही तो उनका काम है। पत के नाम पर जिसका जो जी चाहे कहने दो।"

रेडियो की नौकरी छोडना पत के स्वभाव की दृष्टि से अच्छा ही हुआ। कभी कोई काम पड जाता है या कही जाना होता है तो वे तब तक बेचैन रहते हैं जब तक कि वह काम न कर लें या वहाँ हो न आए। यद्यपि उन्हे सप्ताह मे तीन दिन औफिस जाना होता था, वह भी मध्याह्न मे दो घण्टो के लिए किंतु वे पहिले दिन से ही कहने लगते, "हाय, कल दफ्तर जाना है।" और सबेरे आँख खुलते ही उन्हे वही याद आता, "आज जल्दी नहा लेना है, सब काम कर लेने है। दफ्तर जाना है।" इसके अतिरिक्त भी आकाशवाणी के सभी कार्यक्रमो मे रुचि लेना, प्रसारित होने वाले विभिन्न कार्यक्रमो और विषयो की रूपरेखा बनाना आदि उन्होने स्वय ही अपना काम मान लिया था। अत घर मे भी दफ्तर के काम को ही वे समय देते।[1] दायित्व वे प्रवीणता तथा फुर्ती के साथ निभाते हैं पर दायित्व का बोध उन पर आतक-सा छाया

---

१. २३ अप्रेल '७६ को डा० रघुवंश के साथ आकाशवाणी के बारे में बातचीत हो रही थी। बातो के मध्य उन्होंने कहा आकाशवाणी की नौकरी कई साहित्यकारों ने की है और कर रहे है। किंतु सभी के लिए आकाशवाणी की नौकरी आजीविका का माध्यम रही है। पंत जी के लिए मानना होगा कि उन्होंने उसके काम को अपना काम मानकर उसे बहुत योगदान दिया है।

रहता है—यह दायित्व चाहे सूई खरीदने का हो, चाहे पड़ौसी के घर के लिए गैस मँगाने के लिए दूकानदार को फोन करने का अथवा चाहे बैंक, इनकमटेक्स, ऑफिस, डाक्टर, दूकान या किसी के घर जाने का हो। दो दिन पहिले से ही वह सिर पर हाथ रख कर भारी बोझ को इगित करते हुए कहते है, "हाय, कितना काम करना है। यह हो जाए तो मुक्ति मिले, कुछ अपना काम हो।" और जब किसी अनिवार्य कार्यवश अथवा बाध्यतावश बाहर न जाना हो तो सवेरे उठते ही या नाश्ता करते समय पूछते है, "आज कही जाना तो नही है?" "अरे, अभी से कौन सोचता है, जाने का जी हुआ तो चले जाएँगे।" मेरा यह उत्तर उन्हे सतोष नही देता है। वे दिक होते हुए कहते है, "सोच लो, कही जाना है तो. मैं उसी ढग से अपना काम करूँगा।" उन्हे पहिले से बताना अपनी आफत मोल लेना है। वह, उस दिन सवेरे जल्दी से नहा तो लेते ही है, दो-तीन घण्टा पहिले से कहने लगते है, "जाना है न! चाय बना लूँ, जल्दी से।" बिना चाय पिए वे घर से बाहर पैर नही रख सकते है, चाहे कोई भी समय हो, घर से निकलने के पूर्व चाय पीना एक अति-आवश्यक काम है। सन् '५८ की बात है। उन्हे कही बाहर जाना था किंतु साथ ही लिखने के लिए मन छटपटा रहा था। जाने का बोझ सृजन प्रेरणा को टालने को बाध्य कर रहा था। मैंने कहा, "अभी तो तीन घण्टे है। तुम काम करो। मै ठीक समय पर चाय दे दूंगी।" वे हँसे, "डोन्ट वरी। माई टेम्परामेन्ट इज़ ऑलवेज़ विथ मी। इट नेवर लीव्स मी इवन फोर ए मोमेन्ट।"

साहित्यिक जगत् मे पत की मान्यताएँ, उनके विचार निर्भीक रहते हैं। प्रचड से प्रचड सामूहिक विरोध एव दलबद्ध प्रतिबद्धता उनके निस्वार्थ चिंतन, निष्पक्ष विचार एव अकलुष ध्येय को निर्मूल नही कर पाई है। उनके पास मानव कल्याण की वह अखण्ड और सुदृढ थाती है जो उन्हे कभी भी अकेला या आपद्ग्रस्त नही होने देती। गोष्ठियो मे भी जब वह भाग लेते है तो किसी व्यक्ति विशेष को नीचा दिखाने या सस्था को आघात पहुँचाने के लिए नही, वरन् सत्य की रक्षा के लिए। इसी कारण जब 'परिमल' ने 'लेखक और राज्य' परिगोष्ठी का आयोजन ३, ४, ५ मई १६५७ को किया अथवा 'विवेचना' ने ११ अप्रेल १९६५ को 'लोकायतन' पर गोष्ठी की तो कुछ मित्रो के मना करने अथवा स्वय भी इस तथ्य से अवगत होने पर कि इन गोष्ठियो का प्रत्यक्ष लक्ष्य वे ही हैं, वे हँस दिए, "व्यक्ति का मूल्य ही क्या है? साहित्यकार अपनी मान्यताओ को लेकर जीता है। मुझे न किसी से

द्वेष है, न प्रतिस्पर्द्धा, न मैं किसी को घृणा करता हूँ। ये सब अच्छे लोग है मेधावी, सब मेरे मित्र है किंतु युवकोचित आवेश से दिग्भ्रात है। मैं अवश्य जाऊंगा, चाहे एक लाख लोग भी विरोध करे। जो मै ठीक समझता हूँ, अनुभव करना हूँ अवश्य कहूँगा।"

सन् १६५७ मे 'परिमल' की गोष्ठी मे भाग लेने सुदरम्जी (गुजराती कवि तथा अरविंद आश्रम के साधक) प्रयाग आए, तीन-चार दिन पत के पास रहे। यह पत के लिए सुखद था। अपने अभ्यागत के साथ वे परिमल की सभी सभाओ मे सम्मिलित हुए। परिमल के सयोजको ने 'लेखक और राज्य सरक्षण' पर एक लिखित निबध पत से माँगा। अपने अभ्यास के अनुसार उन्होने जिस कागज पर लिखा वही कागज गोष्ठी के सयोजक को पकडा दिया, उसकी प्रतिलिपि नही रखी। किंतु बाद को माँगने पर पता चला कि वह लिखित निबध तो खो गया है। यद्यपि पत ने उस गोष्ठी मे जो आशु भाषण दिया उसका 'टेपरेकोर्ड' सुरक्षित है। 'परिमल' ने जो भाषणो की पुस्तिका[1] छपवाई है उसमे पत का भाषण एक ऐसी भाषा मे है जिससे पत की शैली के नाम से शका उत्पन्न होती है। परिमल की एक गोष्ठी की चर्चा करते हुए नददुलारे वाजपेयी ने लिखा है, "प्रयाग की परिमल' गोष्ठी मे मै उद्घाटनकर्ता बनकर गया था। अन्य अनेक साहित्यकारो के साथ पत जी भी वहाँ उपस्थित थे। लेखक के स्वातत्र्य की समस्या पर विचार-विमर्श हो रहा था। मुझे स्मरण है कि मैंने देश की वर्तमान स्थिति मे स्वातत्र्य की इस समस्या को एक कृत्रिम समस्या कहा था, क्योकि लेखको के स्वातत्र्य पर किसी प्रकार का सकट न है, न होने की सभावना है। वैसी स्थिति मे इस समस्या को उपस्थित करने वाले लेखको की मनोभावना किस दिशा मे जा रही है, यह समझना कठिन है। पंत जी भी बोलने उठे और उन्होंने कवि के स्वातंत्र्य का पक्ष लेकर बडा सुदर वक्तव्य दिया। मुझे उनके भाषण से बडी प्रसन्नता हुई, क्योकि मैंने यह सोचा कि पत जी के अवचेतन मे अब भी कवि के स्वातंत्र्य की प्रेरणा बनी हुई है। फिर भी मैं यह सोचने लगा कि स्वातत्र्य भी कितने प्रकार का, और बन्धन भी कितने रूपो के हुआ करते है; केवल राजनीतिक बंधन ही सब-कुछ नही है। विचारों और मतवादो के बधन भी कम नृशस नही होते। इस युग के अनेक कवियो पर ये वैचारिक बंधन बोझ बनकर छाए हुए हैं। पंत जी ने उस दिन के वक्तव्य मे प्रत्येक प्रकार के

---

१. भारती प्रकाशन, १० दरभंगा रोड, इलाहाबाद।

बधन से कवि और लेखक को मुक्त रखने की बात कही थी। शायद उनकी मूल चेतना मे अन्य बधनो के साथ इन वैचारिक बधनो से त्राण पाने की बलवती इच्छा वर्तमान थी।"[1]

सृजन की दृष्टि से सन् '५५ से सन् '५६ के वर्ष सुखद रहे। 'अतिमा', 'वाणी' तथा 'कला और बूढा चाँद', इन काव्य सकलनो के अतिरिक्त 'रश्मिबध' (१६५८) और 'चिदबरा' एव 'चिदम्बरा' की भूमिका (१६५६) इस काल की सृजन-चेतना के स्फुलिग है। वास्तव मे सन् '५० से सन् '५६ पत की काव्य-यात्रा के गतिशील चरण रहे है जो हिंदी साहित्य मे श्रव्य-काव्यो की परम्परा को स्थापित करने एव 'अतिमा-वाणी' के माध्यम से उत्तर-पल्लव कालीन रचनाओ मे काव्य-शिल्प एव कला भाव तथा सौदर्य बोध की दृष्टि से परिपूर्णता के सूचक रहने के साथ ही 'कला और बूढा चाँद' मे पाठक को उस स्निग्ध दृष्टि से युक्त करते है जो मन को विशुद्ध काव्यानद मे निमज्जित कर देती है। 'रश्मिबध' एव 'चिदबरा' की भूमिकाएँ 'पल्लव' की भूमिका की भाँति ही एक ऐतिहासिक उद्घोष है।

● ●

---

१. स्मृति-चित्र, पृ० ११८

१४

वाणी

●

सन् '५७ के नवम्बर मे पत "वाणी"[1] की कविताए लिखने मे व्यस्त हो गए। इसके बारे मे उनका कहना है, "वाणी की रचनाओ का शिल्प मेरी इधर की अन्य रचनाओ से अपेक्षाकृत सरल, सशक्त तथा सयमित है। उसकी कुछ रचनाएँ प्रतीकात्मक है तथा कुछ को आप प्रवचनात्मक कह सकते है। अपनी प्रतीकात्मक कविताओ मे मैंने नवीन जीवन मूल्यो तथा सौंदर्य सबधी दृष्टि कोणो का उद्घाटन कर भू-जीवन को नवीन शोभा तथा अनुराग भावना से मडित किया है। व्यग्यात्मक रचनाओ मे मैंने युगजीवन के विरोधो तथा असगतियो की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। च काव्य (प्रवचन काव्य) के अतर्गत मुख्यत: चार रचनाएँ आती हैं, जिनके शीर्षक है, आत्मदान, अग्नि सदेश, अभिषेक तथा चैतन्य सूर्य। इन रचनाओ मे उद्बोधन के स्वर ही प्रमुख हैं। इनमे मैंने एकागी भौतिक विकास के दुष्परिणामो का दिग्दर्शन कराकर युग परिस्थितियो मे व्यापक सामजस्य स्थापित करने का आग्रह किया है। मनुष्य की मानसिक सीमाओ तथा सकीर्णताओ के कारण विध्वंस की शक्तियाँ जिस प्रकार विश्व सभ्यता को निगलने के लिए मुँह बाए आगे बढ रही हैं, उनके प्रति मैंने इन रचनाओ द्वारा युग मानव को सावधान किया है। इनमें मैंने भौतिक आध्यात्मिक मूल्यो के समन्वय पर बल दिया है··· । इन रचनाओ के अतिरिक्त 'वाणी' मे 'बुद्ध के प्रति' शीर्षक एक लबी रचना है, जिसमे मैंने अपने देश की मध्ययुगीन जीवन मान्यताओ का आलोचनात्मक विवेचन किया है और हमारे देश के मानस मे जो निषेधात्मक ऋण प्रवृत्तियाँ

---

१. समस्त संस्करणों के प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ (प्रथम संस्करण १९५८)

घर कर गई है, और जिस प्रकार उनसे हमारे सामाजिक जीवन की अकल्पनीय क्षति हुई है उस पर प्रकाश डालने की चेष्टा की है।"[१]

'अतिमा' और 'वाणी' एक ही स्तर की रचनाएँ हैं।[२] समय के अतराल ने 'अतिमा' के दृष्टिकोण को 'वाणी' मे स्पष्ट सामाजिकता प्रदान कर दी है। व्यक्ति और समाज, जीवन और मानव-कल्याण तथा सत्य और शिव पत के लिए सदैव ही एक दूसरे के पर्यायवाची रहे हैं। फिर भी उनके काव्य-क्रम मे विचार, अनुभव और भावना की प्रौढता के विकास के साथ यदि उनका पूर्व-काव्य सत्यानुभूति और विचार-प्रधान रहा है तो उसका उत्तर अनुगामी काव्य उसी अनुभूति को लेकर सामाजिकता के धरातल पर मुक्त विचरा है। गुजन-ज्योत्स्ना, युगवाणी-ग्राम्या, स्वर्णकिरण-स्वर्णधूलि, अतिमा-वाणी का सबध पूर्वोक्त सबध ही है। "वाणी' 'अतिमा', के ठीक बाद का सग्रह है। कुछ देर विचार के क्षेत्र मे रह कर व्यवहार के क्षेत्र मे चले आना, दर्शन की चोटी पर रहकर सामाजिकता की भूमि पर उतर आना पत जी के लिए बहुत स्वाभाविक रहा है ' 'अतिमा' के विचार-दर्शन की ध्वनियाँ-प्रतिध्वनियाँ 'वाणी' मे न हो, ऐसा नही है। पर प्रमुख ध्येय यह है कि जो आधारभूत विकास सृष्टि के क्रम मे निरतर चल रहा है, "जो एक समर्थ मगलमय शक्ति से निर्दिष्ट है उसकी आधुनिक समय मे " विशेषकर भारत के सामाजिक धरातल पर क्या स्थिति है। उज्जवल भविष्य की आशा और निर्देशक के महदाशय मे आस्था रखकर भी आँखो के आगे बहुत-सा ऐसा यथार्थ आता है जो ..

---

१. कला और संस्कृति, पृ० ८४-८५

२ "The appearance of a new collection of Pant's verses is an event in the world of contemporary Hindi letters—for he is still the most prominent and, in some ways, the most important of the truly active poets of today ... From 'Atima' his previous collection, to 'Vani' is a poetic journey in quest of beauty, not a mystic's voyage in search of a spiritual El Dorado. However, if beauty is truth, what is the difference between the objects of the two pursuits ? From 'Atima' to 'Vani' that is from April 1954 to the end of 1957, Pant has travelled on a high but

नियता के अंतिम उद्देश्य के विपरीत जाता-सा प्रतीत होता है जिसको डाँटने फटकारने को जी करता है, जिसे ठीक दिशा मे लगाने को मन चाहता है। 'वाणी' के कवि की प्रायः यही मन. स्थिति है जिसके कारण उसने इसे 'मंच-काव्य या प्रवचन-काव्य' कहा है, गो बीच-बीच मे वह यह भी सोचता है कि जो बाहरी विपर्यय, वैपरीत्य असंगति दिखाई देती है, वह सचमुच मे है नही, उससे भी विकासक्रम को सहायता मिल रही है।

---

well-made mountain road, looking down upon the great, glowing plains far below and up to the snowy peaks above ..He has travelled at ease, admiring the flowering bushes on the way, resting now and again in the shade of one of the trees lining the road, tarrying a while to chat with a passer-by, standing now and again on a well-constructed bridge to look down on the mountain-stream raging beneath his secure feet and feeling grateful for the bridge, which ensures safe passage, and for the river which animates and beautifies the scene. It has been a good, smooth and lovely road to travel on, but it has had no turnings. From 'Atima' to 'Vani' has been a straight journey, almost too straight.

One obvious blemish—the result, possibly, of the straightness of the road he has travelled on since giving us 'Atima'—is that 'Vani' seems like an overflow of 'Atima'. That, I grant, is no real blemish so far as the poetry is concerned, but as a separately published book of verses 'Vani' does suffer a little because there has been an 'Atima' three years earlier ... The two volumes will, in future years, inevitably be spoken of together, as if they were parts one and two of a single thesis.

C. B. Rao : New collection of Sumitranandan Pant's Verses (The Times of India, Delhi 8.6.58)

अब जाना, क्यो धरती उगल रही तम,

× × ×

प्रकृति की विकृति भी सस्कृति को ही प्रतिष्ठित करती है ?

बैठ तुम्हारे ही भीतर

वह तुच्छ नरक से महत् स्वर्ग गढ रहा
धरा पर।[1]

'वाणी' मे पत अपनी सरस अनुभूतियो मे लीन नही हो जाते है किंतु सतर्कतापूर्वक सामाजिक जीवन मे उसे देखना और समझना चाहते है। सामाजिक वैषम्य, कुत्सित यथार्थ, जीवन की लघुताएँ कवि मन मे विक्षोभ उत्पन्न कर देती है। इसीलिए वह 'अभीप्सित' मे प्रार्थना करता है—

अधकार चल रहा धरा पर,
राग द्वेष के
हिंस्र पगो पर गर्हित.
तुम्हे निकट ला सकू जनो के,
महानाश के
कर्दम मे अपराजित !
यही अभीप्सित !

'अतिमा और 'वाणी' दोनो का ही स्वर विकासोन्मुखी है। ध्वंस भी निर्माण का ही लक्षण है। मानवता के चरण बढते जा रहे है, उसे नए युग का आह्वान ही नहीं करना है उसके लिए सक्रिय योग-दान भी देना है। इसीलिए 'जीवन चेतना' जीवन से मुँह नही मोडती, उसे उसकी सपूर्णता मे स्वीकार करती है, 'भू जीवन की प्रीति सुधा से मनुज सत्य को' युक्त करती है।

'अनुभूति', 'अभिव्यक्ति', और 'अतर्ध्वनि', ध्यान-भूमि की अनुभूतियो से भीगी हुईं मुक्ताभाएँ है, ये विश्व चेतना के विभिन्न स्तरो पर अवतरण और अभिव्यक्ति की आनदानुभूति को लिपिबद्ध करती है।

---

१. बच्चन : 'कवियों में सौम्य संत', पृ० १६२-१६४

अमित नील से बरस रही हँस
फालसई जल फुही,
भीग रे गए नयन मन !

× × ×

आज ध्यान मे देखा मैंने
जाग जाग निश्चेतन मन के सोए पछी
पख मार, उड,
गाते जाते, गाते जाते !

'स्मृति गीत'—आकुल स्वर लहरी—प्राणिक पीडा का गीत है। 'अग्नि की पुकार' उच्चाकाक्षा की पुकार है, उस महत् आशा की जो कर्म, वचन और मन से मनुजो मे ऐक्य देखना चाहती है। 'सबोध' धरती की विषमताओ और विरोधो को उद्देश्य की एकता मे गुफित करता है। सबोध का स्तर जागतिक विरोधो को स्थायी सत्य के रूप मे ग्रहण नही करता है।

अब जाना, क्यो धरती उगल रही तम,
मै प्रकाश मे उसे कर सकूँ कुसुमित,

'कृतज्ञता' मे कवि देह, प्राण, मन, इन्द्रिय, दिव्य प्रेम—प्रत्येक की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए उनके प्रति कृतज्ञता को अभिव्यक्ति देता है। मनुष्य जीवन मे इन सभी का एक निर्दिष्ट कार्य-क्षेत्र है जिसकी उपेक्षा नही की जा सकती है।

मैं कृतार्थ हूँ, देह, तृणो के लघु दोनो में
तुम मेरी आत्मा का पावक करती धारण,
... ...

'भाव रूप', 'जीवन गीत' तथा 'अत· साक्ष्य', ध्यान मौन प्रीति कुज को अनुभूतियों के अमृत सगीत हैं जो शाश्वत चैतन्य को मुखरित करती है।

गध अमित !
कब तुम आई अदृश्य
हृदय कुज छद ध्वनित !

× × ×

अमित प्रेम करता उर मे अग जग को धारण,
महत् दया भरती रहती जन धरणी के व्रण !

यह प्रिय आनद ही 'आविर्भाव' तथा 'मनोभव' का कारण है। इसी की प्रतीति का उल्लास है—

मेघ नही, आनन्द मत्त क्षण,
वृष्टि नही, सौंदर्य सुधा कण—
डूब गये मन, बुद्धि प्राण तन,
उमडा जीवन प्लावन !

'नया प्रेम' तथा 'मानसी' कवि के विश्व प्रेम के प्रतीक हैं, जो भू की सीमाओ को तोड बाँस के उस अकुर (नव वश प्ररोह) की वशी बजाता है जो विश्व वेणु है।

यह क्या ? तुम चपक बाँहो मे,
मुझको सुख विस्मृत बाँधोगे ?

और 'सौ अग्नि परीक्षाएँ देकर' एव 'भू वक्ष चीर' कर कवि विश्व प्रेम के अमृत स्वर से बाँसुरी को निनादित कर देता है। इसीलिए वह अपनी 'मानसी' से कहता है —

प्रिये, तुम्हे छू देखा मैंने,

स्वच्छ चाँदनी हो तुम स्मृति कूलो पर सोई !
... ...
तुम्हे स्वप्न ससार
कामना ज्वार
प्रणय उपचार चाहिए ?
.. ...
खोलो रुचि के बधन,
स्वच्छ धरो उर दर्पण,-
जो दैवी सपद् है !

'फूलों का दर्शन' और 'फूल की मृत्यु' में पंत का प्रकृति प्रेम जीवंत होकर गोपन कथा कह देता है। वे प्रकृति से रागात्मक परिचय के माध्यम से जीवन

की व्याख्या प्रस्तुत कर देते है। परम द्वैत और परम अद्वैत जीवन की खण्डित प्रतिमाए है क्योकि ये हँसमुख फूल मन मे कुछ और ही गाते रहते हैं। अतः 'फूलो का दर्शन' फूलो की भाषा मे गहन तात्विक सत्य को अजुरी मे भर देता है।

मिथ्या उनका जीवन दर्शन
जो विभिन्नता से वियुक्त कर
खोज रहे एकता सृष्टि मे
. .

ये जो सौरभ फूल खिले काँटो के वन मे,
ये हसते रहते रे मन मे !

और फूलो का झरना अमरता का सदेश दे जाता है।

तुम झर गए
कि अमर बन गए
मर्त्य सुमन ?

'स्नेह स्पर्श' रचना 'घृणा को प्रेम से जीतो' एव सहिष्णुता और व्यापक प्रेम का गान है जो अनुभूतिजन्य है। कवि ससार को प्रेममय पाता है जहाँ द्वेष, कुंठा, पशुबल आदि स्नेह स्पर्श पाकर विलीन हो जाते है।

युग का ईर्ष्या गरल
द्वेष का छिपा तुषानल,—
मैंने छुआ न उसको
स्वय हुआ वह शीतल !
... ...

'नवोन्मेष', 'विकास क्षेत्र', 'वाणी', 'नव दृष्टि', 'आवाहन', 'सिंधुपथ', 'आत्म निवेदन', प्रतीकात्मक रचनाए है। वैसे 'वाणी' की अधिकाश रचनाए प्रतीक प्रधान—रूपक, उपमान, बिंब प्रधान ही हैं। सर्वत्र ही मनोभावो, प्रवृत्तियो एवं मानव स्वभाव तथा तात्विक सत्यो—चेतना के विभिन्न स्तरो—को शुभ्र नील, अतल नीलिमा, स्वर्णिम, रजत, प्रकाश, कासनी, अगूरी, हरित, पीत, बेंगनी आदि रगो तथा साँप, मेढ़क, कौवे, अजगर, घोघें, शख आदि के

माध्यम से अभिव्यक्ति मिली है। कवि को इस प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति मे मफलता मिली है, यह असदिग्ध है।[1]

'नवोन्मेष', 'नव दृष्टि' 'आवाहन', 'सिंधु पथ' की विशेषता मात्र उनके प्रतीकात्मक होने पर नही है। यह ध्यान की तन्मय अनुभूति, शात उल्लसित स्थिति को प्रकाशित करती है जो 'गूँगे का गुड' की अनिर्वचनीयता के कारण प्रतीको के माध्यम से सत्य को वाणी एव भाषा के स्तर पर प्रकट करने का सहज प्रयास करती है।

यह असख्य वर्णो का इन्द्रधनुष खुल सहसा
फहराया कब अपलक मनोगगन मे ।
... ..
खुलते स्तर पर स्तर, दल पर दल,
सूक्ष्म सूक्ष्मतर—नील, बैंगनी, फालसई,
कासनी, अगूरी,—हरित, पीत, पाटल,
... ..
भू के और निकट आ जाओ !
मौन, अरूप अगोचर मुख से
घूँघट नील उठाओ
... ..
खड करो मत पूर्ण सत्य को,
भू-जीवन की तुम्हे शपथ है !

---

१. "पंतजी की प्रतीक-योजना भी काफी मार्मिक है। परन्तु यह कहना कि पंतजी की कला मे प्रतीकात्मकता प्रयोगवादी प्रभाव की देन है, बहुत ठीक नहीं; क्यों कि उनकी पूर्ववर्ती रचनाओ में भी प्रतीक प्रतीक-योजना की कमी नहीं। प्रथम रश्मि, नीरव तार, गुंजन, विहग, चाँदनी आदि रचनाएँ प्रतीकात्मक ही हैं। परन्तु परवर्ती रचनाओ में प्रतीकात्मकता अधिक स्पष्ट एवं प्रौढ़ है। प्रतीको के माध्यम से कवि ने संदेश भी दिए हैं और व्यंग्य भी किए है। कला की यह प्रतीक-पद्धति अपना प्रभाव रखती है।"
भगीरथ मिश्र : आधुनिक हिंदी कवियों की काव्य कला,
संपादक : प्रेमनरायण टंडन, पृ० ६७

पत की ये प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियाँ अपने 'धरती के प्रेम' के कारण अभिनदनीय है। पंत न कबीर की भाँति उलटबाँसियो के फेर मे पडते है, न अद्वैतवादियो की भाँति माया के आवरण को जग पर डाल कर उससे मुँह मोड लेते है और न भोगवादियो की तरह क्षणिक सुख को अपना कर जीवन के शाश्वत सत्य से पीठ फेर लेते है।

'विकास क्षेत्र' रचना का सौंदर्य और सारगर्भितता इस पर निर्भर है कि वह जीवन सरिता के दो कूलो—वैराग्यवाद-भोगवाद—को आत्म कथा के सहज अचल मे बाँधती हुई जीवन सत्य का निर्देशन करती है, धरती के जीवन का शस्य श्यामला लौ से नीराजन करती है।

> प्रभु ने भू को चुना अनत विकास क्षेत्र हित,
> तुच्छ तृणो को पुष्प-मुकुट से कर वह भूषित
> क्या न लुटाता निर्जन वन मे मधु सौरभ नित !
> पूर्ण प्रेम वह,—करुणा का, ऐश्वर्य अपरिमित !'

'विकास क्षेत्र' की भाँति 'आत्म निवेदन' भी सर्वत्र भागवत चेतना के आनद मे भीगी रचना है। सर्वव्यापी भागवत चेतना की अनुभूति एव दर्शन कवि की वाणी को जन मगल का आकाक्षी बना देता है।

> ऐसा नही कि छद गध रस भीने ये कोकिल स्वर
> मेरी काव्य कला के शेष चरण है,—
> नही, लोक मुख बिम्बित, मेरे सृजन कक्ष मे,
> हरित धरा—जीवन से अकित,
> धरा महत् पर्वत दर्पण है।

सभवतः ये पक्तिया 'लोकायतन' की ओर भी इगित करती हो।

'पुनर्नवा' सृजन शक्ति की प्रतीक है। उसे सबोधित करते हुए कवि कहता है कि तुम विश्व चेतना के रूप मे अभी तक अगोचर थी। अब तुम पृथ्वी पर उतर आई हो, रक्त फूलो के रूप मे।

> अब हरी-भरी लहरी सी चल
> जन-भू के आँगन पर छाई
> रक्तिम फूलो से भर डाली,
> ... ...

शाश्वत सृष्टि के प्रतीक 'पुनर्नवा' के प्रति कवि मन प्रणत है क्योंकि इसने उसे नवीन दृष्टि प्रदान की है।

'वज्र के नूपुर' कविता महानाश मे सृष्टि को प्रस्फुटित होते देखती है। यह प्रलय और सृष्टि को विकास के अनिवार्य चरण मानती है।

क्या भय ?
जो अक्षय जीवन घन
बरसाता आशा उर्वर कण,
वह करता अणु पावक वर्षण
बो बीज सृजन के नव चेतन !

जीवन की लघुताएँ कवि मन मे विक्षोभ उत्पन्न कर देती है। 'कौवे' के माध्यम से कवि निम्न प्रवृत्तियो के अहितकर कार्यों का वर्णन करता है। किंतु साथ ही वह स्वीकार करता है कि सत्य अनुभूति मे यह स्पष्ट हो जाता है कि निम्न प्रवृत्तियो और अहमिता के सूचक 'कौवे' सत्य को धूमिल नही करते वरन् ये भी उसके प्रति समर्पित हैं क्यो कि निम्न से उच्च तक एक ही सत्य का संचरण है एव जड और चेतन एक ही सत्य के रूप है। यदि जड निम्नतम सत्ता की स्थिति है तो चेतन उसी की परिपूर्णता एव विकसित रूप है। निम्न स्थिति से उच्च विकास की स्थिति को प्राप्त करना एक स्वाभाविक क्रम है, इस स्वाभाविक विकास मे सचेत सहयोग देना मनुष्य का कर्त्तव्य है।

मत रोको, दुर्गम, मत रोको
जड की फिर चेतन बनने की
गहन पिपासा !

सृष्टि के मूल मे श्रेय और प्रेय ग्रथित हैं। जड-चेतन, आत्मा-देह, व्यक्ति मुक्ति-लोक मुक्ति—ये सब परस्पर अन्योन्याश्रित हैं क्यो कि,—

मानव एक विविध मुख बिम्बित,
धरती एक, दशो दिशि खडित,
मनुज ऐक्य वैचित्र्य विनिर्मित !

'अर्थसृष्टि' एव सृष्टि के अर्थ को समझना उपर्युक्त सत्य का साक्षात्कार ..ना है। इसी सत्य की नैतिक-सामाजिक व्याख्या करने वाली रचना 'रूपा-तर' है। विकास क्रम मे कृष्ण और राम युग की सभ्यता सापेक्ष सत्य की सूचक हो गई। नैतिक मान्यताएँ समय की चेतना के अनुरूप बदलती रहती हैं यद्यपि सत्य एक, अद्वितीय और शाश्वत है। अतः इन सापेक्ष मूल्यो को, विवि-धार्गी जीवन को शाश्वत सत्य एव ब्रह्म के आधार पर ही समझा जा सकता है। आज भी यद्यपि मानव एकता—विश्व ऐक्य—की बात हम करते है किंतु इस यथार्थ एवं देश काल के सत्य का भी निराकरण नही किया जा सकता कि परिस्थितियाँ नैराश्य और विषमताओ से युक्त है—

घन अधकार आवरणो से प्रज्ञा आवृत !
मन बहिर्भ्रांत, आक्रात हृदय,–स्पर्धा दशित,
जड लौह रज्जु सा ऐंठा मनुज अह दर्पित !

किंतु कवि का मन आश्वस्त है—यह सब विकास, गति अथवा रूपातर की स्थितियाँ हैं जिसमे निश्चेतन, उपचेतन आदि मन के सभी स्तर आदोलित हैं और अधिमानस के स्तर पर एक नए संयोजन के आकाक्षी है—

यह अधिमानस की क्राति धरा तल पर बिम्बित,—
आत्मा को घेरे रजत शाति का व्योम अमित !

'रूप देहि' 'जय देहि' तथा 'भारत माता' (१६५८) रचनाएँ विशेष रूप से भारत माता की सतानो को भौतिक-आध्यात्मिक सपदा से युक्त करने की आकाक्षी हैं।

ये भारत के ग्राम निवासी,
क्षुधित देह मन, आँखे प्यासी
... ...
बाह्य रूप हो पहिले सुदर,
जानें जन, जीवन प्रभु का वर,
देखें ईश्वर का मुख बाहर

जीवन की एकागी व्याख्या करने वालो को सम्यक् सत्य का सदेश देने वाली रचना 'पुनर्मूल्यांकन' है। पलायन, सन्यास, जगत-मिथ्यात्व एव जीवन

निषेधात्मक दर्शन, रूढ जीवन यापन की प्रणालियाँ तथा प्रचलित अभावात्मक मान्यताएँ कवि की दृष्टि मे ह्रासोन्मुखी और त्याज्य है। जीवन को उसकी सपूर्णता मे ही हमे ग्रहण करना चाहिए। तभी हम आत्मा, जगत् तथा ईश्वर के प्रति सच्चे रह सकेगे।

धन्य आत्म द्रष्टा, स्रष्टा की सृजन कला का
पी न सके तुम स्वच्छ विषय मधु,
आनदाऽमृत !

'घोघे शख' तथा 'नम्र अवज्ञा' व्यग्यप्रधान प्रतीकात्मक रचनाएँ है। "मनोविश्लेषणात्मक नई कविता से पत जी को जो निराशा और असतोष है उस पर भी एक बडी व्यग्यात्मक कविता 'वाणी' मे है, 'घोघे शख' शीर्षक के साथ कोष्टक लगाकर 'सभी नही' उन्होने लिख दिया है। वे कविता को अवचेतन का प्रलाप नही मानते, वे चाहते है कविता मे अवचेतन चेतन-शासित हो।"[1] 'घोघे शख' नए कवियो की अनुभूति हीनता तथा शब्द-लय-शून्यता, मुक्त छद एव उनके विविध प्रयोगो, मूल्यहीन अति-वैयक्तिक दृष्टिकोणो, शाब्दिक और प्रतीकात्मक चमत्कारो, ओढी हुई कुठा-हताशा, हीन भावना तथा अहमिता पर कवि हृदय का आक्रोशपूर्ण व्यग्य है। पत का स्वभावगत सहज सयम व्यथित हो अपना अतिक्रमण कर देता है। 'नम्र अवज्ञा' व्यक्तिगत मिथ्यारोपण, निरर्थक आक्षेपो पर प्रौढ कवि की आस्थाभरी मुस्कान को अभिव्यक्ति देता है।

वे कहते·
मैं भाव नही, केवल प्रभाव हूँ
. .. ...

सच यह·
मैं केवल स्वभाव हूँ!
वे कहते :
मैंने प्रकाश को ग्रहण किया
इससे · उससे, ··
जिससे तिससे,

---

1 बच्चन : 'कवियो में सौम्य संत,' पृ० १६५

सच यह :
स्वय नही छू पाए वे प्रकाश को,—

सत्य का आग्रह तो यह है कि जिन लोगो ने पत की रचनाओ को केवल विभिन्न प्रभावो का दर्पण पाया है वे यह भी सिद्ध करके दिखा दे कि पत का समस्त काव्य पैबन्ददार है। इस दृष्टि ने पत की रचनाएँ गिरगिट के बदलते हुए रगो की भाँति होनी चाहिए जिनमे व्यक्तित्व की अविच्छिन्नता, क्रमिक विकास, सगति और सम्यकता ढूढे नही मिलनी चाहिए।

'उन्नयन' रचना निम्न प्रवृत्तियो के उन्नयन की अनिवार्यता को सिद्ध करती है। 'अतरिक्ष भ्रमण' गीता के ग्यारहवे अध्याय—विश्वरूप—की व्याख्या करनेवाली रचना है जो 'ब्रह्मोदधि मे लीन' होकर औपनिषदिक सत्य 'आत्म दीप्त भव' की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए बतलाती है कि ग्रहो के विश्व से चमत्कृत होकर व्यक्ति अपने अत'निष्ठ सत्य को भूल गया है। वह सत्य के दर्शन के लिए अतरिक्ष भ्रमण कर रहा है और समझ नही पा रहा है कि वह स्वय ही निखिल ग्रहो का केन्द्र है।

मोहान्धवासियो, पर-द्रोहियो एव वैमनस्य, घृणा, कुठा मे जीने वालो तथा जगत को माया मानने वालो को 'आत्मदान' रचना आत्मिक-ज्योति का दान देती है। ईश्वर ही सर्वव्यापी सत्य है, वही जगत है। वह और मानव अभिन्न है। अत. मनुष्य अपना एव लोक जीवन का विधाता है। उसे धरा के जीवन को स्वर्गिक श्री शोभा से मण्डित करना होगा।

पृथक् नही मानव से ईश्वर

झाडो निज चितकबरे केचुल,
विचरो बाहर
नव प्रकाश का स्वर्ग नीड हो मानव अतर !

'अग्नि सदेश' मात्र भौतिक विकास के आकाक्षियो, अधिनायक देशो, अणु बम प्रेमियो एव वैज्ञानिक शक्ति सपन्न देशो और उनके कर्णधारो पर प्रहार है। आत्मिक ज्ञान रहित भौतिक उन्नति शीत युद्ध को जन्म दे रही है।

हे जन नायक !

कब सस्कृति सपन्न करोगे मानव मन को ?—

. .

महानाश बरसाओगे जीवन प्रागण मे ?

. ... .

देश किया विज्ञान ने विजित,
ज्ञाना ऽ मृत हो काल मृत्युजित् !

तुच्छ घिनौने स्वार्थो मे रत, भू कल्मष मे लिपटे, जीवन को विकृत करने वालो तथा धर्म, नीति, सस्कृतियो के खडहरो, जाति-पाँति के प्रेतो को 'अभिषेक' मे सबोधित कर कवि कहता है—

ओ हे भू जन !

... ...

मे नवीन चेतना प्राण मन के मधुत्रय से
अभिषेकित करता हूँ आज तुम्हारा जीवन,

भू जीवन का प्यार, हृदय का चिर यौवन धन,
अथक कर्म आनद तुम्हे मैं करता अर्पण !

'चैतन्य सूर्य' मे कवि जीवन को विकसित और सुदर देखने की अपनी आकाक्षा को वाणी देता हैं। समय आ गया है, अब मनुष्य भीतर से बदले। यह मानव विकास की उस स्थिति की सूचक रचना है जो बाह्य और आन्तरिक सत्य, वैज्ञानिक और आत्मिक सत्य के पूर्ण समन्वय से ज्योतित तथा मानवता के महत्तर भविष्य के प्रति आशान्वित है।

जीवन को सयोजित और सुदर देखने की कवि की यह आकाक्षा 'बुद्ध के प्रति'[1] रचना मे भी प्रतिफलित हुई है। बुद्ध को सबोधित किया हुआ यह ह्रस्व दीर्घ मात्रिक मुक्त छद बुद्ध के महत् व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धानत होने के साथ ही जीवन को उसकी पूर्णता और वास्तविकता मे अपनाने की ओर सकेत करता है। बुद्ध की विशालता—उनका महत् करुणा का सिद्धात—और

---

१. 'वाणी' में तीन लम्बी कविताएँ हैं—बुद्ध के प्रति, कवीन्द्र के प्रति तथा आत्मिका। तीनों की निजी विशिष्टता है यद्यपि तीनो ही पंत के विचार और भावो की सरल एवं सहज किंतु प्रौढ़ तथा सशक्त अभिव्यक्तियाँ हैं।

दिव्यता एक ऐतिहासिक सत्य है, इसमे सदेह नही। किंतु यह भी स्वत. प्रमाण है कि अपने समय के चेतनानुरूप जीवन की जो निषेधात्मक व्याख्या उन्होने की उसका जन-मानस पर स्वस्थ प्रभाव नही पडा ।

खोया था अध्यात्म धूम मे
जन मत नैतिकता से उपरत,
कर्मकाड रत भू को तुमने
दिया सत्य दृढ-तर्क-बुद्धि-गत ।
... ...

भारतीय जीवन को न केवल बौद्ध दर्शन ने निष्क्रियता और पलायनता के थोथे, मिथ्या तथा हानिप्रद बोध से आच्छादित किया वरन् शकर वेदात ने भी माया को अवाच्य कह कर जन-मन को जगत् से विमुख कर दिया था। मध्ययुग की दार्शनिक-धार्मिक चेतना निर्मम कर्मकाड एव ह्रास के अधकार मे लिपटी हुई थी। उसने जीवन वर्जन का निषेधात्मक दर्शन देकर देश की अकथनीय क्षति की है। बुद्ध, जो कि स्वय करुणा की मूर्ति थे, अपने अहिंसा, सेवा, महत् करुणा एव व्यापक प्रेम के सिद्धात को भू जीवन मे प्रतिष्ठित नही कर पाए क्योकि न तो देश की परिस्थितियाँ इसके अनुकूल थी और न जिस निषेधात्मक मार्ग को बुद्ध ने अपनाया वह भू निर्माण मे सहायक हो सकता था।

सचमुच, तुम आकर क्या कहते ?
निष्क्रिय थी तब लोक परिस्थिति
... .

ह्रास और विकास जीवन क्रम के ही अग है। मध्य-युग मे एक सास्कृतिक वृत्त पूर्ण होकर बिखर रहा था। अब यह बिखराव एव अधोगति ऊर्ध्वगति अथवा विकास को जन्म देगी। किंतु जीवन-मगल, जीवन-निर्माण के लिए धरती के सत्य को अपनाना होगा। आत्म-सत्य और जीवन-सत्य, विद्या-अविद्या समन्वित होकर ही भव-बाधा का हरण कर सकते हैं।

मध्यमार्ग रत बोधिसत्व थे
... ...

शुद्ध बुद्ध चैतन्य नही वह
जो जन भू जीवन से उपरत।
ईश्वर के प्रति भी न प्रणत वह
जो वैराग्य निवृत्ति मार्ग गत।

इस रचना के बारे मे बच्चन जी का कहना है, "पत जी का जीवन-दर्शन बौद्ध-दर्शन को स्वीकार नही कर सकता। बुद्ध के व्यक्तित्व और उनकी करुणा के प्रति वे नि सदेह आकर्षित है, पर इससे तो इन्कार नही किया जा सकना कि बौद्ध दर्शन जड के विकास से पराभूत निषेध और वर्जना का दर्शन हो गया है और इस कारण एकागी है, इसी प्रकार शकर का अद्वैतवाद 'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या' का सिद्धात भी जड से बिलकुल इन्कार करने के कारण एकागी है । पत जी नितात असदिग्ध और सुदृढ शब्दो मे कहते है

किया अमगल उसने भू का
अर्ध सत्य का कर प्रतिपादन,

गीता, बौद्ध धर्म, शकर के अद्वैतवाद तीनो ने ही पिछले दो हजार वर्षो से भारतीय मनीषा को विरक्ति, निवृत्ति निष्क्रियता की ओर झुकाया है। विशद और महत् समन्वयवादी इस कवि की दृष्टि मे यह असतुलन कभी स्वस्थ नही हो सकता । इस असतुलन को अब समाप्त होना चाहिए।
...बुद्ध के व्यक्तित्व के प्रति आदर और श्रद्धा रखते हुए भी जिस कला-पेक्षित सयम से पत जी ने बौद्ध-दर्शन का विरोध किया है उसकी सराहना की जानी चाहिए।"[1] इसी तथ्य पर आगे प्रकाश डालते हुए वे अपने निबध 'आधुनिक हिन्दी कविता मे बुद्ध' मे कहते है, "जयती (१९५७) के समय बुद्ध के प्रति स्तुति, श्रद्धा, भक्ति की जो बाढ आई थी उसके शात हो जाने पर, पत जी ने तटस्थ होकर बौद्धधर्म के प्रादुर्भाव, विकास, ह्रास पर विचार किया है और बुद्ध की करुणा के प्रति आदर दिखलाकर भी उनके शून्य और क्षणवादी सिद्धातो का विरोध किया है और भविष्य मे ससार के लिए उन्हे कल्याणकारी नही माना। इस कविता मे विश्लेषण की सफाई, मूल हिंदू सिद्धातो के प्रति जो आस्था और उन्हे प्रतिपादित करने मे जो मर्यादित

---

१. 'कवियों में सौम्य संत' पृ १६५-१६६

निर्भीकता पत जी ने दिखाई है उसके लिए उन्हे बधाई दी जानी चाहिए। वे कहते है कि बुद्ध के शून्यवाद और क्षणिकवाद क्या थे

> "शून्यवाद, जड क्षणिकवाद ने
> घेर लिया जन-मन गगनागण,
> रिक्त वारि, सिकता रज के घन
> दुर्लभ चातक हित जीवन कण !"[१]

'कवीन्द्र के प्रति' रचना भारत के सास्कृतिक जागरण, पूर्व और पश्चिम के समन्वय के बोध, विश्व प्रेम एव मानव एकता के प्रतिनिधि के रूप मे कवीन्द्र का प्रणत गान करती है। किंतु समातर मे यह भारत तथा विश्व की वर्तमान दशा का निरूपण भी करती है। कवि को पूर्व-पश्चिम के सास्कृतिक समन्वय तथा विश्व-प्रेम का आदर्श भू लुठित दीखता है किंतु वह हताश नही होता है क्योकि रात्रि के बाद प्रभात तथा पतझर के बाद वसन्त का आगमन होना अनिवार्य है।

> विश्व कवे, तुम जिस मानवता के प्रतिनिधि बन
> आए, वह खो चुका हाय, मानुष्य परम धन !
> ... ..
> तन मन धन बल हीन आज, दृढ आत्म तेज गत,
>
> प्राप्त करे भू मन सुदर से अति सुदर को,
> खड सत्य से पूर्ण सत्य, शिव से शिवतर को !

'वाणी' की सर्वश्रेष्ठ तथा सबसे लम्बी रचना 'आत्मिका' है, इसकी श्रेष्ठता इसके आत्म-कथात्मक तथा अनुभूतिप्रधान होने मे है। जीवन दर्शन को अपनाए हुए जिस स्निग्धता और तरलता के साथ यह प्रकृति के अचल, पारिवारिक जीवन, युग यथार्थ तथा व्यक्तिगत जीवन के मधु-तिक्त अनुभवो के साथ वस्तुगत धरातल पर विचरी हे तथा व्यापक जीवन सत्य की ओर सकेत करती है वह गुलाब की सुगध सा मन मे बस जाता है। जब स्वय पत इस कविता का पाठ करते है तो कुछ स्थलो पर उनके नेत्र सजल तथा गला

---

१. नए-पुराने झरोखे, पृ० १०६-११०

भर जाता है, वे रुआसी हँसी हँस कर आँसू पोछे लेते है। तब लगने लगता है कि पत आज जो है उसके लिए उन्हे पर्याप्त साधना करनी पडी होगी। परियो के देश एव प्राकृतिक सौदर्य तथा भौतिक ऐश्वर्य मे पले सवेदनशील युवक के लिए निःसदेह वह स्थिति दारुण ही रही होगी—

इन्ही दिनो मोहाध क्षुब्ध मन
मुक्त हो गया भव बधन से,
बिला गई हो भौतिक सत्ता
गुठन सा उठ गया नयन से !
दृढ प्रस्तर प्रासाद पिता का
मेघ खडवत् लीन गगन मे
.. .

दुर्विपाक घटता भू पथ पर
चलते स्वय फिसल जाते पग,—
सहसा प्रात. उठकर जाना
अब घर द्वार नही, निर्जन मग !
. .. ...

पिता, बहिन, भाई का तन धर
मरण मूर्त हो आया सम्मुख
... ...

अश्रु ग्रथित सित पट से हँसती
जीव नियति थी दारुण सुदर !

इस जीव नियति के अचल मे पत नितात एकाकी हो जाते कि उनकी कु० सुरेशसिह से ताकुला मे भेंट हो गई और उनके स्नेह, मानो पूर्व जन्म के भ्रातृत्व-सबध ने पत को एकाकी एव परिजनहीन अनुभव नही होने दिया। कालाकाँकर मे अपने रहने के लिए जिस स्थल—नक्षत्र—को पत ने स्वय चुना था वह 'साँप, बदर और घूग्घू-जैसे प्राणियो' का निवास-स्थान था।

इसी समय कालाकाँकर के,
स्नेह द्वार खुल गए अचानक,
... ...

टेसू के पावक वन मे युग
बीता, खग पशु तरु थे सहचर,

पत ने 'टेसू के पावक वन' वाली पक्ति पहिले भिन्न प्रकार से लिखी थी—' अहि वन मे' फिर प्रकाशित करवाते समय उन्होने पक्ति बदल दी। कहने लगे, "कही कोई गलत न समझ ले। मैंने तो तथ्य की दृष्टि से ऐसा लिखा था। पर भ्राति हो सकती थी।" कालाकाँकर की उनकी समस्त स्मृतियाँ, विशेषकर सुरेश सिंह और श्रीमती प्रकाशवती को घेरे हुए, स्नेह-मधु-भीनी है।

'आत्मिका' मे 'ग्रथि' का वर्णन करते समय कवि ने लिखा है—

लाछन, कल्मष के काटो मे
खिला प्रेम का फूल धरा पर,
..
हो न सका चरितार्थ प्रेम का
धरा स्वर्ग नारी उर मे स्थित,
हृदय नही विकसित शोभा का
देह भाव से मन अवगुठित!
गुजित उर की करुण प्रतिध्वनि
मधुर 'ग्रथि' मे, ध्वनिलय गुफित
... .
प्राणो की सौंदर्य स्पृहा वह
मधु गीतो मे हुई गुजरित

'आत्मिका' की ये पक्तियाँ वैयक्तिक भावनाओ की अनुगूँज ही लगती है—कवि के प्रणय-जीवन की असफल गाथा-सी—जो प्रेम को व्यापक स्तर—जन भू-पर ढालती हुई कह देती है कि इस धरती पर प्रेम है ही नही, और जहाँ है, वहाँ उसे लाछन और कल्मष से युक्त कर दिया जाता है। किंतु पत शपथ लेते हुए कहते है, "सच, यह कल्पनिक है। ग्रथि की गाथा मात्र मानसिक धरातल की ग्रथि है। जरा ध्यान से इन पक्तियो को तो पढो—

प्राण कामना का पकिल मुख
जन भू मन को धोना निश्चित
... ...

हृदय नही विकसित शोभा का,
देह भाव से मन अवगुठित !
. .
बिना हृदय के देह प्राण मन
दारुण वन पशु कानन दुष्कर।

पत यह स्वीकार करते है कि प्रेम की भावना का हृदय मे उपजना स्वाभाविक है किंतु साथ ही वह कहते है कि वे किसी के प्रेम-पाश मे नही बध पाए, किसी को प्यार नही कर पाए, जिस प्रेम के वे आकाक्षी है वह प्रेम पृथ्वी पर है ही नही क्योकि 'जगत केवल आदान-प्रदान'। विवाद के मध्य एक दिन कहने लगे, "दुनिया मे ऐसे दो दम्पति गिना दो जिनके बीच प्रेम हो। सुख-सुविधा, आदान-प्रदान को ही लोग प्रेम समझ लेते है।" पत को प्रेम नही मिला किंतु इससे वे दु खी नही हो पाए। 'प्यार' उनके मन की एकमात्र साध नही ही रही है। स्वभावत विचारशील होने के कारण, वासनाओ के ज्वार मे बहने के विपरीत, उन्होंने अपनी भावनाओ एव मन को समझा लिया कि इस जन-भू पर प्यार करने वाला हृदय नही है, और फिर वे अपनी सपूर्णता मे कविता कामिनी पर न्योछावर हो गए। कविता कामिनी का सा अद्वितीय आकर्षण, सुषमा और सौरभ उन्हे और कही नही मिला—वह उनके सपूर्ण व्यक्तित्व मे छा गई।

प्रथम चरण था नव यौवन का
शोभा स्वप्नो से दृग अपलक,—
देही धर लाई हो कविता
रूप शिखा सी नख से शिख तक !
... ..
तडित् लता, शशि लेखा सी वह
चकित कर गई दृष्टि, मुग्ध मन !
भाव पख मधु प्रेम विहग उड
लगा कूजने हृदय डाल पर,
...
बाहर भीतर केवल वह थी
. ...

शत भावो स्वप्नो मे स्पदित
उर की उर, जीवन की जीवन ।

पत की यह प्रेयसी, प्राणो की प्राण वह सपूर्ण सत्य है जिसकी नि स्वर पद चाप दिशा काल के हरित हर्म्य मे उन्हे अनुक्षण सुनाई देती है और जो जीवन चेतना के रूप मे उनका जन मगल से साक्षात्कार करा देती है—

कल्याणी सी, शस्य हरित छवि

सुरधनु बाँधे घन कवरी मे,
वितर हास्य से जीवन मगल,—
वोली वह, बौद्धिक दर्शन से
जीवन दर्शन पट दिग् विस्तृत
उसके भीतर जड, आत्मा, मन,—
धरा पुष्प वह स्वर्ग बीज स्मित ।

'अतिमा' और 'वाणी' छायावादी सौन्दर्य की आभा से युक्त होते हुए अपने रूप मे प्रयोगवादी और अतर मे जन मगलकामी है। इन रचनाओ मे वर्णनात्मक सजीवता है, और है, काव्य गरिमा का सौष्ठव क्योकि कवि की दृष्टि धूमिल या सीमित नही है, वह अनुभूति के ओज से प्रोज्वल है। "दिशा काल के हरित हर्म्य मे अनुक्षण/सुनता हूँ पद चाप तुम्हारी नि स्वर/तुमसे आ, तुममे ही लय होते नित/सृजन हर्ष से प्रेरित विश्व चराचर !" ऐसी अनुभूति के लिए न तो स्वीकृत एव जन-प्रचलित भाषा पर्याप्त होती है और न अनगढ, विकृत रूपक ही उसे अभिव्यक्ति दे सकते है। उसकी भाषा उसी से निःसृत होती है। अथवा भाषा और भाव मे तदाकारिता होती है। किंतु पत के आलोचक सत्य एव अनुभूति को समझने, उसे आत्मसात् करने के विपरीत एकदम चौंक कर कहते है, यह क्या शब्दावलि है ? व्यक्तिगत राग-द्वेष, हताशा, कुठा से परे वह कौन-सा सत्य है जिसे पत की काव्य-भाषा छद के पायलो को तोड कर बोधगम्य करवाना चाहती है। पत का नया काव्य एव नई भाषा न तो छायावादी सुकुमारता को अपनाती है और न प्रयोगवादी कठघरे की शृखला को सह पाती है। उनकी भाषा और भाव का अन्योन्याश्रित सबध विशिष्ट आलोचको मे, अखाडे की प्रतिद्वदिता के कारण, खीझ उत्पन्न कर देता है क्योकि वे पत के भाव एव भाषा को अपने स्तर पर उतार कर समझने

का प्रयास करते है और हठधर्मिता मे बरबस विस्मरण कर देते है कि किसी भी काव्य, विशेषकर पत-काव्य, के आस्वादन के लिए आशुग्राही मानस, हृदयग्राहिता एव उन्मुक्त कल्पना की आवश्यकता होती है।

'अतिमा-वाणी' मे वीणा-पल्लवकालीन आत्म-मुग्धता, सौदर्य-प्रियता की जीवनप्रियता और जन-मगलाशा मे स्पष्ट परिणति मिलती है। कवि को वह काव्य, सौदर्य और शिल्प आकर्षित नही करता है जो जीवन की गहराई से निःसृत न हुआ हो। अथवा "पत जी कला को नक्षत्र लोकवासिनी न बनाकर जीवन की यथार्थ-मिट्टी मे रखना चाहते हैं। उनका लोकायन का गान (अतिमा) तथा स्वर्णधूली की निम्नांकित पक्तियाँ इसका प्रमाण है

पौधे ही क्या, मानव भी यह भूजीवी नि.सशय,
मर्म कामना के बिरवे मिट्टी मे फलते निश्चय।

इस प्रकार पत जी की कला एक प्रवहमान चेतना के समान हैं जो ऊँचाई से नीचे की ओर और नीचाई को पूरित कर फिर ऊपर की ओर बहती रहती है। वह यथार्थ और आदर्श, वास्तविक और कल्पनीय, धरती और आकाश, देह और आत्मा, एकात और समाज के बीच समन्वय-स्थापन का कार्य करने वाली हैं। उसमे जीवन की वासना और लालसा है, साथ ही दिव्य चेतना का आवाहन भी। इसी रूप मे वे इस युग की कला का जनयुग की नव ऊषा रूप मे आवाहन करते हुए कहते हैं —

ओ जन युग की ऊषाओ,
.. ..
भू के शिखरो को नहलाओ"[1]
(आत्मिका-आवाहन)

---

१. डा० भागीरथ मिश्र, 'आधुनिक हिन्दी कवियो की काव्य कला', सपादक प्रेम नरायण टण्डन, पृ० ६८-६६

"As a matter of fact, the best of Pant, be it in 'Pallava' 'Veena', 'Gunjan', 'Yugant', 'Atima', or 'Vani' is undisputably the high watermark of modern Hindi poetry. You may find him too elusive You may complain that instead of giving you a personal philos-

किंतु पत की काव्य चेतना के स्वरूप और उद्देश्य को समझने के विपरीत उनके अधिकाश आलोचक यह कहकर अन्वेषण के कष्ट से छुटकारा पा लेते है कि पत ने श्री अरविंद के दर्शन[1] को अपनी वाणी से अलकृत कर दिया है, वे विचारो का साम्य भी खोज लेते हैं, इस जीवत तथ्य से, न जाने कैसे, बिलकुल ही आँख मूँद लेते है कि सभी मानवतावादी एव विश्व कल्याण के आकाक्षी विचारको, मनीषियो, लेखको एव साहित्यिको के मूलभूत स्वर मे साम्य अवश्य ही होगा। और इस दृष्टि से न केवल पत ने श्री अरविंद के दर्शन को अपने छदो मे मुखरित किया है वरन् विश्व की समस्त भू-मगलाकाक्षी विभूतियो को। सत्य का शाश्वत रूप एक ही होता है—अद्वितीय और नित्य-किंतु देश-काल तथा विचारक एव लेखक के मानसिक-दैहिक व्यक्तित्व के अनुरूप वह भिन्न-भिन्न रूपो—सापेक्ष स्वरूप—मे प्रकट होता है। जब इस सापेक्ष सत्य की तुला मे हम शाश्वत सत्य का दर्शन करते है तो मात्र यह जानना आवश्यक होता है कि शाश्वत सत्य को सापेक्ष रूप मे कवि हमारे कितने अधिक

---

ophy of his own he keeps beguiling you with Arvindism ..... of the longer poems, 'Buddha Ke Prati', 'Kavindra Ke Prati', and the 'Prelude' like 'Atmika' and of the shorter pieces, such specimens of virtuosity, as 'Anubhuti', 'Abhivyakti' and 'Antardvani' and such delightful sallies as 'कौवे' तथा 'घोंघे शख'—to mention but a few—will compel admiration and respect. Whatever the verdict of the future generation Pant will undoubtedly have a special niche in the hall of lasting fame—as a true poet who flourished in an age crowded with spurious ones and as one who never ceased to be a Chhayavadi and yet never grew out of date"

C B. Rao—The Times of India (8.6 58)

१ "युगवाणी के समय पंत जी जिस समस्या से आक्रांत थे, उसका समाधान उन्हे अरविन्द में मिला और अब इस समाधान में वे पूरे मन से विश्वास करते हैं। 'उत्तरा' और 'अतिमा' की कविताएं इसी विश्वास की कविताएं हैं।"

'दिनकर : 'पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण', पृ० १३८

निकट ले आया है, क्या इसका स्पदन हम अपने अदर सुन सकते है ? 'अतिमा' और 'वाणी' को अरविंद-दर्शन का दर्पण कहना उतना ही मिथ्या होगा जितना कि तुलसी रामायण को वाल्मीकि रामायण का दर्पण कहना। इन सग्रहो मे भाषा, भाव और काव्यतत्व की दृष्टि से अनेक ऐसी रचनाएँ है जिनकी श्रेष्ठता का निराकरण करना असभव नही तो सभव नही है। 'वाणी' पर विवेचन, करते हुए बालकृष्ण राव ने द टाइम्स ऑफ इण्डिया, (८।६।'५८) मे लिखा है, "'वाणी' मे ऐसी कविताएँ है जिनसे श्रेष्ठतर पत की पीढी या पत-मार्गवादी किसी कवि ने नही लिखी है।" 'अतिमा' के बारे मे रवीन्द्र भ्रमर का कहना है " अतिमा की सबसे बडी विशेषता, जिसके बारे मे मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ, कवि पत का नवीन अधुनातम काव्य-शिल्प के निकट आ जाना है। शिल्प ही नही, विषय की दृष्टि से भी इस सग्रह की कई रचनाएँ एकदम 'नयी' कही जा सकती है और इनका रचनाकार स्वयम् मे हिन्दी की नयी कवि-पीढी के साथ जान पडता है।' ' पत जी युग-धर्म को पहचान कर युग के साथ चलने वाले कवि रहे है। 'अतिमा' मे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। इस सग्रह की रचनाएँ प्रयोगवादी युग मे लिखी गई है। 'जन्म दिवस', 'सोनजुही', या 'धरती, कितना देती हैं' प्रभृति रचनाओ को देखकर उनमे जागृत होते हुए सशक्त, किंतु नये कवि-रूप के प्रति हमारी आस्था दृढ होती है और उसके प्रति हम श्रद्धा विनत भी है।"[1]

●●

---

१. 'साहित्यकार', पृ० १६–११
साहित्यकार-संसद्, इलाहाबाद-२

१५

ज्योतिष तथा चिकित्सा

•

'कला और बूढा चाँद' छप रहा था। मन सृजन उन्मुक्त हो बाह्यातर मे मनोरजन खोजने लगा। बगीचे मे भी कुछ काम नही था। जो कुछ पेड-पौधे लगाना चाहते थे वह लगा चुके थे। अब ध्यान ज्योतिष, हस्तरेखा ज्ञान और तदनुरूप मणि-माणिक्यो की ओर आकर्पित हो गया। ज्योतिष ने उन्हे सदैव ही आकर्षित किया है, उसकी चर्चा मे उन्हे आनद मिलता है। उनका विश्वास हैं कि अच्छे ज्योतिष ज्ञान के आधार पर निश्चित भविष्यवाणी की जा सकती है। साथ ही वे स्वीकार करते है कि ऐसा ज्ञान दुर्लभ होता है क्योकि यह ज्ञान मात्र पुस्तकीय ज्ञान नही है, यह गहन अनुभव और अतर्दृष्टि की अपेक्षा रखता है। हस्तरेखा और ज्योतिष दोनो मे ही पत दक्षता रखते है। इनमे उनकी पैठ है, यह मन सरलता से मान लेता है। न जाने कितनो को बताई हुई उनकी बाते अक्षरश. सत्य निकल गई हैं। इसका दुष्परिणाम भी वे पर्याप्त भोगते हैं, किंतु यह कहना, सभवतः अनुचित होगा क्योकि उनके मन मे दूसरो के प्रति जो आदर का भाव है एव बचपन के सस्कारो ने उनके मन मे जो अभ्यर्थना की धारणा बना दी है वह उन्हे कभी मन से थकने, ऊबने या दुखी नही होने देती है। "थक तो गया था किंतु मै तो मन से रहता हूँ। देह की थकान मेरे मन को स्पर्श नही कर पाती है।" समय-कुसमय, परिचित-अपरिचित, स्थानीय, प्रातीय अथवा दूसरे प्राातो[1] से आए लोग अपनी-अपनी

---

१. दो-तीन बार विदेशी लोग भी आए। किंतु वे समय और सुविधा देखकर आए। जब उन्होने स्वदेश वापिस लौटने पर पंत के लिए कहलवाया कि उन्होंने हस्तरेखा देखकर जो क्रमशः सुखद भविष्य, नौकरी आदि के बारे मे आश्वासन दिया था वह ठीक निकल रहा है तो पंत को खुशी हुई— "बड़ा अच्छा लग रहा है वह बहुत दुःखी था" अथवा "बहुत दुःखी थी।"

समस्याएँ लेकर घण्टो बैठ जाते हैं। थकान के कारण पत की आँखो मे पानी आ जाता है जिसे वे बार-बार चश्मा हटा कर पोछ लेते है, या नीद को भगाने के लिए जम्हाई लेने के साथ चुटकी बजाते है अथवा वे अस्वस्थ होने के कारण तखत या चारपाई पर लेटे रहते हैं और क्षीण स्वर मे ही उत्तर दे पाते है—इस सबको मानो झुठलाते हुए पत्री दिखाने के इच्छुक लोग प्रसन्न मुद्रा मे कहते है, "बस आपके दर्शनो के लिए ही आया हूँ।" "दो मिनट के लिए आपसे मिलना चाहता हूँ। रात के दस तो बज गए है किंतु मै दूर से आया हूँ, सबेरे ही लौट जाना है।" एक मिनट के बाद ही वे तथ्य पर आ जाते है, "एक छोटी सी बात पूछना चाहता हूँ। मुझे मालूम है आप अस्वस्थ है किंतु ।" अथवा "मुझसे कहा कि प्रयाग जाओ तो पतजी के दर्शन अवश्य कर लेना।" और फिर वे अपनी जन्मपत्री पत को पकडा देते है। "मैं सालो से ज्योतिष का अध्ययन कर रहा हूँ, आपकी जन्मपत्री देखने ही इतनी दूर से प्रयाग आया हूँ।" पत के अपनी जन्मपत्री देने पर वे अपनी निकाल कर रख देते है, "कृपया पहिले आप मेरी देख दीजिए। मै आपकी पत्री पर विचार करके आपको पत्र लिखूँगा।" कभी साहित्य-प्रेम के नाम पर पत के पास पत्र आते है, "मै आपके साहित्य का प्रेमी हूँ। कृपया मेरी पत्री देखकर मुझे मेरे भविष्य के बारे मे बतला दीजिए।" कभी एकदम वे लोग आ जाते है जो परिचित इस अर्थ मे है कि उनके मित्र या उनकी सहेली को पत जानते है। " ' आपकी बहुत प्रशसा करती है। हमने भी सोचा आपका दर्शन करके जीवन सार्थक करे।" यह सब छलना है, पत को अपनी, अपने बृहत् परिवार या अपने मित्रो के बृहत् परिवार की पत्री दिखाने की। ऐसे लोग यह भी भूल जाते है कि मानस यत्र नही है कि एकदम नौ-दस पत्रियो पर विचार कर ले। उस पर दिनभर का थका मानस या देह की बीमारी से श्लथ मानस ! फिर पत का कहना कि एक विशेष मन:स्थिति होने पर ही अकाट्य विचार किया जा सकता । अकाट्य विचार के लिए ज्योतिष का शास्त्रीय ज्ञान अपने आप मे पर्याप्त नही है, उसके लिए स्फुरित ज्ञान तथा कुण्डली का सच्चा होना भी आवश्यक है। ऐसी स्थिति मे ही पत अच्छी घटना के लिए कह देते है, "बस मैंने कह दिया। यह अकाट्य है। देख लेना, अवश्य होगा।" अन्यथा शास्त्रीय व्याख्या करके सतुष्ट कर देते है। जमुहाई-अँगडाई और थकी आँखो से वे विचार करते जाते है और सुनने-वाले उसी मे प्रश्नो की झडी लगाते जाते हैं अथवा अपने बडे से बटुए, झोला या कोट की अदर-बाहर की जेबो तथा पेन्ट की जेब से पत्री पर पत्री मेज़

पर रखते जाते है। जब पंत उन्हे उनके 'कष्ट उठाने के कारण' अत्यधिक धन्यवाद देते हुए बिदा देते है तो वे, सभवतः पत के धन्यवाद देने के कारण, जाते समय आश्वासन दे जाते है कि वे शीघ्र ही और पत्रियाँ लेकर आएगे, और सचमुच ही, दिखाने आ भी जाते है। एक बार श्री इलाचद जोशी बैठे हुए यह सब देख रहे थे। जब उन्होने देखा, एक न दो, सात-आठ पत्रियाँ दिखाने पर भी तो वे एकदम झुँझला उठे, "यदि ज्योतिष का आपको इतना प्रेम है तो मुझे रुपए दीजिए मैं एक-एक से अच्छे ज्योतिषी को दिखा दूँगा। आप लोग यह भी नही देखते कि किसका समय नष्ट कर रहे हैं।"

पत्री देखना पत को अच्छा लगता है किंतु मन उन्ही की पत्री देखने मे प्रसन्नता अनुभव करता है अथवा स्फूर्तिमान रहता है जिसको वे जानते है, जो स्नेही है अथवा जो सचमुच मे आपद्ग्रस्त है अथवा, इससे भी अधिक, जो जौक की तरह चिपक जाते है और सारी दुनिया के कार्यक्रमो को अपने स्वार्थ से सचालित न कर सकने के कारण दुखी है। आपद्ग्रस्त, त्रस्त एव निर्बलो से पत स्वय पत्री मागते है, उनकी पत्री पर विचार करने एव उनका हाथ देखने को व्याकुल हो जाते हैं। अपने कुटुम्बियो या प्रियजनो के घर सतानोत्पत्ति सुनकर वे तत्काल जन्मपत्री बना अथवा बनवाकर विचार कर लेते है। किंतु जब मन और तन थका हो, कोई विशेष रुचि भी न हो तो पत्री देखने का उत्साह नही ही रहता है। पर ऐसे मे स्पष्टत किसी को मना नही किया जा सकता "बेचारे चिंतित थे अन्यथा क्यो आते।" कभी जब पत्री दिखाने वाले अति कर देते है तो माथे पर हाथ लगाते हुए पत कहते हैं, "भाग्य है, तमाम समय नष्ट हो गया हैं, थक भी गया हूँ।' "अरे यहाँ वालो की न पूछो। उनके लिए मेरे समय का क्या मूल्य है ? उन्हे अवसर मिले तो दिनभर मुझसे घास छिलवाएँ।" मैंने टोकते हुए कहा, "दूसरो को क्यो दोष देते हो ? तुम्हारे समय का प्रश्न है, तुम्हे मना करना चाहिए।" वे हँस दिए, "यही तो मेरे स्वभाव की लाचारी है। मना ही नही कर पाता। और जानती हो, मैं अच्छी तरह से विचार नही ही कर पाया। दो-चार मोटी बाते बता दी। दिमाग काम ही नही कर रहा था। अब आज सारे दिन कुछ नही कर पाऊँगा। थक गया हूँ। एक बडी अच्छी कविता उतरी थी—काफी लम्बी थी। उस समय लिख नही पाया। अब शाम को दिमाग टटोलूंगा—याद आ गई तो लिख लूंगा।" ऐसी न जाने कितनी कविताएँ कुसमय के अभ्यागतो को समर्पित हो गई हैं क्यो कि पत के घर का द्वार सृजन के नाम पर किसी की उपेक्षा नही कर सकता। किसी बाध्यतावश या डाक्टर के कहने पर मिलनेवालो को

हठपूर्वक मना करो तो उनका मन, कम से कम, दो तीन दिन तक ग्लानि का अनुभव करता है और मैं भी मन ही मन झुँझला उठती हूँ—वे कई बार पूछते है—तुमने ठीक से समझा दिया ? वे बुरा तो नही माने ? बोलना अच्छा चाहिए।

ज्योतिषियो से ज्योतिष चर्चा करने के लिए वे लालायित रहते है, उन्हे अपनी जन्मपत्री दिखाना भी चाहते है। जब भी कोई अच्छा ज्योतिषी दीखता है तो वे दो प्रश्न पूछते हैं. (१) भगवत् अनुकपा प्राप्त होगी ? (२) मैं कुछ अच्छा लिख पाऊँगा ? और इसी से जुडा हुआ प्रश्न रहता है, यह वर्ष लेखन की दृष्टि से कैसा रहेगा ? जिन दिनो बीमार रहते है तो एक प्रश्न और पूछते है, स्वास्थ्य कैसा रहेगा ? यह प्रश्न लेखन से सयुक्त प्रश्न है क्योकि लेखन, उन्ही के अनुसार बिना कामचलाऊ स्वास्थ्य के सभव नही हो सकता और पत अभी कुछ अच्छा लिखना चाहते है क्योकि 'पूर्ण नही कर सका अभी तक मैं प्रणिहित कवि कर्म धरा पर'। किंतु यदि भगवान् नही लिखाना चाहते है तो न सही। उसकी इच्छा ही सब कुछ है, उसी मे प्रसन्नता है। इधर कुछ वर्षों से एक प्रश्न और पूछने लगे हैं, यह प्रश्न क्या, चिन्ता है भारत के भविष्य की।[1]

ज्योतिषियो के कहने पर वे अपने या कुटुम्बीजनो के लिए पूजा करवाते एव ताबीज भी बनवाते है। इसका शत प्रतिशत कारण यह है कि उनके मना करने पर भी जब ज्योतिषाचार्य नही मानते तो उन्हे स्वभाववश स्वीकार करना ही पडता है। एक भृगु पण्डितजी चार-पाँच साल तक नवरात्रि, नए वर्ष आदि मे कुछ फूल लेकर आ जाते थे और कहते थे, "मैंने आपके लिए जप किया है, इसकी दक्षिणा ' रुपए हैं।" पत चुपचाप रुपए देने के साथ ही अभियुक्त की भाँति कह देते, "आगे से पूजा मत कीजिएगा, मुझे विश्वास नही है।" पण्डितजी क्यो मानते, वे 'ही-ही' करते हुए चले जाते और फिर दूसरे-तीसरे दिन वही बात दुहराते, 'बडा अनिष्ट था, मैने आपके लिए महामृत्युजय का सवा लाख जप किया है' अथवा ऐसी ही कोई अन्य बात। पूजा एव ग्रहो मे पत को विश्वास है किंतु पण्डितजी ! ज्योतिष के नाम पर गुरु की दशा को शनि और राहु की दशा बताने वाले। पंत जब उनसे बुरी तरह ऊब गए तो उनका मनोभाव देखकर मैंने पण्डितजी से स्पष्टत. कह

१. सन् '७१ से उनको एक चिन्ता और बढ़ गई है, वह है सुमिता के विषय में।

दिया, "आप जो बताते है सब गलत होता है। अब से आप बिना हमारे कहे पूजा न करें।"

सन् '६२ मे उन्होने अपनी ममेरी बहिन (अब स्वर्गीय) की कुण्डली एक दूसरे प्रात से आए हुए ज्योतिषी को दिखलाई। कुण्डली दिखाने के पूर्व ही कह दिया "बहुत बीमार है। डाक्टरो ने जवाब दे दिया है। आजकल अपनी लडकी के पास है।" ज्योतिषाचार्य सिर खुजला ही रहे थे कि पत ने उसके पति और दामाद की नौकरी आदि के बारे मे बतला दिया। ज्योतिषी ने मुद्रा बदली, सभवत उसने अनुमान लगा लिया कि ठगा जा सकता है। उसने एकदम नाटकीय ढग से मुद्रा बना कुण्डली मेज़ पर पटक दी। "क्या दिखाते है? पन्द्रह दिन का जीवन है।''' पूजा का सकल्प उनसे करवा दीजिए। बस पिचहत्तर रुपया लगेगा।" उन्हे बतलाने पर कि बहिन दिल्ली मे है उसने कहा उनका पति या बेटा सकल्प कर ले तो एक ही बात होगी। यह भी सभव नही हो सकेगा कहने पर वह कुछ देर चुप रहा। फिर बोला, "अच्छा मै ऐसे पूजा कर दूँगा कि उन्हे फल जाएगी। आप सकल्प ले लीजिए।" उन्हे मना कर मै अदर कॉफी बनाने आई तो ज्योतिषी को कहते सुना, "सोचते क्या है, क्या बहिन की जिन्दगी ७५) रु० मे तोलेगे। वह मर गईं तो पछताइएगा। लाइए आप ही २५) रु० का सकल्प कर दीजिए। बाकी फिर दे दीजिएगा।" मेरे बैठक मे पहुँचने तक पत ने २५) रु० का सकल्प कर दिया था। बाद को कहने लगे, "तुम्हारी गलती है, तुम्हे साफ मना करना था। वह मूर्ख है। उसे कुण्डली पढना तक नही आता।"

इसी भाँति एक और सज्जन ने सन् '५७ मे मेरी बीमारी का लाभ उठा कर उनसे ४००) रु० ले लिए। कहा बिना ताबीज पहने यह स्वस्थ नही होगी। ताबीज़ पहनना पूर्ण रूप से अस्वीकार कर मैं विश्वविद्यालय चली गई थी। वहाँ से आई तो मालूम हुआ उन सज्जन ने पत से कहा, "आपको पैसे का मोह है। मैं पैसे नही लूँगा। आपकी बहिन का शुभचिंतक हूँ। बस आप चालीस रुपए का सकल्प कर दीजिए।" पत के कहने पर कि बहिन से पूछकर बताऊँगा उन्होने तत्काल पत्रा निकाला "अभी शुभ लग्न है।" पत के सकल्प करने के साथ ही उन्होंने कहा, "अब ताबीज का दाम चार सौ रुपया और दे दीजिए। मैं स्वय कुछ नही लूँगा। इतना सब पूजा मे खर्च होगा।" दैव का विधान! ताबीज घर आया कि मेरा शोध ग्रथ खो गया, ट्यूमर की शल्य चिकित्सा करानी पडी और फिर मैने ताबीज को प्रणाम कर उससे मुक्ति पा ली। किंतु इससे क्या होता है। पंत की विवशता उनके स्वभाव की है। वही

पण्डितजी फिर से घर आए और उन्हे ताबीज-चक्र मे फाँस गए। दैव ने कुछ ऐसा सयोग ढूँढा कि ४५०-५०० रु० के बदले उसी दिन (सन् '६५) श्री वालकृष्ण राव के साथ बचपन की मैत्री एव स्नेह सबध कुछ वर्षों के लिए धूमिल पड गया।

किंतु झूठे ज्योतिषी एव ज्योतिष-चक्र पत को फाँसता रहता है। सन् '६६ मे अल्मोडा से एक वृद्ध पडितजी का पत्र आया, "आप पर सकट था। मैने आपके लिए महामृत्युन्जय जाप किया। इसका पारिश्रमिक २००) रु० है। यह ब्राह्मण का धन है, आप यथाशीघ्र भेज दीजिएगा।" कोई भी इस स्थिति मे क्या करता, पिता-भाई के समय के वृद्ध पण्डितजी को मनिऑर्डर भेजना ही उचित था। पर पण्डितो का चक्र बहुत सरल नही ही होता है। कभी-कभी वह उन्हे अपना धर्मावलबी भी घोषित कर देता है। सन् '७२ मे एक पुराने साहित्यिक सज्जन के बेटे के साथ एक प्रौढ व्यक्ति आए, सभ्रात साधु! अपने सप्रदाय की चर्चा के मध्य देश-विदेश की राजनीति पर प्रकाश डालते हुए उन्होने पत की ओर देखा, "आपके ग्रह विरोधियो को जन्म देते है तथा आपको स्वस्थ नही रहने देते है। मै इस घर मे कल पूजा करना चाहता हूँ, और तब देखिएगा, वातावरण सुखद और शातिपूर्ण हो जाएगा।" हमलोग चुप थे, उन्होने कहा "बस दस-पाँच मिनट की सामान्य-सी पूजा।" पत की मूक सह-मति देख मैंने कहा, "ठीक है, क्या कुछ सामान भी मगाना होगा।" "एक अच्छी लाल रग की बनारसी साडी और वैसा ही जम्पर का टुकडा मगा दीजिएगा। मासाहारी भोजन बनवा दीजिएगा।" कुछ रुक कर बोले, "और सामान मगाने मे आपको कठिनाई होगी। मेरे साथी ला देंगे।" उनके साथी को सामान के लिए रुपए दिए, सामान मे विशेष चीज थी मदिराए। साडी-जम्पर 'विजय ब्रदर्स' के यहाँ से मै ले आई। मासाहारी खाना नौकरानी ने बना दिया। आठ बजे रात को स्वामी जी ३-४ लोगो के साथ आए। मैं खाना लगवाने गई, तब तक, १०-१५ मिनट मे पूजा हो गई। पूजा क्या बैठक मे ही बैठकर कुछ मत्रोच्चार कर दिया। फिर सबको चार-चार चम्मच मदिरा दी। मैने बिलकुल ही अस्वीकार कर दिया। पत ने एक चम्मच स्वीकार कर ली। पत को तीन बोतलें देते हुए स्वामी जी ने आस्था के स्वर मे कहा, "इसका नियमित रूप से सेवन कीजिए, देखिएगा स्वास्थ्य कितना अच्छा हो जाता है। आज रात को बारह बजे उगली मे इसे लेकर सुमिता की जीभ पर ... लिख दीजिएगा।" और इसके साथ ही उन्होंने पत को महाकौल घोषित कर दिया। कौल सप्रदाय के अनुरूप पत का नामकरण भी कर दिया यद्यपि वह नाम

अब मुझे याद नही है। तत्पश्चात् अपने साथी को आदेश दिया कि पत की तस्वीर कौल पत्रिका मे देकर विज्ञापित कर दे कि पत कौल हो गए है।[1]

मुझे मन ही मन खुशी हुई कि मै पूजा के समय नही थी अन्यथा मेरा भी धर्म-परिवर्तन घोपित कर दिया जाता। जब तक स्वामी जी रहे पत प्रणत भाव से बैठे रहे। फिर उन्होने कहा, "चलो, यह भी खूब रहा।" सुमिता की जीभ पर मदिरा से लिखने की बात मुझे उचित नही लगी थी। डर था पत जबरदस्ती स्वय उसकी जीभ पर न लिख दे। पर अच्छा लगा जब उन्होने कहा, "सुमिता को मत चखाना।" और फिर बोतलो का तरल पदार्थ गुलाब के पेडो को पिला दिया। इसके बाद सन् '७४ के अत तक ज्योतिषियो की घर मे कृपा दृष्टि ही रही किंतु जब जनवरी, '७५ से बीमारी ने पत को जकड लिया तो फिर बीमारी के आधिदैविक कारण को जानने के लिए जो भी घर मे यह कह कर प्रवेश कर ले कि मैं बीमारी को पूजा द्वारा दूर कर सकता हूँ उसकी बात पत चुपचाप सुन लेते। पता नही क्यो सब कुछ समझते हुए भी उनका सस्कारी मन ऐसी बातो पर अविश्वास नही कर पाता है, और इससे भी अधिक उनके मन मे गहन बैठा हुआ वह विश्वास है जो दूसरे की बात को सच्चाई से आवेष्ठित देखता है। सन् '७६ मे एक कवि महोदय अपनी भूमिका लिखवाने के लिए आए। दुबारा फिर वे फर्वरी मे एक कपडे के व्यवसायी के साथ आए। वह व्यवसायी बैठे ही थे कि कवि जी ने कहा, "मेरा तो दिमाग खराब हो गया था इन्होने ठीक कर दिया।" कविजी के यह कहने के साथ ही व्यवसायी सज्जन ने अपने बारे मे कहना प्रारभ किया—हिन्दुस्तान के कोने-कोने मे मेरी प्रसिद्धि है, सिने-ससार से लेकर बडे अफसरो तक मेरी ख्याति है, एक मिनट का चैन नही है, लोगो को पता चला कि घेर लेते है। मेरे स्वभाव की भी विवशता है कि मै किसी को मना नही कर पाता। सभी का कल्याण करता हूँ।" इसके बाद हमारे परिवार से ७५०) रु० लेकर भी उन सज्जन को चैन नही पडा। फिर आए, रुपयो की काफी अच्छी, पहिली बार से अधिक भूमि-

---

१. यह पंत के जीवन की कोई नई घटना नहीं थी। इसके कुछ वर्ष पूर्व लोगो में यह भ्रम फैल गया था कि वे यदि आनंदमार्गी नहीं हैं तो उसके प्रति प्रणत अवश्य है। इसका कारण यही था कि पंत स्वामियो की (गेरुआवस्त्रधारियों) की अवज्ञा नहीं कर सकते है।

का बाँधी तो मैने कह दिया, "यदि एक प्रतिशत भी आपका कहा ठीक निकल गया तो फिर कुछ सोचा जा सकता है। अब बिना प्रमाण के तो पूजा नही कराई जा सकती।" उन्होने अपना तर्क दिया पर मै दृढ थी और पत चुप थे। खैर, भगवान् की दया, कोरे हाथ लौटने के कारण, फिर वे नही आए।

दिन-रात ज्योतिष चर्चा सुनते-सुनते मेरा मन विद्रोह कर उठा (एक) न खाने का समय, न पढने या सोने का। मिलने वाला स्वार्थवश आता है, न कि प्रेमवश। ऐसे मित्र भी आए जिन्होने सन् '४२ से पत से कोई सबध नही रखा किंतु विपत्ति पडने पर सन् '७१ मे दो-तीन बार आकर अपनी मित्रता फिर प्रगाढ कर ली, (दो) यदि लोगो का ज्योतिष पर विश्वास ही है तो इलाहाबाद मे अच्छे ज्योतिषी है और इलाचद्रजी के अनुसार पत का समय नष्ट करने से अच्छा ये लोग कुछ पैसे खर्च कर ले तो अच्छा हो, (तीन) मुझे जो सबसे अधिक झुँझलाहट हुई वह यह कि भगवान् पर पूर्ण आस्था रखने वाला ज्योतिष और भाग्य चक्र मे विश्वास करता है। मैने उनसे कहा, "इन बातो मे क्या धरा है? भगवान् के प्रति अपने अटूट विश्वास को क्या तुम झुठलाते नही हो?" पत का तत्काल उत्तर था, "मेरे लिए यह मनोरजन मात्र है, एक ऐसा मनोरजन जो घर बैठे ही हो जाता है।" "तुम अपनी पत्री जो आया उसे दिखा देते हो।" "क्या करूँ कोई घर मे आकर कहता है कि पत्री देखना चाहता हूँ। ऐसे मे दिखाना ही पडता है। आनेवाले का मै अनादर नही कर सकता।" "अरे कलवाला पडित उसे कुछ नही आता है, मूर्ख है। क्या करता, प्रशसा कर दी। बेचारा कष्ट मे है इसलिए कुछ लोगो के लिए पत्र लिख दिए। प्रशसा करना या सार्टिफिकेट देना कोई बुरी बात नही है। आदमी की इज्जत तो करनी ही चाहिए।" एक दिन मैंने फिर आपत्ति की, "तुमने तो यह घर ज्योतिष का घर बना लिया है। कोई काम ही नही हो सकता। इससे अच्छा सिविल लाइन्स मे तुम भी अपना ज्योतिष कक्ष खोल लो।" उनका शात उत्तर था, "मुझसे क्यो कहती हो। यह तो लोगो को

---

१. पत की ज्योतिष मे अटूट आस्था है। सभी घटनाओ को वे ज्योतिष के आधार पर समझने लगते है, छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी बात को नक्षत्रो के फ्रेम में जड़ने की उनकी प्रवृत्ति दूसरो के बुरे व्यवहारों के लिए उनको दोषी नहीं मानती है, अपने ही ग्रह-नक्षत्रो की व्याख्या करके प्रसन्न हो जाते है।

चाहिए कि समय का ध्यान रखे। अपने देश की यही तो विशेषता है। हम सामाजिक दृष्टि से प्रबुद्ध ही नही हो पाए है।" "तो तुम ही ऐसे लोगो को समझाओ। तुम मन से जी सकते हो पर मै तो मात्र मन से नही जी सकती। थक जाती हूँ। किसी काम के लिए भी कोई समय नही मिलता है। पढाने की नौकरी है और पढ ही न पाओ, मन बहुत दु खी हो जाता है। कभी मेरी दृष्टि से भी सोचा करो।" वे झल्ला उठे, "तुम्हारे मन मे समय की ग्रथि है। मुझे देखो जिस समय जो आता है उससे मिल लेता हूँ। न लिख पाने का दुःख नही होता है। मालूम है कल दो कविताएँ ध्यान से उतर गई। दिनभर ऐसे लोगो ने घेर रखा कि दिमाग शिलीभूत हो गया। अच्छी कविताएँ थी पर बिलकुल भूल गया हूँ, भगवान् को लिखवाना होगा तो आ जाएगी।" "तुम पर समय हावी हो गया है। मुझे देखो दिनो तक पढ-लिख नही पाता पर बुरा नही लगता। भाग्य मे ऐसे ही दिन बीतने होगे। किंतु मैं किसी से मिलना मना नही कर सकता। गाधी जी सा महान् व्यक्तित्व जब सब से मिलता था तो मै हूँ ही क्या कि किसी की अवमानना करूँ।" कौन उनसे तर्क करे, कहे कि गाधी जी घडी देखकर मिलते थे, उनका जीवन नियमित था। पत दूसरे की बुराई सुनने पर मुझ पर बिगड सकते है। असह्य थकान हो जाने पर भी आँख मूँदते हुए कह सकते है, "चलो दिन बीत गया।"

ज्योतिष को पत विज्ञान मानते है। यह वेद का चक्षु है। अच्छे ज्योतिषी मे उनका विश्वास है। वे ज्योतिषियो को पत्री दिखाना पसद करते है। यह दूसरी बात है कि सुज्ञ ज्योतिषी नही ही दीखते हैं। कौसानी मे पिता के पास आने वाले सिद्ध ज्योतिषी अथवा मद्रास के से दो-तीन अद्भुत ज्योतिषी यहाँ नही मिलते हैं। अब तो ज्योतिष का कामचलाऊ ज्ञान रखने वाले वे लोग ही अधिकतर मिलते हैं जो ज्योतिष के उतने प्रेमी नही है जितना कि उसे दूसरे को बरगलाने का साधन बनाने के ताकि अच्छा धनोपार्जन कर सकें। ऐसे ही लोग तनिक सा टोकने मे नाराज हो जाते है। मैने जब इसी प्रकार के एक ज्योतिषी से कहा कि आप सब गलत कह रहे है तो वे चीख कर बोले, "ठीक से सुनिए, मैं क्या कह रहा हूँ।" किंतु जब ठीक से सुनने पर भी उनकी बातें परम विचित्र लगी तो मैंने तथा दिनकर जी दोनो ने ही एक साथ कहा, "पडितजी आप बिलकुल गलत कह रहे हैं।" पडितजी के झुझलाने पर पत ने मुझे डाँट दिया, "व्यर्थ मे बोलती हो, समझती तो कुछ हो नही।" फिर पडित जी से कहा, "पडित जी आप बिलकुल ठीक कह रहे है। यह आपको समझ नही पा रही है।" दिनकर जी की ओर देखकर उन्होने पडित जी की

अद्‌भुत प्रशसा कर दी। पर दिनकर जी क्यो चुप रहते। उनके पडितजी को यह बतलाने के साथ ही कि उनका किया हुआ विचार गलत ही नही असगत भी है, पडितजी हाथ जोड कर चले गए।

एक बार एक अन्य ज्योतिषी से मैंने इतने सारे प्रश्न, प्रतिप्रश्न कर दिए कि तीन-चार वर्षो से जाडो मे नियमित रूप से आने वाले उन सज्जन ने तब से दर्शन ही नही दिए। पत काफी दुखी हुए, "कभी किसी का अपमान नही करना चाहिए।" खैर पत ने उन्हे ६-७ प्रशमात्मक पत्र दिए, उन्हे अपने मित्रो के पास (दिनकरजी, नरेन्द्रजी आदि) भेजा, "बेचारे को कुछ रुपये मिल जाएगे। लोग घूस खाते है, भ्रष्टाचार करते है, अनुचित ढग से पैसा कमाते है, उससे तो यह अच्छा ही है।" ऐसे ही एक पण्डितजी से बच्चन जी ने रक्षा कर दी। वे हर वर्ष की भाँति नवम्बर मे पत से मिलने आए। बच्चन जी बाहर बरामदे मे घूम रहे थे। ज्योतिषीजी के कहने पर कि वे उनके प्रश्नो, जिज्ञासाओ का समाधान कर सकते है बच्चनजी ने मुस्कुराते हुए तत्काल कहा, "इस समय तो मै ही आपके बारे मे बता सकता हूँ। आपको पैसो की आवश्यकता है इसलिए आप यहाँ आए है।" ज्योतिषी जा चले गए पत उदास हो गए, "बेचारा, ५-१० रुपये मे खुश हो जाता था। व्यर्थ ही उसे टोका।" और इन बेचारो की परम्परा मे कभी १७-१८ वर्ष के लडके भी आ जाते है जो पत का अशीर्वादात्मक पत्र लेकर दूसरो को ठगते है। सन् '७४ मे पत का पत्र लेकर लूकरगज मे दो लडके पहुँचे और वहाँ पत के एक परिचित सज्जन से कहा, "आपके बेटे का बडा भयकर अनिष्ट योग आ गया है। तत्काल पूजा करवाइए।" और उन्हे उनके इकलौते बेटे के लिए भयग्रस्त कर उनसे अस्सी रुपये ले लिए। फिर उन्होने पत को बतलाया तो उन्होंने माथा पकड लिया, 'अरे मै तो उसे जानता ही नही। खाना खा रहा था कि दो लडके आए। एक ने बताया कि दूसरे ने ज्योतिष सीखने के लिए सन्यास ले लिया है और वह मेरा आशीर्वाद चाहता है। मैने उनसे पूछा कि कैसा आशीर्वाद ? उन्होने जो बताया वही मैंने लिख कर दे दिया।[1] और उनका जो सत्कार कर सकता था वह कर दिया। मैने नही सोचा था कि ऐसे होगे।" पत के कुछ सोचने से होता भी क्या, वे विवश है अपने स्वभाव से क्यो

---

१. पंत ने जो विशेष बात इस प्रशंसात्मक पत्र मे लिखी थी वह न केवल यह थी कि ये बड़े सुज्ञ ज्योतिषी है वरन् यह भी की निःस्पृह और त्यागी हैं, इन्हे धनलालसा बिलकुल नहीं है।

कि इसके अथवा ऐसी अनेक घटनाओ के बाद भी प्रशसात्मक पत्रो के लिखने मे अतर नही आया है ।

ज्योतिष ने पत को मणि-माणिक्य की पहिचान सिखा दी है । ग्रहो मे विश्वास इन बहुमूल्य पत्थरो की उपयोगिता एव इन्हे धारण करने की आवश्यकता का ज्ञान देता है । सन् '५५ मे सूर्यनारायण व्यास जी ने सफेद पोखराज धारण करने के लिए पत से कहा—पत ने ८-१० वर्षो तक नौ रत्ती का एक गोल आकार का पोखराज पहिना । बहुत सुन्दर पोखराज था, हीरे की सी आभा से युक्त था । जब उस पोखराज से मन ऊबा तो बेच कर ही चैन लिया । मैंने बहुत कहा कि बेचो मत, बहुत सुन्दर है, मुझे ही दे दो पर पत के मन मे जो बात आ गई, वह होनी ही चाहिए । सन् '६० से सन् '६६ के बीच उनका मणि-माणिक्य प्रेम इतना बढ गया कि नित्य ही एक जौहरी—कश्मीरी, बनारसी, जयपुरी, इलाहाबादी आता दीखता । घर मे एक-एक से बढिया जेवर-जवाहरात का निरीक्षण-परीक्षण होता, मूल्याकन होता मानो चालीस-पचास वर्ष पूर्व किसी जमीदार के घर शादी हो रही हो । पत यह सब देखते, उनकी पहिचान सीखते । कभी कोई बहुत मूल्यवान मणि की अगूठी दीखी तो तीन-चार दिन उसे धारण करते, उसके प्रकाश और रग का निरीक्षण कर प्रसन्नता अनुभव करते । मेरे मन मे डर बैठ गया कि जौहरियो को देखकर चोर-डाकू यही तो समझेगे कि हम खरीदते होगे । "क्या हो गया तुम्हे, यह अपढ स्त्रियो का शौक ।" किंतु पत कहाँ मानते, "बेवकूफ हो तुम ! मैं सौदर्यप्रेमी हूँ । सुन्दर चीज मुझे अच्छी लगती है । देखो इस माणिक्य की आभा, बाहर आओ, सूर्य के प्रकाश मे देखो, मन प्रसन्न हो जाएगा । भगवान् ने कैसी सुदर वस्तुए बनाई है ।" "तुम डरती क्यो हो । मेरे पास कुछ है ही नही । चोर-डाकू आएगे तो हाथ मलते चले जाएगे । हाथ मे एक यह अगूठी है, उनसे कहूँगा ले लो । घर की चाभी भी उन्हे दे दूँगा ।" "मेरा क्या मुझे किसी वस्तु का मोह नही है । ' ने मुझे एक बहुमूल्य मणि दी थी, वह मैंने को उसके विवाह के उपलक्ष्य मे दे दी । औरो को भी जब-तब दिया ही है । तब मेरे पास था ही क्या, तब मोह नही था, तो अब क्यो होगा । बस मुझे कुछ दिन रत्नो को रखने का शौक है । जौहरी लोग आते है, थोडी देर मनोविनोद हो जाता है ।" पत का अपना जौहरी उन्हें 'दादा' कहता है और पत का विश्वास है कि वह उनके प्रति दादा-सा स्नेह भी रखता है क्योकि बहुमूल्य मणि तक उनके पास दिनो तक छोड जाता है । वैसे मूल्यवान मणि विशेषकर हीरा, नीलम, पन्ना तो कुछ दिन धारण करने के बाद ही खरीदे जाते है । इसलिए

यदि जौहरी उनके पास कुछ दिनो के लिए नीलम या पन्ना छोड जाता है तो यह कोई विशेष स्नेह का सूचक नही कहलाया जा सकता यद्यपि इसमे सदेह नही है कि जौहरी अच्छा है। पर यह पत का अपना स्वभाव भी है कि उन्हे प्रशसा करनी अच्छी लगती है और उसके लिए जो भी तर्क दीखा उसका हेत्वाभास के साथ प्रयोग कर देते है।

पत की दृष्टि और भावना को सुन्दर जेवर, मणि-माणिक्य भाते है। अक्सर सोचती हूँ कि वे लडकी होते या पुराने जमाने के राजा-महाराजा तो खूब जेवर पहनते। सन् '५५ मे जो उन्होने एक अँगूठी पहिनी थी वह सन् '६६ तक दो-तीन अगूठियो तथा गले की एक पतली चेन के रूप मे विस्तृत हो गई। कभी यह सब उतार भी देते हैं पर अधिकतर पहने ही रहते है। मणि-माणिक्य धारण करने का सुझाव वे दूसरो को भी देते रहते है। जो भी उन्हे पत्री दिखाने आता है उससे किसी विशिष्ट मणि—नीलम, मूगा, मोती, पन्ना, लाल, पोखराज, गामेध, लहसुनियाँ आदि धारण करने के लिए कहते हैं। "अवश्य पहिनिएगा, बहुत लाभ होगा। मैंने जिनसे भी कहा उन्हे दो महीने, एक महीने या पन्द्रह दिन के अदर ही लाभ हो गया।" 'आप नीलम (या अन्य मणि) अवश्य पहिनिएगा। मै बिलकुल ठीक कह रहा हूँ। अँगूठी बनवाने के पूर्व वह नीलम मुझे दिखला दीजिएगा। दिखलाना मत भूलिएगा।" यदि कोई अच्छी मणि प्राप्त करने मे अपनी असफलता व्यक्त करता है तो पत उसका दायित्व ले लेते है। "यदि आपको अपनी परिचित दूकान मे अच्छी मणि नही मिली या यदि आपको मणि का अन्दाज न आए तो मुझसे कहिएगा, मैं अपने जौहरी से ले दूँगा या उसे आपके पास भेज दूँगा। वैसे जहाँ से भी आप लें, खरीदने के पूर्व मुझे मणि अवश्य दिखा दे।"[1]

मणि-माणिक का यह शौक, जौहरियो का आवागमन, ज्योतिष चर्चा एव ढेरो पत्रियाँ देखना जुलाई '६६ से बहुत कम हो गया है। जौहरियो का तो आठ-दस साल से पदार्पण ही नही हुआ है। दादा कहने वाला जौहरी तभी आता है जब शादियो मे देने के लिए जेवरो की आवश्यकता होती है। मणि-माणिक का सौदर्य प्रेम या तो विस्मरण हो गया है या आयु की प्रौढता और स्वास्थ्य ने उन्हे तटस्थ बना दिया है। ज्योतिष भी गौण हो गया है,

---

१. पत को मणियो की खासी पहिचान है। उनका कहना है कि उन्होने अपने बड़े भाई तथा नरेन्द्र शर्मा एवं अन्य जौहरियो के पास अच्छी मणियाँ देखी हैं तथा उन्हीं से पहचानना भी सीखा है।

ज्योतिष की पत्रिकाएँ, जन्मपत्रिया आदि तभी देखते है जब बाध्यता होती है और वह भी पुरानी तन्मयता के साथ नही देख पाते है। इस सबके मूल मे, वास्तव मे जुलाई '६६ का 'हार्ट अटेक' है जिसने उनके सामान्य स्वास्थ्यजनित सौकर्य मे बाधा उत्पन्न कर दी है।

बीमार वे जितना अधिक रहते है उतना ही बीमारी से घबडाते है, "मैं लुज पुज होकर नही बैठ सकता। मनुष्य मे सकल्प ही तो सब कुछ है, क्या उसे मै निष्क्रिय कर दूँ ?" "तेज दवा अथवा माइसीन का जो भी परिणाम हो अभी तो ठीक हो जाऊँगा। मै बीमार नही रह सकता। तुम बेवकूफ हो। मैने डाक्टरो के साथ रहकर चिकित्सा विज्ञान एव दवाइयो के बारे मे व्यापक ज्ञान प्राप्त किया हूँ।" "माइसीन से कमजोरी होती है तो होने दो। मैं टॉनिक्स लेकर सप्ताह भर मे ठीक हो जाऊँगा।" कभी कहना पडता है, "इतने टॉनिक्स तो है अब और क्यो मँगा रहे हो ? डाक्टर भी तो अधिक टॉनिक्स की राय नही देता है।" वे झल्ला उठते है, "बिना समझे टोकती रहती हो। तुम्हारी और डाक्टर की अक्ल से चला तो ऐसे ही रहना पडेगा। मैं जानता हूँ मेरे लिए कौन टॉनिक लाभप्रद होगा। और यह टॉनिक, इसके बारे मे तो··· का कहना है कि बडा अच्छा टॉनिक है।" दवाइयों और औषधियो के प्रेमियों ने पत के दवाइयो के भण्डार मे न जाने कितनी दवाइयो (एलोपेथी, वैद्यक, हकीमी और होमियोपेथिक) की वृद्धि करा दी है। प्रेमियो ही क्यो विज्ञापनो का जादुई प्रभाव भी पत पर पर्याप्त पडता है। सन् '६६ मे उन्होने अखबार पढने के बाद दूकानदार को फोन करके एक दवा मँगाई। उनके ऊपर विज्ञापन का प्रभाव है, सोच, मुझे हँसी आ गई। पत तत्काल बोले, "विज्ञापन देख-कर नही मगाई है। कल डा० मुकर्जी मिले थे, उन्होने बताई।" 'खैर मैं चुप हो गई, जानती थी डा० मुकर्जी[1] से वे नही मिले है और देर-सबेर वे अपनी पोल अवश्य खोल देंगे। बात, कैसी भी हो, वे छिपा नही सकते। दवा आई, एक-दो दिन के प्रयोग से ही विज्ञापन का जादू उतर गया (उस दवा के लिए केवल !) और उन्होने सच बात बता दी। दवाइयो के प्रति उनमे एक गहन

---

१. सन् '५० से सन् '७३ तक पत के मुख्य तथा प्रिय डाक्टर डॉ० एस० के० मुकर्जी ही रहे। सन् '७३ मे उनके स्वर्गवासी हो जाने के कारण न केवल पत को अपने प्रिय डाक्टर का अभाव अनुभव हुआ वरन् यह अपने परिवार के सदस्य का बिछोह ही लगा।

आकर्षण है, वैसे यह हमारे घर (पत का ननिहाल) की विशेषता है। अक्सर यह होता है कि बीमारी के बाद जब पत को डाक्टर कोई टॉनिक बताता है तो वे उसके साथ ही और दो टॉनिक्स का नाम लेकर कह देते है, "यह लेता हूँ।" केलशियम, रेडिसोल एत्र आदि के इजेक्शन्स वह बिना डाक्टर से पूछे अपने आप ही ले लेते है। "अपने शरीर को मैं समझता हूँ। जो उसके लिए आवश्यक है वह कर लेता हूँ। इन्सुलिन के इजेक्शन्स तो मैं स्वय ही लेता हूँ। कैल्शियम आदि के इजेक्शन्स स्वय क्यो नही ले सकता ? कहो तो तुम्हे भी दे दूँ ?" इन्सुलिन के इजेक्शन वे अपने अतिरिक्त दूसरो को भी, उनके कहने पर, दे देते है। यह उन्हे अच्छा लगता है। अक्सर कहते है, "क्या बताऊँ मुझे डाक्टर बनना था, उसमे सफलता प्राप्त करता। मैं डाक्टर बनना चाहता भी था, बाबू भी चाहते थे कि मै डाक्टर बनूँ पर भाग्य की बात है।"[1] और मेरा उत्तर रहता है, "तुम तो भगवान् की दया हर बात मे कहते हो। मै इसे उसकी दया मानती हूँ। ऐसे ही अपनी डाक्टरी राय देकर लोगो की आफत किए रहते हो तब न जाने क्या करते।"

बुखार का आना वे नही सह पाते है। थर्मामीटर मे ९९°-१००° हुआ नही कि डाक्टर और दवा की तत्काल आवश्यकता अनुभव कर फोन का चोगा पकड लेते है। और मै उन्हे बिना टोके रह नही पाती "अभी दो घण्टे बुखार चढे नही हुए है। डाक्टर क्या बतलाएगा।शाम या कल सबेरे बुलाना।" वे नाराज हो जाते है, "हर बात मे टोकती हो, मुझे यह पसद नही है, तुम मेरे शरीर के बारे मे क्या समझ सकती हो ? मै जानता हूँ मेरे फेफड़े कमजोर है। डा० जोशी का कहना था कि ज़रा सी असावधानी से तपेदिक हो सकता है।" वे झल्लाते हुए दुनियाभर की बीमारियो के नाम ले लेते है, साथ ही कहते है कि यदि इनमे से एक भी हो गई तो वे काम नही कर

---

१. पत के पिता एव स्वय पत को अपना डाक्टर बनने का निर्णय बदलना पड़ा क्योकि विद्यार्थी जीवन मे वे किसी को सूई लगते या रक्त की धार देखते ही बेहोश हो जाते थे। उनका कहना है, "तब मेरा हृदय मेरे वश मे नहीं था। और अब जब वश मे है तो डाक्टर बन नहीं सकता।" यदि आज भी कोई उन्हें 'पी० एम० टी० की परीक्षा देने दे तो वे 'एम० बी० बी० एस' करके ही संतोष नहीं करेंगे, 'एम डी' तथा अन्य जितनी भी उपाधियाँ है उन सबको प्राप्त करके सतुष्ट होगे।

पाएँगे। वे 'डायल' घुमा ही देते है। कई बार तो डा० मुकर्जी हँस भी दिए, "अच्छा अभी बुखार चढा है। मैं तो तीन दिन से बीमार हूँ पर कोई दवा नही ले रहा हूँ।" डाक्टर के आने के साथ उन्हे दवा चाहिए, अक्सर डाक्टर से फोन पर ही कह देते है कि बीमारी के ये लक्षण हैं वे सोचते है कि यह उन्हे विशिष्ट रोग है। अतः आप इस रोग की दवा ले आइएगा, वे दवा का नाम भी विश्वास के साथ ले देते है। यदि दवा उन्हे ही मँगवानी है, और तत्काल कोई दवा लाने वाला न दीखा तो वे 'केमिस्ट' को फोन करवाते है। उसके स्वीकार कर लेने के २०-२५ मिनट तक दवा न पहुँचने पर वह नाराज हो जाते है, "फोन यहाँ लाओ। मैं करूँगा। तुम्हे ठीक से कहना नही आया होगा।" जब उनके स्वय फोन करने पर भी दवा आने मे देर हो जाती है तो वे केमिस्ट को थोडी-थोडी देर मे याद दिलाते रहते है और जब तक दवा न मिल जाए कहते रहते है, "मेरे यार ने अभी तक दवा नही भेजी। वादा नही करना था। मैं कुछ और प्रबध करता।"

डाक्टर की दवा से तत्काल लाभ नही हुआ तो दुःखी हो जाने के साथ दूसरे डाक्टर को बुलाने के लिए तैयार हो जाते है। यदि कोई बीमारी ८-१० दिन रह गई तो एक डाक्टर से वे सतोष नही ही करते है। यदि किसी मिलने वाले ने किसी अन्य डाक्टर, वैद्य, हकीम, या होमियोपेथ या प्राकृतिक चिकित्सक की प्रशसा कर दी तो उसे अवश्य बुलाते है।[1] अथवा स्वय आवश्यकता न होने पर दूसरो को राय देते है कि उस डाक्टर को अवश्य बुलाइएगा, बडा योग्य है, आदि, अर्थात् उस डाक्टर के बारे मे बताने वाले सज्जन की बातो को अतिरजना के साथ दुहराते-दुहराते वे नही थकते है।

पत को इजेक्शन लेना पसद है। उनका ख्याल है कि इससे शीघ्र आराम होता है। वे डाक्टर को फोन करके कह देते है कि अपने साथ पेनिसिलीन,

---

१. इलाज का भी उनका अपना ही ढंग है। एक-साथ दो-तीन प्रकार के इलाज वे करने लगते है। कुछ कहो तो नाराज हो जाते है, "मै जानता हूँ इनमे कोई परस्पर विरोध नहीं है।" "मैने वैद्य या होमियोपेथ से पूछ लिया है। एलोपेथी के साथ ये दवाएँ ली जा सकती है।" फिर यह कहने का साहस नहीं होता कि बीस दिन या एक महीना एक इलाज करके देख लो, तब दूसरा इलाज करना। पता तो चले कि किसी से लाभ हो रहा है या नहीं।

या न्यूरोबियो का इजेक्शन भी ले आइएगा।" अथवा "इजेक्शन मुझे अवश्य दे दीजिएगा।" इजेक्शन लेने के साथ ही उनके चेहरे मे सतोष झलक उठता है, "अब जल्दी अच्छा हो जाऊँगा। इजेक्शन का तो 'कोर्स' होता है। जब वह पूरा होगा तब लाभ होगा।" "अच्छा किया इजेक्शन ले लिया। लेने पर इतनी तकलीफ है, न लेने पर क्या होता ?" मात्र खाने की दवा से वे प्रसन्न नही होते, "डाक्टर मूर्ख है, इजेक्शन दिया होता तो अब तक ठीक हो जाता, अपना काम करता।" सन् '६६ मे कौम्बाइटिक्स के इजेक्शन के कारण पत की तबियत बहुत बिगड गई—सभवतः यही उस वर्ष 'हार्ट अटेक' का कारण बना। फिर सन् '६७ मे पेनिसिलीन इजेक्शन की बडी भयकर प्रतिक्रिया हुई, यह जीवन हानि का कारण हो ही गया था। तब से तो न तो डा० मुकर्जी ही ने पत को पेनिसिलीन का इजेक्शन दिया और न पत ने ही उसके लिए आग्रह किया।

खाने की दवाओ तथा टॉनिक्स के लिए वह डाक्टर की राय कम ही लेते है। ढेरो दवाएँ खुद ही मँगा लेते हैं दूसरो के कहने, विज्ञापन देखने तथा अपने डाक्टरी-ज्ञान के आधार पर। "मै जानता हूँ मुझे क्या दवा लेनी चाहिए। डाक्टरो के साथ रहा हूँ। बीमारी और दवा के बारे मे बहुत कुछ पढा है, देखा है, भोगा है।" "अरे, आपको यह कष्ट है। यह...... दवा ले लीजिए। यदि ठीक न हो तब कहिएगा। मेरी बात मानिए तो सही।" "डाक्टर आपकी बीमारी समझा नही है। आपको डाक्टर ने गलत दवा दी है। इस बीमारी का एकमात्र उपचार यह दवा है।" दुनिया भर की दवाओ और बीमारियो के नाम, उनका निदान तथा विभिन्न प्रकार के ऑपरेशन्स का विवरण वे दे सकते है। बीमारी देखना या सहना उन्हे बहुत बुरा लगता है। उसका तत्काल उपचार होना चाहिए। ऑपरेशन जरूरी हो, डाक्टर तीन दिन बाद करने को कह रहा हो तो वे आज ही कराने की राय देंगे। ऑपरेशन का नाम सुनते ही वे विस्तार से बताने लगते है कि 'सर्जन' किस भाँति शल्य चिकित्सा करेगा और इसमे घबडाने की कोई बात नही है। बीमारियो की पत को काफी पहिचान है। सच तो यह है कि रोगी को देखते ही उनके मानस मे रोग का स्वरूप और उसका निदान कौध जाता है। उनकी बताई दवा भी लाभप्रद होती है किंतु जिस अधिकार के साथ वह रोग और उसके उपचार के बारे मे बताते हैं कहना पडता है "डाक्टर होते तो क्या करते।"

इलाज मे उनका अटूट विश्वास है अथवा वह अपने आपको तथा सभी को स्वस्थ देखना चाहते है। जरा किसी ने छीक आने की बात की या कोई दुर्बल दीखा तो वे उसे स्वास्थ्य के बारे सावधान रहने के लिए कहते है। सामान्य सी चोट, मामूली सर्दी-बुखार मे भी वे डाक्टर को बुलाना उचित मानते है। जब वे देखते है कि 'फ्लू' मे लोग तुलसी और दालचीनी की चाय के सेवन को रामबाण मानते है, उससे ठीक भी हो जाते है तो आश्चर्यचकित होकर कहते है, "मूर्ख है। डाक्टर को तो दिखाना ही चाहिए था। भगवान् की दया थी ठीक हो गया, कही बीमारी बिगड जाती, निमोनिया या प्लूरिसी हो जाती।" जब वे देखते है कि माँए बच्चो को बुखार आ जाने, कान मे दर्द होने या चोट लगने पर दो-तीन दिन तक डाक्टर को नही दिखाती है, अथवा १००°—१०१° बुखार मे बच्चे खेलते दीखते है तो वे उनके माता-पिता को बिना टोके नही ही रह पाते है। यदि पडोस मे किसी जान पहिचान के घर मे कोई बीमार पड जाए तो पत दिन मे तीन-चार बार उनके यहाँ हो आते हैं, उन्हे तब तक चैन नही मिलता है जब तक कि वे यह नही कह देते है कि हम डाक्टर से दवा ले आए है या वे उन्ही पर डाक्टर को बुलाने का दायित्व डाल देते हैं। फिर पत जब तक उनके घर डाक्टर न आ जाए तब तक न ध्यान कर पाते है, न सो सकते है, न खाना ही खा पाते हैं। बार-बार अपने घर का दरवाजा खोल कर यह देखते रहते है कि डाक्टर आ गया या नही। डाक्टर दीखा कि वे तेजी से चले जाते है, डाक्टर से बात करना, बीमार को दिखाना, दवा आदि दायित्व ही दायित्व, वे स्वय थक कर बीमार पड जाते हैं। कई बार टोका, "देखो इतना थक गए हो। बीमार हो गए न।" "क्या करूँ?" वे थके स्वर मे कहते हैं, "यदि कोई मुझे अपना मानता है, मुझसे आशा करता है तो चाहे मुझे कुछ भी हो जाए मै उसे आहत नही कर सकता हूँ। देखा नही बार-बार आकर राय लेते हैं। मुझे स्नेह देते है और इस कारण आशा करते हैं कि मै उनकी सहायता करूँ।" एक दिन युनिवर्सिटी से आई, देखा घर मे ताला पडा है। पत निकट के ही घर मे बीमार के कमरे से लगे कमरे मे बैठे थे, मुझे देखते ही सकेत से पास बुलाया—बतलाया कि गृह स्वामी बैठा गए है, वे छुट्टी नही लेना चाह रहे थे, कह गए हैं कि ढाई बजे के लगभग उनका नौकर आ जाएगा या बच्चे स्कूल से आ जाएगे। रोगी की तवियत बहुत खराब है, उसे अकेले नही छोडा जा सकता। अतः पत उसके पास बैठ दे तो अच्छा है। अब पंत ने मुझसे बैठने के लिए कहा, "मैं जल्दी से नहा लेना चाहता हूँ। जब इनके यहाँ कोई आ जाए तो तुम आ

जाना । तीन बजे जब खाना खाते समय मैंने कहा, "तुम तो कहते हो एक-डेढ बजे तक खाना अवश्य खा लेना चाहिए अन्यथा इन्सुलीन का कुप्रभाव बढ सकता है।" "बात तो ठीक है, मेरा सिर घूमने लगा था, घबडा गया था। एक चम्मच चीनी तथा एक सतरा खाया तब नहाने गया। इस समय भी खाना खाने मे थकान लग रही है। पर पडौसी का इतना काम तो करना ही था। और आज वे मुझसे कह भी रहे थे यदि आपका कोई काम हो तो बताइएगा।" कौन उनसे कहता कि ७० वर्ष और ३८-४० वर्ष मे अतर होता है और इसलिए यदि वे तुम्हारा कोई काम कर भी दे तो उनके स्वास्थ्य के लिए बुरा नही होगा। किंतु सभवत इस अतर को भुलाने के लिए ही उन्होने आँखे मूँदते हुए कहा," "बेहद थक गया हूँ, खडे होने की ताकत नही है। पर एक बार जाकर देख आता हूँ कि सब ठीक है, तभी लेट पाऊँगा।" मेरा यह भी कहना व्यर्थ था कि मै देख आती हूँ क्यो कि वे मुझ पर भरोसा नही रख पाते "तुम्हे क्या अन्दाज आएगा ?"

निर्मम परिस्थियो के आघात झेलने पर—अपने पिता, भाइयो और अपनी टाइफोएड की बीमारी के बाद—उन्हे लगता है कि जो सम्मुख आता है उसे सहना ही होता है। अब उन्हे घबडाहट नही होती है—न ऑपरेशन के नाम पर, न भयकर बीमारी के और न यमराज के ही नाम पर। सम्भवत आज उन्हे अपना कोई मेजर ऑपरेशन कराना पडे तो वह भगवद् इच्छा कह कर शातिपूर्वक ऑपरेशन मेज पर लेट जाएगे। यदि डाक्टर होते तो अत्यधिक योग्य डाक्टर होते। सब कुछ जानने की गहन आकाक्षा, बीमारी को समूल नष्ट करने की तीव्र इच्छा, मानव मात्र को स्वस्थ देखने की आकाक्षा तथा चिकित्सा सबधी अतबोध उन्हे अवश्य ही अच्छा डाक्टर बनाता। किंतु साहित्यिक दृष्टिकोण से उनका डाक्टर न बनना ही अच्छा हुआ। प्रतिभा होते हुए भी वह सृजन कर्म नही ही कर पाते। रोग से पीडित, मृत्यु से जूझते हुए को जीवन देने मे वे सृजन और अपना जीवन दोनो को ही समर्पित कर देते। मात्र कर्त्तव्य—बीमारी को दूर करना—उनके व्यक्तित्व पर हावी हो जाता। किंतु डाक्टर के रूप मे उनका व्यक्तित्व कठोर शासक का होता। वे बीमार के मुँह से यह नही सुन सकते कि आजन्म गोश्त नही खाया तो आज कैसे खाऊँ। उनके पास अपना उदाहरण है। अट्टाईस वर्ष तक पक्के निरामिष रहने पर स्वास्थ्य के नाम पर वह सामिष बने। "जीना है तो ठीक से जीना चाहिए, स्वस्थ होकर ताकि जीवन मे कुछ काम कर सके।" जब कोई बीमार दवा के नाम पर मुँह बिचकाता है तो वे

डाक्टर जोशी और डाक्टर बिल्मोरिया (बम्बई) की प्रशंसा करते हुए कहते है, "वे लोग अपना काम जानते थे। बीमार के प्रति अहितकर सहानुभूति रखकर उसे अधिक बीमार नही बनाते थे। बीमार ने नखरे किए तो ऐसी जोर की डाँट लगाते थे कि उनकी डाँट खाते ही रोगी का पचास प्रतिशत रोग गायब हो जाता था।"

काम करने तथा जीवन को सभी भाँति सुदर स्वस्थ बनाने की आकाँक्षा ने उन्हे अपनी सदैव की दुर्बल रोगग्रस्त देह के उचित सरक्षण की प्रेरणा दी है। मधुमेह के कारण 'टॉनिक्स' लेने के अतिरिक्त वे 'एन्जाइम' की टिकिया भी नियमित रूप से लेते है। कभी कोई दवा कुछ दिनो के लिए बदल भी जाती है। वैसे अपनी निश्चित दवाओ को ही लेना उन्हे पसद है। यदि कोई दवा कुछ दिनो के लिए बाजार मे न मिलने के कारण वे नही ले पाते हैं तो उन्हे दुर्बलता लगने लगती है। दवा एव टॉनिक लेना उन्हे अच्छा लगता भी है, लेते समय बहुत प्रसन्न लगते है, मुँह पर आत्मसतोष झलकता है। थ्रेप्टिन बिस्किट्स उन्हे अच्छे लगते है, यद्यपि वे यह स्वीकार नही करते है और कहते है, "मैं अन्य बिस्किट्स खा नही सकता, मीठे जो होते है।" सन् '६० से उन्होने थ्रेप्टिन बिस्किट्स के बदले थ्रेप्टिस ग्रेनुअल्स दही मे मिलाना प्रारभ कर दिया। क्योकि उनके अनुसार, "इससे अच्छा मिष्ठान्न कुछ नही हो सकता।" थ्रेप्टिन ग्रेनुअल्स का जब इलाहाबाद मे मिलना असभव हो गया तो दिल्ली से मँगाया, और जब दिल्ली मे भी नही मिल पाया तो सन् '६८ से दही मे एल्वोसाग मिला कर लेने लगे, उनका कहना है कि 'मधुरेण समापयेत' होना चाहिए। 'एनजाइम्स' उन्हे सबेरे-शाम खाने के बाद लेते देख कहा कि क्या दवा की आदत डालते हो?" "मूर्ख हो, यह क्या दवा है? एनजाइम्स तो पेट मे होते है, यह उन्हे मदद कर देता है।" और यह कहने के साथ ही उन्होने मुँह खोला, "देखती नही, कुल १४ दाँत है। ठीक से चबा नही पाता हूँ। पेचिश का रोगी हूँ। यह न लूँ तो पेट मे तकलीफ हो जाएगी।" कुछ रुक कर उन्होने समझाया, "बी कोम्प्लेक्स और विटेमिन सी इन्सुलीन इजेक्शन लेने के कारण लेना पडता है, अन्य टॉनिक मधुमेह की दुर्बलता के कारण। और मैं कुछ लेता ही नही हूँ। पर जब देखो तुम गलत बात कहती हो—मुझे टोका जाना पसद नही है। तुम्हे बुद्धि भी है। दवाएँ मे खाता ही कहाँ हूँ। यह सब तो खाने का ही भाग है, विटेमिन्स हैं।"

इन्सुलीन का रोज इजेक्शन लेते-लेते पत का मन अक्सर विद्रोह कर उठता—कितनी झझट और परेशानी हैं, कही जाना हो, यात्रा करनी हो तो

साथ मे एक डलिया तथा समय की पाबन्दी ! न ले सके तो आफत ! सूई पत पेट मे लेते है, 'इन्सुलीन गन' से। उनका कहना है कि वे हाथ मे तभी ले सकते हैं जब कि कोई उस समय हाथ पकड दे। पर हाथ कौन पकडे, मै तो उस समय कमरे मे भी नही जा सकती। पाँच-छह बार सकट मे पड गए, सूई पेट मे चुभोते ही टूट गई। कमरे से बाहर आकर उन्होने बताया, "भगवान् की दया हुई, थोडी सी बाहर रह गई थी। फौरन मैंने खीच ली। अन्यथा खून मे चली जाती।" इन्सुलिन के इजेक्शन्स से बचने के लिए उन्होने देसी दवाएँ ली—बेल पत्ती का रस, गुरुच का रस, करेले का रस, चने का पानी आदि का सेवन किया किंतु लेने के देने पड गए। पेट ने ऐसा विद्रोह किया कि दोनो बार लगा कॉलरा हो गया है। मधुमेह ठीक करने के चक्कर मे ही थे कि सन् '६० मे एक पण्डित जी ने आसनो के द्वारा रोग समूल नष्ट करने का आश्वासन दिया। आसनो का सैद्धातिक ज्ञान पत को पर्याप्त है। किंतु बिना गुरु के अभ्यास तो नही किया जा सकता। पडितजी का कहना था कि दो माह मे मधुमेह अच्छा हो जायगा। उन्होने इसे अनुभूत सत्य बताया और साथ ही ढेरो उन लोगो के नाम गिना दिए जिन्हे उन्होने अच्छा किया है। मैने पत से कहा, "एक-दो लोगो का पता पूछ लो, मालूम तो हो ये लोग वास्तव मे है या सरकारी स्कूलो, अस्पतालो और भवनो की भाँति केवल कागज (जबान) पर ही हैं।" उन्होने तिक्त स्वर मे कहा, "छोटी बातें। ऐसे अविश्वास को पालकर मैं जी नही सकता। बेचारा कितना भला है, मेरा शुभचिंतक है अन्यथा क्यो आता ?" "क्यो आता ? क्या मुफ्त मे सिखा रहा है ?" वे गुस्से मे बाहर चले गए। आसनो की उपयोगिता मे उन्हे विश्वास है साथ ही वे यह भी जानते है कि तनिक विधि गलत हो गई तो लेने के देने पड सकते है। पडित जी ने आसन का नाम तो ठीक बताया किंतु विधि ! पत को भास तो हुआ, उनसे दबे स्वर मे कहा भी, फिर सकोच में पड गए। इस सकोच का दण्ड भोगना पडा, दो बार इतना असह्य 'वात-शूल' का आक्रमण हुआ कि देह की नस-नस हिल गई। दो-तीन महीने के लिए चारपाई पकडनी पडी। पहिली बार जब आक्रमण हुआ तो वे अपने कमरे मे तडपते रहे—सबेरे उन्होने बताया कि पीडा क्या थी, मृत्यु से साक्षात्कार था। दूसरी बार जब आक्रमण हुआ तो न जाने कसे मेरी नीद टूट गई, उनके कमरे मे रोशनी दीखी—कुछ सदेह हुआ कि क्या बात है क्योकि आधी रात को वे पढते-लिखते कभी नही हैं। नीद न भी आए तो भी कमरा अँधेरा ही रहता है और सबेरे ही पता चलता है कि कल देर से चाय

या कॉफी पीने अथवा चिताग्रस्त हो जाने के कारण रात भर नीद नही आई। कमरे मे जाकर देखा वे चारपाई का पाया पकडे जमीन पर उठगू बैठे है—तडपते हुए, पसीने से तर। डाक्टर को फोन किया। रात के दो बजे वह मोर्फिया का इजेक्शन देकर चला गया। सप्ताह भर तक इस इजेक्शन के कारण उनको दुर्बलता रही, शरीर मे कपन रहा, लोटा-गिलास उठाने मे हाथ कॉप जाता था और चलने मे पैर। पत के लिए स्पष्ट था कि यह आसन की करामात है[1] पर पडित जी को सत्य बात कैसे बताते। उनसे कहा, "तीन-चार माह के लिए बाहर जा रहा हूँ।" उनसे पन्द्रह दिन आसन सीखे थे, दो माह की उन्हे तनखा दी और उनके बाहर जाते ही सिर पर हाथ रखा, "चलो, बुरा नही माना। भला आदमी है।"

मधुमेह के लिए ही किसी ने सन् '६१ मे उनसे कहा कि जामुन की गुठली के चूरे का सेवन लाभप्रद होता है। महादेवीजी ने उन्हे तीन बोतल जामुन का रस तथा गुठलियो का इतना चूरा बनाकर दे दिया कि यदि सेवन करते तो दो-तीन साल चलता। किंतु पत जब किसी दवा या चीज की तारीफ सुनते है तो उससे घर भर लेना चाहते है। दवा खरीदते समय वे तीन-चार शीशियाँ, या १००-१५० गोलियाँ एक साथ खरीद लेते है। और फिर ये दवाएँ फेकनी ही पडती है क्योकि या तो थोडा सेवन के बाद ही उनकी आवश्यकता नही रहती, या सेवन की तिथि खतम हो जाती है, या वे खराब हो जाती है एव सालो तक खुलती ही नही है। अथवा जिस तत्परता से पत लोगो के कहने या विज्ञापन देखकर दवाएँ मँगाते है ठीक उसके विलोम क्रम मे अधिकतर वे किताबो के पीछे डाल दी जाती है। जामुन की गुठलिया घर मे भी जमा की गई। समस्या उनके पिसवाने की थी और यदि कोई काम करना

---

१. किंतु ऐसी बातें पंत के दूसरो के प्रति अडिग विश्वास को दूर से स्पर्श तक नहीं कर पाती हैं। आज के दिन तक (सन् '७६) वे दूसरो के सुझावो को वायुगति से क्रियान्वित करने को आतुर हो जाते हैं। ट्रंक कॉल, तार, फोन से दूसरो से कहना कि इस दवा को लेने के लिए साधन एकत्रित करने में सहायता कर दीजिए आदि में वे खाना, विश्राम करना, सोना सभी कुछ भूल जाते हैं। और इसमें यदि उन्हें टोक दो तो वे बेहद आहत हो जाते हैं क्यों कि इसमें उनके शीघ्र अच्छे होने की आकांक्षा में आघात पहुँचता है।

होता है तो तत्काल होना चाहिए, निमिष मात्र मे। घर मे गुठलियो का चूरा रखा था, वह उगली से छुआ तक नही गया था, सेवन तो दूर की बात है। किंतु घर मे रखी गुठलियो को तो पिसवाना ही था। सबेरे-शाम-दिन मे जो आता उससे इसी के बारे मे बाते करते। एक प्रेमी साहित्यिक नवयुवक ने कहा कि चौक मे उनके जान-पहिचान के एक वैद्य जी रहते है—इसी वर्ष वे वैद्यक की परीक्षा मे उत्तीर्ण हुए हैं, बडे योग्य हैं, वे गुठलियो का चूरा बनवा देगे। वैद्य जी ने अपनी नई वैद्यकी के आवेश मे चूरे मे शिलाजीत, हल्दी, और भी न जाने क्या-क्या मिला दिया और कहा कि यह जामुन की ही गुठली का चूर्ण है किंतु इसका सेवन मेरी बताई विधि के अनुरूप ही कीजिएगा और तब आपको अद्भुत लाभ होगा। वैद्य जी को उनका पारिश्रमिक पर्याप्त देकर पत बहुत प्रसन्न हुए, दिन भर वैद्य जी की प्रशसा करते रहे। किंतु दो-तीन दिन के सेवन ने ही मधुमेह का ध्यान भुला दिया। पेट से रक्त प्रवाह प्रारभ हो गया। पत घबडा गए—मधुमेह ही देह को दुर्बल करने के लिए पर्याप्त था, अब बवासीर हो गई। तत्काल डाक्टरी चिकित्सा प्रारभ कर दी। वैद्यजी भी आए। उन्होने बताया कि चूर्ण मे उन्होने अन्य दवाओ का मिश्रण कर दिया था। स्वीकृत मात्रा से दुगनी मात्रा मे शिलाजीत तथा भस्म आदि मिला दिए थे। सोचा था कि महाकवि जल्दी अच्छे हो जाएँगे तो उनकी वैद्यक जम जाएगी। इसी बहाने चार लोग उन्हे जान जाएँगे। वैद्यजी ने एक बार पुन: उनकी दवा पत से लेने के लिए कहा तथा आश्वासन दिया कि इस बार मात्रा आधी कर देगे। पत उनकी सहृदयता से पिघल ही रहे थे कि घर मे उस समय वर्तमान तीन-चार अन्य लोगो ने प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। किंतु दूसरो के सद्भाव पर सदेह करना पत ने नही ही सीखा है। इस घटना के बाद कुछ नौसिखिए अन्य वैद्य भी आए। अधिकतर यह होता है कि कोई भूमिका लिखाने, सम्मति लेने या नौकरी के लिए सिफारिश करवाने आता है तो अपने साथ वह किसी उत्साही नवयुवक वैद्य (कलियुगी अश्विनीकुमार) को भी ले आता है। पत प्रसन्न होकर शुल्क देते है, दवा खरीदते है, कभी एक-दो दिन तक सेवन करके पछताते हैं, तो कभी किताबो के पीछे डाल देते है। सन् '६८ मे एक मित्र के राय देने पर उन्होने, मधुमेह से मुक्त होने के लिए, तीन महीने तक मकरध्वज का नियमित सेवन किया किंतु लगता है कि उस प्रसिद्ध औषधालय के मकरध्वज मे 'पारा' ठीक से शुद्ध नही किया गया था क्योकि पत की पीठ मे सफेद दाग हो गए। दाग का पता लगने पर मकरध्वज लेना उन्होने छोड़ दिया। अब, कालक्रम मे वे दाग पर्याप्त धूमिल पड़ गए है अथवा लगभग नही रहे है। ●●

१६

'कला और बूढ़ा चांद',

'रश्मिबध', 'चिंदबरा' तथा 'साठ वर्ष एक रेखाकन'

'कला और बूढा चाँद' का रचना-काल मन् १६५८ के अक्टूबर-नवम्बर के महीने है यद्यपि इसका प्रकाशन दिसम्बर, १६५६ मे हुआ। यह सकलन एक नई रूप विधा को लेकर अवतरित हुआ है। अनुभूति की तीव्रता, गहराई और सच्चाई ने इसे अत्यधिक प्राजल बना दिया है। पहाड की शरद-शुभ्र वनानियो का सौदर्य, साधना की स्वच्छता और अनुभूति की सजीवता इस काव्य मे घुलमिल कर अद्वितीय आकर्षण की लुनाई मे जीवत हो उठती है। नि.सदेह 'कला और बूढा चाँद' बूढे चाँद की नई अभिव्यक्ति, नया शिल्प और नई कला है। चाँद वही पुराना चाँद है, वही विचार, वही भावभूमि।[1] पर वह नई साजसज्जा के साथ नए रूप मे आता है।

१, " ' 'प्रस्तुत संग्रह (कला और बूढ़ा चाँद) की कविताएँ शैली की दृष्टि से एक सुदृढ़ और ठोस आधारभूमि पर स्थित हैं और उनका शिल्प उतना ही वैभवशाली है, जितना कि उदात्त-संयत रचना तथा कोमलकांत पदावली के लिए विख्यात इस कवि का सदा से रहा है। छंदबद्ध न होते हुए भी, ये कविताएँ कला की दृष्टि से पंत जी के समस्त पिछले काव्य के ही समान पुष्ट, परिपक्व और समर्थ हैं, तथा उसी परम्परा को आगे बढ़ाती हैं। मै तो यह भी कहना चाहूँगा कि इस संग्रह की कविताएँ 'गद्य में लिखे हुए गीत' हैं, और इनमें भी काव्य रचना का वही पैटर्न अपनाया गया है जो पंत जी की अन्य गीतात्मक तथा छंदबद्ध कविताओ में

कला की कृश बाँहो मे झूमता
पुराना चाँद ही
नूतन आशा
समग्र प्रकाश है !
वही कला,
राका शशि,—
वही बूढा चाँद,
छाया शशि है ।
(बूढा चाँद)

यह रूपविधान पुरानी अनुभूति को छोडता नही है वरन् पुरानी अनुभूति ही इतनी गहन, व्यापक, तीव्र और सहज हो जाती है कि वह दुग्धोज्वल झरने के असख्य मोतियो की लडे गूँथ देती है । यह दुग्धोज्वल झरना अपनी वासन्ती गध मे आनदविभोर कर देता है । यहाँ न छायावादी भावुकता है, न रहस्य-वादी अलौकिकता और न प्रगतिवादी एव प्रयोगवादी विद्रोह और निराशा का स्वर ! यहाँ तो मात्र आनद है--आत्म तन्मयता का आनद, वसुधैव कुटु-म्बकम का आनद, पवित्र अनुभूति का आनद ! बूढे चाँद की इस कला मे भाव, भाषा और विचार एक दूसरे से आलिगनबद्ध होकर शरद-ज्योत्स्ना मे

मिलता है । एक तथ्य-कथन, किंचित् बिम्बो-छायाओ की सहायता से उसका विवेचन और परिवर्धन, तथा अतिम पद या पक्तियो में उसी तथ्य का एक प्रकार के नूतन और सारगर्भित अर्थ में नवोन्मेष । यही इस सग्रह की तमाम कविताओं का पैटर्न है और इसी कारण मै उन्हे—स्वरूपगत एकरूपता के बावजूद—नयी कविता से भिन्न मानता हूँ और पुरानी कविता की श्रेणी में रखना चाहता हूँ । इस प्रसंग मे यह भी दृष्टव्य है कि 'कला और बूढा चाँद' पंत जी की पिछली कविता की ही एक अविच्छिन्न कड़ी हैं । जिस बात पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए, वह यह है कि स्वरूप की दृष्टि से भले ही ये कविताएँ वर्तमान नयी कविता से किसी स्थल पर मिल जाएँ, विषय-वस्तु, मूड, एप्रोच, स्थापना आदि किसी भी दृष्टि से एक-दूसरे मे कोई साम्य नहीं है ।"
अजितकुमार : कृति, २१ पृ० ६१

रास रचते है तथा पृथ्वी और स्वर्ग, धरती और आनद एक दूसरे का वरण कर लेते है। न यहाँ आदर्श-यथार्थ, विज्ञान अध्यात्म का सघर्ष है और न कला छदो मे बद्ध है। छद, अलकरण आदि काव्य के बाह्य रूप भावोन्मेष एव सहज स्फुरण के प्रति विनत है। यह काव्य, कवि के ही शब्दो मे, 'रश्मि-पदी' है। अतः यह स्वत नियन्त्रित है। छद के बधनो से मुक्त, छदमुक्त है। "इसमे (कला और बूढा चाँद) पत जी ने काव्यभिव्यक्ति के लिए ऐसे माध्यम को स्वीकार किया है जिसका उपयोग उन्होने पहिले कभी नही किया था।

मुक्त छद को विकृत होते देखकर उन्होने गद्य-काव्य का पुराना माध्यम अभिनव करके उपस्थित किया है। 'कला और बूढा चाँद' की रचनाएँ सहज स्फुरण से प्राप्त सत्यो की अभिव्यजना करती है। इसी अर्थ मे पत जी ने इसे 'रश्मिपदी' काव्य कहा है। प्रतीको का प्रयोग और उनकी अर्थ-गहनता पत जी की कविता मे उत्तरोतर बढती गई है। 'कला और बूढा चाँद' मे वह चरम स्थिति पर पहुँच गई है। ···शब्दों की भी सीमा है। अनुभूति का एक स्तर ऐसा भी है जहाँ शब्द साथ नही देते। उस समय कवि प्रायः विरो-धाभासी शब्दो—विशेषणो का प्रयोग करते है। छायावाद के द्वितीय-तृतीय श्रेणी के कवियो मे इन शैलीगत विरोधाभासो का अबार अब भी ढूँढा जा जा सकता है। 'कला और बूढा चाँद' मे इन विरोधाभासो का प्रचुर प्रयोग हुआ है। पर यहाँ न अनुकरण है, न शैलीगत रूढ प्रयोग। कवि मानसिक अनुभूतियो के ऐसे स्तर पर पहुँच गया है कि शब्द वहाँ सहायक होने के विप-रीत बाधक है। विरोधभासी प्रयोगो मे जैसे शब्द टकरा-टकराकर टूटते-गिरते जाते है ·

'आगे मौन है,
अतल मौन,
केवल
निश्चल मौन।"[१]

'कला और बूढा चाँद' की अधिकाश रचनाएँ पढते समय लगता है कि पढ़ नही रहे है, एक सहज आत्मिक प्रवाह मे बहे जा रहे है। सगीत की लय कही रुकने भी तो नही देती है। सुमधुर ध्वनियाँ, गोपन सदेश चुपके से कानो मे कुछ कह कर हृदय को झकृत और मत्रमुग्ध कर देते हैं। निर्मल सगीतमय

१. बच्चन, : (कवियों में सौम्य संत), पृ० १६७-१६८

नवनीत मे फिसलती अनुभूति की सहजता और स्निग्धता उन प्रतीको और बिम्बो को अपनाती है जो चमत्कृत नही करते, हृदय मे पैठ जाते है ।

यह सग्रह रूप-विधान की दृष्टि से पत की पिछली रचनाओं से भिन्न है । यह मुक्त छद एव नई कविता की शैली को अपनाता है ।[1] नई कविता अथवा मुक्त छद कवि को ग्रहणीय है । उसके प्रति उसे आपत्ति वही तक है जहाँ तक वह रूप और भाव के तादात्म्य को भूल कर मात्र रूपो और छूछे प्रतीको की भूल-भुलैया मे भटक जाता है । "इसमे उन्होंने नयी कविता की बहुनिन्दित गद्य-शैली को अपना लिया है । चित्रमय भाषा मे पद्यबद्ध विचारो को प्रस्तुत करना, जो युगवाणी से वाणी तक उनकी विशिष्टता रही है उसे भी सहसा त्याग दिया है और कहा है कि—

'मै शब्दो की
इकाइयो को रौदकर
सकेतो मे
प्रतीको मे बोलूँगा

वस्तुत 'कला और बूढा चाँद' की भाषा विश्लेषण की भाषा नही बल्कि प्रतीको और बिम्बो की भाषा है ।"[2] पत के इस काव्य की सफलता यह

---

१. 'कला और बूढ़ा चाँद' की "कविताओ में नयी कविता के कुछ उपकरणों का प्रयोग अवश्य है, पर मूलत : उन्मुक्त अभिव्यक्ति होने के कारण उनमें एक विशिष्ट भावात्मक प्रवाह है । नयी कविता प्रवाह को शायद इस रूप में स्वीकार नहीं करती । उसकी ध्वन्यात्मक व्यवस्था में ठहराव भी महत्व-पूर्ण है; उदाहरण के लिए शमशेर की कविताएँ ली जा सकती हैं । · इतना स्पष्ट है कि पंत ने अपने लिए जिस नए माध्यम को चुना है, उसमें वे सफल भी हुए हैं । छायावादी कवि द्वारा आज इन अपेक्षाकृत नयी पद्धतियो का सफल प्रयोग उसकी गहरी सकल्पशक्ति को प्रकट करता है । · · पत की यह विशेषता है कि उन्होंने कई माध्यमो का अलग-अलग युगो में सफलतापूर्वक निर्वाह किया है । पत ने हिन्दी कविता को समृद्ध बनाया है, पहले भी और आज भी ।"
रामस्वरूप चतुर्वेदी : कादम्बिनी (जनवरी १६६१) पृ०-१२८-१२६

२. ओंकार श्रीवास्तव, 'धर्मयुग' १६ मई १६६३ पृ० ४१

स्थापित कर देती है कि मात्र रूप की नवीनता मे खो जाने वाले भ्रम मे है। भाव और रूप, अनुभूति और अलकरण का तादात्म्य ही काव्य है। भाव एव अनुभूति की गहनता काव्य का प्राण है पर इस प्राणतत्व का स्पदन व्यापकता और गहनता की अनिवार्यता घोषित करता है, यही काव्य को मर्मस्पर्शी बनाते है। वैयक्तिक स्तर का सर्जन वास्तविकता को समेटने पर भी स्थायित्व नही पा सकता। मात्र अह, कुठा और निराशाजन्य अनुभूति पानी का बुलबुला है-- प्रभावहीन और क्षणिक। सर्जन मे चिरतनता का माधुर्य ही उसका शिवम् है--क्योकि सत्य बिना शिव के अपूर्ण है।

तेरा व्यथा धुला
नम्र मन
व्यापक प्रकाश वहन करेगा,
शाश्वत मुख का दर्पण बनेगा!
... ...
शिव की कला ही
सत्य और सुदर है। (कला)

'कला और बूढा चाँद' की सफलता यह प्रमाणित कर देती है कि मुक्त छद अपने आप मे अग्राह्य या त्याज्य नही है। भाषा भावो की सहचरी है। यदि भावो मे सच्चाई, गहनता और शिवत्व हो तो वे उन्मुक्त छद के प्रवाह मे बह कर भी हृदय को छू लेते है। अनुभूति की तीव्रता, सूक्ष्मता, गहनता और व्यापकता ने पत के इस काव्य को असाधारण प्रवाह और प्राजलता प्रदान कर दी है। यह काव्य उनकी जीवन साधना और सच्ची अनुभूति को प्रतिबिंबित करते हुए स्थापित कर देता है कि कला जीवन की गहनता से मोती चुनकर ही प्राणवती बनती है। 'वाणी' की 'घोंघे शख (सभी नही)' और प्रस्तुत सकलन की 'नयी नीव' रचनाएँ मुक्त छद के विरूद्ध नही है, कवि कर्म के आकाक्षी उन उत्साही युवको पर कटाक्ष है जो कला को अनुभूति तथा विश्व व्यथा को आत्म व्यथा से विरत करके समझते है। यदि काव्य मे वेदना एव व्यथा की सजीवता, व्यापकता तथा सत्यता हो तो उसे किसी भी छद मे, मुक्त छद मे भी व्यक्त किया जा सकता है। किंतु "अधिकाश कवि (नए कवि) तो अभिव्यक्ति को माँजने और उसके लिए नये नये अलकार तथा बिम्ब खोजने ही मे खो जाते है, उनके रूप-विधान की भूलभुलैया से जीवित भावना या आत्मा को ढूंढ निकालना कठिन हो जाता है या सभवत.

उनकी कविता केवल एक साज, एक बनाव अथवा एक कोरा अलकरण ही होकर रह जाती है, उसके भीतर भावना या अनुभूति की उपलब्धि कुछ भी नही होती।"[1] 'वाणी' की 'घोघे शख' रचना को उसकी पूर्णता मे न ग्रहण करने अथवा कोष्ठक मे लिखे सभी 'सभी नही' पर ध्यान न देने के कारण कुछ को यह भ्राति हुई है कि पत ने नयी कविता पर व्यग्य किया है, काव्य के इस नए विधान को निन्दनीय माना है। काव्य-विधान, चाहे पुराना हो चाहे नया, यदि वह भावो का सफल वाहक है तो ग्रहणीय है।

"कला और बूढा चाँद' मे तो श्री पत शिल्पगत बिल्कुल नई अनुभूति प्रस्तुत करते है जिसको देखकर 'ग्राम्या' के बाद सभी ग्रथ 'वाणी' तक लगभग भूमिका जैसे मालूम होने लगते हैं। इन दोनो अतिम सग्रहो की कविताएँ उसी प्रकार मन को और बुद्धि को भी सहज ही आकर्षित करती है जिस प्रकार कवि चाहता है कि वह गहराई तक करे।' हिन्दी काव्य मे श्री पत के कलाकार की श्रेष्ठता अनेक रूपो मे सिद्ध है। उन्होने नयी राजनैतिक और सामाजिक मान्यताओ को काव्य मे शब्द दिए है, उनको पहली बार रूपायित किया है। इस क्षमता को प्राप्त करने के लिए अनथक परिश्रम और साधना की है। एक कल्पनाशील विचारक कवि अप्रस्तुत को प्रस्तुत मे जिस हद तक स्पष्टता और प्रवीणता के साथ बाँध सकता है, वह उन्होने दिखा दिया है। वह उसमे कही-कही गद्य की सपाट स्पष्टता तक भी चले गए है। पर प्रयोग की दृष्टि से यह भी महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी को एक नयी विधा की देन है। उनका गहन व्यक्तित्व अनेक सग्रहो मे खुलता, बढता और उठता हुआ, 'वाणी' और 'कला और बूढा चाँद' मे अधिक समृद्ध होकर अधिक अनुभवी, पुष्ट और गभीर होकर फिर अपने उज्वल, सहज, स्निग्ध और नैसर्गिक रूप मे सामने आता है। 'पल्लव' का किशोर प्रकृति-प्रेमी अपने वर्द्ध वय मे पूर्णत प्रौढ होकर फिर ससार की व्यापक प्रकृति लीला मे विहार करता नज़र आता है, और उसी पवित्र, उदात्त और असम्पृक्त रूप मे जिसमे वह 'पल्लव' मे था। बाहर से देखने पर श्री पत ने नयी कविता के रूप और प्रकार पर अपनी सही की है, उसे अपनाकर प्रतिष्ठित और गौरवान्वित किया है। कुछ लोग कह सकते है कि 'वाणी' की व्यग्यात्मक कविताओ के बावजूद यह नयी कविता की विजय है। मैं उनके जवाब मे यही कहूँगा कि विजय पतजी के हाथो हुई है, किसी

---

१. (शिल्प और दर्शन), पृ० २५६

और के नही। फिर यह नया शिल्प उनका साधनमात्र है, साध्य है उनका दर्शन। उनके यहाँ इस विधा पर जो सहज अधिकार परिलक्षित होता है, उसके अन्दर इतना गहरा रचाव, भाषा की क्षमता की इतनी गहरी पकड, भावनाओ मे इतना गहरा ओर सहज अपनाव है कि यह ऊपर से कुछ और लगती हुई भी उनकी अपनी, बिल्कुल अपनी चीज है। श्री पत के आक्षेप नयी कविता पर बरकरार रहते है, और वह बहुत हद तक सही है।"[1] पत का यह दृढ विश्वास है कि छदो की गति-लय मे अधिकार प्राप्त करने के पश्चात् ही कवि या सर्जक मुक्त छद के लिए भी न्याय कर सकता है। स्वय पत का यह सौभाग्य रहा है कि भाषा और छदो मे उनका अप्रतिम अधिकार है, भाषा ने उनके भावो के सकेतो पर नृत्य किया है। वाणी पर उनका सा असाधारण अधिकार विरले ही प्राप्न कर सकते है।

पत का यह काव्य प्रेम, आनद और तन्मयता का स्फुरण मात्र है। कवि की बुद्धि द्वद्वरहित, भावना शात और हृदय क्षीर सागर का वासी है। सच्चिदा-नद के क्षीर सागर मे न बुद्धि-भाव का विरोध है और न ऊर्ध्व-सम का। ऊर्ध्व-सम बुद्धि और भाव की अत सलिला मे घुलमिल कर सहजबोध बन गया है। इस सहजबोध को समझने के लिए पत के समस्त व्यक्तित्व और कृतित्व पर विहगम दृष्टि डालनी आवश्यक है। समग्र के परिप्रेक्ष्य मे उनके काव्य चरण उत्तरोत्तर विकासोन्मुखी क्रमिक शृखला बनाते है। 'ग्राम्या' की वेदना 'स्वर्ण-धूलि' मे प्रकाश देखती है और 'कला और बूढा चाँद' मे उस प्रकाश को आत्म-सात् कर लेती है। आत्मसात् सम्यकता की स्थिति है, यह पूर्व के सत्यो का त्याग नही करती, उनका समावेश करती है। यही उसकी पूर्णता और सफलता है। 'कला और बूढा चाँद' इस पूर्णता और सगति का निर्झर गान है, एकता की अनुभूति का आनद है। ऐसे अनुभूतिजन्य काव्य को सिद्धात या सिद्धातो की अनुगूंज एव प्रभाव कहना पत-काव्य के प्रति ही नहीं, समस्त साहित्य के प्रति अन्याय है।

'बूढ़ा चाद' कला की गोरी बाँहो मे क्षणभर सोकर उसके नए अधरो का अमृत पीकर अमर हो जाता है—सत्य (चॉद) एव चेतना शाश्वत और चिर नूतन है। किंतु वह अपने को नए-नए रूपो मे व्यक्त करती रहती है—जिस भांति चन्द्रमा की कलाएँ घट जाती है, और फिर, नई कलाओ द्वारा वह अपने को

---

1. शमशेर बहादुर सिंह : कृति, पंत-अंक, १९६०, पृ० १६-१७

आपूरित कर लेता है। आज कला के क्षेत्र मे दुराशा, कुठा आ गई है किंतु कला की चेतना शाश्वत है। उसे चाहिए कि वह बूढे चाँद से उदाहरण ले, विष दंतो की खेती न उगाए।

यह अमृत कण है
शोभा अमित
वह बूढा प्रहरी
प्रेम की ढाल !

नदियो को धेनुओ (धेनुएं) के रूपक मे बाँध कवि कहता है,

कहाँ भागी जाती हो ?
वशी रव
तुम्हारे ही भीतर !
. ...

अपनी शक्ति
अपना जव दो !
मुझे उस पार खडी
मानवता के लिए
सत्य का बोहित्थ
खेना है।

'मधुछत्र' भी ऐसी ही कल्पना को अभिव्यक्ति देती है। 'मधुछत्र' सृजनशील चेतना है। यह चेतना बालसुलभ भोलेपन के साथ आग्रह करती है—

ओ गीत सखी
ये बोलते पख मुझे भी दो,
जो गाते रहते है,—
और,
वह मधु की गहरी परख,—
मैं भी
मधुपायी उडान भरूँगा
... .

यह उडान वह आत्मतुष्टि के लिए नही भरना चाहता है। उसका प्रयोजन महत्तर है—मानवता की रचना मधुछत्र-सी हो जिसमे स्वर्ग फूलो का मधु, युवको के स्वप्न, मानव हृदय की करुणा, ममता, प्रेम का अमृत, प्राणो का रस तथा मिट्टी की सौधी गध हो।

उद्धव जब निर्गुण ज्ञान की गठरी लेकर वृन्दावन[1] पहुँचे तो गोपियो ने कहा—निर्गुण कौन देश को वासी ? 'देह मान' विशुद्ध ज्ञान, कोरी ऊँची उडान पर व्यग्योक्ति है—

उत्तर दिशा को
ज्ञान शिखर की
अनत चकाचौध मे
देह मान लेकर
अकेले न जाना,
भामिनी,
वहाँ कोई नही,
कोई नही है।

धरती की उपेक्षा करने वाला ज्ञान 'शिखर की अनत चकाचौध' से युक्त अवश्य है किंतु उसकी एकागिता उसे शून्यवत् (कोई नही) बना देती है। ऊर्ध्व बोध जब तक धरती की चेतना से युक्त नही हो जाता तब तक वह मूल्यहीन है।

'खोज' वर्तमान विषण्ण जीवन पर प्रकाश डालते हुए समझाता है कि चारो ओर नैराश्य, स देह, अवसाद का जो कुहासा छाया हुआ है उसका मूल कारण यही है कि हमने जीवन को केन्द्रीय सत्य से वियुक्त कर दिया है। 'अमृत क्षण' मिट्टी की असीमता का आलिंगन करता है।

---

१. "प्रस्तुत संकलन में प्रारभ से लेकर अंत तक सर्वत्र एक उन्मुक्तता की भावना मिलती है, वैदिक जीवन के आदिम सवेदन जैसी छायावादी कवि, जो सामान्यतः गोपन और रहस्य प्रिय रहा है, इतना उन्मुक्त शायद नयी कविता के तत्वावधान मे ही हो सकता था। 'देहमान' में कवि की चेतावनी निः संकोच है, और इसीलिए अधिक प्रीतिकर है।"
रामस्वरूप चतुर्वेदी, कादम्बिनी, जनवरी १६६१ : पृ० १२५

यह मिट्टी ही
शाश्वत है,
असीम है,
चैतन्य है ।

प्रौढ चेतना की प्रतीक 'शरद शील' है । यह रचना शरद के आगमन द्वारा नयी दृष्टि, नये बोध का अभिवादन करते हुए समझाती है कि जीवन सामाजिकता एव मानवता का स्फटिक प्रागण है । इसलिए स्त्री सौन्दर्य आज एक नई बोध-आभा से युक्त है ।

यह प्रिया की कल्पना है,
चन्द्रमुखी प्रिया की ।
शोभा स्वप्न कक्ष मे
देह भार मुक्त
शील उज्वल लौ
चदिरा की ।

'रिक्त मौन' वस्तुगत विशालता एव हिमालय से आतरिक विशालता को अथवा व्यक्त से अव्यक्त को छोटा मानता है—

मानस शख से
छोटा था वह ।

छेडकर देखा,
कामना-तृप्ति से
बौनी थी ।

ज्ञान द्वारा प्राप्त अगम्य, अगोचर सत्य को अनुभूति सहज और सरल बना देती है । अत. 'सहज गति' मे कवि कहता है—

तुम्हारे पथ की
बाधा है ज्ञान,—
सबसे बडा अज्ञान ।
वैसे तुम चीन्ही हो,

चिर परिचित हो !

. ...

अपने स्थान पर
मै तुम्हे पाता हूँ !

तदाकारिता की अनुभूति 'मुख' रचना मे भी मुखरित हो जाती है—

सिंधु
मेरी हथेली मे समा जाते है,
उन्हे पी जाता हूँ मै,
जब प्यासा होता हूँ !

'अनुभूति' अतर्वास्तविकता की सर्वव्यापी, सीमातीत स्वरूप की स्वर्ण शुभ्र अनुभूति है तथा 'अज्ञात स्पर्श' उसी अनुभूति का अनिर्वचनीय आनद है। 'प्रज्ञा' सम्यक् ज्ञान एव पूर्ण बोध है। बोधयुक्त मानस सर्वत्र स्वतत्रतापूर्वक विचरण कर सकता है। उसे पक मे फसने का कोई भय नही है।

अब पकस्थल पर भी चले
तो ऊपर की दृष्टि
डूबने न देगी !

'दृष्टि' अनेक को एक के आँचल मे बाधती है। अनेकता है, यह एक जीवत सत्य है किंतु यह असबद्ध इकाइयो की भाँति नही है। यदि अनेकता एव बहुत्व को समझने का प्रयास करे तो उसके मूल मे एक ही सत्य मिलेगा।

प्रेम, अशरीरी प्रेम ही 'प्रेम' का विषय है। वासनामुक्त प्रेम जीवन सौंदर्य है, वह असीम माधुर्य है, गुलाब की अनिमेष सुषमा की शुभ्र गहराइयो का यही रहस्य है।

मैंने
गुलाब को
ओठो से लगाया !
उसका सौकुमार्य
शुभ्र अशरीरी प्रेम था !

'यज्ञ' इसी ज्योति दुग्ध अमृत प्रेम के लिए मानवता का यज्ञ है ताकि मानव प्रेम अपनी पूर्णता मे प्रस्फुटित हो सके।

जीवन निषेधात्मक वैराग्यवादी दृष्टिकोण के एकागी ऊर्ध्वारोहण के सिद्धान्त को पत का मानवतावादी हृदय स्वीकार नही कर पाता है।[1] 'अतर्मनिस' मे वे विनम्रतापूर्वक जीवन सत्य को उसकी सपूर्णता मे समझाते हैं।

देह अधकार न थी,
अत सुख का पात्र बन गई,
इद्रियाँ क्षणिक न थी
नया बोध द्वार बन गईं,
जीवन मृत्यु न था
नयी शोभा, नयी क्षमता बन गया।

---

१. तुलना कीजिए "अपने नवीन जीवन-दर्शन के अनुकूल पत जी ने इस कृति मे अधकार और प्रकाश को एक ही कर दिया है। पत जी ज्ञान-अज्ञान, तम-प्रकाश, जड-चेतन मे कोई अंतर नहीं मानते। इस तथ्य की घोषणा उन्होने अपनी अन्य कृतियो जैसे 'वाणी' और 'सौवर्ण' में भी की है। भारतीय संतो, भक्तो, दार्शनिको और मनीषियो से यह उनका पहला मत-भेद है। कबीर और तुलसी अज्ञान को अज्ञान ही मानते है। अद्वैतवादी यद्यपि कहते यही है कि ब्रह्म के अतिरिक्त और कहीं कुछ नहीं है; तथापि व्यवहार-काल मे वे भी भेद को मानकर चलते हैं। मै नहीं समझता पत जी की इस बात को कभी भी मान्यता प्राप्त हो सकेगी।"

विश्वम्भर मानव . सुमित्रानंदन पंत पृष्ठ २८८

पत के सिद्धांत को मान्यता मिलने का प्रश्न ही नहीं उठता है क्योकि जिस जीवन-निषेधात्मक सिद्धात को मानव जी मान्यता देते है वह ह्रासोन्मुखी सभ्यता का चिह्न है, मध्ययुगीन उस प्रवृत्ति का जिसने हिंदू समाज को निष्क्रिय, पलायनवादी और भाग्यवादी बना कर दासता की शृंखला में निष्प्राण कर दिया। शंकर का मूल सिद्धांत—अद्वैतवाद—जड़-चेतन में मूलगत अंतर नहीं मानता। वह एक ही है, यह हमारा अज्ञान है जो उनकी द्वैतजन्य व्याख्या करता है। आधुनिक नव्य वेदांती उदाहरणार्थ स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविंद, और राधाकृष्णन ने जड़-चेतन, प्रकाश-

अनेकता के अधकार, अतल गहराइयो से नया चाँद (नया बोध) निकल आया है। ससार मे जब भी कोई परिवर्तन या क्राति होती है तो उसके मूल मे सदैव ही कोई नया मूल्य बोध होता है—पुराने मूल्य बोध मनुष्य को सतुष्ट नही कर पाते है।

सभी रत्न नही भाते,
विष वारुणी
स्फटिक, प्रवाल
सर्प, शख,—
अमृत स्रोतस्विनी के तट पर
बिखरी पडी सृष्टि !

उसकी विकासशील चेतना 'नव सूर्योदय' की प्रतीक्षा करती है, व्यापक सत्य की, 'शुभ्र अवाक् आत्मोदय की !'

'गीत खग' उर्ध्व और सम की एकता का गीत है।

मैं गीत खग हूँ,
 उडता हूँ,—
ज्योति जाल मे
 नही फसूँगा !
ऊँचाइयो को
 समतल मे बिछा,
गहराइयो को
 समजल मे डबा

नील हरी छाँहो मे छिप
स्वप्नो के पख खोल
धरती को सेऊँगा !

अंधकार में एक ही सत्य के संचरण को देखा है। अतः ज्ञानी जगत को मिथ्या नहीं कहता, उसे जगत सुंदर और सत्यमय लगता है, क्योकि उसकी अनेकता का आधार एकता है। उपनिषद में ब्रह्म को क्रमशः अन्न, प्राण, मन, विज्ञान और आनंद माना गया है। यह भी अन्न, प्राण, मन के स्तरो को सत्यता ही सिद्ध करता है।

भारतीय दर्शन और धर्म मे प्रकृति-पुरुष, शिव-पार्वती, राधा-कृष्ण, राम-सीता 'अयुगल' है, एक दूसरे से अभिन्न होते हुए भी भिन्न है। पत को वह अमूर्त अद्वैतवाद स्वीकार्य नही है जो धरती की चेतना एव शक्ति का आलिगन नही करता है। जीवन द्वैत-अद्वैत का क्रीडा स्थल है, उन्ही का 'परस्पर का प्यार' है और यह प्यार ही आनद-मगल का निस्सरण है।

प्रयाग के कटरे के बाज़ार मे सामान खरीदने रिक्शा से जाते समय जो अतर्दृष्टि प्राप्त हुई उसकी अभिव्यक्ति देने वाली रचना 'पट परिवर्तन' है। घर, बाग, पेड और मनुष्य सभी विराट् चैतन्य है। रथवान अश्व को चाबुक मारता है और 'वह तुम्हारी ही/पीठ पर पड रहा है!' किंतु तुम 'खिल खिला-कर/भीतर/हँस रहे हो!' इसीलिए,—

ओ अद्वितीय,
अतुलनीय
मैं आश्चर्य मे डूबा
अवाक्
तुम्ही मे डूबा हूँ!

'पारदर्शी' शुभ्र चैतन्य के प्रति प्रार्थनापरक कविता है।

तुम मानव के
अतर मे छिपे प्रकाश के
माध्यम बन सको

सूर्य और चाँद के प्रकाश-प्यार मे 'अमृत' रचना अपने अतर मे तात्विक आनद को अभिव्यक्ति देती है। वैदिक व्याख्या के अनुसार सूर्य आत्मा का द्योतक है और चाँद मन का। जिस सरलता से यह तात्विक सत्य को अभि-व्यक्ति देने वाली रचना प्रारभ होती है वह मन को मुग्ध कर देती है।

मैं सूर्य की किरणें दुहूँ
तुम चाँद की!
मैं तुम्हे प्रकाश दूँ
तुम प्यार!

'कोपले' जिसकी कुछ पक्तियाँ सकलन के प्रारभ मे है अवकाशमय प्यारे दिन को सृजन उन्मेष से बाँध देती है। आँखो के सामने कोपले ही कोपलें,

नए जागरण, नए स्वप्न, नए भाव बोध का रूप धर कर आती है। सृजन एव सृजन उन्मेष शाश्वत है। उसमे युगातर आ रहा है—नई पीढियाँ जन्म ले रही है जो नए कला-शिल्प के हाथो, भाव बोध के स्पर्शो से सहस्रो नए वसत सँवारेंगी। अभी असख्य शरदो को अपने अगो को पावक मे नहला कर रूप ग्रहण करना है।

धरती के दिव्य जीवन का बोध देने वाली रचना 'प्रबोध' है। 'गौर मास सरोवर' शुभ्र धरा जीवन का सरोवर है। जीवन के आदर्श अभी मूर्त नही हो पाए है यद्यपि उनकी गहनता मे अतीव आकर्षण है। अत कवि आदर्शो को मूर्त करने के लिए लालायित है—उन्हे वह नील कुहासे मे खोई धरती मे प्रतिष्ठित करना चाहता है।

'पादपीठ' स्वर्ण चेतना 'सुनहली हाला' के अवतरण की पीठ है। इस अवतरण ने हृदय को शुभ्र पद्म-सा खिला दिया है। इस सद्य. प्राप्त सत्य ने मानस मे प्रेम का नीड बना लिया है। मानस अब वासनामय जीवन की 'पिघली आग सी हाला' का पान नही करेगा। वह प्रेमामृत ही पिएगा। मानस को इस प्रेमामृत, प्रेम ज्योति का ही पान करने दो। इसका पान करके वह नए प्रभात का दूत बन सकेगा। जीवन को उसकी सपूर्णता मे स्वीकार कर वह अमृतत्व का सदेश देगा।

साँझ-प्रात, मूँगी-लाली, तितली-जुगनूँ, लीला-लावण्य—ये सभी तो अप्सराएँ हैं, 'भाव रूप' हैं। मन इन्ही मे डूबा हुआ हैं। उसे अभी रूप ग्रहण करना है।

'अभी मानव चेतना मे
किरणो का तोरण
नही खुला,—
जिससे स्वर्ण सुषमा
अगुठित
अभिसार कर सके!

'विकास' मानव जीवन की गति-अवरोधक स्थिरता, परम्पराप्रियता और रुढिवादिता पर क्षोभ है।

मन अभी
ठेले, बैलगाड़ी पर ही
दचके खाता है!

इच्छाओ और भावनाओ को त्याज्य कहना अनुचित है—आत्म-वर्जन का सिद्धात सम्यकता से रीता है । इच्छाओ को उनके उचित सदर्भ मे समझना होगा, उन्हे जीवन-विकास, जीवन-पूर्णता का माध्यम बनाना होगा और तब पुरानी वर्जनाएँ नए युग मे विकसित होकर 'सुनहली अलको' की फूल माल बनेगी जिनकी 'मादन गध पीकर मृत्यु जी उठेगी ।' 'वर्जनाएँ' कविता का यही अतर्तथ्य है ।

'घर' धरती की सुन्दरता का घर है जहाँ रात को चाँद किरणो की बाहो मे चदिरा की अनावृत ज्वाला को लिपटाए 'चाँदनी के सग सोया था ।' यह घर समुद्र मे बना हुआ है । समुद्र एव ऊँची-नीची मानसिक तरगो की ज्वाला इसे उद्वेलित करती है । यह उद्वेलन तभी शात होगा जब जीवन की उर्ध्वोन्मुखी गति धरती के जीवन से समन्वित हो जाएगी और उसकी पक सनी टाँगो को धो देगी । आध्यात्मिकता से प्रकाशित उत्फुल्ल जीवन को कवि प्रतीक रूप मे समझाता है । वह उस युवती बहू का उदाहरण देता है जो पीतल के चमचमाते जल भरे कलश लिए, किसान के घर मे रहती है । यह बहू धरती की पुत्रवधू है, अनत यौवना है ।

परियो की राजकुमारी की नत चितवन, पत्तो के ओठ हिलाकर प्रेमी-प्रेमिका की गुपचुप बातचीत तथा भस्म रमाए, झोली लटकाए परीक्षा लेने आए हुए भगवान् का दयालु सीधे ब्राह्मण को वरदान देना—यह सब पुरानी आस्थावान् दुनियाँ की बाते है जो नानी-दादी की सरस गाथाओ मे आज भी जीवित हैं । 'दतकथा' इसी गाथा को भोला आकर्षण दे देती है । अजाने ही मन, इस वैज्ञानिक, सशयवादी, तर्क-बुद्धि प्रधान दुनिया से दूर हट, आस्था के स्निग्ध सलिल मे बहता हुआ कवि के साथ गुनगुना उठता है—

पुरानी ही दुनिया अच्छी,
सच
पुरानी ही दुनिया !

जीवन की रसात्मक अनुभूति, उसका सुख-दुख, विरह-मिलन अन्य कुछ नही है किंतु भगवान् के ही 'बिम्ब' हैं, उसी की ओर जाने के मार्ग ।

ओ प्यार के टूटे दर्पण,
तुम्हारा खड खड पूर्ण है !
... ...

प्यास की अनत लहरियों मे
रुपहली नाव खेने वाले
आत्म मग्न
तुम्ही हो !—
मैं नही !

'इद्रिय प्रमाण' सत्य के सापेक्ष और निरपेक्ष रूपो पर प्रकाश डालती है। यह सापेक्ष इद्रियानुभूत जगत् शाश्वत सत्य का ही प्रतिभासित रूप है। और 'नयी नीव' रचना व्यक्तिनिष्ठ नई कविता के सकीर्ण सवेदनो, छिछले अनुभवो अरण्य रोदन, अहता तथा आत्म-व्यथा को विश्व वेदना, व्यापकता, महानता एव 'भू रचना' का सदेश देती है।

वैज्ञानिक अविष्कारो ने मनुष्य को भौतिक सुख सपन्न कर दिया है किंतु उसका अतर अभी दुखी और विषण्ण ही है। मनुष्य को साध्य-साधन के भेद को समझना होगा, विज्ञान को आत्म-ध्येय के लिए साधन बना कर ही वह सुखी हो सकता है।

ओ इस्पात के सत्य,
मनुष्य की नाडियो मे बह,
उसके पैरो तले बिछ,—
लोहे की टोपी बन
उसके सिर पर मत चढ !

'एकाग्रता' ऊर्ध्व और सम के एकत्व को अभिव्यक्ति देती है। एकाग्रता की एकाग्र साधना धरती के ऊर्ध्व-सम सचरण की साधना है।

इन अतल गहराइयो को
कैसे समतल बनाऊँ ?

'धर्मदान,' 'सान्निध्य' और 'चाँद' अतर अनुभूति के स्फुलिंग है।

तुम फूलो की फूल हो,
माखन सी कोमल !—
तुम्हारे शुभ्र वक्ष मे
मुँह छिपाकर

मैं
ध्यान की
तन्मय अतलताओ मे
डूब जाता हूँ !
× × ×
चाँद ?

हृदय की डाल पर सुलाऊँगा,—

चाँद—
उससे
स्वप्नो का नीड सजाऊँगा !
तुम्हारा ही तो मुकुर है !

पत स्वभाव से सत्य प्रेमी है । एकाध बार जब उनसे झूठ बोलने के लिए कहा तो घबडाते हुए बोले, "बस यह मैं नही कर सकता । और जो चाहो करा लो । मेरा अतर काँप उठता है । सच हृदय मे बडा बोझ पडता है ।" किन्तु पत का सच बोलना 'अप्रिय न ब्रूयात' का उल्लघन नही करता, "अरे क्या करता, वह दुखी हो जाता !" "यह झूठ बोलना थोडी हुआ । मै उसे निराश नही करना चाह रहा था । बात घुमा कर कह दी", "यदि मेरे ऐसा कहने से किसी का भला हो जाता है तो कोई बुरी बात नही ।" "यह छोटी बातें हैं । मै इन बातो को महत्व नही देता । लोग मूर्ख हैं जो ऐसी बाते उसके लिए कहते है । मैंने तो खूब तारीफ कर दी । क्या पता सफलता मिलने पर वह कल अच्छा हो जाए ।" और वही 'भाव पथ' की शपथ है ।

शपथ !—
अशुभ न कहूँगा,
असुन्दर न वरूँगा,
तुम मुरझा जाती हो !'

'आत्मिका' (वाणी) मे अपने विगत यौवन की चर्चा करते हुए पत ने कहा है—

हो न सका चरितार्थ प्रेम का
धरा-स्वर्ग नारी उर मे स्थित,
हृदय नही विकसित शोभा के
देह-भाव से मन अवगुंठित !

'भावपथ' 'आत्मिका' के इस कथन को भी प्रतिध्वनित करता है—

रिक्त गुंठन है
स्त्री की शोभा,
रूप का झाग !
मै उससे न बोलूँगा,
न छूऊँगा,—
वह देह बोध ही बनी रही तो !

शाश्वत के प्रेमी को स्त्री को छूने की आवश्यकता ही क्या है ? वह अपनी ही अनुभूति मे भीगा है, नारी को मात्र देह बोध से युक्त कह कर उससे विरक्त हो जाना सरल ही है ।[1] जो शाश्वत वसत, अनन्त तारुण्य, अनिन्द्य सौंदर्य का पान कर चुका है उसके लिए देह बोध से युक्त स्त्री भूत बाधा ही तो है । यह भूतबाधा वैराग्यजन्य नही है, और न जीवन से पलायन ही है । यह पत को उनके उस स्वभाव या सस्कार की देन है जो यह मानता है कि हृदय का पूर्ण तादात्म्य केवल भगवान् के साथ ही हो सकता है । भगवान् के स्व-प्रकाश, सर्वव्याप्त, अत स्थित, सोह स्वरूप को 'प्रकाश', 'अत.स्थित' और 'वह-मैं' रचनाएँ अभिव्यक्ति देती है ।

मुझे ज्ञात है,
तुम
जो नवीन दिगतो मे
स्वर्णिम प्रभात हो,
तुम्ही
मेरे मानस मे
शुभ्र पद्म कली बन
खिली हो !

---

1 "But love towards a thing eternal and infinite fills the mind wholly with joy—Spinoza.

'कालातीत' इसी अनुभव को सात-अनत के रूपो मे समझाता है। सत्य अखण्डनीय है, असीम है, यद्यपि जागतिक अनुभव सापेक्ष और सात है।

असीम का स्वभाव,—
वह शोभा की
नयन नीलिमा मे बँधा
असीम ही रहता !—

जीवन की व्यापक यथार्थता का बोध ही 'जीवन बोध' है। यदि इन्द्रनील आरोहो पर अविराम बजनेवाले रुपहली घटियो के नीरव स्वर बुद्धि से अग्राह्य है तो साधना से उन्हे सुना जा सकता है। साधनाजनित तादात्म्य अवश्य ही सत्य से साक्षात्कार एव उसकी अनुभूति करा देगा।

रूई के झाग-से मेमने
उन अवाक् नीलिमाओ मे
न चढ पाते हो,—
तो,
मैं अपने श्रद्धा मौन गीतो को
ध्यान पथ से
वहाँ भेजूंगा !

किंतु तादात्म्य की भावना, दिव्य की अनुभूति धरती को भुला नही देती वरन् धरती के कल्याण की आकांक्षा उसमे अधिक प्रबल हो जाती है :

मैं, उन आरोहो को
प्राणो की हरी गहराइयो मे उलट
नए जीवन बोध की फसल
उगाऊँगा !

वह नए बोध से सपन्न होकर अरुणोदय से कहता है कि जीवन मे उतरो, मनुष्य की खर्व चेतना आत्म-विस्मृति मे खो जाना चाहती है। तुम अपने प्रकाश से मनोदैन्य को भस्म कर दो तथा अपने कवि-धर्म से वह कहता है कि नए विश्वास, नयी आस्था से भूमि को उर्वर करो।

'कीर्ति' में, सचमुच ही, भूमि उर्वर हो जाती है। तभी तो कवि कहता है यह कीर्ति किसी एक की नही है, समस्त मानवता की है, विश्व कीर्ति है।

मानवता के दृगो को नयी दृष्टि मिल गई है, उसके कानो को अर्थ बोध के नए स्वर मिल गए है, उसके जीवन मे सर्वत्र आनद छा गया है—वह सकीर्ण व्यक्तित्व और स्वार्थ से मुक्त हो गई है । अब मानवता मे नयी शक्ति, नयी वेदना, शील स्वच्छ नयी सामाजिकता स्थापित हो गई है ।

शुभ्र प्रेम, अनत और समग्र सौदर्य के साथ तादात्म्य ही 'आनद', 'उपस्थिति', 'भाव', 'भावावेश' और 'अवरोहण' है ।

भावावेश मे
जब हृदय
गहरी साँस लेता है,
तुम उडकर
उसी मे समा जाते हो !

'रक्षित' निरर्थक की आलोचना के प्रति उपेक्षित भाव को अपनाने का आग्रह करता है—इद्रिय जीवन पर प्रतिष्ठित ससार को अपने ढग से चलने दो, उसकी आलोचना करके कोई लाभ नही होगा । जीवन चेतना से सयुक्त है । अवश्य ही भविष्य मे मनुष्य उसे अपनाएगा अथवा वह जीवन मे मूर्त हो जावेगी ।

तुम सयुक्त हो ?
फूल के कटोरो का मधु
मधुपायी पी गए
तो, पीने दो उन्हे !
नया वसत
कल नये कटोरो मे
नया आसव ढालेगा !

मानस की अतलताओ, अवचेतन की गहराइयो को आलोकित करने का आकाक्षी 'नया देश' है । 'रहस्य' परम आलोक की परमता को शब्दो, भावो, रूपको मे नही बाँध सकने की असमर्थता का वर्णन करता है । परम आलोक की अनुभूति वर्णनीय होते हुए अवर्णनीय है । निःसदेह वह जो सब कुछ है उसे शब्दों मे नही बाँधा जा सकता, शब्द एव वाणी सापेक्ष और सीमित हैं—

केवल
अगम शांति है !
अरूप लावण्य,
अकूल आनंद,
प्रेम का
अभेद्य रहस्य !

'सूर्य मन' प्रेम के इस अभेद्य रहस्य के गुंजरण का आकांक्षी होकर 'समर्पण' मे पूर्ण प्रणत हो जाता है

तुम्हारे रश्मि चरण
... .
जिन्हे देख
दृष्टि अपलक
हृदय पद्म
निछावर कर देती है ![1]

---

१. इस रचना का उदाहरण देते हुए मानव जी का कहना है, "पंत जी संत या भक्त नही है। अध्यात्म और भक्ति का लक्ष्य ब्रह्म और ईश्वर है, जब कि अरविंदवाद का पृथ्वी का यह वैभव; अध्यात्मवादी परलोक चिंतन मे रत रहते है, जबकि चेतनवादी इस लोक के भोग मे, अतः अध्यात्म मे जहाँ शरीर साधन है वहाँ चेतनवाद मे साध्य। इसी से आध्यात्मिक संकेतो और भोगवादी प्रतीको को एक-साथ रख कर नहीं देखा जा सकता।...... 'मणि सरोवर/अधरो का अमृत ! लिपटी हैं ! यह नारी के शरीर का ही वर्णन है।" * यदि कोई काम-ग्रंथि से ग्रसित हो जाए तो विवशता ही है, उतनी ही, जितनी कि पाडु रोगी को सभी वस्तुओ का पीला दिखाई देना। पंत ने न कभी अपने को संत कहा और न भक्त वे पंत ही रहना चाहते हैं, सामान्य व्यक्ति बने रहने के वे आकांक्षी हैं। जिन्होंने उन्हे निकट से देखा है, बिना पूर्वग्रह, कुंठा या द्वेष के, उन्होंने उन्हे उनके व्यक्तित्व या स्वभाव के आधार पर उन्हे संत या भक्त कहा, तो बात ही दूसरी हो जाती है। जहाँ तक अध्यात्मवाद और चेतनवाद का अंतर है इसमें भ्रांति ही लक्षित होती है क्योंकि इनके भेद को समझाने के लिए जो व्याख्या दी गई है वह भोगवाद (चार्वाक) और अध्यात्मवाद (चेतनवाद) की है।

* सुमित्रानंदन पंत, पृ० २८७ (तृतीय संस्करण)

और यह समर्पण विशुद्ध चेतना की अनुभूति है, चेतना जो सीमाओ और मूल्यो मे नही बँध सकती इसीलिए 'एक' रचना मे कवि कहता है

अकूल, कौन सिंधु हो,
अश्रु कण मे भी
समा जाती हो !

एकत्व ही 'एक', 'शरद' और 'शखध्वनि' का विषय है। सर्वात्म की अनुभूति अवाक् 'आनद' और 'आत्म विस्मृत तन्ययता' है। अनत का सर्वव्याप्त, सर्वसमावेशी स्वरूप सीमा और असीम, शून्य और सर्व, दिशा और काल की धारणाओ से मुक्त है। सब कुछ होते हुए वह कुछ नही है, कुछ नही होते हुए सब कुछ है। वह जगत् के अणु-अणु मे व्याप्त होते हुए उससे परे भी है। उसे मन की धारणाओ मे बाँधा नही जा सकता। मन का सूनापन ऐसे 'दृश्य और अदृश्य' का गध स्पर्श पा 'अनिर्वचनीय' मे गीत भ्रमर बन गूँज उठता है। यह भ्रमर की गूँज प्रेम की गूढ तृप्ति ही है। 'वरदान' का आशय भी यही अनिर्वचनीय है एव 'अव्यक्त' वरदान के ही भावार्थ को प्रतिध्वनित करता है।

सूरज, चाँद, साँझ प्रभात ?
अधूरे उपमान !

'नया प्रेम' मध्ययुगीन तथा वर्तमान उस विचार धारा का खण्डन करता है जो जीव के जीवन को भगवान् से भिन्न एव उनके विरह से दग्ध मानती हैं। 'नया प्रेम' भगवान् की उपस्थिति सर्वत्र मानते हुए उससे पार्थक्य को असभव मानता है। इसलिए कवि कहता है—

तुम पिछली फूलो की बीथियो
आँसू की गलियो से होकर
मत आना,—
क्या कोई भी घर,
कोई भी आँगन
कोई भी पथ
तुम्हारा नही ?

'नया प्रेम' की यह व्याख्या सर्वेश्वरवाद एव मानवतावाद, मानव का मानव के प्रति प्रेम एव 'सियाराममय सब जग जानी' ही है। 'पद' रचना मे कवि चैतन्य के विभिन्न स्तरो का वर्णन करता है—सृजनशील, प्राणिक, अतर्मानसिक तथा तन्मय चैतन्य।

भागवत अनुकपा की आकाक्षी रचना 'करुणा' है। दिव्य को सबोधन कर कवि कहता है कि मैं अपने आप तुम्हारे पास आ सकने मे असमर्थ हूँ, तुम मेरे ही हो, तुम्ही मेरे पास आओ।

परम निरपेक्ष है, शब्दहीन, स्वरहीन, भावहीन है। किंतु यह निरपेक्ष, 'सदानीरा' जागतिक व्यापारो, सापेक्ष सत्यो द्वारा व्यक्त होता है। सापेक्ष को समझना निरपेक्ष को ही समझना है। जब इस निरपेक्ष का अत स्पर्श मिल जाता है तब अतर मे अनाहद नाद सुनाई देता है, साक्षात्कार एव अनुभूति-जन्य अतर्नाद ही 'शख' है। इसी दृष्टि से 'झरोखा' जगत को एक नई व्याख्या प्रदान करता है। जगत अपने आप मे कुछ नही है। उसे हमारा मन, बोध और चेतना स्वरूप प्रदान करते है। यदि हृदय स्वच्छ है तो जगत भी स्वच्छ और प्रकाशवान् है। हृदय की स्वच्छता या मलिनता ही बाह्य जगत और जीवन मे प्रतिबिबित होती है।

जगत ?
मात्र निवास है!
जहाँ अधकार ही
        अधकार,
यदि
रुद्ध है
हृदय द्वार!

यदि प्रकृति को निहारें, फूल के प्रस्फुटन और झरन को देखें तो एक स्वाभाविक विकास दीखेगा। वास्तव मे 'फूल' सृजनशक्ति की सहजता एव स्वतः प्रवर्तितता पर प्रकाश डालता है। 'बाह्य बोध' भी इसी प्रकार की रचना है जो अधखिली कली के रूपक के माध्यम से जन्म और मृत्यु, खिलने और मुरझाने को विकास क्रम की स्वाभाविक स्थितियाँ मानते हुए उनके आंतरिक सत्य की शाश्वतता एव अक्षरता का बोध प्रदान करती है।

'अतः स्फुरण', 'अनस्तरण, 'सूक्ष्म गति' तथा 'केवल' अपने शीर्षकों के अनुरूप रचनाएँ है। 'काल नाल पर खिला नया मानव', कालक्रम मे विकसित

मानव, अत प्रबुद्ध मानव है। यह जीवन विकास की 'देन' है। यह मानव सस्कृति और सभ्यता के सर्वोच्च विकास का प्रतीक होगा जो द्वैतबुद्धि, सकीर्ण स्वार्थी इच्छाओ के परिष्कार और उन्नयन की उपज होने के कारण समस्त विश्व को अपना प्रागण मानेगा।

'शील' लोक मगल की आकाक्षा को अपनाने वाली रचना है। आलोचको की छिछली एकागिता, पूर्वग्रह तथा दलबदी युक्त तर्कजाल पर व्यग्य करता हुआ 'प्रश्न' काव्य की आलोचनाओ और समीक्षाओ की उपेक्षा करता है। ऐसे आलोचक छिद्रान्वेषी 'मूषक', 'टर्रानेवाले' 'मेढक' से महत्तर नही है।

'द्यावापृथवी' मे वैयक्तिक सत्य एव वैयक्तिक कल्याण को विश्व मगल की तुला से आँककर उसे बौनी मान्यता की श्रेणी मे रखकर कवि कहता है कि वैयक्तिक सत्य महत् सत्य की एक लँगडी किरण भर है। विश्व क्षितिज मे एक नया प्रकाश जन्म लेकर समस्त मानवता की गहराइयो और ऊँचाइयो मे फैल रहा है। यह हमे विश्व कल्याण को अपनाना सिखाएगा और तब 'प्रत्येक हृदय मे स्वर्ण कमल खिलेगा।' 'ओ पक ओ पद्म' को अपनाता हुआ कवि व्यक्तिनिष्ठ पकमयी वासना को प्रताडित करता है। ओ वासना की नागिन तेरी टाँगो मे द्वेष, घृणा, त्रास, भेदभाव का तुच्छ कीट पल रहा है। तू चाहती है कि मनुष्य हृदय प्रकाश का नीड न बन सके, जीवन प्रेम का स्वर्ग न बन सके। किंतु प्रेम की आँच अवश्य ही तुझे भस्म कर देगी। वह मानव कल्याण मे रत है। मानव कल्याण के लिए ही 'अतृप्ति' रचना कामना एव वासना को सौदर्य से मण्डित अथवा उसे प्राणो के स्तर से ऊपर उठाकर सुषमा, स्वच्छता से वेष्ठित करना चाहती है।

> क्या देह से ही लिपटोगी ?
> ओ मदिरा की
> चपई ज्वाल !

'आत्मानुभूति' मे कवि सृजनशील प्रतिभा से कहता है कि अपने अछूते आँचल मे रगो के धब्बे, मधुपो के षट्पद चिह्न न पडने दे। नयी पीढियाँ चाहे मधुरस की तीव्रता मे आत्मविभोर हो जाएँ किंतु तू अपनी अगुठित शोभा के मूल्य को मत भूलना। जीवन विकास-पथ है। जातियो, सस्कृतियो, सभ्यताओ का जन्म तेरे ही प्राणो का आवेश, रोम हर्षों की सिहरन है। अतः तुझे जीवन विकास के लिए साध्य-साधन मे सगति लानी है। 'एकमेव' मे मात्र 'वह' ही है, उसी

के साथ तादात्म्य की अनुभूति है। विराट् सत्य का वैयक्तीकरण करके उसके माध्यम से कवि लोक कल्याण को मान्यता प्रदान करता है—मै जो विश्वात्मा हूँ, उसे केवल बोध से देखने वालो ने विश्व सत्य, विश्व-कल्याण तथा लोक-कर्म का निराकरण कर दिया है। जगत मे जो कुछ है वह मेरी ही अभि-व्यक्ति है।

दिन रात
मेरी भ्रू भगिमाएँ नही
तो क्या है ?

'अखड' इसी विश्वात्मा की अविभाज्यता और अखण्डता को इगित करता है। जीवन के विकास क्रम मे जो मूल्यो का थोडा ज्ञान प्राप्त होता है वह अल्प ही है।—'तुम किस मूल्य से/फेन को फेन कहते हो ?' सत्य को 'मुझमे-तुझमे' विभक्त नही किया जा सकता। बहु मे उसे विभक्त करना और बहु द्वारा उसका मूल्याकन करना ऐसा ही है जैसा,

मैं मुँह मे पानी भर
जल फुहार बरसाऊँगा,—
करो तुम मूल्याकन,
गिनो फुहार की बूँदें !

सत्य का स्वरूप शब्दो की उस सापेक्षता से मुक्त है जो द्वद्वात्मक और द्वैतात्मक है। उसे शब्दो की इकाइयो द्वारा व्यक्त नही किया जा सकता। उसका आभास सकेतो और प्रतीको द्वारा ही दिया जा सकता है.

मै शब्दो की
इकाइयो को रौद कर
सकेतो मे
प्रतीको मे बोलूँगा !

सत्य का एक, अद्वितीय, असीम और शाश्वत रूप उसे अनिर्वचनीय (नेति नेति) बना देता है। उससे परे कुछ है ही नही जिससे उसकी तुलना की जाए या उपमा दी जाए। वह 'गूँगे का गुड' है, विशुद्ध अनुभूति का विषय है। यह अनुभूति शाश्वत और क्षणिक को अविभक्त देखती है—

मै शाश्वत, नि:सीम का
गायक और सृजक रहा
तो
सद्य. क्षणिक का भी
जनक हूँ !

इसी तथ्य को दुहराता हुआ 'समाधान' मे कवि कहता है कि पहिले मै अपनी अहता को उपेक्षा से देखता था। बाद मे मैं समझ गया कि तुमने मुझे मेरी अहता का ही छोर पकडा रखा है, इसी के माध्यम से मैं तुम्हे (सत्य) प्राप्त कर सकता हूँ। तुम मेरी अहता का ही विस्तार हो। यह 'अह' ही हमारा मिलन तीर्थं है। इसी के द्वारा मैं अपने-पराए, तुम्हे और विश्व एव विश्व पार के सत्य को जान पाता हूँ। मैने इस अहता को उलट-पलट कर भी देखा है और वहाँ भी तुम्हे ही पाया।

सत्य रूप से परे है, और यही 'रूपाध' का विषय है। मात्र रूप को ही मानना सत्य-कथा को सत्य से, प्रेम-व्यथा को प्रेम से अधिक मानना है। रूप का सत्य अरूप की गहराइयो मे है। 'वाष्प घन' मे कवि, अहतारूपी वाष्प घन से विमूढ होकर, मानस से कहता है कि तुम्हारे भीतर के सत्य को मैं नही जान सकता हूँ। तुम्हारे उपकरणो मे ही मेरा मन उलझ जाता है। रूप-रग-आकारहीन सत्य को मै जीवन मे कैसे प्रतिष्ठित करूँ कि 'मानवता की फसल हँस सके !' अत,—

अच्छा हो,
तुम स्वय रिमझिम कर
मिट्टी मे मिल जाओ,
धरती को सहलाओ,
नयी हरियाली बन जाओ !

'भू पथ' वाष्प घन की मानव-कल्याण की आकाक्षा को दुहराती है। कवि अत. प्रकाश से जीवन मे प्रतिष्ठित होने के लिए प्रार्थना करता है। मात्र वैयक्तिक अनुभूति और आनद से वह तुष्ट नही है—आनद का स्फुरण वह व्यापक जीवन मे देखना चाहता है।

समाधि मग्न
मैं नही रह सकता,
तुम्हे अधकार की

कर्कश गुहाओ मे
चलना ही पडेगा,—

'वाचाल' बच्चे की सहज जिज्ञासा और सरल भाषा मे राजनीतिज्ञो को कौओ की पाँत मे बैठा देता है।

इस सग्रह की अतिम कविता 'सिंधु मथन' जीवन मे हरियाली लाने के लिए ही स्वाधीन भारत को आत्ममथन का मत्र देती है ताकि उसके वासी अपने प्रमाद, आलस्य, निरुद्यम, भाग्यवाद, परपराप्रियता, आत्म-पराजय की भावना, पलायनता, समाज-विमुखता, भय, सदेह, घृणा की विद्वेष भरी अजगर (मध्ययुग) की अधेरी खोह से बाहर निकल कर 'मुक्त नील तले स्वच्छ वायु मे विहार कर' सकें।

'कला और बूढा चाँद' जीवन अनुभूति की परिपक्वता का फल है, यह ध्यान शुभ्र मन का आनद-आलोक है। इसका कवि सम्यकता, समग्रता और सपूर्णता का प्रेमी है। इसीलिए वह जितना स्थूल यथार्थ—चार्वाकीय भोगवाद, अहतावाद अथवा मानवता विरोधी एद्रियता एव घृणित सासारिकता—का विरोधी है उतना ही मात्र उर्ध्व सचरण—पलायनता, वैयक्तिक मुक्ति, सामाजिकत-शून्य वैराग्यवाद—का भी। 'वाणी' की कविता 'साधना करो युग कृष्ण, साधना करो राम', 'कला और बूढा चाँद' मे अधिक काव्यमय, स्निग्ध और सुमधुर हो जाती है।

ये मधु-तिक्त ज्वलित-शीत
वर्जनाएँ है!—
जो अब मुक्त हो रही हैं
तुम्हारी सुनहली अलको की
ये फूल माल बनेंगी,
इनकी मादन गध पीकर
मृत्यु जी उठेगी!

'कला और बूढ़ा चाँद' का माध्यम प्रतीक और बिम्ब दृष्टियाँ है क्योकि यह ध्यान, अनुभूति, अत. स्फुरण और आनद को अभिव्यक्ति देता है। आनद के सागर की लहरे पृथ्वी को अपनाती हुई ऊपर उठती है। बिना धरातल के सागर के पानी की कल्पना गगन पुष्पवत् है। धरती एव उसकी विविधता, उसकी हरियाली, उसका प्राणतत्व सत्य है। एकता की शुभ्रता, प्रकाश और

प्रोज्वलता उसकी विविधता ही है। विविधता का निराकरण नही किया जा सकता। एकता को स्वीकार करने मे विविधता स्थापित हो जाती है। किंतु विविधता, बिना एकता के, अर्थशून्य और अग्राह्य है। ऐसी मिथ्या, खोखली तथा प्रतिभासित विविधता—एकताशून्य—ने ही पृथ्वी के जीवन को कटुता, द्वेष, अहता, स्पर्धा, प्रतिद्वदिता से नारकीय बना दिया है। बिना एकता, ऊर्ध्व जीवन एव भागवत सत्य को अपनाए जीवन रहने योग्य नही रहता। एकता की उपेक्षा करने पर पृथ्वी निवासी को उसी की विषैली अध पिपासा मिटा देगी। अन्न, प्राण और विज्ञानमय कोष अपने आप मे बुरे नही है, वरन् ये सत्य प्राप्ति की अनिवार्य स्थितियाँ एव सोपान है। किंतु जब इन्हे सपूर्ण—मूलभूत एकता—से वियुक्त करके समझने अथवा अपनाने का प्रयास करते है तो यह 'लडते नर मुण्ड' जीवन को असह्य और विषाक्त बना देते है। मूलभूत एकता एव अध्यात्म से विरक्त होकर हम जीवन को नष्ट करने मे ही सहायक होते है क्योकि एकता अनेकता का आधार स्तभ है, आश्रय और भूमा है।

ऐसी व्यापक सहज अनुभूति को व्यक्त करने के लिए ही पत 'कला और बूढा चाँद' मे छदो की पायलें उतार देते है। सहजबोध अनुभूति मे भीगा है, उसके पास वाणी नही है। अनुभूति की अनिर्वचनीयता, अद्वितीयता को व्यक्त करने के लिए वह प्रतीको और बिम्बो का सहारा नही लेता है वरन् ये उसकी अनुभूति के ही अग हैं, ठीक उसी प्रकार, जिस भाँति, झरने का कल-कल निनाद। इसी कारण वृद्ध 'चाँद' के प्रतीक भी अद्वितीय है, अमूर्त और अशरीरी, अत तर्कप्रेमी चिंतन के, छिद्रान्वेषण के 'प्रश्न' रचना के शशक और मूषक के स्तर की समस्या है। 'चाँद' की अनुभूति व्यापक है, जीवत है, सच्ची है अत. सहज ही उसमे मूर्तिमत्ता, देह और मन एव यथार्थ की गध है। नि सदेह यह गध 'कीचड' की नही है, यह मूर्तिमत्ता 'लगडी किरण' नही है। यह गध सुनहले धानो की है, जीवन हरीतिमा की है, एव यह मिट्टी की सौंधी गध है जो जीवन को मानवता के बोध और ऐश्वर्य से, प्राणो के रस और अमृत से, मानव हृदय की करुणा ममता से अनुगुजित कर देती है। इसकी मूर्तिमत्ता इसकी तेजस्विता है, एक-अनेक, विश्व-विश्वातीत, धरती-आकाश, अहता-सत्य का यह शुभ्र चेतन प्रकाश है जिसमें 'मानवता की फसल हँस सके।' बच्चन जी का कहना है, "कला और बूढा चाँद' एक नये माध्यम को लेकर आया है। मैंने उसे गद्य-काव्य कहा है, पर हिंदी के पिछले गद्य-काव्य मे यह डूब नही सकता। मानसिक अनुभूतियो की असाधारणता, विचित्रता और सूक्ष्मता, सहज स्फुरण द्वारा नये, ताजे, आकर्षक प्रतीको के सचयन, और शब्दो को अभिव्यजना की चरम सीमा

पर ले जाकर छोड देने की कला ने 'कला और बूढा चाँद' मे एक अद्भुत कृति हमारे सामने रखी है। जिस दार्शनिक विचार, जिस मानसिक अनुभूति और जिस जीवन साधना की अभिव्यक्ति इस कृति मे हुई है अगर वह अपनी इकाई मे सीमित रह जाए तो मुझे आश्चर्य नही होगा। गो यह जरूरी नही कि कोई माध्यम प्रकट होते ही अनुकरण किया जाने लगे। साहित्य के इतिहास मे अभिव्यजना की बहुत-सी शैलियाँ सदियो पडी रहने के बाद अपनाई गई है। ··· दस वर्ष के व्यस्त जीवन मे काव्य को इतने गुण-रूप-राशि मे प्रस्तुत करने मे समर्थ पत जी की सृजन-शक्ति निःसदेह असाधारण है।"[1]

'कला और बूढा चाँद' का मानसिक धरातल, उसकी भावभूमि जडवाद, भूतवाद, अध्यात्मवाद या अरविंदवाद के शब्दो मे नही समझी जा सकती है। मात्र अनुभूति, व्यापक अनुभूति और तज्जनित आनद का यह काव्य सहजबोध एव उच्च उन्मेषमय—रश्मिपदी—होने के कारण प्रतीको और बिम्बो की भाव भगिमा का मधुर लास है। इसके विचार विचार होते हुए भी भावोन्मेष मे बाधक नही बनते, चितन नददिक आनन्द मे ही घुल जाता है। अथवा इसका आनन्द और अनुभूति बुद्धि विरोधी नही है वरन् बुद्धि सेपरे है। इसीलिए 'कला और बूढा चाँद' को सिद्धातवादिता की चौखट मे नही जकडा जा सकता। इसके अनुभव मे पैठने के लिए मात्र अहमिना से ऊपर उठना आवश्यक है, यह "हमसे कुछ विशेष सस्कार और शिक्षा की अपेक्षा"[2] रखता है। अथवा मानवतावादी सहज अनुभूति और सहानुभूति की अपेक्षा रखता है। यह इस सत्य को आत्मसात् करना है कि निरपेक्ष और सापेक्ष तत्वतः एक ही है। सापेक्ष एव युगीन मूल्यो को निरपेक्ष के ही सदर्भ मे समझना होगा, व्यक्ति के सत्य को विश्व के सत्य से अलग करके समझना ही समस्त भौतिक-मानसिक व्याधियो की सीमा से जकडा जाना है। पत का यह स्फुरण काव्य प्रतीको के माध्यम से बतलाता है कि व्यक्ति का सत्य उसके भीतर ही है, व्यक्ति का कल्याण समाज एव मानव कल्याण है। जीवन मान्यताओ के युग मे सापेक्ष रूप की हम उपेक्षा नही कर सकते, हमे उसे काल की तुला मे समझना होगा। किंतु काल की तुला का आधार कालातीत की तुला है। सच्ची अनुभूति आतरिक सत्य और बहिर्जीवन मे भेद नही देखती, वे एक ही हैं। इस दृष्टि से 'कला और बूढा चाँद' की कविताएँ जीवन एव जीवन सत्य से आलोकित कविताएँ

---

१. 'कवियों में सौम्य सत', पृ० १७१
२. शमशेर : कृति, २१ पृ० १२

है जो चाँदनी के प्रकाश की भाँति चुपचाप अतर मे पैठ जाती है। उनका आलोक मानवता का है, 'कला और बूढा चांद' चाँद की स्निग्ध ध्यान भूमि मे अवतरित मानवता की अनुभूति है, वह मानवता का काव्य है। यह मानव धरती मे उन्मुक्त विचरण करता है, और मानव भाषा मे गीत गाते हुए 'मधुपायी उडान' भरता है।

किंतु यह 'मधुपायी उडान' जो अपनी सहज गति और माधुर्य के कारण अतरतम को झकृत कर देती है मानव जी की आलोचक बुद्धि को वितृष्णा से भर देती है, "भावनाओ के जो चित्र यहाँ-वहाँ बिखरे पडे है, वे उनकी एक नयी प्रवृत्ति पर प्रकाश डालते है। यह प्रवृत्ति है काम की। इस कृति मे उनकी काम-भावना असाधारण रूप से उभर आई है । इसका तो मूल स्वर ही जैसे वासना है—दर्शन तो एक आड मात्र है ···। इस ग्रथ मे गोरी बाहो, नग्न देह, चपक जघनो और उभरे वक्षो की चर्चा बार-बार आई है जिससे एक प्रकार की उत्तेजना शिराओ मे जगती है । इसमे उनकी जीवन भर की दमित भावनाएँ उभर आयी है और सारी कृति मे वासना की एक सरिता सी दिखाई देती है । सक्षेप मे कहना चाहे तो 'कला और बूढा चाँद' कामजन्य दिवास्वप्नो से उत्पन्न एक विलक्षण सृष्टि है जो छायावादी काव्य की एक पतनशील दिशा का सकेत तो करती है, लेकिन जिसका युग-जीवन और युगधर्म से कोई सबध नही।"[1]

भारतीय दर्शन के आधार ग्रथ—वेद, उपनिषद और पुराण एव समस्त भारतीय दर्शन और धर्म जब कभी भी तादात्म्य की अनुभूति और आनद का वर्णन करते है तब वे उसी भाषा का प्रयोग करते है जिससे मानव जी को वितृष्णा है।[2] श्रीमद्भागवत, वैष्णव धर्म, चैतन्य सप्रदाय आदि ने भक्ति की पराकाष्ठा को माधुर्य एव शृगार भाव के माध्यम से ही समझाया है। प्रकृति पुरुष, राधा-कृष्ण, शिव-पार्वती आदि के युग्म प्रतीक जीवन को उसकी सपूर्णता मे ही समझाने के व्यापक प्रयास है, इन प्रयासो को कृष्ण के चीर हरण तक सीमित कर देना वैसा ही है जैसा चाँद को 'प्रेम के पिंजडे मे' पालने की बात सुनते ही केशव दास को चद्रवदनी की याद आ जाना या किरणो को दुहते (अमृत) समय गोबर की दुर्गन्ध से परेशान हो जाना। आध्यात्मिक दर्शन और भक्ति साहित्य का इतिहास साक्षी है कि आध्यात्मिक सौंदर्य की पूर्ण

१. सुमित्रानंदन पंत २८३–२६०
२. देखिये इसी पुस्तक का अध्याय–स्वर्ण किरण तथा स्वर्ण धूलि

अभिव्यक्ति कायिक सौंदर्य के धरातल पर ही सभव है क्योकि सौदर्य का सचरण अततः एक ही है जो कि आत्मा मन और देह मे व्याप्त है। इसका जीवत उदाहरण शकराचार्य की सौदर्य लहरी है जिससे जिज्ञासुओ को उच्च से उच्च आध्यात्मिक प्रेरणा मिलती है। वैसे देवी के स्तन, जघन, वक्ष आदि के शृगारिक वर्णन के प्रति ही यदि कोई आकृष्ट हो जाय तो यह शकर की भक्ति की सीमा नही है वरन् व्यक्ति की मनोदशा एव उसकी सापेक्ष दृष्टि की सीमा है। तुलसी के इस कथन की सत्यता का निराकरण नही ही किया जा सकता—जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।

भाषा अपने रूप को धरती से ग्रहण करती है—सवेदनाओ और भावों से। चेतना के विकास के साथ इसके शब्दो का अर्थ, स्वरूप और मूतिमत्ता नया रूप-रग पा लेते है। 'कला और बूढा चाँद' जिस उन्मुक्तता के वातावरण मे विचरता है वह सहज और स्वाभाविक होने के कारण पाठक को अपरिचित नही लगता है। "सवेदन की उन्मुक्तता भाषा, शिल्प, ध्वन्यात्मक विधान, सबमे परिलक्षित है। छायावादी काव्य की भद्रता तो यहाँ है, पर उतनी अनावश्यक लज्जा और सुकुमारता नही है। यह अवरोध-हीनता पाठक के लिए अधिक प्रिय है, क्योकि ऐसे रचना-विधान मे कवि के साथ वह अपने आपको भी सहयोग की स्थिति मे पाता है। कवि की अनुभूति उसके लिए अधिक यथार्थ हो जाती है। कवि की उन्मुक्तता केवल मानसिक चिंतन के स्तर की ही नही है। 'कला और बूढा चाँद' की पक्ति-पक्ति मे कवि ने शरीर की भी जय घोषित की है। ग्रीक कलाकारो की भाँति शरीर उसके लिए मात्र विलास का उपकरण न रह कर सौदर्य का अधिष्ठान बन गया है। कवि के अनेक चित्राकनो मे शरीर उन्मुक्त (Nude) है, नगा (naked) नही। इन दोनो स्थितियो का अतर सर कैनेथ क्लार्क ने बड़ी गहरी अतर्दृष्टि से उद्घाटित किया है।" "'नगे होने का अर्थ है, वस्रो से विहीन होना, और यह शब्द सामान्यतः कुछ आपत्तिजनक व्यजना प्रस्तुत करता है। परन्तु 'न्यूड' (उन्मुक्त) शब्द सुसस्कृत प्रयोग मे असुखद भाव का बोध नही कराता। इस शब्द से जो भाव-चित्र उभरता है वह किसी निरीह और सिकुडे-सिकुडाये शरीर का नही, वरन् एक सतुलित, समृद्ध और विश्वासयुक्त शरीर का है: शरीर, जो पुनर्गठित हुआ हो। पत के नये काव्य मे यह उन्मुक्त शरीर ही प्रधान है—

यह गौर मास सरोवर
जिसमे मैं कूद गया हूँ!

'''कवि की यह वर्जनाहीनता एक नये स्वास्थ्य और सतुलन की ओर सकेत करती है।'' यो वह कभी-कभी देह से ऊब कर 'रस-स्रोत' फिर से मन मे देखने लगता है—

...
रस स्रोत मन मे है,
सौदर्य आनद
भीतर है—
देह मे न खोजो !

पर शरीर का ऐसा तिरस्कार 'कला और बूढा चाँद' मे विरल है। कवि ने उसे एक निश्चित यथार्थ के रूप मे स्वीकार किया है। शरीर का अन्वेषण और पुनरान्वेषण सूक्ष्म सौन्दर्य-बोध द्वारा ही सभव है ''। और यह कवि के विकसित सौदर्य-बोध का साक्षी है। कवि ने विकास किया है बाह्य सदर्भो की दृष्टि से भी और अपनी सृजन-प्रक्रिया की दृष्टि से भी। यह निश्चय ही गहरी अतर्दृष्टि तथा कठोर और आत्मचेतन अध्यवसाय की अपेक्षा रखता है।"[१]

अपने प्रकाशक 'राजकमल' के लिए पत ने दो काव्य सकलन तैयार किए। 'रश्मिबंध' और 'चिदम्बरा', इन सकलनो का महत्व भूमिका के सदर्भ मे द्विगुणित हो जाता है। 'रश्मिबध'[२] का प्रकाशन सन् १९५८ मे हुआ, इसमे 'वीणा' से लेकर 'वाणी' तक की चुनी हुई रचनाएँ है। कविताओं का चयन स्वय पत ने ही किया है। इस चयन के अतिरिक्त 'रश्मिबध' की विशिष्टता उसका 'परिदर्शन' है जो न केवल पत के काव्य व्यक्तित्व तथा उनके प्राकृतिक परिवेश पर प्रकाश डालता है वरन् उनकी साहित्यिक मान्यताओ के स्वरूप की भी व्याख्या करता है। वह छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की चर्चा करते हुए अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट कर देता है, "साहित्यकार की वाणी की उपयोगिता, महत्ता तथा उत्तरदायित्व इस युग मे जितना अधिक बढ गया है, उतना शायद इधर मानव इतिहास के किसी युग मे नही बढा था। आज उसे धरती के विशृंखल जीवन को नये छद मे बाँधना है—मनुष्य की बौद्धिक अनास्थाओ को अतिक्रम कर उसके भीतर

---

१. रामस्वरूप चतुर्वेदी : कादम्बिनी (जनवरी, १९६१) पृ० १२५-१२६
२. सभी संस्करणों के प्रकाशक : 'राजकमल प्रकाशन', दिल्ली

नवीन हृदय की रचना करनी है। युग परिस्थितियो के घोर अन्धकार से प्रकाश खीच कर उसे दुःस्वप्नो से आतकित मानव के मानस-क्षितिज मे नया अरुणोदय लाना है।" क्योकि

"मनुज धरा को छोड कही भी
स्वर्ग नही सभव, यह निश्चित !"

'चिदम्बरा'[1] का प्रकाशन काल १९५८ है। पत का कहना है कि "'पल्लविनी' मेरी प्रथम उत्थान की रचनाओ की चयनिका थी, जिसमे 'वीणा', 'ग्रथि', 'पल्लव' 'गुजन' 'ज्योत्स्ना' तथा 'युगात' की विशिष्ट कविताएँ सकलित है।" "चिदम्बरा मेरी काव्य-चेतना के द्वितीय उत्थान की परिचायिका है। उसमे 'युगवाणी' से लेकर 'अतिमा' तक की रचनाओ का सचयन है, जिसमे 'युगवाणी', 'ग्राम्या', तथा 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि, 'युगपथ' के अतर्गत 'युगान्तर', 'उत्तरा', 'रजतशिखर', 'शिल्पी', 'सौवर्ण' अथच 'अतिमा' की चुनी हुई कृतियो के साथ 'वाणी' की अतिम रचना 'आत्मिका' भी सम्मिलित है। 'पल्लविनी' मे सन् '१८ से लेकर '३६ तक, मेरे उन्नीस वर्षो के कृतित्व के पदचिह्न हैं, और 'चिदम्बरा' मे सन् '३७ से '५७ तक, प्राय. बीस वर्षों की विकास-श्रेणी का विस्तार।" पत की चिदम्बरा कालीन रचनाएँ आलोचना का पर्याप्त विषय रही है क्योकि आलोचको ने अपने-अपने मुखौटो से इन्हे देखना और समझना चाहा है। किंतु यह कहना उचित होगा कि इन्हे 'छायावाद' 'प्रगति वाद', 'प्रयोगवाद', 'अरविंदवाद' एव किसी विशिष्ट 'वाद' के साँचे मे नही ढाला जा सकता क्योकि ये पत की अपनी 'थाती' है, "मेरी प्रेरणा के स्रोत, नि.सदेह मेरे ही भीतर रहे हैं, जिन्हे युग की वास्तविकता ने सीचकर समृद्ध बनाया है। मैंने अपने अतर के प्रकाश मे ही बाह्य प्रभावो को ग्रहण तथा आत्मसात् किया है।" और पत की यह अतः प्रेरणा आशावादी है, उसे पूर्ण विश्वास है कि प्रेम और एकत्व के बोध से युक्त मानवता का निर्माण भविष्य मे सभव है अथवा भविष्य की आध्यात्मिकता या सस्कृति केवल भारतीय या एकदेशीय नही होगी, वह समस्त मानवता की होगी, विश्वजनीन होगी।

'साठ वर्ष · एक रेखाकन',[2] जैसा कि पुस्तक के नाम से व्यक्त है पत के जीवन के साठ वर्षों पर प्रकाश डालता है। इसका प्रकाशन काल सन् १९६०

---

१. सभी संस्करणो के प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
२. ,, ,, ,, : ,, वही।

है। इसके अतर्गत आकाशवाणी से प्रसारित चार वार्ताएँ[1] सगृहीत हैं जो एक सूत्रता मे बँधी होने के साथ लेखक के ही शब्दो मे, "इन निबधो मे मैने अत्यत सक्षिप्त रूप मे अपने साहित्यिक जीवन के क्रम-विकास की रूप-रेखा भर प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। मेरे व्यक्तिगत जीवन-सघर्ष को इनमे पर्याप्त स्थान नही मिल सका, उसके लिए उपयुक्त क्षेत्र तथा अवसर भी नही था। मेरे साहित्य को हृदयगम करने मे मेरे मानसिक जीवन-प्रवाह के ये पथ-सकेत, सभवत., सहायक हो सके, इसी आशा से, मेरे मन ने इनके प्रकाशन की स्वीकृति दी है।"

वास्तव मे अपने बारे मे कहना, सपूर्ण वार्ताओ को अपने 'स्व' मे केंद्रित करना कठिन ही है। अपनी भूमिकाओ मे पत ने अपने आप पर प्रकाश डाला है, किंतु यह प्रकाश साहित्य एवं जीवन तथा कला सबधी मान्यताओ के सदर्भ मे ही है। 'साठ वर्ष . एक रेखाकन' मे पत की सश्लिष्ट किंतु सौदर्यमुखी शैली जीवत हो उठी है, एक निर्भीक कलाकार की आत्म विश्लेषणात्मक अभिव्यक्ति, एक मनोवैज्ञानिक का प्रयोगशाला मे, सूक्ष्म सवेदनाओ का, सूक्ष्मदर्शी परीक्षण एव प्रकृति, परिवार,परिवेश, शिक्षा, अत. सघर्ष, बाह्य सघर्ष सभी एक दूसरे से एक हो नव मानवता एव मानव जाति के उल्लासमय, शिवमय जीवन की आकाक्षा करते है।

नि सदेह पत की यह आत्म-जीवनी न केवल उनके मानसिक प्रवाह को अभिव्यक्ति देती है वरन् जीवनी के क्षेत्र मे एक सर्वथा नए मापदण्ड को स्थापित करती है। और इसीलिए 'जीवनी' के प्रचलित अर्थ मे इसे स्वीकार करने मे आलोचको को असतोष होता है। वे परम्परा के कुहासे मे यह भूल जाते है कि व्यक्ति के जीवन की वे घटनाएँ जो केवल उसके सुख-दु ख की सूचक है, कथा प्रवाह के कारण मनोरजक अवश्य होती हैं किंतु इस प्रकार की मनोरजक 'जीवनी' ढेरो की हो सकती है, उससे समाज या साहित्य समृद्ध नही होता, किसी भी महान् व्यक्ति की 'जीवनी' उसकी रागात्मक प्रवृत्तियो की कहानी मात्र नही है, और न दुर्बलताओ, विकृतियो या बाह्य घटनाओ का सग्रथन ही है, वह तो व्यापक विश्व जीवन,

---

१. 'प्रकृति का अंचल', 'विकास-सूत्र और अंतःसंघर्ष,' 'प्रभाव और बाह्य संघर्ष' तथा 'नव मानवता का स्वप्न'।

विश्व प्रवृत्तियो का इतिहास है, व्यक्ति की चेतना की गतिविधियो तथा सृजन-कर्म का इतिहास है। पत की जीवनी के सदर्भ मे यह भी सच है कि उनका जीवन बचपन से ही आत्म-प्रबुद्ध और आत्म-नियन्त्रित रहा है, समातर मे उसने अपने आपको भू-मगलकामी चेतना से युक्त करने का भी प्रयास किया है। यद्यपि सभी की भाँति उनका जीवन, धरती का जीवन होने के कारण, बासती बयार नही रहा,—

दुर्विपाक घटता भू पथ पर,
चलते स्वय फिसल जाते पग,—

किंतु यह दुर्विपाक अह केन्द्रित होकर पत के व्यक्तित्व को झकझोर नही पाया क्योकि "मेरे अन्तरतम मे एक अवसाद तथा अतृप्ति मुझे कुरेदती रही है और अपने जीवन के साथ ही मानव-जीवन की सार्थकता खोजने की साध निरन्तर मेरे मन मे चलती रही है।" इस अवसाद ने ही उनसे कहलवाया—

'द्रुत झरो जगत के जीर्णपत्र, हे स्रस्त ध्वस्त, हे शुष्क शीर्ण'
× × ×
'ककाल जाल जग मे फैले फिर नवल रुधिर पल्लव लाली'
× × ×
'गा कोकिल, नव गान कर सृजन, रच मानव के हित नूतन मन'

पत के जीवन के वैयक्तिक दु ख, असह्य दु ख उनके समग्र व्यक्तित्व के सम्मुख पिपीलिका दश बन कर मिट गए, वे स्थायी प्रभाव छोडने मे अक्षम रहे। उनका मन अपने 'स्व' मे कभी आसक्त नही हो पाया "मेरा मन युग-जीवन की गतिविधि तथा मानव-दायित्व एव मूल्यो के प्रति तब से (पल्लव के बाद से) निरतर प्रबुद्ध रहा।" अथवा कवि-कर्म अपनाने के साथ ही पत मानव मूल्यो के प्रति प्रबुद्ध हो गए। 'तम्बाकू का धुँआ,' 'कागज के फूल', 'गिरजे का घण्टा' कविताएँ तथा 'हार' उपन्यास इसी प्रबुद्धता को अभिव्यक्ति देते है।

इस दृष्टि से 'साठ वर्ष : एक 'रेखाकन' एक सफल जीवनी है। प्रकृति क्रोड की चर्चा करते हुए कवि बीसवी शताब्दी के साठ वर्षो के सास्कृतिक-राजनैतिक-सामाजिक प्रवृत्तियो पर प्रकाश डालकर अपनी जीवन घटनाओ एव आतरिक विकास का चुपचाप वर्णन कर देता है, उस दृष्टि को सम्मुख रख देता है जो मानती है, "मानव एकता का सत्य मानव-समानता के सत्य

से अधिक महत्वपूर्ण है ।" तथा "मानव एकता का सचरण धरती पर अपनी परिपूर्णता मे तब तक प्रतिष्ठित नही हो सकेगा, जब तक समानता का सामूहिक सचरण उसके लिए उपयुक्त परिस्थितियो का ढाचा प्रस्तुत नही कर सकेगा। सामूहिक सचरण का अधिकाधिक सदुपयोग तभी हो सकेगा जब वह शक्ति-निर्मम तथा पदभ्रान्त न बनकर सस्कृत तथा उदार बने और उचित मानवीय साधनो के प्रयोग द्वारा अपने को प्रतिष्ठित करने का प्रयास करे ।"

पत की यह जीवनी हैपने आप मे, अपने लक्ष्य मे, पूर्ण है। इतनी सक्षिप्त सारगर्भित जीवनी विरली ही मिलेगी । किंतु 'आत्म' और 'पर' मे लौह-रेखा खीचनेवालो को यह लगता है कि पत का अपने 'आत्म' के प्रति "दृष्टिकोण अत्यधिक उदार तथा मुखर है ।" 'आत्म' के प्रति उदार दृष्टिकोण तभी कीचड मे धँसता है जब वह हैह-केन्द्रित हो जाता है । अन्यथा 'आत्म'-विश्लेषण विकास के मार्ग को प्रशस्त करता है, तथा अपने अतर्निहित कवि या व्यक्ति को जानना बिना उचित अभ्यास और कठोर नियत्रण के सभव भी नही है ।[1] 'पर' का विश्लेषण जितना ही सरल और स्पष्ट होता है, सच्चा आत्म-विश्लेषण उतना ही जटिल और सूक्ष्म होता है । पत का अपना आत्म-विश्लेषण, आत्म-सस्मरण एव चेतना का विकास हैपने अनुरूप भाषा को अपनाए है। इसकी भाषा स्निग्ध, नैसर्गिक और सश्लिष्ट है ।

● ●

---

१. सूर्यप्रसाद दीक्षित : 'पंत जी का गद्य' पृ० ९० तथा ९६ तथा डा० दशरथ ओझा : 'समीक्षा शास्त्र' पृ० २०२

१७

वादों का विश्व

छायावाद का सघर्ष ब्रजभाषा द्विवेदी युग

●

पत-काव्य का उदात्त लक्ष्य कगारो को तोडता हुआ, मार्ग के रोडो से तटस्थ, अपनी स्वाभाविक गति से आगे बढता गया। उसकी अविच्छिन्न गति मे कही कोई रुकावट नही मिलती—अपने आतरिक स्वभाव के अनुरूप वह वरणीय एव मानवोचित तथ्यो का अपने भीतर समावेश करता हुआ प्रगति के पथ को अपनाता है। पत का जीवन और काव्य एक दूसरे से घुलमिल कर, लक्ष्य प्राप्ति की आशा सँजोए, सदैव सघर्षरत रहे है। सघर्ष, आतरिक और बाह्य, दोनो प्रकार का है। सत्य को समझना, उसे आत्मसात् करना और युग के अनुरूप अभिव्यक्ति देना एव जीवन को उसकी सपूर्णता मे जीना, जीवन से जूझना है। और यह विकास के लिए वाछनीय है, जीवन की गत्यात्मकता का चिह्न है।

पत के जीवन के इस सघर्ष और विकास को आलोचको की पर्याप्त अनुकपा मिली। उन्हे पत काव्य प्रभावो का सग्रथन लगा—निजत्वशून्य ! जब जो अड़ आया उसमे वह बह गए। शेली, कीट्स, वर्डसवर्थ, कालिदास, विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ, मार्क्स, गाधी, उपनिषद, श्री अरविन्द,—और भी न जाने कितने असख्य सिद्धात और व्यक्तित्व हैं जिनका पत पर प्रभाव स्वीकार करने मे आलोचक या पाठक को तनिक भी सदेह नही हो सकता क्यो कि पत ने स्वय ही कहा है कि मैं इनसे प्रभावित हुआ हूँ। प्रभाव का अन्य अर्थ ही क्या हो सकता है अतिरिक्त इसके कि यह दूसरे का अनुकरण है, अधानुकरण ! एक प्रतिभाशाली व्यक्तित्व जब दूसरे के प्रति श्रद्धा व्यक्त करता है, उसकी बातो मे गुरुत्व देखता है, उसके सिद्धात के कुछ तथ्यो को महत्व देता है तो यह निःसदेह 'प्रभावित होना' नही माना जाएगा। और न 'प्रभावित होने' का

यही अर्थ हो सकता है कि अपने विचारो और सिद्धातो एव अपने अतर-स्वभाव के अनुरूप दूसरे के विचार और दर्शन को पाकर वे प्रसन्नता व्यक्त करते है। स्पष्ट ही जब पत प्रभावित होने की बात करते है, अपने आदर्श को आवश्यकताओ एव युगानुरूप अभिव्यक्ति देते है तो उनके काव्य—चरण असबद्ध इकाइयो मे विभाजित हो जाते है। सच भी है कहाँ गाधीवाद, कहाँ मार्क्सवाद दोनो मे किसी प्रकार का मेल हो ही कैसे सकता है ? जड और चेतन, देह और मन मे किसी ने सगति देखी भी है कि आज पत देखने लगे है ? पत का काव्य इसी अर्थ मे रीढहीन है, सगति एव स्थायित्वशून्य है। सिद्धातप्रियता, किसी 'वाद' या 'दल' के प्रति प्रतिबद्धता उनके काव्य मे ढूँढे नही मिलेगी।

वे कहते .
मै भाव नही, केवल प्रभाव हूँ,

सच यह :
मैं केवल स्वभाव हुँ ।

वे कहते .
मैंने प्रकाश को ग्रहण किया
इससे उससे, ...
जिससे तिससे,
किससे किससे,
.. .
अधिक क्या कहूँ ?-सत्य गूढ !
पर, सबसे भले विमूढ ! (वाणी-नम्र अवज्ञा)

यदि सचमुच ही आलोचको के अर्थ मे पत विभिन्न व्यक्तियो, विभिन्न वादो से प्रभावित (मात्र अनुकरण के स्तर पर) ह ते रहे हैं तो उनके काव्य मे जो अविच्छिन्नता एव एकसूत्रता मिलती है वह वीणा के टूटे तारो मे बिखर जाती और ये तार किसी विशिष्ट वीणा के तार नही कहलाए जा सकते। स्वय पत का व्यक्तित्व इन असख्य टेढ़े-मेढे ऊँच-नीच दचको को झेलकर कभी पृथ्वी पर पैर टिका कर, कभी आकाशीय उडान भरकर विभिन्न मतों का एक ऐसा सघात मात्र होता जो पृथ्वी और आकाश एव सपूर्ण जीवन

का आलिंगन करने मे असमर्थ होता। किंतु पत के काव्य और व्यक्तित्व मे जो दृढता, विश्वास, सगति और गहनता मिलती है उसका निराकरण करना उतना ही असभव है जितना कि गगा के पानी को मृगजल कहना। जो कोई भी पत-काव्य का अध्ययन उन्मुक्त हृदय से एव पूर्वग्रह और प्रतिबद्धता के चश्मे उतारकर करेगा, वह देखेगा कि 'बूढा चाँद' 'वीणा' की ही प्रकृति प्रेमी चपल बालिका है, अविराम वन (हार) की सुफला है, 'लोकायतन' का व्यापक सत्य है, 'गीत हस' की उडान तथा 'सत्यकाम' की सिद्धि है। पत के व्यक्तित्व एव काव्य का विकास सुदरम् से शिवम्, शिवम् से सत्यम् की ओर हुआ है। इस विकास मे कही कोई बाधा नही दीखती, प्राजलता, गहन विश्वास और आत्मानुभूति की सच्चाई के साथ वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है।

इस विकास की गति को कोई नही रोक पाया—न ब्रजभाषियो की सदेह दृष्टि, न अग्रजो (द्विवेदीयुग के साहित्यकारो) की कटूक्ति, न प्रगतिवादी-प्रयोगवादी खड्ग-हस्त और न उस नई पीढी की आलोचना जो अपनी कुठा मे स्वय ही जीना चाहती है।

ब्रजभाषा : खड़ी बोली

सौलहवी शताब्दी मे ब्रजभाषा काव्यभाषा के रूप मे प्रतिष्ठित हो गई थी और बीसवी शताब्दी के जन्म तक वह अपने आधिपत्य को स्थापित किए रही।[1] वास्तव मे सूरदास एव कृष्णभक्त कवियो की रचनाओ ने ब्रजभाषा को हिन्दी प्रदेश की एक मुख्य साहित्यिक भाषा का स्तर प्रदान कर दिया था। तबसे बीसवी शती के प्रारभ तक उसने अपनी साहित्यिक परम्परा को सुरक्षित रखा। किंतु गद्य के क्षेत्र मे, उन्नीसवी शती के अत तक, खडी बोली को साहित्यिक भाषा की मान्यता मिल गई थी। नि:सदेह खडी बोली को साहित्यिक रूप देने का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चद्र (१८५०-१८८५) को देना

---

१. "ब्रजभाषा-काव्य की परंपरा गुजरात से लेकर बिहार तक और कुमाऊँ-गढ़वाल से लेकर दक्षिण भारत की सीमा तक बराबर चलती आई है। काश्मीर के किसी ग्राम के रहने वाले ब्रजभाषा के एक कवि का परिचय हमें जबू में किसी महाशय ने दिया था' ' ''गढ़वाल के प्रसिद्ध चित्रकार मोलाराम (सवत् १८१७-१८६०) ब्रजभाषा के बहुत अच्छे कवि थे।" रामचंद्र शुक्लः हिन्दी साहित्य का इतिहास। इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग पृ० ६६६-६६७ संवत् १६६७

होगा। "भाषा का निखरा हुआ शिष्टसामान्य रूप भारतेंदु की कला के साथ ही प्रकट हुआ' उन्होने साहित्य को नवीन मार्ग दिखलाया और उसे वे शिक्षित जनता के साहचर्य मे ले आए। देश काल के अनुकूल साहित्य-निर्माण का कोई विस्तृत प्रयत्न तब तक नही हुआ था। भारतेन्दु ने उस साहित्य को दूसरी ओर मोड कर हमारे जीवन के साथ फिर से लगा दिया । उर्दू के कारण अब तक हिंदी-गद्य भाषा का स्वरूप ही झझट मे पडा हुआ था। राजा शिवप्रसाद तथा लक्ष्मण सिंह ने जो कुछ गद्य लिखा था वह एक प्रकार से प्रस्ताव रूप मे था। जब भारतेन्दु अपनी मँजी हुई परिष्कृत भाषा सामने लाए तब हिंदी बोलने वाली जनता को गद्य के लिए खडी बोली का प्रकृत साहित्यिक रूप मिल गया और भाषा के स्वरूप का प्रश्न नही रह गया। भारतेंदु के प्रभाव से उनके अल्प जीवन-काल के बीच ही लेखको का एक खासा मण्डल तैयार हो गया जिसके भीतर प० प्रतापनारायण मिश्र, उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी, ठाकुर जगमोहन सिंह, प० बालकृष्ण भट्ट मुख्य रूप से गिने जाते है।"[1]

---

१. वही पृ० ५३४-५३६

"भारतेन्दु का प्रभाव भाषा के प्रचार-क्षेत्र मे बहुत व्यापक रहा। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत मे भाषा के संबंध में लोकमत को सचेत करने के लिए जिस प्रकार के उद्योग हुए वह हिंदी भाषा के इतिहास में एकदम नए हैं। गौरीदत्त और अयोध्या सिंह खत्री जैसे परवर्ती काल के उत्साही प्रचारको को भी भारतेन्दु के 'निज भाषा उन्नति' का मत्र ही प्रधान रूप से प्रेरणा दे रहा था। ' ' भारतेंदु की प्रेरणा ने हिंदी भाषा के आंदोलन को वास्तविक जन-आंदोलन का रूप दे दिया।

हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य पृ० ४०१-४०२

तथा देखिये "इतिहास इस बात का साक्षी है कि हिन्दी-साहित्य कालांतर में पुरातन का मोह छोड़ कर नवीनता की ओर अग्रसर हुआ है। यह क्रम यद्यपि खड़ी बोली गद्य के माध्यम द्वारा भारतेन्दु के जन्म (१८५० ई०) से पहले प्रारम्भ हो गया था, किंतु उसका सर्वांगीण उदय भारतेन्दु-काल मे हुआ।"

लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय २० वीं शताब्दी हिंदी साहित्यः नए संदर्भ पृ० ६ साहित्य भवन प्रा० लि० इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, पृ० १९६६

हिन्दी भाषा के प्रचार के लिए भारतेन्दु ने कई नगरो मे जाकर भाषण दिए, हिंदी भाषा और नागरी अक्षरो की उपयोगिता के माध्यम से जनता को देश प्रेम का मत्र दिया।[1]

> निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल
> बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥

किंतु काव्य के क्षेत्र मे खडी बोली नक्कारखाने मे तूती की आवाज ही थी। "कविता के मामले मे, चाहे प्रयाग हो चाहे काशी, लोगो की सुनिश्चित धारणा थी कि कविता के लिए ब्रजभाषा वनी है और ब्रजभाषा के लिए कविता। खडी बोली के गद्य साहित्य के विकास मे प्रयाग बहुत उत्साह के साथ काम कर रहा था, लेकिन खडी बोली मे कविता असम्भव ! स्वत. भारतेन्दु का विचार था कि खडी बोली मे कविता नही लिखी जा सकती।"[2]

बीसवी शती का आरभ खडी बोली काव्य और ब्रजभाषा काव्य के सघर्ष का प्रारभ था जिसमे साहित्य प्रेमियो को दोनो की शक्ति और क्षमता को समझना था। "खडी बोली के समर्थक कम थे, उनके पास प्रमाण भी कम थे, दलीले भी कम थी, अखबार भी कम थे, सस्थाएँ और गोष्ठियाँ भी कम थी—सिर्फ यह कि वे बेचारे सही थे और समझ रहे थे कि गद्य और पद्य की भाषा अलग नही होनी चाहिए—यह अस्वाभाविक है। ससार के किसी भी सभ्य देश मे ऐसा नही होता। श्रीधर पाठक अपने सिद्धात पर अटल रहे। अत मे वे विजयी हुए। श्रीधर पाठक की विजय के बाद भी ब्रजभाषा

---

१. भारतेन्दु से प्रेरणा ग्रहण कर प्रयाग मे पं० मदन मोहन मालवीय ने हिंदी प्रचार का नेतृत्व किया और उन्हीं की परम्परा में बाद को राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन ने इस नेतृत्व का कार्य सम्हाला। कालाकॉकर से हिंदी का सर्वप्रथम दैनिक पत्र 'हिन्दोस्थान' मालवीय जी की प्रेरणा से ही निकला जिसका सपादन भी कुछ दिनो तक उन्होने ही किया। देखिए 'सुमित्रानंदन पंत : जीवन और साहित्य' प्रथम खण्ड, अध्याय १५ पृ० २५१-२५३,

२ धर्मवीर भारती। भारती भवन, पुस्तक का सत्तर वर्षीय जयंती ग्रंथ पृ० ५२

शिविर अपना दमखम बनाए रहा। उस समय ब्रजभाषा के काव्य प्रेमियो का एक बडा सशक्त सगठन था 'रसिक मडल'।"[1]

रमाशकर शुक्ल 'रसाल' जी के अनुसार बीसवी शती के प्रारभ मे ब्रजभाषा काव्य की गौरवपूर्ण परम्परा वर्तमान थी। "ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि राजा द्विजदेव (१८२३–१८७२) अयोध्या के राजा थे जिनके दौहित्र के रत्नाकर जी 'प्राइवेट सेक्रेटरी' थे। रीवा, टीकमगढ और जयपुर के दरबारो मे ब्रजभाषा के ही कवि थे। 'मर्यादा, 'मनोरमा' आदि पत्रिकाओ मे ब्रजभाषा की कविताएँ छपती थी। लाला भगवानदीन, अयोध्यासिह उपाध्याय ब्रजभाषा के ही कवि थे। कानपुर मे 'सुकवि समाज' ब्रजभाषा के कवियो का समाज था जिसने अपनी 'सुकवि' नामक पत्रिका निकाली तथा जिसके सपादक सनेही जी थे। प्रतापनारायण मिश्र भी ब्रजभाषा के कवि तथा कानपुर से प्रकाशित 'ब्राह्मण' पत्र के सपादक थे। चित्रकूट से भी एक पत्रिका निकलती थी। रामचरित उपाध्याय ब्रजभाषा के ही कवि थे। ब्रजभाषा की इस व्यापक पृष्ठभूमि एव सुदृढ परम्परा के अनुरूप ही मैंने प्रयाग मे १९२६ ई० के बाद 'रसिक मण्डल' की स्थापना की। बडे-बडे कवि 'रसिक मण्डल' के सदस्य थे—अयोध्यासिह उपाध्याय, कृष्णकात मालवीय, डॉ० कृष्णनाथ झा, पद्मकात जी, कज जी, रसिक जी, वनपति जी, किंकर जी, रामप्रताप त्रिपाठी और सरस जी। बालकृष्ण राव ने भी 'रसिक मडल' को ब्रजभाषा के अपने सुदर कवित्त और सवैयो से मुग्ध किया है। १९३२-१९३३ ई० तक 'रसिक मण्डल' की खूब प्रतिष्ठा रही। प्रत्येक पूर्णिमा के दिन इसकी बैठक होती थी। सन् १९३१-३२ के बीच इसने दो विशाल कवि-सम्मेलन किए। पहिला सवैया सम्मेलन हुआ, इसमे ब्रजभाषा के ७८ कवियो ने भाग लिया और केवल सवैया सुनाया। दूसरा सम्मेलन गगानाथ झा और बाद को रत्नाकर जी की अध्यक्षता मे हुआ जिसमे ८४-८५ ब्रजभाषा के कवियो ने भाग लिया। महारानी अयोध्या ने इस सम्मेलन के लिए ५०००) रु० दिए थे जिस कारण कवियों का उचित सत्कार करने मे सुविधा हुई। ऐसा सफल कवि-सम्मेलन फिर इलाहाबाद मे कभी नही हुआ। उस समय 'रसिक मण्डल' की इतनी प्रतिष्ठा थी कि जिस कवि-सम्मेलन मे इसके सदस्य आमन्त्रित नही किए जाते थे वह असफल माना जाता था।

---

१. वही पृ० ५३ तथा 'सुमित्रानदन पंत : 'जीवन और साहित्य', प्रथम खण्ड, अध्याय ११ पृ० १८२-१८३

रत्नाकर जी का 'उद्धव शतक' रसिक मण्डल ने ही प्रकाशित करवाया था 'रसिक मण्डल' अभी वर्तमान है किंतु यह केवल प्रकाशन का कार्य करता है।"[1]

भारतेन्दु के निधन के साथ ही खडी बोली पद्य[2] की ओर भी अग्रसर होने लगी और उसमे कविता लिखने एव गद्य और पद्य की भाषा को एक ही मानने की आवश्यकता[3] मूर्त होने लगी, एक छोटा-सा आदोलन खडी बोली

---

१. भेंटवार्ता, १ जून १९७०
"यद्यपि खड़ी बोली का चलन हो जाने से अब ब्रजभाषा की रचनाएँ प्रकाशित बहुत कम होती हैं पर अभी देश मे न जाने कितने कवि नगरों और ग्रामो मे बराबर ब्रज-वाणी की रसधारा बहाते चल रहे हैं। जब कही किसी स्थान पर कवि-सम्मेलन होता है, तब न जाने कितने अज्ञात कवि आकर अपनी रचनाओ से लोगो को तृप्त कर जाते है। रत्नाकर जी की 'उद्धव-शतक' ऐसी उत्कृष्ट रचनाएँ इस तृतीय उत्थान (सं० १९७५ से) मे ही निकली थी। सर्गबद्ध प्रबंध काव्यो मे हमारा बुद्धचरित संवत् १९७९ में प्रकाशित हुआ । श्री वियोगी हरि जी की 'वीरसतसई' पर मंगला-प्रसाद पारितोषिक मिले बहुत दिन नहीं हुए। देव-पुरस्कार से पुरस्कृत श्री दुलारेलाल जी भार्गव के दोहे बिहारी के रास्ते में चल ही रहे हैं। अयोध्या के श्री रामनाथ ज्योतिषी को 'रामचंद्रोदय' काव्य के लिए देव-पुरस्कार, थोडे ही दिन हुए, मिला है। मेवाड के श्री केसरीसिंह बारहठ का 'प्रताप चरित्र' वीररस का एक बहुत उत्कृष्ट काव्य है जो संवत् १९९२ मे प्रकाशित हुआ है। पडित गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' की सरस कविताओं की धूम कवि-सम्मेलनो में बराबर रहा करती है। प्रसिद्ध कलाविद् राय कृष्णदास जी का 'व्रजरस' इसी तृतीयोत्थान के भीतर प्रकाशित हुआ है। इधर श्री उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश' जी की 'व्रज-भारती' मे व्रज-भाषा बिलकुल नई सज-धज के साथ दिखाई पड़ी है।"
रामचद्र शुक्ल : 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' पृ० ७९५

२. "खड़ी बोली मे पद्य-रचना एकदम कोई नई बात न थी। नामदेव और कबीर की रचना में हम खड़ी बोली का पूरा स्वरूप दिखा आए हैं और यह सूचित कर चुके है कि उसका व्यवहार अधिकतर सधुक्कड़ी भाषा के भीतर हुआ करता था। शिष्ट साहित्य के भीतर परंपरागत काव्य-भाषा व्रजभाषा का ही चलन रहा।" वही पृ० ७१९

३. देखिए : 'सुमित्रानंदन पंत : जीवन और साहित्य', अध्याय ११

को काव्यभाषा मानने के रूप मे जन्म लेने लगा। श्रीधर पाठक ने 'एकात-वासी' (१८८६ ई०) खडी बोली पद्य मे निकाला और इसके साथ ही मुजफ्फर-पुर के बाबू अयोध्यासिंह खत्री ने अपनी पुस्तक 'खडी बोली आदोलन' (१८८८ ई०) द्वारा प्रमाणित करना चाहा कि खडी बोली ही काव्य भाषा के योग्य है। इसका विरोध भी स्पष्ट था। प्रतापनारायण मिश्र का कहना था—है कोई माई का लाल ऐमा जो ऐसी (सुदर) रचना ब्रजभाषा को छोडकर किसी अन्य भाषा मे कर दे। ब्रजभाषा का सबसे कटु विरोध द्विवेदी जी ने किया। वे अब स्वय खडी बोली मे कविता करने लगे थे[1] और सरस्वती के सपादक के रूप मे तो एक प्रकार से वे व्रत ले चुके थे कि सरस्वती मे ब्रजभाषा का कोई छद नही छपेगा।

खडी बोली वालो ने तो एक स्वर से ब्रजभाषा का विरोध किया ही, ब्रजभाषा के भी कई कवि खडी बोली की ओर झुकने लगे थे। द्विवेदी जी के अतिरिक्त प्रारभ मे प्रसाद जी भी ब्रजभाषा मे कविता करते थे, और फिर वे, खडी बोली की ओर झुक गए। बालकृष्ण राव खडीबोली के प्रेमी हो गए। सनेही, नाथूराम जी, हितैषी, करुणेश जी आदि ब्रजभाषा के कवि थे किंतु अब समयानुरूप ब्रजभाषा और खडी बाली दोनो मे कविता करने लगे। उनका कहना था कि दोनो भाषाओ को मिला देना चाहिए। इनके विपरीत शुद्ध ब्रजभाषा का पक्ष रत्नाकर जी[2] और रसाल जी ने लिया। उन्होने सकल्प कर लिया था कि जो कुछ भी लिखेगे वह ब्रजभाषा मे ही लिखेगे तथा समस्यापूर्ति का ढग शृगारिक रहेगा। इसके विरुद्ध खडीबोली के लेखको ने ब्रजभाषा का सामूहिक विरोध किया। सहिष्णु ब्रजभाषा के प्रेमियो की भाँति उन्होने दोनो भाषाओ को मान्यता नही दी, केवल खडीबोली का झडा उठाना चाहा क्योकि उनका कहना था ब्रजभाषा काव्य मे नायक-नायिका भेद, ऋतु वर्णन, शृगार और चलती कविताओ के अतिरिक्त कुछ नही है। साथ ही ब्रजभाषा कवि-सम्मेलनों की कविताएँ समस्यापूर्ति की कविताएँ हैं।[3]

---

१ उन्होंने ब्रजभाषा में कविता करना छोड़ दिया था।

२. रत्नाकरजी ने हिंदी साहित्य सम्मेलन में सभापति के मंच से खड़ीबोली-काव्य की आलोचना की तथा अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने खड़ीबोली के कवियो की भर्त्सना की।

३. रसाल जी से भेंटवार्ता।

सहिष्णुता, असहिष्णुता दोनो ही शिवरो मे वर्तमान थी। निराला जी का बादल राग 'मतवाला' मे छपा तो लाला भगवानदीन ने कहा, 'यह केंचुआ छद' है। पत के 'उच्छ्वास' को व्यग्य मे 'बीसवी सदी का महाकाव्य' कहा गया। खडी बोली की आलोचना के अनुरूप ही निराला के विरुद्ध कहा गया—

कल्पना हरामजादी फटके न पास मेरे
पिंगल को पटकि पताल को पठाऊँ मै

बगला के ला के जूठे टुकडे कमाऊँ नाम
कवि कलिकाल का निराला कहलाऊँ मै ।

अथवा

हिंदी के आप हिमायती है बडे
आपको मानो सरस्वती ने जना

ब्रजभाषा और खडीबोली के उत्साही प्रेमी एक प्रकार से अखाडे मे उतर गए। रसाल जी और रामनरेश त्रिपाठी एक दूसरे से इतने क्षुब्ध हो गए कि ढाई वर्ष तक एक दूसरे के प्रति अपरिचित हो गए और मैथिलीशरण गुप्त[1] तथा रसाल जी सात वर्ष तक एक दूसरे से नही बोले। और भी न जाने कितनो की पारस्परिक बोलचाल दिनो तक बद रही। किंतु यह सब मतभेद हार्दिक नही थे, सैद्धातिक मात्र थे। अत आवेश ठडा होने पर पुरानी मैत्री अधिक परिपक्व हो गई। पत ने अपनी भूमिका द्वारा ब्रजभाषा प्रेमियो को असतुष्ट अवश्य कर दिया किंतु साथ ही उनके साथ मैत्री-भाव मे कोई अतर नही आने दिया।

ब्रजभाषा की हानि, यदि हानि मानी ही जाय तो, विशेषकर इलाहाबाद मे सबसे अधिक द्विवेदी जी द्वारा सपादित सरस्वती और 'पल्लव' की भूमिका एव उसकी रचनाओ के माध्यम से हुई है। ब्रजभाषा काव्य कालचक्र मे पिसकर धीरे-धीरे अपनी लोकप्रियता एव तेजस्विता खो रहा था। ब्रजभाषा के साथ, अप्रत्यक्ष रूप से, खडीबोली का समातर विकास ब्रजभाषा की प्रतिष्ठा के लिए घातक हो गया। साथ ही ब्रजभाषा ने जिस रीतिकालीन परम्परा से गठबधन

---

१. रसाल जी ने गुप्त काव्य की आलोचना की थी।

कर लिया था उससे लोग ऊब चुके थे ।[1] अलकारो तथा रसो के चमत्कार को समझाना ही मानो कविता का धर्म हो गया, परिमाण स्वरूप कविता छदो की विशिष्ट परिपाटी मे बदी हो गई थी । भारतेन्दु तथा उनके मित्रो और अनुयायियो ने कविता को इस बदीगृह से मुक्त करने का प्रयास किया, नए नए विषयो को उन्होने काव्य मे स्थान दिया किंतु उनकी भाषा ब्रज ही बनी रही ।

पत का जन्म एक ऐसी शताब्दी मे हुआ जिसमे खडी बोली और ब्रजभाषा का झगडा अपने चरमोत्कर्ष पर था । खडी बोली काव्य युवकोचित आवेश के साथ आगे बढ़ रहा था, सामाजिक-सास्कृतिक परिस्थितियाँ उसके अनुरूप थीं, साहित्य की चेतना करवट लेने को मचल रही थी । ब्रजभाषा अपनी परिपूर्णता को प्राप्त कर चुकी थी, उसके पास युग को देने के लिए नए तथ्यो का नितात अभाव था, वह युग धर्म से वियुक्त हो गई थी । बीसवी शताब्दी भारतीय सास्कृतिक जागरण की शताब्दी के रूप मे उदय हुई । रूढि, परम्परा, रीतिबद्ध आदर्श, अलकार प्रियता की केचुल को झाड़कर वह क्षिप्रतापूर्वक नयी चेतना, नए बोध एव स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति को प्रश्रय दे रही थी । प्रकृति के स्वरूप निरूपण मे स्वच्छन्दता के सर्वप्रथम दर्शन श्रीधर पाठक के काव्य मे मिलते हैं और इसके साथ ही महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रभाव के कारण खडी बोली के पद्य का वह रूप मिलता है जिसके निर्माता द्विवेदी जी स्वय रहे है तथा जिसने खडी बोली के भण्डार को इतिवृत्तात्मक पद्यो से भरा है, "द्विवेदी युग के आविर्भाव के समय नवयुग के सस्पर्श से हिन्दी के कवियो ने अपनी परिपाटी-विहित और रूढिग्रस्त कविता छोडकर दुनिया नई आँखो से देखनी शुरु कर दी थी ।"[2]

पत ने ब्रजभाषा के पक्षधरो का तीखा विरोध 'पल्लव' की भूमिका[3] के

---

१ "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी प्रखर प्रतिभा द्वारा हिंदी साहित्य में विविधता और नवीनता एवं आधुनिकता को जन्म दिया ।.... शिक्षित और सुहृद समाज को ब्रजभाषा साहित्य का शृंगारपूर्ण रीतिबद्ध आदर्श खटकने लगा था । कवियों ने अब देशभक्ति, लोकहित, समाज-सुधार, मातृभाषोद्धार, स्वतंत्रता आदि की वाणी सुनाई ।"

लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : 'बीसवीं शताब्दी हिंदी साहित्य नए संदर्भ' पृ० १२

२. वही पृष्ठ ३८

३. "पं० श्रीधर पाठक के समय जो खड़ीबोली-विरोध का झण्डा प्रताप नारायण मिश्र तथा अन्य ब्रजभाषा प्रेमियों ने उठाया था 'रसाल' जी ने

माध्यम से किया।[1] वैसे इसके पूर्व ही सन् १६१६ मे, उस काल मे, जबकि 'रसिक मडल' की उपस्थिति के बिना कवि-सम्मेलनो को मान्यता नही मिलती थी पत न केवल कवि रूप मे प्रतिष्ठित हो गए थे वरन् जिस कवि सम्मेलन मे वे नही रहते थे वह फीका माना जाता था। द्विवेदी जी एव 'सरस्वती' ने खडी बोली काव्य को मान्यता प्रदान कर दी थी, 'सरस्वती' एक सशक्त माध्यम थी, ब्रजभाषा की मान्यता को नकारने वाली पत्रिका थी। किंतु साथ ही समातर मे 'रसिक मडल' एव ब्रजभाषा प्रेमी सम्पादक ब्रजभाषा की प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखने मे सतत प्रयत्नशील थे। 'पल्लव' की भूमिका ने न केवल खडी बोली की काव्य क्षमता को सदैव के लिए स्थापित कर दिया वरन् उसने एक प्रकार से ब्रजभाषा काव्य के अवसान की भी घोषणा कर दी। नि'सदेह, ब्रजभाषा की सोलहवी शताब्दी से पडी गहरी नीव को गहन विश्वास तथा तर्क सम्मत तीखे प्रहारो द्वारा हिला देना साहस का ही काम था। क्योकि इसने खडी बोली काव्य तथा ब्रजभाषा काव्य के सिर फोड सघर्ष को शात कर दिया था। श्रीधर पाठक तथा द्विवेदी जी की साधना मानो 'पल्लव' की भूमिका के माध्यम से अपनी परिपूर्णता को प्राप्त हो गई।

द्विवेदीयुगीन काव्य : छायावाद

साहित्य मे बीसवी शती का प्रारभ खडी बोली काव्य का स्फुरण काल है। खडी बोली काव्य के अतर्गत, इस शती के प्रारभिक अठारह-बीस वर्ष तक, द्विवेदी युग इतिवृत्तात्मक, उपदेशपरक, नैतिक तथा स्थूल आदर्शवादी रचनाओ

अन्त तक उस झण्डे को झुकने नहीं दिया। ''' 'ब्रजभाषा के पक्षधरों द्वारा खड़ी बोड़ी का यह विरोध कितना तीखा था इसका आभास इसी से लगता है कि श्री सुमित्रानंदन पत ने आगे चल कर जब 'पल्लव' की भूमिका लिखी तब उन्होंने अपने मृदुल सुकुमार ढ्ग से इन ब्रजभाषा के आचार्यो की बहुत कड़ी खबर ली। "बूडे सांपों को नचाने वाले मदारी" कह कर पंत जी ने इनकी भर्त्स्ना की है।"
धर्मवीर भारती : भारती भवन पुस्तकालय का 'सत्तर वर्षीय जयंती ग्रंथ' पृ० ५४

१. 'सुमित्रानंदन पंत', 'जीवन और साहित्य', प्रथम खण्ड, पृ० १७४-१६३ तथा लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : 'बीसवीं शताब्दी हिन्दी साहित्य : नए संदर्भ' पृ० ८६

का प्रतिनिधत्व करता रहा। इस युग की मुख्य प्रेरणा राष्ट्रीय और सास्कृतिक है। "गाधी जी के रूप मे एक महान् व्यक्तित्व भारतीय रगमच पर अवतरित हुआ । जलियानवाला बाग की दुर्घटना हुई और एक विराट् जन-आदोलन देश के एक छोर से दूसरे छोर तक उभर उठा। आहुतियाँ पडती गईं इस सर्वतोव्यापी सक्रिय राष्ट्रीयता का प्रभाव हमारे इस समय के साहित्य पर अनेक रूपो मे अनेक प्रकार से पडा। हम तो यहाँ तक कहना चाहेगे कि इस व्यापक राष्ट्रीय जागृति की हलचल मे ही हमारा यह साहित्य पनपा और फूला-फला है। इस अभूतपूर्व जागृति-केन्द्र से पृथक् रख कर हम अपने इस साहित्य को परख ही नही सकेगे। खेद और आश्चर्य की बात है कि हमारे कतिपय समीक्षको ने इस अत्यत सीधी और सच्ची बात को भी समझने की चेष्टा नही की कि हमारे इस युग के साहित्य की मुख्य प्रेरणा राष्ट्रीय और सास्कृतिक है। वस्तुत. इस युग के प्रारभ से ही एक नई चेतना साहित्य मे प्रवेश कर रही थी। " ये कवि और लेखक (सियारामशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, ठाकुर गोपालशरण सिह, गयाप्रसाद 'सनेही') राष्ट्रीय आदोलन के इतने सीधे प्रभाव मे थे कि उन्होने अपनी राष्ट्रीय भावनाओ को 'राजनीतिक या सामाजिक' आख्यानो की सीमा मे बाँध दिया।"[1]

द्विवेदी-युग का प्रारभ सन् १६०३ से माना जाता है अथवा महावीर प्रसाद द्विवेदी का 'सरस्वती' का सपादक होना ही द्विवेदी-युग का प्रारभ है। प्रारभ मे द्विवेदी जी ने स्वय ब्रजभाषा मे कविता की थी किंतु सरस्वती के सपादक के रूप मे उन्होने खडी बोली को ही मान्यता दी एव उसी की रचनाएँ मुख्यतया प्रकाशित की। परिणामस्वरूप अनेक लोग खडी बोली मे कविता करने लगे। द्विवेदी जी इन कविताओ का सशोधन करके प्रकाशित कर देते

---

१. नन्ददुलारे वाजपेयी, 'आधुनिक साहित्य' भूमिका पृ० २१-२३ भारती भण्डार, लीडर प्रेस इलाहाबाद, प्रथम सस्करण।
तथा देखिये "द्विवेदी युग की सांस्कृतिक चेतना का मूलाधार जातीय गौरव तथा महान् अतीत की भावना का उदय है।" "उन्मत्त साम्राज्यवाद की दमनकारी और प्रतिगामी नीति के साथ-साथ भारतवासियो में आत्म-गौरव और आत्म सम्मान की भावना भी अनुदिन प्रबल होती जा रही थी।" लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : '२०वीं शताब्दी हिन्दी साहित्य, नए संदर्भ' पृ० ४१ तथा ५२

थे। इसमे सदेह नही कि द्विवेदी जी से प्रेरणा पाकर अनेक प्रतिभाएँ साहित्यिक क्षितिज मे सूरज और चाँद की भाँति चमकी—मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, गोपालशरण सिह, गयाप्रसाद 'सनेही', अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध', श्रीधरपाठक[1], माखनलाल चतुर्वेदी, मुकुटधर पाडेय, लोचनप्रसाद पाडेय आदि द्विवेदी-युग की विशेषता से सम्पन्न कवि थे। किंतु द्विवेदी-युग अपनी ही सीमा से बद्ध भी था। द्विवेदी जी की मान्यता थी कि "गद्य और पद्य का पदविन्यास एक ही प्रकार का होना चाहिए" अथवा कविता की भाषा और बोलचाल की भाषा मे कोई भेद नही होना चाहिए। द्विवेदी-मापदण्ड से प्रेरित कवियो की भाषा, द्विवेदी जी की सकुचित मान्यता के कारण, इतनी अधिक गद्यवत् हो गई कि वे सहज ही इतिवृत्तात्मक काव्य कहलाई जाने लगी। इतिवृत्तात्मक काव्य मे "वह लाक्षणिकता, वह चित्रमयी भावना और वह वक्रता बहुत कम आ पाई जो रस-सचार की गति को तीव्र और मन को आकर्षित करती है।" "त्याग, वीरता, उदारता, सहिष्णुता इत्यादि के अनेक पौराणिक और ऐतिहासिक प्रसग पद्यबद्ध हुए जिनके बीच-बीच मे जन्मभूमि प्रेम, स्वजाति गौरव, आत्मसम्मान की व्यजना करने वाले जोशीले भाषण रखे गए। जीवन की गूढ, मार्मिक या रमणीय परिस्थितियाँ झलकाने के लिए नूतन कथा-प्रसगो की कल्पना या उद्भावना की प्रवृत्ति नही दिखाई पडती। प्रकृति वर्णन की ओर हमारा काव्य कुछ अधिक अग्रसर हुआ पर प्राय. वही तक रहा जहाँ तक उसका सबध मनुष्य के सुख-सौदर्य की भावना से है।"[2]

सन् १६०३ से १६२५ का काल हिंदी प्रचार और प्रसार का काल था। महावीर प्रसाद द्विवेदी एव 'सरस्वती' ने खडी बोली एव हिंदी गद्य-पद्य का प्रचार और परिष्कार किया। द्विवेदी जी की कुशल लेखनी ने हिंदी के व्याकरण, प्रयोगो, शब्द विधान, अभिव्यजनात्मक शक्ति के स्वरूप को निश्चित और परिवर्धित किया। द्विवेदी-युग की नैतिक इतिवृत्तात्मक रचनाओ ने, सन् १६१८ के आसपास, अपनी परिपूर्णता मे उस 'वाद' को जन्म दे दिया जिसे

१ श्रीधर पाठक तथा आयोध्यासिह उपाध्याय पहिले ब्रजभाषा में कविता करते थे। बाद को, खड़ी बोली में करने लगे। खड़ीबोली मे ही इन लोगों ने कीर्ति प्राप्त की।

२. रामचद्र शुक्ल : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', इडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग (१६६७) पृ० ७३८ तथा ७५१-७५२

उसके तात्कालिक आलोचको ने व्यग्यात्मक वाणी मे 'छायावाद' कहा। द्विवेदी युगीन उपदेशात्मक, राष्ट्रीय चेतना सपन्न, शील और चरित्र के उद्‌बोधक पौराणिक और ऐतिहासिक चरित्र नायको के आदर्श को प्रस्तुत करने वाली वर्णनात्मक, नीरस, स्थूल सुधारवादी रचनाओ तथा रीतिकालीन अलकार-प्रियता, पाण्डित्य प्रदर्शन, छद और भाषा की कोशबद्धता के विरुद्ध छायावादी कवियो का कलाकार-हृदय और चेतना विद्रोह कर उठी। ये सौंदर्य चेता मानव आदर्श से अनुप्राणित कलाकार भावो के अनुरूप छद, लय, ध्वनि, शब्द और अलकारो को एव भाव तथा भाषा के ऐक्य को अनिवार्य मानने लगे। रीतिकालीन अलकारो की रूढि एव चमत्कारप्रियता अथवा पाडित्य प्रदर्शन और एकस्वरता से ऊबकर इन्होने नए उपमानो, नए रूपको, नए प्रतीको, नए भाव बोधो के इन्द्रधनुष बिछा दिए जो सौंदर्य बोध के द्वारा हृदय को सहज ही छू देते। रीतिकालीन परम्परा मे बाह्य वर्णन की प्रधानता थी। अब आतरिक अनुभूति ने बाह्य वर्णन को हार्दिक स्पर्श से भाव-भीना बना दिया। व्यक्ति स्वातत्र्य के आकाक्षी ये युवक भाव और कल्पना की तूलिका से पात्रो के सहज स्वभाव एव उनके मनोवैज्ञानिक चित्रण की ओर झुके। परम्परा ने नवीन भावना, नीरस उपदेशो ने मानवीय सहानुभूति, बाह्य जगत् के चित्रण ने आतरिक अनुभूति, रीतिकालीन वासना मे लिपटी उद्दीपन मात्र नारी ने स्वाधीन सवेदनशील व्यक्तित्व, इतिवृत्तात्मकता ने चित्रमत्ता, अभिधा ने लक्षणा और व्यजना को स्थान दे दिया। छायावादी व्यजनात्मक शैली ने ध्वन्यात्मकता, गीतात्मकता, लाक्षणिक वक्रता तथा प्रतीकात्मकता को सहज ही अपना लिया। यह भावुकता, सवेदना और सौंदर्य-प्रधान कविता थी जिसने सस्कार, रूढिवादिता परम्परा एव मध्यकालीन सीमाओ के कगारो को तोड उन्मुक्त प्रवाह को अपनाकर प्रकृति के अक्षय भण्डार से काव्य को आप्लावित कर दिया। छायावादी भावना मानवजीवन और जगत् के सुख-दु ख, उत्थान-पतन, विकास-ह्रास के साथ तादात्म्य ग्रहण कर सचरण करने लगी। द्विवेदीयुगीन वर्णन वैचित्र्य की गरिमा से युक्त अवश्य था। किंतु स्थिति, वस्तु और व्यक्ति के केन्द्रीय सत्य को भूलकर वह वर्णन मात्र मे रम जाता था। उसने सौदर्य मे, प्रकृति-सौदर्य मे अन्तर्निहित सत्य को जानने का प्रयास नही किया। छायावाद वर्णन-वैचित्र्य के साथ ही सत्य और सौंदर्य की चेतना के अतर मे प्रवेश करता है। वह सौदर्य को देख कर मात्र विस्मयाभिभूत नही हो जाता, वह उसका स्वरूप जानना चाहता है,

उसकी आत्मा को पहचानता चाहता है। छायावादी विस्मय अबोधावस्था का विस्मय या कौतूहल नही है; वह गूढ जिज्ञासा है जो वास्तविक समाधान की खोज मे सोदर्य के अतरतम सत्य एव सत्ता से साक्षात्कार करना चाहती है।

छायावाद की रूढि एव स्थूल बधन से मुक्त होने की चेष्टा को कुछ विचारको ने एक विशिष्ट सीमा तक स्वच्छदतावाद (रोमेन्टिसिज्म) का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव मान लिया। किंतु छायावाद मात्र व्यक्ति-स्वातत्र्य एव सामाजिक रूढियो, धार्मिक परम्पराओ और साहित्यिक बधनो के प्रति विद्रोह-विस्मय की भावना, सौदर्य प्रेम की अभिव्यजना एवं आत्माभिव्यजना ही नही है। मात्र बाह्य सादृश्य एव स्थूल समानताओ के कारण इसे स्वच्छदतावाद का प्रभाव नही कह सकते। दोनो की पृष्ठभूमि, जन्मस्थल, जन्मकाल और उद्देश्य भिन्न है। स्वच्छदतावाद का जन्मस्थल योरोप है। अठारहवी शताब्दी का अत और उन्नीसवी शताब्दी का प्रारभ इसका जन्म और विकास काल है। योरोप की विशिष्ट भौगोलिक, सास्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक परिस्थितियो मे उत्पन्न स्वच्छन्दतावाद का मूल स्वर विद्रोह का है। यह विद्रोह आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियो के विरुद्ध है। किंतु बीसवी शताब्दी मे भारत भूमि मे जन्मा छायावाद का मूल स्वर समन्वय का है। विद्रोह की भावना, यदि उसमे है, तो वह उसका गौण पक्ष है। छायावाद की मूल प्रवृत्ति प्रतिक्रियात्मक या विद्वेषात्मक नही है। उसमे उस व्यापक विद्रोह का स्वर नही है जो स्वच्छन्दतावाद की विशेषता है। यह मानवीय, सास्कृतिक और राष्ट्रीय प्रेरणा से अनुप्राणित, सौदर्यबोध मे अवगाहित नव-आध्यात्मिकता है। इसे स्वच्छदतावाद नही कह सकते और न रहस्यवाद ही।

'छायावाद' अपने शिशु-काल मे प्राचीनता प्रेमियो के लिए रहस्यपूर्ण बन कर आया। इस प्रवृत्ति के व्यजनात्मक रूप, 'प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यजना करनेवाला अप्रस्तुत रूप' मे उस समय के विचारको, विद्वानो और हिन्दी प्रेमियो एव स्वय कुछ छायावादी कवियो को रहस्यवाद[1] के दर्शन हो

---

१. 'हिंदी में छायावाद' शीर्षक से मुकुटधर पांडेय के चार लेख 'श्री शारदा' में प्रकाशित हुए। पांडेय जी ने अपने इन लेखो मे छायावाद की व्याख्या करते हुए कहा है, "अंग्रेजी या किसी पाश्चात्य साहित्य अथवा बंग साहित्य की वर्तमान स्थिति की कुछ भी जानकारी रखने वाले तो सुनते ही समझ जायंगे कि यह शब्द 'मिस्टिसिज्म' के लिए आया है।······

गए। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इसे बगला की रहस्यवादी कविता का अनुकरण माना और कृष्णदेवप्रसाद गौड ने इसे द्विवेदी जी के समातर मे रहस्यवादी छाया माना। विचित्र थी उस समय के कला-मर्मज्ञो की स्थिति! छायावादी

(छायावाद) एक ऐसी मायामय सूक्ष्म वस्तु है कि शब्दों द्वारा उसका ठीक-ठीक वर्णन करना असभव है।' छायावाद के कवि वस्तुओ को असाधारण दृष्टि से देखते है।"

'श्री शारदा' जुलाई, सितम्बर, नवम्बर और दिसम्बर १९२० तथा देखिए 'सरस्वती' फरवरी १९६६ पृ० १६०। शांतिप्रिय द्विवेदी ने अपने लेख, 'छायावाद : पुनर्मूल्याकन' में मुकुटधर पाण्डेय के साथ हुए अपने पत्राचार का वर्णन किया है :

"छायावाद-शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग प्रकाश्य रूप से 'श्री शारदा' (जबलपुर) में कविवर मुकुटधर जी ने किया था। यह शब्द हिन्दी में कहाँ से आया? इसका उद्भावक कौन है? इस संबंध में मुकुटधर जी को पत्र लिखकर मैंने जब उनसे पूछा उन्होने लिखा है–

" मैंने 'छायावाद' का प्रयोग मिस्टिसिज्म के लिए किया था। मिस्टिसिज्म के पर्यायवाची शब्द के संबंध में मैंने पूज्य द्विवेदीजी तथा बख्शी जी से पूछा था। उन्होंने क्रम से 'अध्यात्मवाद' और 'भक्तिवाद' शब्द सुझाए थे, पर वस्तु स्थिति के विचार से वे मुझे कुछ जँचे नहीं। मेरी समझ मे नई शैली मे भाव नहीं, भावों की छाया पाई जाती थी जिन्हें पकड़कर हृदयंगम करने में पाठको को कठिनाई होती थी। छायावादिता से ही मैंने 'छायावाद'-शब्द बनाया था।' 'छायावाद' से मेरा अभिप्राय मिस्टिसिज्म के विषय वस्तु से कहीं अधिक अभिव्यक्ति की प्रणाली या शैली से था"

मुकुटधर पाण्डेय

कल्पवासी क्षेत्र प्रयाग

३१-१-६६

देखिए "उस युग की प्रतिनिधि-पत्रिका 'सरस्वती' मे छायावाद का सर्वप्रथम उल्लेख जून सन् १९२१ के अंक में मिलता है।"

रामदरश मिश्र : छायावाद का पुनर्मूल्यांकन

'आजकल', नवम्बर १९६१ पृ० ७

तथा नामवर सिंह 'छायावाद' पृष्ठ १०

(सरस्वती प्रेस, बनारस। प्रथम संस्करण १९५५)

विचारधारा की उत्पत्ति को अनचीन्ही पाकर वे इसे बगला या अंग्रेजी का अनुकरण, छायानुकरण कहने को व्यग्र हो उठे। "छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों मे समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ मे, जहाँ उसका सबध काव्य-वस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनत और अज्ञात प्रियतम को आलबन बनाकर अत्यत चित्रमयी भाषा मे प्रेम की अनेक प्रकार से व्यजना करता है। इस रूपात्मक आभास को योरप मे 'छाया' (Phantasmata) कहते थे। इसी से बगाल मे ब्रह्मसमाज के बीच उक्त वाणी के अनुकरण पर जो आध्यात्मिक गीत या भजन बनते थे वे 'छायावाद' कहलाने लगे। धीरे-धीरे यह शब्द धार्मिक क्षेत्र से वहा के साहित्य-क्षेत्र मे आया और फिर रवीद्र बाबू की धूम मचने पर हिंदी के साहित्य क्षेत्र मे भी प्रकट हुआ।[1]

"छायावाद' शब्द का दूसरा प्रयोग काव्यशैली या पद्धति-विशेष के व्यापक अर्थ मे हुआ। सन् १८८५ मे फ्रास मे रहस्यवादी कवियो का एक दल खडा हुआ जो प्रतीकवादी (Symbolists) कहलाया। वे अपनी रचनाओ मे प्रस्तुतो के स्थान पर अधिकतर अप्रस्तुत प्रतीकोको लेकर चलते थे। हिंदी मे 'छायावाद' शब्द का जो व्यापक अर्थ मे—रहस्यवादी रचनाओ के अतिरिक्त और प्रकार की रचनाओ के सबध मे भी—ग्रहण हुआ वह इसी प्रतीक-शैली के अर्थ मे।"[2]

इसी भाँति हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है, "यूरोप के पुनर्जागरण के समय मध्ययुग के ईसाई सतो की रहस्यवादी साधना ने एक अर्द्ध-आध्यात्मिक नीरवता को जन्म दिया था जो भारतीय पुनर्जागरण के समय दिखाई पडा। उसका प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर पडा था और उस काल के साहित्य से छनकर वह प्रभाव बँगला और हिंदी के साहित्य मे आया था। बगाल मे भी उसका विरोध हुआ और हिंदी मे तो हुआ ही।"[3]

---

१. तुलना कीजिए, "इसी नवीन प्रकार की कविता को किसी ने 'छायावाद' नाम दे दिया है। यह शब्द बिलकुल नया है। यह भ्रम है कि इस प्रकार के काव्यो को बगला मे छायावाद कहा जाता था और वहीं से यह शब्द हिंदी में आया है।"
हजारीप्रसाद द्विवेदी : 'हिन्दी साहित्य', पृ० ४६१

२. रामचंद्र शुक्ल : 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पृ० ८०६–८०७

३. अवन्तिका वर्ष २ : अंक १ (जनवरी १९५४) पृ० २११

किंतु यह भ्राति स्थायी नही रह सकी। डा० नगेन्द्र का कहना है कि छायावाद के विषय मे तीन प्रकार की भ्रातियाँ है. "पहिला भ्रम उन लोगो ने फैलाया है जो छायावाद और रहस्यवाद मे अतर नही कर पाते। . . रामकुमारजी आज भी कबीर के योग की शब्दावली मे अपने काव्य का

तुलना कीजिए, "छायावाद हिन्दी कविता का स्वाभाविक विकास था। यह न बँगला से आया और न ईसाई संतो के छायाभास से।"

रामनेरश त्रिपाठी

"मेरी धारणा है कि रवि बाबू के गीत क्रिश्चियन प्रभाव के कारण नहीं, कबीर आदि भारतीय संतो और कुछ अंश मे विद्यापति आदि के गीतों से 'इस्पिरेशन' प्राप्त करते है। बंगाल के गोविन्ददास आदि कहीं-कहीं रहस्यवादी हो गए है। इस सबका प्रभाव रवि बाबू पर था।"

रायकृष्ण दास

"छायावाद' शब्द बंगाल से नहीं आया। पर छायावादी धारा पर रवीन्द्र-युग की बंगला कविता का प्रभाव किसी हद तक निश्चित रूप से पड़ा।... ...किसी भाषा की किसी विशेष युग की कविता पर किसी दूसरी भाषा की कविता धारा का प्रभाव पड़ने का यह अर्थ कदापि नहीं होता कि वह मौलिकता रहित या महत्वहीन हो गई।... ...रवीन्द्र-कविता की ओर हिंदी वालो का ध्यान आकर्षित होने पर भी उसका प्रभाव हिंदी के सामूहिक अंतर्जगत् की उतनी गहराई में प्रविष्ट न होता यदि प्रथम महायुद्ध की विश्वव्यापी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हिंदी-जगत् की भावात्मक तथा बौद्धिक चेतना सम्मिलित रूप से नए विस्फोटों के साथ उद्‌बुद्ध न हुई होती। महायुद्ध ने वह जमीन हिंदी-काव्य-जगत् को दे दी जिसमे रवीन्द्र की भावधारा प्रविष्ट होकर सूखी नहीं, बल्कि उसे निरंतर सजल और सरस बनाती हुई उसमें नए-नए सुन्दर-से-सुन्दरतर और बिचित्र-से-बिचित्रतर बीजो के प्रस्फुटन और विकास की शक्ति, सुविधाएँ और सभावनाएँ प्रदान करती चली गई।'

इलाचंद्र जोशी

अवन्तिका जनवरी, १९५४ : छायावाद का आरंभ कब हुआ ? (एक परिसंवाद)

तथा देखिए सुमित्रानंदन पंत, 'छायावाद पुनर्मूल्यांकन', पृ० १३-१५ प्रथम संस्करण, लोकभारती इलाहाबाद।

व्याख्यान करते है। स्वय महादेवीजी ने भी छायावाद के ऊपर सर्वात्मवाद[1] का भारी बोझ लाद दिया है।

दूसरी भ्राति उन आलोचको की फैलाई हुई है जो मूलवर्तिनी विशिष्ट परिस्थितियो का अध्ययन न कर सकने के कारण—और उन अपराधियो मे मै भी हूँ—केवल बाह्य साम्य के आधार पर छायावाद को यूरोप के रोमाटिक काव्य-सम्प्रदाय से अभिन्न मानकर चले है। छायावाद एक सर्वथा भिन्न देश और काल की सृष्टि है। जहाँ छायावाद के पीछे असफल सत्याग्रह था वहाँ रोमाटिक काव्य के पीछे फ्रास का सफल विद्रोह था ''।

तीसरे भ्रम को जन्म दिया है आचार्य शुक्ल ने, जो छायावाद को शैली का एक तत्वमात्र मानते थे। उनका मत है कि विदेश के अभिव्यजनावाद, प्रतीकवाद आदि की भाँति छायावाद शैली का एक प्रकार-मात्र है।"[२]

छायावाद सासारिक जीवन से पलायन, लौकिकता से विमुखता या सूक्ष्म का स्थूल के प्रति विद्रोह नही है और न यह एकाकी वेदना का घनीभूत होना है। परम, दिव्य एव अलौकिक से रागात्मक सबधजन्य विरहानुभूति एव मिलनानुभूति, उसके प्रति आकर्षण और विस्मय की अभिव्यक्ति ही छायावाद का प्रमुख स्वरूप नही है। छायावाद तो आदर्शवादी एव नव्य अध्यात्मवादी मानवता का पोषक है। छायावाद को रहस्यवाद का अनुकरण एवं उसे रहस्यवाद के सीमित अर्थ मे ग्रहण करने वालो ने शीघ्र ही उसे एक स्वतत्र 'वाद', नूतन काव्य शैली, नूतन पद-विन्यास, नूतन अभिव्यजना और नूतन विधान से युक्त नवीन मानवतावादी आदर्श के रूप मे स्वीकृत कर लिया।

---

१. "छायावाद में यह सर्वभाव अधिक सूक्ष्म रूप पा गया, जिसमें जड़ तत्व से चेतन की अभिन्नता सूक्ष्म सौंदर्यानुभूति को जन्म देती है और व्यष्टिगत चेतना से व्यापक चेतना की एकता भावात्मक सहज दर्शन कर देती है।"
"स्वयं छायावाद तो करुणा की छाया मे सौंदर्य के माध्यम से व्यक्त होने वाला भावात्मक सर्ववाद ही रहा है और उसी रूप में उसकी उपयोगिता है।"
महादेवी साहित्य खण्ड १, पृ० २२४ तथा २३३ सेतु प्रकाशन, चिरगाँव।

२. 'आधुनिक हिंदी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ', पृ० १४-१५
गौतम बुक डिपो, दिल्ली (१९५१)

वस्तुत छायावाद, रहस्यवाद, स्वच्छदतावाद के बीच कोई निश्चित रेखा, स्पष्ट विभाजन रेखा नही खीची जा सकती। काव्य-हृदय की उडान किसी सीमा को स्वीकार नही करती। कवि कल्पना प्रमुखतः एक आदर्श को अपनाते हुए दूसरे मे भी रम जाती है। उसके सम्मुख द्वद्वात्मक बुद्धि की लौह दीवार नही है। स्वछदतावाद, रहस्यवाद और छायावाद अपनी विशिष्टता रखते हुए एक दूसरे से मिले हुए है। कुछ इनकी भिन्नता को विषयवस्तु और अभिव्यजना पद्धति के आधार पर समझाते है, स्वच्छन्दतावाद और रहस्यवाद को विषय-वस्तु व्यजक तथा छायावाद को अभिव्यजना व्यजक मानते है। किंतु निषयवस्तु और अभिव्यजना अविच्छिन्न है। छायावाद ने न केवल प्रतीकात्मक अभि-व्यजना प्रणाली को अपनाया है, इसके विषय भी आतरिक अनुभूति, स्वानुभूति, सहानुभूति एव तादात्म्य से रजित, मुखर और जीवत है। छायावादी अभि-व्यजना को कुछ विचारक छाया या आभास के अर्थ मे समझकर उसे रहस्य-वाद[1] से युक्त कर देते है। किंतु यदि अभिव्यजनात्मकता या प्रतीकात्मकता के आधार पर छायावादी कवियो की कविता रहस्यवादी हो जाती है तो अधिकाश प्रतीकात्मक, साकेतिक कविताओ को रहस्यवादी कहना पडेगा।

छायावाद जीवन के व्यापक बोध, उसकी गतिशीलता से अनुप्राणित वह भारतीय अध्यात्म है जो सत्य, शिव और सुदर से युक्त मानवतावादी आदर्श के प्रागण मे वैयक्तिक स्वतत्रता, अनुभूति एव वेदना का सगीत है। यह भाव-

---

१. "उस युग के आलोचक छायावाद की नयी अभिव्यजना शैली तथा सौन्दर्य दृष्टि से इतने चमत्कृत तथा उसके अंतर्भाव-स्पर्श से ऐसे विमूढ हो गए कि उन्हे उस काव्य सचरण मे सभी कुछ अस्पष्ट तथा रहस्यमय लगने लगा।…… छायावाद में रहस्यानुभूति को यदि किसी हद तक वाणी भी मिली तो वह रहस्य-भावना मध्ययुगीन संतो की सी निषेध-पोषित, जीवन-रस-वंचित, आत्मा या ब्रह्म के अस्पष्ट स्पर्श की अतीन्द्रिय अनुभूति न होकर नये विश्व चैतन्य की खोज तथा जिज्ञासा की भावानुभूति रही। मध्य-युगीन कबीर आदि के रहस्यवाद तथा छायावाद मे सबसे बडा और महत्व-पूर्ण भेद यह है कि मध्ययुगीन रहस्यवाद लोक-निष्क्रिय तथा निवृत्ति-मूलक था और छायावाद जीवन सक्रिय तथा प्रवृत्ति मूलक रहा है।"
सुमित्रानंदन पंत, छायावाद पुनर्मूल्यांकन, पृ० १८, वर्तमान प्रकाशक, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

भीना नव्य आध्यात्मिक अतः सौदर्यवाद है। जीवन की सत्यता से अनुप्राणित वह भारतीय सत्यान्वेषी आध्यात्मिक दृष्टि है जिसका पालन तत्कालीन राष्ट्रीय, सास्कृतिक चेतना ने किया है। छायावाद पलायनवाद एव सामाजिक यथार्थता और नैतिकता से शून्य अध्यात्मवाद सामतवाद, साम्राज्यवाद, जर्जर परम्परा और जगत के मिथ्यात्व का विरोध मानवतावादी दृष्टि से करता है। भावभीना नव्य आध्यात्मिक अत सौदर्यवाद एव छायावाद मानवतावादी प्रेम, सौदर्य, एकता एव मानवोचित सूक्ष्म सवेदनाओ का वह आदर्शमूलक सिद्धात है जो जीवन मे महत् सामजस्य स्थापित करने का आकाक्षी है, जिसका स्वरूप रचनात्मक है। "छायावाद हमारी विशेष सामाजिक और साहित्यिक अवश्यकता से पैदा हुआ और उस आवश्यकता की पूर्ति के लिए उसने ऐतिहासिक कार्य किया। समाज और साहित्य को उसने जिस तरह पुरानी रूढियो से मुक्त किया, उसी तरह आधुनिक राष्ट्रीय और मानवतावादी भावनाओ की ओर भी प्रेरित किया। व्यक्तित्व की स्वाधीनता, विराट् कल्पना, प्रकृति-साहचर्य, मानव प्रेम, वैयक्तिक प्रणय, उच्च नैतिक आदर्श, देशभक्ति, राष्ट्रीय स्वाधीनता आदि के प्रसार द्वारा छायावाद ने हिंदू जाति के जीवन मे ऐतिहासिक कार्य किया। कविता के रूप-विन्यास को पुरानी सकीर्ण रूढियो से मुक्त करके उसने नवीन अभिव्यजना प्रणाली के लिए द्वार खोल दिया।" अथवा "छायावादी कविता की आत्मीयता, प्रकृति-प्रेम, सौदर्य-भावना, सवेदनशीलता, अथक जिज्ञासा, जीवन की लालसा, उच्चतर जीवन की आकाक्षा और इन सबके लिए सघर्ष करने की अनवरत प्रेरणा छायावादी कविता का स्थायी सदेश है"[1]

वस्तुत जिस नए पद सौष्ठव, शिल्प माधुर्य, छद लालित्य, शिवमय सौदर्य, भाव गरिमा, सास्कृतिक पुनर्जागरण की चेतना को लेकर यह नया काव्य शिल्प अवतरित हुआ उसे 'छायावाद' शब्द अभिव्यक्ति नही दे पाया है[2] यद्यपि

---

१. नामवर सिंह, छायावाद पृ० १४२ तथा १४५। सरस्वती प्रेस, बनारस (१९५५)

२ "छायावाद शब्द केवल चल पड़ने के ज़ोर से ही स्वीकारणीय हो सका है, नहीं तो इस श्रेणी की कविता की प्रकृति को प्रकट करने मे यह शब्द एकदम असमर्थ है।"
हजारीप्रदास द्विवेदी, हिंदी साहित्य, पृ० ४६१
अतरचन्द्र कपूर एण्ड सन्स, दिल्ली

मूर्धन्य छायावादियो ने इस नाम को स्वीकार करने मे हर्ष प्रकट किया।[1] छायावाद की ये विशिष्ट परिभाषाएँ भले ही विशिष्ट कविताओ पर प्रकाश डाल दें पर जिस राष्ट्रीय-सास्कृतिक-आध्यात्मिक मानवतावादी भावभीनी

---

1. "स्वच्छन्द घूमते-घूमते थककर वह अपने लिए सहस्र बंधनो का आविष्कार कर डालता है और फिर बधनो से ऊबंकर उनको तोडने मे अपनी सारी शक्ति लगा देता है। छायावाद के जन्म का मूल कारण भी मनुष्य के इसी स्वभाव में छिपा हुआ है। स्वच्छन्द छन्द में चित्रित उन मानव-अनुभूतियो का नाम छाया उपयुक्त ही था और मुझे तो आज भी उपयुक्त लगता है।"

 'छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सबंध में प्राण डाल दिए जो प्राचीन काल से बिम्ब-प्रतिबिब के रूप मे चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य की प्रकृति अपने दु.ख मे उदास और सुख में पुलकित जान पडती थी। जब प्रकृति की अनेकरूपता मे, परिवर्तनशील विभिन्नता में, कवि ने ऐसे तारतम्य खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर असीम चेतन और दूसरा उसके ससीम हृदय मे समाया हुआ था तब प्रकृति का एक-एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व को लेकर जाग उठा। इसीसे इस अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण उसके निकट आत्मनिवेदन कर देना इस काव्य का दूसरा सोपान बना जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद नाम दिया गया। आज गीत में हम जिसे नये रहस्यवाद के रूप में ग्रहण कर रहे है उसने परा विद्या की अपार्थिवता ली, वेदात के अद्वैत की छाया मात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के सांकेतित दाम्पत्य भाव-सूत्र मे बाँध कर एक निराले स्नेह-सबध की सृष्टि कर डाली जो मनुष्य के हृदय को आलम्बन दे सका, उसे पार्थिव प्रेम के ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका।"

महादेवी वर्मा, : 'यामा' पृ० ११-१२ तथा ८

"मोती के भीतर छाया जैसी तरलता होती है, वैसी ही कान्ति की तरलता अंग मे लावण्य कही जाती है। इस लावण्य को संस्कृत

सौन्दर्य प्रधान कविता ने द्विवेदी-काव्य को गरिमाच्युत किया उसके मूल मे जो राष्ट्रीय एव अतर राष्ट्रीय चेतना थी उसकी अयथार्थ मायावादी शब्दा-

---

साहित्य मे छाया और विच्छित्ति के द्वारा कुछ लोगो ने निरूपित किया है। कुन्तक ने वक्रोक्ति जीवित मे कहा है

"प्रतिभा प्रथमोद्‌भेदसमये यत्र वक्रता
शब्दाभिधेययोरन्त : स्फुरतीव विभाव्यते।"

"अभिनव गुप्त ने लोचन मे एक स्थान पर लिखा है—
परा दुर्लभा छायां आत्मरूपतां यान्ति।"

"प्राचीन साहित्य मे छायावाद अपना स्थान बना चुका है।·· ···जब वहति विकलं कायो न मुञ्चति चेतनाम् की विवशता वेदना को चैतन्य के साथ चिरबधन मे बाँध देती है, तब वह आत्मस्पर्श की अनुभूति, सूक्ष्म आन्तर भाव को व्यक्त करने मे समर्थ होती है।··· ···हिन्दी ने आरम्भ के छायावाद मे अपनी भारतीय साहित्यिकता का ही अनुसरण किया। कुन्तक के शब्दो में अतिक्रांतप्रसिद्धव्यवहारसरणि के कारण कुछ लोग इस छायावाद मे अस्पष्टवाद का भी रग देख पाते हैं। हो सकता है, जहाँ कवि ने अनुभूति का पूर्ण तादात्म्य नहीं कर पाया हो, जहाँ अभिव्यक्ति विच्छृखल हो गई हो, शब्दो का चुनाव ठीक न हुआ हो,··· ···परन्तु सिद्धांत मे ऐसा रूप छायावाद का ठीक नहीं कि जो कुछ अस्पष्ट, छाया-मात्र हो, वास्तविकता का स्पर्श न हो, वही छाया-वाद है। हाँ, मूल में यह रहस्यवाद भी नहीं है। प्रकृति विश्वात्मा की छाया या प्रतिबिम्ब है, इसलिए प्रकृति को काव्यगत व्यवहार में ले आकर छायावाद की सृष्टि होती है, यह सिद्धांत भी भ्रामक है। यद्यपि प्रकृति का आलम्बन स्वानुभूति का प्रकृति से तादात्म्य नवीन काव्य-धारा में होने लगा है, किन्तु प्रकृति से संबंध रखनेवाली को ही छायवाद नहीं कहा जा सकता।

छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिया पर-अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौंदर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेष ताएँ हैं। अपने भीतर से मोती के पानी की तरह आन्तर स्पर्श करके भाव समर्पण करनेवाली अभिव्यक्ति छाया-कान्तिमयी होती है।

वली,[1] इन्द्रधनुषी भाषा एव प्राचीनता के प्रति भावविमूढता द्वारा व्याख्या नही की जा सकती ।

'छायावाद' शब्द को यदि इसके स्वरूप की व्याख्या के रूप मे न लेकर एक नामकरण के रूप मे समझ ले तो छायावादी काव्य सबधी बहुत कुछ

प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबध । भारती भण्डार, इलाहाबाद पृ० १२२–१२६

"छायावाद रहस्यानुभूतिमयी रति की अभिव्यक्ति है ।"

रामकुमार वर्मा : विचार दर्शन । पृ० ७२

"परमात्मा की छाया आत्मा मे पड़ने लगती है और आत्मा की छाया परमात्मा मे । यही छायावाद है ।"

रामकुमार वर्मा : साहित्य समालोचना । हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद तथा "हिन्दी की नवीन शैली की कविताओ का 'छायावादी' नाम एक प्रकार से सार्थक ही है । ···यह निश्चित है कि नयी शैली की प्रायः सभी कविताएँ 'छायात्मक' होती हैं । इस व्यक्त जगत के परे जो एक अदृश्य छाया प्रतिपल अपना झिलमिल रूप दिखाती रहती है, उसने हिन्दी के प्रायः सभी कवियो को अपनी अलौकिक रहस्य की मनो-मोहकता के कारण प्रबल वेग से आकर्षित किया है । यह छाया क्या है ? वह कोई भी नहीं बता सकता । यह अव्यक्त, अज्ञात तथा रहस्यमय है और चिरकाल ऐसी ही रहेगी ।"

इलाचंद्र जोशी : देखी : परखा (१९५७) पृ० २३

१. जून सन् १९२१ की सरस्वती मे सुशील कुमार का वार्तालाप शैली में एक निबध प्रकाशित हुआ, 'हिन्दी छायावाद' । इसमें उन्होने छायावाद पर व्यग्य किया है, उसे 'निर्मल ब्रह्म की विशद छाया' कहा है एवं अस्पष्टता के गुणो से युक्त किया है ।

देखिए "ऐसे ही समय (१९१३) मे रवीन्द्रनाथ की 'गीतांजलि' को विश्व सम्मान मिला । बगला में इस नयी कविता का नाम छायावाद पड़ा था । अतः हिन्दी मे यही नाम ग्रहण किया गया; साथ ही वे सभी प्रवृत्तियाँ भी हिन्दी कविता में आ गई जो बगला में छायावाद की थीं ।"

शम्भूनाथ सिह : छायावाद युग पृ० १८ । द्वितीय संस्करण, नन्दकिशोर एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी ।

कठिनाइयाँ या भ्रम दूर हो जाएँगे। छायावाद शब्द अपने आप मे जिस अतिरजित कल्पना, वायवी दृष्टि, अयथार्थ भूमि का द्योतक है वह छायावादी विचारधारा का वास्तविक स्वरूप नही है। वह तो भारतीय दर्शन से अनुप्राणित, भारतीय भूमि मे उत्पन्न वह मानवतावादी चेतना एव आदर्श है जिसका बीसवी शती (अथवा उन्नीसवी शती के उत्तरार्ध से बीसवी शती) की प्रकृति ने लालन-पालन किया तथा जो शिव और सौंदर्य के स्पर्शो से चिर पोषित हुआ।[1]

---

१ छायावाद को पाश्चात्य काव्य तथा बंगला का अवांछनीय अनुकरण मानना ऐतिहासिक दृष्टि के प्रति आँख मूँद लेने के समान है। ···· जिन विश्व-विकास की शक्तियो से उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में अंग्रेजी कवियो को तथा बगाल मे रवीन्द्रनाथ को प्रेरणा मिली, मूल प्रेरणा छायावाद को भी, काल का व्यवधान पार करने के बाद, उन्हीं विकास के स्रोतो से मिली है। मूल्य की दृष्टि से यह नयी प्रेरणा विश्व-चेतना मे अवतरित हो चुकी थी।··· हिंदी मे भी तब एक सर्वतोमुखी अतविकास तथा बहिविश्व क्रांति की भावना को अभिव्यक्ति मिलना स्वाभाविक ही था।"
सुमित्रानंदन पंत, 'छायावाद पुनर्मूल्यांकन', पृ० ३१
तथा "छायावाद विदेशी वस्तु नही है। वह शुद्ध रूप से अपने समाज के नए जीवन की कलात्मक अभिव्यक्ति है। इस सामाजिक जीवन की विवेचना न कर छायावाद को शुद्ध विजातीय द्रव्य मान लेना ऐतिहासिक बोध के सदोष होने का परिचायक है। छायावाद एकाएक नहीं पैदा हो गया। उसके विकास के बीज आधुनिक काल के आरंभ से ही विशेषतया द्विवेदी काल से लक्षित होने लगे थे। इसलिए वह हमारी पूर्ववर्ती काव्य परम्परा का ही सहज विकास था।······प० नन्ददुलारे वाजपेयी (आधुनिक साहित्य पृ० २२) ने छायावाद की राष्ट्रीय चेतना पर विशेष बल दिया। खेद और आश्चर्य की बात है कि 'हमारे कतिपय समीक्षकों ने इस अत्यन्त सीधी और सच्ची बात को भी समझने की चेष्टा नहीं की कि हमारे इस युग के साहित्य की मुख्य प्रेरणा राष्ट्रीय और सांस्कृतिक है तथा इससे भिन्न वह और कुछ हो नहीं सकती थी।··· ··वाजपेयी जी ने बडी दृढ़ता से स्वीकार किया हैं कि छायावाद का अपना जीवन-दर्शन हैं और अपनी भाव सम्पत्ति है।··· ··इतना मानते हुए भी वाजपेयी जी ने

द्विवेदी युग एक व्यापक जागरण का प्रतीक था। देश मे सर्वत्र-राष्ट्रीय चेतना बलवती हो रही थी, राष्ट्र, राष्ट्रभाषा और भारतीय संस्कृति तथा विगत वैभव के प्रति प्रेम उसका प्रमुख लक्ष्य था। इसके साथ ही सामाजिक आंदोलन, रूढि विरोध, नारी दुर्दशा[1], श्रेष्ठ साहित्य के प्रति श्रद्धा, सांस्कृतिक-

---

छायावाद को परम्परा का सहज विकास न मानकर परम्परा की प्रतिक्रिया माना।...... प्रतिक्रिया मान लेने से ऐतिहासिक विकास को सामाजिक सापेक्षता मे देखना मुश्किल हो जाता है। कोई धारा किसी धारा की प्रतिक्रिया मे चल पडी, यह कह कर हम साहित्य की नवीन प्रवृत्तियो के मूल मे काम करने वाली नवयुगीन परिस्थितियो को झुठला देते हैं। जहाँ वाजपेयी जी यह मानते है कि छायावादी कविता मे राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना मुखर हुई है, वहीं उसे मध्यकालीन प्रवृत्तियो की प्रतिक्रिया कह कर असंगति की सृष्टि करते हैं। बाद को कुछ नए समीक्षको ने, विशेषतया डा० नामवर सिंह ने, छायावाद को प्रवहमान परम्परा से जोड़ा है। ·...छायावाद मे अनुभूति, दर्शन और शैली तीनो का संयुक्त संबध था।......किंतु छायावाद के व्यक्तिवाद, कल्पना-विलास और मधुचर्या के पीछे जीवन का जो क्रांतिकारी दृष्टिकोण छिपा है उसे पहचानने मे भूल नहीं करनी चाहिए। छायावाद एक क्रांतिकारी काव्य है जिसने परिपाटीबद्ध रसज्ञता, प्राचीन शिल्प, परिपाटीबद्ध दृष्टि के स्थान पर नूतन रसज्ञता, नूतन शिल्प और नूतन जीवन-दृष्टि का निर्माण किया।......वास्तव मे यह युग ही मानवतावादी आंदोलन का है।"
रामदरश मिश्र : 'छायावाद का पुनर्मूल्यांकन' आजकल, नवम्बर १९६१ पृ० ८-१२

१. "द्विवेदी युग की कविता में नारी के प्रति दया का भाव तो है, पर यथोचित सम्मान का भाव नहीं है। उस युग में निःसंदेह विधवाओ को लेकर अनेक कविताएँ लिखी गईं,......विधवा-विवाह को आवश्यक ठहराया गया है। द्विवेदी युग का यह काव्य एक प्रकार से अनाथालय प्रतीत होता है जिसमें नारी को आश्रय देने के साथ ही वंदिनी भी बना दिया गया ......आर्य समाज की कट्टर शुद्धिवादी (प्यूरिटन) नैतिकता ने द्विवेदी-युग के संपूर्ण काव्य को नीरसता और वर्जना से भर दिया।"
नामवर सिंह : 'छायावाद', पृ० ४२

धार्मिक और नैतिक स्वच्छता की प्रवृत्तियाँ सर्वत्र दृष्टिगोचर थी। काव्य अब जन-जीवन के निकट आने लगा था क्यो कि खडी बोली काव्य-भाषा के रूप मे स्वीकृत हो गई थी। कुछ कट्टर ब्रजभाषा प्रेमियो के अतिरिक्त सभी खडी-बोली की आवश्यकता अनुभव करने लगे जिसके प्रमाण स्वरूप ब्रजभाषा के कवि—श्रीधर पाठक, महावीरप्रसाद द्विवेदी, अनूप शर्मा, रूपनारायण पाडेय, लाला भगवानदीन, नाथूराम शकर शर्मा, देवीप्रसाद 'पूर्ण' जगदम्बाप्रसाद 'हितेषी,' गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' आदि—खडी बोली मे काव्य रचना करने लगे। द्विवेदी-युग ने काव्य को जिस धरातल पर खडा कर दिया था उसका इतिवृत्तात्मक, उपदेशपरक, नैतिक रूप स्वय उसके विकास के लिए तो बाधक ही बन गया था, वह काव्यात्मकता एव लोकप्रियता की शक्ति भी खो बैठा था। कविता का क्षेत्र उन्मुक्त भावभूमि का क्षेत्र है जहाँ स्वच्छन्दता-पूर्वक विचरण किया जा सकता है। छायावाद ने काव्य को इस उन्मुक्तता से युक्त किया, उसे व्यापकता दी, नवीन अर्थबोध, नवीन शब्द सौष्ठव, नई कला तथा जीवन सौदर्य से मण्डित किया। "द्विवेदी युगीन काव्य-चेतना मे अत सगठन का सयम तथा राष्ट्रीय एकता का ओजपूर्ण आह्वान था, किंतु उसका भाव-तत्व अत. सौदर्य के रस-स्पर्शी पखो की उडान से वचित ही रहा। . . स्थूल के प्रति सूक्ष्म के विद्रोह से अधिक आग्रह छायावाद मे नवीन जीवन सौदर्य के मूल्य तथा भाव-सम्पद् की स्थापना के ही प्रति रहा है। वैसे भी पिछली और नयी वास्तविकता के लिए स्थूल और सूक्ष्म का उपयोग अर्थ-

---

"छायावादी प्रेम-काव्य को अतृप्त वासना या दमित काम भावना की अभिव्यक्ति मानना तथा उसे प्रच्छन्न, शृंगारमूलक रीतिकालीन काव्य का ही, आधुनिक रूप समझना भी आलोचको की व्यापक दृष्टि के अभाव का ही द्योतक है।... ...छायावादी नारी में भारतीय जागरण का नैतिक बल ही नही, उसमें विश्व मानवी का व्यापक सहानुभूतिपूर्ण स्वस्थ स्नेह संवेदन भी है। वह देह-बोध के परदे से बाहर निकल कर... ...सामाजिक दायित्व के प्रति जाग्रत्, स्त्री स्वातत्र्य के राज-पथ पर नये शील के चरण धर कर आगे बढती है। छायावाद का प्रणय-निवेदन स्वस्थ स्वाभाविक राग-भावना का द्योतक प्रेम-प्रगीत है... ...उसमें स्त्री-पुरुषो की सामाजिक उपयोगिता पर आधारित एक नवीन सांस्कृतिक चेतना का आह्वान मिलता है।"
सुमित्रानदन पंत, 'छायावाद पुनर्मूल्यांकन', पृ० ३५-३६

व्यजकता की दृष्टि से सगत नही प्रतीत होता है। छायावाद को लाक्षणिक प्रयोगो, अमूर्त उपमानो या अप्रस्तुत विधानो की मात्र चित्र-भाषामयी शैली मानना भी केवल उसके बाह्य कलेवर पर दृष्टिपात करना अथवा उसकी कला बोध की प्रक्रिया के बारे मे निर्णय देकर ही सतोष कर लेना है। छायावाद केवल अभिव्यजनापरक ही नही नवीन मूल्य-परक काव्य है।·· उसका कलाबोध महार्घ इसलिए है कि उसका भावबोध तथा मूल्य-चैतन्य नये युग के लिए अत्यत बहुमूल्य अथवा अमूल्य है। छायावाद को एक ओर व्यक्तिवादी अथवा व्यक्ति या आत्मनिष्ठ काव्य बतलाया गया है दूसरी ओर सर्वात्मवादी, जिसकी असगति स्वय स्पष्ट है। उसका व्यक्तिनिष्ठ दृष्टिकोण वास्तव मे मूल्य-केन्द्रिक होने के कारण छायावाद ने सामूहिक जीवन-सचरण को बहिर्मुखी अर्थ मे ग्रहण न कर उसे उसके वैश्व-मूल्य या अतर्मूल्य के अर्थ मे ग्रहण किया। स्वानुभूति उसके लिए विश्वात्मा एव विश्व जीवन की अनुभूति का पर्याय बन गई।"[1]

(छायावाद को पत की देन)

जनवरी सन् १९२२ मे पत का 'उच्छ्वास' प्रकाशित हुआ और इसके प्रकाशन ने द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता तथा छायावादी काव्य सौष्ठव एव भाव बोध के अतर को स्पष्ट कर हिंदी जगत् मे पर्याप्त हलचल मचा दी।[2] प्रोफेसर शिवाधार पाण्डेय का फरवरी १९२२ की सरस्वती मे 'उच्छ्वास' शीर्षक से 'उच्छ्वास' पर एक लेख प्रकाशित हुआ, "यह कवि का पहला प्रकाश है। सरस्वती-प्रवेश की चकाचौंध है।·· विरह-विहारी प्रकृति के सौदर्य का कितना 'सरल-अस्फुट' उठान है! ग्रथ की कथा, ग्रथ के विषय, किस मुरली की माया मे पड गए है? बाँसुरी के छिद्र से क्या स्वर बह रहे है? यह किस रास का रस है, किस तारे की तान है।·· 'कवि ने प्रकृति का क्या परिचय दिया है, प्रभाव प्रकट किया है? देखो, वहाँ इन्द्रजाल ही नही, चमत्कार ही नही, प्रेम का पुरस्कार ही नहीं, पाप का परिहार ही नही है। उसकी दृष्टि करुणा के कटोरे के कटोरे पी गई है। ···क्यो? करुणाकर ने रोग का उपचार किया है या नही? उत्तर कवि के पास हैं। उसकी कविता पढने वालो को उठाती है, लुभाती है, दूर ले जाती है। भाषा को वह भाव से

---

१. सुमित्रानंदन पंत, 'छायावाद पुनर्मूल्यांकन', पृ० २६-२७ तथा ३०

२. देखिए 'सुमित्रानंदन पंत : जीवन और साहित्य', प्रथम खण्ड, पृ० १५८-१५९

बजाता है। सगीत को उँगलियो पर नचाता है। शब्दो को सूँघकर-सूँघकर मनमाना मधु चूसता है। कवि की तोल खरी है। वह 'विकच बचपन' कहता है, 'असीम अवसित' कहता है। 'उच्चाकाक्षाओं' कहता है, तो किस ध्वनि के लिए, किस स्वर और अर्थ की समर्थ डमरू-सम्प्रक्ति के लिए, ढूँढो।

···श्री हर्ष के आजमाये नुसखे का काम नही है। सिर को आधी रात मे भिगोकर किसी को दही पीना नही पडेगा। यह 'हृदय की सुरभित साँस' है। इस इक्कीस वर्ष की आनन्दिनी अवस्था का पहला पलाश है। उसके शारीरिक स्वर की मधुरिमा उसमे प्रवेश नही कर सकती, किंतु उसका मानसिक स्वर उसमे कूट-कूट कर भरा हुआ है। यह गद्य है, लेख है। न इसमे उस कण्ठ का मिठास लाया जा सकता, न इसमे उस कविता का अनिर्वचनीय आनन्द।"[1]

सरस्वती के इसी अक मे पदुमलाल पुन्नालाल बक्शी का भी एक लेख छपा था जिसमे पाण्डेय जी की 'उच्छ्वास' की प्रशसा पर बक्शी जी की सम्पादकीय लेखनी ने आपत्ति उठाई थी। वस्तुत· 'उच्छ्वास' का प्रकाशन छायावादी काव्य का प्रकाशन था, छायावाद की विजय थी, ब्रजभाषा एव श्रृगारी और इतिवृत्तात्मक काव्य के अवसान की पूर्व सूचना थी। कृष्णदेव प्रसाद गौड, महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्यामसुन्दर दास, रामचद्र शुक्ल, पदुमलाल पुन्नालाल बक्शी, मिश्रबधु आदि छायावादी काव्य के प्रति सशकित हो गए। उन लोगो को यह साहित्यिक-पुनीत कर्त्तव्य लगा कि वे छायावाद के नाम पर अर्थहीन एव हानिप्रद काव्य धारा को पल्लवित न होने दे। अतः छायावाद का जितना तीव्र विरोध हो सकता था, वह किया गया। इसके विरोध मे जब विरोधी पुष्ट प्रमाण नही दे पाए तो उन्होने व्यग्य और परिहास की सहायता ली।

"ससार बडा होशियार है। विरोध करने का जो पहला हथियार वह इस्तेमाल करता है वह बडा पैना और सूक्ष्म होता है। वह है उपहास और व्यग्य, जो देखने मे हथियार भी नहीं लगता, पर जिसकी मार बडी जबर्दस्त होती है। जो हँसकर उड़ाया जा सके, उसके विरोध मे अधड तूफान क्यों उठाया जाय—जो गुड दीन्हे ते मरै माहुर देहु न ताहि। 'उच्छ्वास' को एक

---

१. 'सरस्वती' हीरक जयंती अंक, पृ० ६०३-६०५

आलोचक ने कहा—'बीसवी सदी का महाकाव्य'[१]—और जैसे एक सियार के 'हुआ' कहने पर बहुत से सियार 'हुआ ! हुआ !' करने लगते है वैसे ही 'उच्छ्वास' के लिए वह व्यग्य बहुत-से कठो से प्रतिध्वनित हुआ ।

---

१. "विनोदशंकर व्यास के चाचा बदरीनाथ भट्ट ने लेख लिखा, 'हिन्दी लेखकों के बंगला-प्रेम का भयानक परिणाम' । उन्होने छायावादियो को स्वार्थी और धनलोलुप साहित्यद्रोही कहा । 'सुधा' इस समय छायावाद पर आक्रमण करने में सबसे आगे थी । किन्हीं ललितकिशोर सिंह बी० ए० ने राय जाहिर की, 'असबद्ध भावो अथवा प्रलापो को किसी प्रकार अस्तव्यस्त रूप में एकत्र कर डालने ही को लोग छायावाद कहते हैं ।"
"छायावाद के समर्थन में भी लेख निकल रहे थे, अवध उपाध्याय, कृष्णदेव प्रसाद गौड़, शांतिप्रिय, रामनाथ लाल 'सुमन' आदि लेखक मोर्चे पर डटे हुये थे पर इस समय ज्यादा आवाज़ विरोधियो ही की सुनाई दे रही थी । साहित्य-सम्मेलन के कर्णधार, विश्वविधालयों के अध्यापक, राष्ट्रवादी और रीतिवादी कवि, पत्रकार और संपादक छायावाद के अभिमन्यु को अपने चक्रव्यूह में फँसा कर चारों ओर से उस पर टूट पडे । जाने कहाँ-कहाँ से वाद ढूँढ़ निकाले हैं, छायावाद, कायावाद, मायावाद। जब से द्विवेदी जी की लेखनी ने विश्राम लिया, तबसे साहित्य क्षेत्र में और भी धाँधली मची हुई है । यह हाहाकार मचा रहे थे 'विशाल भारत' में उसके अराजकतावादी संपादक बनारसीदास चतुर्वेदी । छायावाद के क्लीव काव्य और उग्र के घासलेटी साहित्य के विरुद्ध उन्होने एक साथ अभियान आरभ कर दिया था ।

"बिहारी सतसई के प्रशंसक और उसके टीकाकार पद्मसिंह शर्मा को 'पल्लव' की भाषा बेहद कर्णकटु लगती थी ।' ' '

"छायावादी कवियो में प्रसाद विरोधी आलोचना सुन कर चुप हो जाते थे । ' पंत ने 'पल्लव' की भूमिका में रीतिवादियो की आलोचना की थी पर उनके आक्रमण की लपेट मे रीति-विरोधी कवि भी आ गए थे । 'वीणा' की भूमिका में उन्होने रीतिवादियो के अलावा महावीरप्रसाद द्विवेदी की भी तीखी आलोचना की ।''''''

"पुरानी पीढ़ी के अलावा कुछ नई पीढ़ी के लेखक भी, जो अंग्रेजी और बंगला के जानकार थे, छायावाद की तीव्र आलोचना कर रहे थे । इनमें

"साहित्य पर प्रहार करने वाले जब देखते है कि उनका वार खाली गया तो वे साहित्यकार पर प्रहार प्रारभ करते है। पत जी का सुन्दर, गौर, क्षीण शरीर, नारी के-से केश, स्त्री-सुलभ सुकुमारता आदि शब्दाक्रमण के सहज लक्ष्य बने। अस्पष्ट, उलझी, दुरूह, अमूर्त के अर्थ मे उनकी कविता को छायावादी और लघु लघु प्राण, क्लीब और स्त्रैण के इगित से उन्हे 'सखी पथी' अथवा 'सजनी पथी' कहा-लिखा जाने लगा। उनकी कविताओ मे 'सखि' 'सजनि' के सबोधन प्राय आ जाते थे।"[1]

किंतु 'उच्छ्वास' के कवि ने 'पल्लव' की भूमिका मे अपने सभी विरोधो का उत्तर दृढ सक्षमता के साथ दे दिया।[2] यद्यपि 'पल्लव' (काव्य) मे वह प्रार्थना करता है—

बना मधुर मेरा भाषण !

— — —

जैसा जैसा मुझको छेडे,
बोलूँ अधिक मधुर, मोहन,

पर वास्तविकता की खुरदुरी, कठोर और कडवी धरती को देखकर वह उस पौरुष से काम लेता है जो सबल व्यक्तित्व का पर्याय है। "इन सभी लोगो मे पत जी ही ऐसे थे जिन्होने अपने पक्ष की प्रबलता को भली भाँति

हेमचन्द्र जोशी और इलाचन्द्र जोशी ने निराला का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया।"

रामविलास शर्मा, 'निराला की साहित्य-साधना', पृष्ठ १५६–१६१ राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (१६६६)

१. बच्चन : 'कवियों में सौम्य संत', पृष्ठ १७५-१७६

२. "पल्लव' की भूमिका ने एकबारगी यह सिद्ध कर दिया कि जिस लेखनी से यह निकली है उसे पकडनेवाला न लज्जालु है, न भीरु है, न लघु-लघु प्राण है, न क्लीब है, न स्त्रैण है; वह है आत्मविश्वासी, स्वाभिमानी भी, वाग्विदग्ध, छेड़ को सहारने वाला ही नहीं, छेड़ने वाला भी।" वही पृष्ठ १७६ तथा देखिए 'सुमित्रानंदन पंत : जीवन और साहित्य', प्रथम खण्ड, अध्याय ११

जानने वाले कर्मठ पुरुष की स्पष्टता के साथ आरभ मे ही 'पल्लव' की भूमिका मे उन सभी उद्देश्यो की घोषणा कर दी थी जिनकी स्थापना के लिए वे साहित्य मे आए थे। 'पल्लव' की भूमिका छायावाद का मेनिफेस्टो थी और नए आदोलन का रुख उस लेख मे जितनी स्पष्टता के साथ प्रकट हुआ उतना साफ और किसी निबन्ध मे नही। यह भी ध्यान देने की बात है कि नए कवियो मे जनता ने पत जी को ही अपना सर्वाधिक प्रेम अर्पित किया और आज वे ही छायावाद का सुधार भी कर रहे है।"[1]

---

१. दिनकर, : 'मिट्टी की ओर' (१९४६) पृष्ठ १६-१७

तथा "नवीन हिन्दी कविता मे सबसे श्रेष्ठ सृष्टि-प्रतिभा लेकर प० सुमित्रानंदन पत का विकास हुआ है। हिन्दी के क्षेत्र मे पत जी की कल्पना की शक्ति अजेय, उसका नवनवोन्मेष अप्रतिम है। यही उनकी विविध रचनाओ का आधार, उनमे रमणीयता का संचार करती है। प्रेम और सौंदर्य की सूक्ष्म मानसिक विवृति तक मे पत जी की कल्पना समर्थ हुई है और यत्र-तत्र यही कल्पना आध्यात्मिक उड़ान भी लेती चली है। ' प्रेम के संयोग पक्ष को भी और वियोग-पक्ष को भी समान सौकर्य मे प्रकट करने में उनकी कल्पना कुठित नहीं होती, कहीं हल्की मोदमय, कहीं मधुर रसमय भावाभिव्यक्ति करने में वह योग देती और कहीं गूढ़ रहस्यमयी सृष्टि भी करती है। कल्पना के प्रकर्ष में जड़ व्यक्तित्व छूट जाता है, और कवि स्वच्छन्द होकर व्यापक, निर्लेप सृष्टि करने मे प्रवृत्त होता है। एक ओर जहाँ यह लाभ है, वहाँ दूसरी ओर यह हानि भी साथ ही लगी है कि कल्पना का अतिरेक जीवन का सपर्क छोडकर ऐकान्तिक न हो जाय, किंतु पंतजी की कल्पना वैसी प्राय कम ही है। वह अनेक बार दिव्य ज्योति दिखाती, यदा-कदा विद्युत चकाचौध उत्पन्न करती पर गड्ढे मे प्राय. कभी नहीं गिरती। '' कल्पना की इस 'आलिम्पिक' प्रतियोगिता में पंत जी ने अपने लिए प्रेम और सौंदर्य के 'हिट्स' चुन लिए हैं और श्रृंगार वर्णन का उनका 'रेस' विशेष चमत्कारपूर्ण हुआ है। पत जी की यही रुचि-दिशा है। उनकी रुचि कोमल अथच मार्जित है।···उनकी कल्पना के साथ उनकी यह रुचि मिलकर उनकी कविता को रमणीय अथच आकर्षक वेश-भूषा से सज्जित करती—यह साज-सज्जा आधुनिक हिंदी में और कहीं नहीं देख पड़ती। पंत जी की

'पल्लव' के प्रकाशन ने द्विवेदी जी से धीर व्यक्ति को तक छायावाद की छाया से त्रस्त कर दिया। सन् १९२७ की मई मास की सरस्वती मे उन्होने एक लेख 'आजकल के हिंन्दी कवि और कविता' लिखा, सुकवि किंकर के छद्मनाम से। इसके अतिरिक्त 'द्विरेफ' उपनाम से उन्होने छायावादी 'कवित्वहुता

इस रुचि से हिन्दी खड़ी बोली को ईप्सित फल प्राप्त हुए हैं—सरस, सार्थक शब्दसृष्टि, सुगेय छद और सुदर प्रशस्त भाषा। शब्द साधना मे पत जी ने सस्कृत से सहायता ली है, यद्यपि शब्द प्रतिमाएँ अगरेजी कला-कौशल से खड़ी की गई है। भाषा, छन्द और शब्दालकरण का महत्व समीक्षकगण यह कह कर अपहरण कर लेते हैं कि उनसे भावतन्मयता को क्षति पहुँचती है, और इस प्रकार बहिरग को सजाकर अतरग रुग्ण बना रहने दिया जाता है, पर ऐसे आरोपो पर हमे ध्यान नही देना चाहिए। काव्य मे बहिरग और अतरंग का ऐसा कहीं भेद नही है। सार्थक, सुप्रयुक्त शब्द, यथायोग्य छद—ये सब भावो के अभिन्न अग है। बाह्य और अतरग यहाँ कुछ नहीं। भावो को स्वरूप देने वाले शब्द ही काव्य में सब कुछ है, अन्यथा भावो की सत्ता ही कहाँ रहती? 'रमणीयार्थ-प्रतिपादक शब्द' को काव्य कहते हुए सस्कृत आचार्य ने इसी तत्व को प्रकट किया था जिसे हम आज बहिरग और अतरग के भ्रम में भुलाना चाहते हैं। पत जी ने अपने समय की खडी बोली को सस्कृत की शब्दयष्टि देकर दृढ़ किया, हिंदी के अनुरूप अनेक प्रयोग आविष्कृत किए और भाषा में एक नई ही छटा ला दी। उन्होने खड़ी बोली को भावाभिव्यक्ति की विशेष शक्ति प्रदान की। समीक्षकगण भाषा और भावों का चाहे जो संबध स्थापित करें, परन्तु पत जी ने अपनी खड़ी बोली को स्वस्थ स्वरूप देकर उसे भावप्रसूति के अधिक उपयुक्त बनाया और उनके इस प्रयास मे भाषा और भाव अलग नही—बाह्य और अतरग नहीं—वरन् काव्य का सर्वांगीण विकास करते देख पडते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि खडी बोली को उस समय अपने अवयव सगठन की परम आवश्यकता थी अन्यथा स्वय हिन्दी कविता उसी पुरानी दुर्बल दशा में पडी रहती। भाव और भाषा का यह अभिन्न संबंध समझने में पंत जी को प्रारंभ से ही द्विविधा नहीं थी, यह भी समय को देखते हुए उनकी प्रतिभा का प्रमाण है।"

छोकरो' को पर्याप्त चेतावनी भी दी। अपनी चेतावनी एव आलोचना द्वारा उन्होने काव्य के नए रूपको, उपमानो-प्रतिमानो, भाषा-व्याकरण तथा विराम, अर्ध-विराम, प्रश्न चिह्नो के प्रयोगो को दूषित और निरर्थक कहा। द्विवेदी जी की वयोवृद्ध, व्याकरणनिष्ठ दृष्टि को छायावादी नवीन प्रयोग हिन्दी के विकास और समृद्धि के लिए घातक लगे। उन्होने स्वय हिंदी को परिष्कृत किया था— व्याकरण के नियमो से बाँधकर एक आदर्श स्थिति पर पहुँचाया था। परिणामत. छायावादियो की अपरिचित एव नई काव्य शैली, नए प्रतीक, व्याकरण की स्वच्छन्दता उन्हे हिन्दी के लिए घातक लगी। उन्होने उत्साही नवयुवको को अनुचित मार्ग का अनुसरण करने के लिए सावधान किया और 'छायावाद' के अर्थ का स्पष्टीकरण माँगा—"छायावाद से लोगो का क्या मतलब है, कुछ समझ मे नही आता। शायद उनका मतलब है किसी कविता के भावो की छाया यदि कही अन्यत्र जाकर पडे तो उसे छायावाद-कविता कहना चाहिए।" छायावाद के प्रति द्विवेदी जी की 'हित-चिंतना' दृष्टि ने उनकी आलोचना को प्रखर बना दिया। इस आलोचना का मुख्य लक्ष्य उन्होने पत और उनकी कविता को बनाया। "वे अपनी ही मनस्तुष्टि के लिए

"मध्यकाल के शृंगारी कवियो के विकास से पंत जी के विकास में यही मुख्य अंतर है। उनका वियोग-पक्ष सर्वत्र कल्पना-प्रसूत होने के कारण अधिक संयमित, शुद्ध और अनुभूतिप्रद हुआ है।"

नंददुलारे वाजपेयी : हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी (१९४५)
(लोकभारती प्रकाशन, सामान्य सस्करण, इलाहाबाद १९७० पृष्ठ १८६-१८८ तथा १९३

"खड़ी बोली को काव्योचित भाषा देने का एकच्छत्र श्रेय पंत को है। . . भाषा के परिमार्जन में पत का महत्व इसलिए और भी बढ़ जाता है कि ब्रज भाषा को मधुर बनाने के लिए, अढाई-तीन सौ वर्षों के बीच में एक के बाद एक सैकड़ो कवियो का सहयोग मिलता गया किंतु पंत को अकेले ही खड़ी बोली का सौंदर्य-विन्यास करना पडा है। उन्होने खड़ीबोली को जो व्यक्तित्व दे दिया है उसका अतिक्रम कर आज भी कोई आगे नही जा सका है।"

शांतिप्रिय द्विवेदी : युग और साहित्य (तृतीय सस्करण) इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, पृष्ठ ३३३

कविता लिखते है। यदि ये लोग अपने ही लिए कविता करते है तो अपनी कविताओ का प्रकाशन क्यो करते है ? प्रकाशन भी कैसा ? मनोहर टाइप मे, बहुमूल्य कागज पर, अनोखे अनोखे चित्रो से सुसज्जित, टेढी-मेढी और ऊँची-नीची पक्तियो मे, रग-बिरगे बेल-बूटो से अलकृत। यह इतना ठाठ-बाट—यह इतना आडम्बर—दूसरो ही को रिझाने के लिए हो सकता है॰ ॰ ।

"एक कविता का नाम है—"तब फिर" ? जरा इस नाम की विलक्षणता पर भी ध्यान दीजिएगा। कविता नीचे देखिए—

तब फिर कैसा होगा मात !

. ...

क्या न बनी थी पुरी अयोध्या पञ्चवटी के भी बन मे।

पाठक कृपापूर्वक बतलावें कि इस गोरखधन्धे से वे क्या समझे।... ... अच्छा, कवि का भाव क्या है, यह बताइए और इन सतरो को पढ कर आप पर कुछ असर भी हुआ या नही, ॰ क्या यह शब्दाडम्बर ही मात्र नही। क्या इसके पाठ से आपका हृदय कुछ भी चमत्कृत हुआ ?"[1]

---

१. महावीर प्रसाद द्विवेदी : 'सञ्चयन' पृ० ६३—११०
देखिए :—"छायावाद की सुकुमार काव्यधारा को अपने जन्म से ही आलोचना की तीव्र दृष्टि सहनी पड़ी। उस समय उसकी भावभूमि इतनी अस्पष्ट थी कि नासमझी और रूढ़िवादिता के कारण स्वागत की अपेक्षा उसे परिहास, व्यग्य, विरोध तथा संकीर्णता का निरंतर सामना करना पडा। किंतु द्विवेदी-युग की बाह्योन्मुखी अनगढ़ अनरस कविता की स्वाभाविक प्रतिक्रिया एवं परिणति होने के कारण छायावाद उन समस्त विरोधो के समक्ष अप्रत्याशित रूप से विजयी हुआ और उसकी अदम्य शक्ति, अभिनव सौंदर्य तथा अतिशय सुकुमारता ने उस युग की सामान्य साहित्यिक चेतना को विमुग्ध कर दिया। कदाचित् इस विजयोन्माद तथा अन्य अनेक कारणो ने छायावाद की जिन गंभीरतम आलोचना और नवीनतम व्याख्याओ की सृष्टि की, वे भी उसकी वास्तविक भावभूमि को समझने में पूर्णतया सक्षम नहीं सिद्ध हुईं। अनेक गण्यमान छायावादी कवियो तथा उन्हीं से प्रभावित कई आलोचको ने उसे अध्यात्मवाद के

इसी स्वर मे रामचद्र शुल्क के कवित्तो के माध्यम से छायावाद की आलोचना मुखर एव जन-प्रिय हो गई, उनकी आलोचना का मुख्य लक्ष्य थे निराला।

भारी गौरव से अभिषिक्त कर दिया, जिसको साहित्यिक शब्दावली में रहस्यवाद और सर्वात्मवाद की सज्ञा मिली।"

जगदीश गुप्त : 'नयी कविता स्वरूप और समस्याएँ' (भारतीय ज्ञानपीठ, प्रथम संस्करण) पृ० ३६१

"छायावाद के विरुद्ध ···बे-सिर-पैर की आलोचनाओ का सूत्रपात उसके शैशव-काल मे ही हो चला था।···इसके अतिरिक्त सर्वथा ग्राम्य, असभ्य और उपहासास्पद रूप से कवियो पर व्यक्तिगत आक्षेप करके छायावाद को 'कादम्बरी' के पुडरीक के प्रेम की तरह उत्पत्ति काल मे ही और उसके आश्रय-आलबनो के साथ-साथ नष्ट कर डालने के लिए जो व्यूह-निर्माण हुआ··· ·। पंत ने द्विवेदी जी की आलोचना को ही किस तरह अपनी ढाल के अनुरूप प्रयुक्त किया था, यह देखकर हम छायावाद के उत्पत्ति-काल की वस्तुस्थिति से परिचित हो सकते हैं—

'व्यास, कालिदास के होते हुए, तथा सूर-तुलसी के अमर काव्यो के होते हुए भी ये कवियशोलिप्सु, कवित्वहन्ता, छायावाद के छोकड़े कमल-यमल, अरविन्द-मलिन्द आदि अनोखे-अनोखे उपनामो की लांगूल लगा, काँमा-फुल्स्टापों से जर्जरित, प्रश्न-आश्चर्य-चिह्नों के तीरो से मर्माहत··· ···ताम्र-पत्र-भोजपत्र को छोड़ बहुमूल्य कागज पर मनोहर टाइप में अनोखे-अनोखे चित्रो को सजधज तथा उत्सव के साथ छपवाकर जो 'विन्ध्यस्तरेत्सागरम्' की चेष्टा कर रहे है, यह सरासर इनकी हिमाकत, धृष्टता, अहम्मन्यता तथा 'हम चुनीं दीगरे नेस्त' के सिवा और क्या हो सकता है?'
पर इससे छायावाद मरा नहीं। यह सिद्ध करता है कि उसमें प्राणवत्ता थी, नैसर्गिक बल था।··· ···'छायावाद' शब्द व्यजक के साथ-साथ वाचक भी हो गया। एक ओर यह नवीन हिंदी-काव्यधारा की संज्ञा बना, तो दूसरी ओर 'सुधा', 'माधुरी और 'चाँद' के कार्टूनो के लिए मसाला।
बहुत पहले एक निबंध पढ़ने का सुअवसर प्राप्त हुआ था—'रहस्यवाद या रतिरहस्य?' आलोचना असभ्यता और अशिष्टता की सीमायें छूती

'बात कर रहा है खडा खडा अपने आप ही
ज्ञात नही होता है कि सिडी है कि औलिया।'

× × ×

'कही बग-भग-पढ चकती चमक रही,
कही अगरेज़ी अनुवाद का अनाडीपन
ऐसे सिद्ध साइयो की माग मतवालो मे है,
काव्य मे न झूठे स्वाँग खीचते कभी है जन"

× × ×

कहाँ का अध्यात्म ? अरे ! कैसी ब्रह्म लिप्सा यह—
वासना का लम्बा-चौडा रूप विकराल अति,
देह के मलो का यह सागर अपार !
कायवृत्तियो का झझावात, झूठ की प्रचड गति !

पत के लिए छायावाद पर ये आक्षेप असह्य थे। व्यक्तिगत आक्षेप वे सह सकते है, मामूली बात है, "कहने दो, मेरा क्या बिगडेगा। मैंने ऐसी बातो की कभी चिंता नही की, जब छोटा था, युवक था तब भी नही।' किंतु यह तो एक काव्य-शैली, समस्त छायावाद के अस्तित्व और मूल्य, युग-चेतना की सहज अभिव्यक्ति पर प्रहार था। रत्नाकर जी ने जब हिंदी को पद्य-भाषा के रूप मे अक्षम कहा था तब पत ने 'पल्लव' की भूमिका मे उन्हे उत्तर दिया। यह उनके लिए न मात्र वैयाक्तिक मूल्य की बात थी और न खडी बोली हिन्दी की स्थापना का ही प्रश्न था। हिन्दी स्वीकृत हो चुकी थी—द्विवेदी जी ने अपने सतत प्रयास से उसकी प्राण प्रतिष्ठा कर दी थी। छायावादी विरोधियो द्वारा

जा रही थी। ... 'उस समय से आज तक इसकी जो परिभाषाएँ दी गई हैं, उनमें से अधिकांश अतिव्याप्त हैं, या अव्याप्त। कारण यह है कि इन्हें प्रायः व्युत्पत्तिमूलकता के साँचे मे ढालने का प्रयत्न किया गया, जो कभी छायावाद के नामकरण का आधार रहा ही नहीं।"

विश्नाथ सिंह : छायावाद और रहस्यवाद

'छायावाद और प्रगतिवाद' सपादक : देवेंद्रनाथ शर्मा पृ० १–३

'ग्रंथमाला कार्यालय, पटना-४ स० २००७

देखिए, 'सुमित्रानंदन पंत : जीवन और साहित्य' प्रथम खण्ड, पृ० १७६

यह हिन्दी की क्षमताओ, उसके जीवत रूप, राष्ट्रभाषा के स्वरूप एव जन मन तक व्याप्त होने की शक्ति पर कुठाराघात था। "जो सत्य है उसे न छिपाया जा सकता है और न उसके बारे मे कहने मे व्यक्तिगत प्रतिष्ठा, स्वार्थ या लज्जा ही निहित है।" अत. पत ने 'वीणा' की भूमिका[1] मे खुलेआम तथा गुजन की कविता मे परोक्ष रूप से द्विवेदी जी को उत्तर दे दिया।[2]

तेरा कैसा गान,
... ...

न पिक प्रतिभा का कर अभिमान,
मनन कर, मनन, शकुनि-नादान!
हँसते हैं विद्वान,
गीत खग, तुझ पर सब विद्वान![3]

पत के इसी स्वर को अधिक तीव्र बनाते हुए बच्चन जी ने भी अपना आक्रोश व्यक्त किया·

धरा कितनी विकराल
झुलाती मद मृदुल वह डाल,
कठोरा यह काँटो की जाल
यहाँ पर आँखें लाल निकाल!
तक रहे वृद्ध विडाल![4]

और "कलकत्ते के 'नारायण' मे श्री गुलाबरत्न जी वाजपेयी 'गुलाब' ने लिखा था—

---

१. 'शिल्प और दर्शन' पृ० ३४-३५। प्रकाशक : राम नारायण लाल बेनी माधव-इलाहाबाद (१९६१)

२. देखिए 'सुमित्रानंदन पत : जीवन और साहित्य', प्रथम खण्ड, पृष्ठ २१८-२२०

३. 'गुंजन', पृ० १०५

४. बच्चन : 'प्रारंभिक रचनाएँ', भाग २

सो जाओ हे वृद्ध कपाल
इस प्रचण्ड अधड के सम्मुख
ग्रीष्मकाल की वायु विफल ।"[1]

द्विवेदी जी का क्रोध शात-हुआ, पत की भूमिका को रूपातरित करवाने एव पत को द्विवेदी स्वर्ण-पदक प्रदान करने[2] तथा द्विवेदी मेला[3] के अवसर पर उनको भूरि-भूरि आशीर्वाद देने के पश्चात् । और पत, यदि उनमे आक्रोश आरोपित (बाह्यारोपित) किया ही जाय तो वे 'वीणा' की भूमिका लिखने के साथ ही आश्वस्त हो गए कि उन्होंने अपनी भूमिका द्वारा तथ्य का स्पष्टीकरण कर दिया है । 'वीणा' की उस समय (१९२७) की अप्रकाशित भूमिका जो सर्वप्रथम, 'गद्यपथ' मे प्रकाश मे आई और अब 'शिल्प और दर्शन' मे सगृहीत है पत की आवेशपूर्ण व्यग्योक्ति को अभिव्यक्ति देती है जो सत्यनिष्ठ और आत्मविश्वासपूर्ण है तथा जो 'छायावाद' की सफलता का तिलक है ।

द्विवेदी जी और पत एव नयी पीढी और पुरानी पीढी का उस समय का द्वद्व अपने अतरतम मे निष्कलुष था। उसमे आवेश था, सत्य के प्रति आग्रह था, शब्दो और अभिव्यक्ति मे कठोरता और जोश था किंतु दोनो ही हिंदी के हितेषी थे, साहित्य प्रेमी, अध्ययन-मनन-सृजन, देशसेवा और भाषा प्रेम के एकात साधक । द्विवेदी जी चाहते थे कि यह नवयुवक छायावादी कवि (पत) व्यापक मनन-अध्ययन करे, चिंतन तथा अनुभव द्वारा अपनी प्रतिभा का पूर्ण विकास करे ।[4] और जब उन्हे यह विश्वास हो गया कि पत मे 'महाकवि'[5]

---

१. दिनकर : 'मिट्टी की ओर'

२. सन् '३० मे, काशी नागरी प्रचारिणी सभा के समारोह मे, पंत की अनुपस्थिति में द्विवेदी जी ने उन्हे स्वर्ण पदक प्रदान किया (देखिए 'सुमित्रानंदन पंत : जीवन और साहित्य' प्रथम खण्ड, पृ० २४६) तथा कहा, "मैं सरस्वती से प्रार्थना करता हूँ कि वे कमल वन में विचरण करना छोड़ कर पंत जी की जिह्वा पर विराजें ।"
बच्चन : 'कवियो में सौम्य संत', पृ० १७९

३. सुमित्रानंदन पंत : जीवन और साहित्य, 'प्रथम खण्ड', पृ० २८४–२८५

४. महावीर प्रसाद द्विवेदी : 'सञ्चयन', पृ० ६५–७२ तथा ९०–११५

५. 'सुमित्रानंदन पंत : जीवन और साहित्य', प्रथम खण्ड, पृ० २८५

के लक्षण हैं तो उनका दिखावटी आक्रोश निर्मल आशीर्वाद के रूप मे बरस गया। पत का जीवन अध्ययन-मनन का जीवन रहा है। 'लघु कौमुदी', 'कण्ठा-भरण, 'काव्य प्रभाकर', 'छद प्रभाकर' आदि पिंगल तथा अलकार ग्रथो तथा सस्कृत व्याकरण की पुस्तक का अध्ययन करने के साथ ही उन्होने हिंदी को उसकी जननी सस्कृत के सदर्भ मे गहराई से पहचानना सीख लिया। यही कारण है कि उन्होने न केवल तत्सम और तत्भव शब्दो का सहजता से प्रयोग किया है वरन हिंदी कोष को अनेक नए शब्दो से सुसपन्न[1] करने के साथ ही उसकी व्याकरण अलकार आदि की रूढिबद्धता को वैज्ञानिक रूप दिया है। एक छोटे से शब्द को स्वीकार करने के पहिले वह उसके विस्तृत स्वरूप—ध्वनि, सौदर्य, व्युत्पत्ति—के बारे मे न केवल स्वय ही विचारमग्न हो जाते है वरन् अधि-कारी व्यक्तियो से साथ चिन्तना भी करते है। ज्ञान प्राप्त करने के बारे मे उनके मन मे किसी प्रकार का प्रतिबध नही हैं। वे राह चलते से भी उन्मुक्त होकर पूछ सकते है, उनसे भी जो कटु आलोचक, वैयक्तिक कुठायुक्त प्रतिस्पर्धी बने रहते है—"अरे सीखने का क्या है, बच्चे से भी सीखा जा सकता है।" "उससे न पूछूँ, कैसी बात करती हो ? उसके मन मे जो भी हो, मेरे मन मे तो उसके प्रति कोई मलिन भाव नही है। वह जैसा भी हो, मैं उसे अच्छा ही मानता हूँ।"

तीर-चार शब्द-कोश पत के तख्त के गद्दे के नीचे सदैव दबे मिलेंगे, और इतने ही अथवा इससे अधिक उनकी लिखने की मेज के आसपास, इल्मारियो की बात तो छोड ही देनी चाहिए। किसी भी अच्छे शब्दकोश की बात सुनी कि वे मँगाने को व्याकुल हो जाते है। कुछ शब्द कोशो की तो दो-दो प्रतियाँ उनके पास है। पत के अध्ययन-मनन तथा एकाग्रता के साथ अद्वितीय प्रतिभा का ही यह परिणाम है कि उनका भाषा, भाव और छद पर अनुपम अधिकार है। शब्द उनकी भावो की सरिता की गति के अनुरूप ही कल-कल करते है। उनके 'काव्य-शिल्प की निर्दोषता', 'छद पर अधिकार' शब्दो की स्निग्धता, सगीत और ध्वनि का तादात्म्य, चित्रमत्ता और अर्थवत्ता अन्यत्र दुर्लभ ही है। और इन सब पर विहँसता हुआ उनका सृजन है जो स्वत. स्फुरित होता है, जिसके लिए प्राध्यापक की नियमबद्ध कुर्सी की आव-

---

१. "अनेक नियमोचित संधिज शब्दों का किसी भी अन्य हिन्दी कवि की तुलना मे पंत जी ने बृहत् निर्माण किया है।"
रामकुमार सिंह : 'आधुनिक हिन्दी काव्य भाषा', पृ० ६१८

श्यकता नही होती तथा यह कहना हास्यास्पद ही लगता है कि "मेरे अनुमान से पत जी काव्य-कर्म का नित्यप्रति निर्वाह करते है। वे कुछ घटे प्रतिदिन काव्य-सृजन मे लगाते है, ठीक उसी तरह जैसे मैं प्रति दिन तीन घटे शिक्षण कार्य मे लगाता हूँ।"[1] पत की सृजन प्रेरणा ऐसे किसी बधन को नही मानती है, सृजन कार्य नियमित रूप से बैठकर भाषण तैयार करने या हल्की पाठ्य-पुस्तक तैयार करने से नितात भिन्न है।

पत और द्विवेदी जी का विरोध सैद्धातिक था, सच्चे साहित्य प्रेम का परिणाम था अत वह आत्मिक एव वैयक्तिक विरोध और कलुषता से अछूता था। वयोवृद्ध द्विवेदी जी को जब अपने साहित्यिक पुत्र की प्रतिभा और योग्यता का प्रमाण मिल गया तो उनका उसके प्रति निश्छल प्रेम अभिव्यक्त हो गया। यह अभिव्यक्ति ही मानो छायावाद का पूर्ण प्रस्फुटन थी जिसे द्विवेदी जी के अतिरिक्त रामचद्र शुक्ल, रत्नाकरजी, हरिऔध जी, शुकदेव विहारी मिश्र[2] पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी आदि सभी वयोवृद्ध पीढियो, साहित्य कुल के पितामहो और आचार्यों का आशीर्वाद मिल गया।

पंतः छायावादी कवि

पत को प्रथम प्रसिद्धि 'छायावादी कवि' के रूप मे ही मिली। छायावाद के कवि-चतुष्टय मे उनकी गणना है। इस चतुष्टय मे वय के आधार पर प्रसाद, निराला, पत और महादेवी क्रम से आते हैं। वैसे प्रसिद्धि के आधार पर प्रथम तीन बृहत्त्रयी के अग हैं और महादेवी लघुत्रयी या वर्मा त्रयी की।

प्रसाद ने पहिले ब्रजभाषा मे कविताएँ लिखी जिनका मकलन उन्होंने 'चित्राधार' मे किया। फिर वे खडी बोली की ओर झुके। 'कानन कुसुम', 'महाराणा का महत्व,' 'करुणालय', 'प्रेम पथिक' की रचनाएँ १६२० ई० के पूर्व की रचनाएँ है जो द्विवेदीयुगीन विशिष्टता या श्रीधर पाठक के अतुकात रचना के ढग की है। सन् १६१८ मे प्रसाद का 'झरना' प्रकाशित हुआ जिसमे

---

१. प्रकाश चन्द्र गुप्त : लम्बी काव्य-यात्रा के चरण-चिह्न। कथा, वर्ष : १ अंक २ पृ० ७७

२. शुकदेव विहारी मिश्र का कहना था, "मैं हिन्दी में केवल नवरत्नो को ही महाकवि मानता आया हूँ, किंतु 'पल्लव' पढकर मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि यह बालक भी महाकवि है।"
दिनकर, : 'मिट्टी की ओर', (१६४६) पृ० ५

सकलित "२४ कविताओ मे उस समय नूतन पद्धति पर निकलती हुई कविताओ से कोई ऐसी विशिष्टता नही थी जिस पर ध्यान जाता। दूसरे सस्करण मे, जो बहुत पीछे सवत् १६८४ (सन् १६२७) मे निकला, पुस्तक का स्वरूप ही बदल गया। उसमे आधी से ऊपर अर्थात् ३१ नई रचनाएँ जोडी गईं जिनमे पूरा रहस्यवाद, अभिव्यजना का अनूठापन, व्यजक चित्र-विधान सब कुछ मिल जाता है।"[१] अथवा 'झरना' का द्वितीय सस्करण छायावादी विशेषता, अभिव्यजना की नवीनता, चित्रमत्ता, कोमलकात पदावली, मधुमयी प्रवृत्ति आदि से युक्त था। सन् १६३१ मे 'आँसू' तथा इसके पश्चात् 'कामायनी' ने प्रसाद को छायावादी काव्य का अग्रणी सिद्ध कर दिया।

रचना तथा रचना प्रकाशन की समय-सारिणी पत को 'छायावाद' मे एक विशिष्ट स्थान प्रदान करती है। रामचद्र शुक्ल के अनुसार, "इसके ('झरना' के द्वितीय सस्करण) पहले श्री सुमित्रानन्दन पत का 'पल्लव' बडी धूम-धाम से निकल चुका था, जिसमे रहस्य-भावना तो कही कही पर, अप्रस्तुत विधान, चित्रमयी भाषा और लाक्षणिक वैचित्र्य आदि विशेषताएँ अत्यत प्रचुर परिमाण मे सर्वत्र दिखाई पडी थी।"[२] इस मतव्य का अनुमोदन ज्ञान-मण्डल द्वारा प्रकाशित हिन्दी साहित्य कोश मे मिलता है। "१६२७ ई० मे 'झरना' का दूसरा सस्करण ३१ नयी कविताओ को जोडकर प्रकाशित हुआ। यहाँ हमे स्मरण रखना होगा कि अब तक पत की 'वीणा', 'ग्रथि' और 'पल्लव' प्रकाशित हो चुके थे। 'निराला' की स्फुट कविताएँ पत्र-पत्रिकाओ मे छपने लगी थी। तात्पर्य यह कि छायावादी कविता अपने पूर्ण उन्मेष को प्राप्त कर चुकी थी।"[३] पत का रचना-काल सन् १६१८ ई० से माना जाता है।[४] 'वीणा' और 'ग्रथि' की रचना वह सन् १६२० तक कर चुके थे।[५] जनवरी १६२२ मे 'उच्छ्वास' प्रकाशित हो गया था। नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार

---

१. रामचंद्र शुक्ल, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पृ० ८१८ (सन् ११३०)

२. वही, पृ० ८१८

३. हिन्दी साहित्य कोश, प्रथम खण्ड, पृ० २६७

४. वही। किंतु पंत का रचना-काल सन् '१६ से प्रारंभ होता है जब उन्होने हार लिखा था।

५ साहित्य कोश ने 'वीणा', 'ग्रन्थि' का प्रकाशन काल १६२० लिखा है जो मिथ्या है। देखिए 'सुमित्रानदन पत, जीवन और साहित्य' प्रथम खण्ड अध्याय ८

"साहित्यिक दृष्टि से छायावादी काव्यशैली का वास्तविक अभ्युदय सन् १६२० के पूर्व-पश्चात् सुमित्रानदन पत की 'उच्छ्वास' नाम की काव्य पुस्तिका के साथ माना जा सकता है। इस तथ्य को पत जी के समकालीन कवि मित्र निराला-जी ने स्वत स्वीकार किया है। फिर छायावादी काव्य-शैली की अपेक्षा निरालाजी के काव्य मे स्वच्छदतावादी भावधारा का अधिक गहरा पुट है। इसे भी अस्वीकार नही किया जा सकता। प्रसाद जी के 'आँसू' का प्रकाशन सन् '२५ के आसपास हुआ। तब तक निराला और पत ही नही, 'प्रभा' के अनेक कवि तथा 'कुसुम', 'वियोगी', 'द्विज' आदि भी छायावादी काव्यक्षेत्र मे आ चुके थे। इस समय तक छायावाद एक विशिष्ट काव्य-शैली से आगे बढ-कर काव्यादोलन का रूप ग्रहण कर चुका था।"[१] इसी भाँति हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है, "छायावाद का महान आदोलन पत के समान नेता पाने से तेजी से लोकप्रिय हो गया।" रामकुमार वर्मा का दृढ मत है कि "पत जी को छायावाद का प्रवर्तक कवि मानना चाहिए क्यो कि छायावाद की मूलाधार प्रवृत्ति प्रतीको के माध्यम से पार्थिव जगत की व्यजना है और जीवन-गत सत्य को उसके वास्तविक रूप मे पहिचानने की एक अभिव्यजनात्मक

---

१. 'अवन्तिका' वर्ष २ : अक १ (जनवरी १६५४) पृ० १६१

तथा देखिए, "पल्लव का प्रकाशन हिन्दी कविता के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। इसके बाद ही 'छायावाद' की प्रतिष्ठा हिंदी साहित्य में एक वाद के रूप में हुई। 'पल्लव' के 'प्रवेश' द्वारा कवि ने पहली बार ब्रजभाषा की निस्पंदता और शक्तिहीनता की ओर साहित्य महारथियों का ध्यान आकृष्ट किया और उसकी तुलना मे खड़ी बोली के शब्द सौंदर्य, उच्चारण-संगीत और प्राणवत्ता की उद्बाहु उद्घोषणा की।"

आनंद नारायण शर्मा, 'कवि पंत की काव्य साधना' नई धारा, मई १६६४ पृ० ५

"शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से देखा जाय तो पत छायावाद के प्रवर्तक कवि हैं क्यों कि छायावाद का जो उत्कर्ष उनके 'उच्छ्वास' में दिखाई देता है वह उसके पहले प्रसाद में नहीं मिलता है। 'उच्छ्वास' रचना को देखकर शिवाधार पांडे ने इसे नया युग कहा था।"

एन० पी० कुट्टन पिल्लै, 'पत छायावादी व्यक्तित्व और कृतित्व', पृ० ३६ जय प्रकाशन, लिंगमपल्ली, हैदराबाद-२७ प्रथम सस्करण १६७०

प्रक्रिया है। प्रसाद और निराला वास्तव मे काव्य के सजग और भावुक कलाकार अवश्य है क्यो कि दोनो ने ही अपने-अपने ढग से खडी बोली काव्य को एक कलात्मक मोड देने का प्रयत्न किया है। प्रसाद भावना के सर्वश्रेष्ठ कवि है उन्होने 'आँसू', 'झरना' और 'लहर' के माध्यम से प्रकृति के मगलमय सौदर्य को अपनी व्यक्तिनिष्ठ भावना से उभारने का प्रयास किया है। निराला ने दर्शन का आश्रय ग्रहण कर एक क्राति की उद्‌भावना से विद्रोही स्वर मुखरित किया। कालान्तर मे भले ही प्रसाद और निराला ने भावना को लेकर प्रतीको का सृजन किया है। किंतु इन प्रतीको को लेकर बिंबवाद का वास्तविक कलात्मक रूप पत के काव्य मे ही दृष्टिगोचर हुआ और इसलिए मैं, प्रसाद और निराला को नही, पत को छायावाद का प्रवर्तक कवि मानता हूँ।'

"इसके साथ ही साथ सौंदर्य बोध की एक दूसरी ही बात है। प्रसाद और निराला के काव्य मे सौदर्य केवल वर्णन वैचित्र्य मे है किंतु पत के काव्य मे सौदर्य लाक्षणिक और व्यजनात्मक दोनो प्रकार से है और इसीलिए जब प्रतीक तथा सौंदर्य दोनो ही एक भावना बिन्दु पर सिमट कर एकाकार हो जाते है तो भाषा का रूप भी कोमल एव ध्वन्यात्मक हो जाता है। यही कारण है कि पत को मैं एक युगातर कवि मानता हूँ। जिसकी पृष्ठ-भूमि प्रसाद और निराला के द्वारा प्रस्तुत की गई थी।

"नाटको के क्षेत्र मे प्रसाद निश्चय ही युगातरकारी हैं, इसी प्रकार प्रगतिशील कथा साहित्य मे निराला, किंतु काव्य के क्षेत्र मे यह श्रेय मैं पत को देता हूँ।"[1]

सन् १९१९ से सन् १९३५ तक पत-काव्य एक प्रभावपूर्ण एव प्रेरणाप्रद काव्य के रूप मे साहित्य प्रेमियो, युवक प्रतिभाओ को आनन्द-उल्लास मे निमज्जित करता रहा। दिनकर जी का कहना है, "खडी बोली के परुष रूप को गलाकर मोम बनाने मे जितनी सफलता पत जी को मिली, उतनी और किसी को नही। यह पत जी का ऐतिहासिक कार्य है जिसकी महत्ता आगे की शताब्दिया भी स्वीकार करेंगी। ......इसमे कोई सदेह नही कि अनुकर्त्ता सबसे अधिक पतजी ने ही उत्पन्न किए। छायावाद-युग मे और नही तो पच्चीस-तीस कवि तो ऐसे जरूर थे, जो पतजी की भाषा और शैली के चारो

१. भेंट-वार्ता ३-७-'६९

ओर चक्कर काटते थे।[1] अथवा "१९२० से बाद की धारा के सम्राट् पत जी है, किंतु इस सत्य को उद्घोषित करना निरापद नही है, क्यो कि उनकी प्रतिद्वद्विता 'निराला' जी से है और जब 'प्रसाद' जी जीवित थे तब विवाद की कटुता* से बचने के लिए लोग इन दोनो कवियो के ऊपर उन्ही का नाम लिख देते थे।"[2]

"छायावाद की रूपरेखा को स्पष्ट करने और उसे लोक-स्वीकृति दिलाने का श्रेय बहुलाश मे पत को है। निराला, अवश्य ही, छायावाद के उन्नायक रहे और प्रसाद उसके आदरणीय अभ्यागत, पर छायावाद की समस्त उपलब्धियो और सीमाओ का पूर्ण प्रतिनिधित्व पत ने ही किया। यही कारण है कि अनेक आलोचको की छायावाद-विषयक स्थापनाएँ पत के काव्य पर ही

---

१ 'स्मृति-चित्र', पृ० १२६

२. दिनकर : 'मिट्टी की ओर' पृ० १२९

*इसके लिए देखिए—नददुलारे वाजपेयी की पुस्तक 'हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी' मे प्रकाशित निराला का पत्र वाजपेयी जी के नाम

लोकभारती प्रकाशन, १९७०, पृ० १७७

तुलना कीजिए—"हिन्दी कविता की नई धारा (छायावाद) का प्रवर्तक इन्हीं को—विशेषतः मैथिलीशरण गुप्त और मुकुटधर पाण्डेय को समझना चाहिए।"

रामचंद्र शुल्क : 'हिंदी साहित्य का इतिहास', पृ० ७८४

विनयमोहन शर्मा तथा प्रभाकर माचवे के अनुसार छायावाद के प्रवर्तन का श्रेय हमें माखनलाल चतुर्वेदी को देना चाहिए।

"छायावाद के आदि कवि निराला और पंत हैं।… …मेरी समझ से प्रसाद की प्राथमिकता वयः कृत ही है।"

जानकीवल्लभ शास्त्री।

"आश्चर्य नहीं कि छायावादी ढ़ग की सर्वप्रथम स्फुट कविता भी प्रसाद जी द्वारा ही लिखी गई हो, पर तर्क के लिए यदि यह भी मान लिया जाए कि उस शैली की पहली स्फुट कविता किसी दूसरे कवि द्वारा रची गई तो भी छायावादी प्रवृत्ति को सर्वप्रथम संहत रूप से प्रवर्तित करने के कारण प्रसादजी ही पहले छायावादी कवि प्रमाणित होते हैं।"

इलाचंद्र जोशी।

अवस्थित हैं। यहाँ तक कि पतजी के 'युगात' के प्रकाशन पर श्री इलाचद्र जोशी ने छायावाद के विनाश की भविष्यवाणी कर दी थी।"[1] इस तथ्य का अनुमोदन नन्ददुलारे वाजपेयी के कथन मे मिलता है, "सन् १९१७-१८ से प्रारभ कर सन् '३० तक पतजी की काव्य-रचनाएँ 'पल्लव' शैली की कृतियाँ कही जा सकती है, यद्यपि वे सब-की-सब 'पल्लव' मे सचित नही है। ये सारी रचनाएँ मनोरम कल्पनाओ से आपूर्ण है और कही भी भरती की सूचना नही देती। इनमे एक स्वाभाविक विकास भूमि भी मिलती है। 'ग्रथि' की पक्तियाँ उन दिनो तरुण साहित्यकारो की जबान पर खेलती रहती थी। पत जी के पाठको की सख्या छायावादी कवियो मे सबसे अधिक रही है। उनके कुछ अन्य प्रगीत कल्पना की इकहरी छवियो से दीप्तिमान है।"[2] जगदीशचन्द्र माथुर अपनी 'तरुण स्मृतियो' के आधार पर कहते हैं, "इलाहाबाद मे उन दिनो न जाने कितने किशोर छात्रो की कल्पना को रगीनी और भावनाओ को माधुर्य मिला पत जी के व्यक्तित्व और कवित्व के कारण। अनेक परवर्ती प्रतिभाएँ जगी थी उसी प्रभात के आह्वान पर। उनके दर्शन (१९३४) न होने पर भी वे मेरे जैसे युवको के आराध्य हो चुके थे। सन् १९३४ के प्रयाग मे रहने वाले नवोदित साहित्यकार के लिए वही सजग कल्पना और मार्मिक अभिव्यजना की नीव-स्वरूप थे। नये कवियो की पाठ-शैली पर पत की छाप थी, नये लेखक की रचनाओ मे पत की शब्दावली अनायास मुखरित हो उठती थी। हम लोग उन दिनो अपने लेखो मे पतजी की पक्तियो को उसी सहज भाव से उद्धृत करते थे जैसे कीट्स, शैली को अपने अग्रेज़ी निबधो मे।

उस युग के प्रयाग के नवोदित भावुक साहित्यकार के लिए पत जी करीब-करीब क्लासिक बन चुके थे।"[3] बच्चन जी स्वीकार करते है कि सन् '३२ मे वे तथा नरेन्द्र जी पत की कविता के अनन्य भक्तो मे थे, "अभी वह दिन मुझे अच्छी तरह याद है जब हम दोनो साइकिल पर चढे, एक दूसरे के कधे पर

---

१ आनंद नारायण शर्मा : कवि पंत की काव्य साधना। नई धारा, मई १९-६४ पृ० ३

२ 'स्मृति चित्र', पृ० ११५

३. वही, पृ० १७४-१७५

तथा देखिए रामविलास शर्मा : 'निराला की साहित्य साधना', पृ० २२५

हाथ रखे, युनिवर्सिटी क्षेत्र मे गाते फिरते थे—कब से विलोकती तुमको उषा आ वातायन से ·· ।[1]

वस्तुत पंत-काव्य के प्रेमी पत के सन् १६१६ मे इलाहाबाद आगमन के साथ ही उत्पन्न हो गए थे । रामचद्र टण्डन ने इस बात की चर्चा की है, "मुझे १६१६ के उस कवि-सम्मेलन का भी स्मरण है, जिसने इलाहाबाद के कविता-प्रेमियो के हृदय मे पत के प्रति स्नेह, उत्साह और आस्था उत्पन्न की थी । यह सम्मेलन हिंदू बोर्डिंग हाउस के ही बलरामपुर हॉल मे आयोजित था । जिस कविता ने श्रोताओ को सचमुच मत्र-मुग्ध किया, वह पत की कविता (स्वप्न) थी ।"[2] रघुपति सहाय 'फिराक' ने बातचीत[3] के मध्य बतलाया कि 'उच्छ्वास' के प्रकाशित होने के साथ ही उन्होने वह पुस्तक पढी और "मुझे इतनी अच्छी लगी कि उसे गाया करता था ।"

७ जुलाई '७० को जब पत डॉ० धीरेन्द्र वर्मा से मिलने गए तो वहाँ डॉ० बाबूराम सक्सेना भी बैठे हुए थे । इधर-उधर की बाते करने के साथ उन्होने कहा, "सुमित्रानदन की कविताएँ इतने नए ढग की होती थी कि एकदम याद हो जाती थी ।" उच्छ्वास-पल्लव काल की स्मृति के आधार पर उन्होंने कई कविताएँ सुनाईं । डॉ० धीरेन्द्र वर्मा भी उसी प्रवाह मे बह गए, कुछ कविताएँ उन्होने भी सुनाईं, और फिर, हँसे, "घने लहरे रेशम के बाल—सुमित्रा के बाल इतने अच्छे थे कि मैंने जब तब छूने की अनुमति ले ली थी ।"

नि सदेह पत काव्य उस छायावाद का प्रतिनिधित्व करता है जो समस्त विरोधो के होते हुए भी, अपने अनिर्वचनीय सम्मोहन मे अद्वितीय है और जिस कारण कोमल कात पदावली का यह सौंदर्य चेता कवि अजाने ही पत-शाखा की स्थापना कर देता है ।

---

१. 'स्मृति चित्र', पृ० ४७
तथा "छायावाद से मेरा परिचय पंत के माध्यम से हुआ ।"
भगवतीचरण वर्मा से 'भेंट-वार्ता'
"पंत काव्य ने न केवल खडीबोली हिंदी प्रेमियो को प्रभावित किया वरन् उस समय के अंग्रेजी के विद्वान प्राध्यापको को भी । शिवाधार पाण्डेय ने यदि 'उच्छ्वास' पर लेख लिखा तो अमरनाथ झा ने भी एक समीक्षात्मक निबंध लिखा :"
'स्मृति-चित्र' पृ० ११५

२. वही, पृ० १८

३. ३०।६। '७०

१८

वादों का विश्व (क्रमशः)

'छायावाद', 'प्रगतिवाद', 'प्रयोगवाद' एवं नवीन धाराएँ तथा पंत साहित्य : सुन्दरम् सत्यं शिवम्

●

यद्यपि छायावाद की चेतना बीसवी शताब्दी को भ्रूणावस्था मे स्पदित होने लगी थी तथापि इसका जन्म—स्पष्ट अभिव्यक्ति और स्थापना—सन् '१८ से सन् '२२ के बीच हुआ। इस दृष्टि से 'छायावाद' विशेषण हिंदी की उस नवीन काव्य धारा को लक्षित करता है जो १६१८-१६२२ के मध्य प्रचलित हुई जब उच्छ्वास का भी प्रकाशन हुआ। सन् १६२६ मे पत के पल्लव का प्रकाशन भूमिका और काव्य, दोनो की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। उसकी भूमिका यदि युग प्रवर्तक मानी गई तो उसके काव्य ने छायावाद की सर्वोच्च सभावनाओ को अभिव्यक्ति दी है।

किंतु प्रकाशन के साथ ही जितनी फूत्कार 'पल्लव' को सहनी पडी उतनी शायद ही हिंदी के किसी अन्य काव्य को सहनी पडी होगी। छायावाद के प्रति सपूर्ण विद्वेष, प्रतिक्रिया और घृणा 'उच्छ्वास' और 'पल्लव' मे केन्द्रित हो गई। 'पल्लव' का कवि, जहाँ तक उसकी कवि प्रतिभा एव कवि-शक्ति का प्रश्न है, 'छुईमुई-सा' नही था। वह आत्मविश्वासी, अध्यवसायी, मौलिक प्रतिभा से युक्त दबग युवक था। उसने 'पल्लव'[1] और 'वीणा' की भूमिका

---

१. "रीतिकाल के नीतिगलित एवं रूढ़िबद्ध काव्य पर पल्लव की भूमिका में किए गए उनके (पत) प्रबल प्रहार ने उसके आधुनिक समर्थकों के छक्के छुड़ा दिये थे। छायावाद का अनुचित विरोध करने पर आचार्य महावीर-प्रसाद द्विवेदी और आचार्य रामचद्र शुक्ल जैसे विद्वानो के आरोपों का खण्डन कर जिस योग्यता एवं निर्भीकता से उन्होंने छायावादी काव्य की

मे निष्पक्ष एव वस्तुगत स्तर पर उस तथ्य को रख दिया जो साहित्य के इतिहास की निधि है। महावीर प्रसाद द्विवेदी तो छायावादी भाव, भाषा और अलकरण से क्षुब्ध थे ही, उनके साथ ही पद्म सिंह शर्मा, लाला भगवान् दीन[1] रामचद्र शुक्ल, श्याम सुदर दास, हरीऔध, रत्नाकर, मिश्रबधु, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, सुशीलकुमार आदि ने भी छायावादियो के प्रति अपने असतोष को अनेक प्रकार से व्यक्त किया। पद्मसिंह शर्मा ने तो छायावाद पर अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए 'वीणा' और पल्लव, के कवि को सबोधित किया, "कविता-वल्लरी को प्रतिभा के वारि से सीचकर 'पल्लव' निकालिए, खुशी से उसकी छाया मे बैठकर 'वीणा' बजाइए, पर काव्य-कानन के कल्पवृक्षो की जड पर—चन्दन, चम्पक और सहकार आदि के मूल पर—कुमति-कुठार न चलाइये। 'पल्लव' के नोकीले, और जहरीले काँटे इनके दिल मे न चुभाइये, 'वीणा' मे सोहनी के स्वर छेडिये, 'मारू राग' न बजाइये।"[2] पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने शिवाधार पाण्डेय का 'उच्छ्वास'

उत्कृष्टता प्रतिपादित की वह विस्मयकारिणी है। अपनी अतः प्रेरणाओ के कारण जब-जब उन्होने अपनी काव्यधारा को नयी दिशा दी, तब-तब उनके पुराने प्रशसको में कुछ हताश हुए, कुछ क्षुब्ध, किंतु अन्यों के समर्थन या विरोध का विचार कर उन्होंने अपनी आत्मा के स्वर को कभी रुद्ध नही किया। यह उनकी दृढ़ सकल्पशक्ति का असन्दिग्ध प्रमाण है। यह भी नहीं कि केवल साहित्य क्षेत्र मे उनकी यह व्यक्त हुई हो। कर्म-क्षेत्र में भी स्वीकृत उत्तरदायित्व का निर्वाह करने में वे पश्चात्पद नहीं हुए।"
विष्णुकान्त शास्त्री, श्रेयस् सन्धानी कवि पंत। ज्ञानोदय : जून १९६६ पृष्ठ १४

१ लाला भगवानदीन ने छायावाद को अंधकारवाद से युक्त करके उसके लेखको को अभारतीयता के लिए फटकारा, "आपका कवि होना वैसी ही अनधिकार-चेष्टा है, जैसी मेरे लिए एम० एस० सी० क्लास का प्रोफेसर होना। नाम 'सत्यप्रकाश' और भटकते फिरते हो अँधेरे मे। भारत मे न तो छायावाद चलेगा और न प्रतिबिंबवाद, यहाँ तो प्रकाशवाद ही रहा है और रहेगा।"
सुधा-भाद्र ३०७ तु० सं०

२. 'पद्म पराग', पृ० ३४५

पर लेख अवश्य छापा किन्तु अपने सपादकत्व के दायित्व के साथ। 'पल्लव' की सर्वप्रथम आलोचना निराला ने की, किंतु वह व्यक्तिगत थी।

'पल्लव' के प्रकाशन ने साहित्य जगत मे जो हलचल मचा दी थी वह, कालक्रम मे, उसके लिए वरदायक ही रही। 'पल्लव' उस अद्वितीयता से मण्डित हो गया जो अनेको का कठहार होने के साथ एकातिक वैभव से युक्त था। 'पल्लव' के प्रेमी अब 'पल्लव' पर ही न्योछावर हो गए, वे पल्लव से भिन्न काव्य मे रस लेने मे असमर्थ हो गए। किंतु 'पल्लव' का लेखक इस मोहाधता से मुक्त था, वह इस ऐतिहासिक तथ्य से अवगत था कि जीवन विकास एव परिवर्तन है। अपनी 'परिवर्तन' नाम्नी रचना मे न केवल उसने इस तथ्य पर प्रकाश डाला वरन् 'स्वस्ति जीवन के छाया-काल' कह कर उस यथार्थ का आवाहन किया जो जीवन-कल्याण के लिए अनिवार्य था। 'आधुनिक कवि भाग २' की, भूमिका तथा इससे चार वर्ष पूर्व, सन् '३८ मे 'रूपाभ' का सम्पादकीय पत के छायावाद के विस्तृत परिप्रेक्ष्य को लक्षित करता है।

'छायावाद पुनर्मूल्याकन' मे पत का कहना है "बोध की दृष्टि से छायावादी कवि का व्यक्तित्व नये मूल्य का प्रतीक, नये मूल्य का अश था। ' उसका दृष्टि-प्रवेश आतरिक था, क्योकि बाह्य वास्तविकता को हिलने-डुलने मे अभी समय लगता और फिर वह नये जीवन बोध के लिए कितनी फीकी, बासी, अप्रिय, अरुचिकर तथा अनुपयोगी है इसे बताने के लिए भी तो युग-मानव को नये प्रकाश, नये सौन्दर्य, नये भावबोध की आवश्यकता थी जो उसे नवीन सौन्दर्य और पुरानी पथराई कुरूपता को समझने के लिए दृष्टि देता। इसलिए छायावाद वास्तव मे व्यक्तिनिष्ठ न होकर मूल्यनिष्ठ या मूल्य-केन्द्रिक काव्य रहा है।" "सभी प्रमुख छायावादी कवि विकास-क्षमताशील रहे है और उन्होने अपने-अपने क्षेत्र मे उस नये काव्य-मूल्य तथा अभिव्यजना शैली का विकास किया।" "छायावाद को रोमेण्टिक काव्य तक ही सीमित कर देना उसके मौलिक मूल्य के प्रति आँख मूँद लेना है। वह इस अर्थ मे रोमेन्टिक कहा जा सकता है कि उसमे किशोर विस्मय की भावना या स्वप्न है, उसमे रागात्मक सवेदन, प्रणय तत्व तथा कल्पना का बाहुल्य और प्रवेश है या वह कला-बोध की दृष्टि से परम्परागत नियमो के कूलो को डुबाकर स्वच्छन्द सौन्दर्य अभिव्यजना की भूमि की ओर अग्रसर होता है, छायावाद की मुख्य तथा मध्यवर्तिनी धारा, चित्रमयी अभिव्यजना आदि रोमेण्टिक प्रवृत्ति न होकर, राष्ट्रीय अन्तर्जागरण की चेतना तथा वैश्व विकास के नये मूल्य के रूप-स्पर्श को वाणी देने की ओर गतिशील रही है, जिसने निश्चय ही

मानवीय-सम्बोधि को अपनी अभिव्यक्ति के पावन दोने मे भर कर उन्मुक्त-भाव से वितरित किया है। छायावादी प्रेम काव्य को अतृप्त वासना या दमित काम-भावना की अभिव्यक्ति मानना तथा उसे प्रच्छन्न, शृगार-मूलक रीतिकालीन काव्य का ही, आधुनिक रूप समझना भी आलोचको की व्यापक दृष्टि के अभाव का ही द्योतक है।"[1]

---

१ पृ० ३०-३५

तुलना कीजिए, "छायावादी काव्य की प्रेरक शक्ति प्रकृति के कोमल-सूक्ष्म रूपो का आकर्षण है न कि सामाजिक वास्ताविकता का विकर्षण; उसके मूल मे प्रेम और सौंदर्य की वासना है न कि आध्यात्मिक पूर्णता की भूख। छायावादी कवि··· वैयक्तिक चेतना से अधिक अनुराग रखते हैं, आत्म-केन्द्रित हैं।"

डा० देवराज 'छायावाद का पतन' पृ० ६-७

"छायावाद का सारा स्वातत्र्य-सघर्ष अकेले व्यक्ति का था।"

नामवर सिंह : 'छायावाद' पृ० १३३ (सरस्वती प्रेस, बनारस, १६५५)

"छायावादी कविता को शक्ति व समृद्धि प्रदान करने वाले वस्तुतः वे ही सर्वप्रथम कवि हैं जिन्होने युग की नयी आकांक्षाओ के अनुरूप साहस के साथ अपनी कविता को एक नये युग की वाणी बनने का गौरव प्रदान किया। यही नहीं, यदि कविता के क्षेत्र में उन्हे प्रगतिवादी काव्य-प्रवृत्ति का वास्तविक प्रस्तुतकर्ता भी कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी—कारण प्रगतिवाद के प्रारम्भिक वर्षों में जब भावावेश और उन्मादो के बवन्डर के बीच प्रगतिवादी कविता किसी समतल धरातल को खोज पाने में असमर्थ-सी प्रतीत हो रही थी, उसके एक पुष्ट व्यक्तित्व के रूप में उन्होने उसे एक संयमित, स्वस्थ और संतुलित रूप मे हिन्दी-जगत के समक्ष रखा था।"

शिवकुमार मिश्र : 'नया हिंदी काव्य' पृ० ८१,

तथा "छायावादी कवियों का कल्पनाऽतिरेक वस्तुतः, उनके कल्पना दौर्बल्य का सूचक है, उसमें यथार्थ कल्पना का अपर्याप्त विकास हुआ है।"

डा० देवराज : 'छायावाद का पतन', पृ० ६३

"एक ओर जीवन के ठोस धरातल से ऊपर उठने की प्रवृत्ति ने इन कवियो (छायावादी) में कल्पना-मोह को जन्म दिया और दूसरी ओर कल्पना-

शिवम (प्रगतिवाद)

पत का काव्य सतत साधना का काव्य रहा है। 'हार' काल से ही जीवन को सुदर तथा मगलमय बनाने की आकुल आकाक्षा वे अपने भीतर छिपाए हुए है। प्रकृति ने उन्हे सुदरता को प्यार करना सिखाया है किंतु यह सुदरता निष्प्राण नही है, मागल्य की मूर्ति है, एकता और समानता का प्रतिबिंब है। इसने उसे उस दृढता से भी युक्त किया है जो सत्य का मेरुदण्ड है। यही कारण है उन्होने स्वाभाविक सहजता से कोमलकात पदावली तथा स्वप्निल भावबोधो का त्याग कर दिया और छायावाद का प्रतिनिधित्व करते हुए धरती की चेतना को उसकी सपूर्णता मे अपना लिया। उस काल के लिए यह एक बडा साहसिक कार्य था जिसे छायावाद के प्रेमी स्वीकार नही कर पाए।

पत ने जब छायावाद को उसके सौदर्य प्रसाधन—शैलीगत सौकुमार्य एव रूपविधान—से मुक्त कर उसके अतर्जात मूल्य-बोध को अनावृत रूप मे प्रस्तुत किया तो मात्र अभिव्यजना, शैली या रागात्मक सवेदन के मधुपायियो को विद्युत-आघात लगा। 'उच्छ्वास' के प्रति 'हुआ-हुआ' 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' मे प्रतिध्वनित हो गया। अतर मात्र इतना है कि 'उच्छ्वास' के प्रकाशन के साथ पत ने कोई वक्तव्य नही दिया था और इन पुस्तको के प्रकाशन अथवा इनसे पूर्व सन् '३६ मे युगात द्वारा पत ने अपने मूर्त सामाजिक दृष्टिकोण को स्पष्ट कर दिया था—'द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र !' इसके साथ ही सन् '३८ मे रूपाभ का सम्पादकीय घोषित कर चुका था कि कवि एव जीवन-द्रष्टा स्वप्निल सेज पर देर तक नही सो सकता, वह जीवन मे कुछ पाने के लिए नही, देने के लिए आता है, उसे खुरदुरे पथ पर उतर कर जीवन यथार्थ से जूझना है। पर अभ्यास—मानसिक-शारीरिक—चाहे अच्छा हो या बुरा मनुष्य का स्वभाव ही बन जाता है। 'पल्लव' प्रेमियो ने इस अभ्यास के कारण ही एक स्वर से पत की नवीन विचार धारा, नवीन शिल्प का विरोध किया—वे

तिरेक ने इस काव्य को जन-सामान्य के लिए अग्राह्य सिद्ध कर दिया। जीवन और समाज से संबध विच्छिन्न हो जाने पर छायावाद का विषय पक्ष निर्जीव हो गया।"

प्रतिमा कृष्णबल : 'छायावाद का काव्य-शिल्प', पृ० ३८३
(राधाकृष्ण प्रकाशन : दिल्ली, १९७१)

मधु की मिठास चाहते थे, शिशु का केवल मिठाई खाना ! अतः जब 'खुरदुरा पथ' उनकी शिशु-लोक की मीठी तन्द्रा को तोडने लगा तो उन्होने समवेत रूप मे इस 'मानसिक प्रौढता' के प्रति अपनी असहमति व्यक्त की—पल्लव की कोमल कात पदावली चाहिए, युग-बोध कविता का प्राण नही बन सकता क्यो कि कविता और जो भी हो मधुसिक्त होनी चाहिए, मनुष्य और जीवन से कवि का प्रत्यक्ष सबध नही है, वह तो मधुपायी है। और जब मधुवर्षी कवि ने 'गा, कोकिल, बरसा पावक कण !' कहा तो छायावाद प्रेमियो को लगा कि पत कवि कर्म से च्युत हो गए है। साथ ही जब उन्होने 'ग्राम्या' मे लिखा कि इसकी रचनाओ मे 'केवल बौद्धिक सहानुभूति ही मिल सकती है' तो 'ग्राम्या' के प्रशसको को तक 'ग्राम्या' के बारे मे 'कुछ नया' कहने के लिए सूत्र मिल गया। "ग्राम्या की स्नायुओ मे कवित्व का गाढा रस प्रवहमान है। छायावादी पत मे (छायावाद मे ही) भाव-कल्पित मनोज की उपासना थी। आज प्रौढता की ओर बढते हुए उनके काव्य मे रगीन कल्पना चुम्बित भावुकता के स्थान पर एक स्वस्थ पौरुषमय भावुकता का समावेश हो रहा है। कविताओ मे पत जी की दृष्टि का विश्लेषण करने पर हमे उसके अदर निरीक्षण अत्यत सूक्ष्म तथा आलोचन प्रौढ एवं विवेक-पुष्ट मिलेगा। ग्राम्य चित्र एक चतुर चितेरे के द्वारा अकित किए गए है। पत जी की सूक्ष्म दृष्टि ने तत्वो को काफी गहरे मे जाकर पकडा है और प्रौढ बुद्धि ने उनकी विवेचना करके स्वच्छ रूप मे उपस्थित किया है।" "बौद्धिक सहानुभूति से आगे पत जी जा नही सकते।"[१] नन्ददुलारे वाजपेयी भी पत की नवीन विचारधारा को अपनाने मे असमर्थता व्यक्त करते हैं" श्री सुमित्रानदन पत जब अपनी नवीन 'वीणा' लेकर हिन्दी मे आए, तब हिन्दी प्रगीत की परमोच्च सम्भावना उनमे केन्द्रित हो गई। उनके प्रारभिक प्रगीतो मे भावना की जो स्वच्छता, कोमलता और रमणीयता पाई गई और भाषा की जो अनुपम मिठास और परिष्कृति देखी गई, वह कदाचित् विश्व के थोडे कवियो की आरम्भिक रचनाओ मे देखी और पायी गई होगी।" 'वीणा' की पहली मीठी झकार से लेकर 'पल्लव' मे 'परिवर्तन' के मद्र गभीर सगीत तक पत जी का विकासक्रम अत्यत स्वाभाविक और उपयुक्त रीति से परिस्फुट होता गया है। 'वीणा' की अभिनव कोमल आदर्शवादिता और तरल बालभावना से आरभ कर 'उच्छ्वास' की ईषत् वैयक्तिक प्रेम चर्चा मे किशोरवय की सुदर झाँकी देखते हुए हम 'ग्रथि'

१ नगेन्द्र : 'सुमित्रानंदन पंत', पृ० १५०-१५३

मे वियोग या विच्छेद की एक मर्मपूर्ण अनुभूति तक पहुँचते है। 'पल्लव' की रचना इस वैयक्तिक अनुभूति के अवसाद से दूर होकर अतिशय सजीव कल्पना-सृष्टि का रूप ग्रहण करती दिखाई देती है। 'परिवर्तन' मे आकर हम जगत और जीवन के सबध मे कवि की मनस्वी धारणाएँ अत्यत सुँदर रूपको के आवरण मे पाते है।' इसी समय हम हिन्दी प्रगीत की उच्चतम परिणति की कल्पना करने लगे थे अब भी उनकी समस्तकृतियो मे सुदर कला-कौशल है, यत्र-तत्र मार्मिक रूपयोजना और सूक्ष्म वस्तु-चित्रण है, पर जहाँ तक प्रगीत-काव्य का सम्बन्ध है, हिन्दी का शेली हिन्दी मे आता-आता ही रह गया।'[1] आचार्य वाजपेयी जी की समीक्षा को सूत्र रूप मे अनेक शोध छात्रो ने स्वीकार कर लिया है, कम से कम उन्होने तो अवश्य ही किया है जिन्होने मध्य प्रदेश मे रहकर शोध-कार्य किया।

'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' के प्रकाशन एव 'रूपाभ' की भूमिका ने प्रगतिवादी लेखको को कुछ काल के लिए भ्रम मे डाल दिया। उन्हे लगा पत ने साहित्य एव सौदर्य की भूमि छोड दी है और वे अब राजनीतिक दलबदी मे उतर आए है।[2] उन्हें आशा बँधी शीघ्र ही पत जय मार्क्सवाद, जय साम्यवाद कहने लगेगे और भारतीय दर्शन, जीवन, साहित्य मे निहित आत्मिक सत्य को भूल जाएँगे। मात्र लाल टोपी का मुँह ताकने के कारण वे भूल गए

---

१ नन्ददुलारे वाजपेयी : 'आधुनिक साहित्य', पृ० ३१–३३
प्रकाशक : 'भारती भण्डार', प्रथम संस्करण
तथा "पंतजी ने मुझसे पूछा, 'युगवाणी' की कविताएँ तुम्हे कैसी लगती हैं ? मैने कहा, पहले आपकी कविताएँ पढकर हृदय मे पीड़ा होती थी, अब आपकी कविताएँ पढ़कर सिर मे दर्द होने लगता है ."
बच्चन : 'स्मृति-चित्र', पृ० ४८

२. सन् '२६ मे 'स्वस्ति जीवन के छाया काल' कहने के साथ ही पत ने छायावाद को अपने मन से विदा दे दी थी। छायावाद का अत युगांत के प्रकाशन सन् '३६ से माना जाता है। पंत ने छायावाद—मात्र स्वप्निल सौंदर्ययुक्त छायावाद—को पूर्ण बिदा सन् '३४ में अपनी रचना 'द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र' द्वारा दे दी थी। छायावाद को इस भाँति बिदा देने का एक कारण अवश्य ही उनके लोकमंगलकामी मानस का 'ग्राम' में नीवास था।

कि कोई भी महान् प्रतिभा दरबारगीरी—चाहे देश की हो, चाहे विदेश की—मरकट नृत्य एव अधानुकरण करके जीवित नही रह सकती, वह देश और देश की सम्पदा को भुला नही सकती। भारत मे एकता की पुकार कभी भी एक नारे के रूप मे प्रतिध्वनित नही हुई, यह भारतीय अध्यात्म की मूलभूत शर्त है, जीवन का अनुभूत सत्य है जिसे द्रष्टाओ ने अह ब्रह्मास्मि, तत्वमसि. आत्मान विद्धि के मत्रो द्वारा समझाया है।

'युगवाणी-ग्राम्या' काल मे जिन प्रगतिवादियो ने, पत की भूरि-भूरि प्रशसा की थी वे पत की 'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' के प्रकाशन एव उनके प्रगतिशील लेखक सघ से सम्बन्ध विच्छेद के साथ ही उनके कटुतम विरोधी हो गए—यदि कहा जाय कि हाथ मलते हुए दाँत पीसने लगे तो अतिशयोक्ति नही होगी।[1]

पत के लिए 'छायावाद' के सौंदर्यतत्व को 'शिवम्' एव मानव कल्याण से युक्त करना एक स्वाभाविक बात थी, यह 'छायावाद' के सौदर्य-मूल्य को विस्तार तथा गहराई देनी थी, उसे धरती के रूप-रस-गध से युक्त करना था ताकि वह पानी के बुलबुले एव ओस-बिन्दु की भाँति धूप-छाँह रहकर मिट न जाए। स्पष्ट ही यह छायावाद का परित्याग एव किसी नितात नई धारा को अपनाना नही था। यह सौदर्य की वह गहरी पकड़ थी जिसे तात्कालिक प्रगतिवादी समझ नही पाए और इसलिए 'हीरो की खोज मे' दिग्भ्रमित होकर उन्होने पत को अपना नेता घोषित कर दिया और सगठित तथा सुनियोजित ढग से पत की 'ग्राम्या' तथा 'युगवाणी' की प्रशसा करने लगे।[2] वे

---

१. देखिए अध्याय-४

२ "रूपाभ' में प्रकाशित अपने एक प्रसिद्ध वक्तव्य में श्री सुमित्रानंदन पंत ने बहुत स्पष्टता से कल्पनामात्र के आधार पर लिखी हुई असंभव स्वप्नों को रचने वाली कविता की निन्दा की थी।··· ···नये आदर्शों से प्रेरित होकर पंत जी ने 'ग्राम्या' की रचना की। सहानुभूति बौद्धिक होते हुए भी उसी के सहारे पंत जी 'ग्राम्या' जैसा अनूठा काव्य-संग्रह हिंदी साहित्य को दे सके। इसका शब्द-माधुर्य 'पल्लव' से किसी तरह घटकर नहीं है, उससे भिन्न कोटि का अवश्य है।··· ···पंतजी की कल्पना-प्रधान कवि-वाणी इतनी स्वस्थ और मासल किसी दूसरे संग्रह में नहीं है। 'पल्लव' के बाद हिन्दी-साहित्य को यह उनकी सबसे बड़ी देन है। जिस तरह 'पल्लव' छायावादी युग का प्रकाशस्तम्भ है, उसी प्रकार 'ग्राम्या' प्रगतिशील कविता का एक ऐतिहासिक मार्ग चिह्न है।"

लोग समझ नही पाए कि "व्यक्तिवाद से समाजवाद की ओर मुडना पत के जीवन और काव्य की स्वाभाविक परिणति थी। बचपन से ही वे चिंतनशील रहे है। हो नही सकता था कि वे एक स्थान पर रुक जाते और आज भी वे प्रगतिवादियो के बाँधे बँधे कहाँ है। पर उनके उधर मुडने से प्रगतिवादियो ने तुरन्त लाभ उठाया और लिखा, 'श्री प्रेमचद के बाद श्री सुमित्रानदन पत का प्रगतिवादी आदोलन मे सक्रिय रूप से प्रविष्ट होना एक अत्यत महत्वपूर्ण घटना है।' 'युगवाणी' की रचानाओ के लिए प्रकाश चन्द्र गुप्त ने लिखा भविष्य के समाज मे 'यह टेक्स्ट बुको' मे शायद रखी जावे।"[1]

सन् '३६ के 'प्रगतिशील लेखक सघ' के अधिवेशन मे प्रेमचद ने सभापति पद से लेखको को जीवन के निकट आने के लिए प्रबुद्ध करते हुए कहा, "हमने जिस युग को अभी पार किया है, उसे जीवन से कोई मतलब न था।' कवियो पर भी व्यक्तिवाद का रग चढा हुआ था। प्रेम का आदर्श वासनाओ को तृप्त करना था। हमारी कसौटी पर केवल वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमे उच्च चितन हो, स्वाधीनता का भाव हो, जीवन की सचाइयो का प्रकाश हो—जो हममे गति, सघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नही, क्यो कि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।" इसके साथ ही 'हस' के माध्यम से उन्होने तथा बाद को उनके पुत्र अमृत राय ने प्रगतिशील साहित्य के प्रचार में सक्रिय योग दिया।

शिवदानसिंह चौहान ने मार्च सन् '३७ के 'विशाल भारत' मे प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता पर एक लेख लिखा था तथा इसके दो-तीन वर्ष बाद 'विशाल भारत' (अक्टूबर १९४०) मे ही इलाचद्र जोशी का लेख 'छायावाद का विनाश क्यो हुआ' प्रकाशित हुआ जो कि अब उनकी पुस्तक 'विवेचना' मे सगृहीत है। पूरा लेख जिस एकागी आवेश मे लिखा गया है वह उत्तर

रामविलास शर्मा : 'संस्कृति और साहित्य', पृ० ३-५

तथा देखिए "निस्संदेह ही 'ग्राम्या' मे कवि की अनेक सर्वश्रेष्ठ कविताए संगृहीत हैं। यदि यह कहने में संकोच हो कि 'ग्राम्या' पत जी की प्रौढ़-तम कृति है तो 'पल्लव' और 'ग्राम्या' को वह अवश्य ही एक साथ रखेगा।"

प्रकाशचंद्र गुप्त, 'साहित्य धारा', पृ० ९२

१. मानव : 'सुमित्रानंदन पंत', पृ० १३० (१९६२)

की अपेक्षा नही रखता है। "छायावादी कविता मूलत विनष्ट हो चुकी है''' नपुसकता मे उसकी उत्पत्ति हुई थी, अहमिता और विलासिता के अस्वास्थ्यकर रस से उसका पोषण हुआ और स्वभावत उच्छृखलता मे उसकी परिणति हुई। छायावादी कवियो ने हमे क्या दिया ? केवल अपने रुग्ण हृदयो की अलस रसावेशमयी भावनाओ के वासनोद्गार से सारे साहित्यिक वातावरण को विषमय करने के अतिरिक्त उन्होने और किया क्या ?"[१] इस लेख की निरर्थकता स्वत. स्पष्ट है जो मात्र वासनओ के कीचड मे छायावाद को लिपटाकर उसके उन्मुक्त जागरण के क्षितिज को अधकूप मे सीमित कर देती है। इसी भाँति छायावाद का एक अन्य विश्लेषण मिलता है, पूर्वग्रह एव अर्धसत्य पर आधारित विश्लेषण, जो छायावाद को बीसवी शती के प्रारभ की परिस्थितियो—पुनर्जागरण की चेतना, मानवतावादी आदर्श, सूक्ष्म सवेदनाओ, पद सौष्ठव, शिल्प माधुर्य, सास्कृतिक बोध—से विच्छिन्न करके समझने का कृत्रिम प्रयास है। अप्रेल सन् १६४८ मे प्रकाशित 'छायावाद का पतन' नामक अपनी पुस्तक मे डा० देवराज छायावाद के पतन के मूल कारणो पर प्रकाश डालते हुए कहते है, "भाषा और भाव दोनो की दृष्टि से छायावाद का विकास एकागी हुआ। उसकी व्यजना मे जितना सौदर्य है, उतनी शक्ति नही; जितनी चमक है उतना प्रकाश नही, जितनी बारीकी है, उतनी दृढता नही। उसके सगीत मे प्रवाह की, भावो मे गहराई की और विचारो मे दीप्ति की कमी रही।" "हमारी शिकायत यही है कि छायावादो अनुभूति और अभिव्यक्ति मे सरल प्राणवत्ता की कमी है। उसमे ध्वनिपूर्ण शब्दो एव चित्र-विचित्र कल्पनाओ का आडम्बर अधिक है, स्वस्थ, निष्कपट, सहज अनुभूति का अश कम। जीवन के निकट स्पर्श के अभाव मे उसका कलेवर निर्जीव साज-सज्जा और चमत्कार से बोझिल है। इस दृष्टि ये वह ह्रास युगीन सस्कृत-काव्य और चमत्कारान्वेषी रीतिकाव्य से केवल इसी बात मे भिन्न है कि वह शरीर-केन्द्रित न होकर बुद्धि-केन्द्रित है। और हमारी आपत्तियो के उत्तर मे केवल यह सकेत कर देना कि 'यह काव्य तो उपनिषदो, कबीर आदि की परपरा का, अर्थात् आध्यात्मिक है' आत्म-मडन का बडा लचर प्रयत्न होगा।"[२]

---

१. विवेचना, पृ० ४१ (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, द्वितीय संस्करण)

२. पृ० १०६ तथा १२०

तुलना कीजिए—शम्भुनाथ सिंह, (छायावाद युग) पृ० २८-३०

छायावाद का 'पतन', 'विनाश', या 'छायावाद की शव परीक्षा'[१] मन मे एक विचित्र प्रतिक्रिया उत्पन्न करती हैं, एक अपसामान्य बोध जो विकास एव जीवन पद्धति के स्वाभाविक क्रम के प्रतिकूल इस तथ्य की नितात उपेक्षा करता है कि उसकी परवर्ती प्रगतिवाद, प्रयोगवाद आदि की धाराएँ उसी की शाखाएँ अथवा विवर्त है। "छायावाद युग के पीछे छूट जाने का अर्थ यह है कि हिन्दी कविता आगे बढ रही है, । इस प्रगति को छायावाद का पतन नही कहा जा सकता। यह कहना कि उसका पतन हुआ है, छायावादी काव्य पर उतना बडा आक्षेप नही है जितना छायावाद के बाद के काव्य-साहित्य पर। यह भी नही कह सकते कि छायावाद मर गया क्यो कि वह जी रहा है और रूप बदल कर जी रहा है, जैसे पाँच वर्ष का बच्चा पच्चीस वर्ष की उम्र मे भी वही रहता है यद्यपि उसके रूप और ज्ञान-कोश मे आकाश-पाताल का अतर हो गया रहता है, बच्चा मर कर नही, जी कर जवान होता है। उसी तरह आज का स्वच्छन्दतावादी यथार्थवाद हो या प्रगतिवाद, प्रयोगवाद हो या नूतन रहस्यवाद, ये सभी छायावाद के ही विकसित रूप है।"[२] निः सदेह परिवर्तन मे निहित अविच्छिन्नता का निराकरण नही किया जा सकता। 'छायावाद' के वट वृक्ष मे, कालान्तर मे, जो शाखाएँ प्रस्फुटित हुई है वे उसी के अस्तित्व के आधार पर समझाई जा सकती हैं क्यो कि 'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत.।'[३] इसी तथ्य पर प्रकाश डालते हुए पत का कहना है, "हमारे राष्ट्रीय कवि, उत्तर छायावादी कवि, प्रगतिवादी, प्रयोगवादी आदि 'इस छायावाद की स्फटिक-शब्द-अट्टालिका के गुम्बदो को अपने नये भाव-स्वरो से गुजरित करते रहे है और अनेक भाव, शिल्प, कला, दर्शन तथा स्फुरित बोध की धाराएँ उसी मुख्य धारा की उपशाखाओ की तरह उससे पृथक् होकर, धीरे-धीरे, एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होकर उसी मे समाहित हो रही हैं। वास्तव मे आलोचको की दलीय तथा सकुचित दृष्टि के कारण हम इस युग की विभिन्न काव्य प्रवृत्तियो को व्यापक-पट मे न सँजो सकने के कारण, उनका अग-भग कर, उन्हे विकृत विरूप चित्रित करते रहे हैं। और नये आलोचको

---

१. नवलकिशोर गौड़

२. शभुनाथ सिंह : 'छायावाद' युग पृ० २
(सरस्वती मंदिर, वाराणसी १९६२)

३. गीता २-१६

तथा कवियो का तो आत्मरक्षा के लिए यह कर्त्तव्य हो गया है कि जब तक वे छायावाद को अशरीरी, अवास्तविक, कृत्रिम, मृगमरीचिका आदि न बता दें, तब तक उनके लिए अपनी सशरीरी वास्तविकता का प्रतिपादन करना भी असभव हो गया है और अब भी उस वास्तविकता का भावात्मक पक्ष खोजने के लिए सभवतः अनुवीक्षण यत्र की आवश्यकता पडे ।"[1]

'ग्राम्या' के प्रणयन के साथ ही पत को लगा कि 'ग्राम्या' के बारे मे वे जो कह सकते थे वह कह चुके है । अब आवश्यकता है, 'ग्राम्या' के यथार्थ को सपूर्णता के सदर्भ मे समझने ओर समझाने की । 'ग्राम्या' मे भी उनका दृष्टि-कोण एकागी नही था, मात्र अभावात्मक ढग से दु:ख-दारिद्रय का वर्णन करना या फूस की चूती छत मे सौदर्य देखना उनके मानव-मगलकारी हृदय को कभी इष्ट नही रहा है । भावात्मक पद्धति ही जीवन मे मगल पीयूष की वर्षा कर सकती है । अत: उन्होने अध्यात्म और यथार्थ के समन्वय को महत्व देना अनि-वार्य समझा । साम्यवाद, जहाँ तक यथार्थ को समझने मैं सहायक है, पत ने सदैव स्वीकार किया है किंतु समातर मे यह भी माना है कि यथार्थ की सच्ची पकड के लिए आत्मवाद आवश्यक है ।

'युगवाणी' मे उन्होने कहा .

भूतवाद उस धरा स्वर्ग के लिए मात्र सोपान
जहाँ आत्म दर्शन अनादि से समासीन अम्लान ।

इसी तथ्य की अनुगूँज 'ग्राम्या' मे मिलती है,

राजनीति का प्रश्न नही रे आज जगत के सम्मुख,
अर्थ साम्य भी मिटा न सकता मानव जीवन के दु:ख ।
...
आज बृहत् सास्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित

पत का यह समन्वयात्मक काव्य ही—आत्मवाद और बृहत् सस्कृति पर आधारित भूतवाद—'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' है । सयोग ऐसा जुटा कि 'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' के प्रकाशन की अवधि मे उनका प्रगतिशील

---

१. 'छायावाद पुनर्मूल्यांकन', पृ० ४३

लेखक सघ से मतभेद हो गया और साथ ही, इस बीच वे पाडिचेरी भी हो आए। अतः जिस सत्य को प्रगतिशील आलोचको ने युगवाणी-ग्राम्या काल मे अन देखा कर दिया था, सभवतः नेता की खोज अथवा अध वीर पूजा के कारण, उसी को लेकर उन्होने अपना आलोचनात्मक कीचड उछाला—एक खोखि-आया हुआ सुनिश्चित आक्रमण जिसका नेतृत्व रामविलास शर्मा ने किया और जिसकी प्रतिध्वनियाँ प्रायः सभी चोटी के आलोचको मे, जिनमे प्रमुख प्रकाश-चद्र गुप्त, नेमिचद्र जैन, नामवर सिह, बच्चन सिह, यशदेव शल्य, विश्वम्भर नाथ उपाध्याय आदि के लेखो और भाषणो मे सुनाई पडने लगी।

'प्रगतिशील लेखक सघ' के साथ पत का खुला असहयोग जिसे पत्रकार पी० डी० टण्डन ने समाचार पत्र मे विज्ञापित कर दिया था प्रगतिशील आलो-चको के लिए असह्य हो गया। पत के द्वारा यह गद्दारी! लाचार गद्दार पर सम्मिलित रूप से विष वमन करके वे अपने दुखते घाव को सहलाने लगे। प्रगतिवाद की सकीर्णता और राजनैतिक दाँवपेंच को न अपनाने के कारण सभवतः हिदी जगत् मे जितना घोर विरोध पत के काव्य को सहना पडा उतना किसी अन्य के काव्य को नही सहना पडा होगा। न जाने इन विरोधियो ने पत मे क्या देखा (सभवतः, महानता) कि इन्हे, पत के उनकी दलबदी से अलग हो जाने पर, अपनी पर्याप्त शक्ति और समय को पत का विरोध करने मे नष्ट करना पड़ा।

पत का किसी भी 'वाद' विशेष से वही तक लगाव है जहाँ तक वह सत्य का अश है, जीवन की व्याख्या एव मानवोचित मूल्यो को प्रदान करने मे सहायक है। शाश्वत एव मानवीय मूल्यो के गायक पत विद्वेष जन्य प्रतिशोध (प्रतिक्रिया) से भयभीत, हताश या कुठित नही हुए। उन्होंने आधुनिक कवि २ की भूमिका मे अपना दृष्टिकोण सन् '४२ मे ही स्पष्ट कर दिया था किंतु अब आवश्यकता प्रतीत हुई प्रगतिवदियो के सम्मुख उनके सिद्धात की सीमाओ को प्रस्तुत करने की। 'उत्तरा' की प्रस्तावना(जनवरी' ४९) इसी लक्ष्य से लिखी गई। पत की यह प्रस्तावना इस तथ्य का स्पष्टीकरण करती है कि सस्कृति और सभ्यता के लिए मनुष्य का सर्वांगीण विकास आवश्यक है। "ज्योत्स्ना मे मैंने जीवन की जिन बहिरन्तर मान्यताओ का समन्वय करने का प्रयत्न तथा नवीन सामाजिकता (मानवता) मे उनके रूपान्तरित होने की ओर इंगित किया है, 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' में उन्ही के बहिर्मुखी (समतल) सचरण को (जो मार्क्सवाद का क्षेत्र है) तथा 'स्वर्णकिरण' मे अतर्मुखी (ऊर्ध्व) सचरण को (जो अध्यात्म का क्षेत्र है) अधिक प्रधानता दी है; किंतु समन्वय तथा सश्लेषण

का दृष्टिकोण एव तज्जनित मान्यताएँ दोनो मे समान रूप से वर्तमान है । मैं मार्क्सवाद की उपयोगिता एक व्यापक समतल सिद्धात की तरह स्वीकार कर चुका हूँ । किंतु सास्कृतिक दृष्टिकोण से उसके रक्त-काति और वर्ग-युद्ध के पक्ष को मार्क्स के युग की सीमाएँ मानता हूँ, अपने प्रगतिशील सहयोगियो की इधर की आलोचनाओ को पढने से प्रतीत होता है कि वे मेरी रचनाओ से अधिक मेरे समर्थको की विवेचनाओ तथा व्याख्याओ से क्षुब्ध है वे अभी व्यक्तिगत आक्षेप, तुलनात्मक स्पर्धा तथा साहित्यिक विद्वेष से मुक्त नही हो सके है, जो अवश्य ही चिन्त्य तथा अवाछनीय है । अपने युग को मैं राजनीतिक दृष्टि से जन- तत्र का युग और सास्कृतिक दृष्टि से विश्व-मानवता अथवा लोक-मानवता का युग मानता हूँ, और वर्ग-युद्ध को इस युग के विराट् सघर्ष का एक राजनीतिक चरण-मात्र । आदर्श और वस्तुवादी दृष्टिकोण मे केवल धरातल का भेद है, और ये धरातल आपस मे अविच्छिन्न रूप से जुडे हुए है । जिस सत्य को हम स्थूल धरातल पर क्षुधा-काम कहते है, उसी को सूक्ष्म धरातल पर सत्य, शिव, सुदर । एक हमारी सत्ता की बाहरी भूख-प्यास है, दूसरी भीतरी । सूक्ष्म और स्थूल दोनो ही शक्तियो से काम लेना चाहिए । ऐसा नही समझना चाहिए कि स्थूल के सगठन से सूक्ष्म अपने आप सगठित हो जायगा, जैसा कि आज का भौतिक दर्शन या मार्क्सवादी कहता है, अथवा सूक्ष्म मे सामजस्य स्थापित कर लेने से स्थूल मे अपने आप सतुलन आ जायगा, जैसा कि मध्ययुगीन विचारक कहता आया है । ये दोनो दृष्टिकोण अतिवैयक्तिकता तथा अतिसामाजिकता के दुराग्रह मात्र है ।"

इस भूमिका के विषय मे नगेन्द जी का मतव्य है, "पत जी के अनुसार इस युग की विषमताओ का समाधान है लोक-सगठन और मन . सगठन—स्वस्थ भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के समन्वय से निर्मित सास्कृतिक चेतना जिसे उन्होने अतर्चेतना तथा नवमानववाद भी कहा है । यह चेतना मानव के ऊर्ध्व विकास और समतल विकास की पूर्ण सतुलित स्थिति है । आज के कलाकार को भी इसी से अपना सौन्दर्य-बोध प्राप्त करना होगा । कवि के अपने शब्दो मे, 'जीवन के शतदल को मानस तल के ऊपर नवीन सौन्दर्य बोध मे प्रतिष्ठित कर उसमे पदार्थ की पखुडियो का सतुलित प्रसार तथा चेतना की किरणो का सतरग ऐश्वर्य भरना होगा ।' वास्तव मे पत जी की चिंताधारा के चरम परिपाक-रूप इस दर्शन का प्रस्तुत भूमिका में अत्यत सफल तथा गभीर विवेचन हुआ है । इस प्रौढ विवेचना को डा० रामविलास के एक लेख

से प्रेरणा मिली है—उसका उत्तर या प्रत्यालोचन तो यह नही है क्योकि उत्तर का अधिकारी समकक्ष व्यक्ति ही हो सकता है, किंतु फिर भी इसकी पृष्ठभूमि मे डाक्टर शर्मा का वह युगातक लेख[1] था अवश्य जिसकी कृपा से साहित्यिक विप्लव के उस अल्पायु तथाकथित प्रगतिवादी युग का सहज अत हो गया है। काव्य के आतमदर्शी मर्म-ज्ञाता और सिद्धात-व्यवसायी के सास्कृतिक स्तर मे कितना अतर होता है इसका आभास प्रस्तुत भूमिका और उधर डा० शर्मा के लेख के युगपत् अध्ययन से आपको सहज ही मिल जायगा।"[2]

मार्क्सवाद से पत का प्रमुख भेद 'ग्राम्या' की 'सस्कृति का प्रश्न' रचना मे स्पष्ट हो जाता है—राजनीति का प्रश्न नही रे आज जगत के सम्मुख! नि सदेह मनुष्य को पहले रोटी की चिंता से मुक्त करना होगा तब वह अपना सास्कृतिक-आध्यात्मिक विकास कर सकेगा। किंतु रोटी की समस्या वर्ग-सघर्ष एव रक्त-क्राति और राजनीतिक युद्ध से सुलझाई नही जा सकती। पत का यह वह महत् समन्वयवादी दृष्टिकोण है, जो अपने भीतर ऐतिहासिक भौतिकवाद और भारतीय अध्यात्म को आलिगनबद्ध किए है। दोनो ही एक दूसरे के पूरक है और इसलिए दोनो को अपनी अतिशयता का त्याग करना होगा। "ऐतिहासिक भौतिकवाद और भारतीय दर्शन मे मुझे किसी प्रकार का विरोध नही जान पडा, क्योकि मैंने दोनो का लोकोत्तर कल्याणकारी सास्कृतिक पक्ष ही ग्रहण किया है।"[3]

दुर्भाग्य या सौभाग्य! जिस समय प्रगतिशील आलोचक क्षोभ से भरे हुए थे, मोर्चाबदी के साथ पत के विरुद्ध साहित्यिक-युद्ध करने जा रहे थे उसी समय (मन् '४७ से सन् '४६) पत के तीन काव्य सग्रह—'स्वर्ण धूलि' 'स्वर्ण किरण', तथा 'उत्तरा' प्रकाशित हुए। उच्छ्वास' और 'पल्लव' के पश्चात् सभवत. सबसे अधिक आक्रोश (?) सन् '४७ मे प्रकाशित 'स्वर्णधूलि' और 'स्वर्णकिरण' को सहना पडा। द्विवेदीयुगीन आलोचना एक साहित्यिक सैद्धातिकता को अपनाए हुए थी तो तत्कालीन प्रगतिवादी आलोचना राजनीतिक दलबदी और अखाडेबाज़ी को। द्विवेदीयुगीन साहित्यिक आलोचना ने साहित्य एव काव्य के मर्म

---

१. 'स्वर्ग किरण' और 'स्वर्ग धूलि' (सुमित्रानंदन पंत : स० शचीरानी गुर्टू)
२. डा० नगेन्द्र, 'विचार और विश्लेषण' पृ० १०१
नैशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९५५
३. आधुनिक कवि-२ : पर्यालोचन।

को समझने के साथ ही, एक-दो वर्ष के भीतर ही, पत को आशीर्वाद दे दिया था तो राजनीतिक आलोचना तब तक उद्वेलित होती रही जब तक उसमे कटूक्तियो की क्षमता रही, इस अर्थ मे वह आज भी है क्योकि सामान्य आलोचक के पास यही एकमात्र अस्त्र है। 'स्वर्ण धूलि' और 'स्वर्ण किरण' को इस आधार पर प्रगतिवादियो ने कवित्वशून्य माना कि उनमे चेतनावाद, स्वर्णवाद, अध्यात्मवाद एव अरविंदवाद है।[1] शायद, यदि वे समझ पाते कि यह सब और कुछ नही है, मात्र वैदिक एव औपनिषदिक दर्शन का आधुनीकरण अथवा वैज्ञानीकरण है तो उनके लिए पत काव्य की आलोचना सरल हो जाती। कटूक्तियाँ खोजने मे उनके सिर दर्द नही होता—एक स्वर से आँख मूँद कर कह देते—यह बूर्जुआ साहित्य है, इसे मिटाने के लिए रक्तक्राति अनिवार्य है।

प्रगतिशील आलोचको ने पत काव्य मे ऐसी विचित्र दुर्बलताएँ देखी कि काव्यरसानुभूति का प्यासा विमूढ हो जाता—काव्योचित मूल्याकन के विपरीत केवल दाँत पीसना ! अवश्य ही गाँव की कुछ पुरानी शत्रुता होगी। बाद मे अथवा अब यह आलोचना प्रणाली रामविलास जी और उनकी मित्र एव शिष्य मण्डली तक सीमित हो गई है। वर्ग युद्ध एव वर्ग क्राति को न मानने तथा भौतिक कल्याण के साथ आध्यात्मिक कल्याण को स्वीकार करने के कारण पत का नूतन काव्य पलायन और पराजय का पर्याय बना दिया गया। इन आलोचको को लगा कि पत ने अपने नवीन प्रकाशनो—'स्वर्ण धूलि', 'स्वर्ण किरण', 'उत्तरा' द्वारा उन्हे धोखा दिया है और यह सरासर प्रवचना है। अथवा अभी तक जो कवि मानवता की आड मे साम्यवादी बना हुआ था और

---

१. पंत के मानवतावादी काव्य ने प्रगतिवादियों को प्रारंभ में जितना अधिक सम्मोहित किया, उतना ही मोह भंग होने पर उन्होंने हाथ-पैर पटक कर चीखना प्रारंभ किया। पंत काव्य की आलोचना का एक नया मापदण्ड बना, काव्यगत मूल्यांकन करने के विपरीत लगभग सभी प्रगतिवादियों ने विभिन्न शब्दों और स्वरों में एक ही सूत्र उच्चारित किया, "दरअसल पत जी ने मार्क्सवाद को पूरी तरह कभी स्वीकार नहीं किया था।" इस तथ्य को प्रमाणित एवं पंत को अरविंदवादी घोषित करने के लिए कुछ प्रगतिवादियो ने पोथे लिखना अपना ध्येय भी बना लिया। विचित्र विरोध था ! पंत ने कभी यह नहीं कहा था कि मैं मार्क्सवादी हूँ। कहा होता तो लड़ते, बात समझ में आती।

जिससे यह आशा की जा रही थी कि वह मानवतावाद का चोला शीघ्र ही उतार कर विशुद्ध साम्यवादी परिपाटी का लेखक बन जायगा उसने न केवल 'प्रगतिवादी लेखक सघ' को गच्चा दिया है वरन् वह 'स्वर्ण', 'चेतना' 'अध्यात्म'-से जन-विरोधी शब्दो का प्रयोग भी करने लगा है ।

"जीवन के त्रस्त क्षणो की व्याकुलता जो 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' मे व्यक्त हुई थी, अब योग और वेदात की शाति मे परिणत हो गई है। पत के नए काव्य ('स्वर्ण किरण'-'स्वर्ण धूलि') मे जीवन के सौदर्य और सुख की पुकार है, जिसे वही सुन सकता है जिसने जग की व्यथा और पीडा से मुक्ति पाली है। 'स्वर्ण धूलि' मे सामाजिकता पा लेना कठिन कार्य है। ईसा, बुद्ध और गांधी के पथ पर वह चलता है, और प्रेम, न्याय और एकता की कामना मनुष्य मात्र से वह करता है।... इस काव्य को हम इच्छा-पूर्ति का काव्य कह सकते है, क्योकि कवि द्वद्व और सघर्ष से विकल होकर अपने आप मे सिमट जाता है और प्रेम, शाति, आदि का मत्र पाठ करता है। .. भौतिक सघर्ष भी पीढियो पर्यन्त चलेगा। सोवियत के नेता तक अभी उसका अत नही देख रहे। 'अरविंद दर्शन और गाधीवाद आज साम्राज्य-वादियो के विशेष प्रिय बन गए है। परलोक और अहिंसा के नाम पर यह दर्शन शत्रु के सामने जनता को निरस्त्र करते हैं। यदि चीनी जनता चियाँग के विरुद्ध अहिंसा का मत्र पढती, तो वह भी आज भारत के समान साम्राज्य-वादियो के शोषण का शिकार होती।"[1]

ऐसा ही स्वर रामविलास शर्मा का भी है, "हिंदी पाठक जानते है कि 'रूपाभ' निकालते हुए पत जी ने छायावाद से बिदा ली थी। उसे कल्पना-लोक की वस्तु कह कर उन्होने यथार्थ की ठोस धरती पर आने का प्रण किया था। 'युगात', 'युगवाणी', 'ग्राम्या' आदि इसी काल की रचनाए है। बहुत से लोग समझने लगे कि पंत जी मार्क्सवादी हो गए है। इन रचनाओ को ध्यान से पढने पर यह बात खुले बिना न रहेगी कि दरअसल पत जी ने मार्क्सवाद को पूरी तरह कभी स्वीकार नही किया था।" "पत जी की रची हुई मरीचिका मे फँसकर हमारे साहित्य की प्रगति असभव है। साहित्य का भविष्य जनवादी आदोलन से जुडा हुआ है।" "स्थायी साहित्य, सुदर साहित्य, ऐसा साहित्य

---

१. प्रकाशचंद्र गुप्त : 'आधुनिक हिंदी साहित्य : एक दृष्टि', (१९५२) पृष्ठ १७३-१९४

जिसे जनता युगो तक अपने हृदय मे स्थान दे, कायर अनैतिक और सिद्धान्त-हीन व्यक्तियो की रचना नही हो सकती।"[1]

प्रकाश चद्र जी का मुख्य आक्षेप पत के विरुद्ध यह है कि उन्होने क्राति को महत्व न देकर शाति को महत्व दिया है तथा उनकी 'स्वर्ण धूलि' मे सामाजिकता पा लेना कठिन है। किसी भी समस्या को समझने के लिए यदि गाडी के पीछे घोडा बाँध दिया जाए, तो परिणति आत्म-विरोधी ही होगी। मार्क्स ने क्यो क्राति और वर्गयुद्ध की बात की? क्या उसका द्वद्वात्मक भौतिकवाद क्राति को साध्य मानता है, यदि हाँ, तो किसी प्रकार का समाजवाद और प्रगति सभव नही है, खुले बरामदे मे तूफानी अधड के समय झाडू दीजिए, धूल और धूल ही मिलेगी, आँखे धूल से अधी हो जाएगी। जिस शाति के लिए मार्क्सवादी आलोचक मानवता के रक्त को पानी की तरह बहता देख प्रसन्न होते हैं, यदि पत का मानवताप्रेमी हृदय ऐसे दृश्य को देख कर सिहर उठता है, तो यह सहज और स्वाभाविक है। उनका हृदय रक्त पिपासु नही है, मानव सहारक एव भक्षक नही है, वे यदि मानवता के लिए शाति चाहते है, मानव-मानव को समान देखना चाहते है तो उसके लिए मनुष्य को डडा मार कर शिक्षित करने मे विश्वास नही करते। समानता का सिद्धात एकता के सिद्धात पर आधारित है और एकता के सत्य को समझकर ही हम सामाजिकता एव समाजवाद को स्थायी रूप से अपना सकेंगे अन्यथा रक्त क्राति वाला मनुष्य अथवा समाजवाद सरकस का शेर ही रहेगा।

'रूपाभ' के सम्पादकीय मे ऐसा कुछ नही है कि रामविलास जी भ्राति मे पड गए। कठिनाई तब होती है जब आप गहरे रग का मोटा चश्मा लगा कर बाहर देखें और सोल्लास कह दें बादल छाए है, तथा पानी न बरसने पर नियता को कोसे। 'रूपाभ' मे पत ने केवल 'स्वस्ति, जीवन के छाया काल' और 'स्वस्ति, मेरे कवि बाल' की पल्लवकालीन प्रतिज्ञा को दोहराया है। 'पल्लव' की अतिम रचना 'छाया-काल' अपने शीर्षक मे अर्थगर्भित है तथा 'स्वस्ति, मेरे कवि-बाल' द्वारा कवि कविता को बाल-कल्पना तक सीमित नही देखना चाहता था। छायावाद उत्तर-पल्लवकालीन रचनाओ मे मर नही जाता है, वह केवल वायवी अयथार्थ नही रहता। बाल-कल्पना की ही अविच्छिन्नता

---

१ रामविलास शर्मा, 'स्वर्ग किरण' और 'स्वर्ग धूलि'।
सुमित्रानंदन पंत : सम्पादिका शचीरानी गुर्टू (१९५१) पृ० ३०७ तथा ३२८

प्रौढ-कल्पना है । बच्चा जीवन यथार्थ मे जन्मने, पलने और शिक्षित होने के कारण 'स्वप्न भवन' मे नही रह पाता, उसे 'खुरदुरे पथ' पर उतरना ही होता है । 'खुरदुरे पथ' पर उतरना 'कम्यूनिस्ट मेनिफेस्टो' को अपना लेना या साम्यवादी लौह साँचे मे ढलना नही है । जो स्वप्न के पलने का प्रबुद्ध होकर त्याग करता है वह सकीर्ण लौह दीवारो के प्रति अबोध नही है । "ऐतिहासिक दर्शन के एक दृष्टिकोण से विश्व जीवन को प्रगति देने के लिए प्रतिक्रिया भी अप्रत्यक्ष रूप से सहायक होती है । किंतु उस दृष्टि से भी प्रतिक्रिया को हम प्रयोजन मात्र समझ सकते है, अपना इष्ट नही । हमारा निश्चित ध्येय प्रगति की शक्तियो को सक्रिय सहयोग देना होगा ।" 'रूपाभ' ने जनता के कल्याण को अपना ध्येय अवश्य माना किंतु यह कल्याण मनुष्य को प्राणिक-दैहिक व्यक्तित्व मात्र नही मानता, प्रबुद्ध आत्म-शासित चेतन सत्ता भी मानता है वरन् इसी रूप मे उसका अभिनदन करता है । पत की 'ग्राम्या' इस तथ्य की स्वीकारोक्ति है ।

, वास्तव मे पत-काव्य एक स्वस्थ विकसनशील काव्य होने के कारण प्रगतिवाद से एक तटस्थ साम्यता रखता है, यह 'प्रगतिवाद' कभी नही था, न हो ही सकता है ।

प्रारभ मे पत की भाँति ही भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र, दिनकर, अचल, सुमन—सभी को प्रगतिवादी काव्य परपरा का कवि होने का गौरव प्राप्त हुआ था । जब इन लोगो ने प्रगतिवाद की लीक पर चलना छोड दिया तो प्रगतिवादी आलोचको को इनकी अबोधता पर दुख हुआ, क्रोध भी आया । क्रोध के अनियन्त्रित ज्वार को थामने के लिए इन्होने पत पर वार किया—न प्रतिभा, न काव्यशक्ति, न भाषा, न शैली, कुछ नही होते हुए कवि होने का ढोग ! इन आलोचको पर तरस तब आता है जब ध्यान जाता है कि पत से अ-कवि की आलोचना करने मे क्यो इन्होने अपनी शक्ति का दुरुपयोग किया, क्यो उनके काव्य को पढा यदि वह काव्य है ही नही, क्यो चाहा कि पत उनके पिछलग्गू बने अथवा पत को वे अपना नेता कहे ? जब इन आलोचको को आलोचना करने के लिए पत-काव्य मे कुछ नही मिला तो इन्होने पत के प्रशसको को अपना कोप भाजन बनाया, "प्रगतिवादियो की कलाहीनता को सहस्र मुखो से फूत्कार कर घोषित करने वाले आलोचक ऐसी दरिद्र कविताओ (गुजन) को कैसे अभिवदित करते रहे, समझ मे नही आता" अथवा "इतना दम्भ करने ही हिम्मत एक छायावादी कवि को ही हो सकती थी जिसे आलोचको

ने सभी प्रमाण-पत्र दे डाले थे ।"[१] "यह एक दुखद सत्य है कि ऐसी निरर्थक, निर्जीव और असुदर कविताएँ हिंदी साहित्य मे ही है । हिन्दी-काव्य का उपहास उडाने वाले लोग पत जी की ही कविताएँ उद्धृत किया करते है ।"[२] "पल्लव की बादल कविता इतनी निष्प्राण और निर्जीव है कि पहिले पद्य से ही पढने मे एक थकावट सी अनुभव होने लगती है ।'[३] पत की द्वितीय चरण (उत्तर ग्राम्या युग) की कविताओ के लिए शल्य जी की स्वीकारोक्ति है कि ये प्रगतिवादी रचनाएँ नही है । इसलिए इनका कोई मूल्य नही है । इनमे मानव-महत्ता तथा कल्याण का महत्वशून्य गान मात्र है। ऐसे आलोचको पर आश्चर्य तब होता है जब वे अपना नाम गुप्त रख कर पत से मिलने आते हैं । एक आलोचक पत के टैगोर-टाउन के निवास-स्थान पर उनसे मिलने आए और दर्शनार्थी के नाते बातें कर चले गए । दिनो बाद उनके एक मित्र ने इन दर्शनार्थी का भेद खोला ।

प्रगतिवादी आलोचना का कोई क्या उत्तर दे सकता है, एकमात्र इसके कि शकराचार्य के शब्दो की पुनरुक्ति की जाय—'शून्यवादिपक्षस्तु सर्वप्रमाण-विप्रतिषिद्ध इति तन्निराकरणाय ना ऽऽ दर : क्रियते ।'

रूसी साहित्यिक चेलिशेव के अनुसार, "पंत जी की विचार धारा के मूल्याकन के विषय मे विरोधाभासात्मक बातें देखने को मिलती हैं—एक ओर रहस्यवादी पत की बातें की जाती हैं, तो दूसरी ओर मार्क्सवादी पत की । पत जी की विचारधारा की सर्वोत्तम ग्राहिता की बात हम पहले ही कर चुके है । इसमे आधुनिक भारतीय समाज के आध्यात्मिक क्रम-विकास की जटिल प्रक्रिया प्रतिबिंबित हुई है । कुछ आलोचक मानते है कि चतुर्थ दशक के अत मे पत जी मार्क्सवाद की ओर आकृष्ट हुए, ' आगे वह मानते है कि पतजी बाद मे मार्क्सवाद से जैसे दूर हट गए है । पर हमे इस दृष्टिकोण का खण्डन करना चाहिए । देखिए इस सबध मे स्वय कवि क्या कहता हैं, "आज भी (सन् १९५९ मे) जब नव मानवतावाद की दृष्टि से, मैं विश्वजीवन के बाह्य पक्ष की समस्याओ पर विचार करता हूँ, तो मार्क्सवाद की उपयोगिता

---

१. यशदेव शल्य : 'पंत काव्य और युग,' पृ०१३२

२. वही, पृ० १५४

३. वही, पृ० १०५

मुझे स्वय-सिद्ध प्रतीत होती हैं।" (चिदम्बरा पृ० १५) और यह कोई एक घोषणा मात्र नही है। अपनी सारी बुद्धिमत्ता, अपना समूचा जीवन कवि ने मानव-सेवा तथा अपने देशवासियो एव समस्त मानवता की मुक्ति के कर्त्तव्य पर समर्पित कर दिया है : "पूर्ण नही कर सका अभी तक मैं प्रणिहित कवि-कर्म धरा पर', अपनी इस उक्ति को चरितार्थ करने का मैं सभवत. भविष्य मे प्रयत्न कर सकूँ अब भी 'युगवाणी' के युग की अभीप्सा मेरे भीतर ज्यो-का-त्यो अपना कार्य करती प्रतीत होती है। इस धरती के जीवन के प्रति अपने को सार्थक रूप मे समर्पित करने का सघर्ष मैं निरतर अपने अतरतम मे जागरूक पाता हूँ । अपना शेष जीवन सामाजिक तथा सास्कृतिक कार्य को समर्पित करना चाहता हूँ।" (साठ वर्ष एक रेखाकन पृ० ७४)[१]

भारतीय प्रगतिवाद किसी प्रकार के समझौते को स्वीकार नही करता है। वह उसी तथ्य को अपनाता है जो 'मार्क्सब्रैन्ड' का हो—इस ब्रैन्ड के झडे को कस-कर पकड लो और शरीरिक-मानसिक शौर्य के साथ काम मे ले आओ। शायद ही कोई ऐसा युग-प्रबुद्ध विचारक होगा अथवा वह विचारक जो युग प्रबुद्ध न भी हो, और जो भी हो, विचारक नही ही कहलाएगा यदि वह मार्क्स दर्शन मे निहित मानवतावादी-समाज दर्शन को अस्वीकार कर दे। इसी तथ्य को स्वी-कार करते हुए पत कहते हैं, "वह हमारे युग की अदम्य कलात्मक न्याय की पुकार थी, जिसने मुझे 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' लिखने को बाध्य किया।" और इसी न्याय ने उन्हे सपूर्ण व्यक्ति, सपूर्ण जीवन को अपनाने की दृष्टि प्रदान की जिस कारण मार्क्सवाद समग्रता का एक अश बन कर ही उन्हे रिझा सका। भारत की वैदिक-दार्शनिक भूमि मे जन्मे और पले पत सूक्ष्म सास्कृतिक और आध्यात्मिक दर्शन अथवा चेतना के सत्य की उपेक्षा नही कर सकते थे। उन्होने माना कि अध्यात्म और वस्तुवाद का सतुलित समन्वय एव अध्यात्म द्वारा वस्तुवाद का दिशा निर्देशन ही भू-स्वर्ग का निर्माण कर सकता है।

यह सब जानते हुए भी प्रगतिशील आलोचक क्यो झल्लाए जब पत ने इसी बात को अपने शब्दो मे दुहरा दिया कि मार्क्सवाद को वे एक सीमा तक स्वीकार कर सकते है। उन्हे लगा पत ने धोखा दिया है। वे एक स्वर मे चीख उठे, 'ग्राम्या' और 'युगवाणी' मार्क्सवादी रचनाएँ नही है। कौन विवाद मे

१. इं० चेलिशेव, 'सुमित्रानंदन पंत तथा आधुनिक हिन्दी कविता में पर-म्परा और नवीनता', पृ० २२६–२२७

पडे—सर्प-रज्जु भ्रम के निर्माता वे स्वय ही रहे है। उनका अब भ्रम निवारण हो गया, अच्छा हुआ। पत का इससे कुछ बना-बिगडा नही क्योकि वे 'युग-वाणी' (सन् '३७-३८) मे डके की चोट पर कह चुके थे .

"भूतवाद उस धरा स्वर्ग के लिए मात्र सोपान,
जहाँ आत्मदर्शन अनादि से समासीन, अम्लान !"

प्रयोगवाद एवं नवान धाराएँ

प्रगतिवादियो के साथ सैद्धातिक मतभेद होने पर भी पत ने उनके प्रति सहज स्नेह भाव रखा। उनके आमत्रित करने पर उनकी साहित्यिक गोष्ठियो मे सम्मिलित हुए। किसी भी गोष्ठी का आमत्रण स्वीकार करने के लिए यह सुनना पर्याप्त होता है—साहित्यिक गोष्ठी है, सदस्य प्रतिभावान है, उत्साही हैं। फिर चाहे उसके सदस्य उन्हे गाली दे, कीचड उछाले या व्यग्य करें—वह अनदेखा और अनसुना कर देते है, "बेवकूफ हो तुम। मेरा उनके व्यक्तिगत आचरण से क्या सबध है? बेचारे स्वय आकर मुझसे कह गए है कि इस गोष्ठी का आयोजन करने के लिए वह दिनो से परेशान रहे, सयोजक पर तो मुझे तरस आ रहा है—इतनी दौड धूप कर रहा है।" अथवा "बीमार पड गया तो क्या हुआ? मोम का बना हूँ जो गल जाउँगा? फिर उनको बुरा लगेगा यदि मैं नही जाऊँगा, बेचारो ने सबेरे फोन तक किया।" और जब सन् '५२ मे प्रकाशचन्द्र गुप्त के कहने पर 'प्रगतिशील लेखक सघ' की गोष्ठी मे पत ने कवि सम्मेलन की अध्यक्षता की तो प्रयोगवादी सस्था, परिमल के सदस्य क्रुद्ध हो गए। उस समय प्रयाग दो विरोधी शिवरो मे बँटा हुआ था।[१] पत किसी भी शिविर की एकागिता मे अपने मानवतावादी दृष्टिकोण का गला नही घोट सकते थे। यह उस कवि-आदर्श की हत्या थी जिसके लिए वे तथा उनका साहित्य जीता है। यही कारण है कि परिमल से त्यागपत्र देने पर भी वे उसके खुले अधिवेशनो मे आमत्रित होने पर सम्मिलित होते है।

---

१. **"प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया में धीरे-धीरे एक प्रयोगवादी आंदोलन खड़ा हो रहा था। यह तो खुली मुसल्मानी समझी जाती थी कि प्रगतिवादी का सबध साम्यवादी दल और साम्यवादी दल का सम्बध रूस से है। प्रयोगवादी आंदोलन के सम्बध मे यह कानाफूसी चल पड़ी कि उसका सम्बंध व्यक्तिगत स्वतत्रता और अमरीकी प्रेरणा या सहायता से है। बहरहाल,**

और इसीलिए पत, आज, किसी दल के नही है, इस अर्थ मे उनका कोई साहित्यिक मित्र मडल नही है, पिट्ठू शिष्य समुदाय नही है। "पत जी की आतिशयिक शालीनता और सकोचशीलता जहाँ उनके व्यक्तित्व को एक असाधारण आकर्षण देती है, वही उस पर कुछ प्रतिबध भी लगा देती है। उनके मित्रो की सख्या बहुत सीमित रही है। मेरा अनुमान यह है कि मित्रो की कमी के कारण पत जी को उचित प्रकार के समीक्षक अच्छी मात्रा मे नही मिले है, जिसके कारण उनके काव्य का विवेचन कुछ एकागी हो गया है।"[1] वाजपेयी जी अपने स्नेह बाहुल्य मे भूल जाते है कि किसी भी साहित्यिक की सामयिक आलोचना उसके काव्य का उचित मूल्याकन नही कर पाती है।

यह देखने में जरूर आया कि एक के पैरोकार रूस की यात्रा किए हुए लोग तो दूसरे के अमरीका घूमे हुए लोग; एक के ऊपर लेनिन की छाया तो दूसरे के ऊपर अब्राहम लिंकन की छाया; एक जगह रूसी लेखको, कवियो की दुहाई तो दूसरी जगह अमरीकी लेखको-कवियो की दुहाई। १९५२ मे मै इग्लैड मे था तो प्रयाग के किसी साहित्यिक समारोह में दोनो दलो के बीच हाथापाई की खबर भी मुझे मिली थी…….।

प्रगतिवादियो से पंत जी कट चुके थे, इस कारण प्रयोगवादियो ने उन्हे अपनी ओर खींचना चाहा, उन्हे नेतृत्व देने के ख्याल से नहीं, नेता तो वहाँ पहले से थे, वहाँ तो हर एक नेता ही होता है, वहाँ जरूरत होती है पिछलग्गुओ की; पर पत जी का नाम है—यदि उनसे कोई सस्था सम्बद्ध होती है तो उसकी कुछ साख बनती है और उनके जरिए औरो को खीचना आसान होता है। मैं इंग्लैंड से '५४ मे लौटा तो मैने पाया कि पत जी एक प्रयोगवादी संस्था के सदस्य है। उन्होने मुझे राय दी कि मै भी सदस्य बन जाऊँ।"

बच्चन : 'कवियो मे सौम्य सत', पृ० १८३

बच्चन जी को गलत ख्याल है। पत १९५२ में ही परिमल की सदस्यता से त्याग-पत्र दे चुके थे। सन् '५४ मे बच्चन जी के पूछने पर उन्होने उन्हे अवश्य परिमल का सदस्य बनने की राय दी, उसका कारण यह है कि व्यक्तिगत सम्बध के कारण किसी व्यक्ति या सस्था को बुरा कहना वे अनुचित मानते है।

१. नन्ददुलारे वाजपेयी : 'पुष्पोपहार' (स्मृति-चित्र, पृ० ११५)

दरबारी एव दलबदी, राजनीतिक या सस्थागत प्रतिबद्धता के ढग की, आलोचना पानी का बुलबुला ही है। वैसे यदि यह स्थायी महत्व की भी होती तो भी सर्जन कवि या लेखक इसकी चिन्ता करके, और जो कुछ भी लिख लेता, स्थायी सत्यनिष्ठ साहित्य की सृष्टि नही कर सकता। पत साहित्यिक दलबदी को, नितात अपने सदर्भ मे, बुरा नही मानते क्योकि "युवक प्रतिभा कुछ तो खुराफात करेगी ही।" किंतु साहित्य एव समाज की दृष्टि से ऐसी पारस्परिक स्पर्द्धा और कुठा को वह अकल्याणकारी मानते है। उनका कहना है, "मुझे सच, बडा बुरा लगता है जब देखता हूँ कि सैद्धातिक मतभेदो ने वैयक्तिक सबधो को कलुषित कर दिया है। बहुत चाहता हूँ कि इलाहाबाद के लेखक एक व्यापक साहित्यिक भूमि पर विचरण करें, दोनो सस्थाएँ मिल जाएँ तो इनका और साहित्य का, दोनो का कल्याण ही होगा।" किंतु पत का समन्वय स्वप्न, स्वप्न ही बनकर रह गया है—विरोधी शिविर एक दूसरे के निकट ही नही आना चाहते। यदि एक दल का लेखक दूसरे दल की गोष्ठी का निमत्रण स्वीकार कर ले तो वह गद्दार ही समझा जाएगा (यह बात दूसरी है कि वह गोष्ठी मे लगर्डा देने जाए) किंतु पत के लिए किसी दल विशेष तक अपने को सीमित कर लेना वैयक्तिक स्वतत्रता का अपहरण है, मानवता का अपमान अथवा उस सर्जनात्मक साहित्य की मृत्यु है जिसके लिए वे सपूर्णता मे जी रहे है।[1]

जब सन् '५२ मे उन्होने परिमल के सदस्य होते हुए प्रगतिशील लेखको की बृहत गोष्ठी का आमत्रण स्वीकार करने के साथ ही परिमल से त्यागपत्र दे दिया (उसकी सदस्यता की शर्तों के अनुरूप)[2] तो प्रयोगवाद ने उनके विरुद्ध

---

१. अपने इसी व्यक्तित्व के कारण बाद को 'विवेचना' से भी अप्रेल १९६५ में उनका सम्बध विच्छेद हुआ।

२. "सदस्यता हरण—कोई भी व्यक्ति परिमल की सदस्यता खो देगा,

... ...

(४) यदि वह किसी ऐसी संस्था से सम्बद्ध होता है जिसका परिमल से उद्देश्यगत विरोध है।"

परिमल (विधान तथा नियमावली) पृ० ३

(परिमल पर्व के अवसर पर शिवरात्रि, २३ फरवरी १९५२ को प्रकाशित)

सहस्त्र फन फैला दिए ।[1] उसने अपने दृष्टिकोण को प्रमाणित करने के लिए साम दाम, दण्ड तथा भेद का खुलेआम प्रयोग किया ताकि सफेद काला दीख सके । किंतु किसी को भी निष्पक्ष चितन करने मे, सफेद-सफेद ही दीखेगा, क्योकि वह स्वत सिद्ध है। पन्द्रह वर्ष की आयु से ही जो आलोचको की काक-बुद्धि से परिचित हो गया हो उसके लिए प्रौढावस्था मे यह सब मनोरजन ही था । पत का रेडियो से सबद्ध होना—लेखक और राज्याश्रय—सबसे अधिक कुढन की बात उनके लिए हो गई जो स्वय रेडियो से सबद्ध होना चाहते थे या सबद्ध रह चुके थे। पत को यह कुढन दु खी नही कर सकी, "ऐसे मे बुरा मानने को बात है ही क्या ? कुठाग्रस्त स्वय ही खण्डित है।"

प्रगतिवादी प्रयोगवादी अथवा नई कविता, ताजी कविता, अकविता आदि के छुटपुट आक्रोश जो व्यक्तित्व और सिद्धात के माध्यम से काव्य का मूल्याकन करने के यशः भागी होना चाहते हैं अपने आप मे आक्रोश मात्र बन गए । हिन्दी कविता अनत धाराओ मे विकीर्ण होकर घोघो, केचुओ, कनखजूरो के रूप मे दूसरो को त्रस्त करने के प्रयास मे स्वय त्रस्त हो गई। अपनी पीढी के सत्रास (पश्चिम से उधार लिया सत्रास), सक्रमणात्मक स्थितियो का विवेचन एव कला को अपने ही हाथो मे सुरक्षित रखने को प्रयास मे 'धुरी हीनो की व्यक्तित्व हीनता का पर्दा-फाश" 'लेखक और राज्य' एव राजाश्रय मे निहित हानियो, असाहित्यिक मान-दण्डों अथवा 'सरकारी साहित्यकारो की उगती हुई नसल का विरोध' करके भी जब सदाशयी लोगो को सतोष नही हुआ तो वे पत के 'लिजलिजे' व्यक्तित्व पर झुझला उठे, उनकी साहित्यिक असफलताओ का कारण सभवत', पत का आकाशवाणी का सलाहकार होना था, हिंदी साहित्य की अप्रगति के मूल मे भी कुछ ऐसी ही खुराफातो का अनुसधान किया गया था । और जब आलो-चको, विरोधियो को अपने अद्वितीय लाछनो तथा भव्य अनुसधानो मे भी असफलता दीखी तो उन्हे पत के साहित्य को कूडा कहने के लिए प्रबलतम प्रमाण यह मिला कि उनका साहित्य वृद्धावस्था का साहित्य है। उन्होने पत

---

१. परिमल द्वारा आयोजित गोष्ठी—लेखक तथा राज्य ।
धर्मवीर भारती : ठेले पर हिमालय में सगृहीत निबंध 'लिलिपुट'।

लक्ष्मीकांत वर्मा : हिन्दी साहित्य के पिछले बीस वर्ष । जनवरी-फरवरी १९६७ की कल्पना से लेकर जून १९६७ की कल्पना।

की आलोचना करने के लिए शीर्षक खोजे —'बूढा गिद्ध क्यो पख फैलाए ?'[1] 'बूढेपन की अनुभूति' आदि । अथवा उनका कहना था "निपट झुर्रियो की दुहरी झालर मे वह मन के नव तारुण्य की आस करता है हाड-मास के निर्बल लोथ मे मन की तरुणाई कब तक टिक सकती है।" "पत जी अब लगभग सत्तर वर्ष के हो रहे हैं। पत जी के काव्य जीवन का पतझर भी अब बीत रहा है।"[2] ऐसी बातो का कोई उत्तर नही हो सकता क्यो कि मन नि.स्पद हो जाता है, और फिर ध्यान मे आता है क्या मनुष्य इतना निर्बुद्धि भी हो सकता है ? क्या ये लोग बूढे नही होगे ? क्या अपने ही अवश्यम्भावी आगामी जीवन से व्यक्ति घृणा कर सकता है ? क्या वृद्धावस्था की अनिवार्य और अभिन्न सगिनी एव उसका एकमात्र लक्षण मानसिक, बौद्धिक अथवा आध्यात्मिक जर्जरता और पतन है। यदि यह वस्तुगत सार्वभौम सत्य है तो क्यो नही वृद्धावस्था के साहित्य, वैज्ञानिक अनुसधानो, उच्च उन्मेष, स्फुरित ज्ञान, राजनैतिक-सामाजिक-धार्मिक सिद्धातो उपदेशो पर प्रतिबध लगा दिया जाता है। और इस प्रतिबध के क्रम मे हम पुन. अपने आपको दुर्गम वन मे भटकता पाते है।

पत के एकाध आलोचक ऐसे भी है जिन्हे पत की आलोचना के लिए इसके अतिरिक्त अन्य कोई प्रमाण नही मिला कि वे कहे—पत प्रकृति के कवि होने का दभ क्यो करते है जब कि ये कटरे की बाजार की धूल (बदबू !) से बचने के लिए नाक मे रूमाल लगाते है। इसी भाँति साही जी ने पत-काव्य के विकास को अपने ही ढंग के मनोविज्ञान के आधार पर समझाने का प्रयास किया। "(छायावाद) विपरीत युग मे, पत जी का सारा प्रयास कभी हताशा, कभी प्रार्थना स्वरो मे उस रिक्तता का सामना करने के बजाय, उसकी सत्ता से इनकार करने का है। वह उसे हिरण्य मत्रो से भर देना चाहते है।

वैभवपूर्ण अतीत और हठी वर्तमान ! कल्पना शिशु राजयोगी बना और राजयोगी धीरे धीरे हठयोगी बनता गया। प्रकृति से अरविन्द, और अरविन्द से काष्ठमौनी बाबा ··· ।"[3]

---

१. धर्मयुग, रविवार, २८ सितम्बर १६६६

२. कथा-२ पृ० ७७

३. विजयदेव नरायण साही : नयी कविता (१६६०-६१, संयुक्तांक ५-६) सम्पादक जगदीश गुप्त और साही पृ० ८५

यदि प्रगतिवादियो ने पत को अपराधी के कठघरे मे इस आधार पर रखना चाहा था कि वे अध्यात्मवादी या अरविंदवादी हो गए है तो प्रयोगवाद और उसके बाद अथवा उसके साथ के 'वादो' ने उन्हे इसलिए अभियुक्त सिद्ध करना चाहा कि सरकार की भाषा-नीति ढीली है, कूडा-कर्कट कविताएँ लिखी जा रही है, पत-काव्य अनुभूति एव क्षणजीवी सत्य से रीता है, उसमे लोहियावाद या समाजवाद नही मिलता है, 'परिमल' को उन्होंने धोखा दिया है, और इन सबसे महत्वपूर्ण यह कि अहताएँ ही काव्य की सच्ची सर्जक है।

सुदरम् शिवम् सत्यम्

पत काव्य पत का स्वभाव है, व्यक्तित्व है—वह व्यक्तित्व जो मानव मगलाशा, मानव सुख और मानव-कीर्ति का आकाक्षी है:

किसी एक की नही
यह कीर्ति
समस्त मानवता की है:

इस कीर्ति की प्राप्ति के लिए वे बचपन मे माँ प्रकृति का आँचल पकडते है और छायावाद के कवि के रूप मे प्रसिद्ध होते हैं। ज्ञान और अनुभव की वृद्धि के साथ उनका सौदर्य प्रेमी मन 'ज्योत्स्ना', 'युगात', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' मे मानव मगल कामी हो जाता है—उन्हे स्पष्ट लगने लगता है कि सुदरम् बिना शिवम् के मृगतृष्णा है, सुदरम् का अर्थ और अस्तित्व ही शिवम् एव कल्याण मे है। पत की युगातोत्तर तथाकथित प्रगतिशील रचनाएँ छायावाद प्रेमियों के लिए सदेहास्पद रही। इस सदेह के मूल मे 'छायावाद' शब्द की भ्राति थी। छायावाद को छाया से युक्त करके वह छाया-माया के मोह मे पड जाते हैं और इस ज्वलत सत्य को भूल जाते है कि छायावाद का मूल स्वर सास्कृतिक, मानवीय एव नव्य-अध्यात्मवादी है।

पत का छायावाद अथवा नव्य-अध्यात्म सौदर्य के अवगुठन मे सासारिक जीवन की स्वीकृति–भौतिक यथार्थ और मानव-कल्याण—को अपनाए हुए हैं।[1]

---

१. "नयी हिन्दी कविता में आध्यात्मिक काव्य की रचना पंत के अतिरिक्त निराला और 'नवीन' ने भी की है।''' 'निराला और 'नवीन' की आध्यात्मिक कविता में समतल और ऊर्ध्व मानों का समन्वित स्वरूप अनुपलब्ध है, जो पंत की मुख्य लब्धि है। निराला और नवीन का आध्यात्मिक काव्य भक्ति परक, भगवान् के प्रति समर्पण की भावना से युक्त

मानव, मानव जीवन, प्रकृति और सौदर्य—सभी मे एक ही आत्मा—ईश्वर—है। यह सर्वात्मभाव उनके स्वभाव, व्यक्तित्व एवं कृतत्व का मूल स्वर है। बाल पत अपनी प्रथम कृति 'हार' के युवा योगी से लेकर अपनी नवीनतम कृतियो 'सत्यकाम' (१९७५) और 'गीत अगीत' (१९७६) मे एक ही लक्ष्य—मानव कल्याण—की प्राप्ति के लिए आकुल है।

अनुभव की व्यापकता, ज्ञान की वृद्धि के साथ जब उन्हे भाग्य की छलना 'ग्राम्या' के मृत ककाल—दु ख, दैन्य, रूढ़िवाद, अधविश्वास, जमीदारी प्रथा—का ससर्ग करा देती है तो वे कराह उठते है : 'यह तो मानव लोक नही रे' अथवा 'इन कीडो का भी मनुज बीज, यह सोच हृदय उठता पसीज।' गाँव, गाँव की श्रीहीनता, दरिद्रता उनके लिए अपरिचित नही थी—गाँव मे ही वे जन्मे हैं, गाँववालो के साथ ही हँसे-खेले है, उनके साथ एक ही कक्षा मे बैठ कर पढा है। यथार्थवाद एव सामाजिकता के अर्थ को वे कालाकाँकर पहुँचने के पूर्व ही आत्मसात् कर चुके थे। उनका काव्य जीवन की जिस सत्यता को लेकर चला है उसका, चेतन अथवा अवचेतन रूप मे, मार्क्सवाद का सामाजिक सगठन, सामाजिक जागरण एक अनिवार्य अग था। किंतु जिसने प्रकृति के रक्तलिप्सु ध्वसात्मक कठोर रूप का वर्णन तक नही किया वह स्पष्ट

है। दोनो की काव्यानुभूति 'सन्त काव्य' के अधिक निकट प्रतीत होती है। निराला का आध्यात्मिक काव्य सूर-काव्य के समान है। एक ओर तो इसमें विश्व के मायामोह से परित्राण हेतु ईश्वर से निवेदन किया गया है और दूसरी ओर हरिस्मरण का आदेश है। जहाँ निराला और नवीन में इस ससार से छुटकारा पाने की भावना प्रधान है, वहाँ पंत ऊर्ध्व-चेतना और आध्यात्मिक-धरातल से पुन वापस लौट कर संसार के नव निर्माण की कामना करते हैं। इस प्रकार पंत में धरती से पलायन करने की अपेक्षा धरती और स्वर्ग के मिलन की भावना अधिक प्रबल है। पंत ऊर्ध्वारोहण को उत्सुक हैं, आध्यात्मिक चेतना के उद्बोधन का स्वर उनमें प्रमुख है परन्तु जीवन और जगत् से नितांत असंपृक्त होने की आकाक्षा नहीं। पंत समतल जीवन-मूल्यो से पूर्ण उदासीन होकर, उर्ध्वारोहण में लीन नहीं होना चाहते। आध्यात्मिक-तत्व का नव आलोक ग्रहण कर भौतिक संसार का नवनिर्माण करने को प्रस्तुत रहते हैं।"
शम्भूनाथ चतुर्वेदी : पंत की नयी कविता। युगचेतना वर्ष ४, अंक १० अक्टूबर १९५८ पृ० १०—११।

ही मार्क्सवाद के वर्ग-युद्ध, रक्त-क्राति एव ध्वसात्मक रूप को नही ही स्वीकार कर सकता था। यह केवल एक सयोग था कि प्रगतिशील लेखक सघ के वे सपर्क मे आए, उसे उन्होने एक सास्कृतिक सस्था के रूप मे अपनाया। पत का मन सदैव से प्रगतिकामी रहा है, राजनैतिक अर्थ मे प्रगतिवादी नही ही रहा है।

दिसम्बर सन् '४१ मे लिखित अपनी आधुनिक कवि-२ की भूमिका मे उन्होने अपने प्रगतिकामी सामाजिक दृष्टिकोण की व्याख्या की है, "मै, अध्यात्म और भौतिक, दोनो दर्शनो के सिद्धातो से प्रभावित हुआ हूँ। पर भारतीय दर्शन की सामत-कालीन परिस्थितियो के कारण जो एकात परिणति व्यक्ति की प्राकृतिक-मुक्ति मे हुई है (दृश्य जगत् एव ऐहिक जीवन के माया होने के कारण उसके प्रति विराग आदि की भावना जिसके उपसहार मात्र हैं), और मार्क्स के दर्शन की, पूँजीवादी परिस्थितियों के कारण, जो वर्ग युद्ध और रक्तक्राति मे परिणति हुई है—ये दोनो परिणाम मुझे सास्कृतिक दृष्टि से उपयोगी नही जान पडे।" मानव कल्याण एव सास्कृतिक दृष्टि से ही उन्होंने शिवतत्व रहित छायावाद के लिए कहा, "छायावाद इसलिए अधिक नही रहा

---

१. "वीणा से लेकर 'कला और बूढा चाँद' तक पंत की कला में अन्तर उनके काव्य-विकास का परिणाम है।……उनकी कला……'युगांत', 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' में आकर मांसल हो गई है। उनकी नारी-कला पौरुषमयी हो गई है अथवा क्षीण पड़ गई है। इसका कारण कवि की जीवन दृष्टि में शिव-तत्व का सौंदर्य-तत्व की अपेक्षा प्रधान होना है। पंत के कला-विकास के इस चरण मे भी भाषा की सुकुमारता, अलकारो तथा प्रतीको की सूक्ष्मता और छदों की संगीतात्मकता का सर्वथा लोप नहीं हुआ है।……उनका सुंदरम् के प्रति प्रथम प्रणय क्षणिक न होकर स्थायी था।……उनके काव्य का कला-पक्ष सूक्ष्म से स्थूल और स्थूल से सूक्ष्म की ओर उन्मुख हुआ है। इन दोनो के मूल में पंत की समन्वयशील जीवन-दृष्टि है जो परस्पर-विरोधी भावों तथा विचारो में मधुर मिलन को स्थापित करने के लिए चिर आतुर है, युग की सामयिक तथा जीवन की शाश्वत समस्याओ का समाधान खोज निकालने मे चिर विकल है।"
इन्द्रनाथ मदान : 'आधुनिक कविता का मूल्यांकन', पृ० २२६
(हिंदी भवन, जालंधर) प्रथम संस्करण १९६२

कि उसके पास भविष्य के लिए उपयोगी नवीन आदर्शो का प्रकाश, नवीन भावना का सौदर्यबोध और नवीन विचारो का रस नही था। वह काव्य न रहकर केवल अलकृत सगीत बन गया था। वह नए युग की सामाजिकता और विचारधारा का समावेश नही कर सका था। उसमे व्यावसायिक क्राति और विकासवाद के बाद का भावना-वैभव तो था, पर महायुद्ध के बाद की 'अन्न-वस्त्र' की धारणा (वास्तविकना) नही आई थी।"

जीवन की वास्तविकता के प्रति पत का छायावाद विरक्त नही हो सका। उसने अपनी वाणी से कहा .

> तुम वहन कर सको जन मन मे मेरे विचार
> वाणी मेरी, चाहिए तुम्हे क्या अलकार !

पत की छायावादी सौदर्य भावना[1] अशरीरी नही रह सकी, वह मानव सत्य के रूप मे धरती पर अवतरित हो कर विषय तथा भावो का विस्तार पा गई। छायावाद का शैशव उनके मानववादी दर्शन मे उस प्रौढता को प्राप्त

---

१. "प्रकृति का चैतन्य चित्र तो आधुनिक हिन्दी के कतिपय कवियो की अनुभूति में आया है पर उन्होने उसे केवल मानुषीय अनुभूतियो का आनुषंगिक बना रखा है। विराट् प्रकृति भी विराट् मनुष्यता के सामने छोटी बना दी गई है। यह प्रकृति के प्रति सहानुभूतिपूर्ण सजीव भावना नही कही जा सकती। उसे उसके ही क्षेत्र में—उसके अपने साम्राज्य में—साम्राज्ञी की भाँति देखने की उदारता हिदी के कवियो ने नहीं दिखाई। पंत जी इस दिशा में अग्रसर होने वाले पहिले व्यक्ति है। उनकी 'वीचि-विलास', 'मौन-निमत्रण', 'बादल' आदि कविताओ मे वैसी सहानुभूति झलकती है।"
" 'एकतारा' मे भी उन्होंने गहन आत्मदर्शन की 'अभिव्यक्ति' की चेष्टा की है। इस रचना मे तथा 'अप्सरी' में अपेक्षाकृत अधिक सफलता मिली है··· ···इस प्रकार की गूढ उज्वल सृष्टि करने में पंतजी के समकक्ष हिन्दी में एकमात्र निराला जी ही है। परन्तु बलशाली कल्पना शक्ति के कारण पंत जी निराला जी की अपेक्षा उपमा का अधिक आकर्षण विकीर्ण कर सके हैं।"
नंददुलारे वाजपेयी : 'हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी' पृ० १६१ तथा १६०-१६१

कर लेता है जो चराचर के सुख के अतिरिक्त और कुछ नही चाहता है। छाया-वाद के शैशव को ही आँख मूँदकर प्यार करनेवाले अथवा आत्म-आनद मे डूबने वाले, चाहे जितना दुखी हो, रामचद्र शुक्ल के कथन की अवहेलना नही ही की जा सकती, "शहद चाटने वालो और गुलाब की रूह सूँघने वालो को चाहे इसमे कुछ न मिले, पर हमे तो इसके भीतर चराचर के साथ मनुष्य के सबध की बडी प्यारी भावना मिलती है।"[१] नन्ददुलारे वाजपेयी यद्यपि पत को प्रगीत-काव्य की ओर विमुख होते देख दुखी होते है तथापि यह भी स्वीकार करते हैं, "हम यह भी मानते हैं कि पत जी-सरीखे प्रतिभावान कवि फिसलते-फिसलते भी कहाँ तक फिसलेंगे। अब भी उनकी समस्त कृतियो मे सुदर कला-कौशल है, यत्र-तत्र मार्मिक रूपयोजना और सूक्ष्म वस्तु-चित्रण है।"[२] इसी भाँति डॉ० नगेन्द्र का कहना है, "लेकिन पत कवि है, कविता उनका जन्म-जात अधिकार है, और 'युगवाणी' के गद्य मे भी कविता के रेशमी धागे अलग चमक जाते हैं। 'ग्राम्या' की स्नायुओ मे कवित्व का गाढा रस प्रवहमान है।"

पत का 'युवा योगी' मन आश्वस्त था, "छायावाद के दिशाहीन शून्य आकाश मे अति काल्पनिक उडान भरनेवाली अथवा रहस्यवाद के निर्जन अदृश्य शिखर पर कालहीन विराम करनेवाली कल्पना को हरी-भरी ठोस जनपूर्ण धरती चाहिए।" अत. उन्होने कहा :—

ताक रहे हो गगन ?
मृत्यु-नीलिमा-गहन गगन ?
... .
देखो भू को !

---

१ 'हिंदी-साहित्य का इतिहास', पृ० ८६२

तथा 'किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि उनके व्यक्तित्व मे गतिशीलता नही है। वे बराबर आगे बढ़ते गए हैं। उनका दृष्टिकोण बराबर सांस्कृतिक सामूहिक उत्थान का रहा है।......इस दूसरे उत्थान (समाजवादी आदर्श) में भी पंत में कोमल भावो और मोहक चारुताओं के प्रति मोह है।" हजारी प्रसाद द्विवेदी, 'हिन्दी साहित्य' पृ० ४६५ (१९५५)

२. आधुनिक साहित्य, पृ० ३३

जीव प्रसू को !

पत की रचनाएँ मानवकल्याणकारी आकाक्षा को अभिव्यक्ति देती हैं। वह किसी 'व्यक्ति विशेष' को, प्रसन्न करने, 'गुलाब की रूह सूँघनेवालो' एव दरबारगिरी और पार्टी प्रतिबद्धता के लिए नही लिखी गई है, न उनके पीछे कोई राजनीतिक उद्देश्य, सिद्धातवादिता या कुठा ही है, वे पर्वत की निर्झरणी की भॉति, उनके व्यक्तित्व का सहज निस्सरण है। अपने जीवन एवं काव्य-जीवन के विकास-क्रम मे वे 'जीव प्रसू' को देखते है और धरती के गीत गाते हैं। उनके गीत ग्राम्या की धूल मे लोटते है, उसके जीवन से घुलमिल कर कभी तो ग्रामोल्लास या धान की हरीतिमा को अभिव्यक्ति देते है, और कभी वहाँ के दारिद्र्य, अभाव और अधकार को। 'अधकार की गुहा सरीखी' आँखे मनुष्य के असामाजिक कृत्य को लाछित करती है, यह वह सत्य है जो न तो प्रयोगवादी खेमे मे समा सकता है और न प्रगतिवादी।

किंतु एकागिता का प्रेमी, उसके प्रति सकल्पबद्ध लेखक या आलोचक समग्रता को स्वीकार नही ही कर पाता है। बदर और बिल्ली की स्थिति है, या मैं पूरा खा जाऊँ, या मेरे निकट न आओ। साहित्य लिखते हो तो मुझे अपनाओ अन्यथा मैं तुम्हें जीने न दूँगा। पर पत-साहित्य ने इस परवशता को स्वीकार नही किया—तुम चीखते रहो, मै अपना पाथेय नही छोड सकता। मैं जीता हूँ क्यो कि मैंने जीवन—सपूर्ण जीवन—को अपना माना है। यही पत-जीवन का सतोष है, उनके कृतित्व का उल्लास है।

किंतु शंका तो शका ही है। लेखक पूर्णता का प्रेमी नही हो सकता; उसे पूर्णता एव समग्रता की अवहेलना करनी ही होगी, पूर्णता को थोथा घोषित करके अश को अपनाना ही होगा। ठीक है। अब पत छायावादी नही है, प्रगतिवादी नही हैं, प्रयोगवादी, अकविता-विकवितावादी, ताजी कवितावादी आदि नही है तो अवश्य ही वे कवि एव सर्जक नही हैं। वे अरविंदवादी है, अरविंद दर्शन के शुक-पिक।[1] और यह अरविंदवाद काव्य मर्मज्ञो, आलोचको के लिए वह

---

१. कुछ ऐसी ही भ्रांति के वशीभूत हो डा० नामवर सिंह को एक शोध-छात्रा को समझाना पड़ा कि अरविंद साहित्य एवं दर्शन हिन्दी के लिए दुर्भाग्य बन गया है। क्योंकि "इसके प्रभाव से हिन्दी के दो महान् कवियो ने अपनी मौलिकता खो दी। निश्चय ही इन दो में से एक का अभिप्राय आप थे। उनकी यह बात मुझे उचित नहीं जान पड़ी। किसी के प्रभाव

भूलभुलैया है जिसमे झाँकते ही सिर दर्द होने लगता है। भयकर सिरदर्द, 'माइग्रेन' जिसमे सिर घूमने लगता है और कविता दीखती ही नही है। केवल अरविंद-दर्शन के कुछ असम्बद्ध वाक्य एव सूत्र आपस मे टकराने लगते है। 'उत्तरा' की भूमिका, इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हो जाती है क्योकि उसमे न केवल पंत ने अपने मानवतावादी भौतिक, आध्यात्मिक दर्शन की व्याख्या की है वरन् समयानुरूप श्री अरविंद का उस महान् द्रष्टा के रूप मे अभिवादन किया है

में आकर भला कोई क्यो कर अपनी मौलिकता खो सकता है ? ··· ···
श्री अरविंद का साहित्य पढ़ने से पूर्व क्या आपके अंदर वह सब कुछ नहीं था जो आपने उसमें पाया ? यदि आप श्री अरविन्द को न पढ़ते तो क्या यह सब नहीं लिखते जो आपने लिखा हैं ?"
मैं समझती हूँ—आपके अंदर पहिले भी यही सब कुछ था। एक अकुलाहट निश्चय ही होगी जिसकी संतुष्टि पांडेचेरी में हुई। लेकिन फिर भी आप वही थे—अपनापन आपने नही खोया·· ··।"
गाजियाबाद से एक शोध छात्रा का पत्र (१४-४-'७६)
पर जिस सत्य को, 'प्रभाव की बात को' एक उन्मुक्त जिज्ञासिनी समझ सकी उसे पूर्वग्रह पर आस्था, कुछ आलोचना करने की प्रतिज्ञा, कैसे स्वीकार कर सकती है।
स्वयं पंत ने शोध छात्रा को (२६-४-७६) जो उत्तर दिया वह इस प्रकार हैं—"आपका दृष्टिकोण प्रभाव ग्रहण करने के बारे में ठीक है। ·· इस युग के किसी भी चिन्तक और स्रष्टा को जीवन के इन तीनो पक्षो (आर्थिक वैषम्य को मिटाना—मार्क्स; अहिंसात्मक कर्म—गाधी; तथा अध्यात्म (विशेषकर मध्ययुगीन) को वैज्ञानिक धरातल देना—श्री अरविंद) पर दृष्टि रखनी पड़ती है। मै स्वतत्र रूप से भी—जैसा आप 'ज्योत्स्ना' 'युगांत' आदि में पाएंगी—उसी दृष्टिबोध से सचालित होता रहा हूँ—जो सन् '४५ के बाद—जब मै श्री अरविंद के संपर्क में आया—मैने अधिक प्रशस्त रूप से अपनाया है। पर मैंने एकांत भाव से अध्यात्म पर ही बल नहीं दिया है। बहिरंतर जीवन की मान्यताओ के संयोजन पर बल दिया है। आप मेरे नवीन प्रबध काव्य 'सत्यकाम' मे जीवन के महत्व पर मेरा आग्रह अधिक पाएँगी।
·· मुझे श्री अरविंद के साथ ही कार्ल मार्क्स और गांधी की दृष्टि भी उतनी ही महत्वपूर्ण, इस युग के जीवन के लिए लगती है।"

जिसने भारतीय अध्यात्म को उसकी मध्ययुगीन निष्क्रियता और पलायनता से मुक्त करने का प्रयास किया है . "श्री अरविंद को मैं इस युग की अत्यत महान् तथा अतुलनीय विभूति मानता हूँ ।[1] आज हम छोटी-छोटी बातो के लिए पश्चिम के विचारको का मुँह जोहते है हम अपनी इतनी महान् विभूति को पहचान भी नही सके है हमारी राजनीतिक पराधीनता की बेडियाँ तो किसी प्रकार कट गई , किंतु मानसिक दासता की शृखलाए अभी नही टूटी है । जिस मार्क्स तथा ऐंगिल्स के उद्धरणो को दुहराते हुए हमारा तरुण बुद्धिजीवी नही थकता, उसे अन्य देशो के साथ अपने देश के दर्शन का भी सागोपाग तुलनात्मक अध्ययन अवश्य करना चाहिए ।"

इस कथन के सारतत्व के प्रति अपनी जानी अथवा अजानी अजानता व्यक्त करते हुए पत-काव्य के मर्मज्ञ सभी आलोचक शुक-ध्वनि करने लगते है । वे धैर्यपूर्वक समझाते है कि श्री अरविद दर्शन (उनकी दृष्टि मे !) क्या है[2]—जड-चेतन का क्या सबध है ? आरोहण-अवरोहण का क्या अर्थ है एव 'स्वर्ण-किरण' 'स्वर्णधूलि' और इनके बाद की रचनाओ की हम किस भाँति अरविंदवादी व्याख्या कर सकते है । किस भाँति यह समझा सकते है कि पत की शब्दावली अरविंदवादी है ।[3]

---

१. आलोचको ने पंत के इस कथन को इस भाँति आत्मसात् कर लिया कि उन्हें पंत की सहज रचनाओ, उदाहरणार्थ 'वाणी' की 'कृतज्ञता' रचना में अरविंद दर्शन मिल जाता है; काव्य-रूपक 'सौवर्ण' मे 'सौवर्ण' के स्थान पर श्री अरविद विराजमान मिलते है । अर्थात् पंत की प्रत्येक रचना में, शब्दो के गुह्यार्थो (?) में श्री अरविंद दिखाई देते हैं,—'लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल ।'

२. देखिए विश्वम्भर उपाध्याय : 'पंत जी का नूतन काव्य और दर्शन'
विश्वम्भर 'मानव' : 'युग चेतना', मार्च ५६ (पंतजी, अतिमा और अरविंदवाद)
रामधारी सिंह दिनकर : पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण पृ० १०२–१०३, १०४, १०६,
बच्चन : 'कवियो में सौम्य संत' पृ० ८८, १४९

३. पंत के उत्तर-काव्य (स्वर्ण-काव्य) की भाषा, उसकी प्रतीक शब्दावली के बारे में कुछ तथाकथित विद्वान भाषाविदो ने अपनी विद्वत्ता, नवीन अन्वेषण

नि सदेह पत अरविंद से प्रभावित हैं और यह शुभ है। अपने देश-काल (विदेश के नही) के महान् विचारक, योगी और दार्शनिक से प्रभावित होना लाछन नही हैं। किंतु यह भी समातर मे सत्य है कि वे अरविंदवादी नही है। दोनो नव्य-वेदाती हैं किंतु दोनो के दृष्टिकोण मे मूलगत अतर है। श्री अरविंद मुख्यत. दार्शनिक और योगी है, पत मुख्यत कवि और द्रष्टा है। पत की एकमात्र आकाक्षा इसी धरती, इसी जीवन, इसी देह-प्राण-मन को सत्यम् और शिवम् से युक्त करने की हैं। श्री अरविंद का सिद्धात रूपातर का सिद्धात हे। हम वर्तमान मानसिकता, वर्तमान स्थिति मे आनद की प्राप्ति नही कर सकते, उसके लिए मनुष्य को ठहरना होगा, अतिमानसिक स्थिति को प्राप्त करना उसका अभीष्ट है। दिव्य जीवन मे वे स्पष्ट शब्दो मे कहते है कि आध्यात्मिकता का सच्चा कार्य भूत या वर्तमान मानसिक स्तर पर मानव समस्याओ को सुलझाना नही है।[1] पत, इस अर्थ मे, आध्यात्मिकतावादी नही है, मानवतावादी है। वे

क्षमता का अच्छा परिचय दिया है। उनके अनुसार 'स्वर्ण' 'प्राण' आदि शब्द, विशेषकर' स्वर्ण शब्द का पंत के द्वारा प्रचुर प्रयोग पत की श्री अरविंद के प्रति पूर्ण प्रणत भावना, नकलची प्रवृत्ति, का सूचक है। वे पत की स्वर्ण-काव्य के पूर्व की रचनाओ के प्रति आँख मूँद लेते हैं। स्वर्ण, प्राण आदि शब्द उनकी रचनाओ मे वीणा काल से प्रयुक्त हुए हैं—अनेक पक्षी भी सोने का गान गाते हैं। अंतर इतना है कि विषयानुरूप 'स्वर्ण-काव्य' में 'स्वर्ण' शब्द का अधिक प्रयोग हुआ है।* रहा प्रतीक योजना, यह वैदिक-औपनिषदिक है। 'स्वर्ण धूलि' मे तो वैदिक ऋचाओ के अनुवाद भी हैं। दर्शन के विद्यार्थियो और प्रेमियो से यह तथ्य छिपा नहीं है कि दार्शनिक सत्य को अभिव्यक्ति देने के लिए विशिष्ट शब्दावली का प्रयोग करना पड़ता है। वही पंत ने किया है, अब यह भाषाविद् पर है कि वह श्री अरविंद दर्शन के प्रतीको से चमत्कृत हो कर ढेरो अनुसंधान कर्त्ताओ से पोथे लिखवा दें अथवा वैदिक औपनिषदिक शब्दो और प्रतीकों के अध्ययन में भी समय का उपयोग करे।

*पंत ने विषय तथा वातावरण के अनुकूल भाषा को सँवारा है, उस सबध मे दो मत नहीं हो सकते हैं।

1. "... it can be and is still held by the intellect and the physical mind eager for human life-fulfilment......

निर्धनता[1] अशिक्षा एव दु ख दैन्य को दूर करने के लिए आतरिक और बाह्य सगठन, वैज्ञानिक और आध्यात्मिक समन्वय को अनिवार्य मानते है :

---

that the spiritual tendency in humanity has come to very little; it has not solved the problem of life nor any of the problems with which humanity is at grips

But this is not the stand-point from which the true significance of the spiritual evolution in the man or the value of spirituality can be judged or assessed, for its real work is not to solve human problems on the past or present mental basis, but to create a new foundation of our being and our life and knowledge."

"Spirituality cannot be called upon to deal with life by a non-spiritual method or attempt to cure its ills by the panaceas, the political, social or other mechanical remedies which the mind is constantly attempting and which have always failed and will continue to solve anything."

"Only a spiritual change, an evolution of his being from the superficial mental towards the deeper spiritual consciousness, can make a real and effective difference."

"It is true that the spiritual tendency has been to look more beyond life than towards life. It is true also that the spiritual change has been individual and not collective."

"A higher instrumental dynamis than mind is needed to transform totally a nature created by the Ignorance." Sri Aurobindo : The life Divine Vol. II p 899-903 (Arya Publishing House, College Street, Calcutta, 1940).

1. "But you are surely mistaken in thinking that I said we work spiritually for the relief of the poor. I have

"अतर्मुख उन्नत प्रयत्न
आधे प्रयत्न भर,
बाह्य परिस्थितियो का भी
चाहिए उन्नयन ।

× × ×

"जीवन ही सर्वोपरि
प्रतिनिधि रे ईश्वर का
मन आत्मा केवल उसके
चिर अनुचर, सहचर"

---

never done that. My work is not to intervene in social matters with the frame of the present humanity but to bring down a higher spiritual light and power "
Sri Aurobindo On Himself And On the Mother p. 218 (1953).

श्री अरविंद के ऐसे दृष्टिकोण को पंत का मन स्वीकार नहीं ही कर पाता है । वे कर्म को महत्व देते हैं, साधना जैसी भी हो, जिस स्तर की भी हो यदि उसके साथ कर्म संपृक्त नहीं होता है, तो वह निरर्थक है । वे साधना से अधिक महत्व कर्म को देते हैं क्यों कि जीवन प्रांगण में, मानवता और समाज की दृष्टि से पहले सत् कर्म हैं तब कुछ और । इसी सत् कर्म पर आज दुनिया टिकी है ।

श्री अरविंद मानव को मानते हुए उस अतिमानव की बात करते हैं जो अनंत ज्ञान, अनंत आनंद और अमरता को भोगेगा ? ऐसी स्थिति मे मानव का क्या होगा ? क्या उसके भाग्य में दुःख, दैन्य ही रहेगा, तब तक जब तक कि उसका भी कालक्रम में रूपांतर न हो जाए !

ज्ञान और विज्ञान दोनो की आवश्यकता को पंत मानते हैं। उनका कहना है कि ज्ञान एवं संस्कृति अपने को विज्ञान द्वारा स्थापित करती है, बिना विज्ञान के वह एकांगी है क्यो कि वह अपने को भू जीवन में चरितार्थ नहीं कर पाती है । "एकता संस्कृति का संचरण है और समानता विज्ञान का संचरण है ।"

यदि श्री अरविंद के सर्वांगीण योग का लक्ष्य अतिमानसिक सत्य प्राप्त करना है, अतिमानमिक एव विज्ञानमय पुरुष को योग द्वारा प्राप्त करना है तो पत अतिमानव (पूर्ण रूपातरित मानव) की ओर आकर्षित नही होना चाहते। वे तो इसी मानव को बहिरतर-ज्ञान से दीप्त और परिचालित देखना चाहते है।

"निज जीवन का कटु सघर्षण
भूल गया अब मानव अतर'

वे मनुष्य के सामाजिक जीवन को मनुष्यत्व के बोध से युक्त देखना चाहते है।

कौन नये वे मूल्य ?—
जिन्हें भू-रज में बोकर
तुम जीवन की स्वर्णिम फसलें
उगा सकोगे ?

अपने नवीनतम काव्य 'सत्यकाम' में ज्ञान योग की एकागिता को धरती के जीवन से सपृक्त करने का पंत ने प्रयास किया है। श्री अरविंद के अर्थ मे अतिमानसीय अवतरण को भी वे अति-कल्पना मानते हैं। इस संबध में उन्होने प्रायः अपनी रचनाओं विशेषकर 'सत्यकाम' में प्रकाश डाला है। वास्तव में पंत का 'सत्यकाम' मानवीय समस्याओ से ही जूझने का प्रयास करता है।

श्री अरविद चेतना (Consciousness) को बहुत महत्व देते हैं। वे कहते है, "मुझे चेतना का सूत्र दो मैं सृष्टि पट को दुबारा बुन सकता हूँ।" किंतु पंत जीवन को अत्यधिक महत्व देते हैं और चेतना को जीवन का अभिन्न अग मानते है। वे पहिले जीवन को सुधारना चाहते हैं, उसके पश्चात् ही चेतना की बात कर सकते हैं अथवा गांधीजी की भाँति वे भी कहना चाहेगे—भूखे पेट, नगे तन लोगो (भारतवासियों) को मैं धर्म एवं अध्यात्म का सदेश नहीं दे सकता। इस अर्थ में पंत का अध्यात्म जीवन का अध्यात्म है।

सर्व प्रथम साहसिक सगठन
हो मनुजो का,
जो अत्याचारो का
दृढ सामना कर सकें !—

जीवन को सुखमय बनाने के लिए वे उसके रूपातरण के लिए वर्षो (अनत तक) नही ठहर सकते । हमे, अभी, इसी समय अशुभ का शमन करना होगा। यदि श्री अरविंद ने अशुभ या दु ख को सक्रमणकालीन स्थिति का सूचक माना है और यह कहा है कि रूपातरण होने पर अतिमानस के स्तर पर दुःख नही रहेगा, वहाँ केवल आनद, दिव्य आनद होगा तो पत वर्तमान स्थिति मे ही दुख निवारण करना चाहते है और आनद को आत्म प्रबुद्ध सुख दुख की बाँहो मे विद्रवित देखना चाहते हैं ।

इसी भाँति पत और श्री अरविंद की दृष्टि मे एक और महत्वपूर्ण अतर मिलता है। दोनो ने ही जड और चेतन के सबध को औपनिषदिक कथन 'पद्भ्या पृथ्वी', 'पृथ्वी पाजस्यम्' 'अन्न ब्रह्मे ति व्यजानात्' के माध्यम से स्वीकार किया है।[1] किंतु यहाँ पर भी पत की मानवतावादी दृष्टि प्रमुख हो जाती हैं। श्री अरविंद जड को चेतना का ही रूप मानने पर भी चेतन तत्व पर महत्व देते है। पत चेतना तत्व को परम सारथी मानते हुए भी जीवन तत्व को सर्वांगीण अपनाते है।[2] 'ज्योत्स्ना', 'युगवाणी, लोकायतन' और 'सत्य-काम' पत के इसी दृष्टिकोण के महत्वपूर्ण प्रकाश बिंदु है।

---

१. किंतु इस औपनिषदिक सत्य की अवहेलना करते हुए दिनकरजी कहते हैं : "अरविन्द-दर्शन की एक सूक्ति को अगीकृत करके पंत जी ने भूमिका (युग-वाणी) मे कहा है कि पदार्थ (मैटर) और चेतना (स्पिरिट) को मैने दो किनारो की तरह माना है, जिनके भीतर से जीवन का लोकोत्तर सत्य प्रवाहित होता है।"* पदार्थ और चेतना की मूलगत एकता औपनिषदिक दर्शन का सत्य है। इस सत्य को प्रसाद जी ने भी अपने काव्य में वाणी दी है : 'एक तत्व की ही प्रधानता" कहो उसे जड़ या चेतन।'
* 'पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण', पृ० १०२-१०३

२. श्री अरविन्द मुख्यतः दार्शनिक, तत्वज्ञानी और योगी हैं; उनका काव्य उनकी योगानुभूति है अथवा वह उनके दर्शन के अंदर से प्रसूत होता है। पत मुख्यतः कवि हैं, आस्थावान् विचारक हैं। श्री अरविंद के योग का

'मत हो विरक्त जीवन से, अनुरक्त न हो जीवन पर' अथवा "मन के ईश्वर के बदले जीवन ईश्वर को, स्थापित करना भू पर · ·" स्वस्थ सामा-

---

लक्ष्य पृथ्वी का रूपांतरण है; पत का कवि हृदय मानवता के कल्याण का आकांक्षी हैं। उनका दर्शन उनके काव्य के अंदर से प्रसूत होता है। उन्हे, स्वीकृत अर्थ मे, दार्शनिक या तत्वज्ञानी नहीं ही कह सकते है। ईश्वर को पृथ्वी पर प्रतिष्ठित करने एवं पृथ्वी का दिव्यीकरण करने के लिए यदि श्री अरविंद मानवता को भूल सकते है तो पंत का मानव-मंगल-कामी मन मानवता के लिए ईश्वर को भूल सकता है। वे 'ईश्वर को मरने दो हे।' की बात कर सकते हैं पर 'मानव को मरने दो' की बात नहीं। मानव जीवन को सुखी बनाने के लिए वे न केवल आत्मिक ऐक्य की बात करते है वरन बाह्य संगठन की आवश्यकता पर भी पर्याप्त बल देते हैं। यदि श्री अरविंद के अनुसार अनाध्यात्मिक (नोन-स्पिरिचुअल) प्रणाली, राज-नैतिक-समाजिक नैतिक आदि विधियों से हम जीवन का उसकी वर्तमान अवस्था से उद्धार नही कर सकते, उसके लिए आध्यात्मिक रूपांतर चाहिए तो पत आत्मिक जागृति की शिक्षा के साथ ही विगत भेदो तथा खड मूल्यो को समन्वित कर जीवन को सुधारना चाहते हैं। अनन्त काल तक हम रूपांतर के लिए प्रतीक्षा करें, यह पत को स्वीकार्य नहीं है। अभी, इसी समय हमे जीवन को मानवोचित बनाने के लिए प्रयास करना होगा। मनुष्य, मनुष्य रूप मे ही वाछनीय ढंग से जी सके, यह पंत चाहते हैं। यही उनकी दृष्टि में परिवर्तन या रूपांतर है। वे अतिमानसीकरण के प्रेमी नहीं हैं।

जीवन के दुःखो, वर्तमान जीवन की विषमताओ पर विवाद चल रहा था। मैंने कहा श्री अरविंद तो यह मानते हैं कि दुःख के अनुपात में सुख कही अधिक है, "दुःख, संताप और कष्ट की विश्वव्यापी विद्यमानता की क्या व्याख्या हो सकती है? वस्तुतः, यह जगत् हमे सत्ता के आनन्द का जगत नहीं लगता, बल्कि दुःख का ही जगत् दिखाई देता है। किन्तु निश्चय ही जगत् के प्रति यह दृष्टि अतिशयोक्तिपूर्ण है · । · विपरीत आभासो और वैयक्तिक उदाहरणो के बावजूद जीवन के सुख का कुलयोग जीवन के कष्ट के कुलयोग से कहीं अधिक है।"

श्री अरविंद : 'दिव्य जीवन', प्रथम ग्रंथ, पृ० १०८

जिकता के पोषक हैं। उन्हे आश्रम जीवन, इसी कारण, प्रिय नही है कि यह अपने ही ढग से, व्यक्ति को उसके विस्तृत अस्तित्व—समाजिकता—से वियुक्त कर देता है।

पत का छायावाद वस्तुवाद, मानववाद, समाजवाद, मार्क्सवाद, एव अरविंदवाद और स्वर्णवाद, उनका वह 'बूढा चाँद' है जो अत: सस्कार, आतरिक उन्नयन, बाह्यान्तर सगठन, नव्य अध्यात्मवाद अथवा मानव-कल्याण एव भू-स्वर्ग को प्रतिबिंबित और प्रतिध्वनित करता है। वास्तव मे पत काव्य को किसी 'वाद' के चौखटे मे नही जडा जा सकता, उनका कृतित्व बुद्धि से अधिक हृदय के निकट है। वह विश्वजनीन और विकसनशील है। यही कारण है कि मार्क्सवादियो को अपने कथन–पत मार्क्सवासी हो गए है—का स्वय खडन करना पडा। युगात, युगवाणी और ग्राम्या को मात्र मार्क्सवाद की अनुगूँज कहना, न केवल पत के व्यक्तित्व और कवित्व के प्रति अत्याचार था, वह मार्क्सवाद पर भी घातक प्रहार था। पत मार्क्सवादी इस लिए नही माने जा सकते कि वे मार्क्सवादियों के साथ उठते-बैठते थे, पूरनचद्र जोशी से उनकी बाल-काल से मैत्री थी, अथवा उनकी प्रगीत क्षमता चुक गई थी (यह स्वय छायावादी आलोचक स्वीकार नही करते हैं!) अथवा मार्क्सवाद को अपनाना तब फैशन हो गया था। जो अतर, स्वाभाविक उचित अतर एक ही व्यक्ति की जीवन की विभिन्न अवस्थाओ—बालकावस्था, युवावस्था और प्रौढावस्था, मे मिलता है और मिलना ही चाहिए—यदि वह अपसामान्य नही है तो-वही पत की कृतियो मे वर्तमान है। छायावादी अमिश्रित सौदर्य, ओस कणो के स्वप्निल देश से उन्हे बाहर आना ही था, उनके सवेदनशील हृदय को धरती की पीडा का अनुभव

श्री अरविंद सोसायटी, पांडियेरी।' प्रथम संस्करण १९७०

तथा 'The sum total of pleasure and pain in the world is equal.' **—स्वामी विवेकानंद**

पंत एकदम बोल पडे, "हाँ कमरे के एकांत में एव एकांत तात्विक दृष्टि से यह ठीक भले ही हो पर बहिर्जगत जीवन के स्तर पर दुनिया को कितना दु:ख है, अपने देश का जीवन-खंडहर, जहाँ लोगों को एक बार का खाना नही मिल रहा है, इस दु:ख दैन्य का जीवित उदाहरण है।"

देखिए अध्याय ३, ६ तथा ९ और विशेषकर अध्याय २१—पाद टीका में पुराणी जी का पत्र।

करना था ।'[1] अक्सर व्यथित होकर वे कहते है, "कौन सुखी रह सकता है इस देश मे ?" उनकी रातें अन्तर्मन की कराह के साथ करवट बदलते हुए कट जाती है । ऐसे मे कविता सहज ही जन-मन की वाणी बन जाती है और गुजन मे जो कला तितली के पख लेकर उडी थी वह 'युगात' मे आकर मृण् मासल हो जाती है तथा 'स्वर्ण काव्य' मे 'आत्मा विद्धि' के माध्यम से मानवता को अपना जीवन स्वय सवारने का सदेश देती है ।

पत ने 'हार' मे जिस 'युवा योगी' के रूप मे भू-जीवन के कल्याण का स्वप्न देखा था तथा 'ज्योत्स्ना' मे साम्राज्ञी ज्योत्स्ना द्वारा मानव एकता और कल्याण के लिए भू-जीवन का रूपातर एव सयोजन करना चाहा था उसी भू मगलाशा और आस्था की अपराजेय आकाक्षा 'स्वर्ण किरण,' 'स्वर्ण-धूलि' और 'उत्तरा' है। इन्ही की परम्परा मे 'रजत शिखर', 'शिल्पी', 'सौवर्ण', 'अतिमा', 'वाणी', 'कला और बूढा चाँद', 'लोकायतन', 'किरणवीणा', 'पौ फटने से पहले', 'पतझर : एक भाव क्राति', 'गीत हस', 'शखध्वनि', 'आस्था', 'समाधिता' 'सत्यकाम' आदि हैं ।[2] ये भू-मगलाशा के काव्य है,

---

१. किशोरावस्था में जिसकी अनुभूति सौंदर्य के रूप में हुई, वही आत्म-जिज्ञासा का लक्ष्य बन कर सत्य में परिणत हो गई, और फिर, समाजिक जीवन का क्षितिज पाकर जन मंगल अथवा शिवत्व में विकसित हो गई :

> वही प्रजा का सत्य-स्वरूप
> हृदय में बनता प्रणय-अपार;
> लोचनों में लावण्य-अनूप,
> लोक-सेवा में शिव-अविकार
>
> (पल्लव—परिवर्तन)

२. "बौद्धिकता और भावप्रवणता को पन्त अभिन्न मानते हैं । प्रसाद ने भी बुद्धि और भाव को मन के ही दो रूप प्रतिपादित किए हैं । अतः जो बाह्यात्मक रचनाओं को बौद्धिक कह कर उनका इसलिए उपहास करते हैं कि उनमें कवि का 'मन' नहीं रमा रहता, यह भ्रांति है । कवि को द्रवित होने के लिए उसी पर सीधी चोट पड़ना आवश्यक नहीं है । वह बाह्य वस्तु के माध्यम से भी पीड़ित हो सकता है । विधवा की करुण मानसिक स्थिति के अङ्कन के लिए कवि को स्वयं विधवा बनने की आवश्यकता नहीं । उसके हृदय की संवेदनशीलता विधवा के दुःख को कल्पना के

सत्य ज्योति से दीपित, सौदर्य-आभा से मण्डित, यथार्थ से अनुप्राणित अथवा इनमे सुदरम्, शिवम् सत्यम् एक दूसरे से समन्वित है। भू मगलाशा सत्यानुभूति का ही जागतिक प्रकाश है। जगत् को भागवतमय कहना या मानव-कल्याण को जीवन का लक्ष्य मानना एक ही बात है।

पत-काव्य और व्यक्तित्व की अविच्छिन्नता को खण्डित करके समझने का आलोचको का प्रयास एक ओर उनकी झुँझलाहट तथा सिरदर्द का कारण बन जाता है और दूसरी ओर उनके परिश्रम को सरल कर शुक-स्थिति पर पहुँचा देता है। पत के कथनो से उन्होने ढेरो (सार) तत्व पकड लिए और उन्हे सरलता से दुहरा दिया । पत ने कहा है (१) मैं गाधी से प्रभावित हुआ हूँ, अत. उनके काव्य मे विशुद्ध गाधीवाद है, (२) मैं मार्क्स से प्रभावित हुआ हूँ, अत उनके काव्य मे विशुद्ध मार्क्सवाद है, और अत मे, (३) मैं अरविंद से प्रभावित हुआ हूँ, अत उनके काव्य मे विशुद्ध अरविंदवाद है। ऐसे ही अनेक सूत्रवाक्य पंत की रचनाओ से खोज कर उन्होने याद कर लिए है, "ग्रामीणो के प्रति (ग्राम्या मे) केवल बौद्धिक सहानुभूति मिल सकती है ?" युगवाणी गद्य है क्योकि इसमे उन्होने "युग के गद्य को वाणी देने का प्रयत्न किया है।" लोकायतन मे वागविलास रामविलास शर्मा है क्योकि दोनो शब्दो मे ध्वनि-साम्य है। माधो गुरु निराला के अतिरिक्त और हो ही कौन सकता है—पत के वही तो प्रतिद्वदी थे। 'कला और बूढा चाँद' मे पत की कला क्षीण हो गई है क्यो कि उन्हीं के अनुसार चाँद बूढ़ा है। 'पतझर . एक भाव क्राति' नए-

---

माध्यम द्वारा ग्रहण कर लेती है। इसी से कल्पना को केवल 'बुद्धि व्यापार' नही कहा जा सकता। वह कवि की संवेदनशीलता से जाग्रत होती है और उसमें स्वयं संवेदना भी भरती है। (गीति काव्य में कवि के 'स्व' को देखना और अन्य रचनाओ मे उसको तटस्थ कहना पाश्चात्य समीक्षा क्षेत्र का गडबड़झाला है।) पंत ने सजग हो 'स्व' और 'पर' में विभेदक पर्दा नहीं रहने दिया। इससे हिन्दी समीक्षा को एक नई दृष्टि मिली है।"

डा० विनयमोहन शर्मा, 'छायावादी कवियो का आलोचनात्मक दृष्टि-कोण।' साहित्य संदेश (साहित्य-शास्त्र विशेषाङ्क, जुलाई–अगस्त १९६२) पृ० १००

साहित्य-रत्न-भण्डार, आगरा से प्रकाशित।

पुराने मूल्यो से सबधित काव्य नही है। पतझर लेखक के जीवन का पतझर है जो सत्तर के पास पहुँच गया है। भला इस बुढापे मे लेखनी तक तो हाथ से पकडी नही जा सकती, मस्तिष्क की तो बात ही नही करनी चाहिए। कौन उनसे कहे कि लेखक, विचारक, दार्शनिक, शिक्षक, राजनीतिज्ञ एव किसी भी महान् व्यक्ति की आयु नहीं देखी जाती, क्षमता देखी जाती है। 'तेजसा हि न वयः समीक्ष्यते।' तुलसीदास ने सत्तर की आयु मे रामचरित मानस लिखा था। वैसे उन ऐतिहासज्ञो के लिए ये आलोचक क्या कहेगे जो अपनी खोज द्वारा यह सिद्ध करने का प्रचार कर रहे है कि महाभारत के युद्ध के समय श्रीकृष्ण बयानबे वर्ष के थे और अर्जुन सत्तर से अधिक आयु के थे।

पत-काव्य ऐसी आलोचनाओ से अपनी सक्षमता ही सिद्ध करता है। उनके काव्य के जीवत होने का इससे अधिक प्रमाण भी क्या हो सकता है कि जो भी साहित्य क्षेत्र मे अपना सिर उठाना चाहता है उसे यह अनिवार्य प्रतीत होता है कि वह पहिले पत-काव्य पर अपनी कृपा दृष्टि डाले और जिस भाँति वे आलोचक के रूप मे पत-काव्य पर आक्रमण करते है वह शुभ का ही लक्षण है—महाप्राणता, सक्षमता का लक्षण। इसी सदर्भ मे साहित्य प्रेमी मार्कण्डेय सिह जी द्वारा बताई उस वार्ता की याद आती है जो बालकृष्ण राव और उनके बीच हुई थी। मार्कन्डेय सिंह के पूछने पर कि इस समय हिंदी का श्रेष्ठ कवि कौन है बालकृष्ण राव ने कहा, "व्यक्तिगत मतभेदो के अतिरिक्त पत नि.सदेह सर्वश्रेष्ठ कवि है जिनमे छुटपन से ही एक क्रमगत विकास एव जीवन-मूल्य के लिए सघर्ष मिलता है।"[1]

किंतु पत के इस सघर्ष को समझने के लिए जिस सम्यक् दृष्टि की आवश्यकता है उसे आज के सघर्षरत, कोलाहलपूर्ण, हताशा और आत्मवचना से भरे युगबोध ने अनेक इकाइयो मे विभक्त करके समझने का सरल उपाय

---

१. मार्कण्डेय सिंह से बातचीत ३-७-'७०

"It is; of course, not only Pant of whose poetic career one may speak in terms of milestones and turnings······but Pant's importance lies in the fact that his periodically appearing collections have served as landmarks not only on his own individual road but on the great highway of modern Hindi poetry.

निकाल लिया है। "पत जितने मौलिक है, उससे अधिक प्रभावित—'वीणा' से लेकर आज तक की उनकी रचनाएँ पढ लेने के पश्चात् आपको यह स्पष्ट परिलक्षित हो जायगा। पत का परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन नही, उनके रुचि परिवर्तन का द्योतक है। पत के हाथो मे हेडगेवार के विचार रख दें, उन्हे एक महीना, सिर्फ एक महीना, गोलवलकर के साथ रहने का अवसर दे, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ एकतीसवें दिन सघ के सबध मे उनकी एक काव्य पुस्तक अवश्य निकल आएगी। ''''''पत अवसरवादी है।"[1] शर्मा जी को आश्चर्य न हो तो यह बताना उचित होगा कि सघियो के साथ भी उनकी अच्छी मैत्री है, हाइडेगर (हेडगेवार) भी उन्होने पढा है, पर स्वभाव की विवशता, वे इन्हे अपना नही पाए। यह एक सामान्य मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि वही प्रभावित करता है जो अपने अतरतम स्वभाव के अनुकूल हो। अथवा पत का स्वभाव मात्र उस प्रभाव को ग्रहण कर पाता है जो वैज्ञानिक अध्यात्म-वाद एव मानवतावादी औपनिषदिक दर्शन है, जिसके लिए वह 'वीणा' मे प्रार्थना करते है

तेरी आभा को पाकर मा!
जग का तिमिर त्रास हर दूँ— (१९१८)

"A stage in Pant's poetic career''''''has often more than synchronised with a phase in the history of Hindi verse; he has not only shown the way and led the caravan along it, he has, time and again, cleared and made the path for the caravan His poetical biography constitutes almost the whole of the life-story of Chhayavada, that quaintly beautiful romantic-nationalist poetic movement of which Pant will probably be considered by the future to have been the truest representative."

C. B Rao New Collection of Sumitranandan Pant's verses (Vani).

The Times of India, 8-6-'58।

१. कामेश्वर शर्मा : 'छायावाद जिन्दा है।'
छायावाद और प्रगतिवाद, सम्पादक : देवेन्द्र शर्मा, पृ० ११८

इसी प्रार्थना की अनुगूँज उनका समाजवादी-काव्य है :

तुम खोल सको मानव उर के नि शब्द द्वार,
वाणी मेरी, चाहिए तुम्हे क्या अलकार !
'ग्राम्या' (फरवरी '४०)

× × ×

तुलना कीजिए, "पत जी पर बहुधा एक आरोप लगाया जाता है कि वे ध्वनि से अधिक प्रतिध्वनि हैं अर्थात् उनके काव्य मे अन्यो का प्रभाव अधिक परिलक्षित होता है, मौलिकता कम ।…… यह सतही आरोप इस सत्य को भुला कर ही लगाया जा सकता है कि जीवन का धर्म ही है प्रभावित होना और प्रभावित करना, जो किसी से विशेषतः अपने से महत् से प्रभावित नहीं होता, वह तो जड़ है और जो जीवंत ही नहीं, वह मौलिक क्या होगा। प्राणवन्त सर्जक प्रतिभा अपने संस्कारो के अनुरूप विचार, भाव, और संवेदना समशीलो से (और कभी-कभी विरोधियो से भी) ग्रहण करेगी ही, किंतु जिस प्रकार असंख्य फूलों का रस आहरण करने वाली मधुमक्खी का मधु उसकी मौलिक सृष्टि है, उसी प्रकार उस प्रतिभा की नव सर्जना (यदि वह सचमुच सर्जन है तो) असंख्य प्रभावो को समाहित किए हुए भी मौलिक है, प्रतिध्वनि मात्र नहीं ! और पंत जी की सर्जक प्रतिभा 'स्वतः प्रमाण' है उसे 'परतः प्रमाणो' की आवश्यकता नहीं। अपने ऐसे आलोचको को उत्तर देते हुए पंत जी ने संभवतः 'वाणी' में कहा है .

वे कहते

मैं केवल स्वभाव हूँ।'

.. क्या उन्होंने अंतः स्थित प्रकाश की ज्योति में ही बहिरागत प्रकाश को समन्वित करने का निरंतर प्रयास नहीं किया है ? यह सत्य स्वीकार किया ही जाना चाहिए कि उन्होने किसी भी चिन्तनधारा को निःशेष आत्म-समर्पण नहीं किया है, मार्क्सवाद को तो नहीं ही, अरविंद दर्शन को भी नही ! वे पथ के पड़ावो को ही मजिल नहीं मान सके हैं, जिससे जितना पाथेय मिला है, उन्होने कृतज्ञता के साथ स्वीकारा है, किंतु अपनी

हो धरणि जनो की, जगत स्वर्ग— जीवन का घर,
नव मानव को दो, प्रभु ! भव मानवता का वर !

ग्राम्या, (फरवरी, ४०)

और यही उनके स्वर्णिम (अध्यात्मवादी) काव्य की आकुल अभीप्सा है

पूर्ण नही कर सका अभी तक
मै प्रणिहित कवि कर्म धरा पर

वाणी' (१९५७)

इसी कवि कर्म को मूर्त देखने की आकाक्षा 'लोकायतन' मे चरितार्थ हुई है :

भू योनि गर्भ मे छिपा स्वर्ग
साकार हो सका प्रथम बार,
हँस मानव ईश्वर ने खोले,
भू अधकार के गुहा द्वार !

(अक्टूबर '६३)

किंतु पत के काव्यगत इस विकास के बारे मे कामेश्वर शर्मा जी से कुछ कहना व्यर्थ ही है, वे भी क्या करें, अपने अन्य सह-आलोचको की भाँति

तलाश जारी रखी है। उनकी स्वप्नदर्शी आँखों में भावी का जो बिम्ब पड़ता रहा है, उसे उपलब्ध दर्शनो की सहायता से उन्होने व्याख्यायित करना चाहा है और जहाँ वे दर्शन उस बिम्ब को विकृत या आच्छन्न करते प्रतीत हुए है वहाँ वे उनकी बैसाखियाँ छोड कर आगे बढ़ गए हैं वे सचमुच प्रभाव नहीं केवल स्वभाव है। क्या इससे उन पर 'असंगति' का आरोप नहीं लगाया जा सकता ? मेरी समझ मे नहीं क्यो कि उन्होने अपने अतीत को नकारा नही है, केवल उसकी अपूर्णता को पूर्णता के निकट लाने के प्रयास में उसके चुक गए अश को दुहराते रहने के स्थान पर उसमे नवोपलब्ध सत्यो का सयोजन किया है। वे मिथ्या से सत्य की ओर नहीं, सत्य से बृहत्तर सत्य की ओर अग्रसर हुए।"
विष्णुकान्त शास्त्री : 'श्रेयस्-सन्धानी कवि पंत।'
ज्ञानोदय : जून १९६९ पृ० १५-१६,

उन्होने तथ्य को न देखने अथवा समझने का व्रत ले लिया हैं—कोई आँखो पर पूर्वग्रह की पट्टी बाँध ले और उलाहना करे कि सर्वत्र अधकार है, तो लाचारी है। पत को यदि वे अवसरवादी कहना ही चाहते है तो पत इसी अर्थ मे 'अवसरवादी' कहलाए जाएगे कि उन्होने रूढिवादिता, हठधर्मिता, प्रतिबद्धता एव सकीर्णता को नही अपनाया। देश-काल की आवश्यकतानुरूप सत्य की व्याख्या की ताकि मानव जीवन के लिए वह उपयोगी अथवा मूल्यवान् हो सके और मानवता कल्याण की ओर अग्रसर हो सके।[1] अप्रबुद्ध एव युग विमूढ की भाँति किसी

---

१ "पंत जी का काव्यविकास पिछली लगभग आधी शताब्दी की हिंदी कविता के इतिहास के साथ एकाकार हो गया है। केवल हिंदी ही नहीं, विश्व की अन्य भाषाओ में भी कम कवि ऐसे होगे, जो इतनी दूर तक न केवल युग का साथ दे पाते हैं, प्रत्युत उसके निर्माण, नेतृत्व और संवर्द्धन में भी सफलता पूर्वक हाथ बँटाते हैं। अभी-अभी उनका 'लोकायतन' नामक महाकाव्य सामने आया है जो उनके विचारो-आदर्शों का समन्वित रूप है। पंत जी के चुने हुए पथ से मतभेद हो सकता है, पर वे जिस आदर्शलोक के स्वप्न द्रष्टा हैं, इसमें सदेह नहीं, वह आदर्श मानवता की आशाओं का सबसे ज्योतिर्मय केन्द्र है।"

प्रो० आनन्द नारायण शर्मा, 'कवि पत की काव्य साधना'। नई धारा मई १९६४ पृ० १२

"पल्लव की भूमिका में पंत ने जिस सूक्ष्म शब्द-चेतना का परिचय दिया था, भाषा के व्यवहार के प्रति वैसा जागरूक भाव नयी कविता के विरले कवियो में ही मिलेगा। (छायावाद-युग में भी ऐसे कवि कम विरल नहीं थे; अराजकता ऐसी नहीं थी)। ये दोष उन नयी प्रवृत्तियों का ऋण पक्ष है जो कि नये काव्य को अनेक समानताओ के बावजूद छायावाद के काव्य से पृथक् करती हैं।"

"यदि · छायावाद वस्तुत: अन्तिम प्रकृति काव्य था, तो सुमित्रा-नंदन पंत स्वभावतः युग-कवि रहे। अथवा—ऐसा श्लेष इस प्रसंग में क्षंतव्य हो तो—यह कहा जाय कि 'पन्त और निराला' प्रकृति-काव्य के अन्तिम युग-कवि रहे। · किंतु युग-कवि का युग को अतिक्रान्त करना ही स्वाभाविक है। सुमित्रानंदन पंत की अद्यतन रचनाएँ उन प्रकृतियो के प्रतिकूल नहीं हैं जिनकी हम उनकी रचनाओ से परवर्ती काल

'वाद' की सीमा को सत्य मान कर वे न तो स्वय सूली पर चढे और न उन्होने दूसरो से चढने का आग्रह किया। इसी अर्थ मे पत-काव्य एव पत व्यक्तित्व वह लौह स्तभ है जिसे शब्दो की आँधी-तूफान हिला नही पाए तथा जो शात स्वर मे कहता है,

वे कहते .
मैं भाव नही, केवल प्रभाव हूँ
सूझ कही, केवल सुझाव हूँ !
सच यह :
मैं केवल स्वभाव हूँ !
वे कहते :
मैंने प्रकाश को ग्रहण किया
इससे ·· उससे, ·
जिससे तिससे,
किससे किससे !
सच यह ·
स्वय नही छू पाए वे प्रकाश को,—
उसे समझते वे
इससे उससे
जिससे तिससे,
औ' जाने, किससे किससे!
अधिक क्या कहूँ ?—सत्य गूढ।
पर, सबसे भले विमूढ !

'वाणी'

और इसके साथ ही वह सभी की कीर्ति (न कि अपनी) का आकाक्षी हो जाता है .

किसी एक की नही
यह-कीर्ति
समस्त मानवता की है !

● ●

के लिए उद्भावना करते, यह उनकी दृष्टि के खरेपन का ही प्रमाण है।" सच्चिदानंद वात्स्यायन, 'भूमिका' (प्रकृति काव्यः काव्य प्रकृति) रूपांबरा : संपादक सच्चिदानंद वात्स्यायन पृ० ११ तथा १४

१९

षष्टि पूर्ति, विदेश-भ्रमण तथा 'लोकायतन' प्रणयन एव 'विवेचना' गोष्ठी

सन् १९५९ की दुर्गा-पूजा निकट आ गई थी। 'अरे, उनसठवाँ साल बीतने को है और मैं कुछ नही कर पाया। समय जाते क्या देर लगती है। कुछ काम हो जाता तो सतोष होता। मैं कर ही क्या सकता हूँ, वह चाहेगा तभी तो होगा।" विचित्र है पत का सर्जक व्यक्तित्व! जिन दिनो लिखते हैं, तल्लीनता और आनद मे अवगाहन करते है। पुस्तक छपे कुछ माह बीतते है कि असतोष घेर लेता है, "कुछ अच्छा लिख पाता।" "क्या लिख पाया हूँ, कुछ भी तो नही। नही ही लिख पाया तो दुःख नही होगा। जो होना है वही होगा।" पत की लेखनी उच्च से उच्चतर, उच्चतर से उच्चतम की प्यासी है, यह प्यास उसके प्रति पूर्ण समर्पण की हैं जो शाश्वत सर्जक है।

सभवतः यह उनसठवाँ वर्ष इतनी तीव्रता से याद न आता यदि आकाशवाणी ने पत से उनके जीवन-सबधी चार लेख न माँगे होते। पत के मित्र श्री जगदीशचद्र माथुर[1] का अनवरत आग्रह था कि पत अपने जीवन सबधी सस्मरणात्मक लेख लिखें जो उनकी षष्टिपूर्ति के उपलक्ष्य मे आकाशवाणी से प्रसारित हो। आकाशवाणी अपने नियमानुसार वार्ताकारो से काफी पहिले 'स्क्रिप्ट' माँग लेती है। फिर ये वार्ताएँ सभी स्टेशनो से, सभी भाषाओ मे, प्रसारित होने वाली थी, अतः पत को प्रसारण की तिथि के पूर्व ही वार्ताएँ लिख कर देनी थी। पत ने ये वार्ताएँ लिख कर आकाशवाणी को दी तथा साथ ही ये वार्ताएँ 'साठ वर्ष एक रेखाकन'[2] के नाम से प्रकाशित भी हो गई।

---

१. तब आकाशवाणी के डाइरेक्टर जनरल।

२. प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन दिल्ली।

पत ने इसके अतिम लेख के अत मे लिखा है, "मैंने अपना लेखक का जीवन सर्वप्रथम एक उपन्यास लिखकर प्रारभ किया था और अत मे भी एक बृहद् उपन्यास के रूप मे ही अपने सृजन-कर्म का समापन करने के उपरान्त अपना शेष जीवन सामाजिक तथा सास्कृतिक कार्य को समर्पित करना चाहता हूँ।"

लडकपन से ही 'हार' के 'युवा योगी' के रूप मे पत की सामाजिक कार्य करने की आकाक्षा प्रबल रही है। पर तब काव्य ने इतना मुग्ध एव सम्मोहित कर रखा था तथा व्यक्तिगत समस्याओ ने इतना स्तब्ध कर दिया था कि सामाजिक कार्यकर्त्ता नही बन पाए। उस समय सामाजिक कर्म से अधिक महत्वपूर्ण राजनैतिक कर्म था, देश को दासता से मुक्त करना था। और स्वभाव वश पत राजनैतिक कार्यकर्ता नही हो सकते थे। पर देश की स्थिति ने वैसे उन्हे सदैव दुख दिया है :

'यह तो मानव लोक नही रे'

अब भी कई बार उनका मन विद्रोह कर उठता है, देश की दशा देखकर। इसी मनोवृत्ति मे उन्होने सन् '६१ मे कहा, "मन से मैं तानाशाह हूँ।" अपने देश की दशा, ग्रामीणो का अभावग्रस्त गदा जीवन, सर्वत्र फैली हुई दुर्व्यवस्था तथा भ्रष्टाचार, उन्हे रह-रहकर व्यथित करता है। "कौन सुखी रह सकता है, इस देश मे ? मात्र वही जो मनुष्य नही है—चारो ओर इतना दुख, दरिद्रता, अत्याचार, बेईमानी हैं। जी चाहता है लिखना-पढना छोड दूँ।" फिर कुछ सोचकर स्वय ही कहते है, "मैं बूढा हो गया हूँ, सामाजिक कर्म करने की शक्ति नही है। हमे तो स्वस्थ, साहसी, त्यागी, देश-चेतना से युक्त नव-युवक चाहिए। मुझे तो भगवान् ने सृजन की क्षमता मात्र दी है। यही ठीक से करलूँ तो जीवन निरर्थक नही लगेगा। उस साहित्य को दे सकूँ जो लोक-चेतना से ओतप्रोत हो। जीवन के प्रति यही मेरी देन होगी।"

सन् '५६ की दुर्गा अष्टमी (दशहरा) को पत ने 'लोकायतन' लिखना प्रारभ किया, इसका सकेत उन्होने 'साठ वर्ष : एक रेखाकन' मे किया है। लिखते हुए डेढ़ माह हुए होगे कि बीमार पड गए। फिर दो-तीन माह तक मेहमानो का आवागमन रहा। छोटा-सा घर और पत का अभ्यर्थनार्थी स्वभाव ! काम अधूरा ही रह गया। मार्च '६० मे पुन. लिखना प्रारभ किया, कुछ ही दिन लिखा होगा कि 'टाइफोएड' हो गया। दुर्बलता और अप्रेल-मई की गर्मी, लिखने का विचार कुछ महीनों के लिए स्थगित करना पडा।

इसी बीच मैंने उनके काव्य के कुछ पृष्ठ, बिना उनसे पूछे, पढ लिए। पढने के पश्चात् उन्हे बताया तो वे खिन्न हो गए, "जब तक मैं अपनी पुस्तक पूरी नही कर लेता, कोई पढ लेता है तो मैं फिर लिख नही पाता हूँ। उस पर दूसरे की मनोवृत्ति छा जाती है।" पत ने अपने लिखे पृष्ठ फाड डाले। उसकी प्रारभिक स्तुति मुझे बहुत अच्छी लगी थी—पर पत का स्वभाव ! निर्मम सृजनकर्ता ! मुझे बुरा लगा तो कहने लगे, "मैं मासक पत्रिकाओ मे कभी नई रचना नही देता हूँ। जब तक पाडुलिपि प्रेस मे न दे दूँ मुझे उस सकलन की कविता सुनाना भी प्रिय नही है। 'क्रमश' उपन्यास सुना दिया था—वह अधूरा ही रह गया। 'कलरव', 'नीरव तार' की पाडुलिपियाँ लोगो को पढने के लिए दे दी, वे जल गईं। दो एकाकी पत्रिका मे छपवा दिए तो अन्य खो गए।" 'लोकायतन' जब फिर से लिखना प्रारभ किया तो कुछ पृष्ठ लिखने के पश्चात् अपने तीन-चार मित्रो—दिनकरजी, बच्चनजी, नरेन्द्रजी—को सुनाया। यद्यपि इस बार लिखित पृष्ठ फाडे नही, मात्र तीन-चार माह तक फिर लिख नही पाए। और जब लिखना प्रारभ किया तो सुनाए भागो मे कुछ परिवर्तन किए। खैर, मैंने तब से उनकी हस्तलिखित रचनाओ की ओर देखना तक छोड दिया, पढने का तो प्रश्न ही नही उठता। पत के पास 'लोकायतन' के प्रथम बार के पृष्ठ फाडते समय कोई विशेष तर्क भी नही था अतिरिक्त इसके, "क्या करूँ, स्वभाव की बात है।"

पत के मित्रो-प्रियजनो ने २० मई '६० को दिल्ली मे उनकी षष्टिपूर्ति धूमधाम के साथ मनाई।[1] इसकी प्रेरणा श्री जगदीशचन्द्र माथुर ने दी यद्यपि सक्रिय सहयोग सभी ने दिया—श्री मैथिलीशरण गुप्त, भगवतीचरण वर्मा, बच्चन जी, तेजी बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, रामचद्र टण्डन, नगेन्द्रजी, आदि। उत्सव अपने आप मे अत्यधिक स्निग्ध था। राजकमल से तीन पुस्तके प्रकाशित हुईं—'साठ वर्ष. एक रेखाकन',[2] 'स्मृति-चित्र' और 'अभिषेकिता'। 'स्मृति-

---

१ इससे १० वर्ष पूर्व एव पंत के इक्यावनवें वर्ष में प्रवेश (२० मई १९५०) करने पर इलाहाबादवासियो ने उनका जन्म दिवस मनाया था। 'संगम' ने श्री इलाचंद्र जोशी के संपादकत्व मे अपना विशिष्ट अंक निकाला।

२. 'साठ वर्ष : एक रेखाकन' श्री जगदीश चंद्र माथुर ने पत से लिखवाकर निःसदेह एक अच्छा कार्य किया। पंत के मानसिक जीवन प्रवाह, उनके परिवेश एवं छायावाद तथा उत्तर-छायावाद-कालीन स्थिति का यह यथा-

चित्र' डाक्टर नगेन्द्र द्वारा सपादित है तथा 'अभिषेकिता' नरेन्द्र जी द्वारा। वैसे 'अभिषेकिता' के सपादकत्व मे शाति जोशी का नाम भी है किंतु इसमे सकलित पत की कविताओ का चयन तथा उनके जीवन के बारे मे अत्यधिक सक्षिप्त परिचय नरेन्द्र जी का ही दिया हुआ है। शाति जोशी ने जो उनके जीवन के बारे मे लिखा था वह इसमे नही है। 'अभिषेकिता' सभी भारतीय भाषाओ मे अनूदित हुई है।

पत के मित्रो-साहित्यिको ने अपनी स्वेच्छा से दस-दस रुपए दिए जिससे लकडी की एक सुदर मजूषा बनवाई गई।[१] मजूषा का आगे का भाग स्वर्ण तथा रजत मडित था। रजत पट पर सभी भेट देने वालो के हस्ताक्षर थे। इस मजूषा मे चौदह भारतीय भाषाओ मे अनूदित 'अभिषेकिता' की हस्तलिखित पाडुलिपियाँ अथवा प्रकाशित प्रतियाँ थी।[२] नई दिल्ली मे सप्रूहाउस मे साहित्यिक-सास्कृतिक तथा कलात्मक उत्सव हुआ, उत्सव की अध्यक्षता श्री मैथिलीशरण गुप्त ने की थी। अनेक साहित्यकारो ने पत को अपनी स्नेहाजलि अर्पित की, जिनमे एक रूस के भी साहित्य प्रेमी थे।

इसमे सदेह नही कि हिन्दी साहित्य जगत् मे इतना सुदर, उल्लासपूर्ण उत्सव अभी और नही हुआ है। इस समारोह की स्वच्छता, निर्मलता दर्शनीय थी। मात्र स्निग्ध प्रेम का प्रदर्शन था—सयोजको ने अपने उत्साह, साहित्यिक अभिरुचि तथा लगन का अभूतपूर्व परिचय दिया था। जिन्होने भी उस उत्सव एव उसके कार्यक्रमो को देखा वे प्रशसा करते हुए नही थकते थे। इसके साहित्यिक कलात्मक पक्ष से सभी प्रभावित थे। पत की हीरक जयती साहित्यिक मिलन तीर्थ का माध्यम बन गई। राजधानी मे सपन्न समारोह राजनीति से अछूता था। जो भी राजनीतिज्ञ वहाँ उपस्थित थे वे प्रेम अथवा अपने साहित्य

तथ्य प्रतिबिंब है। इसी अवसर पर श्री रामचंद्र टण्डन ने अपने पास वर्षो से सुरक्षित रखी हुई 'हार' की पांडुलिपि का हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशन करवाया। यह पंत साहित्य प्रेमियो के लिए बहुमूल्य रहेगा क्यो कि इसमें पंत के व्यक्तित्व और कृतित्व के समस्त बीज वर्तमान हैं।

१. यह मंजूषा लगभग एक हजार रुपए की होगी।

२. पंत ने इस मजूषा के साथ अपने अन्य उपहार भी काशी कला भवन के सग्रहालय को दे दिए हैं।

प्रेम एव सबधी होने के कारण थे। साहित्य जगत् मे यह सचमुच ही एक अनुपम अवसर था जिसमे सभी ने बिना किसी प्रकार की कुठा, मनोमालिन्य, द्वेष और कटुता के योगदान दिया। सभवत. द्विवेदी-मेला के पश्चात् यही ऐसा अवसर था जिसमे सभी को उत्साह था।

षष्टिपूर्ति[1] के उत्सव मे सुहृदजनो, बधुओ, मित्रो का जो स्नेह पत को मिला उसने उनके मन मे भारी अवसाद उडेल दिया। वहाँ से वापिस आकर उन्होने कहा, "सबने कितना प्रेम-स्नेह दिया। किंतु मै अपने को इस योग्य नही देख पाता हूँ। सच, वहाँ मुझे बडी लज्जा का अनुभव हुआ।"

इसी वर्ष एव १९६० मे पत को 'कला और बूढा चाँद' पर साहित्य अकादमी का पाँच हजार का पुरस्कार मिला। "कला और बूढा चाँद" लोगो को अच्छा लगा, सतोष है। मुझे स्वय यह पसद है। इसकी अधिकाश रचनाए

---

१ षष्टिपूर्ति के उपलक्ष्य मे अज्ञेय जी ने 'रूपांबरा' का सकलन और संपादन किया। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना इसके सहायक संपादक हैं। 'रूपांबरा' का प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ ने किया है, पुस्तक समर्पण समारोह में उसका विशेष सहयोग रहा। पुस्तक के समर्पण पृष्ठ पर लिखा है: "यह ग्रंथ श्री सुमित्रानंदन पंत की षष्टिपूर्ति के उपलक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है और हिन्दी-जगत् की शुभाशंसाओ के प्रतीक के रूप में सादर उन्हे अर्पित है।" इस समारोह की अध्यक्षता डा० राजेन्द्रप्रसाद ने की थी।

"हिन्दी के पाँच शीर्ष-सृजेता साहित्यकारों मैथिलीशरण गुप्त, महादेवी वर्मा, बच्चन, अज्ञेय, नरेन्द्र शर्मा ने *अपनी-अपनी एक मौलिक अथवा सम्पादित कृति इस अवसर पर विशेष रूप से प्रकाशित करके पंत को समर्पित की।"

लक्ष्मीचद्र जैन : ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता सुमित्रानदन पंत। नवजीवन (लखनऊ, रविवार ११ मई सन १९६९)

साप्ताहिक परिशिष्टांक पृ० ३ कालम ३

*मैथिलीशरण गुप्त : रत्नावली; महादेवी वर्मा : सप्तपर्णा; बच्चन : कवियो में सौम्य संत; नरेन्द्र शर्मा : द्रौपदी; अज्ञेय : रूपाबरा

इन कृतियो के अतिरिक्त 'कृति' आदि कुछ मासिक पत्रिकाओ ने भी पंत पर विशिष्ट अंक निकाले।

ध्यान मे स्फुरित हुई हैं। देखती नही, इनमे अनुभूति की विशुद्धता है।" किंतु पुरस्कार लेने दिल्ली जाना विशेष प्रिय न लगा, वैसे दिल्ली जाना उन्हे अच्छा लगता है, "वहा अपने लोग है।" जाऊँ, न जाऊँ के बीच पुरस्कार लेने दिल्ली गए और समारोह के वातावरण से खिन्न हो कर आए। साहित्य अकादमी के सभापति पत का नाम उच्चारण ही नही कर पाए। अपने देश के प्रधान मत्री इस समारोह के सभापति है, मन मे यह उत्साह भी था। किंतु हिंदी एव किसी भी साहित्य के प्रति इतनी उदासीनता या उपेक्षा अच्छी भी नही लगी। "इससे अच्छा यही होता कि सरकार हिन्दी को मान्यता न देती। हिन्दी मे यदि क्षमता होगी तो वह अपने आप जिएगी।" साहित्य अकादमी ने साहित्यिक सस्था के नाम पर हिंदी के प्रति जो भाव रखा वह किसी भी साहित्य प्रेमी को दुखी कर सकता था। दिल्ली के पत्रो मे इसकी चर्चा भी हुई तथा वहाँ उपस्थित लोगो ने यह अनुभव भी किया।

जुलाई की ऊमस से जूझते हुए पत ने 'लोकायतन' के १५० पृष्ठ लिखे और लिखने के साथ ही उन्हे लगा छद उचित नही है। अगस्त मे उसे दूसरे छद मे ढाला, ढाल सके कि पुराना ही छद प्रिय लगने लगा। अतः नए छद मे लिखे १०० पृष्ठ फाड डाले। अगस्त-सितम्बर तक लेखन सुचारू रूप से चला। अक्टूबर मे सृजन-कर्म नही ही कर पाए क्योकि राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन जी का अभिनदन समारोह २३ अक्टूबर '६० को प्रयाग मे होना निश्चित हो गया था। पत को यह निश्चय बहुत अच्छा लगा। समारोह मे उत्साह लेते हुए उन्होने कहा, "ऐसे मे सृजन के लिए समय न मिले तो कोई बात नही।"

रविवार, १६ अक्टूबर, सन् १९६० को नगर प्रमुख विश्म्भर नाथ पाडे जी ने नगर महापालिका प्रयाग की ओर से पत को कलात्मक वर्गाकार काष्ठ खण्ड मे एक छोटी-सी मूर्ति, एक श्वेत धातु की मजूषा मे अभिनदन पत्र तथा साथ ही उनको साहित्य सेवा के लिए एक ताम्र पत्र भेंट किया, यह सब अब कला-भवन बनारस मे सुरक्षित हैं।

अक्टूबर मे सृजन-कर्म स्थगित करने के साथ ही, एक के बाद एक, न जाने कितनी घटनाएँ, सुख-दुख पूर्ण घटित होती गई कि महीनो तक लिखना सभव न हो पाया। बडे भाई की अस्वस्थता रह-रह कर पीडित करती। उनका लखनऊ से पत्र आया था, "आठ भाई-बहिनो के बीच मैं और तुम, सबसे बडा और सबसे छोटा, दो ही अब रह गए है। मुझे अपने परिवार की चिंता है, विशेष-

कर छोटे लडके की। वह ठिकाने लग जाए तो निश्चित होकर जीवन से छुट-कारा पा लूँगा।" उनके छोटे लडके को अल्मोडा डिग्री कॉलेज मे नौकरी मिली ही थी कि भाई के निधन का समाचार मिला। छिहत्तर वर्ष की आयु, दुर्बल शरीर, परिश्रम साध्य जीवन—ऐसे मे मृत्यु स्वाभाविक ही थी। पर, अपनो से बिलगाव का दुख, उन्हे फिर कभी न देख सकने की भावना मर्मांतक ही होती है।

जनवरी १६६१ मे पत को 'पद्मभूषण' की उपाधि मिली[1]। यह उपाधि तीन-चार वर्ष पूर्व मिलने वाली थी। श्रीमती रैना अपने पति (तब मिस्टर रैना इलाहाबाद के कलक्टर थे) के कहने पर पत से पूछने एव उन्हे सूचित करने आई थी कि उन्हे पद्मभूषण की उपाधि के लिए चुना गया है। उपाधि स्वीकार करने मे उन्हे कोई विशेष आपत्ति नही दीखी किंतु उसे स्वीकार करने का मन भी नही हुआ। बाद को लगा गलत किया। उपाधि राष्ट्रपति देते है। अपने राष्ट्र, अपने राष्ट्र के प्रतीक राष्ट्रपति के प्रति पत श्रद्धानत है। सन् '६३ मे जब विरोधी दलवालो ने श्री राधाकृष्णन् के हिंदी मे न बोल सकने के कारण आपत्ति प्रकट की तो पत को क्षोभ हुआ—लोग भूल जाते है कि राष्ट्रपति हमारे राष्ट्र के सास्कृतिक आदर्श के प्रतिनिधि है। किंतु जब पहिली बार उपाधि-स्वीकार करने का प्रश्न आया वे उपाधि के नामो की असुदरता[2] के आगे राष्ट्र को भूल गए और उपाधि लेना अस्वीकार कर दिया।

---

१. "तुम्हारा ३० जनवरी (१६६१) का पत्र मिला। मुझे उतार चढ़ाव की उपाधियाँ देने का सरकारी क्रम अच्छा नहीं लगता, इसमें गवर्नमैन्ट को अंतर करना पड़ता है। परन्तु वह सूक्ष्म न्याय नहीं कर सकती। सुमित्रा-नन्दन पंत को नीची उपाधि दी गई। मुझे ऊँची उपाधि* मिली। यह सच है कि मै आयु में बड़ा हूँ और पुराना कार्यकर्ता भी हूँ, परन्तु मै यह जानता हूँ कि मुझे जब लोग भूल जाएँगे तब सुमित्रानन्दन पंत की कविता पढ़ी जाएगी। जनता स्वयं अपने आदर के पात्रो को समय-समय पर पहचान लेती है। यह सरकारी क्रम बंद हो जाएँ तो अच्छा।" राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन का पत्र श्री वियोगी हरि के नाम।
'कादम्बिनी' मार्च १६७६ पृ० १०६
*भारत रत्न

२. परिहास में कभी कहते हैं, "पद्मभूषण खरदूषण सा सुनाई देता है और पद्मविभूषण विभीषण सा। क्या करूँ पच्चीस वर्ष और छोटा होता तो

दुख, अस्वस्थता, अनेक प्रकार के व्यवधानो के बीच २० मई '६१ आ गई। 'आह, इकसठ निदाघ अब बीते'—जीवन मे कुछ न कर सकने की भावना, जीवन की कर्मशून्यता, रिक्तता पत को सालती रहती है। कभी-कभी तो वे इतने दुखी हो जाते हैं कि बुरा लगता है। एक ओर उनकी रुग्णता और दूसरी ओर कुसमय मे आने वालो का उन्हे थका देना। मन अक्सर सोचता—मिलने वाले थोडे सवेदनशील होते! दिन मे तथा रात को पत के सोने के समय का ध्यान न रखकर पत्री और हाथ दिखाने आ जाते है या अपने छोटे से नगण्य से स्वार्थ के कारण उन्हे बुखार मे भी चैन नही लेने देते,[1] क्या ये ऐसा ही अपने घर के वयोवृद्ध लोगो के प्रति भी करते होगे। अथवा यदि ये सचमुच ही पत का आदर करते है, तो क्या यह उनका कर्त्तव्य नही है कि वे प त को ठीक से जीने दें, अथवा उस सृजन-कर्म को करने दे जिस कारण आज उनका समाज और साहित्य मे स्थान है। किन्तु यह सब मेरा व्यक्तिगत आक्रोश एव दु ख था जिस कारण पत कई बार अत्यधिक नाराज हो गए—तत्काल घर छोडने की बात। "मैं ऐसे किसी की अवमानना नही कर सकता। इससे अच्छा मर जाना है।"

जुलाई '६१ से 'लोकायतन' लिखना पुन. प्रारभ कर दिया। १५ सितम्बर तक लिखा कि बीमार पड़ गए। बीमारी के दिनो ही रूस का निमत्रण मिला। और साथ ही ओप्रकाशजी की चिट्ठी कि निमत्रण स्वीकार करके तत्काल पासपोर्ट बनवा लीजिए। अगस्त '६१ मे ओंप्रकाश जो ने पत से पूछा था कि क्या आप रूस-यात्रा करना पसद करेंगे। वहाँ वाले आपको आमत्रित करना चाहते

परिभाषिक शब्द-कोश बनाता। कष्टसाध्य कार्य है, अब बुढ़ापे में संभव नही है। लोग भूल जाते हैं कि शब्द कोश बनाने के लिए अर्थ, ध्वनि, लय और सौंदर्य का ज्ञान अनिवार्य है।

१. दो अपरिचित लेखकों—साधुओ—की पांडुलिपियां तो पंत ने अस्वस्थता के दिनो, सम्मति देने के नाम पर, एक प्रकार से, फिर से लिखीं। करते भी क्या, भक्ति के नाम पर पकड़ाई गई पांडुलिपियाँ! "मै ऐसो को दुःखी नहीं कर सकता। भक्त हैं, निश्छल हृदय से आए थे।" दो काव्य सग्रहो के प्रूफ भी देखे। कहने लगे, "कई स्थलो पर छद दोष हैं। वह तो ठीक करने ही होगे। फिर मैंने ही छपवाने के लिए दिलवाए हैं।" मैं चुप, लेखक को पता भी नहीं चला और पंत ने अपना धर्म निभा दिया।

हैं। यात्रा[1] एव घर से बाहर निकलने के नाम पर पत की सहज प्रतिक्रिया घबडाहट की होती है—मार्ग मे पानी पीने से लेकर न जाने कितने प्रकार के वे

---

१. भ्रमण के नाम पर पंत को परेशानी होती है। न वे स्वयं यात्रा करना पसंद करते हैं, और न चाहते हैं कि घरवाले ही यात्रा करें। उदयशंकर सांस्कृतिक केन्द्र से संबद्ध होकर उन्होंने बम्बई-मद्रास देख लिया था तथा कुंवर सुरेशसिह के साथ उत्तर प्रदेश। पंजाब, गुजरात, केरल आदि उन्होंने नहीं देखे है। कहते रहते हैं, "इन जगहो में जाना चाहिए। अवश्य जाऊँगा।" किंतु कब ? भगवान् ही जाने। जून '६२ मे कश्मीर राज्य की ओर से उन्हें निमंत्रण मिला था। कहा, "अक्टूबर में अवश्य जाऊँगा।" वह 'अवश्य' सन् '७० मे ही आया। किंतु तब पत स्वेच्छा से नहीं गए वरन् श्रीमती शीला संधू ने एक प्रकार से उन्हे जाने के लिए बाध्य ही कर दिया। इसी भाँति सुखाडिया जो (तब मुख्य मत्री राजस्थान) उन्हें स्वयं आकर राजस्थान देखने के लिए आमंत्रित कर चुके हैं पर उस समय का अवश्य 'अवश्य' ही रह गया है।

पंत का घर से बाहर जाना ही एक घटना है, इलाहाबाद से बाहर जाना तो बेटी की बिदाई-सा है। यदि उनसे सबेरे चाय के समय कह दो कि शाम को कहीं चलेंगे तो वे दिन मे कई बार कह देंगे- "आज सब काम जल्दी निबटाने होगे, जल्दी नहा लूँगा तब काम पर बैठूँगा। शाम को जाना है न !" दिन में थोड़ी देर लेट कर जल्दी से चाय बनाने लगते हैं। मै कहती हूँ, "अभी तो तीन ही बजा है, आज एक घण्टा पहिले चाय क्यो बना रहे हो।" वे कुछ आश्चर्य और कुछ नाराजी के स्वर में कहते हैं, "जल्दी कहाँ है ? तुम्हीं तो कह रही थीं शाम को बाहर चलेंगे।" यदि रेल से यात्रा करनी हो तो आठ-दस दिन पहिले से उनका सारा ध्यान उसी में केन्द्रित हो जाता है। जेब से एक कागज का टुकड़ा जब-तब निकालते दीखते हैं, "जाने से पहिले मुझे यह सब काम कर लेने है। इतनी चीजे बाजार से मंगानी हैं ·!' फिर एकाएक जीभ निकालते हुए आश्चर्य से कहेगे, "अरे, यह तो भूल ही गया था," जेब से छोटी-सी पेंसिल निकाल कर या कमरे में जाकर पेन से उस कागज के टुकड़े पर लिख देते हैं। और कहते हैं, "भूल जाता हूँ, तभी तो लिख लेता हूँ। अन्यथा बड़ी आफत आ जाए।"

कष्ट गिना सकते हैं। जब सामान्य बातचीत के मध्य ओप्रकाशजी ने उनसे विदेश जाने के लिए पूछा तो उन्होंने यह सोचा कि यह प्रस्ताव 'बातचीत' तक ही सीमित रहेगा। अतः उन्होने उनसे मना नही किया वरन् कह दिया, "मैं अकेले नही जाऊँगा, यदि आप चलें तो अवश्य चलूँगा।" फिर यह कौन ऐसी बात थी कि याद रखते, कभी याद आ ही जाता तो कहते, "अरे, यात्रा कोई मजाक है। इतनी कठिनाइया है कि पूछो नही। ओप्रकाशजी अभी बडे उत्सुक है फिर स्वय ही समझ जाएगे कि जाना नही चाहिए। समझदार व्यक्ति है। यात्रा की झझटें समझते है।"

पर ओप्रकाशजी, सभवत पत की दृष्टि मे उस समय समझदार नही ही निकले। पत ने 'पासपोर्ट' बनवा लिया, यह सरलता से ही बन गया। अब विदेशी मुद्रा प्राप्त करने की समस्या थी। ओप्रकाशजी तथा कुछ अन्य लोगो ने आश्वासन दिया कि मुद्रा मिल जाएगी—मुद्रा प्राप्त कर पाते, या न कर पाते कि पत को १०१° बुखार आ गया, उन्होने चारपाई पकड ली, "अब मैं नही जा सकता। मेरे फेफडे दुर्बल हैं। ब्रोकाइटिस या निमोनियाँ हो गया होगा। ओप्रकाशजी दु खी तो होगे पर मैं क्या कर सकता हूँ, देखो न बुखार ९९° से नीचे जा ही नही रहा है।" पर पत को विदेश जाना था अथवा ओ-प्रकाशजी को उन्हे विदेश ले जाना ही था। जाने के नाम पर पत जितनी ही ढील दे रहे थे, ओप्रकाशजी उतनी ही तत्परता दिखा रहे थे। उन्होने दो-तीन ट्रक कौल किए, चिट्ठिया भेजी तथा अपने किसी प्रतिनिधि, राजकमल के किसी व्यक्ति (तब वे राजकमल से सबद्ध थे) को भेजा। लाचार पत दिल्ली रवाना हुए। जाते समय कहने लगे, "थर्मामिटर लगाऊँगा तो बुखार निक-लेगा। जाना तो नही चाहिए था पर विवशता है। ओप्रकाशजी ने सब तैयारी कर ली है, अब जाना ही पडेगा।" किसी ने भी पत के प्रति सवेदना प्रकट नही की, सभी चाहते थे कि वे विदेश घूम ले। यदि स्वास्थ्य सामान्य भी है तो रूस जाने मे क्या हानि। वहाँ की सी चिकित्सा यहाँ कहाँ सुलभ है।

दिल्ली पहुँचकर देखा विदेशी मुद्रा मिलने मे पर्वताकार कठिनाइयाँ है। बुखार और दुर्बलता में ही दो दिन सबेरे से शाम तक भटके। मन विद्रोह कर उठा—अकेले जाने की बात होती तो हरगिज नही जाते, किंतु अपने कारण दूसरे का कार्यक्रम बिगाडना! नब्बे रुपए की नगण्य राशि लेकर पत १२ अक्टूबर '६१ की सबेरे तासकद के लिए रवाना हो गए। दिल्ली से तासकद तीन घण्टे का रास्ता है। दो घण्टे हिमालय लाँघने मे लगे। हिमालय के दर्शन

होते ही मन का अवसाद, खिन्नता, पहाडी बरसात की धुली साँझ मे बदल गए। एक अनिर्वचनीय शाति, आह्लाद और आनद मे मन तिरने लगा। बचपन की कल्पना को मानो पर लग गए। सात-आठ वर्ष का जिज्ञासु बालक अपने अतिशयानद मे ऊब-डूब करने लगा—हिमालय ! क्या कभी सोचा था कि जिस हिमालय के नीचे खडे होकर उसे आँखो से नापा करते थे, जिसकी अलघ्य ऊँचाई को विस्मय-विभोर होकर देखा करते थे और उस क्षण की अपलक प्रतीक्षा करते थे जब हिमालय के स्वामी शिव अपने वैरागी वेश मे ध्यानमग्न दीख जाएगे, और हिमालय के ऊपर से उडते हुए निकल जाएँगे। मन स्वस्थ और उत्फुल्ल हो गया—संपूर्ण व्यक्तित्व हिमालय के दर्शनो से स्निग्धता और आनन्द का अनुभव करने लगा। इस दर्शन का पहिले क्यो नही ध्यान आया होगा—"व्यर्थ ही यात्रा के नाम पर घबडा रहा था। यह तो तीर्थ-यात्रा निकली।"

तासकद से मास्को आए। मास्को के अनेक सास्कृतिक-साहित्यिक कार्यक्रमो मे गए। "मास्को मे हम दो दिन रहे और वहाँ के मुख्य सग्रहालय, नाटक तथा नृत्य केन्द्र, कला भवन, मास्को विश्वविद्यालय आदि देखा।" सुप्रसिद्ध 'रशियन बेले' देखा, जो उन्हे पसद आया। श्रमिको के रग मच पर उन्होने उनका नाटक भी देखा। सर्वाधिक प्रभावित वे वहाँ के सग्रहालयो को देख कर हुए जिनमे एक प्रकार से रूस का राजनीतिक और सास्कृतिक इतिहास सगृहीत है।

साहित्यिक कार्यक्रमो मे अनेक साहित्यिको, साहित्य-आलोचको से उनकी भेंट हुई। रूस अब ख्रुश्चेव के नेतृत्व मे उदार दृष्टिकोण को अपना रहा था। अतः वहाँ के साहित्यिको ने कहा—भारत के साम्यवादी साहित्यिक आलोचकों ने न केवल अपनी सकुचित मनोवृत्ति का प्रदर्शन किया है वरन् साम्यवाद को भी हानि पहुँचाई है। इन आलोचको ने अपने यहाँ के साहित्यिको का ठीक से रूसवालो को परिचय नही दिया। अब वे स्वय हिंदी साहित्य का अध्ययन कर रहे है और अपने स्वतन्त्र निर्णय पर पहुँच रहे है। भारत के श्रेष्ठ साहित्यिको को वे अपने अध्ययन के आधार पर पहचानेंगे।

मास्को एव रूस की स्वच्छता तथा नागरिक बोध से पत बहुत प्रभावित हुए। वहाँ का अनुशासित जीवन इस अर्थ मे अनुकरणीय है कि आप मनुष्य, उसके जीवन और स्वास्थ्य को कीडो से भी बदतर नही समझते। वहाँ के खाद्य पदार्थों, फलों और तरकारियो की श्रेष्ठता का वर्णन करते-करते वे नही थकते है।

१६ ता० को प्रसिद्ध नगर लेनिनग्राड पहुँचे, लेनिनग्राड जिसने तीन क्रातियो को जन्म दिया और जो वीर-भूमि है। यहाँ के कई सास्कृतिक कार्य-क्रमो मे भाग लिया तथा यहाँ के सग्रहालयो को देखा। ये सग्रहालय दर्शनीय माने जाते है। लेनिनग्राड से १७ ता० की शाम मास्को वापिस आ गए।

१८ ता० को मास्को से योरोप गए—पश्चिमी जर्मनी, फ्रास, पेरिस और लदन आदि। रूस मे सभी प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त थी, वहाँ अतिथि जो थे। किंतु रूस जाकर योरोप घूमना अनिवार्य दीखा। योरोप घूमने के लिए ही विदेशी मुद्रा की आवश्यकता थी। मास्को मे पत की चुनी हुई कविताओ का रूसी अनुवाद प्रकाशित हुआ था[1] उसका पारिश्रमिक वहाँ जमा था। रूस सरकार का नियम है वह अपनी मुद्रा बाहर नही भेजती अथवा यदि पत अपना पारिश्रमिक चाहते हैं तो उसका उपयोग उन्हे वही करना होगा। पत के चाहने पर वहाँ वालो ने पत के पारिश्रमिक से उनके लिए योरोप का टिकट खरीद दिया। मास्को से वे पश्चिमी जर्मनी के लिए हवाई जहाज पर बैठे थे कि गोपेश जी ने हवाई अड्डे पर निराला जी के स्वर्गवास का समाचार दिया।[2] बहुत दुःख हुआ। रह-रह कर मन प्रताडित करता कि आने के पूर्व भेंट क्यो नही कर ली। पर ऐसा किसने सोचा था। उनकी अस्वस्थता के बारे मे सुना था, अस्वस्थता इतनी घातक निकलेगी, यह अचिन्त्य था। विदेश जाने के दस-पन्द्रह दिन पहले से पत बीमार भी थे। किसी से भी मिलने नही जा पाए थे। एकमात्र भेंट महादेवीजी से हुई थी। वे घर तथा स्टेशन पर बिदा देने आई थी।

पश्चिमी जर्मनी पहुँचने के लिए पूर्वी जर्मनी होकर जाना पडा किंतु जर्मनी के एक भाग से दूसरे भाग जाने मे (युद्ध के कारण) थोडी बहुत कठिनाई भी हुई जो याद रहेगी।

---

१. 'सुमित्रानंदन पंत चुनी हुई कविताएँ', मास्को १६५६
सन् १६६५ में पंत की कुछ अन्य कविताओं का एक संकलन मास्को से और प्रकाशित हुआ।

२. निरालाजी के निधन के बारे में बताते हुए कहने लगे, "एकदम ऐसा आघात लगा कि चेतना ही खो बैठा। मास्को से प० जर्मनी के मार्ग का पता ही नहीं चला।"

रूस मे कार्यक्रम निर्धारित था। सब प्रकार की व्यवस्था थी, सब कुछ नि.शुल्क था। अब पैसे-पैसे के मुँहताज थे और साथ ही स्वय निर्धारित करना था कि क्या देखना चाहिए अथवा आर्थिक दृष्टि से क्या देखना सभव है। पर देखने और समझने की आकाक्षा! दिनभर घूमते ही रहते—सर्वत्र घूमना ही घूमना तथा कम से कम पैसो मे रहना। अधिकतर पैदल घूमते। सबेरे आठ बजे होटल से निकल जाते और रात के १० बजे वापिस आते। योरोप का जीवन यायावर का जीवन था—ज्ञान और अनुभव की वृद्धि का जीवन। यद्यपि पैसो की तगी के कारण बहुत कुछ नही देख पाए। फ्रास और जर्मनी मे एक ही बार खाना खाकर रहे।

फ्रेकफर्ट (प० जर्मनी) 'मे 'बुक फेयर' देखा। वहाँ अनेक देशो के प्रकाशको तथा लेखको से मिले। बुकफेयर मे ३० देशो के सैकडो प्रकाशको की ७०, ००० पुस्तके थी। पुस्तको को देखना अच्छा लगा—उनके प्रति मन मे एक अदम्य आकर्षण है! ज्ञान का भण्डार! मनुष्य अपने जीवन मे कितना कम ज्ञान उपार्जन कर पाता है, बस, एक अश भर! काश, सब अच्छी पुस्तकें पढ पाते। फ्रेंकफर्ट मे भी खूब घूमे, ८ बजे सबेरे होटल से निकलते तो १० बजे रात ही वापिस आते।

१८ ता० से २२ ता० तक जर्मनी मे रहे। २२ ता० की शाम फ्रास एव पेरिस पहुँचे। पेरिस मे अनेक दर्शनीय स्थल हैं। भव्य, सुदर शहर है। यहाँ आकर 'गरीबी मे आटा गीला' बहुत याद आया। पेरिस की मँहगाई और पैसा पास नही। टेक्सी, होटल सभी तो महँगे। पेरिस के रात्रि-गृह प्रसिद्ध है। किंतु उन्होने इस प्रसिद्धि को महत्व नही दिया। वहाँ उनका कहना था—हम दूसरे देशो की अच्छी बात सीखने आए हैं। अत. ओप्रकाशजी के साथ उन्होंने पेरिस के प्रसिद्ध स्थलो के सौदर्य का उपभोग किया। पेरिस मे प्रो० मेल, प्राच्यविद् के साथ विशेष रूप से साहित्यिक चर्चा हुई,[1] उनके साथ यूएनेस्को भोजन करने का भी अवसर मिला।

२७ ता० की शाम लदन पहुँच गए। वहाँ बी० बी० सी० के कार्यक्रमो से कुछ पैसे मिल गए। निराला जी की मृत्यु पर अपनी समवेदना उन्होंने वही से

---

१. समसामयिक हिंदी साहित्य एवं उसकी अर्वाचीन प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि जिन प्रवृत्तियों और विधियो को उनके देश के साहित्यिक छोड़ रहे हैं, उनको आपके देश के लोग अपना रहे है।

सारित की। लदन मे एक परिचित परिवार से कुछ रुपये भी उधार मिल गए जिससे वहाँ दोनो बार खाना खा सके। लन्दन नगर उन्हे आकर्षित नही कर सका।

२ नवम्बर को वे मास्को वापिस पहुँचे। ४ ता० 'कीव' गए, ६ ता० को पुन. मास्को आ गए। ७ नवम्बर को रेडस्क्वायर की प्रसिद्ध 'परेड' देखी और ८ ता० की रात स्वदेश के लिए रवाना होकर ६ ता० को दिल्ली पहुँच गए।

अपने देश के विदेश मे स्थित सरकारी लोगो से किसी प्रकार की आत्मीयता का अनुभव नही हुआ[1], उस बारे मे 'कुछ' न कहना ही श्रेयस्कर है। परिचित लोगो मे रूस मे गोपेशजी तथा लन्दन मे गौरीशकर जोशी के परिवार का स्नेह मिला, जोशी परिवार के साथ तीन-चार बार खाना भी खाया।

विदेश भ्रमण ने पत का ज्ञान-सवर्धन किया और साथ ही उससे उन्हे अपनी मान्यताओ को दृढ आधार मिला, "आधुनिक सभ्यता के प्रति मेरे जो विचार थे उन्हे दुहराने का अवसर मुझे इस यात्रा मे मिल सका।" "पश्चिम मे सास्कृतिक ह्रास के चिह्न स्पष्टत दिखाई दिए। लोगो मे आशका, भय तथा कुठा है, और है राष्ट्रीय दर्प, जो विश्व शाति की दृष्टि से घातक प्रतीत हुआ। पश्चिमी देशो का भ्रमण कर मुझे साख्यकार का स्मरण हो आया, जिन्होने सत्य को प्रकृति पुरुष मे विभाजित कर प्रकृति को अधी तथा पुरुष को पगु बतलाया है। वास्तव मे आज प्रकृति और पुरुष के प्रतिनिधि पश्चिम तथा पूर्व (भारत) एक दूसरे से पृथक् रहकर अपूर्ण ही हैं। मानवता के कल्याण के लिए इन दोनो का मिलन नितात आवश्यक हो उठा है—जिससे भारतीय अध्यात्म पश्चिमी सभ्यता को लक्ष्य तथा दृष्टि दे सके और पश्चिमी सभ्यता भारतीय आध्यात्म को पृथ्वी पर मूर्त्त करने के लिए प्राणवत्ता, सुसगठन तथा वैज्ञानिक साधन दे सके, जिसके बिना पूर्व पगुवत् है।"[2]

---

१. "यूरोप तथा लन्दन मे मुझे भारतीय दूतावासो के कारण बड़ी सुविधा मिली।" कला और सस्कृति, पृ० ६१।

पंत के ऐसे कथन के मूल में यह बात है कि वे अपने संदर्भ में अपने देशवासियों की बुराई नहीं करना चाहते हैं। विदेश से आकर उन्होने मुझसे कहा कि मैंने ओंप्रकाशजी से भी यही प्रार्थना की हैं कि वे इस बारे में चुप ही रहें।

२. कला और संस्कृति पृ०, ६०-६१

विदेश मे शराब का बडा चलन है। रूस की ठण्डक से बचने के लिए लोगो ने वोद्‌का लेने के लिए कहा। पत ने हँसकर बात टाल दी—मैं गगाजल का अभ्यस्त हूँ। वे क्या समझते, उन्होने गगा जल और वोद्‌का को एक ही वर्ग का सभवत. समझ लिया और कहा 'यहाँ की विशेषता वोद्‌का है। यह भी पी लीजिए। फिर गगाजल भी पी लीजिएगा।' पत वोद्‌का नही ही ले पाए—उन्हे ब्रेन्डी लेना तक पसद नही है। सन् '५८ मे उनसे किसी ने कहा—अण्डा-दूध मिलाकर जाडो मे लीजिए, बहुत लाभप्रद होता है, और यदि आप थोडी-सी ब्रेन्डी भी मिला ले तो उससे बढिया टॉनिक कुछ नही है। आप स्वास्थ्य के लिए जो टॉनिक लेते है उसकी आवश्यकता नही रहेगी। पत ने स्वीकार किया कि यह अच्छी चीज है। बाद को कहने लगे जब तक डाक्टर न कहे या बाध्यता न हो नही लेना चाहिए। "जहाँ तक हो ऐसी चीजो से दूर रहना चाहिए। शराब तो मैं छूना भी पसद नही करता हूँ।" जिस चीज या काम के लिए उनका अदर से मन सहमति नही देता है उसे वह नही ही करते है। इस दृष्टि से सगति का प्रभाव उन पर नही ही पडता है। जिस काम के लिए मन होता है वह बिना किसी सकोच, हिचकिचाहट, दुविधा या दुराव के स्पष्टतः करते है, "जो काम मुझे ठीक लगता है उसे करने मे मुझे किसी प्रकार का सकोच या भय नही लगता है।" "अरे, वह कहता है तो कहने दो, मैं तो अपने मन का अनुगामी हूँ।"

शराब के लिए उनका कहना है, "मै तो कैसे-कैसे पीने वालो के साथ रहा हूँ। मैंने एक एक से बढिया शराबे देखी हैं। पर पीने के लिए जी ही नही किया। सदैव एक वितृष्णा रही, इसके कारण अपने घर को मदिरा पान से उजडते जो देखा है।" यह जो भी कारण पत दें, सयम मे उनका

अपने देश और देश की सस्कृति से पंत को अगाध मोह है। उन लोगों को देखकर उन्हे दुःख होता है जो दो-तीन वर्ष विदेश में रहकर भारत की बुराई करने लगते है, विदेश ही में बस जाना चाहते हैं, या वहाँ की भाषा और संस्कृति के दास हो जाते हैं। दिसम्बर '६६ मे मेरी एक सहेली ने उनसे कहा, "भारत की जलवायु मुझे बीमार कर देती है। मैं तीन वर्ष लन्दन रही, पर एक दिन के लिए भी बीमार नहीं पड़ी।" अपने स्वभाव-वश उस समय तो पंत चुप रहे, बाद को कहने लगे, "यह सैक्रिलिज' है, पाप है।"

विश्वास है। प्रचलित अर्थ मे अधार्मिक, असामाजिक एव रूढिविरोधी कार्य वे कर सकते हैं किंतु अशोभन और अमानवोचित नही। यह उनका अपना व्यक्तिगत दृष्टिकोण अथवा सिद्धात है। इसके कारण वह किसी दूसरे को आहत नही कर सकते--एक बार (सन् '६२) बातचीत मे उन्होने एक सुराप्रेमी सज्जन को बताया कि उन्होने कभी शराब नही पी है, न मित्रो की सगति मे और न विदेश मे। एकाएक उन्हे ध्यान आया कि जिनसे वे बातचीत कर रहे हैं वे सुराप्रेमी है। उन्होने तत्काल बात बदल दी, "बचपन मे मैंने खूब शराब पी है। हमारे घर मे तो शराब की ढेरो बोतलें रहती थी। अब यो ही नही पीता हूँ। बम्बई मे भी शराब पी। वहाँ नरेन्द्र के एक मित्र थे। वे गोआ से काजू की शराब लाते थे। उनसे तय था कि जब भी वे गोआ से आएँ काजू की शराब लाए। काजू की शराब बडी अच्छी होती है। आपने नही पी ?"

अक्टूबर, सन् १९६१ मे उन्होने बियर पी। जब पूर्वी जर्मनी से पश्चिमी जर्मनी जा रहे थे तो हवाई अड्डे मे असह्य प्यास लगी। पानी मिला नही, प्यास से तडपने लगे तो बियर पी। सबने उन्हे यही बताया कि बियर पानी सी होती है। बियर पीने से प्यास बुझ जाएगी और कुछ पता भी नही चलेगा। लगभग आधी बोतल बियर पी। उनका कहना है, "प्यास तो बुझी नही, गले मे जलन हो गई। एक-दो घण्टे तक सिर घूमता रहा। ओह, विदेश मे पानी का बडा कष्ट था। यहाँ का पानी बहुत याद आता था। वहाँ तो मिनरल वॉटर, फलो का रस या शराब ही मिलती है।" सन् १९७० के अक्टूबर मे भी पत ने आतिथेय के आग्रह पर, शेरी पी। और सभवत इसी भाँति एक-दो बार और 'सौफ्ट ड्रिन्क्स' लिए है।

१० नवम्बर को विदेश से पत इलाहाबाद वापिस आ गए, "विदेश देख ही लिया। कितनी कठिन होती है यात्रा। भगवान् ने करवा दी। ओप्रकाश जी नही होते तो मैं नही जा सकता था। बेचारे एक हाथ से मेरा सूटकेस पकडते थे तथा दूसरे से अपना। वे मेरी बुश्शर्ट भी धो देते थे।" बुश्शर्ट धोकर ओप्रकाशजी ने अपकार ही किया, मेरा, ड्राइक्लीनर का तथा स्वय पत का।[1]

---

१. एक सरल बचपन से युक्त है, पंत का स्वभाव। सन् '५६ में मैंने सिलाई की मशीन खरीदी। और उसी आवेश में उनके कुछ पायजामे सी दिए। उनको बड़ा अच्छा लगा। तब से उन्होंने कहना प्रारंभ किया कि दर्जी के सिए पायजामे अच्छे नहीं होते। जाने कैसे सी देता है, आराम नहीं

पहिले बुश्शर्ट, चाहे कितनी ही अच्छी हो, धोबी ही धोता था। बाद को, सम्भवत सन् '५६ से, ड्राइक्लीनर को देने लगे थे। किन्तु अब वह बुश्शर्ट दिखाते हुए कहते है, "नौकर धो देगा या मैं ही धो लूँ। वो क्या धोएगा। और गदा कर देगा। सर्फ मुझे दे दो, मैं धो लूँगा। विदेश मे बेचारे ओप्रकाश जी धो देते थे।" यह ध्वन्यात्मक ही लगता—तुम धो दो। स्पष्टत. पत कभी अपना काम करने के लिए नही कहते हैं। जब मै उनसे कहती हूँ, "अच्छा मै धो दूँगी।" वे प्रसन्नता छिपाते हुए कहते हैं, "नही तुम क्यो मेरे लिए परेशान होती हो। मै नही चाहता तुम गदे कपडे धोओ। बस अपने सामने नौकर से धुलवा देना अन्यथा वह ठीक से नही धोएगा।" "कोई बात नही मै धो दूँगी" और मैं उनके हाथ से बुश्शर्ट लेती ही हूँ कि वह पूछते है, "कब धोओगी ?" यह कब पत को सदैव परेशान करता है। दो-तीन बार वे चक्कर लगा कर देख जाते है कि बुश्शर्ट धुला या नही। कभी-कभी तो उन्हे देरी इतनी खल जाती है कि चुपचाप बुश्शर्ट उठा ले जाते है और धो देते है, "देखा, मैंने कितनी

मिलता। यदि किसी समय मुझे अवकाश नहीं मिला या सीने में आलस्य आ गया तो वे कहने लगते, "तुम मशीन मे डोरा डाल दो, मै सी लूँगा, काट भी लूँगा। बात यह है मेरे पास पायजामे नहीं हैं, देखो यह फटा हुआ पहने हूँ।" यदि कह दो, "कुछ नए पायजामे तुम्हारे बक्से में दबे तो रखे है, वे इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते। "कहाँ हैं, बस जो जी चाहा कह देती हो।" और फिर नए सीकर देने पर वे तत्काल नहीं पहनते। वे भी न जाने कहाँ गायब हो जाते हैं। "फटा पहिने हो, अब तो सी दिए हैं, नया पहिन लो।" वे फटे पायजामे को सीकर आ जाते हैं, "देखो अब ठीक है, कौन खोले बक्सा, आलस्य आता है।" "कहने दो जिसका जो जी चाहे। बुढ़ापा है, आराम से रहना चाहिए।" इधर सन् '७० से उनके पायजामे दर्जी ही सीता है, या फिर वे सैम्सन की दूकान से ले आते हैं। या तो वे मेरे स्वभाव की सीमा को पहिचान गए हैं, और या, अब घर मे सिलवाने में उन्हें उतनी नवीनता नहीं लगती। २८ फर्वरी '७० को उनके भतीजे लेनिन की बीवी उमा ने उनसे कहा, "मैं लेनिन के पैन्ट, बुश्शर्ट, पायजामा आदि घर में ही धोती हूँ।" पत को यह बात बहुत अच्छी लगी। मुझसे कहने लगे, "एक दिन तुम युनिर्वासिटी से आने पर देखोगी कि मैने अपना पैन्ट स्वयं धो लिया है। मेरा परिवार होता तो मेरे कपड़े भी घर में धुलते, साफ धुलते और खराब नहीं होते।"

अच्छी धोई। तुम्हे समय नही था और मेरे पास पहनने के लिए कपडे नही थे। कल के घर जाना है। क्या पहनता ?"

विदेश जाना पत के लिए अच्छा ही रहा। वहा से वह अधिक मुखर और स्पष्टवादी होकर लौटे, विशेषकर भारत सरकार की भाषा नीति के बारे मे। इसके पूर्व चुप ही रहते थे, सदैव यह आशका रहती थी कि मैं हिन्दी का लेखक हूँ, हिन्दी के बारे मे कुछ कहना पक्षपात प्रतीत होगा। लोग उसे उचित ढग से समझ नही पाएगे। मन मे वे अक्सर दु खी हो जाते है कि हिन्दी का लेखक होने पर भी वे हिन्दी की वृद्धि के लिए कुछ नही कर पाए। हिन्दी को वे देश की सास्कृतिक एकता और उन्नति के लिए आवश्यक मानते हैं। "मैं जानता हूँ कि बिना भारतीय भाषाओ के देश आत्म-प्रबुद्ध नही हो पाएगा, विदेशी भाषा उसे सदैव मानसिक रूप से दास बनाए रखेगी।" वे चीन और रूस का उदाहरण देते है। साथ ही यह भी कहते हैं कि भारत के अग्रेजी प्रेम को दूसरे देशवासी कितनी हेय दृष्टि से देखते हैं। रूस मे उन्हे यह सुनने को मिला कि भारत अग्रेजी को अपनाए है मानो उसके पास अपनी भाषा न हो ? भारत से सबध रखने के लिए हमे भी अग्रेजी सीखनी पड़ती है। यह कथन परिहास मे लिपटा हुआ व्यग्य ही था। लन्दन मे भी वहाँ के प्रसिद्ध सपादको से यही सुनने को मिला कि वे अग्रेजी मे लिखने वाले भारतीय लेखको को मान्यता नही दे सकते एव अपने पत्र मे उनके लेख, कहानियाँ आदि प्रकाशित नही कर सकते हैं।

पत यह भी मानते है कि यदि हम हिंदी का अहिंदी क्षेत्रो मे प्रचार करना चाहते है तो हमे हिन्दी को हिन्दी के भीतर से ही सरल बनाना होगा तथा साथ ही भारत की अन्य भाषाओ को सीखना और उनका आदर करना होगा। सभी भाषाएँ क्षमतावान् है, हिन्दी विशिष्ट कारणोवश, राष्ट्रभाषा होने के कारण समग्रता की प्रतीक है जिसके अनिवार्य अग अन्य भाषाए हैं। समग्रता बिना अगो के विकसित नही हो सकती और न अग बिना समग्रता के। हिन्दी सविधान द्वारा स्वीकृत राष्ट्रभाषा है। अब हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने या न होने के विवाद का प्रश्न ही नही उठता, वह एक माना हुआ सत्य है। किसी भी भाषा को राष्ट्रभाषा न कहना उसका अपमान करना, राष्ट्र का अपमान करना है।[1]

---

१. डा० रामकुमार वर्मा, "आपकी दृष्टि में हिन्दी काव्य का भविष्य क्या है ?"

विदेश के विकसित सामाजिक बोध, स्वच्छता तथा सुव्यवस्थित जीवन से वे बहुत प्रभावित हुए। वहाँ की सरकारो को देश के स्वास्थ्य की चिंता है। वहाँ भोजन के पोषक द्रव्यो पर ध्यान दिया जाता है। लंदन मे तो फलो तरकारियो के साथ दूकानो मे टगा रहता है कि वे कितनी ताजी एव बासी है, दो घण्टा, एक दिन, दो दिन आदि। लदन मे सरकार महगा सामान खरीद कर अपने नागरिको को सस्ते मूल्य पर देती हैं। पत बिना किसी दुराव, भेद-भाव के वहाँ की महानता को स्वीकार करते है—लोगो की लगन, परिश्रम साध्य जीवन, वैज्ञानिक उन्नति, उन्नत सामाजिक बोध आदि को। "वहाँ के लोग जीवन और समय के अर्थ और मूल्य को समझते है।"

नवम्बर मे प्रयाग आने के साथ ही उन्हे लखनऊ और दिल्ली जाना पडा। इसी मे फरवरी '६२ आ गई। एक माह लिखा। फिर पाँच माह का व्यवधान

पंतजी, "हिन्दी काव्य का भविष्य ? यह तो बहुत उज्ज्वल है। मै तो मानता हूँ कि विश्व की बडी बडी भाषाओ में यह एक भाषा मानी जाने लगेगी क्योकि भारत के पास एक ऐसा सत्य है, जैसे कि पश्चिम के पास विज्ञान है वैसे भारत के पास एक आध्यात्म कहिए या एक अधिदर्शन कहिए वह है। उस पर जब मनुष्य सृष्टि आधारित होगी और उस प्रकाश को, उस शान्ति को, उस सौंदर्य को, उस प्रेम को, उस आनन्द को जब हिन्दी वाणी देगी तो उससे संसार का मन परिप्लावित हो उठेगा। इसी कारण मुझे हिन्दी का भविष्य बहुत ऊँचा दिखाई देता है। हिन्दी को मै चेतना मानता हू, उसे शब्दो का ढेर नहीं मानता।"

श्री सुमित्रानंदन पंत से की गई भेंट वार्ता : डा० रामकुमार वर्मा
आकाशवाणी, इलाहाबाद २१-७-'६९।

"हिन्दी की हालत वही है जो देश की हालत है–लोगो की मनोदशा है। ठीक है अपने समय मे सब चीजें साफ हो जाएंगी—हिन्दी-हिन्दी प्रदेशों की भाषा रहे तो बहुत है, अन्य भाषाएँ भी फूलें-फलें और राजभाषाएँ बनें–जिस देश मे खाने-पीने को नहीं वहाँ के लोग भाषा प्रेम नहीं जान सकते—जिस देश के अंतर मे प्रकाश नहीं, प्राणो में सच्छक्ति की साधना नहीं उस देश के वासियों के लिए अन्धकार में ही भटकना, अनाचार में पक मग्न रहना स्वाभाविक है।'

बच्चन के नाम : पंत के दो सौ पत्र' पृ० २०५ सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली ७
'प्रथम संस्करण' १९७१

पड गया। १७ मई को भतीजी की शादी मे सम्मिलित होने के लिए मथुरा गए। अपने स्वभावानुसार गाडी के समय से दो घण्टे पूर्व स्टेशन पहुँच गए, स्टेशन मे ही लू लग गई। अतः शादी के दूसरे ही दिन दिल्ली चले गए फिर २ जुलाई को वापिस आ गए। इस वर्ष हिमालय न देख सकने का दुःख था किंतु मन प्रसन्न था कि "बच्चन के साथ रहा।"

जनवरी सन् १९६२ मे रामनरेश त्रिपाठी का स्वर्गवास हो गया। महादेवी जी और गगा प्रसाद पाडेय जी के साथ पत मृतात्मा को फूल अर्पित एव श्रद्धाजलि देने गए। मोटर मे बैठ ही गए थे कि ध्यान आया, थोडे फूल और ले ले। सामने ही नौकर, मोहन सिंह, खडा था। पत ने उससे फूल तोड लाने के लिए कहा। वह फूल तोड लाया, अधिकतर लाल ही फूल थे—लाल गुलाब, लाल एग्जौरा। पडोसी घर का एल्सेशियन कुत्ता धोती की पतली किनारी से उनके बगीचे के पेड से बँधा था—उसने न जाने क्या सोचा, एक हल्के झटके से अपने को बधन मुक्त किया और मोहन सिंह के ऊपर झपटा। उसके पैरो से खून निकलने लगा—चार पाँच जगह कुत्ते ने दाँत से घाव कर दिया था।

मोहन सिंह, १५-१६ साल का लडका, उस समय तो वह बुरी तरह घबडा गया। पर अदर आने तक वह गुस्से मे भर गया। बडी मुश्किल से उसके दवा लगाई। रोते हुए उसने डडा उठाया और बाहर जाने लगा, "अभी साले कुत्ते को ठण्डा कर देता हूँ।" उसका हाथ पकड़ कर उसे अदर खीचा। थोडी ही देर मे पत आ गए। मोहन सिंह का पैर देखा—बहुत बुरा लगा। मुँह-हाथ धोकर वह बाहर निकले तो देखा कि पडोसी मुसिफ उल्टा मोहन सिंह को ही तर्कजाल मे फाँस रहे हैं—वे मोहनसिंह से कहलवाना चाहते थे, मैं दोषी हूँ। पत को गुस्सा आ गया। सामान्य शिष्टाचार और मनुष्यता का आग्रह था कि वे अफसोस प्रकट करते। उससे कहते कि दस कदम पर अस्पताल है, मै या मेरा चपरासी तुम्हे दवा लगवा लाते हैं। पर यहाँ तो रग ढग ही दूसरा था। पत ने उनसे कहा कि गल्ती आपकी है, आपने एल्सेशियन को पतली सी डोरी से बाँध रखा है, यह तो एक बिल्ली का बच्चा भी तोड देता। फिर मोहनसिंह आपके अहाते मे नही आया, अल्सेशियन ने हमारे फाटक के पास आक्रमण किया। गगाप्रसाद पाडेय, महादेवी वर्मा, उनका ड्राइवर, शाता तथा मैं स्वय इस दृश्य के साक्षी है। किंतु पडौसी की समझ मे कुछ बात नही आई। यदि उनका कुत्ता न भी काटता किसी अन्य का काटता तो भी सामान्य सहानुभूति तो व्यक्ति को होनी ही चाहिए। पंत को बहुत ही बुरा लगा—

छोटा-सा लडका, पैर लहूलोहान हो गया है और इन्हे शरम नही आ रही है, "ठीक है, मै भी देख लूँगा, आपके अफसरो को आपकी अशिष्टता के बारे मे बतला कर चैन लूँगा।" और उन्होने डाइरेक्टरी देख कर यथासभव सभी को फोन कर दिया। मुझे यह सब देखकर अच्छा ही लगा—सोचा चलो सदैव अपने व्यवहार मे अति-सचेत रहने वाला सामान्य स्तर पर तो उतरा।

पर दूसरे ही दिन पत को आक्रोश के अनुपात मे ही बुरा लग गया—कहने लगे मै यह सोच नही पा रहा हूँ कि क्यो मुझे गुस्सा आया। यह अपने आप मे अच्छा नही है। एक ही कारण दीखता है, तुम मुझसे कहती हो कि नौकर को डाँट दो, इससे डाँटने का अभ्यस्त हो गया हूँ। मैंने उनसे कहा, तुम जिस ढग से नौकर को टोकते हो उससे वह और धृष्ट हो जाता है। पडोसी पर तुम्हारा बिगडना ठीक था। तुम भारतीय दर्शन की बात करते हो, सतो के गुण गाते हो। किंतु शकराचार्य, रामकृष्ण सभी ने ऐसी नैतिकता को अपनाया है। तुलसी ने भी इसका समर्थन किया है। रामचद्र जी के मुँह से कहलवाया है, 'भय बिनु होइ न प्रीति'। पत अपने ही सिद्धात का समर्थन करने लगे। और पर्याप्त खिन्न हो गए। किन्तु इससे क्या होता है? इसके बाद उन्हे दो बार और क्रोध आया।

१५ जुलाई '६२ से पत ने सृजन फिर से प्रारभ कर दिया। अगस्त-सितम्बर मे मेरी अस्वस्थता सबधी परेशानी थी। १४ सितम्बर को मेरे ट्यूमर का औपरेशन हुआ था। पत सबेरे ९-१० बजे के लगभग अस्पताल आते तो बतलाते कि लिख कर आया हूँ। उनका सृजन उन्मेष तीव्र था। अत वह स्वत. अभिव्यक्त होता रहा। घर का वातावरण शात था। कोई अभ्यागत न था, बिलकुल अकेले ही थे, मैं भी अठारह दिन अस्पताल रही। नवम्बर तक पत ने जी भर कर लिखा। जिस दिन मिलने वाले कुसमय मे नही आते उस दिन २०० से २८० पक्तियाँ लिख लेते। सृजन का स्रोत बद होने का नाम नही लेता, लाचार कमरे से उठ-उठकर बाहर आते, "थक गया हूँ। अब काम नही करना चाहता। पर अपने मानस के लिए क्या करूँ। काव्य-प्रवाह जब रुके तभी तो विश्राम सभव है।" और पत को विश्राम देने के लिए दिसम्बर भर मेहमान रहे। सृजन देवी उन्हे देखकर जो अदृश्य हुईं तो अप्रेल तक आने का नाम नही लिया।

अप्रेल '६३ मे लिखना प्रारभ किया किंतु बाहरी व्यवधानो के कारण गति सामान्य थी। और इस सामान्य गति का अवरोधक हो गया 'हार्ट-अटेक',

२२ अप्रेल को इसका एक हल्का आक्रमण हुआ। अगले अध्याय के लिए पहाड जाना चाहते थे—कौसानी या रानीखेत की प्रकृति का आकर्षण ! वैसे, जहाँ भी एकात स्थल मिल जाए। सामान्यत. गर्मियो मे ३-४ माह पत नही ही लिखते हैं—"इस गर्मी मे लिखने मे कोई सुख नही है। और इलाहाबाद की गर्मी ! न दिन मे चैन, न रात को।" गर्मी से बचने के लिए वे एक-डेढ महीने के लिए अल्मोडा जाते है। सालो से यही क्रम है किंतु इस बार हिमालय की दृष्टिगत छत्रछाया मे रहने का लालच ! मसूरी, रामगढ, नैनीताल रहने के लिए कइयो को पत्र लिखा, मसूरी के किसी होटल के मैनेजर की स्वीकृति भी आ गई पर अचेतन मे रानीखेत-कौसानी छाया हुआ था। कुछ ही वर्ष पूर्व (सन् '५४) मे, १५-२० दिन रानीखेत रहे थे। वही 'अतिमा' मे प्रकाशित 'कूर्माचल' के प्रति' कविता लिखी थी। तब से रानीखेत के हिमालय का सौदर्य भूले नही थे। 'लोकायतन' का प्रकृति-सबधी अध्याय उसी सौदर्योन्मेष मे लिखना चाहते थे। वहाँ रहने की अच्छी व्यवस्था भी हो गई।

२ ता० जून अल्मोडा आ गए। भतीजी (बडे भाई हरदत्त जी की लडकी) की शादी थी। रूढ़िवादी अर्थ मे पत के लिए कन्यादान करना सभव नही था और न उनकी भाभी ही चाहती थी कि उन्हे किसी प्रकार का कष्ट या असुविधा हो। यह तय हुआ कि यदि बडे भतीजे को छुट्टी मिल गई तो वह लखनऊ से आ जाएगा और कन्यादान कर देगा। अन्यथा छोटे भतीजे का सबेरे यज्ञोपवीत कर दिया जाएगा ताकि वह शाम को कन्यादान कर सके। भाग्य से बडा भतीजा और उसकी बीवी आ गए। बरात आने पर जब पत अपने समधी से मिले, तो उन्होने बताया कि वे उनके बचपन के सहपाठी है और साथ ही उन्होने यह इच्छा व्यक्त की कि यदि पत कन्यादान करे तो उन्हे प्रसन्नता होगी। पत को अच्छा ही लगा—आपत्ति हो ही क्या सकती थी, न व्रत करना पडा, न धोती-कुर्ता ही पहिनना पडा। वैसे विधिवत् कन्यादान भतीजे ने ही किया।

३ ता० जून सबेरे बारात बिदा हुई और शाम को पत रानीखेत चले गए। ५ ता० से लिखना प्रारभ कर दिया। २६ ता० जून को चालीस पृष्ठो का अध्याय समाप्त हो गया और वे वापिस अल्मोडा आ गए। यहाँ उन्हे कौसानी की याद आई, वहाँ के हिमालय, वहाँ की घाटियो की। सभी लोग कौसानी जाने के लिए तैयार हो गए—मामा-मामी, भाभी, भतीजिया, भतीजा आदि के जाने के लिए सब व्यवस्था कर ली। पर पानी रुकने का नाम ही नही

ले रहा था। वैसे ही पानी मे कौसानी गए, तीन-चार दिन वहाँ रहे। किंतु पानी एव बादलो के कारण शुभ्र उज्वल हिमालय के दर्शन नही ही कर पाए। फिर अल्मोडा होते हुए ११ जुलाई को प्रयाग आ गए।

जब अल्मोडे से प्रयाग आ रहे थे तो बरेली स्टेशन पर कुछ किसान मिले। पत ने उनके अभिवादन का उत्तर देते हुए हाथ जोडे तथा विनत भाव से कहा, "आप वास्तविक कलाकार है। धरती से अन्न उपजाना महान् त्याग और कर्म का जीवन है। हमारा क्या, कलम घिस ली। धरती की वास्तविकता और सौदर्य तो आप ही है।" किसानो के चले जाने के बाद देर तक वे भारतीय कृषक वर्ग, उसका महत्व, उसकी दयनीय दशा का वर्णन कर क्षुब्ध हो उठे। किसानो के सपर्क मे आने का उन्हे पर्याप्त सौभाग्य मिला है इसलिए वैभवपूर्ण एव आरामप्रद जीवन को वे मन से नही अपना पाते हैं, "ये बडे-बडे भवन, वैभवपूर्ण जीवन लाछन है। जब तक भारत का ग्राम जीवन स्वस्थ और सस्कृत नही हो जाता हमे विशाल भवन, विशाल रेलवे स्टेशन, भव्य इमारतें और दफ्तर, पाश्चात्य विलास मे डूबे होटल और भोजनालय अथवा बडे-बडे नगरो के उत्सव नही चाहिए।" वे विस्तार से ग्रामो का मर्मस्पर्शी दु:खदग्ध चित्रण कर क्षुब्ध हो उठे।

प्रयाग आकर लिखने के लिए मन तैयार हुआ ही था कि सितम्बर अत मे बीमार पड गए। महीने भर 'फ्लू' ने साथ दिया, ९९°-१००° बुखार से थक गए। उससे आशिक मुक्त होकर 'ज्योति द्वार' के ५-६ पृष्ठ लिखे होंगे कि २१ ता० सितम्बर को दिल्ली जाना पडा। फिर ३० सितम्बर से लिखना प्रारभ किया और ८ अक्टूबर को ९० पृष्ठो का अध्याय समाप्त हो गया।

परपरा ने महाकाव्य के क्रमबद्ध लेखन को प्रियजन की मृत्यु के विश्वास अथवा अधविश्वास से युक्त कर दिया है। अपनी समस्त दार्शनिकता-बौद्धिकता के बावजूद पत परम्परा का उल्लघन नही ही कर पाए। उन्होने बीच का एक अध्याय 'ज्योति द्वार' छोड दिया था। अत मे इसी अध्याय को लिखा। ८ अक्टूबर सन् '५९ को 'लोकायतन' का श्री गणेश किया, और सयोगवश वह ८ अक्टूबर (१९६३) को ही समाप्त हो गया। फिर उन्हे आवश्यक प्रतीत हुआ कि किसी को सपूर्ण काव्य दिखा ले। उन्होंने नरेन्द्र जी के लिए लिखा। वे सस्नेह आए, उन्होने आद्योपान्त 'लोकायतन' पढा और उन्हे वह अच्छा लगा। इसके बाद 'लोकायतन' टकित करवाया और प्रकाशक को दे दिया। पत ने इसके पूर्व अपनी कोई रचना टकित नही करवाई थी। वे पहिले एक

कापी मे लिखते हैं और उसके बाद उसमे संशोधन (आवश्यकता प्रतीत होने पर) करते हुए प्रेस कापी बनाते है। 'लोकायतन' के बृहत् आकार के कारण उन्होने उसे घर पर ही टंकित करवाया, किंतु उसके साथ ही यह भी निर्णय कर लिया कि आगे से कोई कृति टंकित नही करवाएगे, "टंकित करवाना सिर दर्द मोल लेना है।"

३० तथा ३१ जनवरी १९६३ को इलाहाबाद मे महादेवी वर्मा ने साहित्यकार ससद् की ओर से एक बृहत लेखक सम्मेलन किया। पता नही क्यो, कुछ लोगो को यह एक सुअवसर दीखा, पत और महादेवी जी के बीच मनोमालिन्य उत्पन्न करने का। महादेवी जी को अकारण भडकाने के लिए विचित्र बातें प्रचारित की गईं। यह कहा गया कि पत दिल्ली है[1]—वहाँ गणतत्र दिवस के कवि सम्मेलन के उपलक्ष्य मे आए हुए साहित्यिको को भडका रहे है कि वे इलाहाबाद के साहित्यिक आयोजन मे भाग न लें।

महादेवी जी दो-तीन माह तक पत के प्रति तटस्थ हो गई। पत को पता तो चल गया कि क्या बातें उनके लिए कही जा रही हैं पर उन्होने महादेवीजी

---

१. पंत आकाशवाणी के कार्यवश (२६ जनवरी के उपलक्ष्य में कवि सम्मेलन) २४ जनवरी '६३ को दिल्ली गए थे, २६ ता० की शाम की गाड़ी से वापिस आने का निश्चय कर चुके थे,* रिजर्वेशन भी हो गया था। किंतु वहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ कि कुछ आवश्यक 'मीटिंग' में सम्मिलित होना है। 'मीटिंग' में ऐसा फँसे कि १ फर्वरी '६३ को वापिस आ सके। २८ ता० को जब वे सबेरे गाड़ी से नहीं उतरे, न कोई सूचना ही मिली तो मुझे भी परेशानी हुई। साहित्यिक आयोजन मे सम्मिलित होने के वे इच्छुक थे, कई साहित्यिको से भेंट होने की आशा थी, इलाहाबाद २८ ता० की सबेरे पहुँचने का वे निर्णय ले चुके थे, फिर उनका न पहुँचना……। पंत के इलाहाबाद आने पर उनसे कहा कि एक तार तो कर ही सकते थे तो कहने लगे, "बाप रे साँस लेमे का तो अवकाश नहीं मिला, तार से कैसे सूचित करता। गल्ती 'मीटिंग्स' के आयोजको की है, पहिले से कोई सूचना ही नहीं दी।" "तो नहीं सम्मिलित होते, कह देते कि सूचना नहीं मिली थी। "मै स्वभाव को लेकर लाचार हूँ। ऐसा कह ही नहीं सकता था।"

*देखिए : 'बच्चन के नाम पंत के दो सौ पत्र', प्रथम सस्करण पृ० ५१ सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली।

से कुछ नही कहा । कहने लगे, "मेरी समकालीन है, वर्षों से जानती हैं, आत्मीयता है, यदि दूसरो की बातो पर विश्वास कर लें तो मैं क्या कर सकता हूँ ।" पर कालक्रम मे महादेवी जी को भडकाने वालो की कुचेष्टा का प्रमाण मिल गया, यही नही, कुछ उनकी भी हानि हो गई । और फिर, एक दिन वे तथा गगाप्रसाद पाडेयजी आए । हँसते हुए महादेवी जी ने विस्तारपूर्वक बाते बताई और कहा कि मेरे आपके बीच फूट डालने की यह एक सुविचारित योजना थी। पत ने दु:ख ही प्रकट किया, इस प्रकार का गदा काम उन्होने कभी नही किया, यह उनका स्वभाव है ही नही, अब बुढापे मे करना तो सभव भी नही लगता है। भला किस के पास समय है कि दिल्ली सरकारी काम से जाओ, उस काम से जिसमे सबेरे से शाम तक व्यस्त रहना पडता है—शरीर और मन थक जाता है—उसके बाद घर-घर जाकर सबसे बेहूदी बातें कहो—उन्हे समारोह मे भाग लेने के लिए मना करो। ऐसी बात सोचकर ही लज्जा आती है । कैसे कोई ऐसी अनर्गल, अवास्तविक बात कह सकता है, क्या आनद मिलता है उसे। पत को आश्चर्य हुआ, फिर ज्योतिष ने जोर पकडा, "बेचारो का क्या दोष ! मेरे ग्रह वक्री हो रहे है । ऐसे मे दोस्त भी दुश्मन हो जाते हैं । अभी देखो, यह ग्रह कितना परेशान करते हैं ।"

फरवरी १९६३ को उनका एक काव्य सकलन 'हरी बाँसुरी सुनहरी टेर' प्रकाशित[1] हुआ । पत के ही शब्दो मे इसमे "मेरे शृगार काव्य के सा रे ग म सकलित हैं ।" यह सकलन राजपाल से प्रकाशित करवाना पत को अच्छा लगा क्योकि वे उनके प्रिय भाई बच्चन के प्रकाशक है ।

सन् '६३ मे भारत सरकार एव सूचना और प्रसार विभाग को प्रबल विरोध सहना पडा—समाचारो की भाषा सस्कृत निष्ठ है, उसे सरल एव उर्दू से युक्त होना चाहिए । हिन्दी मे इस विरोध से रक्षा करने के लिए समाचार विभाग मे बच्चनजी की विशेष नियुक्ति हुई । साथ ही विभागीय स्तर पर एक 'मीटिंग' हुई जिसकी अध्यक्षता उस समय के सूचना-प्रसार मत्री, डा० गोपाल रेड्डी, ने की । पत उर्दू एव किसी भी भाषा के उन शब्दो को स्वीकार करने के पक्ष मे थे जो बोलचाल की हिन्दी मे स्वीकृत हो चुके है यथा सरहद, फौज, मौसम, मीटिंग आदि । जब अध्यक्ष ने क्लिष्ट उर्दू से हिन्दी को युक्त करने की बात कही तो हिन्दी वालो ने विशेषकर श्री रामचद्र टन्डन और अशोक जी ने तर्क-सगत

---

१. प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली ।

आपत्ति की। किन्तु अध्यक्ष ने इनके तर्कों को स्वीकार नही किया, अपने ही मत की पुष्टि की। इस समय पत ने उनका विरोध नही किया। श्री रामचद्र टन्डन का कहना था कि पत के ऐसे व्यवहार से उन्हे बडा आघात पहुँचा। यह सभवत अपने जीवन मे उन्हे पत से पहिली शिकायत थी। मीटिंग से बाहर निकलने पर उन्होने पत से कहा कि उन्होने ऐसी बात कैसे स्वीकार कर ली। पत का शात उत्तर था, "आप घबडाते क्यो है। एक असभव अव्यवहारिक बात रेड्डी साहब कह रहे थे। जिसका विरोध करना भी अर्थहीन होता। मीटिंग तो यो ही थी, सरकार की नीति पूर्व निर्धारित थी। पर आप देख लीजिएगा यह नीति चल नही सकती, सरकार को अपनी नीति बदलनी पडे-गी।"[1] पत का कहना सच निकला।[2] हिन्दी-उर्दू का ऐसा अनमेल प्रसारण हुआ कि उसे कोई भी स्वीकार नही कर पाया। अहिन्दी भाषी प्रदेशो को तो विशेष आपत्ति थी—उनका कहना था कि वे सस्कृतनिष्ठ हिन्दी समझ सकते है, उर्दू-

---

१. टंडनजी के साथ भेंट-वर्ता, अगस्त, '६६

२. हिन्दी को भारत के लिए वे आवश्यक भाषा मानते हैं और उन्हे यह भी विश्वास है कि किसी भी प्रकार का विरोध इसको हानि नहीं पहुँचा सकता, "यदि हिन्दी में क्षमता है तो यह एक दिन विकसित और जनता द्वारा स्वीकृत हो ही जायगी। भ्रांतिपूर्ण विरोध कब तक पनप सकता है।" इसी कारण वे हिन्दी के बारे में विवाद नहीं करते हैं। एक दिन विश्वविद्यालय से आकर मैंने कहा, "पता है, अंबी हिन्दी के विरोध में बोला। वह स्नातकोत्तर कक्षाओ के लिए हिन्दी को शिक्षा का माध्यम स्वीकार करने के विरुद्ध है।" पंत को बुरा लगा, "भाग्य है, मेरा ही बेटा, सगा भतीजा हिन्दी के विरुद्ध बोला।" अंबी (अम्बादत्त पंत, अध्यक्ष राजनीति विभाग) जब पंत से मिलने आया तो मैंने उसे बता दिया कि पंत ने उसके बारें में क्या कहा। पंत ने एकदम बात बदल दी, "मुझे तो याद नहीं है कि मैने ऐसा कहा। मै तो इससे कह रहा था कि तुम हिन्दी प्रेमी हो। अपनी पुस्तकों में अपना नाम हिन्दी में लिखते हो।" बाद को मुझसे कहने लगे, "क्या फायदा उससे कुछ कह कर, व्यर्थ में मेरे सामने उसे संकोच हो रहा था। पढ लिख लिया तो क्या हुआ, अपने देश, उसकी संस्कृति और आवश्यकताओं को न समझना अच्छी बात नहीं है।"

निष्ठ नही। वे सस्कृतनिष्ठ हिन्दी मे ही समाचारो का प्रसारण चाहते थे क्योकि सस्कृत अधिकाश भाषाओ की पीठिका है।

१६ फर्वरी, सन् १६६४ मे पत पाडिचेरी गए और ४ मार्च को इलाहाबाद वापस आ गए, आश्रम जाना उन्हे अच्छा ही लगता है। इस वर्ष का विशेष महत्व था, यह लीप इयर था। पुराणीजी ने लिखा था कि इस अवसर पर, २१ फरवरी के दर्शन दिवस पर, वे अवश्य पाडिचेरी आए। 'लोकायतन' छप रहा था, पहिले उसकी टंकित प्रति देखी, अब प्रूफ देख रहे थे। सोचा अच्छा रहेगा, पाडिचेरी जाने से बदलाव हो जाएगा और प्रूफ भी देख लेगे। पुराणी जी अस्वस्थ रहते है। अब वे तो इलाहाबाद आ नही पाएगे। इसलिए उनसे मिलने भी पाडिचेरी जाना था। मैं बहुत चाहती थी कि पत मई मे पाडिचेरी जाए ताकि मै भी अपने पितृ तुल्य पुराणी जी के दर्शन कर सकूं। किन्तु पत ने तब तक रुकना उचित नही समझा क्योकि लीप इयर की फर्वरी का दर्शन विशिष्ट दर्शन माना जाता है। पुराणी जी चाहते थे, और साथ ही पाडिचेरी जाने के लिए उन्हे मेरी सहेलियो प्रीतिलता अदावल तथा मीरा श्रीवास्तव का साथ मिल गया तथा सबसे महत्वपूर्ण यह था कि उनके मन ने निर्णय ले लिया था। अच्छा ही हुआ वे पुराणी जी से मिल आए थे क्योकि लग भग दो साल बाद[1] हृद्गति रुकने से उनका देहावसान हो गया।

६ अप्रेल १६६४ को 'लोकायतन'[2] छप गया और उसका दिल्ली मे ग्रथ-विमोचन मैथिलीशरण गुप्त जी ने किया। पत इस उपलक्ष्य मे दिल्ली गए। फिर १५ मई '६४ को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के कास्य वक्ष का उद्घाटन करने काशी गए।[3] १५ ता० की शाम इलाहाबाद वापिस आ गए। २५ मई को रानीखेत चले गए फिर वहाँ से अल्मोडा होते हुए दो जुलाई को इलाहाबाद वापिस आ गए।

---

१. ११ दिसम्बर '६५

२ बाद को ओंप्रकाश जी (राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली) ने इसके 'प्रथम खण्ड : बाह्य परिवेश' के अतर्गत 'जीवन द्वार' का 'मुक्ति यज्ञ' परिच्छेद अलग से खण्ड काव्य के रूप मे भी प्रकाशित कर लिया। इसका नाम 'मुक्ति यज्ञ' ही है।

३. नागरी प्रचारिणी सभा ने यह आयोजन किया

१२ अगस्त '६४ को मैं एक-डेढ महीने के बिल्ले को घर ले आई। उसका नाम था राजू, पत उसके प्रति जो मोहासक्त[1] हुए कि घर भर की शामत आ गई। दो नोकरानियो को निकाल दिया क्योकि उन्हे लगा कि उनकी अनुपस्थिति मे राजू की ठीक से देखभाल नही की गई। कितना ही उन्हे समझाया कि राजू दो-दो, तीन-तीन दिन तक गायब रहते थे, जब हम यहाँ रहते है तब भी गायब रहता है किन्तु युगो से सतान के लिए प्यासी माँ और राजू-सा कुपुत्र! राजू ताजा दूध पीते थे, ताजा गोश्त, यह न मिला तो दिन भर भूखे लेटे रहते या घर से गायब हो जाते। कितना परेशान होना पडा, उसे ताजा दूध और गोश्त देने के लिए। एक बार जब इलाहाबाद मे गोश्त वालो ने हडताल कर दी तो पत ने मुझे घर मे बैठने ही नही दिया। न जाने किन-किन दुकानो मे भटकना पडा। दिल्ली मे अखबारो मे पढने पर कि इलाहाबाद के गोश्त-वालो ने हडताल कर दी है स्वय भी वे दिल्ली से एक सेर गोश्त लाए थे। जाडो मे रात को न जाने कितनी बार वह दरवाजा खुलवाता था, छत पर बैठ कर आधी रात को म्याऊँ-म्याऊँ करके तब तक आफत कर देता था जब तक कि उसे बेत की कुर्सी ऊपर उठाकर नीचे न उतार दे।

पत ने राजू पर एक निबध लिखा जो 'साठ वर्ष और अन्य निबध', मे सकलित है।[2] एक कविता, 'राजू' भी 'शखध्वनि' मे सकलित है। इसके

---

१. पंत की मोहासक्ति को उन्हीं की कविता की 'पेरोडी' व्यक्त करती है :

> तुम्हारी आँखों में ही प्राण,
> हृदय बसता नीरव अनजान !
> बाँध मेरे प्रेमी उर को
> चमकती गोल, प्रपचभरी,
> तुम्हारी आँखो की स्मित ज्योति,
> विरह में कलप, तड़पता मन !
> हाय यह व्यथा पूँछ में बँधी
> मुझे पागल करती दिन रात।

२. राजू के प्रेम में पंत के अनेक उद्गार हैं, कुछ दे रही हूँ, "मैं वीतराग नहीं हूँ। अपने पुसुआ को प्यार करता हूँ।" और उन्होंने दोनों हाथों से पुसुआ को उठा छाती से चिपका लिया। "पुसुआ जी आप रानीखेत

अतिरिक्त भी उन्होने राजू के व्यक्तित्व को दिव्योपम बनाकर, हास्य-व्यंग्य का पुट देते हुए, एक कविता लिखी थी (प्रकाशित कराने के लिए नही, अपने

चलते तो बड़ा मजा आता। खाने की मेजपर एक कुर्सी आपके लिए भी लगवा देता, साथ-साथ खाते।" "छि: पुसुआ का भी कहीं जूठा होता है। कल मैने अपनी प्लेट मे ही खिलाया था। मै तो इसका छोडा दूध पी लूँ पर तुम नारज जो होगी।"

'जब मै पुसू-पुसू कहता हूँ तो (मेरे) भीतर से म्याऊँ-म्याऊँ सुनाई देती है।"

"पुसुआ जी आपका कोई कसूर नहीं है। यह आपकी नाक है जो बड़ी तेज है और आपको बासी नहीं खाने देती।" पत पुसुआ को छोड़कर रानीखेत गए थे। वहाँ उन्होने कहा, "इस बीच पुसू ने बड़ा सताया। बड़ी याद आई, तकलीफ हुई। फिर मैने हिम्मत करके उसे अलग कर दिया—तब बड़ी कठिनाई से लिख पाया। बेचारा म्याऊँ-म्याऊँ करके मुझे याद करता है।"

"यह पुसुआ की बहुत बुरी आदत हो गई है। ताजा खाना नहीं खाता है। आधी रात को आता है। खैर मेरी तो उसे छत से उतारने की आदत पड़ गई है। पर उसके लिए बुरा हुआ। तन्दुरुस्त नहीं रह पाएगा।" "पगलुआ है, ४८ घण्टे हो गए हैं, खाना नहीं खाया है। मेरा मन कहता है आज रात को जरूर आएगा। पहिले बुक्की (प्यार) लूँगा तब खाना दूँगा। मेरे साथ सो रहता, कितने प्यार से सुलाता।"

"जब पक पूँछ तक दूध नहीं पहुँच जाता है तब तक पीता है। कितनी अच्छी पूँछ है।" अक्सर वे पूछ को प्यार करते, देर तक हाथ फेरते।

"तुमने बाहर की रोशनी क्यो बंद कर दी। जा कर जला आओ। पुसुआ के आने का समय है। अँधेरा देखेगा तो बुरा लगेगा, सोचेगा मेरी उपेक्षा करते हैं।" "देखो पुसुआ को कितनी अक्ल है। निश्चितता से सो रहा है। जानता है यह उसी का घर है, हम तो उसके टहलुए हैं।" "रात का निमंत्रण में हरगिज स्वीकार नहीं करूँगा। पुसुआ जी आएंगे। खिला तो आया भी देगी, पर वह उसे अच्छा नहीं लगेगा। वह सेवाभाव का प्रेमी है।"

मनोविनोद के लिए) जो मैंने चुपचाप उतार कर रख ली थी कि अवसर मिलने पर प्रकाशित करवा दूंगी। अब जब इस पुस्तक के लिए खोजी तो वह खो गई है।

'लोकायतन' का प्रकाशन एक घटना बन गया। वह अपने साथ उस धुध और अधड को लाया जो अपेक्षित ही था। जीवन बोध एव 'युग जीवन की भागवत कथा' का काव्य चुपचाप उपेक्षित पडा रहे, वह कुछ लोगो को झकझोरे नही, तिलमिला न दे तो वह निष्प्राण ही माना जाएगा।

इलाहाबाद मे २६ जनवरी १६६४ को 'विवेचना' नामक साहित्यिक सस्था की स्थापना हुई जो मुख्यत. साहित्य के उचित मूल्याकन के उद्देश्य से

"पुसू यदि पहिनता तो शेर की खाल का कोट और टोपी बनवा देते। बापरे, फिर लोग देखकर डरते।" राजू जिन दिनो खाना ठीक से खाता था—शेर का बच्चा ही लगता था। बेहद गुस्सैल भी था। पंत ने उसके लिए जाड़ो में कपड़े भी बनवाए, पर बिल्लू तो बिल्लू। "आया बेटा आया, बस आ गया। जरा चप्पल और (गरम) ड्रेसिंग गाउन पहिन लूं। अच्छा ले, ऐसे ही आता हूँ। कहाँ था तू इतनी देर तक, अपना ख्याल भी नहीं करता। देख कितना दुबला हो गया है।"

"तुमने मुझसे कुछ कहा—अरे मैं अभी तक अपने पुसू से ही बात कर रहा था। कैसा भोला है, नादान, अपनी चिंता ही नहीं करता।"

पंत रानीखेत थे और मैं अल्मोड़ा। रानीखेत से उन्होने कहलवाया "कि वे २६-३० जून तक अल्मोड़ा पहुँचेंगे। वहाँ से ४ जुलाई (१६६७) को इलाहाबाद चलेंगे। पर वे एकाएक २४ जून को अल्मोडा आ गए। मालूम हुआ कि इलाहाबाद से जोशी जी (हमारे पड़ौसी) का पत्र आया है कि राजू दुबला हो गया है। "चिट्ठी मिलने पर मै दो रात से सो नहीं पाया हूँ। उसी की उदास आँखें दीखती हैं।" फिर हम लोग २५ जून को वहाँ से इलाहाबाद के लिए रवाना हो गए।

"विद्यापति ने भगवान् के लिए कहा :

'जनम जनम तव रूप निहारनु,
लोचन तृपित न भेल।

वैसे ही हमारे पुसुआ जी हैं।

तथा देखिए : 'बच्चन के नाम पंत के दो सौ पत्र', पृ० १६६-२४८

प्रेरित थी। इसके सस्थापक सदस्यो मे इलाहाबाद का साहित्यिक वर्ग था—सर्वश्री वाचस्पति पाठक, विजयदेवनारायण साही, जगदीश गुप्त, लक्ष्मीकात वर्मा, केशवचद्र वर्मा, रघुवश, रामस्वरूप चतुर्वेदी, अमृतराय, गगा प्रसाद पाडेय, इलाचद्र जोशी, सत्यव्रत सिनहा, सुरेन्द्रपाल सिह, नरेश मेहता, उपेन्द्रनाथ अश्क, बालकृष्ण राव और उमा राव। विश्वम्भर 'मानव' और प्रकाशचद्र गुप्त ने भी विवेचना की गोष्ठी का सदस्य बनना स्वीकार किया। पत उसके सम्मानित सदस्य थे। 'विवेचना' के निबध और गोष्ठी प्रसग 'माध्यम' मे विवेचना स्तभ के अतर्गत छपने लगे।

'विवेचना' का वार्षिकोत्सव १० अप्रेल १९६५ को मनाया गया और ११ अप्रेल को पहिले श्रीमती उमा राव (सयोजक) के घर मे 'सयोजन-समिति' तथा 'चयन-समिति' के सदस्यो का चुनाव हुआ[1] और तत्पश्चात् "सायकाल ६ बजे एनी बेसेंट हॉल मे श्री बालकृष्ण राव की अध्यक्षता मे विवेचना की सामान्य गोष्ठी हुई जिसमे डाक्टर सावित्री सिन्हा ने 'लोकायतन' पर समीक्षात्मक निबध प्रस्तुत किया।" इसके बाद विश्वम्भर मानव तथा डा० वीरेन्द्र सिह ने अपने विचार व्यक्त किए। इतने मे श्री लाल शुक्ल ने जो विजयदेव नारायण साही और केशव चन्द्र वर्मा के पीछे बैठे थे, चीखा, "साही कुछ कहना चाहते है।" "श्री विजय देवनारायण साही ने अपने स्थान पर ही उठकर केवल इतना कहा कि "मैने लोकायतन पढा नहीं है, और न पढ़ूँगा।" "श्री साही के इस कथन पर श्री प्रभात शास्त्री और गगाप्रसाद पाडेय के आपत्ति करने पर उन्होंने तुरत अपने वाक्य का अतिम अश वापिस ले लिया।" डा० रामदरश मिश्र, डा० जगदीश गुप्त, डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी और श्री इलाचंद्र जोशी ने भी अपने विचार व्यक्त किए। श्री जोशी के अतिरिक्त प्रायः सभी ने लोकायतन का विरोध किया। तत्पश्चात् पत ने अपना अभिमत व्यक्त किया। लोगो के आक्षेपो का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि मैने युग मानव के लिए

---

१. "उसकी (विवेचना) व्यवस्था के लिए तीन व्यक्तियो की संयोजन-समिति बनायी गयी और पुस्तको और समीक्षकों का चयन करने के लिए ५ व्यक्तियो की चयन-समिति बनाई गई। यह निर्णय हुआ कि हर वर्ष इन समितियों के सदस्यों का चुनाव होता रहेगा।"

'विवेचना' संकलन-२, संयोजक उमा राव, प्रकाशक भारती भण्डार, इलाहाबाद, पृ० ३

एक मदिर का निर्माण किया है, सत्यम् शिवम्, सुदरम् के उपकरणो से। इस सत्य के प्रति आँख मूँद कर यदि कोई कहे कि इसमे 'बाथरूम' नही बना है तो लाचारी है।[1] "मैने चेतना के ज्ञान पक्ष और सकल्प-पक्ष का उद्घाटन किया है। साही जी की वापिस ली हुई बात को लक्ष्य करके पत जी ने कहा, वैसे मैं जानता हूँ कि इस समय 'लोकायतन' को स्वीकार नही किया जायगा। इस समय तो लोग जासूसी उपन्यास और प्रेम कथाएँ पढेगे।" फिर डा० सावित्री सिन्हा ने उठाए गए प्रश्नो का सक्षेप मे उत्तर दिया, अध्यक्ष पद से श्री बालकृष्ण राव बोले और अत मे सयोजिका श्रीमती उमा राव ने गोष्ठी का समापन किया।[2]

---

१. "पंत भाषण बहुत अच्छा दे सकते हैं। 'विवेचना' की गोष्ठी में वे बहुत अच्छा बोले। जब उन पर आलोचकों के ढेरों आक्रमण हुए तो उन्होंने जो उत्तर दिया वह अविस्मरणीय रहेगा—मैंने तो मंदिर बनाया है। आप 'लेटरीन' खोज रहे हैं।

उपेन्द्रनाथ अश्क से 'भेंट-वार्ता'।

२. 'विवेचना' संकलन-२, संयोजक उमा राव, प्रकाशक भारती भण्डार, इलाहाबाद, पृ ३६-४७ तथा श्री राव से भेंट वार्ता १६-६-६६

"A few years ago some Hindi writers organised a meeting in Allahabad to discuss Pant's latest book. He too was invited. A couple of writers denounced and debunked his great work devastatingly. They said what they liked. An officer who had attended that meeting told me that it appeared that some writers had organised a literary "gherao" of the poet and were determined to give him a brutal "literary thrashing" that day. I wanted to know how Pant took it and what he had to say in reply to his critics. I was told that he stoutly defended, for a while, his high class literary work and then asked, "Suppose someone makes a beautiful temple and some critics denounce it for not having a bath room there then what reply can

लोकायतन पर समीक्षात्मक निबध पढे जाने के बहुत पूर्व अथवा विवेचना की प्रथम गोष्ठी मे (२३ फरवरी १९६४) डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी की पुस्तक, चारु चद्रलेख पर डॉ० देवीशकर अवस्थी ने समीक्षात्मक निबध पढा। उस गोष्ठी मे पत सम्मिलित नही हो सके क्योकि वे दिल्ली मे थे। अमृत राय और सुधा राय के साथ मैं उस गोष्ठी मे गई, घर आकर हम सभी ने यह दु:ख के साथ अनुभव किया कि जिस अपेक्षित वातावरण की आशा से हम गए थे, वह वहाँ नही था। गर्मियो मे डा० अवस्थी जब पत से रानीखेत मे मिले तो मैं विना उन्हे टोके रह नही पाई। मेरी आपत्ति थी कि द्विवेदी जी की कृति के भावात्मक पक्षो को ठीक से उभारा नही गया। 'लोकायतन' पर विचार गाष्ठी मे भी वही बात अथवा उससे अधिक ही बात होगी, इसका पूर्वाभास मिल चुका था।

"विवेचना ने १० अप्रेल, १९६५ को वार्षिक उत्सव के उपलक्ष मे एक विशिष्ट गोष्ठी का आयोजन किया था जिसमे हिन्दी आलोचना की वर्तमान स्थिति पर विचार हुआ। गोष्ठी मे डा० रामदरश मिश्र ने निबध पढा और डा० देवराज ने अध्यक्षता की। डा० नामवर सिंह ने आमत्रित अतिथि के रूप मे गोष्ठी मे भाग लिया।" इसी वार्षिकोत्सव मे एक साहित्यिक सम्मिलित हुए थे, पत मे कह गये थे कि लोकायतन की गोष्ठी मे उनका न जाना ही ठीक होगा, और साथ ही कि स्वय वे ११ ता० की गोष्ठी मे सम्मिलित होने के लिए इलाहाबाद नही रुकेगे। किंतु पत ने दृढ आस्था, पावन उद्देश्य और गहन अनुभूति के साथ अपने काव्य का सर्जन किया था—वह हजारो का वार सहने को तैयार थे। जब ओखली मे सिर दिया है तो फिर डरने की क्या बात है, लेखक को तो आलोचनाओ का स्वागत ही करना होता है।

११ ता० अप्रेल की शाम हमलोग एनी बेसेन्ट हॉल के दरवाजे के पास पहुँचे कि उसके कुछ सस्थापक सदस्य उदास दीखे। पता चला कि 'सयोजन समिति' और विशेष रूप से 'चयन-समिति' के चुनाव ने उन्हे दुखी किया है।[1]

---

be given to such criticism ?" The reply must have gagged the critics" P. D Tandon. National Herald Sunday July 14, 1968

१. "उपस्थित सदस्यो को श्री बालकृष्ण राव ने बताया कि ११-४-'६५ को एनी बेसेंट हॉल में 'लोकायतन' संबंधी गोष्ठी शुरू होने के ठीक पहले उनकी श्री गंगाप्रसाद पांडेय से बातचीत हुई थी। श्री पांडेय ने प्रायः आधा

इसी से युक्त हो गया 'लोकायतन' पर विचार-विनिमय । आलोचना अपने आप मे स्वस्थ है यदि सगठित रूप से किसी को नीचा दिखाने के अभिप्राय से न की जाए । एनीबेसेन्ट हॉल का उस दिन का वातावरण जो सामान्य श्रोता थे उन्हे तक बुरा लगा । पत के पास बाद को न्यायाधीश द्विवेदी तथा श्री शर्मा (आई० सी० एस०) और कुछ अन्य साहित्य प्रेमी आए । इनका साहित्य या साहित्यिक प्रतिबद्धता से कोई सबध नही है, केवल साहित्य प्रेमी हैं और इस कारण दूषित साहित्यिक वातावरण देखकर उन्हे दु ख हुआ क्योकि यह हिन्दी की प्रगति के लिए उन्हे घातक लगा । 'लोकायतन' पर आयोजित गोष्ठी ने उन्हे प्रगतिवादियो और प्रयोगवादियो के पत के प्रति विरोध की याद भी दिलाई ।

व्यक्तिगत स्तर पर पत का जो भी दृष्टिकोण हो किंतु इस समय तो सभी की सम्मिलित भावना की बात थी, जिसके औचित्य पर सदेह नही किया जा सकता । अत विवेचना से जिन लोगो ने सयुक्त होकर २१ अप्रेल को त्याग पत्र दिया[1] उनके नाम इस प्रकार है—सर्वश्री अमृत राय, इला चद्र जोशी, गगा-

---

घण्टा पहले हुए चयन-समिति के चुनाव का उल्लेख करते हुए उस चुनाव से अपना घोर असतोष ही नहीं प्रकट किया, यह भी कहा कि "अब हम लोग 'विवेचना' छोड़ देंगे–मैं, अमृत, और जोशी जी ।"

'विवेचना' : एक पत्राचार
माध्यम, जुलाई १९६५,

विवेचना की ओर से
उमा राव
संयोजक

१. "हमे बड़ा दुःख है कि वर्ष भर 'विवेचना' के सदस्य रहने व अन्य रूपो से उससे संबद्ध होने और उसकी रीतिनीति को निकट से देखने और समझने के बाद, हमें विवश होकर उससे संबद्ध विच्छेद करना पड़ रहा है ।

'विवेचना' की स्थापना के समय उसके प्रवर्तको ने हमसे कहा था, और यही हमने समझा था कि इस गोष्ठी की स्थापना साहित्य-विवेचना के स्वस्थ मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए और उनके आलोक में हिन्दी साहित्य की अधुनातन श्रेष्ठ उपलब्धियों के आकलन-विवेचन द्वारा सामान्य हिन्दी

प्रसाद पाण्डेय (सस्थापक सदस्य), सर्वश्री विश्वम्भर 'मानव', प्रकाशचद्र गुप्त और केशव प्रसाद मिश्र (गोष्ठी सदस्य) तथा सुमित्रानदन पत (सम्मानित

प्रेमियो की साहित्यिक रुचि को जगाने और परिष्कृत करने के उद्देश्य से की जा रही है। स्वभावतः यह घोषित उद्देश्य हमको हर प्रकार से अभि-नदनीय लगा और हमने सहर्ष 'विवेचना' के सदस्य बनना और उससे संबद्ध होना स्वीकार किया।

किंतु बड़े खेद के साथ हमको कहना पडता है कि कार्यतः हमने स्थिति इससे बहुत भिन्न ही नही, बिलकुल इसके विपरीत पायी। पहली गोष्ठी से ले कर अंतिम गोष्ठी तक का सारा अनुभव साक्षी है। उसके आधार पर हम निस्संशय कहना चाहते हैं कि बाह्यतः उसको जितना भी व्यापक रूप दिया गया हो, भीतर ही भीतर उसके नीति-निर्धारक सुचिंतित और सग-ठित रूप से 'विवेचना' को अपनी शक्ति भर उस दलदल, सकीर्ण, एकांगी और तथाकथित 'आधुनिकता' वादी साहित्यिक दृष्टि के प्रचार और प्रसार का मच बनाते रहे हैं जो मात्र व्यक्तिकुंठा के साहित्य को श्लाघनीय और स्वस्थ, मानवतावादी, जीवनधर्मी, समाजपरक साहित्य को नितात तिरस्करणीय मानती है। समीक्षा के लिए पुस्तको का चयन उनकी लोक-प्रियता या महत्व को दृष्टि में रख कर ही किया जाता रहा, पर उनके लिए समीक्षको का चयन करते समय दृष्टि सभवतः उतनी अनाविल नहीं थी अन्यथा, केवल उदाहरण के लिए, श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यास 'चारु चंद्रलेख', श्री अमृतलाल नागर के उपन्यास 'बूँद और समुद्र', श्रीहरि वंश राय 'बच्चन' के काव्य-संकलन 'अभिनव सोपान', श्री मोहन राकेश के उपन्यास 'अँधेरे बंद कमरे' और श्री राम विलास शर्मा की भाषाशास्त्र की पुस्तक 'भाषा और समाज' की ऐसी एकागी छिद्रान्वेषी, पूर्वग्रह से आक्रात समीक्षाएँ 'विवेचना' में न पढ़ी जातीं, जिनसे स्पष्ट है कि उनका उद्देश्य समीक्ष्य कृतियो के प्रति न्याय करना नहीं, नीर-क्षीर विवेक नहीं (जैसा कि स्वस्थ समीक्षा की परंपरा रही है) और सामान्य हिंदी-प्रेमियो की साहित्यिक रुचि को जगाना और परिष्कृत करना भी नहीं (जैसा कि 'विवेचना' की मूल प्रतिज्ञा थी) बल्कि उन कृतियों को निम्न कोटि की रचना सिद्ध करना मात्र रहा है।

इतना ही नही, समीक्षा-निबंध के उपरांत होने वाली गोष्ठी-चर्चा में दृष्टि की यही दलगत संकीर्णता, बहुत बार (भले गोष्ठी के प्रकाशित कार्य-

सदस्य)। इन लोगो ने यह भी आपत्ति की कि विवेचना के निबध और गोष्ठी प्रसग हिन्दी साहित्य सम्मेलन की पत्रिका माध्यम मे नही छपने चाहिए क्योकि हिन्दी साहित्य सम्मेलन की पत्रिका का उद्देश्य हिन्दी का प्रचार और प्रसार है।[1]

विवरण मे से उनको निकाल दिया जाता हो) प्रतिष्ठित लेखको के प्रति कहे गये ऐसे अपशब्दो और फूहड कटाक्षो का रूप भी ले लेती है जिन्हे हम किसी भी साहित्यिक गोष्ठी के लिए घोरतर कलक मानते हैं क्योकि हमारा विश्वास है कि निर्भीक विवेचना और असस्कृत आचरण एक ही वस्तु नहीं है। और इस प्रसग में सबसे अधिक आश्चर्य तो हमे इस बात का है कि हिंदी की संवर्द्धना में लगी हुई हिंदी साहित्य सम्मेलन जैसी संस्था (जिससे 'विवेचना' 'माध्यम' के नाते सबद्ध है) के एक वरिष्ठ पदाधिकारी के सभापतित्व में भी गोष्ठी के भीतर इस प्रकार का अनाचार निरकुश रूप से होने दिया जाता है।

ऐसी स्थिति में हम आपको सूचित करना चाहते है कि अब 'विवेचना' से किसी प्रकार का संबंध रखना हमारे लिए सभव न होगा।"

१ "उसी प्रकार हमें इस बात का भी आश्चर्य है कि आपकी समझ में हमारी यह मोटी सी बात कैसे नहीं आयी कि हिंदी साहित्य सम्मेलन जैसी सस्था से संबद्ध एक गोष्ठी के लिए सम्मेलन की रीति-नीति या कम से कम उसकी मर्यादा का थोड़ा-बहुत ध्यान रखना आवश्यक है। हिन्दी साहित्य-सम्मेलन हिंदी की संवर्द्धना में लगी हुई एक सार्वजनिक संस्था है। उसी के पैसे से चलने वाली एक गोष्ठी मे और उसी के साहित्यिक मुखपत्र के माध्यम से हिंदी साहित्य को हर महीने ऐसे कुत्सित और हीन रूप मे हिंदी-भाषियो और उससे भी अधिक अहिंदी-भाषियो के आगे, चित्रित किया जाय—और ऐसे समय में जब कि हिंदी विरोधी लोग यो ही हिंदी साहित्य की हीनता का ढिंढोरा पीट रहे हों, इसमें आपको भले ही कोई अनौचित्य न दिखायी देता हो, हमें तो निश्चय ही दिखायी देता है, और अपने पत्र मे हमने इसी की ओर संकेत किया था। ऐसा करते समय हमारा उद्देश्य सम्मेलन के अधिकारियों की कोपदृष्टि 'माध्यम' की ओर अथवा व्यक्तिगत रूप से श्री बालकृष्ण राव की ओर आकृष्ट करना नहीं, स्थिति के एक सहज सत्य की ओर ध्यान दिलाना मात्र है। यदि वह भी आपको अशोभन जान-

साहित्यिक आलोचना, दलबदी, पार्टी प्रतिबद्धिता ने पत को सोचने और समझने की सामग्री प्रदान की है, इससे उन्हे दृढता ही प्राप्त हुई। किन्तु इस बार बात नितात दूसरी थी। श्री राव पर वे बहुत स्नेह रखते हैं, वे सदैव

पडता है तो हम आपकी व्याख्या के अनुसार और आपके ही शब्दों में इसे आपकी 'रुग्ण मनोदशा और दूषित दृष्टि का परिचायक' समझने के लिए बाध्य हैं।

हमे प्रसन्नता है कि आपने एक संदर्भ में हिंदी जगत को निर्णायक मानने की बात कही है। हम आपके प्रस्ताव का हृदय से समर्थन करते हैं। अब यही उचित है कि हिंदी जगत के सामने सभी तथ्य रखे जायँ—गोष्ठी-प्रसंग में चलने वाले ये उच्छृंखल, कुरुचिपूर्ण कटाक्ष भी, जो 'माध्यम' में प्रकाशित विवरण में नही आने दिये जाते पर जिनके हमीं नहीं और भी बहुत से साक्षी है—और फिर देखा जाय कि हिन्दी जगत इस पर अपना क्या निर्णय देता है।

ऐसी स्थिति में अब इस पत्राचार को नितांत अनुपयोगी जान कर हम यहीं समाप्त करते हैं·· ·।"

६-५-'६५ का पत्र, संयोजक विवेचना के नाम से।

तथा "प्रायः एक वर्ष पूर्व प्रयाग में श्री बालकृष्ण राव ने 'विवेचना' नामक एक साहित्यिक संस्था की स्थापना की थी···· । श्री राव 'माध्यम' नामक साहित्यिक पत्र के सम्पादक भी हैं जिसे सम्मेलन प्रकाशित करता है। ··· ···गत मास के 'माध्यम' में प्रायः २६ पृष्ठ केवल 'विवेचना' की बैठको के विवरण, उसमें पढ़े गए लेखों आदि के प्रकाशन आदि के लिए दिए गए थे। लोगो की निगाह में माध्यम 'विवेचना' का मुखपत्र सा हो गया है ।··· ···

'विवेचना' के उद्देश्य से हम सहमत हैं·· ··। किंतु कहा गया है कि इतना ही पर्याप्त नहीं है कि न्यायाधीश न्याय करे, साथ ही यह भी आवश्यक है कि वह इस प्रकार न्याय करे कि लोगों को विश्वास हो जाए कि वास्तव में न्याय किया जा रहा है।··· ···यह सिद्धांत समीक्षकों पर भी लागू है। किन्तु ऐसा मालूम होता है कि प्रयाग के अनेक साहित्यकार 'विवेचना' को निष्पक्ष नहीं समझते।··· ···

वास्तव मे आज का नया साहित्यिक कुछ-कुछ उन लोगों की तरह है जिन्हें अंग्रेजी मे "एेंग्री यंगमैन' कहते हैं। वह मूर्ति भंजक (आइकोनोक्लास्ट)

उनके स्नेह भाजन रहे है और श्री राव के ही कारण अथवा ऐसे भी वे उमा राव को अच्छा मानते है। उमा राव ने देवीदत्त जी की मृत्यु के समय पत को जितनी समवेदना दी, उनका ध्यान रखा, उससे वे पत के मन मे उनके परिवार की ही सदस्या थी। यदि यह गोष्ठी श्री राव की अध्यक्षता एव उमा राव के सयोजकत्व मे नही होती तो कम से कम पत को दुःख नही होता। "विवेचना वालो से अकारण ही मेरे वर्ष प्रवेश के दिनो मे जो मतभेद एव वैमनस्य उठ खडा हुआ है उसके कारण हृदय की एक नाडी मे कही दुःख-ताप भी है। मेरे जीवन मे तो ऐसा पहिली बार हुआ।"[1]

किंतु फिर भी पत के मन ने किसी प्रकार की कुठा, द्वेष को प्रश्रय नही दिया।[2] यह सच है कि तथ्य की बाते उन्होने की पर राव दम्पति के प्रति

हैं। अधिकांश वह मूर्तिभजन का काम अकेले करता है, किंतु यदि उसे किसी महमूद गजनी का नेतृत्व प्राप्त हो जाए तो वह सामूहिक अभियान करके साहित्य के कितने ही सोमनाथो और बड़े प्राचीन मंदिरो मे प्रतिष्ठित मूर्तियो को चकनाचूर कर दे। मालूम होता है कि 'विवेचना' में भी 'मूर्तिभंजन' की कुछ प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई है। पिछली बार जब हम प्रयाग गए तब विवेचना की उस बैठक मे उपस्थित उसके एक प्रशंसक ने हमसे कहा कि "पंत जी को बैठाकर उनकी अच्छी 'मजम्मत' की गयी। ... 'विवेचना' में जो लोग हैं उन्हे भी हम जानते हैं। व्यक्तिगत रूप से वे सब शिष्ट और सहृदय हैं। किंतु शायद उनकी शैली में कहीं कोई ऐसी बात है कि जिससे उनके सदाशय को लोग दुराशय समझने लगते हैं। ...किंतु इस विवाद में जो बात उभर कर सामने आयी है वह यह कि 'विवेचना' और 'माध्यम' को लोग 'अभेद' समझने लगे है। यह 'अद्वैत' सम्मेलन के लिए हानिकारक है। सम्मेलन की पत्रिका किसी विचार या दल-विशेष की पत्रिका नहीं होनी चाहिए। हमारी सम्मति में 'विवेचना' को अपनी पत्रिका अलग निकालनी चाहिए।... ...सम्मेलन को इस संबंध में अपनी नीति स्पष्ट कर देनी चाहिए।"

श्रीनारायण चतुर्वेदी : सम्पादकीय, सरस्वती, जून १९६५ पृ० ४३९-४४०

१. बच्चन : पंत के दो सौ पत्र, पृ० १९८ तथा देखिए पृ० १९४-१९७

२ बच्चनजी ने जब १९७१ में पंत के उन पत्रों को छपवा दिया जिनमें उनकी विवेचना के प्रति तात्कालिक प्रतिक्रिया थी तो उन्हें बुरा लगा।

सहज स्नेह भी रखा। इस घटना के कुछ महीनो बाद जब उमा राव ने पहली बार फोन किया कि वे चदा मागने आ रही है तो पत ने सहर्ष वाछित राशि का चेक उन्हे दे दिया। १९ सितम्बर '६९ को जब श्री राव से मैंने विवेचना गोष्ठी के बारे मे बातचीत की तो उन्होने कहा कि उन्हे स्वय बातें अच्छी नही लगी यद्यपि उन्होने उनका स्पष्ट विरोध भी नही किया क्यो कि विवेचना के मुख्य कार्यकर्ता वाचस्पति पाठक और उमा राव थी, ऐसे मे विरोध का अर्थ होता उनकी स्वतत्र कार्यवत्ता का अपहरण।"यद्यपि विवेचना की यह नीति थी कि गोष्ठी मे रचनाकार की उपस्थिति होनी चाहिए ताकि विवेचक स्पष्ट होते हुए भी परम दायित्वपूर्ण ढग से विवेचना करे पर मैं नही चाहता था कि लोकायतन पर निबध पाठ एव विवेचन होते समय पत जी उपस्थित रहे। मैंने यह कहा भी, फिर चुप ही रहना ठीक समझा।" यह एक गोष्ठी विशेष की बात थी, एक दल विशेष की जो रचनाकार की उपस्थिति चाहता था। लोकायतन गोष्ठी मे हुई घटना (साही का कथन) के बारे मे उन्हे लगा कि वह उसी समय के षडयत्र एव खुराफात की उपज थी। विवेचना गोष्ठी के कुछ सदस्यो को भी यह घटना अनुचित लगी। "विवेचना की एक विशिष्ट गोष्ठी हुई, लम्बी बहस चली पर साही ने अपना कथन वापिस लेना अस्वीकार कर दिया।"

श्री राव पुनः पत के निकट आ गए यद्यपि वे दूर कभी हुए भी नही थे, वह एक वातावरणजन्य स्थिति थी जिसने पत को उनके स्नेह से, सन् १९३३ के स्नेह सबध से, वचित कर दिया था। पर इस दूरी का एक मूल कारण और निकला जिसे श्री राव ने अपनी भेंट-वार्ता मे बतलाया। श्री राव के 'कादम्बिनी' के सपादन से मुक्त[1] होनेपर रामानन्द दोषी 'कादम्बिनी' के सम्पादक हो गए। उनकी कुछ बाते श्री राव को बुरी लगी विशेषकर यह कि जिन लेखो, कहानियो, कविताओ को श्री राव ३-४ माह पूर्व कादम्बिनी के लिए स्वीकार कर चुके थे उन्हे उन्होने अस्वीकृत कर दिया। फिर उन्होने इलाहाबाद

विवेचनावालो का पत के प्रति अबूझ आक्रोश, उन्हे 'डिस्ट्रोय' करने, मिटा देने की बात' '…पंत इसे महत्व नहीं ही दे पाए। इस व्यक्तिगत वैमनस्य में उन्हे अपना ग्रह चक्र ही दीखा। क्योंकि यदि वे पंत को कवि नहीं मानते हैं तो वे अकारण पंत से क्यो चिढें, उन्हें मिटा देने के लिए सुनियोजित योजना क्यो बनानी पड़ी।

१. संभवत. सन् १९६१ के अंत में।

के साहित्यिको से रचनाएँ माँगी, वे पंत के पास गए किंतु पत ने रचना देना अस्वीकार कर दिया। बाद को श्री राव ने सुना कि पत ने कादम्बिनी मे प्रकाशनार्थ कविता दे दी। उन्होने तत्काल पत को फोन किया। उन्होने विवशता व्यक्त की—"क्या करूँ, पाठक जी आए थे, उन्होने हठ किया इसलिए रचना दे दी" और इसके साथ ही पत ने उनके कहने पर एक सम्मति भी दे दी—'रामानद दोषी के सम्पादकत्व मे कादम्बिनी अच्छी निकल रही है।'[1] श्री राव को लगा कि अनावश्यक ही पत ने अपने आचरण द्वारा उनके गाल पर एक चपत मारा है। पत को वे अच्छा मानते थे अतः उन्हे बुरा लगा, "पाठक जी के आचरण ने मुझे दुःख नही दिया।"

---

१. उत्तर प्रदेशवालों से यह बात छिपी नहीं है कि डा० गोपाल रेड्डी सूचना-प्रसार मंत्री के रूप में अपनी अथवा सरकार की उर्दूनिष्ठ नीति के कारण अप्रिय हो गए थे। अतः चुनाव में हारने पर जब वे दूसरी बार भी उत्तर प्रदेश से ही खड़े हुए तो उनका एक सहायक पंत के पास आया। कोई आए और पंत सत्य कहकर उसे आहत कर दें, असंभव है। पंत ने लिखकर दे दिया कि डा० रेड्डी ने हिन्दी की सेवा की है। मैंने कहा, 'झूठ!' वे बोले, "झूठ कैसा? मैंने तो व्यक्तिगत स्तर पर लिखा है। वे मेरे स्नेही रहे हैं, तीन-चार बार घर आ चुके हैं। जहाँ तक चुनाव की बात है, मेरे लिखने से क्या होता है?"

तथा देखिए अध्याय २३ के अतिम पृष्ठो को।

अक्सर ऐसे परिचित, अपरिचित एवं नितांत अनजाने लोग आ जाते हैं जो पंत से आग्रह करने लगते हैं कि उन लोगो के लिए चिट्ठी लिख दीजिए, फोन कर दीजिए या (हम वहाँ तक आपको पहुँचा देते हैं) आप उनसे मिल लीजिए और हमारी संस्तुति कर दीजिए जिन्हें पंत जानते भी नहीं हैं, या कहीं औपचारिक परिचय हुआ हो। (जिसे पंत भूल भी चुके हो), या फिर वे बड़े पद पर है और पंत ने उनका नाम भर सुना है। सबसे प्रबल तर्क तो यह होता है, "आपको कौन नहीं जानता? आप उन्हें नहीं जानते तो कोई बात नहीं, वे तो आपके पत्र का आदर करेंगे। उनके नाम पत्र लिख कर दे दीजिए। मैं स्वयं यह पत्र डाक में डालूँगा (या डालूँगी) या उनके पास स्वयं जाऊँगा (या जाऊँगी)" पंत अपने स्वभाव की विवशतावश अस्वीकार नहीं कर पाते हैं। अनमने भाव से यंत्रवत् उनके मन का कर देते है। फिर कहते है, "मन में बडी ग्लानि है। मैंने अनैतिक

श्री राव का यह उलाहना उनके अतल-तल मे छिपे स्नेह का विस्फोट है, इसमे सदेह नही। और इसमे भी सदेह नही कि पत उन्हे अपना ही मानते है, उनके प्रति ममत्व रखते है। पर मुझे, व्यक्तिगत स्तर पर, आश्चर्य यह होता है कि जो व्यक्ति पत से सन् १६२६ मे मिला तथा १६३३ मे घनिष्टता मे बँध गया उसने मात्र एक बात (श्री राव के ही शब्दो मे, अपने दीर्घ परिचय काल में जो पहिली बात मुझे पत की बुरी लगी) के कारण अपना मन छोटा कर लिया। और वह बात भी ऐसी जिसे जो भी पत को निकट से जान लेता है वह उसे उनके स्वभाव की लाचारी के रूप मे स्वीकार कर लेता है। वह किसी को मना नही कर सकते, कई बार ऐसा हुआ है कि वे बेहद कार्यव्यस्त होने के साथ ही थके थे, कोई अपरिचित भूमिका, सम्मति या रचना लेने आ गया

और गैरकानूनी काम किया है। जिसने पत्र लिखवाया (या फोन करवाया) उसको किस बात का दुःख, दुःख तो दिनो तक मुझे रहेगा, लोग न जाने ऐसे काम क्यो करवाते है।"

व्यक्तिगत स्तर पर पंत किसी को भी बुरा नहीं मान पाते हैं। तथ्यात्मक दृष्टि से पंत ने अपने तथा निराला जी के सबंध को लेकर रामविलासजी की आलोचना की है, और वैसे भी, कोई भी निष्पक्ष आलोचक शर्मा जी की लिखित 'निराला की साहित्य साधना' की बहुत सी बातो को स्वस्थ मानसिकता से युक्त नहीं ही मान सकता। 'निराला की साहित्य साधना' को १६७१ में अकादमी पुरस्कार मिला। पंत निर्णायक समिति के सदस्य थे। अपना निर्णय भेजने के बाद वे श्रीनगर (कश्मीर) गए। वहाँ ८ अक्टूबर '७० को उन्होने भगवतीचरण वर्मा, श्री भगवान सहाय (तब राज्यपाल) को बतलाया, "मैंने पुरस्कार के लिए 'निराला की साहित्य साधना' की संस्तुति की है। मेरे विरुद्ध शर्मा जी ने सरासर झूठ लिखा है। पर निराला के प्रति उनकी निष्ठा और प्रेम का मै प्रशंसक हूँ। उन्होंने अपनी इस पुस्तक में परिश्रम भी बहुत किया है। मैने अपनी सस्तुति में यह भी लिख दिया है कि यद्यपि यह प्रथम खण्ड है तथापि अपने आप में पूर्ण होने के कारण इसे अपूर्ण नहीं कहा जा सकता।" श्रोता आश्चर्य प्रकट करके रह गए। पंत शर्मा जी की निराला के प्रति प्यार की प्रशंसा में लीन थे। बाद को जब शर्मा जी को अकादमी पुरस्कार मिला तो पंत ने तत्काल उन्हे बधाई दी।

और उसने हठ पकड ली कि मैं बिना रचना या सम्मति लिए नही जाऊँगा, मुझे आपसे अभी भूमिका लेनी है तो पत दो-तीन बार धीमे से प्रतिवाद करते है—"बिना रचना पढे सम्मति कैसे दे सकता हूँ।" "आप कह रहे है कि आपकी पुस्तक छप रही है पर आप पाडुलिपि, छपे फर्में कुछ तो दिखलाइए।" "इस समय रात के नौ बजे है, मुझे बुखार है, सिर घूम रहा है, आप कविता या भूमिका कल ले लीजिएगा।" ऐसा कहने पर भी यदि आगतुक का आग्रह कम नही होता है तो वे अपनी कोई पुस्तक उसे देते हुए कहते है, "जो कविता चाहे उतार लीजिए।" अथवा, "बताइए आप क्या चाहते है, वही लिख देता हूँ।" इस प्रसग मे यह भी स्वीकार कर लूँ कि जब पहले दिन उमा जी का फोन आया कि वे चदा लेने कल आ रही है तो मुझे बहुत बुरा लगा। मुझे उस समय 'मम्स' के कारण १०४° बुखार था, सोचा इस समय तो पत मेरा ख्याल कर ही देंगे। मैंने उन्हे पास बुलाकर कहा कि 'विवेचना' तथा 'विवेचना' प्रसगो के बाद अब तुम चदा दागे तो मुझे अच्छा नही लगेगा। तुम मुझे छूकर मेरे मरने की कसम खाओ कि चदा नही दोगे। पत ने उस समय कह दिया, "अच्छा नही दूंगा, बस पर इतना कह देता हूँ यह बहुत भद्दी बात है, तुम्हारा बुरा होगा। मैं ऐसे मे सुखी भी नही रह सकता। पहिले तो कोई भी चदा लेने आए उसे देना ही होता है फिर राव से तो मेरी बरसो की आत्मीयता है। यदि किसी विवशतावश 'विवेचना' की गोष्ठी मे वह सब हुआ तो वह उसी समय की बात थी। अब मेरे मन मे कुछ नही है।"

● ●

२०

'लोकायतन' : प्रतिपाद्य

•

'लोकायतन' एक महान् भागवत काव्य है जो जगत जीवन के विकास-ह्रास मे वैश्व चैतन्य के सचरण को समझाता है। भू-जीवन का इतिहास विभिन्न सस्कृतियो का इतिहास है, एक सास्कृतिक वृत्त का अपनी परिपूर्णता मे पहुँचना फूल का प्रस्फुटित होकर धरती पर गिर जाने के समान है ताकि वह धरती की चेतना को समेटकर, उसके घावो को सहलाकर नए पुष्प के रूप मे प्रस्फुटित हो सके। इसी सत्य को इगित करते हुए 'पत' ने 'स्वर्ण धूलि' मे कहा,

> ईश्वर को मरने दो हे, मरने दो,
> वह फिर जी उठेगा, ईश्वर को मरने दो !
> वह क्षण-क्षण मरता, जी उठता,—
> ईश्वर को नित नव स्वरूप धरने दो !

ऐसे विस्तृत पट—विश्वपट—पर आधारित 'लोकायतन' की कथा नाम मात्र को कथा है। थोडे से ऐसे पात्र-पात्रियो के माध्यम से, जो विश्व चित्रपट के छायाभास है, कथा कहने भर को प्रारभ और अत होती है। वास्तव मे शाश्वत की लीला का न प्रारभ होता है, न अत, वह एक अविच्छिन्न विकास क्रम है। एक सस्कृति वृत्त का दूसरे सस्कृति वृत्त मे परिवर्तित हो जाना है। जीवन ईश्वर की साँस है—

> कवि को लगा—स्वय लेटा भू पर
> साँस ले रहा हो विराट् ईश्वर।

और यह विराट् ईश्वर की साँस ही 'लोकायतन' बन जाती है :

> देखा कवि ने तृण तरु खग मृग मे
> व्याप्त—चराचर मे समस्त शाश्वत

चलता नित जन भू विकास मग मे !
बोल उठा कवि मन—भव गति क्रम ही
प्रभु की जीवन गाथा—रामायण,
सृष्टि व्यथा या कथा छोड जन मन
कहाँ खोजता प्रभु के पद पावन !
पुरुषोत्तम का लीला क्षेत्र जगत
बहिर्मूढ बहुमुख मन ही रावण,
भगवदैक्य स्थापित कर युग मन मे
पुन. अवतरण करते प्रभु नूतन !

'पूर्व स्मृति' अथवा 'आस्था' कथानक का पूर्वाभास दे देती है। राम राज्य कृषि-युग की सभ्यता का प्रतीक था। सीता का निर्वासन उस काल की नारी-मर्यादा का, रावण अहं वृत्ति का, लका दुर्मति गढ का तथा धनुष भग उत्तर-दक्षिण, वैष्णव शैव सस्कृति के समन्वय का सूचक था। किंतु आज के युग की समस्याएँ भिन्न है। स्त्री को देह-बोध तक सीमित रखने वाली 'लक्ष्मण रेखा' मिट गई है—'लक्ष्मण रेखा सीमा घर आँगन की/लीक लाँघना लोक दृष्टि का लाछन !' अत: आज के लक्ष्मण (हरि) की चिंता रामयुग के स्त्री मूल्य की ही नही है, स्त्री के सक्रिय सामाजिक मूल्य की भी है और साथ ही भू कल्याण की है—'चिंतित हो उठता रह-रह मेरा मन/कभी स्वर्ग होगा क्या यह भू जीवन ?' लक्ष्मण की यह चिन्ता मानो सीता[1] की ही चिंता हो, धरती की

---

१. सीता को पंत ने "एक नए रूप में उपस्थित किया है। यहाँ भूमिजा सीता जड़ से निर्गत चेतना का प्रतीक है और मनुष्य को सतत विकास के अनेक सोपानों—प्राणतत्व, उपचेतन, मस्तिष्क, अति मस्तिष्क, आनद तथा दिव्य महाजीवन की ओर प्रेरित करनेवाली ऐसी चिद्-शक्ति है, जिसे बलवती अभीप्साके अभाव में अविकसित मानव लोक ग्रहण नहीं कर सका। अतः पाताल-प्रवेश के बहाने उस भूचेतना सीता को पुनः पृथ्वी में समा जाना पड़ा। `` सीता 'लोकायतन' की 'पूर्वस्मृति' मे आदि-शक्ति, जगत्‌बोध, परम-चेतना की सृष्टिप्रपंच में पराव्याप्ति, व्यक्त जगत् की संचालन-शक्ति महासत्ता की अपोहन सामर्थ्य और महाचिति के देश-कालोत्तर स्पंदन के रूप में उपस्थित की गई है। `` 'राम जहाँ केवल अव्यक्त हैं''''' वहाँ सीता व्यक्त और अव्यक्त दोनो हैं '।"

पुत्री, धरती की चेतना की। अत सीता ही इस चिता का समाधान प्रस्तुत करती है—'कर्म चेतना के प्रकाश मे जन को/गढने नव आदर्श क्षेम-सुख पालक!' अथवा 'भावो की नावो पर पार न होगी/दिशा शून्य जन भावी भव सागर पर।'

उर्मिला सीता एव लक्ष्मण के कथन का अनुमोदन करती हुई कहती है :

> भगवत् जीवन भू जीवन मे कब से
> भित्ति खडी दुर्बोध भेद की दुर्गम,
> बन्ध्या भू सीची हमने प्राणो से
> बालू मे बोए जप तप व्रत सयम।
>
> धुनते आए गत सस्कारो का मन
> ..
> व्यक्ति मुक्ति के सर्प-पाश मे फँसकर
> कर्म पगु, मर गया जाति गत जीवन,
> ... .
> जड से पर चैतन्य तत्व तक हमको
> निर्मित करनी सत्य श्रेणि युग विस्तृत

इस वार्तालाप के साथ 'लोकायतन' का इष्ट—भू मगल—परिलक्षित हो जाता है।[1] आदि कवि बाल्मीकि, जन भू कि दुख गाथा सुनकर 'मन के वन मे' समाधिस्थ नही रह पाते। वे सीता से प्रार्थना करते हैं—

कुमार विमल : 'लोकायतन' में वर्णित इन्द्र और सीता (नई धारा : जून १६६४ पृ० ५२-५३)

१. "सुमित्रानंदन पंत ने हमारे अपने इसी लोक को उसी सत्य (भौतिकता और आध्यात्मिकता के सरस सुन्दर समन्वय के आधार पर उनसे परे एक सत्य) पर आधारित एक नव्य-लोक में परिणत करने का सफल प्रयत्न 'लोकायतन' मे किया तो सर्वथा युक्तियुक्त ही होगा। प्रेम और प्रकृति के छायावादी कवि पंत ने 'लोकायतन' में अपनी भूतपूर्व संपूर्ण प्रतिभा के साथ, एक अभूतपूर्व सांस्कृतिक एवं सामाजिक पक्ष का समन्वय करते

भूत भविष्यत् वर्तमान के तम मे
देख सकूँ मानव का श्री-नव आनन

तथा सीता अपने आशीर्वचन से उन्हे उपकृत करती हैं, 'नवयुग के बाल्मीकि, निकल बाँबी से/गढे छद मे चिन्मूल्यो का आशय !'

यह बाल्मीकि ही लोकायतन की कथा मे वशी रूप मे अवतरित होते हैं, वशी मात्र कवि नही है, वह भागवत चैतन्य है, सार्वभौम विश्वात्मा जो जीवन से युक्त होते हुए उसके कर्म-व्यापारो के प्रति तटस्थ है क्योकि उसका गत्यात्मक एव कर्म-स्वरूप हरि के व्यक्तित्व मे मूर्त होता है ।[1] उमा, परा चेतना

हुए, 'लोक' को एक सरस सुंदर एवं श्रेष्ठ निवास स्थान के रूप में परिवर्तित करने की चेष्टा की है । लोकमंगल की साधना 'लोकायतन' का चरम लक्ष्य है । लोक में आनंद का आविर्भाव हो, यही कवि का उद्देश्य है ।"

डा० एस शंकर राजू नायडू : 'सुमित्रानदन पंत और लोकायतन' Oriental Research of the University of Madras Vol XXII Part II 1969

1. वशी कोई व्यक्ति विशेष नहीं है । आज के युग में व्यक्ति नगण्य भी है । उस पर वंशी ग्रामवासी और नीड़-वासी है । उसकी आवाज से तेज संभवतः झींगुर की आवाज हो । ऐसे मे वंशी का व्यक्तिगत महत्व ही क्या हो सकता है ? किंतु वंशी अपने सत्य रूप में नए युग के सगुण का प्रतीक है । और इसलिए मानव विकास का माध्यम मात्र है । इस दृष्टि से 'मधु-स्पर्श' तथा 'मध्यबिन्दु' प्रथम खण्ड के महत्वपूर्ण अश है । वास्तव में वंशी वह सास्कृतिक चेतना है जो विश्व के सचरण-क्रम में अभिव्यक्ति पाती है । वंशी और हरि एक दूसरे के पूरक हैं, वे एक ही हैं, एक ही जगत् के अतर और बाह्य पक्ष के साक्षी हैं । वंशी निष्क्रिय, तटस्थ दर्शक सा है जिसे हरि गति प्रदान करता है अथवा जिसका हरि कर्म रूप है । एक सांस्कृतिक युग के समापन पर हरि मर जाता है, उसकी मान्यता की प्रतीक श्री भी मर जाती है । 'लोकायतन' के पात्र और पात्रियाँ मानव विकास के उद्देश्य के आगे बढ़ते चरण मात्र है । उनकी एक विशिष्ट उपयोगिता है; देश-काल के सदर्भ (सांस्कृतिक युग) में अपने को सार्थक कर वे अपनी नश्वरता को प्राप्त कर लेते हैं ।

अब विश्व से वियुक्त नही रह सकी, वह मानव हृदय मे अवस्थित हो गई, और इस कारण, 'तिमिर गर्त भर गया शिखर छवि मज्जित !' यही उमा, परा चेतना और सीता, विश्व चेतना का मिलन है, यही पूर्व और पश्चिम को समन्वित कर सकता है

इधर अध भौतिकता का कर्कश स्वर
उधर रिक्त तप त्याग विरति का रोदन
... ...
बृहत् समूहीकरण अपेक्षित जग मे
जिसमे जन-भू ओर-छोर हो गुम्फित
× × ×
भू जीवन ईश्वर इच्छा का दर्पण
× × ×
स्वर्ग वह्नि लानी भूतल पर निश्चित
जन समाज के सामूहिक जीवन की
यज्ञ वेदिका पर कर उसे प्रतिष्ठित

अतः गौरी कवि को मगलमय जीवन बनाने का दायित्व सौंपती हैं :

प्रीति-नीड होगा न मर्म-व्रण जब तक
भेद-मुक्त उर मे न बिंधेगा चित् शर
... ...
तुम्हे सौंपती, लो, यह कनक अमृत घट,
नर नारी के रस मगल से पूरित,
प्रकृति पुरुष की शुभ्र प्रीति का पावक
सावधान, बन जाय न विष जन-भू हित !

अमृत घट एव रागात्मक घट ही 'लोकायतन' है जिसके अतर्गत दो खण्ड मिलते हैं—'बाह्य परिवेश' से सबधित खण्ड और 'अतश्चैतन्य' से सबधित खण्ड । ये खण्ड एक ही चेतना, भागवत चेतना को प्रतिबिंबित करते है क्योकि 'सत्य एक ही,—विविध रूप गुण नाम ।'

इस एक सत्य का सचरण ही मानो पत की आत्म-कथा है यद्यपि इस कथा को, सच्चे अर्थ मे, किसी व्यक्ति विशेष तक सीमित नही किया जा सकता

क्यो कि सत्य सचरण एव विकास एक क्रम है जिसका कोई अत नही होता और जा अपने विकास की प्रक्रिया मे बार-बार सघर्षरत होकर आगे बढता हैं। 'बाह्य परिवेश' के अतर्गत 'जीवन द्वार' 'सस्कृति द्वार' तथा 'मध्य बिन्दु' है।

'जीवन द्वार' अपने अदर 'युग भू', 'ग्राम शिविर' और 'मुक्ति यज्ञ' का समावेश करता हैं।

> अमित शून्य दिक् पट पर
> रहस् सृष्टि छवि अंकित,
> काल तूलि गति जिस पर
> धूपछाँह भरती नित !

'सृष्टि छवि' को उसकी जर्जरावस्था मे चित्रित करने हेतु कवि सुदरपुर ग्राम राज्य का वर्णन करता हैं। यह ग्राम राज्य उन समस्त भू खण्डो का प्रतीक है जो सप्रति आर्थिक-सामाजिक जीवन की ठठरी मात्र है।

> सुदरपुर क्या था, युग-भू थी,
> महा ह्रास का छाया दिग्-भ्रम
> × × ×
> निज सामाजिक जीवन के प्रति
> विरत,—अँधेरे घर के आँगन !
> सुलभ नही भरपेट अन्न कन,
> फटे देह पर चिथडे लत्ते,
> जाडे मे हिल हड्डी बजती
> कँपते तन के पीले पत्ते।
> ... ...
> भाग्य दोष बतलाते बुध जन
> ... ...
> कहाँ राम जो निर्बल के बल

किंतु इस अधकार मे छिपी प्रकाश-किरण भी है जो अधकार को प्रकाश-मय करने के लिए अनवरत चिंतन-शील है—'जनगण मन का मूक व्यथा शर/ कवि उर मे करता कर्कश व्रण।' ग्राम्या की निसर्ग सुषमा के 'निभृत कुज' मे बैठा वह जीवन चेतना को समझने का प्रयास करता है। उसके 'कुज' के चार

और प्राकृतिक सौदर्य है किंतु वह इस सौदर्य मे रमते हुए भी नही रम पाता क्योकि वह जन जीवन को शाश्वत सौदर्य से युक्त करना चाहता है। उसकी दृष्टि मे मानवीय प्रकृति, जो प्रकृति का सूक्ष्म विकसित रूप है, बाह्य प्रकृति से समधिक सुदर होनी चाहिए।

वशी निभृत सौदर्यानन्द मे डूबा हुआ था कि हरि उसके पास आता है। वह और उसकी बहन सिरी (श्री) जनगण सेवा का मार्ग अपना चुके है, किंतु गाँव के सस्कार! सामाजिक परम्परा! सिरी के माँ-बाप उसका विवाह करना चाहते है। वे गाँववालो के लाछन से भी दुखदग्ध हैं। पिता हरि से भी बार-बार विवाह करने का आग्रह करते है—'कहते था तुम बेल बढाओ/पितृ ऋण दो,—या मैं विष खा लूँ।' पर हरि का तर्क है

कीडो-से पिसते हो पग-पग
जब जन निर्धन दुख के नीचे,
तब आँसू के खारे जल से
वश बेल कोई क्या मीचे।

वशी हरि के पर सेवाव्रत का समर्थन करता है। देश मे स्वाधीनता की चेतना ने जन्म ले लिया है। गाँधी के श्वेत शुभ्र व्यक्तित्व ने घर-घर मे जागरण का मत्र फूँक दिया है।

प्रकट हुए जन नायक गाधी
... ..
स्फटिक शुभ्र स्वर मे पुकारते,
चलता धरती पर अरुणोदय
.
करवट लेता रुद्ध सिन्धु अब
निकल पडे विवरो से जनगण
× × ×
आत्मदान के लिए मचलता
ज्ञान वृद्ध भारत का यौवन!
... .. .

प्रथम बार सामूहिक आत्मा
जूझ रही नर पशु से भीषण !
...
सिंधु पार का द्वीप करे धिक्
तीस कोटि भाग्यो का निर्णय !

और इस जन आदोलन मे हरि प्राणपण से साथ देता है। हरि और वशी, दोनो ही जानते है—'साधक चिंतक का जग भीतर / विषयी कर्मी का जग बाहर !' यही कारण हैं कि वशी अपने नीड मे ही रहकर असहयोग आदोलन एव स्वतत्रता सग्राम मे भाग लेता है ।

स्वतत्रता सग्राम मे भारतीय नारी ने सक्रिय योग दिया है, 'ग्राम शिविर' इसका प्रमाण है । देश एव मानवता के कल्याण के लिए यह आवश्यक भी है कि नारी घर के प्रागण से बाहर निकले तथा नर-नारी समवेत रूप से जीवन-उन्नयन के लिए प्रयास करे—'राग चेतना का विकास ही/निखिल प्रगति का सार, न सशय !' सिरी अपना यौवन देश सेवा के लिए अर्पित कर देती है :

वह यौवन का रहस द्वार था
नव स्वप्नो, भावो का प्लावन

जहाँ मूक सगीत लोक था
श्री सुख सुषमा आशा के स्वर !
× × ×
हरि भैया का कार्य करेगी,
जन जन का होगा उसका मन !
× × ×
उसको लगता मनुज प्रेम ही
भावी भू मगल का ईश्वर ।

हरि की प्रेरणा से वह कला शिविर का सचालन करती है। ग्राम की स्त्रियो-युवतियो मे एक नया बोध जन्म लेने लगता है। किंतु हरि के इस कला शिविर, स्त्री जागरण, स्वतत्रता सग्राम के प्रति सामान्य ग्रामीणो का भाव आलोचना, कुठा द्वेष और सदेह का था—'स्यारो का वन-रोदन सुनकर/सिंह

छोड देंगे क्या जगल ?' और जहाँ तक राजकवि गुरु माधव का प्रश्न है उनके लिए यह सब असह्य है—कौन ? अरे हरि ? कहाँ पा गए/भैया, नेताओ का बाना/बोले गुरु हँस, गिरगिढ का-सा/रग बदलता नया जमाना !' माधो गुरु राजकवि होने के कारण दरबारी कला कौशल मे प्रवीण थे,—राज्य की अहमिता के प्रतीक, स्वय सबसे श्रेष्ठ होने का बोध, चाटुकारिता-प्रेमी, मात्र अपने पद की सुरक्षा की चिंता ! अत. उनके लिए वशी एव हरि की जन-प्रियता, पर-सेवा व्रत एक दुखता घाव बन गया। माधो गुरु का यह विरोध कोई नयी बात नही थी। मानवता के विकास मे सदैव ही वैयक्तिक स्वार्थों, अहमिताओ ने बाधा खडी की है। माधव गुरु कस, रावण और गोडसे की परम्परा की ही एक कडी है। ऐसे गुरुओ की अहमिका सत् के विकास की सदैव अवरोधक रहती है।

'मुक्ति यज्ञ' गाधी जीवन का दर्शन है, नमक सत्याग्रह भारत की एकता, समग्रता का सूचक है—'बढता अभय समग्र राष्ट्र था/एक व्यक्ति बन पर्वत उन्नत !' और इस उन्नत पर्वत की आत्म शक्ति ने एक ओर साम्राज्यवाद को त्रस्त कर दिया—'कँपता अरि का अतर थर थर' तो दूसरी ओर भारत की जनता प्रबुद्ध हो गई—'राजद्रोह अब धर्म हमारा/भू अभिशाप विदेशी शासन।' अथवा—'कोई नृप हो हमे हानि क्या ?—/अब न सोचता कुठित भू मन' किंतु देशद्रोही प्रवृत्तियो का पूर्णतः विनाश नही हुआ था। माधो गुरु के रूप मे ऐसी चेतना सक्रिय रहती थी—'घर के भेदी बन, सिखलाते/वे अरि को नित चालें नूतन !'

नमक आदोलन मे भारत की आत्मा विजयी होकर स्वातत्र्य युद्ध को अधिक आगे बढ़ा रही थी कि द्वितीय महायुद्ध छिड गया। साम्राज्यवाद के विरुद्ध युद्ध अब अतर्राष्ट्रीय युद्ध बना दिया गया जिससे स्वातत्र्य सग्राम की समस्याएँ और भी उलझ गई। भारतीय जनता को रोटी के बदले जब पत्थर मिले तब 'भारत छोडो' आदोलन ने प्रखर रूप ग्रहण कर लिया। परिणामस्वरूप अरि ने शस्त्र अपनाया—दमन और विकट दमन का,—'लगता स्वेच्छाचार शौर्य पर/विजयी होगा, दभ न्याय पर/पीट, पेट के बल रेंगाते/', 'हाथ पैर धड कटे, फटे सिर/टूटे पजर दिखते क्षण मे।', 'फूट डाल अरि करता शासन/बढे साप्रदायिक सघर्षण'। इस दमन से भारतीय आत्मा निष्प्राण नही हुई, वह अधिक सक्रिय और सगठित हो गई। देश मे बाहरी शाति बवडर आने के पूर्व की शाति थी। परिणाम स्वरूप भारत

स्वतत्र हो गया। पर राष्ट्र मुक्ति तो केवल प्रथम चरण है, प्रमुख लक्ष्य तो मनुज एकता, विश्व ऐक्य है। भयकर साप्रदायिक अग्नि गाधी के आत्म-बलिदान से ही शात हुई। गाधी जी यद्यपि मर गए पर उनकी अमर आत्मा के प्रकाश मे लोक जीवन तथा विश्व एकता का निर्माण शेष रह गया।

मनुज प्रीति के अमर सूत्र मे गुफित
स्वर्ग पीठ करनी भू-मन पर स्थापित !
वज्र पात अघटित न अनभ्र गगन से,
जीवित रावण कस अचेतन मन मे,
. ...
अस्त सूर्य ! लोहित तम भू-प्रागण मे !
(पृ० ११५)

'सस्कृति द्वार' 'आत्म दान', 'सक्रमण' और 'मधु स्पर्श' की गाथा है। बापू का निधन, निधन नही है, यह जन भू कल्याण के लिए 'आत्म दान' है। बापू की हत्या क्यो हुई, जब इस पर कवि विचार करता है तो उसे एक ही कारण दीखता है,—'इस रक्त काण्ड के पीछे/थे मध्य युगो के खँडहर/उच्छिष्ट जीर्ण सस्कृति के/स्वार्थों के कट्टर पजर !' स्पष्ट ही धर्म के दिन अब बीत गए है क्योकि,—'वह धर्म नही रे निश्चय/जो पीता मानव शोणित,' पर आध्यात्मिक जागृति के प्रति अभी जन-भू मन उन्मुख नही हो पाया है यद्यपि यह भी सत्य है

भौतिक आध्यात्मिक बँट कर
रह सकते खड न जीवित,
जन मगल हित जीवन को
होना जग मे सयोजित !

भारतीय सस्कृति का यह 'सक्रमण' (ह्रास) काल है। भारत का करुण विभाजन, गाधी का निधन नयी मान्यताओ के सघर्ष की ओर इगित करता है। रूढि जर्जरित दासता से पीडित भारत की आध्यात्मिकता भू लुठित हो गई है। उसका 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सिद्धात अरण्य रोदन बन गया है, भारत मात्र 'जातियो के शव' के रूप मे साँस ले रहा है। ग्राम जीवन की दरिद्रता अधिक पकिल हो गई है .

दारिद्रय मनो के भीतर,
दारिद्रय जनो मे बाहर,
त्वच रक्त मास मज्जा मे
दारिद्र्य घुसा अति दुस्तर !

× × ×

हम कुभकर्ण-से अब भी
सोए प्रमाद मे खोए

× × ×

बढता ही जाता प्रति दिन
भू पर चारित्रिक विघटन !

.. ..

मँहगी ही मात्र प्रगति पर
हाँ, अनाचार भी निश्चित

— × ×

जन-रक्षक से भक्षक बन,
सेवक से प्रभु, भू शासक !

परिणाम स्पष्ट है—देश अनाथालय-सा हो गया है। पराई भाषा, पराई सस्कृति, पराया अन्न—मानसिक दासता से युक्त जनता राष्ट्रीयता से हीन होती जा रही है। अतः समझ मे नही आता कि भारत किस ओर जा रहा है—प्रगति, अगति या दुर्गति ?

ऐसे अराष्ट्रीय तत्वो के विरुद्ध वशी, हरि, सिरी अपने सास्कृतिक सस्थान द्वारा सामाजिक जागरण के प्रति सतत प्रयत्नशील है। इसी बीच चीन ने भारत पर आक्रमण कर दिया। भारत को अपनी सुरक्षा के लिए युद्ध भूमि मे उतरना पडा, क्यो कि, 'आर्थिक या राजनयिक जय/भारत को कभी न वाछित।' सस्कृति, अध्यात्म एव मानव-कल्याण का भू को सदेश देना ही भारत का धर्म है। आत्मिक ज्ञान से रीते, भौतिक बोध से परिचालित, वैज्ञानिक उन्नति पर विमुग्ध व्यक्ति स्वय कुठा और अनास्था ग्रस्त हैं—

मानव के केवल तन मन
भौतिक युग मे सवर्धित,

वह हृदय हीन, हिंसा प्रिय,
जन भू विनाश हित प्रेरित !
अति तार्किक, आस्था विरहित,
स्थितियो का दास, सशकित,
प्रेरणा शून्य, क्षण जीवी,
आत्मा से निपट अपरिचित !

सवेदनशील, भावप्रवण वशी के जीवन मे यौवन-शतदल का प्रस्फुटित होना ही 'मधु स्पर्श' है, यह वसत की गधभीनी समीर है जो अतर-बाह्य को स्वप्न तद्रिल कर देती है, 'गिरि कोयल, वन भृङ्गो सग/गा उठता उर का स्पदन/तन्मय रखता अंतर को/नीरव निसर्ग सम्मोहन !' यह सम्मोहन अनजाने ही प्रकृति प्रेम मे बदल जाता है, 'कब मधुर प्रकृति शोभा ने/धर लिया मुग्ध नारी तन/कब चाँद बन गया प्रिय मुख'[1] अथवा 'रति की फूलो की शय्या/कर सकी न मन को मोहित !' वशी की मादन भावनाओ के माध्यम से 'मधु स्पर्श' का कवि मधु वर्णन की पराकाष्ठा मे पहुँचने के साथ ही प्राणो की आकुलता को यथार्थ के दश से विस्मृत तथा अचेत कर देता है—वशी प्राणो के सरसिज से प्रेम का पावक पराग ले कर निकल आता है। आश्वस्त हो जाता है कि मानव प्रेम ही जीवन मे मागल्य की वृष्टि कर सकता है।

उसको न ज्ञात था, कैसे
सुख की अतृप्ति पर पा जय
आकुल अशात सलिलो मे
खोजे वह सत् का आशय !
× × ×
घूमा उसकी आँखो मे
गत वृत्त प्रेम का भीषण
× × ×
वह पूर्ण-प्रेम शोभा का
प्रेमी होगा, रह तन्मय,
रज तन से नही बँधेगा
जन-भू का हृदय अनामय !

---

१. 'आत्मिका'

इस पूर्ण-प्रेम को समझने के लिए वह योग, तत्र, षड् दर्शन, नृतत्व शास्त्र, विज्ञान, धर्म का अध्ययन करता है, वैराग्य-साधना के मार्ग को अपनाता है। साधना की स्थिति मे उसे इन्द्र सत्य का स्पर्श करा देता है—

जीवन का ध्येय नही यह,
मन ब्रह्म रध्र से उड कर
खो जाए रिक्त गगन मे
× × ×
यदि ऊपर उठ आए तो
नीचे भू पर ले जाओ
शिखरो के स्वर्णोदय से
नव मानव लोक बसाओ !

धरती पर जीवन स्वर्णोदय का यह बोध कवि-हृदय मे किस भाँति मूर्त होता है, 'मध्य बिन्दु' (ज्ञान) का यही विषय है—'साधना निरत रहते कवि-प्राण निरतर।' वशी की व्यथा विश्व व्यथा है—'भू पर बरसाने रस-प्रकाश वह प्रतिक्षण/अतर्यामी को करता तन मन अर्पण/भू मन की ईर्ष्या स्पर्धा से हो आहत/गोपन रखता प्राणो का अतर्मुख क्षत !" कवि साधना दृष्टि रस-तत्व की खोज मे जीवन के निश्चेतन, अचेतन, चेतन स्तरो का अध्ययन करती है, अनेक गुह्य अनुभव उसे विस्तार और गहनता प्रदान करते है और वह न केवल जीवन सत्य से परिचित हो जाता है वरन् कवि धर्म के प्रति भी प्रबुद्ध हो जाता है :

यश, धन, स्त्री सुत के लिए न आता युग कवि,
आता वह मन मे भरने प्रभु की नव छवि !
देखने प्रेम की आँखो से भू-आनन
निज अत सौरभ से भरने जन प्रागण !

वह इस नवीन चेतना का भू पर आवाहन करता है। अब मनुष्य एक-दूसरे के निकट आ रहे हैं। विज्ञान ने दिशा काल की दूरी मिटा दी है। मानवता के युग मे देश और धर्मगत विभेदो के मूल हिलने लगे है। मनुष्य को रागात्मक प्रवृत्तियो का उन्नयन भी आवश्यक है, उसे सकीर्ण प्रवृत्तियों—काम द्वेष कुंठा आदि—से मुक्त होना है। नारी को घर की देहरी ही सामाजिक कर्म के

लिए नही लाँघनी है, उसे वैधव्य वेश का भी परित्याग करना होगा—वह मात्र देह बोध नही है, उसे मानव-कल्याण और विकास मे सहयोग देना है—जीवन को प्रीति तथा आनद का धाम बनाना है—'पावक घन सी रस मे झर उर नहलाओ/शत सुरधनुओ का सम्मोहन बरसाओ !'

पुराने सास्कृतिक वृत्त की सीमाएँ अब अलध्य नही रह गई है। मध्ययुगी नर युग ईश्वर के स्वरूप को नही पहिचान पाया था—'गत वृत्त व्यक्ति-केन्द्रिक विधान था भू पर/हो सका न मूर्त धरा पर जीवन ईश्वर !' भू मगल के लिए सामाजिक मानव का विकास करना होगा, पृथ्वी को स्वर्ग, इस जगत को दिव्य मदिर बनाना होगा। 'इस मरकत भू से विशद कौन सा मदिर/' जिसका प्रागण सौदर्य प्रेम से पावन, प्रभु जहाँ जन्म लेते उर्वर रज मे सन ! इस पृथ्वी के अतिरिक्त और कही स्वर्ग नही है, इसे ही आनद-मगल से पूर्ण बनाना होगा। वैयक्तिक मुक्ति, परलोक और जीवन-वर्जन का विगत आदर्श मृत्यु तुल्य है क्योकि इस भू को स्वर्ग बनाना ही वास्तविक लोक मुक्ति है। जब ईश्वर जगत मे ही है, वही सब जीवो मे व्याप्त, मृत्यु और जीवन का शाश्वत सत्य है तब जगत जीवन से उदासीन होना अनुचित है—'यदि ब्रह्म सत्य तो जग भी सत्य असशय', 'अथवा 'प्रभु सृष्टि न रचते, स्वय सृष्टि बन जाते/ निज से ही निज मे अभिव्यक्ति वह पाते !' ऐसी स्थिति मे ब्रह्म को जग जीवन से परे मानना सूर्य के प्रकाश को उसके सात रगो मे भिन्न समझना है। सपूर्ण जीवन, सृष्टि का कण-कण ईश्वरमय ही है, अन्न, प्राण, मनोमय कोष भी ईश्वर ही है—'निन्दित न अन्न, यह जगत अन्न ही मे स्थित/हो अन्न प्राण विज्ञान मनस् प्रभु-अर्पित !' यह बोध स्पष्ट कर देता है कि एक महत् सास्कृतिक क्राति की आवश्यकता है, यह क्राति ही मनुष्य के बहिरतर जीवन मे सतुलन लाकर उसके समग्र बोध को दीप्त करेगी। तत्पश्चात् ही मनुष्य इस पृथ्वी को सुदर और मगलमय बना पाएगा।

मानव चैतन्य का विकास सहज होने पर भी एक जटिल प्रक्रिया है। चेतना की ऊर्ध्वगामी प्रवृत्ति का बौना मानव एव खर्व प्रवृत्तियाँ सदैव से विरोध करती आई है। और इस विरोध अथवा सघर्ष के क्रम मे अशुभ पर शुभ, सीमित सत्य पर व्यापक सत्य की सदैव विजय हुई है। 'लोकायतन' का द्वितीय खड 'अतश्चैतन्य' चेतना के विकास तथा सूक्ष्म प्रवृत्तियो के सचरण पर प्रकाश डालता है। इसके अतर्गत तीन अध्याय है—'कला द्वार', 'ज्योति द्वार' तथा 'उत्तर स्वप्न'।

'कला द्वार' का सबध 'सस्थान', 'द्वद्व' और 'विज्ञान' से है।

वशी का कहना था कि नव भू जीवन को मगलमय बनाने के लिए सस्थान की आवश्यकता है—सस्थान कला के माध्यम से लोगो को शिक्षित एव उनकी रुचियो का परिमार्जन करेगा ताकि वे चेतना के सत्य को पहिचान सकें। कला, कला के लिए कहना 'वरद कवि वाणी का व्यभिचार' है। कला मात्र स्वात: सुखाय या रस प्राप्ति के लिए भी नही होती, उसका प्रयोजन जीवन के मूलगत मूल्यो को रसात्मक अभिव्यक्ति देना, जन भू को सस्कृत करना है। अत: हरि ने 'शिविर' के कला पक्ष को व्यापक स्तर दिया—'सँवारे ललित कला के कक्ष/बुला गायक, वादक, स्वरकार/छात्र छात्राएँ, शिक्षक सुज्ञ/कृतीजन, नर्तक, नट छविकार!' किंतु कला की सार्थकता कर्म पर निर्भर है, 'कर्म ईश्वर, जन हो न वियुक्त।' हरि ने इसीलिए शिक्षा के प्रथम सोपान के रूप मे कर्म को महत्व दिया, 'कर्म का प्राण-स्पर्श पा गूढ/जनो का सभव मनोविकास!' जन मन के विकास द्वारा ही वसुधा स्वर्ग तुल्य हो पाएगी, देश-राष्ट्रो की सीमा लाँघ-कर मनुजता पास आ जाएगी। मनुष्य के सास्कृतिक उत्थान को महत्व देने के कारण सस्कृति केन्द्र एव सस्थान का मनुष्य के प्रकृतिगत दोषो के प्रति उदार दृष्टिकोण था, 'ग्रथियाँ जन भू मन की खोल/विकृति लेनी थी सहज सँवार/असत् को कर समग्र स्वीकार/उसे देना था सत्सस्कार।' और पौर जन स्तब्ध हो देखते है कि सस्थान के सभी सदस्य निष्ठापूर्वक बृहत् सामा-जिकता के आदर्श से उन्मेषित होकर कर्म-व्यापार कर रहे हैं। सस्थान के पावन उद्देश्य ने जनमत को जाग्रत कर शासन का ध्यान आकर्षित कर लिया और गाँव का विद्युतीकरण कर दिया। रोगियो की चिकित्सा एव बडे-बूढो के प्रति स्नेहिल व्यवहार के अतिरिक्त शिशुओ के लालन पालन का भी सस्थान के युवक-युवती ध्यान रखते थे क्योकि शिशु ही राष्ट्र की भावी सपत्ति है।

सस्थान व्यापक प्रेम का ही साकार रूप था। वैयक्तिक प्रेम, अध वासना उसके ध्येय की प्राप्ति मे बाधक ही है। इसीलिए वशी का कहना था, 'शिविर मे रहना उनका व्यर्थ/प्राण जिनके स्त्री तन पर लुब्ध!' 'व्यक्ति केन्द्रिक अधा जड प्रेम/सग लाया निन्दा, उपहास!' 'प्रीति की बाँह पकड कर शुभ्र/

'युवक बन सकते युग रथवाह!' प्रीति की छाँह मे शिविर के स्त्री-पुरुष शुभ्र शरदोत्सव मनाते हैं। शरदोत्सव की स्निग्ध ज्योत्स्ना मे सपूर्ण प्रकृति के साथ जन-मन उल्लसित हो उठता है।

कुँई खोले सर मे दृग स्फार—
स्वप्न सी, विस्मय सी यह कौन
चल रही जल स्थल पर सुकुमार !
× × ×
धरा लगती न धरा सी स्थूल
एक आत्मा के जगत् अधीन !
शुभ्र ही शुभ्र अनिल, जल, नील
कुद हिम कुमुद चद्र से आज,
रूप रगो के लय सब भेद,
एक सत्, बहुगुण वस्तु समाज।

इसी अवसर पर सिरी से शकर, शिविर का सदस्य, प्रणय याचना करता है। किंतु सिरी इस प्रार्थना को अस्वीकार कर देती है, 'स्नेह का देती तुमको हाथ/सखे मैं खोल मुक्त उर द्वार' और अपनी सहेली प्रीति का हाथ उसे थमा देती है:

देह की सीमाओ को लाँघ
प्रेम का स्वर्ग हुआ साकार !
× × ×
नीलिमा हँसती थी निर्वाक्
चाँदनी फैली थी विश्रब्ध
... ...
खोल फूलो की गोरी बाँह
मालती की लिपटी थी बेल
× × ×
राग कामना कर मानव की मुक्त
धरा-स्वर्ग को करे कला चरितार्थ
... ...
इद्रिय भुवनो की शोभा से पूर्ण
मनुज चेतना का हो अनघ विकास !

प्रकृति एव जीवन का नियम, विकास का क्रम ! सत् पर असत् की विजय, असत् पर सत् की विजय ! सघर्ष और द्वद्व ! 'द्वंद्व' के अतर्गत सस्थान को

विरोधी प्रवृत्ति का परिचय मिलता है। सस्थान का उत्कर्ष माधो गुरु के लिए असह्य हो गया। उन्होने उसकी प्रतिद्वद्विता मे शाति आश्रम की स्थापना कर दी। शाति आश्रम जगन्मिथ्या की धारण को अपनाता है, चतुराश्रम और चतुर्वर्ण को महत्व देता है, मनुस्मृति को आप्त वाक्य मानता है तथा पतिव्रत धर्म को मान्यता देने के साथ ही विधवा जीवन को त्याग, जप, तप, उपवास से युक्त कर देता है, अथवा उस सबको माधो गुरु एव उनके शिष्यो ने स्वीकार कर लिया जो मध्ययुगीन, परलोकवादी तथा अमानववादी है। किंतु वशी की जन मगलकामी दृष्टि इन सिद्धातो को स्वीकार नही कर पाती :

जगत के प्रति मिथ्या का भाव
जगत कर्त्ता का धिक् अपमान,
. ..
पुरोहित पडे हो स्वार्थाध
अध विश्वासो का बुन जाल
. .. ..
धर्म के ये लोभी बक्काल
बेच खा गए सत्य का दाय
खडे कर कर्म काड ककाल।
... ..
हिला सामाजिकता की नीव
जगत्-जीवन को कह अध्यास।

वशी की यह विचारधारा (उसका सस्थान) शाति आश्रम के निवासियों के लिए असह्य हो गई। वे सस्थान के विरोधी हो गए क्योकि दोनो के दृष्टिकोण मे महान् अतर था—एक परपरावादी दृष्टिकोण था तो दूसरा लोकमगलकामी। यदि आश्रम मे गुरुडम और सनातन पथियो का विकट मायावाद मिलता है तो सस्थान मे मूल्यो का पुनर्मूल्याकन एव पुनरुद्धार मिलता हैं; सस्थान ने जगत को सत्य माना तो आश्रम ने मिथ्या, सस्थान ने सामूहिक श्रम, लोकहित कर्म को अनिवार्य कहा तो आश्रम ने सन्यासवाद, पलायनवाद को अपनाते हुए वैयक्तिक मुक्ति, आसन, प्राणायाम, ध्यान, षड्दर्शन के ज्ञान एव शास्त्र प्रवीणता को महत्व दिया।

माधो गुरु राजकवि थे, ब्रजभाषा के मान्य कवि जो स्वय वानप्रस्थ स्वीकार कर लेने के साथ ही आश्रम के सरक्षक भी थे। किंतु वानप्रस्थ लेने मात्र से तो अस्मिता, युग-अस्मिता का तिरोभाव नही हो जाता। उसे सघर्ष करना पडता है, अपने आप के साथ तथा असत् शक्तियो के साथ। विकास-क्रम मे सत् की विजय अनिवार्य है (अन्यथा मानवता, मानव-जीवन का कभी का विनाश हो गया होता!) किंतु सत् की विजय, मानवीय मूल्य की प्राप्ति और स्थापना सघर्ष की अपेक्षा रखती है, यह राम-रावण सघर्ष तथा कृष्ण-कस का सघर्ष सदैव युग-सापेक्ष रहा है।

मकर सक्राति का पर्व अपने उल्लास मे इन विरोधी शक्तियो का क्रीडा-स्थल बन जाता है। यह न केवल ग्रामीण मेलो एव प्रयाग के सक्राति पर्व को मूर्तित करता है वरन् उसके व्याज मे तामसी अस्मिता की विषैली नीली लहर युक्त कुटिलताओ को भी चित्रित कर देता है। साथ ही यह स्पष्ट हो जाता है कि सत् और असत् के सघर्ष मे यद्यपि प्रारभ मे यह प्रतीत होता है कि पशु-बल ही सब कुछ है, विकास क्रम मे मानव जीवन के स्तर पर भी शक्तिशाली (भौतिक) की ही विजय होती है किंतु यह केवल काल-अपेक्षित अथवा समसामयिक है। कालक्रम मे सत् की विजय निश्चित है। अत माधो गुरु के रूप मे समाज अथवा मानवता विरोधी प्रवृत्ति पहिले अपने अह को सत् पर आरोपित करती है एव मनोवैज्ञानिक रूप से पराजित करने का प्रयास करती है और तत्पश्चात् शारीरिक बल का प्रयोग करती है

साध गुरु ने कुत्सित अभिचार
किया उर मे गोपन आघात,
लगा कवि को उसका चैतन्य
ऋक्ष सा टूट, हुआ भू-सात्।
× × ×
किया गुरु ने कवि चेतस ध्वस्त,

किंतु इस अभिचार से कवि चेतस मुक्त हो अपने ध्येय के प्रति सजग हो जाता है। भावजीवी सत्य से वस्तुजीवी सत्य की ओर उन्मुख उसका मन जानना चाहता है कि विज्ञान मानव मगल मे कहाँ तक सहायक हो सकता है, अन्य राष्ट्रो की उन्नति में इसका कितना हाथ है। इसी अवसर पर उसे विदेश से निमंत्रण मिलता है जिसे वह सहर्ष स्वीकार कर लेता है।

'विज्ञान' सर्ग, विभिन्न देशो की भौतिक उन्नति का वर्णन करता है। भौतिक-वैज्ञानिक उन्नति स्वरूप नील का स्पर्श वशी की छायावादी चेतना को मुक्त विचरण का अवसर प्रदान करता है·

शून्य मुख का दिग् गुठन खोल
झाँकता मन अनत के पार,—

व्योम क्या नाद ब्रह्म निर्वाक्
सृजन लय मे अजस्र तल्लीन ?—

× × ×

पवन ने दुह वाष्पो की धेनु
बिलोया हो तुषार-नवनीत

× × ×

गहनताओ मे खोई साद्र
गहनताएँ जग उठती मौन—
डूब कवि अतर मे निर्वाक्—
पूछती,—अमृत पुरुष वह कौन ?

रोम, यूनान, मिश्र, स्विट्जरलैड, फ्रांस, इटली, जर्मनी, नॉरवे, स्वीडन, इग्लैन्ड, रूस, अमेरिका आदि देशो की विशेषताओ, समृद्धि, सौंदर्य और वैज्ञानिक उन्नति के प्रति प्रणत होते हुए भी उसे बहिर्मुखी दृष्टि एकागी लगती है·

स्थूल भौतिकता का आधिक्य
विपद् भय का सूचक अविवाद,

. . .

राजनीतिक आर्थिक उत्थान
न केवल मानवता का ध्येय,

. ...

प्रथम बदले भीतरी मनुष्य
बाहरी बदले तब ससार !

अदर के मनुष्य के न बदलने के कारण ही विश्व की स्थिति सकटग्रस्त हो गई है, 'विपक्षो मे अब उभय विभक्त/विश्व ध्वसक अस्त्रो से नद्ध/प्रलयकर हो दो रुद्र सशक्त !' किंतु वशी को दृढ विश्वास है,—'असत् पर सत् की जय अनिवार्य/हिरण्यात्मा का यही विधान/सत्य हित निखिल सृष्टि का कार्य !' और भारत भी इस तामसी युद्ध मे उदासीन नही रह सकता। भावी आक्रमण की स्थिति मे संपूर्ण देश को एक होकर, आत्म-शक्ति का सगठन कर, युद्ध का सामना करना ही होगा।

इस आस्था के साथ जब वशी भारत पहुँचता है और श्री अरविन्द के दर्शन करता है तो श्री अरविंद का योगरत जीवन, उनके चैतन्य सूर्य का प्रकाश उसे अवाक् और प्रणत कर देता है। किंतु तत्काल ही उसे कवि धर्म बोध श्री अरविंद से बाहर खीच लाता है,—'उठ रहे थे जब भू से पाँव/लिया उसको वाणी ने रोक !' 'बिना धरणी का ले आधार/शून्य मे होगी ज्योति विलीन,—' 'चकित देखा कवि ने,—भूपिंड/चेतना का नीराजन थाल !'

और वशी उस साधनाश्रम का वासी नही बन सका। अब उसके सम्मुख एक ही चिंता थी—धरा पर भगवत् ज्योति कैसे साकार हो सकती है। वह भली भाँति समझ गया था कि ईश्वर का वास जगत मे ही है, जगत् से भिन्न ईश्वर नही है। मनुष्य ईश्वर का ही अश है। अत जब तक सामाजिक परिवेश ईश्वर के अनुकूल नही बनेगा तब तक जगत् एव मानवता का कल्याण सभव नही है।

'ज्योति द्वार' 'अतर्विकास' 'अतर्विरोध' तथा 'उत्क्राति' के माध्यम से सरल अनलकृत भावो और भाषा द्वारा कवि, वशी की चेतना का युग-चेतना मे, जागृत भू चेतना मे विलीन होना समझाता है।

वशी विश्व-भ्रमण से लौट आया था। हरि के तप से सास्कृतिक क्राति शिविर के युवको के भीतर नए मनोभुवन को जन्म दे रही थी। रचना श्रम से ही वे लोग ईश्वर का अर्चन करना चाहते थे। नैतिक सयम अपने आप मे साध्य नही है, वह तभी तक अपरिहार्य होता है जब तक कि मानव हृदय मे प्रीति का पूर्ण प्रस्फुटन न हो जाए। कला शिविर के नर-नारियो के महत् उद्देश्य के प्रति परपराप्रिय वृद्ध, भोगी-कामी अथवा ईर्ष्यालु लोग शकित रहते थे। वसतोत्सव मे विभिन्न प्रातो के युवक-युवती कलाशिविर मे प्रमुदित मन

विचरण करते हैं। वस्तुतः 'अतर्विकास' मानव राग-चेतना के विकास का व्यापक चित्र प्रस्तुत करता है। स्त्री-पुरुष के प्रेम का भावी स्वरूप क्या हो, इसी का निदर्शन स्त्री-पुरुषो की विकसित राग-भावना द्वारा किया गया है। साथ ही विभिन्न प्रातो की स्त्रियो का वर्णन सौदर्य प्रधान होने पर भी उनके स्वभाव और व्यक्तित्व की सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक झाँकी प्रस्तुत करता है :

ऊर्ध्व रीढ, श्री सयोजित अवयव,
महाराष्ट्र कन्या थी दीप्तानन,
दीप शिखा सी तेजस्वी तनिमा
कार्य दक्ष, कर्तव्य निष्ठ, दृढ मन !

वसत श्री के माध्यम से कवि पुष्पो एव प्राकृतिक सौदर्य का रसभीना वर्णन करता है। वसत श्री आँखो के सम्मुख मूर्त हो उठती है, मानव और उसकी सौकुमार्य की भावनाएँ उसी का अग बन जाती हैं। शकर का प्रीति के प्रति प्रणय निवेदन कवि की पल्लव कालीन भावनाओ को जगा देता है :

तुम ऊषा हो, या पवित्र ज्योत्स्ना

— — —

तुमको बिना छुए ही हो उठती
आत्मा आत्मा के सुख मे मज्जित,

— — —

प्रिय सन्निधि से होता मन पावन
तीर्थ जलो मे कर ज्यो अवगाहन[1]

युवक-युवती पुष्प बीथियो मे एकात विचरते और विकसित राग-चेतना के आलोक मे उल्लसित रहते। वशी एव हरि ने वसतोत्सव को भू श्रम पर्व का रूप देकर उसकी अवधि बढा दी। कला-शिविर की उन्नति उससे स्पर्द्धा रखने वालो के लिए असह्य थी। उन्होने शिविर को जनता की दृष्टि मे गिराने के अभिप्राय से चुपचाप एक दिन एक नवजात शिशु को उसके पास झाडी मे रख दिया। शकर ने बालक को देखा तो स्नेह-द्रवित हो गया और शिशु

१. तुम्हारे छूने में था प्राण
संग में पावन गंगा-स्नान (पल्लव-आँसू)

को शिविर के शिशु-गृह को सौप दिया। हरि की व्यावहारिक दृष्टि बालक को शिशु गृह मे नही रखना चाहती थी:

> परपरा का हृदय कुचल, करते
> तुम पर्वत बाधा का आवाहन।
> वैसे ही गाँवो मे प्रतिपक्षी
> सेते गुप्त बवडर, अघड नित!

किंतु वशी का कवि हृदय तथा विकसित राग चेतना एव प्रेम से समाज का सचालन करने की आकाक्षा हरि पर विजयी हो जाती है। बालक को वशी अतुल नाम देता है और शिशु गृह की स्त्रियाँ उसका सहज स्नेह से लालन-पालन करने लगती है।

पर जन-समाज, माधो गुरु और उनके शिष्यो के लिए 'कला-शिविर' का यह कृत्य जघन्य था जिसका दण्ड उसे मिलना चाहिए। 'अन्तर्विरोध' न केवल शिविर को परपरावादी दृष्टि से दण्डित करता है वरन् शिविर के अपने स्वय के अतर्विकास के लिए भी भूमिका प्रस्तुत करता है:

> प्रगति रुक गई थी रस चेतस् की,
> ... ...
> असतोष था कही गूढ भीतर—
> भले बहिर्गत हो सित सयोजन!

सिरी का भ्रातृ प्रेम अपने आप मे एक सीमा था। मनुज प्रीति को व्यापक प्रागण चाहिए, शुभ्र प्रेम का वह आश्रय जो मात्र भ्रातृ-प्रेम से कही विस्तृत होता है। हरि की आस्था भी शिविर विरोधी तत्वो की आलोचना के कारण स्थिर नही रह पाती है। वह अक्सर क्षुब्ध हो उठता है कि वशी ने अनाथ शिशु को आश्रय देकर सस्कृति विरोधी कार्य किया है इसलिए उसके हित मे यही है कि वह शिविर छोड दे। किंतु वह शिविर छोड भी नही पाता है क्योकि वशी से पृथक् वह नही रह सकता।

शिविर के विरुद्ध माधो मण्डली की आलोचना कटुतम होती जाती है, इतनी कटुतम की जनता भुलावे मे आ जाती है:

> दुहराओ, बहुमुख से दुहराओ
> झूठ सत्य बन जाएगा निश्चित,

करो उपेक्षा सब तटस्थ रहकर
सत्य स्वय मर जाएगा अकथित !
विश्व युद्ध की यह महार्घ शिक्षा
राष्ट्र शत्रु हँस करते दिग् घोषित !

जनमत सग्रह करने के साथ हो माधो की शिष्य मण्डली वंशी की हत्या करने के उद्देश्य से शिविर मे घुस जाती है। हरि वशी पर हुए वार को अपने ऊपर ले लेता है, स्वय मर कर वशी को बचा लेता है। सिरी भाई के निधन से हत-श्री हो जाती है। केन्द्र के अदर असतोष की अग्नि प्रज्वलित हो जाती है—'काम द्वेष से कवलित युवति युवक/कवि विवेक प्रति हुए स्वय शकित/सर्व प्रीति का स्वप्न लगा दुष्कर/प्राण-वारि हो उठते आदोलित !' किंतु धीरे-धीरे यह विद्रोह शात हो जाता है और राग चेतना तामस अधकार से ऊपर उठ जाती है। हरि की मृत्यु से माधो गुरु का मन भी उस आत्म-ग्लानि से भर जाता है जिससे वे मृत्यु को प्राप्त होते हैं। माधो गुरु अपने आप मे बुरे नही थे। वे व्यक्तिपरक सास्कृतिक चेतना के, परशुराम की अस्मिता के प्रतीक थे तथा नव चेतना को गति देने के लिए ईश्वर के कार्य-यत्र थे .

प्रभु लेते जब जन्म जगत् क्रम मे
वे विभक्त कर देते भव अतर,
सदसत् का हो बोध लोक मन को
सघर्षण से कढे सत्य जित्वर !

अतः वशी और गुरु दोनो ही ने अपने युग का प्रतिनिधित्व किया, उसी भाँति जिस प्रकार कि कस और कृष्ण, राम और रावण ने। दोनो ही श्रेष्ठ थे, एक दूसरे की महानता के प्रति सचेत, बाहर से भिन्न होते हुए भी एक ही चेतना के दो रूप थे। अत माधो का निधन वशी के लिए दुखप्रद था। वह सुदरपुर मे गुरु की प्रतिमा स्थापित कर अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता है।

'उत्क्राति' मे लोगो का ध्यान व्यापक मानवीय मूल्यो की ओर आकर्षित होता है, वशी नवयुग चेतना मे विलीन हो जाता है तथा सुदरपुर का कला प्राण जीवन आशिक अणुयुद्ध से ध्वस्त होकर, नवीन बृहत्तर रूप मे हिमालय के प्रागण मे प्रस्फुटित हो जाता है।

विश्व की राजनीतिक परिस्थितियो मे विपर्यय घटित होने लगता है और लोग मानवीय मूल्यो के महत्व को समझने लगते है। उन्हे यह आभास हो जाता है कि बिना इनके विश्व जीवन मे शाति-सुख की स्थापना नही हो सकती। भारत मे भी एक सामाजिक क्राति, गाधीजी के अहिंसात्मक सिद्धातो पर आधारित जन्म लेती है और पथराई जीर्ण परम्पराओ को छिन्न कर लोग नवीन सास्कृतिक मूल्यो की ओर अग्रसर होते है। विश्व जीवन मे एक व्यापक आर्थिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक सतुलन का समारभ होता है। इसी बीच सिरी नही रहती है, कवि को उसकी मृत्यु स्वीकार्य है क्यो कि धरा जीवन के लिए उसकी उपयोगिता नही रह जाती और हरि का बिछोह भी सिरी के लिए असह्य हो गया था।

दो महान राष्ट्रो का सघर्ष विश्व विनाश की ओर बढने लगता है। भारत ने भी आसन्न सकट देख अपनी सुरक्षा की तैयारी की। सुदरपुर की पार्श्व भूमि मे ही बृहत् वायु आस्थान निर्मित किया गया। शकर, जो शुद्ध अहिंसा का आराधक था, ने वशी से कहा—'क्या न सैन्य बल सस्कृति पथ बाधक ?' वशी का उत्तर था, 'आसुर नृशस बल को आत्म समर्पण करना आत्म विलय है।'

इसी बीच वशी को अनुभव हुआ कि केन्द्र सस्कृति पीठ के रूप मे स्थापित हो गया। अब वह सहजता से, विकास क्रम मे, बढता जाएगा—वशी का केन्द्र मे रहना मानो केन्द्र का व्यक्तित्वमुखी हो जाना है। अपना जीवन उद्देश्य पूरा होता देख उसने नव पीढी के स्वागतार्थ विश्वात्मा को प्रणाम किया। केन्द्र की सदस्या मेॅरी एक साँझ उससे मिलने आती है। वशी महाभाव में आ जाता है। भारत की आध्यात्मिक सस्कृति वैज्ञानिक सस्कृति से मिल जाती है। यह मिलन ही वशी के जागतिक व्यापार का अवसान है। उसके माध्यम से अभिव्यक्त हुई विश्वात्मा की युग चेतना एक संचरण वृत्त समाप्त कर लेती है। इसी अभिप्राय से मेॅरी कहती है—'तुम क्या हो कवि, जान गई अब मैं/मर्त्य वेणु मे स्वर्ग प्रीति की लय/नव जीवन सगीत विश्व उर मे/भरने आए—जन भू मगलमय !'

वशी का अवसान केन्द्र के उस विशिष्ट ध्येय की पूर्ति थी जिसके लिए उसकी स्थापना की गई थी। केन्द्र अब व्यर्थ था। बाह्य रूप से वह अणु बम द्वारा ध्वस्त हो जाता है। यह बाह्य रूप विधान की क्षण भगुरता या मृत्यु है जिससे कि अरूप चेतना नए सास्कृतिक सचरण को गति दे सके।

उत्तर स्वप्न' इसी गति, नयी प्रेरणा, नए सचरण को जन्म देता है। 'उच्छ्वसित चेतना सागर से/फिर निकल रहा नव जीवन तट !' तथा 'निखरी देशो राष्ट्रो से भू/नव विश्व चेतना अनुप्राणित !'

सयुक्ता (मेरी) हिमालय के अचल मे 'लोकायतन' नामक नया सस्कृति सस्थान स्थापित करती है, यह 'कला केन्द्र' का ही नवीन सस्करण है। आशिक अणुयुद्ध से बचे हुए कुछ लोग समस्त विश्व से आकर नवीन मानवता के निर्माण मे सलग्न हो जाते हैं। अतुल भी हिम प्रातर मे आ जाता है। वह साठ शरद् बिता चुका है। उसका उन्मुक्त मन प्रकृति की शोभा मे निमग्न हो जाता है। मन उसका शाश्वत मे लीन हो चुका था, तन से ही पृथ्वी का वासी था। झरनो की वह गोपन बाते सुनता। मृग उसे मुग्ध नयन देखते तथा विहग फुदक कर उसके कधो पर बैठ जाते। अक्सर अतुल को लगता—'सुदर कलि कुसुम, सुभग लघु खग,—सुदर न अभी मानव जीवन।' और गिरि कोयल 'कुहू कुहू' कर उससे कहती—'पशु पक्षी से क्या मनुज सभ्य/गढ सौध नगर वन पथ सुदर।' तथा 'कानो मे भर भीनी भन भन/वन से आकर कहते मधुकर/सामाजिकता का गर्व तुम्हे/गुण मे चीटी से निपुण न नर।' 'बोला कानन मृग सीघो से/सहला वन सखा अतुल का तन/पशुओ को डरा, अहेरी नर/क्या जीत सका भू जीवन रण ?' एक दिन ज्ञान की खोज मे अतुल पर्वत शिखर पर चढता निर्विकल्प समाधि मे चला जाता है तो उसे पता चलता है कि आत्मवाद सत्य नही है, मात्र आत्मा का मरुस्थल है। जगत ही ईश्वर है। परात्पर विश्व सत्य से विच्छिन्न नही है। किंतु अतुल की सीमाएँ ! वह परात्पर सत्य—निर्विकल्प समाधि मे समाधिस्थ हो जाता है।

'उत्तर स्वप्न' की मान्यता है कि 'साजन का घर उस पार नही/भू—जीवन ही उसका प्रागण' अथवा 'अधिमानस के देवो का युग/अब बीत चुका—भू नर ईश्वर/तब थे विभक्त—अब भू जीवन/भगवत् विकास सचरण अमर !' और इस भागवत युग मे वैयक्तिक प्रीति सर्व प्रीति मे तथा तन यष्टि का मोह शोभा प्रेम मे विकसित हो गया है, सस्कृति का रथ राजनीति के आगे चलता है, लोक मन मे शुभ शाति स्थापित हो जाती है, विगत विरोधी शिविर मिल कर भू रचना मे सलग्न हो गए है। चिद् उषाएँ पृथ्वी पर अपूर्व सौंदर्य, प्रीति और शाति तथा मगल आलोक बरसाती रहती है।

नव्य आध्यात्मिकता मे न भक्ति
केवल अब जप तप व्रत पूजन,
... ...
अब ज्ञान न निष्क्रिय आत्म बोध,
... .
वह जग मे प्रभु, प्रभु मे जग के
शाश्वत अखड करता दर्शन !

× × ×

जो साँस साँस मे ईश्वर का
करती तन्मय उर प्रीति स्मरण,
वह तन मन से प्रभु मे लय हो
छा गई निखिल जग मे गोपन !

और इसके साथ ही सयुक्ता ईश्वर मे लय हो जाती है, वह विशिष्ट व्यक्ति नही रहती, भागवत चेतना अथवा विश्व चेतना के रूप मे विकसित होती है।

● ●

२१

'लोकायतन' : मूल्यांकन

●

'लोकायतन' धरती का काव्य है, विश्व चेतना का काव्य जो मूर्त होने के लिए सघर्ष कर रही है; और उसका सघर्ष है, सत्-असत् प्रवृत्तियो का सघर्ष जो चेतना के सघर्ष के क्रम मे राम-रावण, पाडव-कौरव, कृष्ण-कस, एकातिक जड-वाद और एकातिक अध्यात्मवाद एव पूर्व और पश्चिम के रूप मे व्यक्त होते हुए 'लोकायतन' मे वशी और माधो गुरु के सघर्ष का रूप ले लेता है। 'लोका-यतन' का धरातल व्यक्तिगत नही है, विश्वजनीन है, यह भूत, वर्तमान और भविष्य की चेतना को एकसूत्रता मे गूँथकर यह बतलाता है कि सब कुछ एक ही व्यापक सत्य के स्फुलिग हैं, यह सत्य परिस्थितियो द्वारा अपने को व्यक्त करता है। अतः 'लोकायतन' मे पुरातन नवीन है और नवीन पुरातन है।

"कवि श्री सुमित्रानदन पत की नवीन काव्य-कृति कई कारणो से बडे महत्व की कला-वस्तु है। पत जी के काव्य के अध्येताओं के लिए लोकायतन काव्य का महत्व इस हेतु है कि इसमे पत जी के सौन्दर्य-बोध, भाव-चेतना और विचार-नैवेद्य को समग्र रूप मे देखा जा सकता है, और कवि के विकास-सोपान मे यह काव्य उच्चतम स्थिति-बिन्दु का द्योतक हैं। देश-काल-सापेक्ष इसका महत्व है, क्योकि भारतीय मनीषा को मध्ययुगीन भग्नावशेष से उबार कर, यह काव्य नवीन की दिशा मे पथ-निर्देश करता है। वैयक्तिक चैतन्य के लिए लोकायतन का महत्व इसलिए है कि बाह्य हलचलों के मध्य रह कर भी वह अक्षत और आनदमय रह सके, ऐसी प्रेरणाशक्ति लोकायतन के पाठक को प्राप्त होती है। यदि हम आधुनिक हिन्दी काव्य के सदर्भ तक ही अपनी दृष्टि को सीमित रखें, तो भी कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नो का उत्तर हमे लोकायतन मे मिल सकता है : सार्वभौम और भारतीय; विगत, वर्तमान और अनागत,

वैयक्तिक और निर्वैयक्तिक, वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक, लौकिक और लोकोत्तर, अस्तित्व और आस्था, भव और अनुभव। ऐसे ही अनेक प्रश्नो के, समाधान-पूर्ण न सही तो विचार-योग्य उत्तर, अध्येता और सुधी पाठक को लोकायतन मे मिल सकते है। किन्तु केवल कथ्य के लिए ही लोकायतन महत्वपूर्ण नही है। काव्य के जो नैसर्गिक गुण इस बृहद काव्य मे प्रचुर मात्रा मे विद्यमान है—वह है शब्द-शिल्प-सौष्ठव, परिमार्जित आवेश-हीन निर्वैयक्तिक कथन और भाव-सम्पन्न गरिमामयी परिकल्पना। भाव और अभिव्यक्ति की दृष्टि से लोकायतन पत जी के चैतन्यनिष्ठ सौन्दर्य-प्रधान काव्य का पूर्णतम, परिपक्वतम रूप प्रस्तुत करता है।

जिस काव्य मे इतना सब हो, वह आकार मे भी बडा हो, यह स्वाभाविक है। काया की अपेक्षा कथा-सूत्र छोटा-सा है।कुछ घटनायें भी घटती है। बाह्य घटनाओ की अपेक्षा चेतना की अतर्धारा का प्रवाह भी अधिक महत्व रखता है। चेतना के स्रोत की तरह, उसका प्रवाह भी सहज दिखाई नही देता। घटनायें तो उन पत्थरो की तरह है, जो चेतना-धारा को नदी की भाँति मोड देती है। ऊर्ध्व स्रोत से लोकभूमि पर चेतना का अवतरण और दिशावधि मे उसकी व्याप्ति तथा लोक-चेतना का ऊर्ध्व सचरण या उत्क्राति, पत जी के लोकायतन का विषय है।

लोक-मानस राम-राज्य की परिकल्पना से अभिभूत रहा है। किन्तु भूमि-कन्या सीता के दिव्य भाव को लोकमानस पूर्णत: ग्रहण नही कर सका है। राम भी कोदडधारी मर्यादा-पुरुषोत्तम राजा राम है, जिन्हे अपनी राजरानी को वनवास का आदेश देना होता है—लोकरजनार्थ। लोकभूमि अपनी चेतना को समा सकने योग्य मानस-पात्र का निर्माण नही कर सकी है। ऐसी मध्ययुगीन पूर्वस्मृति के साथ काव्य आरभ होता है। लोक का अवचेतन अभी आगत चेतना के प्रति सकुचित सपुटित है। कथा-प्रवाह मे सघर्ष-विमर्श के अनेक प्रसगो मे वही अवचेतन मन लोकायतन मे प्रहसित प्रस्फुटित होता है।"[1]

'पूर्व स्मृति' मे सीता, धरती की पुत्री, धरती के गर्भ मे एक अँधेरी पर्ण-कुटी मे बैठी है। यह पर्णकुटी निश्चेतन मन का भुवन है। यहाँ वह सोचती है कि जब तक धरती के जीवन मे उपचेतन-निश्चेतन के स्तरो मे अधकार छाया रहेगा तब तक धरती का जीवन सस्कृत नही हो सकेगा। इसी अवसर पर

---

१. नरेन्द्र शर्मा, 'पंतजी का लोकायतन काव्य'

लक्ष्मण-उर्मिला, वाल्मीकि भी प्रकट होते हैं और भू जीवन की समस्याओ पर विचार करते है। उमा परात्पर ज्योति के रूप मे धरती पर अवतरित होती है अथवा लोकायतन परात्पर सत्य को परात्पर नही देखना चाहता, वह उसे विश्व सत्य से युक्त कर देता है—क्योंकि वह भू की मगलाशा का, मानवता एव भागवत जीवन का काव्य है।[1] 'पूर्व स्मृति' मे सीता-राम, उर्मिला-लक्ष्मण, उमा-गौरी, वाल्मिकि के माध्यम से यह सकेत किया गया है कि दिव्य न तो जगत् से परे है और न जागतिक व्यापारो के प्रति तटस्थ है, वह जगत् के कण-कण मे व्याप्त है। ईश्वर का आँगन ही जगत है, दिव्य एव दिव्य शक्तियो को हम अपने बीच अनुभव कर सकते है, वे हमारी ही है, हमारी आत्मीय। अतः सीता और लक्ष्मण धार्मिक आदर्शों के अर्थ मे सीता और लक्ष्मण नही है देवर और जीजी है जिनके साथ हमारा जीवत सबध है। इस तथ्य को न समझने अथवा स्वीकार न कर सकने के कारण कुछ आलोचको को आपत्ति है कि सीता-लक्ष्मण के दिव्य रूप (अमूर्त) का वर्णन करने के साथ ही पत ने क्यो उनके वार्तालाप को मानवोचित सबधो (मूर्त रूप-लौकिक) मे बाँध कर देवर और जीजी के सबोधन द्वारा अभिव्यक्त किया है। वास्तव मे यह दोष हमारी उस दृष्टि एव धारणा का है जो ब्रह्म और जगत् मे मात्र परात्पर का सबध देखती है, ब्रह्म को जगत् से परे मानती है। आज के परिप्रेक्ष्य मे इस तथ्य को इस भाँति भी समझाया जा सकता है कि प्रधान मत्री से कोई (चाहे उनकी सतान ही) माँ या पिता नही कह सकता अथवा उनका देवर उन्हे जीजी नही कह सकता। जहाँ तक सीता का प्रश्न है कवि यह स्पष्ट कर चुका है[2] कि वे

---

1. "There is an original element which the poet has only partially utilised—the element of legend turned into Symbol"

   A. B Purani . Some Aspects of Lokayatana (for thought)

२. देखिए अध्याय—२०

   तथा "पंत ने 'अशोक वन' में व्यक्त सीताराम संबंधी भावनाओ को ही कुछ भेद और विस्तार से 'लोकायतन' में प्रस्तुत किया है। इस तरह 'लोकायतन' में वर्णित, सीता और राम के प्रतीक की वैचारिक भूमिका को कवि 'स्वर्णकिरण' काल में तैयार कर चुका था ।"

व्यक्त और अव्यक्त दोनो हैं। ऐसी स्थिति मे सीता का व्यक्त रूप 'जीजी' सबोधन के उपयुक्त है।[1]

कुमार विमल : आधुनिक हिंदी काव्य, पृ० १४२
(प्रथम संस्करण १९६४)

१. "सीता चेतना की तीनो गतियो—आरोह, अवरोह और समदिक् सचरण का एकान्वय प्रस्तुत करती है। सीता का ऐसा प्रतीकार्थ या सीता की ऐसी रूपक व्याख्या सीता मे संबद्ध पूर्ववर्त्ती साहित्य—ऋग्वेद, रामायण, महाभारत, उत्तर रामचरित, रघुवश, रामतापनीय उपनिषद, अध्यात्म रामायण, रामायण मंजरी, उदार राघव, जानकी परिणय, इत्यादि से लेकर वैदेही-वनवास और साकेत तक मे हमे नही मिलती है। किंतु यहाँ इतना कह देना समीचीन है कि 'पूर्व स्मृति' में राम और सीता के रूपको में गतार्थ अलौकिकता तथा दार्शनिकता की डुग्गी जिस तरह डेग-डेग कर पीटी गई, वह ठीक नहीं है।"

वही, पृ० १४३

यह भी कह देना समीचीन है कि मानस में तुलसीदास जी बार-बार राम के अलौकिक रूप की याद दिलाते हैं। इसके दो कारण है : (१) दार्शनिक प्रतिपाद्य क्लिष्ट (अमूर्त) होने के कारण पुनरुक्ति की अपेक्षा रखता है तथा (२) भय रहता है कि अवतार (मानवरूपधारी) को लोग सामान्य न समझ लें, उसकी दिव्यता को भूल न जाएँ और इस ओर स्वयं श्री कृष्ण गीता मे संकेत करते हैं।

तुलना कीजिए : "जब राम की ऐसी उक्ति (पराशक्ति) के तुरत बाद लक्ष्मण सीता को 'जीजी' कह कर संबोधित करते हैं, साथ ही वे इसी 'जीजी' को जगधात्री अथवा चिन्मुक्ता बना देते हैं, तब ऐसा कथन काव्य के कथाप्रवाह तथा रूपकार्थ की पूर्वापर अन्विति के लिए शोभन नहीं मालूम पड़ता है।"

कुमार विमल : लोकायतन में वर्णित इन्द्र और सीता। नई धारा, जून १९६४ पृ० ५३

"सीता को भू-चेतना मान कर कृषि-युग की स्थापना, विविध पात्रो के माध्यम से सैद्धांतिक-दार्शनिक निरूपण आदि तत्वो के बीच देवर, भाभी, जीजी, पति-पत्नी इत्यादि लौकिक संबधो को यदि बचाया जा सकता तो

लोकायतन के विरुद्ध आलोचनाएँ मुख्यत. तीन प्रकार की है (१) लोकायतन मे जो कुछ भी है उसे नकारने की प्रतिबद्धताजन्य आवेशपूर्ण आलोचनाएँ, (२) खोखियाई हुई समीक्षाएँ मानो 'लोकायतन' ने उन्हे नीचा दिखाया है, तथा (३) पाडित्य प्रदर्शन के उद्देश्य से विरचित निबध। लोकायतन की निष्पक्ष आलोचना अभी देखने को नही मिली[1] सभवतः यह अभी सभव भी नही है, क्यो कि श्री अम्बालाल पुराणी के शब्दो मे, "मैं नही जानता कि हिंदी के बौद्धिको मे भी कितने पाठको मे इतना धैर्य और एकाग्रता होगी कि वे पूरे 'लोकायतन' को पढ लें। सर हरबर्ट रीड ने 'सावित्री' पढने के बाद मुझे लिखा कि उनकी बडी इच्छा है कि कोई इगलैड का व्यक्ति भाषा पर ऐसे अप्रतिम अधिकार के साथ इस प्रकार की कविता लिख सकता और फिर उन्होने लिखा, 'आपके पत्र ने उस प्रश्न को उठाया जिस पर मैने पर्याप्त चिंतन किया तथा अपने मित्रो के साथ विचार-विमर्श किया। नि सदेह 'सावित्री' सी अविच्छिन्न सर्जन शक्ति युक्त लम्बी कविताओ के लिए पाठक पाना कठिन है। इस दुर्बलता का कारण पाश्चात्य सभ्यता की वर्तमान स्थिति है · यह सभवत. अवकाश का प्रश्न है, किंतु इसके भी मूल मे, एकाग्रता की क्षमता की कमी है।' यही उक्ति 'लोकायतन' के लिए भी ठीक बैठती है, या सभव है, मैं इस भाँति सोच कर भूल कर रहा हूँ भारतीय मानस के पास 'लोकायतन' के लिए पर्याप्त उत्सुकता और एकाग्रता की शक्ति हो। कम से कम, मैं यह आशा अवश्य करता हूँ।"[2] कोई 'लोकायतन' न पढे, समझ मे आ सकता है किंतु पढे और केवल इस अभिप्राय से कि वह इसकी कथा को पूर्वग्रह के चौखटे मे जड सके' · विचित्र ही स्थिति लगती है, अनिर्वचनीय !

'लोकायतन' की कथा मानव जीवन को सुन्दर बनाने की कथा है। जिस गाँव मे यह कथा केन्द्रित है उसका नाम सुन्दरपुर है अर्थात् तत्वतः भू जीवन

इन प्रतीकों को अमूर्त चेतना के रूप में ग्रहण करने में शायद इतना व्यवधान पड़ता। इन तत्वो के समावेश से मूर्त के अमूर्तीकरण की प्रक्रिया शिथिल, अस्वाभाविक, जटिल और अनावश्यक रूप से लंबी हो गयी है।"
सावित्री सिन्हा : लोकायतन (माध्यम, जून १९६५ पृ० ७३)

१. एकमात्र अपवाद डा० देवराज का आलेख है (कल्पना मई १९३५) यद्यपि वह अत्यधिक सक्षिप्त है।

२. पत्र, २०-११-१९६४

सुन्दर (शिव सत्य) का ही पुर या धाम है। किंतु आज इस सुन्दरपुर की दुर्गति हो गई है। स्पष्ट ही सुन्दरपुर कुत्सित भू जीवन का प्रतीक है, न कि किसी विशिष्ट स्थल एव भौगोलिक देश का। वशी जो कि युग चेतना—सगुण चेतना—है और हरि इसी चेतना का अविच्छिन्न रूप, दोनो ही मिलकर भू की कुत्सितता देख दुखी हैं। वे अधविश्वास मे खोए लोगो को प्रबुद्ध नागरिक बनाने के लिए शिक्षा शिविर खोलते हैं जिसमे हरि की बहिन सिरी (श्री) पूर्ण सहयोग देती है। इसी बीच स्वाधीनता सग्राम छिडता है। अन्य लोगो के साथ हरि और वशी भी इसी सग्राम मे भाग लेते है, परिणाम स्वरूप दोनो को कारादण्ड मिलता है। 'जीवन द्वार' के अतर्गत घटित इस युग-कथा को उसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, बीसवी शती की एक महत्वपूर्ण तथा अमिट घटना के रूप मे आत्मसात न करने के कारण आलोचक 'लोकायतन' के उद्देश्य—भू मगलकामी युग गाथा—को विकृत रूप दे देते है। उनका कहना है कि 'लोकायतन' का गाधी युग की राष्ट्रीय-सामाजिक चेतना के मूल्याकन से सबध नही है क्योकि "ऊर्ध्व और समदिक् का साभजस्य ही 'लोकायतन' का प्रतिपाद्य है।" समदिक् का वह कौन-सा विशिष्ट अर्थ है जिसका यथार्थ से सबन्ध नही है अथवा जिसके लिए युग-गाथा अपरिचित है। ऐसे आलोचक भूल जाते है (अथवा अपने आप को भुलावे मे डालने का प्रयास करते है) कि 'लोकायतन' की युग जीवन गाथा (समदिक्) अनिवार्य सत्य है—इसी सत्य मे वह जन्म लेता है, आँखे खोल आगे बढ़ता है। "मुख्य कथारभ मे जब 'युग-भू' का 'जीवन-द्वार' खुलता है तो हमारे सामने वशी हरि और सिरी की कहानी आती है। स्थान—सुन्दरपुर ग्राम और समय गाँधी-युग। जनता के अभाव और दुख-दैन्य के बीच स्वतन्त्रता की चेतना जगती है। 'मुक्ति यज्ञ' आरम्भ होता है। गाँधी की दाडी-यात्रा से लेकर स्वराज्य तक का अत्यत प्रभावशाली चित्रण पत जी प्रस्तुत करते है। ·· भारत छोडो आदोलन का भव्य वर्णन काव्य-सौदर्य और विचारो का उभार है। स्वराज्य के बाद 'सस्कृति द्वार' पर खडे होकर भारत 'आत्म-दान' करता है और पत जी की लेखनी से बर्बरता, पशुता एव हरण—घृणापूर्ण बँटवारे के तूफान का रोमाचक चित्रण होता है। 'तत्कालीन विक्षुब्ध मन : स्थिति और भग्न दग्ध वस्तुस्थिति की काव्योचित भावुकता के साथ समीक्षा होती है। समूचे विषाक्त वातावरण के ऊपर उठ जाता है प्यारा बापू।' 'सक्रमण' और 'ह्रास' का काल तब प्रारभ होता है जब सुदरपुर के सभी जेल यात्री बाहर आते है ····पत जी 'विघटन' के भीतर देश की दरिद्रता और ह्रास का मार्मिक वर्णन करते हैं जिसे देखकर हरि कहता है कि १४ वर्ष मे राम घर आ

गए परंतु भारत का उत्थान नही लौटा। '' 'समूचे देश की हालत ऐसी है 'ज्यो देश अनाथालय हो !' '' ''विकास' और आशा की नयी किरणो की कल्पना भी उसकी वाणी मे उभरती है।"[1]

'मधुस्पर्श' मे न केवल कवि एक नए प्रकाश को धरती पर लाने के लिए आतुर है वरन् "आनद की समरस भूमि पर से मानव को धरती पर उतार लाने और श्रद्धा के साथ बैठने की अभिलाषा के साथ कवि 'प्रसाद' की 'वदना' करता है।"[2]

आओ, श्रद्धा सग बैठें
युग मनु प्रसाद, पथ सहचर,
... ...
तुम मनः स्वर्ग के शिल्पी,
नव कविता वनिता के वर,
फिर श्रद्धा-कर से नूतन
जन-लोक रचो दिक् सुदर।

नवीन मानव मूल्य को प्रतिष्ठित करने के लिए कवि वशी के रूप मे अपने आप से भी सघर्ष करता है। सौंदर्य प्रेमी सवेदनशील युवक वसत की मादक

---

१. विवेकी राय, 'लोकायतन : वस्तुतत्व चर्चा'।
(उपलब्धि, मार्च, १९६९ पृ० ३३-३५)

२. वही, पृ० ३५
तथा देखिए "लोकायतन में आए हुए 'कामायनी' संबन्धी उल्लेखों के अनौचित्य की ओर भी इंगित किया गया है और उन्हें कवि की हीनभाव-ग्रंथि की प्रेरणा के प्रतिफलन रूप मे स्वीकार किया गया है। किंतु इन उल्लेखों का उद्देश्य 'लोकायतन' के कवि की मान्यताओ और दृष्टि के पार्थक्य की ओर इंगित करना ही है। दृष्टि-वैभिन्य और मतभेद सदा ईर्ष्या द्वारा प्रेरित नही होता। 'कामायनी' में प्रतिष्ठित आनंदवादी शैव दृष्टि समष्टि-मूलक होते हुए भी मूलतः वैयक्तिक है। पंत का लोकदर्शन उस शिखर से आरंभ होता है जहाँ पर 'कामायनी' का दर्शन समाप्त हुआ था।"
सावित्री सिन्हा : 'लोकायतन' माध्यम, जून १९६५ पृ० ७७-७८
तुलना कीजिए, कुमार विमल; 'आधुनिक हिन्दी काव्य', पृ० १४५-१४७

गध से अपने को मुक्त करने के लिए छटपटाता है, मानस-मथन करता है और अत मे इद्र, ऋषियो-मुनियो की समाधि को भग करवानेवाला द्वेषी इद्र, उसे जन-कल्याण का सदेश देता है। "पत ने मनुष्य के सिद्धि-पथ मे अप्सरा-विघ्न एव अन्य विघ्नो को डालकर बाधक बननेवाले इन्द्र के व्यक्तित्व मे नितात नवीन र्थवत्ता भर दी है। उनकी दृष्टि मे इन्द्र वैयक्तिक मोक्ष के विरोधी और सामूहिक मोक्ष के प्रबल पक्षधर है। जब-जब किसी व्यक्ति ने शेष समाज को कष्ट-कटको मे छोडकर केवल अपनी मुक्ति के लिए प्रयास किया है, तब-तब इन्द्र ने वैसे स्वार्थी साधक के पथ मे विघ्न उपस्थित किया है। ... 'लोकायतन' के इन्द्र ने हठयोग, लययोग, कुण्डलिनीशक्ति इत्यादि का, जो वैयक्तिक मोक्ष के उपस्कारक है, खुलकर खण्डन किया है·

जीवन का ध्येय नही यह
मन ब्रह्म रध्र से उडकर
खो जाए रिक्त गगन मे
खग-सा, झुलसा मति के पर।

इतना ही नही, इन्द्र वशी कवि से यह कहते हैं कि व्यक्ति मुक्ति के कामी जन, तप और योग के द्वारा 'चित् ज्योति' के बदले 'शुभ्र तिमिर' का सवरण करते हैं।"[1]

सामूहिक कल्याण का आकाक्षी वशी 'मध्य बिन्दु' मे वेदात का मथन एव प्राचीन का पुनर्मूल्याकन करने पर अनुभव करता है कि धरती पर मनुज ऐक्य पर आश्रित नवीन सस्कृति शीघ्र स्थापित हो सकेगी। देश और काल की दूरी विज्ञान ने मिटा दी है, अब विभिन्न सस्कृतियो का मिश्रण हो रहा है। विज्ञान और अध्यात्म एक दूसरे के निकट आ रहे हैं। उन्हे एक दूसरे का पूरक बनना ही होगा यदि वे मानव मगल के आकांक्षी हैं। मानव कल्याण, मानव मगल को प्रगति देने की अभीप्सा से ही वशी मध्ययुगीन जीवन के निषेधात्मक दृष्टिकोण और वर्जन के सिद्धात से ऊपर उठकर नवीन क्रियात्मक जीवन दर्शन का आह्वान करता है। "मध्य-बिन्दु' खण्ड मे जहाँ-तहाँ कवि का उद्बोधक सदेश बडे सघन-सुन्दर वाग्बन्धो में रूपायित हुआ है—

---

१. कुमार विमल, 'लोकायतन' में वर्णित इन्द्र और सीता, नई धारा : जून १९६४ पृ० ५०-५१

चित् स्वर्ग प्रतीक्षारत, वह भू पर विचरे,
गत सस्कारो, धर्मों के गुठन त्यागो !
(पृ० २२५)

कुछ आगे चलकर कवि ने कतिपय उपनिषदो की कुछ प्रसिद्ध सूक्तियो को बडी ओजपूर्ण तथा समर्थ भाषा मे अनूदित किया है—

पावक मूर्द्धा, दिशि श्रवण, सूर्य शशि दृगवत्,
व्यापक, स्थित ऊपर नीचे, भीतर बाहर !
(पृ० २४१)

यहाँ कवि की भाषा मे कुछ वैसा भी सघन ओज तथा गरिमा है जैसी की उपनिषद् की मूल भाषा मे है। इस कोटि की रचनाएँ वही कवि प्रस्तुत कर सकता है जिसका भावबोध परिपक्व और शब्द चेतना पूर्ण विकसित है। इस काव्य मे कवि पत ने नवीन छद के अनेक रूपो का निर्माण एव समर्थ, सौष्ठवपूर्ण प्रयोग किया है, हिन्दी काव्य के लिए उनकी छन्द सम्बन्धी अनेक देनो मे यह प्रमुख है ·

खुले सूक्ष्म भावो के अतर्लोक,
झरे हरित भू पर चित् स्वर्ण प्रकाश
... ...
उषा लाज लोहित सुरबाला-सी
... .
षड् ऋतुओ की धूपछाँह ओढे
मधु अनन्त यौवना धरा भाती
(पृ० २२८)

अतिम पद्य मे कवि पत की सौदर्य-प्रवण चेतना अपने प्रकृत रूप मे मुखर हो उठी है। इस कोटि के आकर्षक प्रकृति चित्र जहाँ-तहाँ बिखरे मिल जाते है :

मधुऋतु दिशि वन पर्वत को
चेतना ज्वाल से छू कर
रंगों, गधो, गूँजो का
रसपर्व मनाती सुन्दर !
... ...

मुकुलो के मुख-परिमल का
बहता हिम ग्रथित समीरण ।

(पृ० १६१)[1]

वशी का जन-कल्याण के अर्थ को आत्मसात् करना 'लोकायतन' के द्वितीय खण्ड, 'अतश्चैतन्य' मे, प्रवेश करना है।[2] नवीन मूल्यो को मूर्त करने के प्रयास स्वरूप 'कला सस्थान' की स्थापना हो जाती है जो अध्यात्म और विज्ञान, पूर्व और पाश्चात्य का मिलन केन्द्र है, सामूहिक जीवन का प्रयोग-स्थल है।

यह नवीन जीवन दृष्टि मनुष्य की राग-आत्मा के सस्कार पर अधिक बल देती है। राग सबन्धी मूल्यो के प्रति व्यापक दृष्टिकोण 'लोकायतन' का अत्यत महत्वपूर्ण अग है। इस मानवतावादी चेतना के विरोध मे धरती के पिछले जीवन के अभ्यास, रूढि-रीति तथा परपरागत मान्यताएँ[3], जो मनुष्य की अह-

---

१. डा० देवराज : प्रतिक्रियाएँ (कल्पना, मई १९६५ पृ० ३४)

२. "लोक अपने सहज रूप में चेतन और अभिन्न है— पर आज विकृत होते होते जड़ और भेदग्रस्त होकर अधोमुख हो गया है—फलतः उसे अपने सहज रूप की उपलब्धि के लिए 'प्रयत्न' अपेक्षित है—और इसी उद्देश्य से 'वंशी' द्वारा 'लोकायतन' की प्रतिष्ठा कराई जा रही है। उसके अपने प्रयत्न उन आसुर भावनाओं को उलटने में हैं जो लोगों को अधोमुख कर रहे हैं—जड़ और भेदग्रस्त बनाते जा रहे हैं। वंशी के अपने प्रयत्न उन भावनाओं से प्रेरित हैं जो भेद और तज्जन्य संघर्ष को समाप्त कर देते हैं। वे ही भावनाएँ मानव की उपलब्धियाँ है, जिन्हे उसने पाशविक भूमिका से ऊपर उठने के संघर्ष में पाया है, जिसके कारण यह अपना अस्तित्व सिद्ध कर सका है। आज यद्यपि आप ततः हम अधोमुखी दिख रहे हैं—पर एक व्यापक मानवीय संपर्क के संदर्भ में देखा जाय, तो यह आधोमुखी सघर्ष और अधिक ऊपर उठने के लिए है और इस उत्थान की दिशा 'लोकायतन' देता है।"

रामसूर्ति त्रिपाठी : लोकायतन एक निरुक्ति (एक लेख)

३. "पराक्रम और पौरुष को पंतजी इसलिए भावी मनु के लिए अस्वीकृत कर देते हैं कि ये मध्ययुगीन आदर्श पाशविक गुणों के उदात्त संस्करण भर हैं। ··· क्या मनुष्य अपनी उस पूर्व परम्परा को काट फेंकेगा जो

मिका का विगत स्वरूप हैं, माधो गुरु के रूप मे विद्रोह करती है । माधोगुरु के शिष्य केन्द्र के छात्रों के विरुद्ध मिथ्या अपवादो का प्रचार करते हैं । वशी के हृदय पर भी माधो अविद्या शक्ति का प्रहार करते है । यह मानस युद्ध भावी मानव के मानस सघर्ष का प्रतीक है । इसी अवधि मे वशी को पाश्चात्य देशो की भौतिक समृद्धि और विकास के अध्ययन का अवसर मिलता है । वह पूर्व पश्चिम के दृष्टिकोणो की एकागिता का विश्लेषण कर एक व्यापक वैश्व समन्वय के सृजनात्मक सिद्धात पर पहुँचता है । "हिंदी मे सभवतः प्रथम बार वायुयान की यात्रा का भावात्मक, प्रभावशाली और विस्तृत वर्णन आया है ।

ब्रह्माड का रोमाचक चित्रण, विज्ञान की महत् देन का विशाल अकन, यत्र-युग के सूत्रधार पश्चिमी देशो का वर्णन, विज्ञान की देन का उद्-घाटन, ' आल्प्स, जिनेवा, फ्रास, यूनान, मिश्र, रोम, नारवे, स्वीडन, स्टाक हांम, इगलैन्ड, लदन, रूस, लेनिनग्राड, मास्को, बोल्गा, अमरीका और जापान आदि का एकदम मौलिक और मर्मस्पर्शी वर्णन यहाँ पाते है । पहली बार हिंदी का कोई महाकाव्य विश्व-काव्य के स्तर पर आया प्रतीत होता है । यह विश्व वर्णन कोरा वर्णन नही है, इसका कवि ने भावात्मक स्तर पर वर्णन किया है जो पर्याप्त सवेदनीय एवम् आधुनिकता बोध से ओतप्रोत है । उसका समग्र प्रभाव बहुत भव्य है । इसमे विश्व-ऐक्य का भाव-स्वर बहुत सशक्त है । एक दृष्टि मे समूचे विश्व को देखकर कवि रो पडता है । 'विश्व को आज शाति की भारी आवश्यकता है । यह शाति भारत से ही सभव है ।"[1]

सभ्यता के आदि काल से आ रही है ? यह परम्परा है, और परम्परा एक जीवंत प्रणाली होती है । उसका संपूर्ण काठ रूखा और सड़ा नहीं होता । इस प्राणवान और सजीव प्राणी के निरंतर विकास ही से वर्त्तमान के पत्र पुष्प बनते हैं ।"

कुबेरनाथ राय : रागचेतना का महाकाव्य, सरस्वती, मार्च १९६५ पृ० २१५ दुख है समाज-दर्शन, समाज शास्त्र और नैतिकता ने भी परंपरा के ऐसे सबल, स्वच्छ और जीवंत रूप को स्वीकार नहीं किया है । परंपरा 'जीवंत प्रणाली' नहीं मानी जाती । उसका देश-काल के अनुरूप सापेक्ष मूल्य होता है, अतः परिवर्तन, विकास एवं आवश्यकतानुरूप उसका उन्नयन, रूपांतर या त्याग आवश्यक है, अन्यथा समाज शिलीभूत हो जाएगा ।

१. विवेकी राय : लोकायतन, वस्तुतत्व चर्चा (उपलब्धि, मार्च १९६९ पृ० ३७-३८)

'ज्योतिद्वार' (अतर्विकास) मे मानव राग-चेतना के व्यापक विकास का चित्र, स्त्री-पुरुष के प्रेम का भावी स्वरूप, उपस्थित किया गया है। वशी केन्द्र मे एक अनाथ शिशु के पालन-पोषण करने की स्वीकृति दे देता है और 'पुत्रहीन स्त्री-जन रीते उर का/मुक्त प्रेम उसको करती अर्पित !' किंतु 'लोकायतन' का यह दृष्टिकोण जो माता-पिता की क्षणिक दुर्बलता का दोषी उनकी नवजात सतान को नही मानता—बच्चे तो सभी पवित्र होते है, वे भगवान् का रूप है—विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के स्वस्थ समाजवादी सिद्धात के प्रतिकूल पडता है। अत वे झुंझला उठते है, "पत जी अपने नवीन काव्य की कला को अधिक सूक्ष्म मानते है और छायावादी कला को 'किशोर कला।' तब यही कहना होगा कि पत जी की नवीन कला अधिक बूढो के लिए है किंतु अधिक बूढे पत जी के अध्यात्मबाद को ही पमन्द करेगे, लावारिस बच्चो की सिफारिश को नही !"[1] किंतु बच्चो को लावारिस कहना मानव-हृदय की बर्बरता एव अमानवीयता को ही इगित करता है, चाहे वह हृदय वृद्ध का, मध्यवयस का या नवयुवक का हो।

'अतर्विरोध' मे सत्-असत् का सघर्ष अधिक प्रबल हो उठता है, इतना प्रबल कि सत् असत् का समावेश कर अधिक व्यापकता और पूर्णता की ओर अग्रसर होता है। राम-रावण के युद्ध मे रावण युद्ध का कारण बनता है और 'लोकायतन' मे माधो गुरु।[2] हरि की मृत्यु माधो गुरु की दभी अह चेतना का

---

१. लोकायतन : उपदेशायतन (वातायन, अगस्त १९६४ पृ० २०)

२. माधो गुरु के बिना 'लोकायतन' अपूर्ण ही होता, अशक्त और प्राणहीन। क्योंकि वे वर्तमान जीवन के प्रतीक है, उसके कलुष के, द्वंद्व और विकृतियो के यथातथ्य रूप हैं। जीवन का विकास समरस या सहज विकास नहीं है। वह बिना 'माधोगुरु' के साथ संघर्ष के बढ़ ही नहीं सकता। 'लोकायतन' के कथावस्तु के संदर्भ में माधोगुरु कोई व्यक्ति विशेष नहीं हैं, वे जीवन की समस्त विपत्तियो, विप्रतिषेधों एवं असत् को अभिव्यक्ति देते हैं। चेतना का विकास सत्-असत् के संघर्ष द्वारा ही संभव है। किंतु 'जाकी रही भावना जैसी' अथवा त्रिगुणों में से किसी एक गुण के प्राधान्य वाले के लिए माधोगुरु निराला के अतिरिक्त कुछ हो ही नहीं सकते। ऐसो से केवल इतना कहना है कि वे स्वय अपने विगत को याद करें, जीवन का विश्लेषण करें और जो उन्हे अपनी प्रगति का विरोधी लगे

विनाश करती है। 'आत्म ग्लानि से गुरु अतर-कवलित/दिन दिन होते रहे क्षीण विघटित/वह असाध्य उर व्रण न भरा किंचित्!' गुरु का न रहना, व्यक्ति-मूलक सास्कृतिक सचरण एव जीर्ण अहता का न रहना था, उसका एक व्यापक सत्य, सामाजिक सत्य एव मानव सस्कृति का शुभ्र अश बन जाना था, 'रस प्रकाश से स्पष्ट कस रावण/नव्य सत्य मे होते लय, विकसित।'

माधो गुरु! उनका द्वेषी, कुठाग्रस्त, प्रतिस्पर्धी स्वभाव, उनकी शिष्य मण्डली, प्रचारक मण्डली! उनका विक्षिप्त हो जाना! यह सटीक व्याख्या है निराला की, पत की उन्ही के साथ तो प्रतिस्पर्धा थी। निराला के जीवित काल मे उस प्रतिस्पर्धा को उन्होने मन मे रखा और ''' ! पत पर आक्षेप ही आक्षेप! "निराला के प्रति 'लोकायतन' के इस प्रसग को पत के लिए अशोभन मानता हूँ! माधो गुरु के व्याज पत के शील और सौजन्य का अपकारक है।"[1] "लोग कहते है कि माधो गुरु के चरित्र मे श्री निराला की छाया है। इस प्रवाद को पूरा-पूरा नही स्वीकारा जा सकता है। परतु कुछ पक्तियो मे बडा ही स्पष्ट सकेत आया है।"[2] "मैंने कथानक के अर्ध काल्पनिक सूत्र का उल्लेख किया है। वह अर्ध काल्पनिक इसलिए है कि वशी कवि और माधो गुरु के व्यक्तित्व मे स्वय पत और निराला के व्यक्तित्वो की छाया मिलती है। 'लोकायतन' का हर आलोचक इस तथ्य की ओर सकेत कर चुका है। कलाद्वार के अतर्गत द्वद्व नामक उपखड मे माधो गुरु को रूढिवादी जड परम्पराओ और मूल्यो के प्रतिनिधि रूप मे चित्रित किया गया है। कही-कही व्यक्तिगत स्पर्शों के सकेत बिल्कुल स्पष्ट हो गए है। परनिंदा-रस-लोलुप रसिको का ध्यान 'लोकायतन' मे कही और रमे या नही इस प्रसग मे उनकी रसवृत्तियो का पूर्ण परिपाक होता है।"[3]

माधो गुरु और निराला के सबध मे अमृत के साथ हुई अपनी अतरग वार्ता मे पत का कहना है, "माधो गुरु मे देखिए पचास प्रतिशत तो कल्पना

वह व्यक्ति हो, परिस्थिति या परिवेश, उसका तनिक सूक्ष्म निरीक्षण करें, तो माधोगुरु अपने पौरुष के साथ हँसते दिखाई देंगे।

१ कुमार विमल . आधुनिक हिन्दी-काव्य पृ० १५५-१५६ ३८।

२. कुबेरनाथ राय : फिर 'लोकायतन' पर (सरस्वती, अगस्त १९६५ पृ० १२९)

३. सावित्री सिन्हा : लोकायतन (माध्यम, जून १९६५ पृ० ७७)

हैं। माधो गुरु हैं पिछले युग की अहता के, अस्मिता के प्रतीक। अनेक तरह के दृष्टिकोण है जिन्हे कि पिछला मनुष्य अनुभव करता रहा है, जो उसके भीतर से बोलते है। लेकिन शेष जो है, उसमे से पैंतीस या चालीस प्रतिशत कालाकाकर के ही एक राजकवि थे जिनसे मुझे उसकी प्रेरणा मिली। वे ब्रज-भाषा के कवि थे। उन्होने एक वानप्रस्थ आश्रम भी खोला था। वहाँ एक ऐसे साधु रहते थे, जो सिर्फ मिर्च खाते थे। तो माधो गुरु निराला कैसे हो सकते है ? हाँ, उसमे उनकी कुछ छाया आ गयी हो तो और बात है।"[1] इन ब्रजभाषा के कवि को सुरेशसिंह तथा निर्मल जी भली भाँति जानते है अथवा वे सभी लोग जानते है जो कुछ अवधि तक कालाकाँकर रहे है, इनका विद्वेषी स्वभाव, राजा साहब के कान भरना, अपने समान विद्वान तथा प्रतिभा-सम्पन्न कवि अन्य किसी को न गिनना—पत को पहिली बार अहतायुक्त प्रतिभा का ज्ञान हुआ। जिसने बचपन से ही यह माना कि मानव जीवन एव काव्य रचना साधना की अपेक्षा रखता है। सवेदनशील, भावप्रवण, सौंदर्यप्रेमी एव अध्ययनरत रहने के कारण उन्हे अभी तक मानव अहता का, अकारण उत्पन्न हुए मनोमालिन्य और कटुता का आभास तक नही मिला था। काला-काँकर के छोटे से गाँव के राजदरबार मे चाटुकारिता, अस्मिता, द्वेष आदि का पहिली बार स्तब्ध विमूढ अनुभव हुआ जिसे वह सामान्यत नही सह पाते किंतु सुरेश दम्पति का स्नेह—'उनका घर मेरा ही घर था।' अत. यही उनके कवि मानस ने विरोधी प्रवृत्ति को समझा, उसकी आवश्यकता और अनिर्वायता को पहिचाना, 'बोल उठा कवि मन—भव गति-क्रम ही/प्रभु की जीवन गाथा-रामायण', और इस रामायण मे राम तथा रावण दोनो का ही अवतरित होना अनिवार्य है। राम-रावण दो विभक्त तत्व नही है, एक ही सत्य के दो रूप है .

> धूम छँट गया युग कवि के मन का
> वशी के ही थे विलोम माधव,
> जान सका जिनसे वह अपने को
> साथ खडे थे प्राक्तन नव मानव !

इतिहास, ऐतिहासिक घटनाओ का सामान्य-सा ज्ञान जीवन के द्वद्वात्मक रूप को स्पष्ट कर देता है। युग चेतना सघर्ष से ही विकसित होती है।[2] अतः

---

१. धर्मयुग, ४ जनवरी, १९७० पृ० २०

२ 'फिर, ईश्वर के कार्य-यंत्र थे गुरु,
नव्य चेतना को देते ऋण गति !' 'लोकायतन', पृ० ५३१

गुरु और वशी दोनो को युग प्रतिनिधियो के रूप मे समझना होगा, ये दोनो एक दूसरे के पूरक है, विरोधी नही, 'मृषा धारणा थी यह जन मन मे/कवि गुरु मे है वैमनस्य गोपन/स्वच्छ अखडित था—अवैर बिम्बित/नवल चेतना का अतर-दर्पण ।'

किसी भी लेखक की लेखनी का मूल्याकन करने के लिए यह देखना आवश्यक होता है कि जिन घटनाओ का उसकी कृति मे वर्णन है वे एक जीवत सत्य सी प्रतीत होती है या नही । और इस दृष्टि से माधव गुरु का चरित्र खल-नायक के रूप मे शक्तिशाली है, सप्राण है । जीवन मे ऐसे अनुभव होते ही है विशेषकर उसे जो एक सत् उद्देश्य को लेकर चलता है । वर्तमान युग का भारत तो इसका ज्वलत उदाहरण है । तुलसी के शब्दो मे :

'सोइ सयान जो परधन हारी । जो कर दभ सो बड आचारी ॥
जो कह झूँठ मसखरी जाना । कलियुग सोइ गुनवत बखाना ॥'

× × ×

'जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ ।
मन क्रम बचन लबार तेइ बकता कलिकाल महुँ ॥'

और इसलिए उन्होने रामकथा के प्रारभ मे ही दुष्टो एव सत् विरोधी प्रवृत्ति की वन्दना की है :

'बहुरी बदि खल गन सतिभाएँ । जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ ।''

तो क्या तुलसी भविष्य-द्रष्टा थे ? अथवा माधो गुरु और उनके शिष्यो का अनुभव उन्हे भी हुआ था जिसे रामकथा की भक्तिमयी सलिला मे उन्होने अनावश्यक ही रोडे-पत्थरों की भाँति रोप दिया और इस भाति कथा मे अपनी व्यक्तिगत कुठाओ को आरोपित कर अपनी 'अवचेतनमूलक' आत्मकथा

'प्रभु लेते जब जन्म जगत् कम में
वे विभक्त कर देते भव अंतर,
सदसत् का हो बोध लोक मन को
संघर्षण से कढ़े सत्य जित्वर !'
वही, पृ० ५३०

का 'विस्फोट' किया।[1] तुलसी की लेखनी के प्रति, उसके समकालीन साहित्यिक-आलोचक न होने के कारण, हमे कोई ऐसे आग्रह (दुराग्रह) नही मिलते है। अतः सब कुछ रामकथा का सहज अग लगता है। किंतु कथा चाहे रामकथा हो, चाहे भागवत, यदि उसका परिप्रेक्ष्य व्यापक है, तो वह ऐसे खलनायको एवं सत्-असत् प्रवृत्तियो के माध्यम से ही जीवन को बिंबित करते हुए आगे बढती है। बिना रावण और राक्षसो एव घृणा, द्वेष, अहमिता की ध्वसकारी प्रवृत्तियो के विकास अवरुद्ध हो जाएगा। काल की दृष्टि एव सापेक्ष दृष्टि से ये कथाएँ अनुभवो से ही उद्भूत होती है। यद्यपि कवि का अनुभव कथा के रूप मे विकसित होने पर रूपातरित हो जाता है। उसकी कल्पना उस व्यापकता को अपना लेती है जो अविच्छिन्नता की आड मे किसी व्यक्ति विशेष तक सीमित नही रहती। सभी लेखक यह जानते है कि उनके विराट् चरित्र किसी व्यक्ति विशेष तक सीमित नही रहते, वे केवल प्रेरक होते है[2] और उसके बाद लेखनी उस प्रकार के अनेक चरित्रो को लपेट लेती है। ऐसी स्थिति मे यदि पत के जीवन के आधार पर उनके द्वारा निर्मित माधो गुरु को लें तो वे कालाकाँकर के राज कवि जी[3] के छल-छद्म, निराला की

---

१ रामरतन भटनागर : 'निराला की साहित्य-साधना' कल्पना मार्च १९७० पृ० ६२

२. इसलिए किसी भी कथा का मूल्यांकन करने के लिए यह जानना आवश्यक है कि लेखक ने जीवन अनुभव का उपयोग किस प्रकार किया है, न कि उसे वह अनुभव किससे मिला है।

३ "अमृत राय के साथ संलाप में पंत जी ने कालाकाकर के किसी राजगुरु को माधो गुरु की मूल प्रेरणा बता कर अपनी चेतना की सफाई देनी चाही है।... ..."

रामरतन भटनागर : 'निराला की साहित्य-साधना' कल्पना, मार्च १९७० पृ० ६२।

भटनागर जी पंत को जानते हैं, पत काव्य का भी उन्होने अध्ययन किया है, फिर भी आश्चर्य है कि उन्होने उपर्युक्त वक्तव्य कैसे दे डाला। अपने लेखन, साहित्य एवं साहित्यिक सिद्धांतों के बारे में पंत अत्यधिक दृढ और स्पष्टवादी हैं। प्रचण्ड से प्रचण्ड आक्रमण उन्हे हिला नहीं सकता।

अहमिता तथा विश्वयुद्ध के वरद वरदान[1] को प्रतिबिंबित करते है अथवा

ऐसी स्थिति मे झूठ बोलने की आवश्यकता ही नहीं होती। काव्य मर्मज्ञों से यह भी कहना चाहूँगी कि क्या 'लोकायतन' बिना माधो गुरु के पूर्ण होता ? जीवन का द्वद्व तो तत्वो के विरोधी स्वरूप का सूचक है, एक तत्व (प्रकाश) के प्रति आग्रह जितना ही तीव्र होता है उसका विरोधी तत्व (अंधकार) अपने मिटने के भय में उतनी ही तीव्रता से विरोध करता है। और इसलिए काव्य के मूल्यांकन के लिए इस पर विवेचन एवं प्रकाश डालना आवश्यक है—माधो गुरु का चित्रण जीवंत हुआ है या नही। यदि केवल आलोचना (ध्वंसात्मक !) ही आलोचको का लक्ष्य हो तो सभी प्रकार का छिद्रान्वेषण उचित है।

१. "पिछले महायुद्ध से प्रचार के दो बड़े सूक्ष्म सिद्धांत निकले हैं और दोनो ही बड़े घातक हैं। एक तो यह कि अगर किसी झूठी-से-झूठी चीज के बारे में बराबर दुहराते जाओगे कि वह सच है तो कुछ दिनो में लोग उसे सच मान लेंगे। दूसरी यह कि अगर किसी चीज को मारना, नेस्तनाबूद करना चाहते हो तो उसकी बुराई भी न करो, ' ' उसकी ओर से उदासीन हो जाओ, उसकी उपेक्षा करो, उसका कोई नोटिस ही न लो।" बच्चन, 'कवियों में सौम्य संत' पृ० १८५-१८६

तथा देखिए :—

"दुहराओ, बहुमुख से दुहराओ
झूठ सत्य बन जाएगा निश्चित,
करो उपेक्षा सब तटस्थ रहकर
स्वयं सत्य मर जाएगा अकथित !

'लोकायतन' पृ० ५१४

और यह प्रथम सिद्धांत माधो गुरु तथा निराला जी पर सटीक बैठता है। हजारों कंठो से निनादित बात को झूठा कहने वाला तथा सिद्ध करने वाला, दोनो ही क्या झूठे प्रमाणित नहीं होते। काल की प्रतीक्षा कीजिए, गवाहों की भारी संख्या, उनका समवेत गर्जन ! यह सब समसामायिक गर्जन काल के प्रवाह मे बह जाएंगे और आगामी पीढ़ी

उस सत्य को जो रामायण मे परशुराम और रावण तथा कृष्ण-कथा मे कस के रूप मे अवतरित हुए ।[1]

'लोकायतन' के भीतर से यदि माधो गुरु और वशी को समझने का प्रयास करे तो वशी युग चेतना की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है और माधो गुरु उस विरोधी प्रवृत्ति को जो चेतना को युग-प्रबुद्ध बनाती है, निश्चेतन के अधेरे स्तरो का अनुभव प्राप्त कराती है। क्योकि 'लोकायतन' धार्मिक-नैतिक-सामाजिक सुधारवाद का काव्य न होकर मानव के सर्वांगीण रूपातरण का काव्य हैं। इस तथ्य पर प्रारभ मे ही सीता के चित्रण द्वारा प्रकाश डाला गया है। सीता निश्चेतन की गुहा मे बैठी है जहाँ से मानव जीवन—प्राण, मन के सभी स्तरो का उन्नयन सभव है। वशी की चेतना को युग बोध के प्रति प्रबुद्ध करने के लिए ही माधो गुरु अभिचार करते है। वशी की चेतना को निश्चेतन स्तर का ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह आघात आवश्यक है अन्यथा उसका धरती का ज्ञान एकागी रह जाता।

माधो गुरु के अभिचार से सबद्ध एक भ्राति पाठको के मन मे अलोचको के द्वारा और उपजाई जा रही है। वाग्विलास को माध्यम कहने का अर्थ उसे तात्रिक कहना नही है, "पत जी ने अपने भोले भ्रमवश रामविलास को 'लोकायतन' मे वाग्विलास बनाकर जो तात्रिक का यश प्रदान किया है, वह कम्बख्त इसके कतई योग्य न था। 'ऊ ह्री क्ली फट्' वाली साइन्स से डा० शर्मा की कोई दूर-दराज की जान पहिचान भी नही है।"[2] यह सामान्य सा मनोविश्लेषणात्मक सत्य

तटस्थ होकर निर्णय दे सकेगी क्यो कि उसकी प्रतिबद्धता किसी एक के प्रति नही होगी।

१. हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि 'ज्ञातव्य' में पंत कह चुके हैं कि 'लोकायतन' के "चरित केवल मानव चेतना के पालकी वाहक भर हैं।" 'लोकायतन' पढ़ते समय इस तथ्य का हम विस्मरण नहीं कर सकते अन्यथा हम अपने ही निर्मित किए हुए मकड़ी के जाले (मानसिक!) में उलझ जाएंगे और पात्रों की ऐतिहासिकता को खोजने में अंधी गली में भटकते रह जाएंगे।

२. अमृतलाल नागर : औपन्यासिक प्रतिभा का नया परिचय (आलोचना अप्रेल, जून १९६६ पृ० ८७-८८)

है कि माध्यम ज्ञाता नही होता वरन् माध्यम वह होता है जिसमे समर्पण प्रवृत्ति होती है, जो दृढ सकल्प का नही होता। यही नही अभिचार का अर्थ सिद्ध तान्त्रिक की कला मात्र नही है, यह हमे प्रतिदिन के अनुभव मे पता चल जाता है कि कुछ लोगो की कुटिल बुद्धि के साथ उनकी सकल्पशक्ति (निश्चेतन की क्रियाए) इतनी प्रबल होती है कि उनका स्वल्प सामीप्य मन को अनजाने ही दु खी और उदास कर देता है। ऐसे तथ्यो को समझने के लिए तत्र-मत्र, टोटके, काला जादू आदि के विज्ञान मे जाना आवश्यक नही है, मनोविज्ञान पर्याप्त प्रमाण दे सकता है, फिर यदि कोई सवेदनशील और भाव-प्रवण हो, ग्रहणशील बुद्धिसम्पन्न हो तो उसके पास उसी के अनुभवो का पुष्ट प्रमाण रहता है। और इन सब बातो के अतिरिक्त पत का उद्देश्य है अभिचार द्वारा वशी को युग की द्वद्वात्मक प्रवृत्ति एव निश्चेतन मानस की गहराइयो से परिचित कराना। ताकि वह जीवन के दोनो पक्षो—सत्-असत्—एव व्यापक जीवन को समझ सके अन्यथा उसका ज्ञान और अनुभव एकागी रह जाते। महायुद्ध के परिणाम स्वरूप जिस वाणी के विलास (वाग्विलास) का, अति प्रचार तथा दलगत मूल्याकन के रूप मे प्रयोग होता पाते है वही, वाग्विलास का अर्थ है। पत के सभी पाठक जानते है कि वे शब्दो के चयन मे सतर्क है। अर्थ और लय के बिना शब्द उनके लिए निरर्थक है।

'अतिविरोध' की समाप्ति के साथ 'उत्क्राति' का जन्म होता है जो कि वशी के मानसिक विकास—साधनागत आरोहण—को लक्षित करता है। साधना की विभिन्न भूमियाँ नैसर्गिक सुषमा की अनेक भाव भगियो मे रूपायित होती है और वशी का मन सौदर्य का मूल्याकन करने लगता है—उर्वशी, मेनका, रभा अथवा सभ्रात वर्ग की सुषमा मण्डित नारियाँ उसे वास्तविक

तथा "पन्तजी में एक जड़ हठ भी है, यह मैंने अभी कुछ वर्षो पहले ही पहचाना ···मुझे लगा कि माधोगुरु का सृजन करना पत जैसे बड़े आदमी के लिए उचित नहीं था। रामविलास को वाग्विलास के रूप में देख कर मुझे बड़ी हँसी आई थी। मैने भगवती बाबू से कहा भी था कि पंतजी ने जाने किस मूड मे तेजपात से महकते बढ़िया बासमती चावल में ककड़ भी मिला दिए। खैर, यह दोष दिठौना आपकी इच्छानुसार लगाना था सो लगा दिया। वस्तुतः इसे मैं पतजी का सहज रूप नहीं मानता।" नागर जी का पत्र २ दिसम्बर '६६

सौंदर्य से मण्डित नही लगती। वह सोचता है वह सौदर्य व्यर्थ है जो भू विकास रचना श्रम से युक्त नही है, ये अप्सरियाँ शोभा की केंचुल मात्र है, इनका सौदर्य शिवत्व युक्त नही है।[1] इस प्रकार कवि को नए मूल्यो का आभास मिलता है—वह समझ जाता है कि ईश्वर सृष्टि से पृथक् नही है और न स्वर्ग ही जगत् के ऊपर है। वह मानव राग-चेतना के व्यापक विकास, स्त्री-पुरुष के प्रेम के स्वच्छ रूप को आवश्यकता को महत्व देता है। 'राग ग्रथि खुलती न काम-कर से/नही वासना-मुक्ति दमन-औषध/भाव उन्नयन ही सामूहिक पथ/पशु का ऊर्ध्व विकास नही पशु बध!' केन्द्र मे विदेशी युवक-युवतियाँ भी है—सभी मिलजुल कर रहते है। राग चेतना के विकास के क्रम मे एकाध चारित्रिक पतन की घटनाएँ भी मिलती है जिन्हे वशी अवाछनीय मानता है किंतु अक्षम्य नही। कालक्रम मे जब वशी का उद्देश्य पूरा हो जाता है और युग चेतना का विकास सूत्र मेरी से सबद्ध[2] हो जाता है तो वशी की सत्ता विलीन हो जाती है।[3]

---

१. 'लोकायतन', पृ० ५३९-५४१

तुलना कीजिए, "विकासकामी, ऊर्ध्वकामी मनु के नाम पर वे 'परिन्दे' चाहते हैं, नभचारी शुक चाहते हैं जो केवल मधुर फल खायें और केवल शकुन उचारें।"

कुबेरनाथ राय : रागचेतना का महाकाव्य (सरस्वती, मार्च १९६५ पृ० २१०)

२. तुलना कीजिए : "कवि की राग-चेतना का महाकाव्य एवं प्रणय इसी बाला से मिलता है।" वही, पृ० २१३

तथा "मेरी नाम की एक पश्चिमी युवती संस्थान मे आयी और उसने वंशी को विशुद्ध प्रेम में बाँध लिया। उसने लघुवंशी की माँ बनने का वरदान प्राप्त कर लिया।"

ब्रजबिहारी तिवारी : विचार प्रधान काव्य, लोकायतन, पृ० ३

भारतीय साहित्य मण्डल, ११८४ 'अ', नल्लगुट्टा सिकन्दराबाद-३

३. मै या तुम करते न सत्य धारण
सत्य वह्नि से जग समग्र अधिकृत,
नाम न, पुरुषोत्तम गुण नाम रहित,
नाम रूप जिसके अंकुर अगणित! 'लोकायतन', पृ० ५४७

राग भावना के जिस सस्कृत स्वरूप की व्यापक व्याख्या 'लोकायतन' मे मिलती है उसके बारे मे लोगो ने कई प्रकार की आपत्तियाँ खडी की है; मुख्यत· इन आपत्तियो का मूल उनके मानसिक पूर्वग्रह मे है, और गौण रूप से ये आपत्तियाँ तब विराट् हो जाती हैं जब 'वैष्णव धर्म', 'कम्यूनिस्ट कम्यून', 'व्यक्तिगत साधना', 'परम्परागत नैतिकता' के ही सदर्भ मे 'लोकायतन' की राग-चेतना का गला घोटने का कृत्रिम प्रयास किया जाता है। राग भावना को स्त्री-पुरुष सबध तक सीमित करने वालो को 'लोकायतन' के विरुद्ध यह आपत्ति है कि हाड मास से निर्मित मनुष्य के लिए विश्व जीवन या सर्व जीवन मे राग भावना को वितरित करना सभव नही है। यह सभवत: स्वय उनके स्वभाव की सीमा है अथवा वह प्रचलित विश्वास है जो सदियो से यह मानता आया है कि राग भावना का सबध दैहिक जीवन से ही है। किंतु मनुष्यत्व के मूल्य को दैहिक भावना (न कि राग चेतना !) तक सीमित कर देना[1] मनुष्य की योनि को पशु योनि तक सीमित कर देना है, जहाँ व्यापक आदान-प्रदान, मानवीय स्नेह, दया, जन-कल्याण, सहानुभूति आदि रीते शब्द हो जाते है। यह मनुष्य की प्रबुद्ध चेतना की माँग है कि स्त्री-पुरुषो, युवक-युवतियो के सबधो एव पारस्परिक आकर्षण को देह बोध के कटघरे मे बदी नही बनाया जा सकता, यह मनुष्यत्व के प्रति अन्याय है। देह के अतिरिक्त भावनात्मक स्तर पर भी स्त्री-पुरुष सामूहिक या परस्पर रूप से सास्कृतिक सबध स्थापित कर सकते है, सह-शिक्षा का यह मुख्य प्रयोजन है। इसी कारण पर्दा-प्रथा का विरोध किया गया, लडके-लड़कियो का एक दूसरे से पृथक्करण उनके राग चेतना के स्वस्थ विकास के लिए हानिप्रद माना गया। आज की नैतिक-सामाजिक सस्कृति स्त्री-पुरुषो के सम्मिलित जीवन-कर्मों अथवा सामाजिक उत्सवो को उचित अथवा शिक्षा-सभ्यता का चिह्न मानती है जहाँ वे स्वच्छन्दतापूर्वक हँस-बोल सकते है और किसी सीमा तक आकर्षण-विकर्षण

---

१. **"राग साधना को यदि व्यक्तिगत रखा जाए तो कोई एतराज नहीं। वैष्णवो ने ऐसा किया ही है।··· इन कला केन्द्रो में व्यवहारतः कम्यूनिस्ट 'कम्यून' पद्धति आ विराजेगी और वर्जन-मुक्त राग-साधना 'सामूहिक पत्नीत्व' से आगे नहीं जाएगी।"**

कुबेरनाथ राय : रागचेतना का महाकाव्य (सरस्वती, मार्च, १९६५ पृ० २१५)

का अनुभव करते हैं। किन्तु राग चेतना के अपरिपक्व विकास के कारण सभ्यता और पर्दे की ओट मे भी अमनुष्योचित घटनाएँ घटित होती हैं जो व्यक्ति तथा समाज दोनो के लिए हानिप्रद है। 'लोकायतन' स्वस्थ सामाजिक जीवन के लिए प्रशिक्षित करने की अनिवार्यता पर बल देता है। भारत मे प्राचीन काल मे स्वयवर की प्रथा थी, स्त्री को अपने लिए पति वरण का अधिकार था। पत का यह काव्य इस प्रथा को अधिक व्यापक और सस्कृत स्तर पर अपनाता है। ताकि युवक-युवतियो को एक दूसरे को पहिचानने के लिए उचित रागात्मक शिक्षण और उन्नयन का अवसर मिल सके। जब युवती किसी युवक को चुन ले तो उसका यह चयन स्थायी होने के साथ ही उसके तथा समाज एव विश्व के लिए मगलमय हो।

भविष्य जीवन की अधिक विकसित परिस्थितियो मे—और कुछ सीमा तक आज भी—जब स्त्री-पुरुषो को मिल जुल कर सामूहिक रूप से सामाजिक सास्कृतिक निर्माण का कार्य करना होगा उनमे परस्पर का भावनात्मक, सास्कृतिक, सामाजिक, बौद्धिक आदान प्रदान भी मुक्त रूप से बढता जाएगा। राग सबधी मूल्य, मानव सस्कृति के विकास के आधारभूत सत्य के रूप मे, पिछले सभ्यता के युगों मे भी रहा है जिसके उदाहरण शिव-पार्वती, सीता-राम, राधाकृष्ण आदि के राग प्रतीको का जीवन है। जब तक राग भावना का सस्कार नही हो सकेगा तब तक मानव सबधो मे स्वच्छता, सत्यता तथा मागल्यपूर्ण सौदर्य भावना का उदय सभव नही हो सकता। न मानव सबधो मे आतरिकता, हार्दिकता तथा स्थैर्य ही आ सकता है। इसी दृष्टि से राग भावना के परिष्कार को पत ने महत्व दिया है.

> वैराग्य नही भव दुख विनाश का साधन,
> अनुराग-मूर्त हो सामूहिक जन जीवन !
> विधि लक्ष्य न आत्मिक शुद्धि मात्र—यम सयम,—
> मन के सँग भू प्रागण का भी हरना तम !

(पृ० २३०)

> यदि ब्रह्म सत्य तो जग भी सत्य असशय

(पृ० २३१)

और इसलिए इस भू की रज—रूप-रस-गध—का विकास करना, उनके समुचित मूल्य को समझना आवश्यक है

इद्रिय जीवन से वचित करना
आध्यात्मिकता को अनिष्ट भीषण
× × ×
करुणामय का हाथ पकड कर जो
भू मंगल प्रति विरत—मोक्ष पथचर !! . . .
विद्या, घोर अविद्या तत्रो से
भारत का साधक मन चिर परिचित,
आत्म नाश का एक गुह्य कारण
रहा अविद्या तत्र यहाँ निश्चित ! (पृ० ५७२-५७३)

अत. धरती की चेतना को उसकी समग्रता मे स्वीकार करने के लिए पत ने कहा है :

जीवन से विलग नही ईश्वर,
इद्रिय हो आत्मा की गवाक्ष,
हो धरा स्वर्ग ही प्रभु का घर !

(पृ० ६२२)

पत आध्यात्मिकता या दार्शनिकता का रूढ़िवादी अर्थ मे प्रयोग नही करते है—उनके लिए आध्यात्मिकता वह नही है जो देह-प्राण-मन के मनुष्य की उपेक्षा कर उसके भीतर किसी असपृक्त आकाशीय तत्व की स्थापना करे। वे आध्यात्मिकता को मानवीयता के भीतर देखना चाहते है। उन्नत मानवीयता ही आध्यात्मिकता है। अत उन्नत मानवीयता या आध्यात्मिकता वह है जो मानव प्रवृत्तियो का उन्नयन तथा सस्कार करती है। सभवतः वर्तमान भोग-वाद तथा यौन-जीवन को सर्वोपरि माननेवाला युग उस सामूहिक सस्कार तथा उन्नयन की पहिली सीढी हो जो आज अवचेतन से प्रभावित है और जिसे वशी उच्च सस्कृत चेतना से सचालित करना चाहता है क्योकि जीवन को उन्नीत इदियो के धरातल पर बहिर्मुक्ति देने के लिए उसे अतर्मुखी मूल्य बोध से युक्त करना अनिवार्य होता है।

पिछले युगो मे और वर्तमान युग मे भी, जब आध्यात्मिक और लौकिक जीवन मूल्यो के बीच विरोध की खाई वर्तमान रही है, इद्रिय जीवन के बारे मे हीन भावना का बना रहना या उसे तुच्छ ध्येय समझना स्वाभाविकता है। आज का विकृत मस्तिष्क यदि आध्यात्मिकता को लौकिकता के स्तर पर लाने

और मानव जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति और इद्रिय कर्म को उच्च मानवीय मूल्य देने मे अपने को असमर्थ पाता है तो यह उसकी मूल्यजनित भ्राति एव सीमा ही है। 'लोकायतन' मे यदि इद्रिय जीवन को स्वस्थ मानवोचित मूल्य प्रदान किए जाने की सभावना पर प्रकाश डाला गया है[1] तो इसमे 'मधुवन के सन्यासियो' के अनुकूल कुछ नही है वरन् उन सभी के प्रतिकूल है जो सौ चूहे खाकर हज करने की बात करते है। 'लोकायतन' मानता है कि दुर्बलता एव क्षणिक आवेश अक्षम्य नही है। यदि व्यक्ति पश्चाताप एव बोध द्वारा आगे के लिए सम्हल जाता है, जैसा कि सुदर, आस्था, अजित की चारित्रिक दुर्बलताओ के माध्यम से समझाया गया है, तो यह मानव विकास मे ही सहायक होगा। किन्तु आज के मनुष्य की मान्यताएँ (सभवत दमित वासनाएँ) ऐसी सहिष्णुता का यह कह कर उपहास करती है कि यह तो मनुष्य को 'वासना का कीट' बनाना है।

जब आज का समस्त विज्ञान, मानवता का विगत इतिहास, इद्रिय जीवन की स्वीकृति का बोध है तो यदि 'लोकायतन' साहित्य और सस्कृति की दृष्टि से मनुष्य के सर्वांगीण विकास—उसके सपूर्ण जीवन और अस्तित्व की स्वीकृति द्वारा उसके उन्नयन—को अभिव्यक्ति देता है तो उसमे मात्र वासना और कामगध ढूँढने वाले कलाविद् अभिनन्दनीय नही है। विशेषकर इसलिए भी कि अपने दुराग्रह मे वे भूल जाते हैं कि निर्माण—चाहे वह वस्तु का हो या व्यक्ति का—प्रारभिक अवस्था से ही प्रारभ करना होता है। छह मजिला भवन बिना गहरी पक्की नीव के सम्भव नही है, मानवता एव मनुष्य का विकास इद्रिय,

---

१. यौन कर्म हो रस पवित्र संस्कृत,
. . ...
फूलो के मधु शोभा तल्पों पर
शुभ्र प्रीति ले जन्म स्वर्ग पावन !
× × ×
जाने कैसी प्रीति पुरुष-स्त्री में
नया हृदय कर रही सूक्ष्म सर्जित,
बाँध युग्म को नव मानवता में
श्रद्धा की कर स्वर्ण रज्जु निर्मित।
'लोकायतन', पृ० ४६३-४६५

प्राण, मन के स्तर से ही सम्भव है। पत का 'लोकायतन' अपने पुष्ट व्यापक एव मानव मगलकामी दृष्टि कोण के कारण अवश्य ही दिखावटी निषेध और थोथी वर्जनाओ का अतिक्रमण करता है क्योकि वह भीतर और बाहर एक सी ही स्वच्छता चाहता है। वह नही चाहता कि दिखावटी मान्यताओ की आड मे लोग वैयक्तिक कुकर्मो पर रामनामी चादर डाल और इस दृष्टि से 'लोकायतन' दुहरे व्यक्तित्व के लोगो पर एक चुनौती है—क्या कभी आपने अपने व्यक्तिगत जीवन पर सोचा है ? क्या साहित्य सपूर्ण जीवन का प्रतिबिब नही होता ? क्या वह केवल छूँछी मान्यताओ एव उन दिखावटी बातो (सभ्यता, शील) का प्रदर्शन है जो जीवन की प्रगति से असबद्ध और निर्लिप्त है ? मानवता की दृष्टि से 'लोकायतन' की उपादेयता का निराकरण नही ही किया जा सकता। 'लोकायतन' जहाँ मानव चेतना के उच्च शिखरो के बोध या प्रकाश को जीवन मगल के लिए प्रयुक्त करना चाहता है वहाँ उपचेतन, अवचेतन या निश्चेतन के गुह्य अज्ञान या अधकार का भी मथन कर उसे सामाजिक-सास्कृतिक प्रकाश के स्वरूपो मे वितरित करने की आकाक्षा रखता है। अपने इसी उद्देश्य के कारण 'लोकायतन' राग-भावना एव राग चेतना का काव्य है। किंतु जहाँ आलोचना अपने आप मे अपरिहार्य होती है[1] (और लोग

---

१ "इस मामले में (रागमूलकता) कवि ने अरविंद के पूर्णयोग की सीमा का अतिक्रमण कर दिया है। फलस्वरूप, कवि ने जीवन में सहज रस की स्थापना तथा सांसारिक साधनो से भी आनन्द (सुख नहीं) की प्राप्ति के लिए योग और भोग में इतरेतर अध्यास पैदा कर दिया है। निश्चय ही कवि ने उन लोगों के मन की बात नहीं कही है, जो लिंगनाल पर ही परम सुख को पाते हैं, तथापि दार्शनिक शब्दावली की प्रवंचना के साहाय्य से राग-चेतना को अत्यधिक महत्व देकर कवि ने एक नये सहजिया मार्ग या पुष्टिमार्गी माधुर्य को प्रशस्त कर दिया है। ' 'इस तरह 'लोकायतन' मे वासना का शुभ्र राग के रूप में स्वीकरण योगियो की 'बज्रौली मुद्रा' का स्मरण करा देता है। यहाँ यह तर्क दिया जा सकता है कि 'लोकायतन' निवृत्तिपंथी काव्य नहीं है। अतः प्रवृत्ति और रागचेतना को स्वीकार कर पंत ने 'लोकायतन' में 'मिट्टी की महिमा' को लुंठित नहीं होने दिया है।······यो गृह और जग में रहकर भी मानसिक असंगता और अनासक्ति के द्वारा' ' 'मुक्ति सुख भोगते रहना पुराने जमाने में भी अक-

भूल जाते है कि बज्रौली मुद्रा या वैणष्व रस साधना वैयक्तिक साधना पथ है तथा 'लोकायतन' की राग साधना सामूहिक-सामाजिक और सास्कृतिक कोटि की है) वहाँ ऐसे कथनो के अतर में पैठना व्यर्थ होता है। क्योकि ऐसी आलोचनाएँ आलोच्य को समझने, आत्मसात् करने के प्रयास से उद्भूत नही होती हैं। उनके पीछे एक निश्चित रूढिवाद है, किसी स्वीकृत, परिचित या परम्परानुमोदित सिद्धात के आधार पर समझने का प्रयास जो यह तो बतला देता है कि आलोचक कितना विद्वान है—अथवा उसने कितनी पुस्तकें पढी हैं, विदेशी कवियो, आलोचको का ज्ञान उसका कितना व्यापक एव महान् है—वह कोलरिज, स्टीफेन स्पेंडर, हर्बर्ट रीड, हॉपकिंस, ऑस्कर वाइल्ड, टी. एस. इलिएट, एबरक्रोम्बी, मिल्टन, वर्जिल, होमर, प्लेटो, हीगल आदि के साहित्यिक मानदडो, विचारो, भावनाओ और साहित्य की सरलता से बाते कर सकता है, तुलनात्मक परीक्षण की बात कर सकता है, परिणामत: आलोच्य कृति ('लोकायतन') के प्रति उसमे एक विरक्ति (एकरसता) का भाव उत्पन्न हो जाता है और उसे प्रारभ मे ही यह पढ कर खीझ उठती है कि पत ने 'लोकायतन' के रचना

लिप्त नहीं था। ...(शिवसहिता, पंचम पटल)। मेरी दृष्टि में 'लोकायतन' ऐहिकामुष्मिक सुख की धारणा को एक दार्शनिक धरातल पर उपस्थित करता है।"

कुमार विमल : (आधुनिक हिन्दी-काव्य) पृ० १५०-१५२

तथा "सहजानुभूति या रागवृत्ति के मुक्त अकुण्ठित विकास की वकालत पत जी उसी तरह करते हैं जैसे डी० एच० लारेन्स की अनेक कविताएँ और कथाएँ। पर इसके आगे पंत जी प्रेम को 'पारस्परिक समर्पण' के रूप में देखते हैं और लारेन्स 'पारस्परिक संघर्ष' के रूप मे। पंतजी की जीवन-दृष्टि के पीछे अध्यात्म और वैष्णव-रस की साधना है और लारेन्स के दृष्टिकोण के पीछे जीव-धर्म का विज्ञान—बॉयोलाजी। · परन्तु पंतजी अरविन्द के साथ भी बडी दूर नहीं जाते हैं। वे आत्मा की सत्शक्तियों के प्रस्फुटन का गान नहीं करते हैं जो 'डिवाइन सांग्स', 'सावित्री' · ·आदि में व्यक्त है। लोकजीवन में 'तम' और 'रज' की भूमि परिष्कृत करके उनका महाकाव्य रुक जाता है। विशेषत: 'रज' की परिष्कृति ही उनका मूल विषय ज्ञात होता है। पर इसके बाद भी बहुत कुछ रह जाता है। ... ...राग वैष्णवी शक्ति है। पर यह बहुत ही मायाविनी शक्ति है। यह

काल की चर्चा क्यों की है, क्यो यह 'दावा' किया है कि "चार वर्ष के अल्प समय मे एक महाकाव्य की रचना" की है जब कि 'सुप्रसिद्ध रोमानी आंग्ल कवि कोलरिज ने महाकाव्य के सबध मे चर्चा करते हुए एक स्थान पर लिखा है कि किसी भी महाकाव्य की सरचना के लिए कम से कम बीस वर्ष अपेक्षित है; इनमे से दस वर्ष तो महाकाव्य लिखने की तैयारी के लिए ही चाहिए ।' ' 'हमारी समझ से पत के 'लोकायतन' के शैथिल्य का सबसे बडा कारण यही है कि कवि ने उसकी सर्जना मे यथेष्ट समय नही दिया ।"[1] जब भी किसी काव्य का मूल्याकन ढेरो अन्य कृतियो के सदर्भ मे किया जाता है, न कि उसके स्वतत्र रूप मे, तो यह देखकर जगह-जगह ऊब उठनी स्वाभाविक हो जाती है कि क्यो ढेरों विदेशी रचनाओ के साथ ही 'कामायनी,' 'अधा युग', 'सावित्री' की भाँति 'लोकायतन' मे भी उसी प्रकार परि-स्थितियाँ उत्पन्न नही की गई है । ऐसे आवेशजन्य आक्रोश मे यह न समझ सकना सहज हो जाता हैं कि प्रत्येक लेखक के लिखने का ढग भिन्न होता है, प्रत्येक लेखक की प्रतिभा की विशिष्टता होती है ।[2] एक कविता (छोटी-सी ही) एक कवि बीस दिन, महीने, दो महीने मे लिखता है तो दूसरा पाँच मिनट मे, यह सब सृजन प्रेरणा के बलवती होने पर निर्भर है । इसी भाँति सृजन प्रेरणा का सहज स्फुरण होने पर ही लिखने पर काव्य को बार-बार माँजने की

राधा-माधव का महाभाव रूप ले सकती है पर जरा सी असावधानी होने पर पागल मजनू या वासना-कीट भी बना सकती है ।..... कलाकेन्द्र में रागसाधना ही 'साध्य' है पर वैष्णव रस साधना इसे 'साधन' से अधिक नहीं मानती । कलाकेन्द्र की साधना का आधार भी प्राण-स्तरीय अनुभूति है और 'माध्यम शरीर' ('रज') है परन्तु वैष्णवों में आधार अप्रत्यक्ष सत्ता (श्रीकृष्ण) हैं और माध्यम प्राण भी नहीं, मन है । यही कारण है कि पंत जी वैष्णवों के साथ भी एक सीमा तक ही जाते हैं ।"

कुबेरनाथ राय : रागचेतना का महाकाव्य (सरस्वती, मार्च १९६५ पृ० २१४-२१५)

१. डा० शम्भूनाथ चतुर्वेदी : लोकायतन : पुनरावृत्ति और एकरसता का घेरा मूल्यांकन, जून-सितम्बर '६६ पृ० ३२-३६, ३०, माडेल हाउसज, लखनऊ

२. तुलसीदास जी ने रामायण दो वर्ष, सात महीने और छब्बीस दिन में लिखी ।

आवश्यकता नही पडती—प्रथम बार मे ही वह ठीक उतर आता है, न कि दस बार लिखने पर। जहाँ तक महाकाव्य के तथ्य और उद्देश्य को आत्मसात् करने की बात है, उसमे अवश्य समय लगता है, कम से कम पत ने सत्रह वर्ष लिए क्योकि इसकी कल्पना सन् '४२ मे उनके मानस मे उतर गई थी।

'लोकायतन' को समझने मे एक अलक्ष्य कठिनाई इस कारण भी उत्पन्न हो गई है कि आँख मूँद कर उसे अरविंद दर्शन की छायानुकृति समझने का शास्त्रीय प्रयास किया गया है तथा प्रश्न उठाया गया है, "अरविंद दर्शन से प्रभावित इस काव्य को क्या एक साप्रदायिक काव्य नही माना जायगा?" अथवा डाक्टर वीरेन्द्र सिंह का कहना है कि यदि गाधी और अरविद के दर्शन को भी ध्यान मे रखा जाय तो पत की भावना, अनुभूति और चितन को अधिक स्पष्ट रूप मे समझा जा सकता है।[1] डा० शम्भूनाथ चतुर्वेदी तो लोकायतन के इति-अथ मे, उसके एक-एक अक्षर मे अरविंदवाद ही आरोपित करना चाहते है, "लोकायतन के 'पूर्वस्मृति' सर्ग मे रामायण की पौराणिक चेतना का मोह पत से नही छूट सका—उन्होने राम, सीता, लक्ष्मण, उर्मिला तथा वाल्मीकि आदि की अवतारणा कराई है, परन्तु वह भी एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए। वह उद्देश्य है युग-मन मे नव ऊर्ध्व चेतना के प्रति आकर्षण उत्पन्न करना। राम-कथा का प्रयोग अरविन्द-दर्शन के प्रचारार्थ किया गया है, और वह भी सशक्त रूप मे नही। राम-कथा की उपादेयता वही तक है, जहाँ तक वह अरविन्दवाद के अनुकूल वातावरण तैयार कर सके। और शायद इसीलिए रामायण के पात्रो की चर्चा 'पूर्व-स्मृति' सर्ग के बाद नही की गई। सीता नयी युग चेतना की प्रतीक है। तुलसी के राम को वे लोग अधिक प्रिय है, जो उनका स्मरण या भजन करते है। · · तुलसी के राम जन-मन की अपने प्रति आसक्ति देखना चाहते हैं, और लोकायतन के राम जन-जीवन के प्रति जनासक्ति के दर्शन करना चाहते है। पत के राम को वे लोग प्रिय है, जो लोक-कार्य मे रत है।

---

१. तथा देखिए : "लगभग सात सौ पृष्ठ का यह भविष्यत् काव्य अंतर-बाह्य अभ्युदय, योगीराज अरविन्द की अतिमानस कल्पना, संक्रमण कालोपरांत के भारतीय विकास, गांधीवाद की छाप और विश्व की आधुनिकतम प्रगति को अपने अंचल में सहज रूप से समेट कर चलता है।"

विवेकी राय. लोकायतन : वस्तुतत्व चर्चा। उपलब्धि, मार्च १९६९ अंक ४ (हिन्दी विभाग, काशी विद्यापीठ)

लोक-कर्म मे रत अजस्र जो मानस
वे जीवन-शिल्पी मेरे प्रिय जन नित

पत के काव्य मे स्थान-स्थान पर मध्ययुगीन-चेतना का विरोध किया गया है। इसका प्रमुख कारण है अरविन्द का प्रभाव। भौतिक जीवन से पलायन करने की अपेक्षा उसकी विवेक सम्मत व्याख्या और समुचित साधन की खोज को अरविन्द ने अधिक महत्व दिया है। लोकायतन मे पन्त प्रियतम का घर भी भू-जीवन ही मानते है। ' क्या रामायण के सभी पात्र केवल अरविन्द-दर्शन के प्रचारार्थ ही नही घसीटे गए ?" "पन्त ने लोकायतन द्वारा पाठको को अरविन्द-दर्शन मे दीक्षित करने का सफल (या असफल) प्रयास किया है, भावात्मक प्रभाव डालने की चेष्टा उनमे उपलब्ध नही होती।"[1]

---

१ डा० शम्भूनाथ चतुर्वेदी : लोकायतन . पुनरावृत्ति और एकरसता का घेरा मूल्यांकन, जून सितम्बर ६६ पृ० ३४-३५

तथा "कहना न होगा इस कहानी में बहुत बडी गुंजायश थी और यदि पन्त जी अरविन्दवाद या अध्यात्मवाद तक बन्द नहीं होते, तो एक बहुत अच्छे काव्य की रचना हो सकती थी।"

मन्मथनाथ गुप्त : हिन्दी साहित्य के दो शतक, आजकल, जनवरी १९६८ पृ० ८

तुलना "अरविन्द योगशास्त्र में रागचेतना का तिरस्कार नहीं है और 'काम प्रवृत्ति दिव्य जीवन का एक अंग है, यह उनके दिव्य जीवन की साधारण प्रतिज्ञा है। पन्त जी अपने लोकायतन में इसी की उपपत्ति पेश करना चाहते हैं। पर अरविन्द दर्शन रागचेतना के समुचित विकास के साथ ही समाप्त नहीं होता है। वह आगे तक जाता है : आत्मा का पूर्ण प्रस्फुटन उसका अन्तिम लक्ष्य है, जो उसके बाद की अवस्था है डी० एच० लारेंस एक सीमा तक अरविन्द दर्शन के समांतर जाता है ! ··· ··· चिंतन की प्रारम्भिक भूमि उभयनिष्ठ होने के कारण कहीं-कही लगता है कि 'लोकायतन' में डी० एच० लोरेन्स का प्रेत बोल रहा है !

श्री कुबेरनाथ राय : 'रागचेतना का महाकाव्य', सरस्वती, मार्च १९६५ पृ० २१४

चतुर्वेदी जी की दृढ प्रतिज्ञता के लिए क्या किया जाए वे राम का एक ही रूप देखना चाहते है, तुलसीमय रूप । पर राम, सनातन पुरुष ! वे वाल्मीकि के हृदय मे, कम्बन, व्यास (अध्यात्म रामायण), कृत्तिवास (बगला), मैथीलीशरण गुप्त, श्री अरविंद, पत आदि सभी के हृदय के सत्य रहे है । यदि पत ने पूर्व-स्मृति मे रामायण के पात्रो की अवतारणा कराई है तो यही पात्र 'लोकायतन' की कथा मे युगीन आवश्यकतानुरूप वशी, हरि और सिरी बन जाते है, ठीक वैसे ही जैसे हमारे यहाँ भागवत चेतना युग परिस्थितियो के अनुरूप मत्स्य, कच्छ, नृसिह आदि का स्वरूप धारण कर लेती है । जीवन-विकास और उपादेयता के अनुरूप अवतारो के रूप और कर्म-क्षेत्र मे अन्तर आ जाता है । आज मर्यादापुरुषोत्तम राम और निष्कासित सीता का आदर्श जीवन को प्रगति देने मे असमर्थ है—यह निर्विवाद एव स्वत स्पष्ट है । यदि तुलसी बीसवी शताब्दी मे रामायण लिखते तो उसका कथा-सूत्र, सामाजिकता, मान्यताएँ आदि भिन्न ही होती । यह सच है कि शाश्वत एक, अद्वितीय है किन्तु उसकी अभि-व्यक्ति का माध्यम देश और काल होना है । रहा पत का अरविन्दवाद,[1] जो चतुर्वेदी जी के अनुसार उनसे कहलाता है :

लोक कर्म मे रत अजस्र जो मानस
वे जीवन शिल्पी-मेरे प्रिय जन नित

---

1. "In Lokayatana the emphasis is on an exclusive identification of the Divine with the Collectivity, with सामूहिक जीवन । I do not know how far this exclusive stress is tenable, for, all living schools of Darshanas have accepted the Virat—or विश्वरूप, Universal, as an aspect of the Divine, विश्वात्मा is also spoken so often as ब्रह्मन् in philosophy. But to maintain जग ही में सभव प्रभु दर्शन (636) or तुम जीवन ईश्वर को पूजो/वह प्रेम अनिर्वचनीय परम (672), सर्वात्म श्रेय ही भू मानव का ईश्वर (230), जग जीवन ही में संभव ईश्वर दर्शन (230). This exclusive stress does not give proper value to the Transcendent Divine."*

A. B. Purani : Some Aspects of Lokayatan
(Unpublished essay)

ऐसी स्थिति मे चतुर्वेदी जी गीता के इन कथनो को कैसे समझाएगे ?

कर्मणैव हि ससिद्धिमास्थिता जनकादय ॥
लोकसग्रहमेवापि सपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥ (३.२०)

... .

न मे पार्थास्थि कर्त्तव्य त्रिषु लोकेषु किंचन ।
नानवाप्तमवाप्तव्य वर्त एव च कर्मणि । (३.२२)

. ... —

दु खमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभय-त्यजेत्
स कृत्वा राजस त्याग नैव त्यागफल लभेत् । (१८.८)

... ...

कार्यमित्येव यत्कर्म नियत क्रियतेऽर्जुन
सङ्गत्यकात्वा फल चैव स त्यागः सात्त्विको मत. (१८.६)

---

*लोकायतन मे परात्पर लोक-मूर्त होकर भी परात्पर ही रहता है लोक से असंपृक्त वह ऊर्ध्व अनुभूति मात्र है। और यह श्री अरविंद तथा पंत में एक मूलभूत अंतर की ओर लक्षित करता है । इसी अतर पर पुराणी जी अपने पत्र द्वारा भी प्रकाश डालते हैं ।

"The fundamental note I may state changing the first Mantra of the Isha and say : लोकायतनमेव वास्यं देवस्य or ईश्वरस्य—I have to state it in terms of Sumitra even if God is suffocated in the Loka, or feels that his Omnipotence is being circumscribed by a flood of universal love ! In fact, the Divine in Sumitra is more than suffocated in this particular loka (लोक)—that is why such a brilliant outburst of universal love which turns this wretched earth into a glorious heaven !—of course, not immediately, but in course of time.

पत ने मध्ययुगीन चेतना को प्रश्रय नही दिया है, यह प्रमाणित करता है कि पथराई हुई जडवत् मृत सस्कृति को उनका मानव कल्याणकारी विकासकामी मानस स्वीकार नही कर सकता। कोई भी भारतीय इतिहास का निष्पक्ष पाठक सामान्य मनस्थिति मे यह स्वीकार करेगा कि मध्ययुगीन चेतना हमारे ह्रास, पतन और दासता की प्रतीक रही है, इस तथ्य को उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध—भारतीय पुनर्जागरण—ने अपनी राष्ट्रीय, सामाजिक और दार्शनिक चेतना द्वारा स्पष्ट कर दिया था। राजा राममोहन राय, महर्षि देवेन्द्रनाथ, केशवचद्र सेन, स्वामी दयानन्द, रामकृष्ण परम हस, महात्मा गाधी, टैगोर, विवेकानन्द, रामतीर्थ, श्री अरविंद आदि उस मध्य-युगीन वेदात को स्वीकार नही कर पाए जिसने पलायनवाद, वैराग्यवाद, जगत मिथ्यात्व एव वैयक्तिक मुक्ति की धारणाओ को प्रश्रय देकर भारत के सामाजिक, राजनैतिक जीवन को मृतप्राय कर दिया था। किंतु फिर भी यदि कोई कल्पना मे ही जीना चाहता है तो लाचारी है, ठीक उसी भाँति जिस प्रकार कि प्रेमचद्र जी की कहानी 'शतरज के मोहरे' के खिलाडी अपने चारो ओर के परिवेश और जीवन को भूलकर शतरज (मध्ययुगीन निष्क्रिय चेतना) से ही चिपक कर उसका परिणाम भोगते है।

'कामायनी' और 'लोकायतन' की तुलना भी आलोचको को आवश्यक लगी क्यो कि पत ने कहा है .

> कैसे कह दूँ इडा लुब्ध युग-मनु से,
> श्रद्धा सग वह करे मेरु नग-रोहण
> आत्मबोध की निष्क्रिय समरस स्थिति को
> जन-भू-पथ पर करना सक्रिय विचरण।

ये पक्तियाँ प्रसाद की अवमानना की सूचक होने के अतिरिक्त और कुछ नही हो सकती। अवश्य ही पंत के मन मे प्रसाद के प्रति प्रतिस्पर्द्धा की भावना है अन्यथा कामायनी काव्य की अद्वितीयता को स्वीकार करने के विपरीत पत ने उसके अभाव (जनमगल की दृष्टि का अभाव) की ओर सकेत क्यो किया है। साहित्य के प्रणेता यह क्यो भूल जाते है कि 'लोका-

---

A. B. Purani . letter dated 20-11-64
तथा देखिए : वादों का विश्व अ० १८

यतन' का आधार, उद्देश्य एव सर्वस्व जन मगल है, और साथ ही, प्रत्येक युग, देश और काल का साहित्यकार उन सबका ऋणी है जो उसके पूर्व थे अथवा जो समकालीन है। एक प्रबुद्ध व्यक्ति को सपूर्ण विश्व-जीवन शिक्षित करता है किंतु वह भी विश्व-जीवन, साहित्य, चिंतना और विचार को अपनी दृष्टि-प्रदान करता है। यही उसकी मौलिकता है, यही प्रगति का लक्षण है अन्यथा ज्ञान एक लोहे की मजूषा मे अपनी अनन्तता को खोकर सीमित हो जाएगा। नि सदेह ज्ञान असीम है और उसे प्राप्त करने की मनुष्य की असीम पिपासा पीढी दर पीढी प्यासी ही रह जाती है। प्रसाद के प्रति पत प्रणत है ·

तुम मन· स्वर्ग के शिल्पी
नव कविता वनिता के वर,
फिर श्रद्धा-कर से नूतन
जन लोक रचो दिक् सुन्दर।

स्पष्ट ही पत का 'लोकायतन' प्रसाद की परपरा से अपने को असम्बद्ध नही करता, उसी परम्परा को अपनाते हुए आज की भू मगलकामी चेतना का आह्वान करता है।[1] कामायनी वह पीठ है, प्रासाद है जो भू मगलकामी चेतना का पूर्ववर्ती है। भारतीय दर्शन मे वैयक्तिक दृष्टि (मुक्ति, आनद) को छोटा नही माना गया है , शकर अद्वैतवाद के साथ ही व्यक्ति-मुक्ति तथा

---

१. "कायायनी में प्रतिष्ठित आनन्दवादी शैव दृष्टि समष्टिमूलक होते हुए भी मूलतः वैयक्तिक है। पंत का लोकदर्शन उस शिखर से आरम्भ होता है जहाँ पर 'कामायनी' का दर्शन समाप्त हुआ था।"
डा० सावित्री सिन्हा। 'लोकायतन', विवेचना संकलन-२ पृ० ३५-३६
तुलना, "कामायनी के अंत में मानसरोवर की भूमिका पर कवि ने जिस आनंद तत्व का साक्षात्कार किया है, वह वैयक्तिक मुक्ति का स्वरूप नहीं है वरन् विश्व मुक्ति का संदेश वाहक है। इस प्रकार पंत जी ने अपने विचारो का उल्लेख करते हुए महान् कवि प्रसाद के साथ न्याय नहीं किया है।"
डा० प्रेमलता बाफना : 'पंत का काव्य,' पृ० ४२८ (१९६९) साहित्य सदन, देहरादून

सर्व-मुक्ति के प्रबल समर्थक मिलते है। किंतु यह भी निर्विवाद है कि "आनन्द वादी शैव दृष्टि · 'मूलत. वैयक्तिक है।" यह ठीक है कि आज की व्यापक मानवतावादी दृष्टि व्यक्ति और समाज को एक दूसरे से अभिन्न, एक दूसरे का पूरक मानने के कारण वैयक्तिक शुभ और सामाजिक शुभ मे भेद नही करती, किंतु तब हमे 'शुभ' को समझना होगा। दर्शन मे भी जब हम व्यक्ति-मुक्ति और सर्व-मुक्ति की बात करते है तब हम किसी विशिष्ट सिद्धान्त को छोटा नही कहते वरन् अपनी तात्विक दृष्टि को अभिव्यक्ति देते है।

'लोकायतन' के कथानक के बारे मे भी अनेक भ्राति जाल फैल गए हैं। पता नही स्वय कवि के इस कथन, "इसके चरित्र केवल मानव चेतना के पालकी वाहक भर हैं" को पूर्वाग्रहपूर्वक एव हठधर्मितापूर्वक विस्मरण करके यह कई शब्दो, कई विधियो और वाक्यो द्वारा कहा गया कि इसमे कथावस्तु तो है ही नही। "इसका मूल कथानक अपेक्षाकृत बहुत सीमित और सक्षिप्त है।"[१] "कोई स्पष्ट सूत्र हाथ नही लगता है। ऐसा लगता हैं कि जो कुछ कवि कथ्य है, जो कुछ पत जी अपना नया कहना चाहते हैं वह तो प्रारम्भ 'आस्था' मे ही समाप्त हो गया और आगे तो ढीले-ढाले कथानक के आधार पर ऊर्णा कातनी है।"[२] "लोकायतन मे वस्तुतत्व अत्यधिक क्षीण है, एक बहुत पतले डोरे पर, जो बीच-बीच मे अदृश्य हो जाता है, धारणाओ का स्तूप खडा किया है, सृजनविधि से यह गलत हुआ है।"[३] 'लोकायतन' अपने नाम और अतर्तथ्य के कारण 'युग जीवन की··· भागवत कथा है।' किंतु युग-जीवन एव लोक-जीवन के नाम पर यह कोई उपन्यास नही है, घटनाओ का त्वरित गति से घटित होता हुआ सम्मोहन मत्र नही है,[४] यह है मानव धरातल पर व्यक्त विकासशील चेतना के स्वरूप का वर्णन। समग्र सृष्टि एक ही है, एक ही चैतन्य, एक ही भागवत कथा, किंतु लोक-जीवन एव भू-जीवन मे उसे सघर्ष

---

१. डा० प्रेमलता बाफना : 'पंत का काव्य', पृ० ४४४

२. कुबेर नाथ राय : रागचेतना का महाकाव्य, सरस्वती, मार्च, १९६५ पृ० २१०

३. डा० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय : लोकायतन : उपदेशायतन, वातायन, अगस्त १९६४ पृ० १६

४. पंत की दृष्टि में लोकायतन का प्रत्येक शब्द एक अंतर्मुखी कथानक है।

करना पडता है, अपने को पहचानने के लिए। राम-युग एव कृषि-सभ्यता के युग से आज के युग तक चेतना अनेक भँवर जालो को तोडती हुई आगे बढ रही है। मध्य युग ने इसे परम्पराओ मे जकड दिया था। अब आज के वैज्ञानिक युग मे आवश्यक है कि हम इसके सहज सचरण और विकास की प्रगति के लिए कर्मरत हो। बशी, इसीलिए, सुदरपुर मे आश्रम की स्थापना करता है। किंतु जिस भाँति सुदरपुर किसी स्थल विशेष का नाम नही है,[1] वह सचेतन कर्मनिष्ठ व्यक्तियो का वह आवास है जो कही भी हो सकता है उसी भाँति आश्रम-जीवन गतव्य जीवन नही है, क्यो कि विकास-क्रम मे आश्रमिक चेतना को ध्वस्त होना पडता है। फिर भी 'सुदरपुर' भारत का प्रतीक है क्यो कि पत मानते है कि वैज्ञानिक ज्ञान तब तक अपूर्ण और अकल्याणकारी है जब तक उसका आध्यात्मिक शलाका मार्ग-दर्शन नही करती है। आज भारत मे अध्यात्म, आश्रमिक जीवन, निषेधात्मक प्रवृत्ति से युक्त हो गया है। इसकी अपनी विशेषताए रही हैं। यह पवित्रता और शुभ्र दृष्टि का केन्द्र रहा है। निःसदेह आश्रम के तप पूत द्रष्टाओ ने सर्वोच्च सत्य को वाणी दी किंतु वह वाणी जन मगल नही कर पाई, धरती का मुख कुरूप ही रहा। जीवन दरिद्र और अभावग्रस्त ही बना रहा, मानो ईश्वर ने धरती को त्याग दिया हो। अत 'लोकायतन' मानता है कि आश्रम कुछ दूर तक तो हमे ले जाते है, ईश्वर प्राप्ति मे वे सहायक है किंतु ईश्वर को जीवन मे

---

1. "The poet's vision of universal love, beauty and harmony is projected through the intellect with its rich imaginative and aesthetic power The expression is predominantly intellectual surcharged with universal sense of beauty. The poem is set in Indian rural surroundings but it covers the whole of life of mankind today and brings in all the problems of modern life "

   A. B Purani Some Aspects of Lokayatana (for thought).

   (Unpublished essay)

प्रतिष्ठित करने के लिए हमें ऐसे आश्रम का भी त्याग[1] करना होगा जो केवल ऊर्ध्वमुखी है।[2]

चेतना जब तक अपनी स्वतत्रता नही समझेगी मानवता बौनी ही बनी रहेगी। चेतना की स्वतत्रता मानव-मूल्यो की स्वीकृति है, यह वह जीवन है जो भागवतमय है। क्या 'लोकायतन' का चेतना का सहज जीवन जो प्राण, कामना, वासना, भावना, सवेग, बुद्धि और मन को कलुषता, द्वैत, द्वद्व पाशविकता, लोलुपता, ममत्व, अहमिता, एव स्वार्थ से मुक्त कर देना चाहता है, 'पौरुष-प्रधान जीवन-दर्शन' पर प्रहार है ? पौरुष से, यदि अभिप्राय, शेर के चिंघाडने एव पाशविक शौर्य, तलवार से गला काटने, गोली मारने, रक्त-पात करने मानवता की नृशस हत्या एव शक्ति लालसा से है तो नि सदेह 'लोकायतन', पौरुष-प्रधान काव्य नही है, और यह उसकी महत्ता है। पौरुष यदि पुरुषोचित जीवन-दर्शन का सूचक है, मानवीय मूल्यो का पर्यायवाची है, मनुष्यत्व की स्वीकृति है तो 'लोकायतन' पौरुष-प्रधान काव्य है। वह चेतना के विकास का सघर्ष, मानवीय मूल्यो को आत्मसात् करने का सघर्ष है।[3]

---

1 "I have not said anything about the portion dealing with Sri Aurobindo,' because I am connected with him or to the world now Sri Aurobindo's stand for acceptance of life and the growing activities of the Ashram is a standing proof

A. B. Purani : Letter dated 24-11-74.

२. तुलना "आश्रमो की संकृति से हम परिचित हैं। पर 'आश्रम' हमें कहाँ तक ले गए ? 'अरविंद आश्रम' के भीतर और बाहर की सस्कृति के विरोध को ध्यान मे रखना चाहिए था। हम यह अनुभव कर चुके है कि 'आश्रम संस्कृति' हमें एक प्रकार के जकड़ाव में डाल देती है। कवि को इस विडम्बना को देखना चाहिए था।"

डा० जगदीश गुप्त : लोकायतन, विवेचना संकलन-२ पृ० ४२

३. "द्वंद्व में तीव्रता और दाह का अभाव है। हड्डी मांस वाले व्यक्तियो का द्वंद्व पंत जी को प्रिय नहीं है, उन्हें केवल दो धारणाओं का द्वंद्व प्रिय है और वह कलात्मक रूप में।"

इसी संदर्भ मे यह भी कहना उचित होगा कि रागतत्व का जीवन मात्र वासना एव शूकर-जीवन नही है। रागतत्व का परिष्कार समस्त अबौद्धिक तत्वो का परिष्कार है। मनुष्य, जैसा कि वह अभी सकीर्ण, स्वार्थी और अह

डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय : लोकायतन : उपदेशायतन, वातायन, अगस्त १६६४ पृ० १३-१७

उपाध्याय जी अपने समस्त साम्यवादी ज्ञान के बावजूद यह भूल गए है कि आधुनिक युग का संघर्ष विचारों, धारणाओ, मान्यताओ एवं सिद्धांतो का भी सघर्ष है।

तथा देखिए "लोकायलन मे झरनो का-सा विद्रोह तथा मुखरता नहीं है। उसमें मंद गति से प्रवाहित आर्यावर्त की गगा की-सी गंभीरता और समरसता है। युग की वीभत्स समस्याओ से संघर्ष किया गया है किंतु उनसे युद्ध नहीं। उन्हे प्रेम की सरिता में डुबो कर पवित्र किया गया है। पंत की रसज्ञ और कोमलवृत्ति संस्कार से अलग नहीं जा सकी। वर्तमान भारत की बुराइयो का शिष्टता और मिष्टता से विरोध है।"

"विश्वव्यापी सुख और शांति के विराट् अग्रदूत पत की काव्य प्रतिभा 'लोकायतन' में चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुई है।"

ब्रजबिहारी तिवारी : विचार-प्रधान काव्य लोकायतन पृ० ४ तथा ६

भारतीय साहित्य मण्डल, ११८४ 'अ', मल्लगुट्टा, सिकन्दराबाद-३

तथा "साहित्कार अपने वर्तमान में ही जीवित रहता है। युग की समस्याओ का यथार्थपरक सिहावलोकन करके पंत इस काव्य मे अमर हैं। स्वतंत्र भारत की अधोगति से पंत का लोक अनुभूत मानस कंपित और पीड़ित है। 'संस्कृति द्वार' खण्ड में उनकी आत्म पीडा का जो चित्र उभरा है वह उनकी मनुष्यता का सबलतम पक्ष है। इस क्षेत्र में उन्होने हिन्दी के प्रायः सभी साहित्यकारो को पीछे छोड दिया है। वे इस युग के महान् द्रष्टा और आलोचक हैं।' 'प्रकृति के चितेरे पंत की लेखनी अवसर पाते ही प्रकृति के कई मनोरम चित्र खींच देती है। काव्य की अधिकांश घटनाएं प्रकृति की कोमल गोदी में घटती या संपन्न होती हैं। नागरिक जनरव से मन कलुषित होता है, किंतु प्रकृति लोक की पवित्र सहचरी है। वह इस काव्य की पृष्ठभूमि

से युक्त है, उसके जीवन को सुदर और सुखमय बनाने के लिए उसके सपूर्ण व्यक्तित्व और स्वभाव का परिष्कार करना होगा—काम-भावना, इच्छा, प्रवृत्तियो, सवेदनाओ, का सस्कार द्वद्वात्मक भेदमूलक बुद्धि का परिष्कार है। विभिन्न धर्मो के इतिहास साक्षी हैं कि ऐसे सम्यक् परिष्कार के अभाव के कारण ही उनके धर्मों, साधनाओ, केन्द्रो का स्खलन हो गया। "राग समस्त जीवन नही है"—यह 'लोकायतन' मानता है किंतु वह इस तथ्य के प्रति भी आँख नही मूंद सकता कि तनिक सी असावधानी होने पर राग मनुष्य योनि को पशु योनि मे घसीट सकता है तथा इसका सबसे बडा शत्रु आत्म-वर्जन का सिद्धात है। अतः राग का धीरे-धीरे परिष्कार और जीवन सघर्ष के माध्यम से उसका उन्नयन अनिवार्य है। 'लोकायतन'[1] मे राग तत्व के दर्पण मे समग्र जीवन-अध्यात्म को बिम्बित किया गया है। राग चेतना का सामूहिक सस्कार वैयक्तिक भक्ति का ही विकास है।

है। 'उत्तर स्वप्न' मे उनका सत्य इन्द्रधनुषी है जिसमें समस्त विश्व संबद्ध है। वहाँ उन्होने मानव को सौंदर्य द्रष्टा और सौन्दर्य स्रष्टा दोनों रूपो मे देखा है। 'प्रीति' में सौंदर्य और प्रेम की अगाध गंगा लहरें मारती है। आंतरिक और बाह्य सौंदर्य एकाकार है। प्रेम की इस विराट् परिधि में बंधन, उत्तेजना और संकीर्णता का नाम तक नहीं है। केवल नारी की अतुल ममता, स्नेह और प्यार का सागर पनघट की गागर से छलकता हुआ नजर आता है। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, रवीन्द्र, प्रसाद और अरविंद इसी विराट् प्रेम के उपासक थे। वर्षो से संचित पंत का अंतर्मुखी रस 'लोकायतन' में बहिर्मुखी होकर छलक पड़ा है। निज प्राण को सबके प्राणो से बाँधने की उनकी चिर अभिलाषा इस काव्य में पूरी हुई है।"

वही, पृ० ३-५

१. 'तुम्हे सौंपती, लो, यह कनक अमृत घट,
नर नारी के रस मंगल से पूरित,
प्रकृति पुरुष की शुभ्र प्रीति का पावक
सावधान, बन जाय न विष जन-भू हित।

'लोकायतन', पृ० ३४

'लोकायतन' की चेतना मधुपायियो का स्तवन गान नही करती वरन् मनुष्योचित जीवन जीने वालो को आत्म-सतोष का जीवन प्रदान करती है।[1] वह मानती है कि मनुष्य का कल्याण उसके मनुष्य बने रहने मे है। यह नितात मिथ्या है कि 'लोकायतन' ने मनुष्य को 'मधुपायी तितली' बनाना चाहा है। वह 'मनुष्य की शोभा मनुष्य बने रहने मे' ही मानता है पर कौन-सा मनुष्य ! सस्कृत एव आत्मिक एकता के बोध का जीवन जीने वाला मनुष्य !

'लोकायतन' जन मगलकामी भू चेतना का काव्य है। भू चेतना जीवन की विराट् पृष्ठभूमि मे कार्यरत है। घटनाए, पात्र आदि रगमच पर आते है और अपना कार्य पूरा करने के साथ ही चले जाते हैं। "घटना, पात्र और भावनिरूपण के बावजूद एक अजीब ठडापन इस काव्य मे है। कहा गया है कि यह लोक जीवन का काव्य है। लेकिन यह काव्य लोकजीवन की ऊष्मा से सर्वथा शून्य है। इसमे प्राणतत्व नही है। लोकजीवन इसमे बिंबित नही हो सका है। ऐसा लगता है कि इसके पात्र कवि के विचारो को व्यक्त करने के लिए सुनियोजित है। इसी कारण पात्रो मे भी जीवतता नही है।"[2] पत के 'लोकायतन' से यह शिकायत कइयो को है, और मुझे लगता है कि लोकजीवन के नाम पर हमे एकदम लोक-नृत्य, लोक-गान, आचलिकता को समझने का जो अभ्यास हो गया है वही इस उपालभ के मूल मे है। चेतना के काव्य मे ऊष्मा अनिवार्य तत्व नही है। एक विराट् चित्र मे चेतना का क्रमिक प्रस्फुटन ही 'लोकायतन' है। इसमे वर्तमान ह्रास युगीन तिक्त लोकजीवन की ऊष्मा के बदले भावी मानवोचित लोकजीवन की शात सौम्य उर्जा है, जो उत्तप्त न होकर प्रसन्नशीतल है।

---

१. कांट का 'परिपूर्णता का राज्य' आनंद प्लावित सद्गुणी जीवन है। वह उन्नत राग का सूचक है।

२. डा० रामदरश मिश्र : लोकायतन, विवेचना संकलन २ पृ० ४१
"'लोकायतन' में प्रारंभ से लेकर अंत तक अभिव्यक्ति का उच्च स्तर बना रहता है, वह कम संतोष की बात नहीं है। एक भी छंद कहीं से उतरा हुआ प्रतीत नहीं होता। लेकिन इस अभिव्यक्ति में उष्णता की कमी है। संपूर्ण कृति में एक प्रकार का निर्जीव ठंडापन पाया जाता है।"
विश्वम्भर 'मानव' : 'पंत और लोकायतन', पृ० ९५-९६ (किताब महल, इलाहाबाद। प्रथम संस्करण १९७०)

'लोकायतन' के 'उत्तर स्वप्न' मे कवि के संदेश का पूर्ण परिपाक हुआ है। पूर्वस्मृति लोकायतन की पीठिका है तो उत्तर स्वप्न उसका कलश है। या यो कह सकते है कि पूर्वस्मृति प्राक्कथन है, तो उत्तर स्वप्न लोकायतन का उपसहार है।

उत्तर स्वप्न मे कवि ने मानव के भावी स्वरूप को अकित किया है। आरभ मे कवि जिस समस्या का समाधान खोजने निकलता है, उत्तर स्वप्न उसका समुचित समीचीन उत्तर है। आरभ मे कवि इस ऊहापोह मे था कि

> "कैसे कह दूँ इडा लुब्ध युग मनु से
> श्रद्धा सँग वह करे मेरु-नग रोहण,
> आत्मबोध की निष्क्रिय समरस स्थिति को
> जन-भू-पथ पर करना सक्रिय विचरण !"

जन भू-पथ पर सक्रिय विचरण करने से पहले, कवि ने वाणी से वर माँगा था .

> "भारत चेतस् को कर लोक समन्वित
> भू जीवन की ओर करो रत अ-विरत,
> वह विरक्त; जीवन निषेध विष मूर्छित,
> जाति पाँति, मृत रूढि रीति से श्री-हत !"

वाणी के वरदान-स्वरूप उत्तर स्वप्न तक आते आते मानव-मन जाति पाँति, मृत रूढि रीति से श्री-हत नही रह गया है, और न भारत का चैतन्य एकदेशी-यता की सीमाओ मे ही आबद्ध है। पत जी का लोकायतन काव्य चेतना के स्वर्णकलश से मडित एक ऐसा बृहद् विशाल स्वप्न-सौध है, जिसमे लोकमानस के भावी स्वरूप का और मानवता के प्रति मगलकामना का शाश्वत निवास है।"[1]

---

१. नरेन्द्र शर्मा : 'पंत जी का लोकायतन काव्य'
तथा "इसका (लोकायतन) का महत्व महाकाय होने के कारण नहीं है। प्रबन्धात्मकता एवं वर्णन कौशल के कारण भी इसका महत्व है। इसका महत्व है विश्व के सम्मुख—भारत के सम्मुख भी—उपस्थित समस्या के समाधान के कारण। यह समाधान, अन्य दोनो काव्यों ('कामायनी' और

लोककाव्य एव महाकाव्य का न जाने किस कोश मे क्या अर्थ है कि अधिकतर आलोचक परेशान होकर कहते हैं—यह चिन्तनप्रधान काव्य है, विचार-प्रधान काव्य है, इसके कवि का व्यक्तित्व भाव पक्ष और विचार-पक्ष मे द्विभाजित हो गया है।[1] 'लोकायतन' मे केवल विचार-पक्ष मिलता है। प्रथम तो यह कि किसी भी काव्य मे, यदि वह महाकाव्य है अथवा यदि वह स्थायी साहित्य का अग है तो वह बिना विचार के मात्र साख्य की नर्तकी है और बिना भाव के निष्क्रिय पुरुष, जो देखते हुए भी नही देखता क्यो कि उसका विचार उसे कर्मरत नही करता। 'लोकायतन' चेतना का विकास है, विश्व चैतन्य को व्यक्ति-स्तर से उठकर भू-मगलकामी, जन-कल्याण परक होना है। इसने दर्शन को भाव भूमि पर उतारा है, "पत की बहुमुखी सश्लिष्ट चित्र योजनाएँ, अमूर्त विचारो और दार्शनिक तथ्यो को भी मूर्त कर सकी है।

'उर्वशी') के समाधान से भिन्न होकर भी और सामान्य से कुछ अधिक दुर्बोध होने पर भी, एक विशिष्ट दर्शन पर आधारित है।…… उसकी विशाल दृष्टि से युग का कोई कोना कदाचित् ही छूटा होगा।

ऐसी विशाल पकड़ के काव्य को 'महाकाव्य' और ऐसे काव्य के कृती को 'महाकवि' ही कहना उचित है।" 'महाकवित्व महाकाव्य के कारण नही स्थायी होता! वह तो होता है महान् कवित्व के कारण। वह उनमें आरम्भ से ही वर्तमान है। इस काव्य ने तो उसका महत्व भर ही बढाया है।"

"यह काव्य निश्चय ही एक आदर्श की योजना लेकर बढा है। पर इसमें यथार्थ के प्रति कवि पहले की अपेक्षा अधिक सतर्क रहा है। उसके कई वर्णन अत्यत सचेतन रहे हैं। भारत और संसार की वर्तमान स्थिति का जो यथार्थ और लोमहर्षक चित्र कवि ने खींचा है, वह अत्यधिक व्यापक एवं सर्वग्राही है।

" …पंत अब केवल 'महाकवि' नाम को ही सार्थक नहीं कर गए हैं, बल्कि भविष्य के लिए भी उन्होने नई संभावनाएं जगा दी हैं।"

डा० सत्यकाम वर्मा, 'महाकवि पंत', पृ० ११४-११६ (१९६४) भारतीय प्रकाशन, नई दिल्ली।

१. 'माध्यम', जून १९६५ पृ० ८३ (डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी)

समृद्धि, नूतनता, व्यापकता और रजकता के तत्वो ने दर्शन के गाभीर्य को भी रूप, रस, गध और जीवन का स्पर्श दे कर मूर्त बना दिया है। अनेक बार 'पल्लव-कालीन' कल्पना-पुत्र के प्रौढ अमूर्त सवेदन अधिक भव्यता और गहराई से चक्षुओ और श्रवणो के माध्यम से कल्पना मे मूर्त हो उठते हैं।"[1]

---

१. वही, पृष्ठ ८०

सावित्री सिन्हा ने 'लोकायतन' पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा : "'लोकायतन' का प्रतिपाद्य नया नहीं है। लेकिन उसके विषय मे स्वय पंत जी द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण पाठक को भ्रम में डाल देता है। २४ मई के 'इलस्ट्रेटेड वीकली' के 'ए कनवर्सेशन विद सुमित्रानंदन पंत' नामक लेख में उनकी ओर से यह वक्तव्य दिया गया है—इट्स थीम : एन इवेल्युएशन ऑफ दि गांधियन एज। साइन्स हैज नो डाउट मेड लाइफ़ ऑन दि मैटीरियल प्लेन वर्थ लिविंग। बट ऐट व्हाट प्राइस ? दि इनर हॉर्मनी इज़ गॉन। दिस क्राइसिस इज़ दि थीम आफ माई एपिक।"

आश्चर्य यह है कि ऐसे वक्तव्य को भ्रमपूर्ण मानते हुए भी उन्होंने यह जानने की चेष्टा नहीं की कि क्या यह सचमुच ही पंत ने कहा होगा या भेंट-वार्ताकार की पंत पर विशिष्ट कृपा रही होगी। पंत 'लोकायतन' के प्रतिपाद्य को नहीं बता सकते, यह कहना या स्वीकार करना पंत को 'लोकायतन' का लेखक नहीं मानना है। जहाँ तक इस विशिष्ट भेंट-वार्ता (इलस्ट्रेटेड वीकली २४ मई १९६४) का प्रश्न है, जो 'ए० एस० आर' (भेंटकर्ता) ने ली है अथवा उन्होंने प्रकाशित करवाई है, उसमे कई बातें कपोलकल्पित हैं—जो सबसे स्पष्ट और सबको मालूम है वह यह है कि पंत का बचपन अपने पिता के साथ बीता, किंतु इस भेंट वार्ता में वे साधु के साथ रहे और वह भी पर्याप्त प्रभावशाली नाटकीय ढग से। अन्य बातें भी हैं, पर विस्तार में जाना निरर्थक ही होगा। 'इलस्ट्रेटेड वीकली' में इसके बाद भी पंत के बारे में 'तारा' के नाम से तारा लिखित चटपटी बातें निकलीं। विवेचना गोष्ठी के बारे में दिल्ली की पत्रिका 'दिनमान' ने भी पंत के मुँह से विचित्र बातें कहलवाई हैं, तथा अन्य भी ऐसी पत्रिकाएँ हैं, पुस्तकें हैं जो पंत पर अकारण कृपा दृष्टि रखती हैं।

साहित्य की कोई भी विधा विशेषकर सर्जनात्मक, अपने महत् रूप मे चाहे महाकाव्य हो या बृहत उपन्यास—विचार प्रधान ही होती हैं। अवधी मे इसका श्रेष्ठतम उदाहरण तुलसी मानस है और तुलसी मानस अपनी भक्ति के आँचल मे गहन चिंतन—दर्शन—को लपेटे है, यहाँ तक कि इसका उत्तर काड तो किसी दार्शनिक नैतिक ग्रन्थ का ही अग लगता है। यदि यह मानस से असबद्ध कर दिया जाय जो शायद उसके कथा प्रवाह मे अतर नही प्रतीत होगा। और यह भी कहना उचित होगा कि बृहत एव स्थायी साहित्य, चिंतन प्रणालियाँ, दार्शनिक-सामाजिक और धार्मिक सिद्धात वे हैं जो 'मॉरल' एव जीवन दृष्टि से युक्त होते है। जब तक व्यक्ति, समाज अथवा मानवता पर्याप्त प्रबुद्ध नही होती तब तक उसे उन मान्यताओ और सिद्धातो का सहारा चाहिए जो उसे जीने का आलबन तथा प्रगति का मत्र देते हैं। इस तथ्य को भौतिक दृष्टि सपन्न नीतिज्ञ तक मानते हैं।

यदि पत का 'लोकायतन' मानवता को कुछ देता है, जैसा कि अधिकाश आलोचक मानते भी हैं तो उसके प्रति आक्रोश, तिक्ततापूर्ण व्यक्तिगत विद्रोह तथा सघबद्ध अग्नि वमन क्यो है? ऐसी प्रतिक्रियाओ से लेखक या लेखक की रचना का कुछ नही बिगडता[1], केवल कुछ देर को वातावरण धुम्रमय हो जाता है। पत ने मनुष्यो, मानवता को 'लोकायतन' द्वारा शुभाशीष दिया है, उनका अभिनदन किया है न कि नीत्से की भाँति उन्हे लज्जास्पद कहा है कि आलोचक उससे चिढ गए। नीत्से के शब्दो मे, "अतिमानव के सम्मुख मानव क्या है? एक लज्जास्पद वस्तु, एक हास्यास्पद वस्तु।" श्री अरविंद भी मानव जाति की वर्तमान स्थिति और स्वरूप से असतुष्ट है। पर पत के लिए मानव दिव्य है, उसके पूर्ण रूपातरण की आवश्यकता उन्हे प्रतीत नही होती, वे उसे मात्र परिस्थिति जन्य क्षुद्र राग-द्वेष तथा द्वद्वात्मक बुद्धि से ऊपर उठने का सदेश देते है जिनके कारण वे दुखदग्ध होकर कहते है :

'यह तो मानव लोक नही रे,

× × ×

१ तुलसी रामायण पर शंकरजी द्वारा लिखा 'सत्यं शिवं सुंदरम्' जब पण्डितो को नहीं भाया तो उन्होंने उसका अवमूल्यन करने के लिए संघबद्ध प्रतिक्रिया की, पर परिणाम भाग्याधीन ही रहा।

भूत प्रकृति पर विजयी नर को
अपने पर जय पानी निश्चय
मनुज मनुज बन सके…… ..

× × ×

प्रेम निखिल जीवो का ईश्वर

'लोकायतन' की भाषा के बारे मे भी एक बवण्डर उठा है। वे शब्द जो परम्परा तथा सस्कृत काव्यो के सौदर्य से युक्त होने के कारण आज तक अच्छे माने गए एकाएक 'लोकायतन' मे प्रयुक्त होने के कारण अश्लील हो गए, लोकायतन को शाप मिला—"यह महाकाव्य अभिशप्त रहेगा।" कितने विरोधपूर्ण है ये दो शब्द—महाकाव्य और अभिशप्त। महाकाव्य वह है जो अपने अदर जीवन को समेटे रहता है, अत उसमे जीवन को अभिव्यक्ति देने के लिए यदि पहाडी झरने, नदी और सागर होते है तो तलैय्या और गदे नाले भी होते हैं। गदे नालो को झरनो, नदी और सागर से अलग करके समझिए केवल सडाँध ही मिलेगी। "पत के दार्शनिक प्रतिपाद्य मे स्थूल शृगारिक बिम्बो, कुरूप खुले शब्दो और सहज निवारणीय मुखर प्रयोगो का रहस्य समझ में नही आता।" "आसन्नप्रसवा' पृथ्वी रूपी स्त्री के पेट पर कान लगा कर सुनना भी विचित्र-सा है। क्या बडी बात कहने के लिए इस प्रकार का विलक्षण बिब आवश्यक था ?"[१] श्रीमद्भागवत जो कि दार्शनिक और धार्मिक ग्रथ माना जाता है अपने शृगारिक बिंबो के होते हुए भी पवित्र है। क्यो कि हमने इन बिबो को उनके उद्देश्य से युक्त करके समझा है। 'लोकायतन' के बिम्बो के लिए हमे प्रश्न करना होगा : क्या कवि ऐसे वर्णनो द्वारा केशव की याद दिलाता है या इनको दृष्टि के सम्मुख रखते हुए सहजता से एक उच्चतर सत्य की ओर ले जाता है। 'आसन्न प्रसवा' पृथ्वी के रूपक द्वारा कवि पृथ्वी मे निहित क्षमताओ को इगित करता है, वह हमे 'लेबर रूम' में नही ले जाता वरन् कहता है इसी पृथ्वी पर जिसमे हम अनुत्तरदायित्व रूप से जी रहे है, जीवन मगलकामी कोष छिपा हुआ है।

डा० शम्भूनाथ चतुर्वेदी का कहना है, "लोकायतन' मे पत ने जिस भाषा का प्रयोग किया है उसकी अर्थ-गरिमा 'गुजन' 'स्वर्णकिरण' 'स्वर्णधूलि' और 'अतिमा'

---

१. लोकायतन : विवेचना संकलन, विश्वम्भर मानव, डा० सावित्री सिन्हा तथा डा० जगदीश गुप्त पृ०, ३८, ४० तथा ४२

मे रीत चुकी थी। क्या ही अच्छा होता यदि वे 'कला और बूढा चाद' की भाषा सामर्थ्य का परिचय 'लोकायतन' मे भी दे सकते। 'लोकायतन' की कमजोरी दोहरी है—पत ने अपने को एक तो 'रिपीट' किया है और दूसरे भाषा की एक रसता से भी व मुक्ति पाने मे बहुत प्रयत्नशील नही दिखाई पडते है।

अत मे मैं कहूँगा कि अनावश्यक सिद्धांत प्रचार को छोडकर जब-जब भी पत जी छायावादी काव्य-चेतना से प्रेरित हुए है लोकायतन मे, तब तब उनकी कला अधिक निखरी है—ग्रथि, पल्लव और गुजन कालीन काव्य चेतना से निकटता स्थापित करना ही उनकी उपलब्धि है और उससे सुदूर होना ही है उनकी कमजोरी।"[१] विचित्र ही है यह घोषणा! जिस व्यापक दृष्टि को पत ने 'लोकायतन' मे लिया है उसमे प्रत्येक कोण से अपने दृष्टिकोण को स्थापित करना आवश्यक है अन्यथा अप्रामाणिकता और असपूर्णता का दोष आ जाता, 'लोकायतन' महाकाव्य है, वह मुक्तक या गीति काव्य नही है, यह फूल को देखकर मुग्ध होना नही है, यह जीवन के विराट् उपवन कानन को समझना-परखना है। छायावादी चेतना की इस काव्य मे उपयोगिता प्रकृति-वर्णन और कोमल भावनाओ के सबध मे ही है।[२] चतुर्वेदी जी की भाषा की

१. लोकायतन : पुनरावृत्ति और एकरसता का घेरा, मूल्यांकन, पृ०-४०

2 "There is a fine description of pure nature on p. 45 The picture of the Himalayas where the dream land of the poet,—his utopia—is located is full of wonderful poetic charms as he is in his most congenial atmosphere. सुरधनु जलकबरी में बाँधे।

मुक्ता फलक Himalaya as "the wavy ocean of delight—आनंद सिंधु—is an image quite original on par with the other two metaphors—in which Himalaya is seen as the bridge connecting Earth and Heaven, and also as the white swan in flight (617) the baffling play of colours that hardly meets the ordinary eye is so natural in the Himalayan landscape and the poet's extraordinary sensitiveness to colours finds such a full scope to paint them in words. The word 'फालसई' as

कपोल कल्पित एकरसता से भी चिढ है, जब कि स्वय आलोचना-मर्मज्ञ होने के नाते वे इस बात से अनभिज्ञ नही रह सकते कि लोकायतन मे छह प्रकार के छदो का प्रयोग हुआ है।[1] किंतु चतुर्वेदी जी से एक पग आगे विद्यानिवास मिश्र का कथन है, "लोकायतन मे काव्यत्व तुक मिलाने और छद बैठाने तक

---

connected with the mountain atmosphere is a new and a very appropriate word to convey the light blue haze that always seems to surround the hill.

'The poet pours out his heart and is never hampered in his expression—the mastery of technique is completely hidden by the spontaneous flow of language The poet is rich in his vocabulary—never seems to find any difficulty to get the proper word and phrase and he never hesitates to coin new words which convey his meaning and add to the richness of language. I must state in fairness once again that the vision of subtle beauty and all pervading love and harmony is one of the richest experiences modern man can have from Lokayatan. I wish he could rise to it so that the earth can become something like heaven."

A. B. Purani Some Aspects of Lokayatana (for thought). (Unpublished essay)

१. 'पूर्व-स्मृति' का छंद प्रार्थनापरक तथा 'जीवन द्वार' का चौपाई से मिलता जुलता छद कथानक के लिए उपयुक्त लगता है। 'सस्कृति द्वार' के अरिल्ल छंद में एक सहज सुथरापन मिलता है। 'मध्यबिन्दु' का राधा छंद मन के अतर्मुखीकरण (साइकीसाइजेशन) के लिए अपनी गति की अत. प्रसन्नता के कारण अपने लक्ष्य में सार्थक है। 'ज्योति द्वार' के छद को पत हिन्दी के लिए अपनी एक विशिष्ट देन मानते हैं, वह सर्वांगीण क्रांति के विचार गांभीर्य को अभिव्यक्ति देने के लिए धीरोदात्त गति

सीमित है।" "क्या इसमे भी आचार्य आलोचक रस की उपलब्धि सिद्ध करेंगे ? क्या इससे भी युग निर्माण के लोग स्वप्न देखेंगे ? क्या मिथ्या आदर्शों का मोह इतने बडे दर्पण से भी भग नही होगा ? "[1] तुक मिलाना और छद बैठाना अपने आप मे एक उपलब्धि है, कितने कवि हैं जो यह सफलतापूर्वक कर पाते है। जहाँ तक इस तथ्य को एक अवहेलना की दृष्टि से देखने का सत् सकल्प हैं, यह बात सभी काव्यो—विद्यानिवासजी की दृष्टि से भी श्रेष्ठ काव्यो—के लिए कहकर उनके समुचित मूल्याकन से अवकाश प्राप्त किया जा सकता है। रही आदर्श की बात, चाहे भौतिक (स्थूल जडवादी) दृष्टि अपनायी जाए या आध्यात्मिक, हमारा जीवन, जीवन के प्रति दृष्टिकोण आदर्श मे लिपटा रहता है। प्रश्न मात्र यह उठता है कि कौन-सा आदर्श मानवोचित है एव जीवन-प्रगति मे सहायक है ?[2] यदि विद्यानिवास जी इस दृष्टिकोण से लोकायतन का मूल्यांकन करते तो प्रसन्नता होती और अपने आलोचक का कर्तव्य निभाते। आचार्य

से चलता है। 'उत्तर स्वप्न' के सखी छंद की क्षिप्र गति भी भविष्योन्मेष के लिए अत्यंत तन्मयता पूर्ण लगती है।

निभृत कौन चल रहा मनोभू पर
स्वप्न सुभग, चेतना सजग पग धर
(ज्योति द्वार)

'वह हरित स्वर्ण रव गूँज रहा कण कण मे
रूपान्तर कर जन भू मन का गोपन में !'
(मध्य बिन्दु)

'ज्योतिद्वार' के छंद का निर्माण प्रस्तार विधि से पंत ने स्वयं किया है।

1. पुस्तक समीक्षा, कल्पना, मई १९६५ १६३, ११ तथा १६३, १२

२. "जन भू प्रांगण को पावन करती हुई एक मौन प्रार्थना गूँज उठी—

'हे प्रेम पूर्ण जीवन ईश्वर
जन भू जिसका शोभा प्रांगण !'

यही इस 'लोकायतन' के भविष्यत् की नवोज्वल कल्पना का अत है। सदेह रहित, द्विधाहीन और स्पष्ट वाणी मे घोषित करना है—

आलोचको के लिए रस की उपलब्धि को सिद्ध करना सामान्य बात है। इधर तो, आचार्य-आलोचको की दृष्टि जिस काव्य पर पडती है वह खण्डित हो जाता है, उसका रस अपने मूलस्त्रोत से हट कर केवल विषैली साँस फेंकता है। हाँ, यह बात दूसरी है कि आचार्य-आलोचक अपनी प्रतिबद्धतावश किसी की प्रशसा कर दें।

आलोचको को आपत्ति है, "एक-एक शब्द मे अनेक प्रसग और अर्थ भर देने वाला कवि अब भद्दे स्थूल और भोडे शब्दो का मोहताज क्यो हो गया है ?" "लोकायतन की भाषा 'प्रियप्रवास' की भाषा का स्मरण दिलाती है। एक ओर तो इसे लोकजीवन का 'महाकाव्य' कहा गया है और दूसरी ओर इसकी भाषा इतनी पुरानी है कि कोश की सहायता लेने की बाध्यता उत्पन्न होती है।"[1] सचमुच ही विचित्र है 'लोकायतन' की स्थिति, मूल्याकन की तुला मे। एक ओर स्वत· स्पष्ट वह वर्ग मिलता है जो किसी भी मूल्य पर इसे कूडा कहना चाहता है और डा० रामदरश मिश्र के शब्दो मे सगर्व कहता है, "सचमुच जो इसे नही पढ पाते है वे पागल नही है।"[2] अथवा डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के अनुसार, "लोकायतन महाकाव्य एक महाकवि की ह्रासोन्मुख काव्य चेतना की चरम सीमा है", "यह काव्य काफी बोरकर है।" किन्तु फिर, उन्हे यह बोरकर अच्छा भी लगने लगता है, "'लोकायतन' का प्रकृतिवर्णन छायावादी प्रकृति वर्णन की प्रवृत्ति का है जिसे 'पावन प्रकृति चित्रण' कहते हैं, वह लोकायतन मे अवश्य मिलता है और प्रसन्नता का विषय

'जन्म ले चुका अब नव मानव,
जड़ चित् को कर रस संयोजित
धरा-स्वर्ग कल्पना न रह अब
जन जीवन में होता भूतित'

विवेकी राय : लोकायतन, वस्तुतत्व चर्चा उपलब्धि, पृ० ४३ (मार्च, १९६९)

१. माध्यम, जून १९६५ पृ० ८० तथा ८३

डा० सावित्री सिन्हा, डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी

२. वही, पृ० ८२

यह है कि वह काफी तादाद मे मिलता है।[1] इसके सिवा प्रयोगवादियो और नयी कवितावादियो के विरुद्ध लोकायतन मे दृष्टि, (vision) का भी औदात्य मिलता है।[2] आदर्शवादी 'कण्टेण्ट' के बावजूद लोकायतन मे राष्ट्र प्रेम, विश्व बधुत्व, विश्वशाति, और सबसे ऊपर 'मानवप्रेम' जैसे मानवमूल्यो की स्वीकृति है ' । स्पष्टता, सार्थकता और निर्मलता पतजी के लोकायतन की विशेषता है। उच्च सैद्धातिक स्तर के कारण लोकायतन की कला मे कही बचकानापन नही मिलता। लोकायतन मानवमुक्ति के मीठे सपनो और उच्च धारणाओ का सग्रह है, इसमे सदेह नही ' पतजी आज भी मूल्यो के सघर्ष युग मे अपने आदर्शवाद पर सजग है, यह देख कर तब और प्रसन्नता होती है जब हम कतिपय 'नए कवियो' और 'नव कथाकारो' द्वारा निषेधवादी मूल्यो का प्रचार देखते है।"[3]

---

1. I know no other poet except Wordswosth who has such a living contact with the spirit of harmony and beauty of Nature Tagore is a poet of Nature and some of his creations—like Urvasie and others—touch the highest heights of poetic creation, but in my opinion, he has not got Sumitra's exhuberence A. B. Purani : some Aspects of Lokayatan

२. यदि इसके साथ ही उपाध्याय जी प्रगतिवादियो का नाम भी ले देते तो उनके कथन में निष्पक्षता आ जाती।

३. डा० विश्वम्भर उपाध्याय : लोकायतन : उपदेशायतन, वातायन १३।२० पृ० १३।१३, १३–२०, १३-२१, (५, डागा बिल्डिग, बीकानेर)

उपाध्याय जी की द्वितीय स्वीकृति प्रथम स्वीकृति के विरोध में हो जाती है। कम से कम तब यह तो नहीं ही कहा जा सकता कि "लोकायतन' ह्रासोन्मुख काव्य चेतना की चरम सीमा है।" अथवा "यह काव्य काफी बोरकर है।" किंतु ये पूर्व के कथन एक प्रतिक्रिया के रूप मे सहज हो जाते हैं जब (वातायन पृ० १३।१२) वे इन उक्तियो के प्रारंभ में कहते हैं, "नैनीताल बस-स्टेशन पर दो वर्ष पूर्व श्री सुमित्रानन्दन पंत से यों ही संयोगवश भेंट हो गई थी।......उनकी बहिन भी थीं । पंत जी ने मुझसे' कहा

वैसे अपना-अपना दृष्टिकोण है। आज के उद्दाम प्रवाह मे बहने वाला पाठक मोटे ग्रथ—महाकाव्य, मोटा उपन्यास आदि—को देखकर घबडा उठता है। वह उन अवकाश के क्षणो पर चिंतन करने लगता है जब महाकाव्य लिखे जाते थे और पढे जाते थे। "महाकाव्यो का अब कोई भविष्य नही है। अब महाकाव्य लिखने वाला मूर्ख होगा। 'कामायनी' और 'मानस' भी अब नही लिखे जा सकते। भारतीय सस्कृति जब मुसलमान सस्कृति से प्रभावित हुई थी तभी मानस लिखा गया।[1] अब उस तरह का कोई सास्कृतिक प्रभाव नही दृष्टि गोचर होता।" "वर्तमान सदर्भ मे प्रदीर्घ कविताओ को महाकाव्य अथवा प्रबध काव्य का रूप देने का तो कोई सवाल ही नही उठता क्योकि फिलहाल न इनका कोई रचनात्मक महत्व है न उपयोगिया।" "महाकाव्य और प्रबध काव्य की कुछ रूढिया बन गयी है। कविता उन रूढियो की ओर नही जा सकती है और यदि एक शब्द मे उत्तर चाहे तो मैं यही कहूँगा कि महाकव्य या प्रबध काव्य का समय समाप्त हो गया है।" "साहित्य के विद्यार्थी के रूप मे मुझे ऐसा लगता है कि लम्बी कविताएँ तो कवि और पाठक के मानसिक तनाव के तकाज़ो के रूप मे

था कि आगरे से तुम यहाँ आ गए, यह अच्छा हुआ। पर्वतीय वातावरण तुम्हारे लिए अधिक अनुकूल साबित होगा अर्थात् पंत जी की नयी कविता के प्रति मेरे दृष्टिकोण मे सुधार होगा।" उस समय मैं पंत जी के साथ नहीं थी (जैसा उपाध्याय जी ने लिखा है) किंतु मेरा होना न होना अर्थहीन ही है। अर्थ पूर्ण तो यह है कि यदि वह किसी से भी यह कहते कि वे नैनीताल आ गए हैं वह भी पंत के समान ही उत्तर देता, फिर पंत के कहने से किस अज्ञात मनोवृत्तिवश वे चिढ़ गए अथवा रुष्ट हो गए ? कौन किसको उपदेश दे।

१. तुलसी का मानस मुसलमान सस्कृति के प्रभाव का परिणाम मात्र नहीं है, वह एक सक्रांतिकालीन स्थिति की उपज है। जब-जब जीवन में गतिरोध आता है, विकास अवरुद्ध हो जाता है, राष्ट्र अव्यवस्था और काल की क्षणिकता से त्रस्त हो जाता है तब उसे दिशा निर्देशन की आवश्यकता होती है। यही प्ररणा आशावादी अथवा आस्थावादी काव्य की जनक है।

चलती रहेगी। पर तनाव को इतना शिथिल कर दिया जाए कि वह प्रबध का रूप ले ले, यह सभव नज़र नही आता।"[1]

नि सदेह महाकाव्य की रचना करना आज की मानसिकता का विरोध करना है अतः यदि रचनाकार ऐसी भूल करता है तो उसे सहस्र फन फूत्कार करते मिलेंगे। इसी ओर दृष्टिपात करते हुए "श्री इलाचद्र जोशी ने कहा कि इस महाकाव्य (लोकायतन) की सबसे बडी विशेषता यह है कि यह महा-काल के बडे-बडे खडो को लेकर चलता है। आज जब 'क्षण' को ही देखा जाता है तब लाजिमी है कि इस महाकाव्य को भी सरसरी दृष्टि से देखना। बहुत लोग इसे नही पढेगे, क्यो कि कवि वर्तमान से बहुत आगे देख रहा है। किंतु कवि आज के युग को भूला नही है। आज के घृणित वातावरण मे, जब सारा ससार अधकार मे है तब यदि महाकवि प्रकाश का सदेश देता है तो उसका विरोध होगा ही। आज का युग ही इतना खण्डित है कि वह इस प्रकार की रचना का खडन करेगा। 'लोकायतन' एक महाकवि का स्वप्न है। इसमे वह सब कुछ समेट कर चला गया है। देखना यह है कि उसकी मूल धारा क्या है, कवि किस शिखर को छू रहा है। जिस कवि को भू चेतना से लेकर अध्यात्म का सूक्ष्म निरूपण करना है उसमे विसगतियाँ हो सकती है। ·· कवि तो बहुत आगे की बात देख रहा है। आज हमारे यहाँ क्रुद्ध पीढी है, भूखी पीढी है, लेकिन कवि उसके आगे भी देख रहा है। कवि उस युग की ओर देख

---

१. विचार गोष्ठी : आधुनिकता की अभिव्यक्ति और लम्बी कविताओं की संभावना

रघुवंश, जगदीशनारायण श्रीवास्तव, बच्चनसिंह, शिवप्रसाद सिंह
कल्पना, अप्रेल १९७४ पृ० २६३/५५—

देखिए सुमित्रानंदन पत : 'कला और संस्कृति', पृ० १८-२१ (आधुनिक युग में महाकाव्य की उपयोगिता)

"यह युग विघटन का है और इसी में से 'लोकायतन' का जन्म हुआ। वास्तव में 'लोकायतन' की रचना होनी ही थी। मेरे भीतर आज का विघटन, भविष्य का निर्माण, सब कुछ भरा हुआ था,··· ···यह मेरे भीतर रुक नहीं सकता था।" पंत

माध्यम, जून १९६५ पृ० ८५

रहा है जब प्रत्येक मानव मे आध्यात्मिक चेतना आ जाएगी।" किंतु इसी चेतना से क्षणजीवी को वितृष्णा है। इससे पत या पत-काव्य का कुछ नही बनता-बिगडता क्योकि वह किसी का त्याग नही करता, किसी को उपेक्षणीय नही मानता, वह अपनी विशालता और गहनता मे सर्वसमावेशी होकर घोषणा करता है—मगलायतनो हरिः।[1]

इस प्रार्थना के साथ ही पत को 'उच्छ्वास' के बाद, अब दूसरी बार, अपने गुरु का आशीर्वाद प्राप्त हो गया।

"लोकायतन की चन्दा चमेली !

लोकायतन पत जी का उत्कृष्ट काव्य है। यह निर्विवाद है।

भाषा उसकी मँजी हुई है।

---

१. यहाँ पर यह भी कह देना चाहूँगी कि मंगलायतनो हरि : वैष्णव धर्म की थाती नही है, इसमें उसका सर्वाधिकार सुरक्षित नहीं है वरन् भू-मंगल कामी की अभीप्सा को यह वाणी देता है।

१. "लोकायतन' का निर्माण साधना की उस मंजिल पर हुआ है जहाँ भविष्य-दर्शी चिंतन को अपने स्वप्न धरती पर उतरते दिखाई देते हैं। इस प्रकार 'लोकायतन' दार्शनिक और वैचारिक संभावनाओं का लक्ष्य-प्रधान भविष्योन्मुखी काव्य है।…… 'लोकायतन' की प्रतियां कुछ शताब्दियों के बाद जब इस सदी की साक्षी कृति के रूप में पढ़ी जाएंगी, उस समय उसकी दार्शनिक विचार भूमि के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जायगा कि 'लोकायतन' के कवि ने बीसवीं सदी के मर्त्यधाम की दुर्निवार स्थितियो में आत्मा का अमर भवन स्थापित करने का स्वप्न देखा था। यह कवि अंधेरे के बीच रोशनी में जिया। उसने मूल्यो के विघटन, खडित आस्था और आपाधापी की हलचल के बीच अंतश्चैतन्य के रागात्मक वृत्त में सारी पृथ्वी को बांध देने का क्रांतिकारी स्वप्न देखा। और फिर शायद उस युग का कोई संत इस कविर्मनीषी के इन स्वर्ण-स्वप्नो को साकार बनाने का प्रयत्न करे—वैसे ही जैसे गाँधी ने एक द्रष्टा कवि के स्वप्नो के रामराज्य को पृथ्वी पर उतारने की चेष्टा की थी। यही 'लोकायतन' और उसके कवि की सिद्धि है।"
डा० सावित्री सिन्हा : लोकायतन, विवेचना संकलन-२, पृ० ३६

पतजी ग्रथ को 'नव्य कल्प का आदि काव्य यह अनगढ' बताते हैं परन्तु उसकी भाषा पर उन्होंने यथेष्ट ध्यान दिया है। बोलचाल की बानगी देखिये :

'प्रार्थना सभा को जाते
... ...
नर-पशु प्रहार से आहत।'

या 'बैलो की जोडी भडकी
. ...
हँसते-गुन्डे हुल्लड भर

या 'तीसरी योजना चलती
... ...
जन निर्धन से निर्धनतर,
. ...
कुछ समझ नही पाता मन।'

या 'पकडे दातो पजो से
. ... .
करते वसूल उसका कर।'
'सामती दर्प भरे नर
. ..
हतभाग्य धरा का यौवन।'

यो ही 'रेलपेल धक्कम धक्के मे
.
क्षुधित भेडियो से न तनिक डर।'
.. ..
जली पुलिस चौकिया डाकघर
... .
शासन की नाडियाँ गई फट।'

या 'प्राण त्याग दूँगा पथ पर ही
... ...
जो स्वराज्य ला सका नही घर ।'
'टोपे था वीरो की टोपी
— ... —
भारत मा तब हुई पराजित ।'
'पृथ्वी पुत्रों ने स्वराज्य को
... ...
लूटे बहुओ बहिनो के तन ।

प्रत्यक्ष है कि भाषा सीधी सादी है। हाँ उर्दू का प्रयोग नही किया गया है—केवल एक शब्द 'वसूल' मिला। छोटे छोटे शब्द है अधिकतर दो अक्षरों के। उन्ही से समास भी बने है। चार अक्षरो के शब्द बहुत कम है। कहना पडेगा कि भाषा को बाइबिल की भाषा सा सरल और सबल बनाने मे कवि यथेष्ट सफल हुआ है।

कवि की दृष्टि भी सब ओर देखती है। पक्षपात शून्य। उसमे समवेदना है सबसे। उसके व्यग्य भी इसलिए जन मत के प्रतीक हैं। किसी ओर वह अपने को झुकाता नही है।

परन्तु कविता की भाषा सदा बोल चाल की भाषा नही हो सकती। जिन शब्दो मे हम तरकारी या कपडे खरीदते है उन शब्दो मे न तो हम ईश्वर को सम्बोधन करते है न आत्मा को। काव्य जिस ऊँचाई पर उठता है उस ऊँचाई के भाव और शब्द दोनो एक से होते हैं, तभी सरस्वती प्रसन्न होती है। 'लोकायतन' का स्तर काव्यमय है। इसलिए उसकी भाषा भी अधिकाश ऐसी ही है। कवि ने इसे 'कुन्देन्दु वाणी' कहा है। है भी वह ऐसी ही। देखिए नमूने :

'प्रस्तर युग की आदि अहता का
... .
विश्व मनस् को करता ज्वार मथित।

या पुष्पराग का दीप्त छत्र सिर पर
... .
भगवत्-विग्रह मे था रस-मूर्तित

या चितकबरे साँपो से लेटे
कुन्तल घन घाटी मे बसते।
... —
सध्या सिन्दूरी तूली से
रगती जिनके सित निर्जल पर।

पोथा बडा है ६८० पृष्ठ का। सभव है अनेक स्थलो मे कवि अपने भाव व्यक्त न कर पाया हो, या भाषा उसकी शैली से भटक गई हो—यह स्वाभाविक है। आश्चर्य का विषय नही।

पत जी ने प्राचीन भारतीय भावो को क्रमबद्ध किया है। उनकी दृष्टि पैनी है परन्तु स्वरो मे सयम है। उनके कटाक्ष औचित्य की सीमा से बाहर नही हैं। पढने मे भी बुरे नही है। वह सत्य क्या जो कसौटी पर न ठहर सके। पतजी ने मनुष्य के विचारो का आगे बढना अवश्यम्भावी माना है परन्तु उन्होने अन्तर्चेतना पर जोर दिया है और भागवत कृपा पर। उनकी चदा चमेली वाणी कहाँ तक चल सकती है, देखना है।"[1]

● ●

---

१. प्रो० शिवाधार पाण्डेय १६-५-१६६४
पांडेजी का पत्र रूप में 'लोकायतन' का मूल्यांकन अभी तक सुरक्षित है। सन् १६७४ में उनका देहावसान हो गया। पंत के श्रद्धेय गुरुदेव। उनसे मिलने वे कम ही जा पाते थे पर उन्हें सदैव याद करते थे, एक सहज आदर-स्नेह का भाव। अब उनके न रहने पर मुझे यह उचित लगा कि इस मूल्याकन को प्रकाशित कर दूँ।

२२

घटना एवं रचना क्रम [१९६५-१९७६]

●

'लोकायतन' लिखने के बाद मन जानबूझ कर लेखन—सृजन-कर्म—की ओर से विमुख हो गया, "साल-डेढ साल कुछ नही लिखना चाहता हूँ, प्रेरणा होने पर भी नही लिखूंगा।" "बिना प्रर्याप्त अतराल के, मन सृजन मे, अपने को दुहरा सकता है।" अतः वे अध्ययन, बगीचा तथा राजू को पालने मे व्यस्त हो गए। राजू उनका पर्याप्त समय ले लेता क्यो कि वे उसकी पन्द्रह दिन के बच्चे की भाँति देखभाल करते। किंतु दीर्घ काल तक लिखने से मुक्ति नही ही मिल पाई—उन्हे प्रथम सप्ताह मार्च '६५ मे 'निराला व्याख्यान माला' के अतर्गत तीन लम्बे निबध लिखने ही पडे। डा० रामकुमार वर्मा ने उनसे 'निराला व्याख्यान माला' के अतर्गत 'छायावाद' पर लेख लिखने के लिए जब प्रथम बार कहा तो उन्होने, अपने स्वभाव के विपरीत, स्पष्टत अस्वीकार कर दिया। रामकुमार जी का पुन आग्रह और आग्रह ! लाचार पत ने, अपने को इस सकट से बचाने के लिए, अपने मित्रो—सभवत महादेवी वर्मा, बालकृष्ण राव और अमृत राय—का नाम लेकर कहा कि उनकी भी यही राय है कि मै इस भाषण माला को स्वीकार न करूँ। किन्तु रामकुमार जी का दुर्निवार आग्रह—"मेरी नाक कट जाएगी··· मैं कह चुका हूँ कि ये भाषण मैं आपसे ही लिखवाऊँगा, अपने बडे भाई से ·· ·।" लाचार पत को एक ऐसे विषय पर भाषण देना स्वीकार करना पडा जिससे वे स्वय सबधित थे और जिसके द्वारा कुछ लोगो को आहत करने का सकोच था। किंतु पत-सा लेखक, चाहे कितना ही सकोचशील हो, जब कलम पकडता है तो व्यक्तिगत धरातल को भूल जाता है। ११, १२ और १३ मार्च '६५ को एक-एक घण्टे के तीन निबध विजयानगरम् हॉल मे आयोजित 'निराला व्याख्यान माला' के अतर्गत पत ने पढे। इन निबधो को पढने के साथ ही पत

ने इनके प्रकाशन पर किसी प्रकार के प्रतिबध को स्वीकार नही किया। प्रकाशन का अधिकार अपने पास रखते हुए उन्होने इस व्याख्यान माला से सलग्न धनराशि लेना अस्वीकार कर दिया। वैसे भी वह धनराशि नही ही लेते। ये निबध २० मई १९६५ को 'छायावाद पुनर्मूल्याकन' के नाम से प्रकाशित हो गए।[1]

पत की स्पष्ट वस्तुगत विवेचना ने कइयो को आहत किया पर विवशता थी। वे इन निबधो को, इसी कारण, लिखना नही चाह रहे थे और जब कलम हाथ मे लेनी ही पडी तो व्यक्तिगत स्तर को विस्मरण करना पडा क्यो कि साहित्य का इतिहास, उसका मूल्याकन बिना वस्तुगत मापदण्ड के सभव नही है। १९६५ मे ही 'कला और सस्कृति' का भी प्रकाशन हुआ।[2] इसके बारे मे पत का वक्तव्य है, "कला और सस्कृति' के अतर्गत मेरे इधर के कुछ वार्ता-निबध सकलित है। 'शिल्प और दर्शन' (मई १९६१) के बाद मेरी गद्य रचनाओ का यह दूसरा सग्रह है, जिसमे युग-सघर्ष से सबध रखने वाले मेरे अनेक निबध वर्तमान सक्राति कालीन जीवन समस्याओ पर मेरे दृष्टि-कोण की प्रतिक्रिया को प्रतिफलित करते हैं।"

२६ मार्च १९६५ को उत्तर प्रदेश शासन ने पत को उनके साहित्य एव कृतित्व पर १०,००० रु० का पुरस्कार दिया। यह पुरस्कार, पुरस्कार योजना समिनि, उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा सम्पूर्णानन्द जी की अध्यक्षता मे दिया गया। १५ नवम्बर १९६५ को पत को 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' (प्रथम साहि-त्यिक पुस्कार)[3] मिला। यह इस पुरस्कार का पहला वर्ष था। अतः इसके

---

१ प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
वर्तमान प्रकाशक : राजकमल, दिल्ली।

२. प्रकाशक : किताब महल (प्राइवेट लिमिटेड) इलाहाबाद।
गोपेश जी किताब महल से संबंधित थे। उनके आग्रह करने पर पंत ने अपने प्रकाशको को सग्रह न देकर 'किताब महल' को दिया।

३ १५.००० रुपया तथा दो सप्ताह के लिए रूस भ्रमण। १९६५ में ही उन्हें हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि से विभूषित किया। इससे पूर्व काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने 'रजत शिखर' पर संवत् २००८ से २०११ तक का रत्नाकर पुरस्कार तथा बलदेव पदक ३ पौष संवत् २०२१ वि० को प्रदान किया।

आयोजको तथा इदिरा जी का इस पुरस्कार के प्रति विशेष उत्साह था। पत को, इस कारण, पुरस्कार लेने दिल्ली जाना पडा। ११ दिसम्बर '६५ को उन्हे एक सप्ताह के लिए फिर से दिल्ली जाना पडा। १२ दिसम्बर को देवीदत्त जी की छोटी लडकी की शादी थी। भाई के न होने के कारण यह अब पत का ही दायित्व था।

'सोवियत लैड नेहरू पुरस्कार' के अतर्गत ८ जून' ६६ को पत दिल्ली से रूस गए तथा २६ जून को इलाहाबाद आ गए। इस बार की रूस यात्रा पत को फली नही—रूस मे बीमार पड गए। वहाँ सप्ताह भर क्रैमलिन अस्पताल मे रहे। अस्पताल मे उनसे कहा गया कि स्वदेश पहुँच कर अपना डाक्टरी परीक्षण अवश्य करवा लें, विशेषकर फेफडो का एक्सरे करवाना आवश्यक है क्यो कि यक्ष्मा के चिह्न लगते हैं (फेफडो मे छाया-सी है)।

पत ने इलाहाबाद पहुँचते ही फेफडो का एक्सरे करवाया, एक्सरे मे कुछ नही निकला। डा० मुकर्जी निश्चित थे कि फेफडो मे कुछ नही है। पर, विदेशी डाक्टरो की राय गलत कैसे हो सकती है ? रोगी और डाक्टर मे मतैक्य था। पत को डाक्टर ने स्ट्रेप्टोमाईसीन के दो इजेक्शन्स दिए। दोनो ही बार प्रतिक्रिया बडी खराब हुई। जाडा और बुखार ! पर इलाज तो होना ही था। पत रोग को समूल नष्ट करवाने के लिए कटिबद्ध भी थे, पर तीसरी बार ज्यो ही इजेक्शन लिया तबियत इतनी बिगड गई—छाती मे दर्द और पसीना—कि डाक्टरो ने हल्का हार्ट अटेक,[1] (ऐंजाइना पेक्टोरिस) कह दिया। जो भी हो, छह माह तक असह्य दुर्बलता और उसके बाद, पत के स्वास्थ्य मे धरती-आसमान का अतर आ गया जिससे उनके स्वभाव मे भी परिवर्तन आ गया, घर की बातो मे रुचि लेना उन्होने कम कर दिया। अभ्यागतो के आने पर उनके भोजन आदि की व्यवस्था के बारे मे पूछना अथवा हस्तक्षेप करना छोड दिया एवं उनमे वह शक्ति नही ही रह गई कि सक्रिय रूप से कुछ कर सकें। धीरे-धीरे कुछ वर्षों बाद उन्होने बगीचे मे रुचि लेना भी छोड दिया। आतरिक दुर्बलता के कारण विवशता ही थी। लगभग डेढ वर्ष बीमारी (मम्स, 'फ्लू' और हार्ट अटेक) मे बीत गए।

---

१. १२-१३ अगस्त १९६६

अक्टूबर '६६ को बातो ही बातो मे मैंने पत से कहा कि अगले वर्ष महा-देवीजी ६१वे वर्ष मे प्रवेश करेंगी । श्री राममूर्ति अचल ने सालभर से कह तो रखा है कि वे महादेवीजी की षष्टिपूर्ति पर लखनऊ मे भव्य आयोजन करेगे, अभिनदन ग्रथ आदि निकालेगे, पर लगता है वे कुछ कर नही पाएँगे । तुमने अचल जी को सहयोग देने की बात की थी, अब मुझे दो तो सस्मरण ग्रथ उन्हे भेट करे । अधिकाश लोगो मे पत्र व्यवहार मैं ही करूँगी, तुम्हारे पी० ए० का काम कर दूँगी, कुछ लोगो को तुम्हे स्वय पत्र लिखना पडेगा क्यो कि वे तुम्हारे ही साथ के है। पत को बात भाई और तत्काल उन्होंने महादेवी जी को फोन करके उनकी स्वीकृति ले ली । फिर दूसरे-तीसरे दिन वे और पाण्डेजी मिलने आए तो यह भी निश्चित कर लिया कि किन-किन से लेख भेजने के लिए आग्रह किया जाएगा ।[1] कुछ लोगो ने यदि एक बार लिखने या फोन करने के साथ ही स्वीकृति दे दी, और लगभग स्वीकृति के साथ ही लेख भेज दिया तो कुछ को दो-तीन बार लिखना पडा, कुछ ने अस्वी-कार कर दिया और कुछ मौन रहे । अज्ञेय जी ने दुबारा आग्रह करने पर लेख भेजना स्वीकार कर लिया, वचन भी दिया, पर फिर न जाने किन कारणोंवश लेख नही ही दिया । बच्चनजी ने पारिश्रमिक की बात की,[2] यो ही लेख लिखना उन्हे उचित नही लगा, इसलिए लेख न लिखा, न भेजा । 'महादेवी सस्मरण ग्रथ'[3] समय से प्रकाशित हो गया और एक छोटे सुखद

---

१. देखिए 'धर्मयुग' के ५-६-'६७ के अंक मे 'महादेवी संस्मरण ग्रथ' की पूर्वग्रह युक्त समालोचना ।

२. "महादेवीजी पर शीघ्र जो भी लिखना चाहो लिख भेजो, अब समय नहीं। वैसे इस ग्रंथ की रायल्टी प्रयाग वि० विद्यालय के 'पुअरवाएज फंड' के लिए दी जाएगी । समिति ने यही निश्चय किया है । किंतु इफ यू इन्सिस्ट तुम्हारी रायल्टी समय-समय पर तुम्हारे पास भेज दी जाएगी ।"

पंत का पत्र बच्चन के नाम । (१६-११-६६)

बच्चन : 'बच्चन के नाम पंत के दो सौ पत्र', पृ० २४० तथा देखिए पृ० २३६, २४३ (प्रकाशक : सन्मार्ग प्रकाशन)

३. प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (१६६७)

वर्तमान प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

आयोजन मे उन्हे यह ग्रथ समर्पित भी कर दिया।[1] इस आयोजन की सफलता यह थी कि किसी प्रकार की, छोटा-सी भी कटुता वातावरण मे नही थी। मेरे और पत की दृष्टि से यह प्रसन्नता की बात थी कि महादेवी जी एव पाण्डेय जी इस आयोजन से सतुष्ट थे।

तीन-चार वर्षों से पत को लग रहा था कि उन्हे 'भारती भडार' से अपनी पुस्तके ले लेनी चाहिए। किंतु उनका सकोचशील स्वभाव—दूसरा बुरा न मान ले। अत मे परिस्थितिवश उन्हे अपने इस स्वभाव पर विजय प्राप्त करनी पडी। सितम्बर '६५ को 'लोकभारती' से बाते करके पत इस ओर सक्रिय हो गए। किंतु सहजता से अपना अधिकार वापिस मिलना कठिन ही होता है। अत २२ अक्टूबर '६५ को उन्होने बच्चन जी के लिए पत्र लिखा. "यह पत्र मुख्यतः तुम्हे श्री बसत कुमार बिडलाजी को भेजने के लिए पत्र व्यवहार की सामग्री के सबध मे भेज रहा हूँ जो इस प्रकार है.

लीडर प्रेस भारती भडार मे मेरी बारह पुस्तकें है—(१) गुजन (२७६३) (२) ग्राम्या (१०१८) (३) ग्रथि (२५३८) (४) ज्योत्स्ना (१४१८) (५) मधुज्वाल (१३४) (६) पाँच कहानियाँ (२८७) (७) स्वर्णकिरण (८८३) (८) रजतशिखर (८४४) (९) वीणा-ग्रथि (६२५) (१०) युगपथ (९५३) (११) उत्तरा (६९६) (१२) युगात (५१०) ।—'गुजन' पाठ्यक्रम मे है। उसकी मार्च '६५ के अत मे २७६३ प्रतिया शेष है। और पुस्तको की सख्या उनके सामने लिख दी है। जून '६५ से वाचस्पति पाठक, व्यवस्थापक भारती भडार ने ३३% दाम मुहर लगाकर और बढा दिए है। मैं इन पुस्तको को वापिस लेना चाहता हूँ क्यो कि भारती भडार की बिक्री नही के बराबर है। गत वर्ष की मेरी रायलटी १७६८-५० रु० है। '६३-'६४ की इससे भी कम थी। राजपाल एड सस से मेरी डेढ पुस्तको की रायलटी भी १७६५ है। मेरी किसी भी पुस्तक का कोई भी कान्ट्रेक्ट कभी लीडर प्रेस से नही हुआ है। ' अधिकतर पुस्तकें प्रकाशको से लागत मूल्य पर वापिस ली जा सकती है। भारती भडार उसके लिए ५०% चाहता है, जब कि लागत मूल्य २५% होता है। मैं ३५ या ४०% देने को तैयार हूँ। यह ५०% मूल्य भी वह (भारती भडार) ३३% बढाए गए मूल्य पर चाहता है जो कि किसी प्रकार भी न्यायसगत नही है।"[2]

---

१. आयोजन स्थल—लोकभारती, १५-ए महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद।

२. बच्चन के नाम पंत के दो सौ पत्र। पृ० २०७-२०८

किंतु चाहने या सद्भाव से तो घी निकलता नही है। पत को पुस्तको के बढाए हुए मूल्य के आधार पर ५०% मे पुस्तको को लेना पडा। भारती भण्डार ने ग्यारह पुस्तकें ही दी,[1] बारहवी पुस्तक 'गुजन' नही दी। पत के लिए यही बहुत था कि बिना अदालत मे गए ग्यारह पुस्तकें मिल गई, सोचा जब तक इन पुस्तको की वर्तमान प्रतिया नही बिक जाती तब तक थोडा घाटा सही।[2] पर घाटा अभी और सहना था।

'लोकभारती' को पुस्तके देने के पूर्व ही पत ने कौशाम्बी प्रकाशन, इलाहाबाद को 'नाट्य-सेतु' प्रकाशित करने का अधिकार दे दिया था। 'नाट्य सेतु' नाटको का सकलन है, इसमे पत के तीन छन्द-नाट्य—'स्वप्न और सत्य', 'रजत शिखर' तथा 'अप्सरा'—सकलित है। इस सकलन के प्रकाशित होने का विशिष्ट कारण यही है कि पत कौशाम्बी प्रकाशन के व्यवस्थापक, प्रभात शास्त्री के आग्रह को अस्वीकार नही कर पाए। जब सन् '६८ मे 'नाट्य सेतु' मुद्रित होने लगा तो लोकभारती ने आपत्ति की। शास्त्री जी पत के पास आए—पत ने लोकभारती को फोन कर दिया कि वे पहिले ही 'कान्ट्रेक्ट' मे हस्ताक्षर कर चुके थे ' '। किंतु बात सम्हल नही पाई, शास्त्री जी फिर से आए और उसके बाद मे २ अक्टूबर की सबेरे दिनेश जी तथा राधे बाबू आए। २ अक्टूबर पत के लिए पवित्र दिन है, शाति और ध्यान का दिन, किन्तु जितना क्रोधित और आहत उन्होने उस दिन अनुभव किया—यद्यपि कुछ ही मिनटो को—उतना सभवत कभी नही किया होगा। पत का कहना था (एक) जब उनकी पुस्तके भारती भडार के पास थी तभी वे शास्त्री जी को 'नाट्य सेतु' की अनुमति दे चुके थे, (दो) इसमे उनकी पुस्तक से एक ही नाटक है, 'रजत शिखर' (तीन), जब आपने स्वय 'तारापथ' और 'स्वर्णिम रथचक्र' प्रकाशित किए[3] तब आपने प्रकाशक (राजकमल) की अनु-

---

१ लोकभारती के 'एग्रीमेन्ट फोर्म' में पंत ने २ दिसम्बर '७५ को हस्ताक्षर कर दिए और जनवरी १६६६ को लोकभारती ने ये पुस्तकें भारती भण्डार से खरीद लीं।

२. लोकभारती ने इन खरीदी हुई पुस्तकों पर १२½% रोएल्टी दी।

३. 'स्वर्णिम रथचक्र', प्रथम सस्करण : १६६८
'तारापथ', प्रथम सस्करण : १६६८

मति की बात क्यो नही की । और (चार) जब से वे लिखने लगे है अथवा उनकी पुस्तकें प्रकाशित हुई है तब से आज तक किसी भी प्रकाशक ने इस बारे मे कोई आपत्ति नही की है । अभी तक किसी भी प्रकाशक को 'सकलन' के लिए अनुमति देना न देना उनका सहज अधिकार रहा है । वे रोएल्टी छोड सकते हैं किंतु अपने सृजन कर्म (कॉपी रॉइट) के प्रकाशन के अधिकार को नही ।

उस समय लगा पत का यह अधिकार सुरक्षित है । किन्तु फिर जब ओकार शरद के बारम्बार आग्रह करने अथवा चाहने पर पत ने उन्हे स्वीकृति दे दी कि वे प्रकाशन केन्द्र, अमीनाबाद को अपना एक काव्य सकलन[1] दे देंगे तो बात बिगड गई । २२ अगस्त '७१ को रमेश जी अपनी पत्नी के साथ मिलने आए। पत ने स्वय ही ओकार शरद एव सकलन की बात छेडी । रमेश जी ने आक्रोशमिश्रित दुःख व्यक्त किया । पता नही उस समय पत किस मनः स्थिति मे थे कि अपनी बात कहने के साथ ही उन्होने कहा, "मैं शपथ लेता हूँ आगे से आपके यहाँ से प्रकाशित पुस्तको की कविताओ की मैं अनुमति नही दूँगा । किन्तु पत के शपथ लेने से क्या होता ? कुछ ही दिनो मे, सभवत २७ या २८ अगस्त को, लोकभारती की ओर से पत को नोटिस मिला कि वे निश्चित दिन और समय पर डा० हरदेव बाहरी के यहाँ आएँ और उनकी मध्यस्थता को स्वीकार करें । पत बाहरी जी के यहाँ जाते समय हँसने लगे, "लोकभारती से राधे बाबू, दिनेश जी, रमेश जी तीनो ही आएगे, तथा बाहरी जी रहेगे और मैं अकेला ही हूँ," "तो क्यो नही तुमने उन लोगो से कहा कि तुम भी किसी को अपने साथ लाओगे ।" उन्होने उदासीन भाव से कहा, "यह सब मै नही कर सकता । ठीक है, जो होगा वह देखा जाएगा ।" बाहरी जी के घर पर समझौता[2] हो गया किंतु उसके बाद पत को यह अनिवार्य लगा कि वे लोकभारती से अपने लेखक-

---

सन् १९६३ में लोकभारती ने एक सकलन 'प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी की श्रेष्ठ रचनाएँ' प्रकाशित किया था । इसमे पत की ग्यारह रचनाएँ हैं जिसमें दो रचनाएँ राजकमल से प्रकाशित पुस्तकें 'अतिमा' और 'कला और बूढा चाँद' से ली गई है तथा अन्य भारती भण्डार से प्रकाशित पुस्तको से ।

१. ऋता : प्रथम संस्करण १९७१ । ऋता के दो प्रकार के संस्करण निकालने की बात थी—विद्यार्थी सस्करण तथा सामान्य संस्करण ।

२. बाद को २१-९-७१ की लिखी हुई बाहरी जी की चिट्ठी पंत को मिली, "दोनो पक्षों की प्रतिष्ठा बनी रह गई और दो सप्ताह का तनाव समाप्त हो गया । मै सोचता हूँ कि पारस्परिक स्थिति में भी

प्रकाशक के सबध का विच्छेद कर दे। २ फरवरी '७२ को रत्नशकर प्रसाद की उपस्थिति मे यह तय हो गया कि लोकभारती पत को उनकी पुस्तके ५०% दाम मे बेच देगा। २६ अप्रेल '७२ को पत ने अपनी पुस्तके ले ली किन्तु यदि भारती भडार ने पत का 'गुजन' अपने ही प्रकाशनाधिकार मे रखा तो लोकभारती ने 'ग्राम्या', 'तारापथ' और 'युगात' रख लिया। लेखक-प्रकाशक का सबध टूटने पर भी, वैसे, व्यक्तिगत स्तर पर पत का उनके साथ पूर्ववत् सवध है, उनके प्रति पत का स्नेह भाव है।

घटनाओ को भाग्याधीन कहने वाले पत के लिए यह, एक प्रकार से, अच्छा ही हुआ। उनका-सा सकोचशील स्वभाव, ३-४ बार किसी ने रचनाएँ या सकलन प्रकाशित करने की बात कही तो मन

कोई विशेष अन्तर नहीं आया होगा। 'ऋता' का गठन यथापूर्व बना रहेगा। आपका जो पहला प्रस्ताव था कि 'ऋता' में से लोकभारती द्वारा प्रकाशित अपनी कविताएँ निकाल देंगे मुझे पसन्द नहीं था।··· ··· इसमें दोनो पक्षो की हेठी होती··· तीन ही पक्षो को नहीं, मुझे भी गिन ले तो, चार पक्षो को इस व्यवस्था से संतोष होगा।··· ··· अब एक बात शेष है। वह भी कठिन नहीं है। हो सके तो मालवीय (प्रकाशन केन्द्र) को बुला लीजिए · उन्हे तो इतना ही कहना है कि एक ही पुस्तक और एक ही स्तर-आकार-प्रकार की पुस्तक का मूल्य ३-५० और ७-५० रु० होना लोगो मे सदेह और दुर्भाव उत्पन्न करता है। इसका एक ही मूल्य रहेगा और उचित मूल्य ७–५० रु० होगा। मैं प्रतिश्रुत हो गया हूँ। इतनी सी बात मान जाएगा। जिन प्रतियो पर ३-५० रु० छपा है, उन सब पर ७-५० रु० का ठप्पा उस मूल्य को काटता हुआ लगा दें—वे प्रतियाँ चाहे किसी विश्वविद्यालय के कार्यालय मे पड़ी है, चाहे किसी पुस्तक-विक्रेता के पास चली गयी हैं। यदि वे यथावसर ऐसा कर देंगे तो उनका बड़ा यश होगा। जब वे आपकी बात मान जाएं तो उनसे लिखवा लीजिए।

आपकी कृपा से निर्णायक का कार्य मुझे नहीं करना पड़ा। इसके लिए मैं दोनो पक्षो को धन्यवाद और साधुवाद देता हूँ। यह पत्र भी मित्र के नाते लिख रहा हूँ।

आपका
हरदेव बाहरी

मे दुखी होते हुए कह देते है "जैसी आपकी इच्छा", "आप स्वय सोच लीजिए, प्रकाशक दुःखी होते है। इस पर भी आप चाहते हैं तो मैं क्या करूँ।" यदि कोई मित्रता प्रकट करते हुए उनकी रचनाए छाप लेता है, और फिर, १० रुपए ५० रु० का चेक भेज देता है तो वे उस चेक को चुपचाप कही डाल देते है, काम मे नही लाते हैं। एकाध बार यह भी हुआ कि जब राजमल प्रकाशन ने काव्य सकलन के सपादक को नोटिस दिया कि आप बिना पुस्तक मे ठीक से पत का नाम दिए या बिना अनुमति के सालो से उनकी कविताए अपने सकलन मे छाप रहे है तो सपादक ने अपने किसी साहित्यिक मित्र से पत को फोन करवा दिया कि ये मेरे गुरुजन है। पत के लिए यह पर्याप्त था, वे सकोच मे पड गए और सपादक की बात को मानकर उन्हे अनुमति दे दी तथा राजकमल के लिए भी लिख दिया कि सपादक से कुछ मत कहिएगा। फिर भी, जहाँ तक सकलनो का प्रश्न है, पत ने राजकमल को अनुमति देने का अधिकार दे दिया है। क्योकि सकलनो का मुँह सुरसा राक्षसी सा फैलता जा रहा है और इसमे पत की बदनामी होती है। सच्चाई की बात तो यह है कि 'पल्लविनी' 'आधुनिक कवि (भाग-२)' 'चिदम्बरा' और 'रश्मिबध' ये चार सकलन ही पर्याप्त थे।[१]

---

१ 'नाट्य-सेतु' 'स्वर्णिम रथ चक्र', 'तारापथ' तथा 'ऋता' के अतिरिक्त पत के निम्नलिखित सकलन और हैं।

बच्चन : 'सुमित्रानंदन पंत'। प्रकाशक राजपाल एण्ड सन्स १९६०

इसमे बच्चन जी की ३० पृष्ठो की भूमिका है तथा 'वीणा' से लेकर कला और बूढा चाँद' की बच्चन जी द्वारा संकलित कविताएँ हैं।

'हरी बासुरी सुनहरी टेर', प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज, फरवरी १९६३ इस संकलन के बारे में पंत का चार पंक्तियों का विज्ञापन इस भाँति है : 'हरी बाँसुरी सुनहरी टेर' में मेरे शृंगार काव्य के सा रे ग म सकलित हैं, जिन्हें पुस्तक रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली को है, जिसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

'चित्रांगदा। प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज १९७०

राजपाल एड सस 'विशेष उत्सव पर्वों पर प्रदान किए जाने योग्य उपहार-ग्रथ प्रकाशित करना चाहते थे' उसकी पूर्ति के लिए उन्होने चित्रांगदा का

'छायावाद पुनर्मूल्याकन' लिखने के पश्चात् पत ने लगभग डेढ-पौने दो वर्ष कुछ नही लिखा। जब लिखना प्रारभ किया तो ६/७ महिनो के अदर दो पुस्तको का प्रणयन कर दिया, 'किरण-वीणा' और 'पौ फटने से पहिले।' १६६८ के मई अत मे पत रानीखेत चले गए, वहाँ उन्होंने 'पतझर : एक भावक्राति' लिखी। वहाँ (वैस्ट व्यू होटल, रानीखेत) मे उनकी भेंट विश्वनाथ जी से हुई, उनके चाहने पर पत ने यह पुस्तक उन्हीको—राजपाल एण्ड सन्ज—को देना स्वीकार कर लिया। 'पतझर . एक भाव क्राति' का प्रकाशन राजपाल से फरवरी १६६६ मे हुआ। इसके पश्चात् १६ दिसम्बर १६६६ को लोकभारती से 'गीत हस'[1] प्रकाशित हुआ। सितम्बर १६७१ मे 'शखध्वनि', अक्टूबर १६७१ मे 'शशि की तरी', जनवरी १६७३ मे 'समाधिता', फरवरी १६७३ मे 'साठ वर्ष और अन्य निबध',[2] जुलाई १६७३ मे 'आस्था' तथा अक्टूबर १६७५ मे

प्रकाशन किया। सभवत. चित्रांगदा की चित्र-शैली एव उसकी सजावट उसे उपयुक्त उपहार ग्रथ नहीं बना पाई है।

'गन्धवीथी' 'प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, फरवरी १६७४ संकलन-कर्त्ता तथा भूमिका लेखक : डा० कुमार विमल।

'अभिषेकिता' का प्रकाशन नरेन्द्रजी के सपादकत्व में पत की षष्टिपूर्ति के उपलक्ष्य मे राजकमल ने किया था। सन् '७६ में पत ने इसके नए संस्करण के लिए मना कर दिया है।

१. वर्तमान प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन।

२. 'साठ वर्ष : एक रेखांकन' एक बहुत छोटी-पुस्तिका थी। उसे आकार देने के अभिप्राय से पंत ने अपने कुछ अप्रकाशित वार्ता-निबंधो से उसे युक्त कर दिया। इन अप्रकाशित निबंधो के अतिरिक्त चार निबध 'कला और संस्कृति' से भी लिए गए हैं। पत के ही शब्दो मे "प्रस्तुत सकलन में 'साठ वर्ष . एक रेखांकन' के साथ अन्य भी अनेक निबंध जोड़ दिए गए है, जिनमें अधिकांश मेरे साहित्यिक जीवन तथा साहित्य संबंधी मान्यताओ पर ही प्रकाश डालते हैं। चार निबध जिनके शीर्षक हैं : (१) धर्म और विज्ञान, (२) मान्यताएँ बदल रही है, (३) आधुनिक युग मे महाकाव्य की उपयोगिता तथा (४) उस पार न जाने क्या होगा, पहले मेरे, निबंध-सकलन 'कला और संस्कृति' में प्रकाशित हो चुके हैं, उन्हे भी…… विषयो की समानता के कारण सम्मिलित कर लिया गया है।"

'सत्यकाम' राजकमल से प्रकाशित हुए। 'गीत अगीत' पत ने २२ जून को राजकमल को प्रकाशनार्थ दिया, वह आजकल छप रहा है।

'शशि की तरी' अन्य रचनाओ से भिन्न है, वह पत के ही शब्दो मे 'स्मृति गीत' है। अनुपमा को पत ने तीन बार देखा होगा, वह भी चार-चार, पाँच-पाँच मिनट के लिए। श्रीमती फिलिस मेहरोत्रा से उसकी प्रशसा सुनकर वे 'स्वराज भवन' गए, फिर जब उसका ओपरेशन हुआ तो उसे देखने अस्पताल गए। जिस भाँति वह अकाल मृत्यु को प्राप्त हुई वह सचमुच मे दुखद था। श्रीमती मेहरोत्रा से उसकी प्रशसा सुनकर ही पत उसके प्रति आकर्षित हो गए थे और उसका सरक्षक बनने का निर्णय ले चुके थे, सोचा था उसकी शिक्षा मे रुचि लेंगे ताकि वह योग्य बन सके, अपना भविष्य सुखद बना सके। पर यह विधाता को स्वीकार नही हुआ। पत की कल्पना दुखदग्ध होकर सृजनवती हो गई। उसने 'ग्रथि' के स्तर के, यद्यपि भिन्न, स्नेह गीतो का प्रणयन किया।

निर्मल जल गिरि स्रोत
विजन अचल मे बहते कलकल,
स्मृति मे बजते, स्वप्न सुते,
अस्फुट पग ध्वनि के पायल।
(शशि की तरी)

जून १९६७ मे 'किरण-वीणा' राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित हुई। इस पुस्तक के विज्ञापन मे पत ने लिखा है, 'वाणी' की 'आत्मिका' की तरह ही इस सग्रह के अत मे 'पुरुषोत्तम राम' शीर्षक कविता मे मेरी आत्म-कथा की भी रूपरेखा आ गई है। 'आत्मिका' की कथावस्तु मुख्यत मन तथा जीवन के धरातल की है, प्रस्तुत रचना इनके अतिरिक्त मेरी चेतनात्मक अनुभूतियो से भी सबध रखती है।" वास्तव मे 'आत्मिका', 'लोकायतन', 'पुरुषोत्तम राम' तथा 'सत्यकाम' एक ही सत्य की अभिव्यक्ति है। 'लोकायतन' मे जहाँ उस सत्य का भावी मानव जीवन के निर्माण के लिए उपयोग किया गया है वहाँ अन्य तीन रचनाओ मे सत्य के आत्म पक्ष पर प्रकाश डाला गया है। इन चारो रचनाओ मे पत के कृतित्व का हृदय स्पदित मिलता है।

'किरण-वीणा' की प्रथम कविता अपने उद्देश्य पर प्रकाश डालती है:

मैं हूँ केवल
एक तृण किरण,

जिसको मानव के पग धर
चलना धरती पर!

मेरे नीचे

पडा अडिग पर्वताकार शव—
पथराया केचुल अतीत का! ..
मुझको क्या उसमे नव जीवन डाल
जगाना है जड शव को?

अपने उद्देश्य की प्रक्रिया को कवि शब्दो से मुक्त कर देता है:

मैं न शब्दो को पिरोता,
प्यार,
केवल प्यार करता हूँ!

पत के इस सग्रह, 'किरण-वीणा' की मुख्य कविता 'पुरुषोत्तम राम'[१] आत्म जीवनी के रूप मे भारत के दार्शनिक धार्मिक, सास्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक इतिहास का भारत की मगलाकाक्षा के सदर्भ मे विवेचन करती है, पत अपने देश की गति-विधियो के प्रति सदैव जागृत रहे है। नवम्बर १९६६ मे गोहत्या विरोध आदोलन ने उन्हें बडा उद्वेलित किया। परिणामस्वरूप

१. 'किरण-वीणा' के अंतर्गत एक लम्बी कविता 'पुरुषोत्तम राम' राजकमल ने स्वतंत्र पुस्तक के रूप में अगस्त १९६७ को प्रकाशित की। 'पुरुषोत्तम राम' पंत के आदर्श चरित्र नायक हैं। यह कविता उस समय (१९६७) देश की स्थिति से प्रेरित होकर लिखी गई है। "मैंने साधुओ पर एक तीखी कविता लिखी है—लम्बी ५० पृष्ठ की।......हिन्दुस्तान की मध्ययुगीन रीढ़ जब तक नहीं टूटेगी वह प्रगति नहीं कर पाएगा।"

पंत का पत्र (१४-१२-'६६)

'बच्चन के नाम पत के दो सौ पत्र', पृ० २४२-२४३

'पुरुषोत्तम राम' की "विशिष्ट उपलब्धि है, 'मै' का 'पुरुषोत्तम राम' जैसा उदात्तीकृत रूप, उसकी गंध और चेतना। इस यात्रा को कवि ने एक खण्ड-काव्य के रूप में दर्शित किया है।"

दिसम्बर प्रथम सप्ताह मे 'पुरुषोत्तम राम' का उन्होने प्रणयन किया। यह कविता उनकी तात्कालिक मनोवृत्ति को मुखरित करती है :

जाने कितने विकृत खोखले आदर्शो की
सन्त धरोहर मध्ययुगी मन की प्रतीक है!

× × ×

लाखो मनुज भले मर जाएँ, किंतु धर्म की
ठठरी गाएँ बची रहे।……

किंतु यह मनोवृत्ति अपने सामयिक और बाह्य रूप मात्र मे ध्वसात्मक और आलोचनात्मक है। अपने आत्मिक अथवा आतरिक रूप मे यह निर्माणात्मक और कल्याणकारी है .

जनगण मे देखो मुझको, जो जीवित भारत,
जन-भू जीव-पदार्थ—पृथक् मुझसे युग-युग से!!

× × ×

अभी जूझना मुझको निर्मम वर्तमान से,
मानवीय साम्राज्य विश्व मे स्थापित करने,—

'किरण वीणा' 'गीत-अगीत' तक की पत की रचनाएँ अपनी विशिष्टता, स्निग्धता और सद्यता अपनाए हुए देश-काल से उपजती हुई सीमाओ के परे का आनद लास हैं। एक ही परम सत्य है जो धरती की हरीतिमा मे, विश्व, तथा विश्वातीत मे है। पत की सभी रचनाओ का केन्द्रीय सत्य चेतना है; युगीन सघर्ष और सीमाओ पर प्रकाश डालते हुए वे कहते है :

'तुम इतनी हो निकट हृदय के
भूल तुम्हे जाता मन,
प्राण, इसी से राग द्वेष का
जीवन बनता प्रागण!'

(पौ फटने से पहिले)[१]

भावना और चिंतन, सूक्ष्म सवेदना और सत्य (चेतना) की ऐसी अविभाज्यता पत-काव्य की विशेषता है। सत्य को भावना के निकट लाना,

---

१. प्रकाशक : राजकमल (अक्टूबर १९६७)

देश-काल का अक्रतिमण करने वाले को धरती पर प्रतिष्ठित करना ताकि धरती अपनी हरीतिमा मैं मुस्कुरा उठे, उसकी फसल मानवजाति को आनद प्लावित कर दे, यही 'गीत हस' की उपलब्धि है। 'गीत हस' के कवि के लिए सापेक्ष और निरपेक्ष एक ही है :[1]

धरती के खूँटे से
बाँध दिया अब मैंने
अनध विद्ध आत्मा के
उज्वल मुख प्रकाश को।

× × ×

मैं फिर से तुमको
हर ले जाऊँगा वन मे,
वन के निश्छल मुक्त
निसर्ग-निभृत प्रागण मे

और इसलिए जीवन नवीन विश्व मूल्यो से स्पदित है :

असती वह,
जो परिजन पति पुत्रो मे सीमित,
सती वही
जो विश्व यज्ञ ज्वाला को अर्पित।

किंतु इन नवीन मूल्यो की स्वीकृति सहज नही है, बिना 'पतझर' के वह 'भाव-क्राति' सभव नही है जो जीवन सत्य को उसकी गहराई मे पकड सके :

अभी प्यार के योग्य नही बन पाई धरती।
तुम्हे प्यार दूँ भी, तो ऐसी नही मनः स्थिति !

× × ×

---

१. "इसमें कोई संदेह नहीं कि अपनी कृतियों के द्वारा श्री सुमित्रानंदन पंत ने कविता के विषय को विस्तृत कर उसे चेतना के नये आयाम प्रदान किए है।"
विश्वम्भर 'मानव' : 'देश-काल की सीमाओ का अतिक्रमण 'गीत हंस।' कथा-३ पृ० १५।

जरा डराती मुझे !
उसे मैं पास बिठाकर
देखा करता जी भर !

× × ×

भूल स्वय को
जग को करने लगा प्यार जब,
जान सका तब

(पतझर एक भाव-क्राँति)

वास्तव मे पत काव्य अपने समस्त चिंतन, चेतनावाद की आड मे आस्था और प्रेम का काव्य है। पत धरती के प्यार के भूखे हैं, वे धरती के रज-कण मे, प्रत्येक के जीवन मे उस प्यार का प्रस्फुटन चाहते है जो जीवन की सार्थकता है :

वह तो प्रेम,
तुम्हारा श्रीमुख
तन्मय अतर को देता सुख !

× × ×

मैं भी सयुक्त निखिल जग से,
अज्ञात हर्ष से आदोलित
गाते मेरे शोणित के कण
भूमा के स्पर्शो से प्रेरित !

× × ×

देवो का हो स्वर्ग महत्—
पर जन धरती पर
रचना हमको मानवीय
नव स्वर्ग महत्तर—

(शखध्वनि)

धरती पर मानवीय स्वर्ग रचने के लिए हमे मनुष्य बनना होगा :

तुम्हें सौपता हूँ देवत्व
तुम्हारा गुरुवर,

मनुष्यत्व ही का कामी
मेरा नर जीवन !

(समाधिता)

मानवीय स्वर्ग की कल्पना आस्था पूर्ण है :

वही अन्त मे होता
जीवन मे नि: सशय,
जो चिर मगलमय
ईश्वर को होता स्वीकृत !

(आस्था)

'सत्यकाम' प्रबध काव्य है। इसकी विज्ञप्ति मे पत ने इसके स्वरूप पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

"वैदिक युग का यह काव्य अपने उन्मेषो, प्रेरणाओ तथा विचार-भावनाओ की चैतसिक उन्मुक्तता मे अतुकात छद के पखो पर ही सहज स्वाभाविक तथा मर्मस्पर्शी उडान भर सकेगा, इस दृष्टि से मैंने इसमे तुकात चरणो का प्रयोग उचित नही समझा है।

'सत्यकाम' मूलत · धरती के जीवन का काव्य है। सच्चे अध्यात्म की परिणति, जैसा कि स्वामी विवेकानन्द भी कहते है, धरती के जीवन की सपन्नता एव परिपूर्णता ही मे होनी चाहिए। भारतीय परम्परावादी मनीषा को धरती के स्तर पर उतारने के लिए अनेक वैचारिक सोपानो की सहायता लेनी पडी है, जो कि इस काव्य के एक अनिवार्य एवं स्वाभाविक अग बन गए हैं।" नि: सदेह 'सत्यकाम' मे वैदिक-औपनिषदिक सत्य धरती के आँचल को पाकर मूर्त हो उठे है। दार्शनिक सत्य की ऐसी मर्मस्पर्शी अनुभूति पत की अपनी थाती है जो उनके काव्य के माध्यम से मानवता का सत्य बनने को मचल उठती है। अथवा 'सत्यकाम' मे उन्होने औपनिषदिक पृष्ठभूमि की कसौटी ही मे आधुनिक जीवन मूल्यो को आँकने का प्रयास किया है।

नारी मुक्ति सबधी उनकी धारणा को भी छादोग्य उपनिषद के पच्चीसवें खंड से प्रेरणा मिली। सहिता काल मे तो बहिरग साधना को और भी प्रश्रय मिला। पत के लिए ईश्वर, धर्म, साधना, योग को मानना मानव जीवन को स्वीकार करना है।

मुझको लगता, मैं असख्य वर्षो से अविरल
तप करता आया हूँ—स्पर्श सत्य का पाने !

... ...

मानव ही, मानव ही, निश्चय परम सत्य वह,
भू जीवन मे उसे सँजोना है अपने को !

× × ×

क्रम विकास की पृष्ठभूमि मे, भू जीवन की
वस्तु परिस्थितियाँ सँवारते रहना प्रतिक्षण
आध्यात्मिक साधना, योग, तप, त्याग यही है,—
यही विश्व मगल, मानव मगल का वाहक !

. ... ..

वही सत्य, जो भू जीवन निर्माण के लिए
कर्म प्रेरणा देता जन को क्रम विकासमय !

"धन्य हुए तुम सुत, ऋषिवर से दीक्षा पाकर,
लोक कर्म मे मूर्त करो अब ब्रह्म सत्य को !

(सत्यकाम)[1]

पत की समस्त रचनाओ का स्वर औपनिषदिक मानववाद का स्वर है जो औपनिषदिक सत्य और धरती के स्पन्दन के ऐक्य से अनुगुंजित है। अनेक परिस्थितियो (बाहरी-भीतरी) से प्रेरित हो उनकी सृजन प्रेरणा जिन भाव भूमियो मे विचरण करती रही है उन्ही का प्रतिबिंब उनकी रचनाओ मे मुख्यत: मिलता है।[2] उन्होने अनेक सरल-जटिल, स्थूल-सूक्ष्म भू जीवन की स्थितियो

---

१. 'सत्यकाम' पर एक समीक्षात्मक लेख आचार्य शिवनाथ जी (शांतिनिकेतन) का 'आजकल' के जुलाई (१९७६) अंक में निकला है तथा दूसरा डा० कुमार विमल का बिहार की परिषद् पत्रिका (अप्रेल १९७५) में।

२. "हिन्दी साहित्य के इतिहास में कवि पंत के उचित स्थान और उनके समस्त कृतित्व के वास्तविक मूल्य को ठीक-ठीक समझने के लिए, देश-काल की परिस्थितियों का ध्यान रखना आवश्यक है। पंतजी के जीवन काल में जो परिस्थितियाँ उत्तर प्रदेश में आर्थिक, सामाजिक, दार्शनिक, साहि-

को अपनी भाषा मे वाँधा है। अपने विषय के अनुरूप ही उनकी भाषा और भाव सरल तरल होते रहे है। यह पत का भाषा और छद पर अप्रतिम अधिकार है जो उनकी अनुभूति और अभिव्यक्ति को सहज बना देता है।

त्यिक तथा सास्कृतिक और शिक्षा-सबंधी क्षेत्रो मे विद्यमान थी, वे जर्मनी मे हेर्देर (Herder), शिल्लेर (Schıllei), गेटे (Goethe) और हेल्देर्लीन (Holderlın) के जीवन काल की परिस्थितियो के बहुत बराबर और अनुरूप हे। इसी कारण आश्चर्य का विषय नही, कि पंतजी के कलात्मक, नैतिक तथा सास्कृतिक और शिक्षा-संबधी उच्च आदर्श और ध्येय जर्मन क्लासिक लेखको के श्रेष्ठ मानवतावादी आदर्शो के निकट है।

अपनी सुप्रसिद्ध कविता 'देवत्व' में गेटे ने लिखा है :—

शरीफ हो मानव,
सहायता-दायक और अच्छा !
क्योकि केवल इसी से वह
सब प्राणधारियो से
—जो हम जानते हैं—
भिन्न हैं। (इत्यादि)

उपर्युक्त मानववादी शिक्षा आदर्श को पंत जी भी, दूसरे शब्दो मे, अपनी रचनाओ में बार-बार अभिव्यक्त कर रहे थे। पंत जी रहस्यवादी नही हैं। रहस्यवादी होने के लिए उनका जीवन-दर्शन अत्यन्त स्वस्थ और धरा-केन्द्रित है। जहाँ स्वर्ण-चेतना का या छायावाद में लौटने का सवाल है, मेरी दृष्टि में कवि के कुल कृतित्व और उनकी निरतर बदलती एवं विकसित होती हुई काव्य चेतना को ठीक-ठीक समझने की कुंजी उनके तथाकथित छायावादी काव्य मे हैं, विशेषकर 'परिवर्तन' मे और 'परिवर्तन' के पश्चात् की रचनाओ में। ·· ··प्रारम्भ में उनका आदर्श था 'सुंदर प्रकृति' जो उनकी दृष्टि मे सब (बाह्य और आंतरिक) गुणो—सौंदर्य, करुणा पावनता, सूक्ष्मता, सरलता, शुभ्र ज्योति आदि का मूर्तमान रूप थी। 'परिवर्तन' के बाद उनका प्रारंभिक सौंदर्य-आदर्श 'सुंदर प्रकृति' क्रमशः 'सुंदर मानव' के आदर्श में बदल गया और यह आदर्श अंत में 'सुंदर मानव जाति' में अपने उत्कर्ष तक पहुँचा। महत्वपूर्ण कृति 'ज्यो-

विक्रम विश्वविद्यालय ने ४ फरवरी १९६७ के दीक्षात समारोह मे पत को डी० लिट० की मानद उपाधि प्रदान की। पत इस समारोह मे सम्मिलित नही हुए। अत. वहाँ के उपकुलपति आचार्य नददुलारे वाजपेयी तथा कला सकाय के अधिष्ठाता डा० शिव मगल सिंह 'सुमन' ने "इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे विशेष दीक्षात समारोह का आयोजन कर १९ मार्च १९६७ को यह मानद उपाधि पत को अर्पित की।" यह आयोजन सुदर और भव्य था, इसकी विशिष्टता यह थी कि आचार्य वाजपेयी अस्वस्थ और दुर्बल होने पर भी उपाधि देने इलाहाबाद आए। यह बात अत्यत मर्मस्पर्शी थी। ऐसा पहले पता होता तो सभवत पत उज्जेन जाने की बात सोचते। डी० लिट की डिग्री लेने एव उसे लेने के लिए बाहर जाने की बात पत को कभी नही भाई। पर वाजपेयी जी और सुमन जी के स्नेह का ध्यान कर मन कृतज्ञ हो गया। विक्रम विश्वविद्यालय के अतिरिक्त पत को डी० लिट० की चार और मानद उपाधियाँ मिली है।

त्स्ना' रूपक है, जिसमें कवि ने 'सुंदर मानव' और 'सुदर मानव जाति' के सबध में (·· ···'नवीन मानव जाति') अपने श्रेष्ठ आदर्शों और विचारो को कलात्मक रूप से व्यक्त किया है। ···'ज्योत्स्ना' का लक्ष्य महान है। वह मानव मन को जडता से चैतन्य की ओर, शरीर से आत्मा की ओर, रूप से भाव की ओर, नीचे से ऊँचे की ओर अग्रसर करता है, और साथ ही इस भू पर केन्द्रित रहता है। रूपक का क्षेत्र विराट है।' उनका नव मानवतावाद तथा यथार्थवाद एक क्लासिकी मानवतावाद तथा यथार्थवाद है। जो आदर्श और विचार पंतजी ने उस समय मार्क्स और गाधी से अपनाए और जिनका विशिष्ट संस्कार उन्होने अपने काव्य में किया, वे उनकी क्लासिकी-मानवतावादी विचारधारा के प्रतिकूल नही थे। (उनके लिए) वे केवल एक सत्य के दो पक्ष थे।'' ''उनके (पत) जीवन काल में आधुनिक हिन्दी साहित्य (और दर्शन) अपने राष्ट्रीय विकास में अपनी क्लासिकी मानवतावादी समृद्धि तक पहुँच गया, जिसमे कवि पत का एक केन्द्रीय स्थान है।"

डा० इरेने जाहरा : महाकवि सुमित्रानन्दन पंत के सम्बन्ध मे कुछ विचार, जर्मन अध्येता के दृष्टिकोण से।

'प्रकाशन समाचार' (राजकमल प्रकाशन दिल्ली) मई १९७१ पृष्ठ ७ तथा पृष्ठ ९

गोरखपुर विश्वविद्यालय ने १९७१, कानपुर विश्वविद्यालय ने ६ मार्च १९७६ कलकत्ता विश्वविद्यालय ने १३ मार्च १९७६ तथा राजस्थान विश्वविद्यालय ने १५ मार्च १९७६ को अपनी मानद उपाधियाँ पत को प्रदान की। गोरखपुर विश्वविद्यालय ने अपना उपाधि पत्र भेज दिया था, राजस्थान विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय स्वय दिल्ली आकर १७ मार्च १९७६ को यह उपाधि पत को प्रदान कर गए तथा कानपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री भक्तदर्शन २२ अप्रेल १९७६ को पत के निवास स्थान पर आकर अपने विश्वविद्यालय की "साहित्य वारिधि' अर्थात 'डॉक्टर ऑफ लेटर्स' की सम्मानित उपाधि से अलकृत कर गए।"

भाषा विधेयक के विरुद्ध नवम्बर-दिसम्बर १९६७ मे हिन्दी प्रेमी दुख और आक्रोश से तिलमिला गए। इलाहाबाद के छात्रो ने भी काफी कुहराम मचाया।[1] इलाहाबाद के सभी अन्य साहित्यिको, बुद्धिजीवियो, प्रबुद्ध नागरिको की भाँति पत भी सरकार की नीति को देश के लिए कल्याणकारी नही मान पाए। दिसम्बर '६७ को पत खाना खा रहे थे कि छात्रो का एक जुलूस घर के फाटक के पास खडा हो गया, कुछ नेताओ ने खिड़की तथा दरवाजे से पत को आवाज दी, "पत बाहर आइए, बाहर आइए।" पत खाना खा रहे थे। मैंने कहा, "मैं देखती हूँ कौन है ?" पत का स्वभाव, "नही मुझसे मिलने कोई आया है, मैं दरवाजा खोलता हूँ।" हाथ का कौर थाली पर रख उन्होंने दरवाजा खोला कि छात्र-नेताओ ने उन्हे घेर लिया, "हमारे साथ हमारे जुलूस मे चलिए, अलकरण छोडिए अन्यथा ये चूडियाँ लाए हैं इन्हे पहिन लीजिए।" पद्मभूषण की उपाधि का पत को कोई लालच नही था,[2] शायद छोडना अच्छा ही लगा हो। फिर जिस हिन्दी के कारण यह उपाधि मिली थी यदि वही उपेक्षणीय हो गई[3] तो उस

---

१. भाषा विधेयक के कारण दो रोज से यहाँ काफी कुहराम मचा है।"
पंत (३-१२-६७)
'पंत के दो सौ पत्र बच्चन के नाम', पृ० २६२

२ देखिए अध्याय १९

३. "भाषा विधेयक में १/२ क्लाज घातक हैं—उनका संशोधन होना चाहिए। नहीं तो ९९ प्रतिशत लोग गूँगे ही रहेगे और अंग्रेजी सदैव के लिए भारत को विभक्त कर देगी। आज की नेशनल यूनिटी के लिए ऐसा खोखला

उपाधि का अर्थ ही क्या। पत ने लाउड स्पीकर मे बोलकर उपाधि छोड दी पर जुलूस के साथ मील दो मील चलना उनके लिए सभव न था। अत अपने लोकेलिटी के फाटक तक जाकर लौट आए। घर मे आकर जूठे हाथ धोए और आधा घण्टा पूर्व परोसा खाना खाने बैठ गए। बुरा बाद को लगा जब पता चला कि छात्रो का घेराव सुनियोजित था। "मेरे घर को भी २०० के करीब छात्रो ने घेरा—७ ता० को दो बजे। लाउड स्पीकर लाए थे, उनके भाषण सुने, उत्तर दिया, पद्मभूषण की उपाधि छोडी—और किसी के यहाँ नही गए।

' आदि ने सत्यनारायण कुटीर मे एक बैठक मे यह माँग पेश करके छात्रो को भडकाया और मेरे यहाँ भेजा । खैर मुझसे विद्वेष रखनेवाले तो सभी ——है—और उपाधि से मुझे क्या मोह हो सकता है ?"[1]

पद्मभूषण की उपाधि छोडने का अर्थ था कि इस उपाधि के प्रमाण स्वरूप जो भी मिला हो उसे लौटा दे। पत ने अपना पद्मभूषण का मेडिल महादेवी जी को दे दिया। उन्होने अपना तथा पत का मेडिल सरकार को वापिस भेज दिया। पार्सल पहुँचे की रसीद भी उनके पास आ गई। किंतु १६-१८ दिसम्बर के अखबार मे किसी ने निकाल दिया कि पत ने अलकरण नही लौटाया। विचित्र ही चिढ थी—हिन्दी के जिन महारथियो ने उपाधि नही छोडी (यद्यपि

समझौता दक्षिण उत्तर में सरकार को नहीं करना चाहिए जिससे देश और राष्ट्र कल सदा के लिए खंडित हो जाए। फिर फंडामेन्टल से समझौता करना सदैव घातक होता है। हिन्दी राज्य अंग्रेजी अनुवाद भेजें यह केवल धोखा है, फिर हिन्दी मे कौन पढेगा। नौकरशाही को कौन नहीं जानता ? ऐसी कुछ बातें बिल मे राष्ट्रघातक हैं। इनसे हिन्दी ही नहीं भारतीय भाषाओ को विकास के लिए कभी उचित क्षेत्र नहीं मिल सकेगा। और अंग्रेजी विषैली भाप की तरह देश के मन पर छाई रहेगी।" पंत (११-१२-६७)

'पंत के दो सौ पत्र बच्चन के नाम' पृ० २६५-२६६

१४ दिसम्बर '६७ को पंत कालका मेल से दिल्ली गए और १६ दिसम्बर को उन्होंने इन्दिरा जी से भेंट की, भाषा विधेयक के बारे मे अपने विचार व्यक्त किए। इस बार पार्लियामेन्ट में भी उपस्थित हुए। वहाँ के कार्यक्रम को देखकर उन्होंने कहा, "बाप रे, इस देश का उद्धार असंभव है।"

१. वही पृष्ठ २६५

छोडने न छोडने का कोई महत्व नही था) उनके प्रति सहिष्णु भाव और पत के प्रति । इससे पत, कवि पत का कुछ बिगडा नही । न सृजन मे ही आघात पहुचा और न स्थायी प्रतिष्ठा मे क्योकि "पिछले दस-पन्द्रह वर्षों से सुमित्रानन्दन पत के जीवन, काव्य और साहित्यिक अवदान पर निबधो, शोध प्रबधो और अन्य पुस्तको की बडी सख्या लिखी गई है, न केवल भारत मे किंतु विदेश मे भी ।[1] यह कोई आश्चर्य की बात नही है, भारतीय और विशेषकर हिन्दी साहित्य मे उनका स्थान विशिष्ट और महत्वपूर्ण है । तुलनात्मक दृष्टि से पत हिन्दी साहित्य के रवीन्द्रनाथ ठाकुर अथवा योहन्न वोल्फगग गेटे (Goethe) है। अपने देश के पुरुषो और स्त्रियो को मध्यकालीन नैतिक सस्कारो तथा रूढि-रीतियो की शृखलाओ से मुक्त करने का काम, नवीन युग की धराचेतना के अनुसार जन के आधुनिकीकरण और मानवीय करण का सक्रिय और निरतर कार्य जो कविवर पत अपने सारे जीवन मे अपनी रचनाओ के माध्यम से कर रहे हैं, वह न समकालीन पीढी के लिए सच और भला है

---

१. रूसी मे पत के दो काव्य-सग्रह छपे है :

(१) 'सुमित्रानदन पत चुनी हुई कविताएँ ।' १९५९

(२) सुमित्रानदन पत 'हिमालयीन कापी बुक' (प्रकृति सबधी कविताओं का संकलन) प्रोग्रेस पब्लिशिंग हाउस, मास्को १९६५

तथा ई० चेलिशेव ने डी० लिट० पंत काव्य पर ही ली है, उनकी डी० लिट का विषय था 'सुमित्रानदन पंत—तथा आधुनिक हिन्दी कविता में परम्परा और नवीनता ।' उनका यह शोध ग्रंथ राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है ।

पूर्वी जर्मनी मे डा० इरेने जाहिरा ने भी पत-काव्य पर डि० लिट की है । इन्होने अपना शोध ग्रंथ मि० स्मेकल के निर्देशन में लिखा है । और इन्होने ही पत से अनुमति लेकर उनकी "रचनाओ का जर्मनी मे अनूदित संग्रह भी छपवाया है ।"

जापानी में टूग याग (Tung Yang) ने 'विश्व की चुनी हुई कविताएँ' पुस्तक संपादित की है : इस पुस्तक में पत की 'स्वर्णकिरण' का भी जापानी मे अनुवाद है ।

(एक ऐतिहासिक आवश्यता है), परन्तु भावी पीढियो के वैचारिक और नैतिक विकास के लिए भी अमूल्य है और रहेगा।"[1]

'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के १८ दिसम्बर '६६ के अक मे एक परिचर्या प्रकाशित हुई, 'आर्थिक निश्चितता और कला-साधना'। इस परिचर्या मे डा० नगेन्द्र, श्री ज० स्वामीनाथन, डा० बच्चन तथा डा० नामवर सिंह के वक्तव्य प्रकाशित हुए थे। इस परिचर्या मे बच्चन जी ने अकारण ही पत पर जो आक्षेप किए उससे पत को दुख हुआ। पत के जीवन का एक लम्बा भाग,

---

१. डा० इरेने जाहरा : 'महाकवि सुमित्रानदन पंत के संबंध मे कुछ विचार : जर्मन अध्येता के दृष्टिकोण से।'

'प्रकाशन समाचार' : राजकमल प्रकाशन, पृ० ७ (मई १९७१)

इसी सदर्भ मे डा० इरेने जाहरा कहती हैं "जैसा पत जी ने स्वयं कहा है : 'सम्भव है, जो नया मूल्य मानव की अन्तश्चेतना में अवतीर्ण हो चुका है उसकी परिणति मानव जाति के जीवन मे सौ दो सौ साल बाद हो और विगत अभ्यासो तथा रीति मर्यादाओ में पथराई हुई मानव चेतना को नया रूप ग्रहण करने के पूर्व अनेक सघर्ष, संग्राम आदि करने पड़ें।" इन शब्दो के सत्य का जर्मन इतिहास समर्थन करता है, क्योंकि जो श्रेष्ठ आदर्श और नूतन मानवतावादी मूल्य हेर्डेर, गेटे, शिल्लेर और अन्य जर्मन क्लासिक लेखको ने १८ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा १९वीं शताब्दी के प्रथम तीस वर्षों में सर्वजन के लिए स्थापित किए हैं, वे आजकल, उनके देहात के एक सौ पचास, एक सौ साठ वर्षों के बाद, जर्मनी के जनवादी प्रजातंत्र में एक नयी पीढी द्वारा क्रमशः जीवन और व्यवहार में लाए जाते हैं।"

"जर्मन और हिन्दी क्लासिक कवियो का महत्व और गुण इसी में है ··· ··· अपने देश-काल की वास्तविकता की दुर्दशा के विपरीत सर्वजन के लिए श्रेष्ठ मानव जीवन ··· ··· के आदर्श और लक्ष्य स्थापित किए है और भावी पीढ़ी की अवस्था मे सब पतनशील, पलायनवादी, रोमांटिक, प्रकृतिवादी और I' art pour I' art प्रवृत्तियो के विरुद्ध एक स्वस्थ, यथार्थवादी (क्लासिक के अर्थ मे), मानव-केन्द्रित और धरा-केन्द्रित साहित्य की रचना की।"

वही, पृ० १३ तथा पृ० १२-१३

सन् १६२१ से सन् १६५०, और विशेष रूप से सन् १६२६ से सन् १६५० तक, ऊहापोह एव दुविधा, सघर्ष, आर्थिक अनिश्चितता, पारिवारिक बिलगाव आदि से पूर्ण था। एक सवेदनशील कलाकार जो अपनी व्यक्तिगत स्थिति को बाह्य मुस्कान द्वारा अभिव्यक्ति देना अपना धर्म बना लेता है, सचमुच ही, आतरिक क्लेश का जीवन जीता है। यद्यपि समांतर मे यह भी सच है, और इसके लिए पत भगवान के प्रति प्रणत है, कि उनकी व्यक्तिगत व्यथा ने उनमे कुठा, प्रतिस्पर्द्धा, मात्सर्य को जन्म नही दिया वरन् (आश्चर्य ही है) सहिष्णुता, दया, दूसरे पर सहज ही विश्वास तथा अपने जीवन की पीडा के लिए दिव्य के विधान मे निहित कोई अच्छाई को देखने की प्रेरणा को जन्म दे दिया। लेकिन यह व्यथा वह व्यथा है जिसे कुरेदना पत को प्रियकर नही है। बच्चन जी ने जब साप्ताहिक हिन्दुस्तान द्वारा अकारण ही पत पर झूठे आक्षेप किए तो उन्हे बहुत बुरा लगा। तत्काल उन्होने इस आक्षेप का प्रतिरोध करते हुए एक लेख लिखा।[1] 'दिनमान' के सपादक के लिए, इसे प्रकाशित करवाने के उद्देश्य से, एक पत्र भी लिखा, "दिनमान के लिए अपना एक लेख भेज रहा

---

१ आर्थिक तिश्चिंतता के बारे में अपना मत व्यक्त करते हुए पंत ने इस लेख में लिखा "मेरी समझ मे आर्थिक निश्चिन्तता का प्रश्न किसी व्यक्ति के कलाकार या वैज्ञानिक होने से उतना संबंध नहीं रखता जितना उसके देहधारी, मनोजीवी मनुष्य होने से; और मनुष्य को, चाहे वह कलाकार हो, कृषक या योद्धा, अपने आत्म विकास एवं समुचित कर्तव्य पालन के लिए आर्थिक निश्चिन्तता अनिवार्य रूप से अपेक्षित होती है। कलाकार या साहित्यकार को, जो मात्र लेखन-यंत्र न होकर अधिक सवेदनशील प्राणी होता है, उसे इसके अतिरिक्त मानवीय परिवेश की भी एकांत आवश्यकता होती है। यदि कोई साहित्यकार आर्थिक आभावो तथा प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए भी उच्च कोटि का साहित्य सृजन कर सका है तो इसका कारण मुख्यतः उसकी प्रतिभा की क्षमता, प्रेरणा की तीव्रता तथा लगन की दृढता ही हो सकती है। कलाकार अभाव मे पलता है, यह अवश्य ही लोकमन में व्याप्त एक भ्रांत धारणा है। आर्थिक निश्चिन्तता के अतिरिक्त आर्थिक संपन्नता भी उच्च कोटि की प्रतिभा के विकास में बाधक नहीं होती, इसके जीवत उदाहरण इस युग मे कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ हैं। अपने संघर्ष की डींग मारने वाले कलाकार अभी उनके टखनो तक भी नहीं पहुँच पाए हैं।"

हूँ बच्चन ने मुझ पर अकारण आक्षेप कर मेरे बारे मे भ्रामक बातें कही है। उसी के उत्तर मे मैंने अपना स्पष्टीकरण उसी की तरह बेतकल्लुफी से दिया है। बच्चन को भी सूचना दे रहा हूँ।" बच्चन जी के लिए भी उन्होने पत्र लिखा, "अपने वक्तव्य मे तुमने अकारण ही मुझ पर आक्षेप किया है। मैंने भी उसी निर्ममता के साथ उसका उत्तर लिखा है, अभी यह नही तय किया है कि उसे छपाने भेजूँ या नही। शाता मना करती है, बहरहाल वह उत्तर मेरे पास लिखा रखा है।" (१६-१२-६६) "हो सकता है सा० हि० ने तुम्हारे शब्दो को बदल दिया हो, पर 'कवियो मे सौम्य सत' मे भी तुमने बिलकुल वही बात लिखी है। जब तुम मेरे कालाकाँकर निवास के बारे मे कुछ भी नही जानते हो तुम्हे ऐसे अनुत्तरदायित्व पूर्ण ढग से उसके सबध मे व्यक्तव्य नही देना चाहिए। वहाँ जाकर मैं पहली बार यथार्थ के सपर्क मे आया जिसका प्रभाव मेरे 'लोकायतन' तक मे है मैंने तो इतने तीखे शब्दो मे तुम्हारा प्रतिवाद किया था कि अब मैं उसे नही छपा रहा हूँ—क्यो कि शाता मना करती है। पता नही अब निबन्ध सग्रह मे भी वह लेख जायगा कि नही। खैर, मैं वह सब भूल गया हूँ। पर तुम्हारे से मित्र व्यक्ति को इस प्रकार की भ्रात बातो को प्रचार मे लाना शोभाजनक नही लगता। इसमे बुरा मानने की कोई बात नही।" (३०-१२-'६६) "सबध टूटने का सवाल नही उठता। मुझ पर तो बीसियो ने अनर्गल बातें लिखी है। पर तुम मेरे अपने हो इससे मुझे वह अखरा, खैर अब वह परिच्छेद समाप्त।" (४-२-'६७)[1]

व्यक्तिगत स्तर पर पत को बच्चन की कोई बात बुरी नही लगती है—किंतु यह उनके एव एक लेखक के व्यक्तित्व का खुले आम भ्रात विश्लेषण था। भ्रांति, वह भी सगे (बच्चन को वे सगा ही मानते है।) भाई द्वारा, असत्य सत्य ही बन जायगा। चिट्ठियो द्वारा जब बच्चन ने उनके लिए लिखा कि उन्हे अब लिखने से विश्राम ले लेना चाहिए तो उन्हे बुरा नही लगा। सन् '५४ से बच्चन पत के लिए अक्सर सृजन-कर्म छोडने के लिए लिखते आए, 'लोकायतन' के बाद तो उनका यह आग्रह दुर्निवार हो गया, पर पत ने सदैव हँस कर बात टाल दी। एकाध बार मैंने चिट्ठियाँ पढ ली तो मुझे बुरा लगा—

---

१. 'पंत के दो सौ पत्र बच्चन के नाम', पृ० २४३-२४४, २४५-२४६ तथा २४७

एक लेखक से कहना कि तुम लिखो मत विरोधपूर्ण ही लगता है[1]—पत ने डॉट दिया, "बच्चन को मैं कब से जानता हूँ, मालूम है? वह मेरा है।" किंतु 'मेरा' के प्रति पत को सचेत होना ही पडा।

मई '६० मे बच्चन जी की पुस्तक 'कवियो मे सौम्य सत' प्रकाशित हुई। इस पुस्तक के अत मे 'पत जी के कुछ पत्र' के अतर्गत पत के सन् '४० से लेकर सन् '६० तक के बच्चन जी को लिखे १२६ पत्र (१४२ पृष्ठ) है। इन पत्रो को पढकर पत की यही प्रतिक्रिया हुई कि बच्चन ने बडी फालतू चिट्ठियाँ छाप दी है। फिर बच्चन जी ने जब बताया कि वे और चिट्ठियाँ भी छपवाएगे तो दो बातो की ओर पत ने उनका ध्यान आकृष्ट करना चाहा . (एक) सम्पादित करना आवश्यक है क्यो कि ऐसी बाते हो सकती है जो दूसरो को आहत करे अथवा दूसरे अपनी बातो को गोपन रखना चाहे, (दो) अर्थहीन फालतू चिट्ठिया छापकर साहित्य का कुछ लाभ नही होता। अतः जो बिलकुल ही दैनन्दिन जीवन से सबधित हैं, उन्हे मत छपवाना। बच्चन जी मुस्करा दिए।

पत ने सदैव की भाँति बच्चन जी को जब जो घटित हुआ, जिस समय जो प्रतिक्रिया हुई वह लिख दिया। उच्चनजी को उन्होंने अभिन्न माना है। उन्हे पत्र लिखते समय दुराव की बात उनके मन मे उत्पन्न ही नही हुई। मैंने कहा भी, "अब पत्र यह ध्यान मे रखकर लिखना कि वे प्रकाशित करा देंगे। देखा नही मुस्करा रहे थे।" वे आहत हो गए, "बच्चन को क्या तुमने मूर्ख समझा है।" मई सन् १९७० मे जब 'पत के सौ पत्र बच्चन के नाम' प्रकाशित हुए तो पत थोडा परेशान हुए। उन्होने बच्चन जी से कहा पर बच्चन जी की हठ-धर्मिता! लाचार उन्होने राजपाल प्रकाशन से कहा कि उनके पत्र बिना उन्हे दिखाए प्रकाशित न किए जाए। एक पत्र बच्चनजी को भी इस आशय का डाला। १२ मार्च '७१ को बच्चन जी का पत्र मिला।

---

१. कैसे छोड़ तुम्हे सकता मै
प्रेयसि कविते,
क्या न आम की डाली पर
अब कोयल गाए?

'आस्था' पृ० ६३ (प्रथम सस्करण)

"एक समाचार देना है
बच्चन के नाम : पंत के दो सौ पत्र
प्रकाशित हो गए है
(सन्मार्ग प्रकाशन)
आपको भेट स्वरूप १० प्रतियाँ शीघ्र पहुँचेगी ।"

पुस्तक की प्रतिया मिली । पत ने पढी, कुछ मित्रो को दिखाई। लगा कई लोग आहत हो सकते हैं तत्काल 'सन्मार्ग प्रकाशन' को फोन किया । किंतु प्रकाशक का 'एग्रीमेन्ट' तो बच्चन जी के साथ था । बच्चन जी को भी तार किया तथा चिट्ठी लिखी, बच्चन जी का उत्तर आया :

साईदा,

नमस्ते, आपके १७-३-७१ के पत्र के लिए ध० उसके पूर्व आपका तार भी मिला था । ··· मेरी दृष्टि मे पत्रो का महत्व ही इस बात मे है कि वे जैसे लिखे गए हैं उनको उसी रूप मे छापा जाए, आप पत्रो को 'सेंसर' करके छपाने के पक्ष मे है । आइए हम असहमत होने के लिए सहमत हो लें । आपने पाँच सौ पत्र मुझे लिखे है तो मैंने भी उतने ही पत्र आपको लिखे होगे । अगर आपके पास मेरे पत्र पडे हो और आप उन्हें कभी छपाना चाहे—चाहे बदला चुकाने के लिए ही—चुकाना तो मित्र को चाहिए—तो मैं आपसे नही कहूँगा कि पहले मुझे उन्हे 'सेन्सर' करने दीजिए । •

आप अब कूटस्थ है जहाँ से आपको कोई डिगा नही सकता । 'पत के सौ पत्र' की कुछ बातो से कुछ लोग नाराज हो गए आपसे, तो क्या बिगड गया आपका ।

और 'दो सौ पत्र' से भी कुछ लोग बिगडेंगे तो आपका क्या बिगाड देंगे ? · ·

मैं अपनी आत्मकथा के तीसरे अक मे डूबा हूँ । आप अपना आशीर्वाद दे कि वह पूरा हो ।· ····

बच्चन

(२२-३-७१)

बच्चन जी के इस पत्र से पत दुविधा मे पड गए । दो प्रसिद्ध वकीलो को 'पत के दो सौ पत्र' दिखाए । उन्होने यही राय दी कि 'नोटिस' दे देना चाहिए

क्यो कि पत्रो मे कुछ अश ऐसे हैं जिनके कारण पत परेशानी मे पड सकते है। इससे कही अधिक महत्वपूर्ण पत के लिए उनकी मान्यताएँ थी—उनके लिए यह असह्य था कि उनके पत्र दूसरो को आहत करें, ऐसी बातें वर्तमान पीढी अथवा आगामी पीढी के सम्मुख आएँ जिनका अब उनके लिए कोई अर्थ ही नही रह गया। उन्होने बच्चन जी के लिए दो कठोर पत्र लिखे ।

प्रिय बच्चन,

पिछले सप्ताह मैंने एक पत्र बच्चन के नाम 'पन्त के दो सौ पत्र' पुस्तक के सम्बन्ध मे लिखा था, उसका उत्तर तुमने नही दिया—शायद न मिला हो। इसी कारण यह पत्र रजिस्टर्ड डाक द्वारा भेज रहा हूँ ।

तुम्हारे प्रकाशक सन्मार्ग प्रकाशन को मैंने लिखवा दिया है कि जिन अशो पर मुझे आपत्ति है, उन्हे निकाल कर ही सशोधित रूप मे पुस्तक को अब मार्केट मे लाया जाये ।

मैंने सन् '६० मे तुम्हे जो अपने पत्रो को प्रकाशित करा लेने की अनुमति दी थी, वह मई '६० तक के पूर्व लिखे गये पत्रो पर ही लागू हो सकती है।

जब पत के सौ पत्र निकले थे मैंने तुम्हे मना कर दिया था कि बिना सपादित किये या मुझे दिखाये आगे किसी भी पत्र को न प्रकाशित करना। पर तुम हो कि बिना मुझे सूचना दिए पत्र सन्मार्ग प्रकाशन से छपवा दिए क्योकि मैं राजपाल एन्ड सस को मना कर चुका था ।

इस प्रकार तुमने मेरे सहज विश्वास पर आघात पहुँचाया है जिसका मुझे बडा दुख है। भविष्य मे तुम कोई भी मेरे पत्र बिना मुझे दिखाए नही प्रकाशित कर सकते ।

तुमको सदैव मित्र माना है। यद्यपि तुमने इधर मित्र सा काम नही किया है। फिर भी मैं कोई बडी कार्यवाही नही कर रहा हूँ बल्कि इस पत्र द्वारा केवल आगाह कर देना चाहता हूँ कि इन पत्रो द्वारा अब मुझे किसी भी प्रकार की परेशानी हुई, तो इसकी पूरी जिम्मेदारी तुम्हारी होगी ।

सस्नेह, तुम्हारा

(सुमित्रानंदन पंत)
२५-३-७१

२६-३-७१

प्रिय बच्चन,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे प्रकाशक (सन्मार्ग प्रकाशन) को कल मैंने लोक-भारती से पत्र तथा सशोधित कापी दो सौ पत्रो की भेज दी है। १५-२० पृष्ठ दुबारा छपवाने पडेंगे। पर सशोधन अवश्य हो जाना चाहिए। प्रश्न यह नही है कि कोई मेरा क्या बिगाड सकता है, प्रश्न यह है कि किसी को मैं क्यो आहत या दु खी करूँ। क्षणिक आवेश मे लिखी गई कुछ व्यक्तिगत बातो को जो केवल मित्र के नाते तुम्हे लिखी गई थी जन साधारण तक क्यो पहुँचाया जाय ? नियम भी यही है। जीवित व्यक्तियो से सबधित चर्चाए छोड दी जाती हैं।

शत्रु बदला लेते हैं यह बात अलबत्ता जगत जानता है, पर मित्र बदला लेते है यह तुम्हारी सुविधा की नीति हो सकती है। बहरहाल १९६० मे मैंने जो अनुमति पत्रो को छापने की तुम्हे दी थी उसे मैं अब वापस लेता हूँ आगे मेरे पत्र मत छपवाना बिना मुझे दिखाए—यदि छापना ही आवश्यक हो तो यहाँ मेरे सब मित्रो की जो बदला लेने की नीति मे विश्वास नही करते—यही राय है। तुमने इतने अनुत्तरदायित्व के साथ पत्र छपवाए हैं कि उनमे सैकडो छापे की गलतियाँ है—मेरी ही समझ मे कही-कही नही आते।

मैं कोई कूटस्थ व्यक्ति अपने को नही मानता—वह तो तुम ही हो। मैं तो भारत की साधारण प्रजा भर हूँ। तुम्हारे भी प्राय: दो तिहाई पत्र शाता ने सन् '५० से सुरक्षित रखे है—पर मेरा उन्हे छपवाने का कोई विचार नही—जीवन प्रकाश जोशी ने जो तुम्हारे पत्र छापे हैं[1] वे भी देख चुका हूँ। प्रथम सस्करण के लिए तुमने अपना स्वाधिकार जताते हुए जो अनुमति प्रकाशक को दी है वह भी पढ चुका हूँ।

तीसरा खड लिख रहे हो ! प्रसन्नता है। जैसा चित्र तुमने मेरा उभारा है (अपनी जीवनी मे) उससे मैं इस योग्य नही रहता कि तुम्हे आशीर्वाद दूँ। मेरे जैसे द्वेष दग्ध कटुता भरे व्यक्ति से दूर ही रहना अच्छा है।

---

१. बच्चनः पत्रों मे। सपादक : डा० जीवन प्रकाश जोशी। सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली-७

शाता को भी दुःख है कि तुमने उसके पत्र मना करने पर भी छाप दिए। और क्या लिखूं ? आशा है सपरिवार प्रसन्न हो।

धन्यवाद

सुमित्रानंदन

पु० जो प्रतियाँ release हो गईं,
शेष प्रतियो मे सशोधन हो जाना
चाहिए।

इसके साथ ही एक रजिस्टर्ड ए० डी० सन्मार्ग प्रकाशन के लिए भी भेजी।

म० सन्मार्ग प्रकाशन
१६ यू० बी० बग्लो रोड, २५-३-'७१
दिल्ली-७

विषय : 'बच्चन के नाम पन्त के दो सौ पत्र' नामक पुस्तक

प्रिय महोदय,

यह पत्र श्री सुमित्रानदन जी पन्त की ओर से हम आपको लिख रहे हैं। आशा है पत्र पढ कर कार्य की अनिवार्यता को आप समझ लेगें।

आप जानते ही है कि पत्रो पर कापीराइट पत्र-लेखक का होता है : आप जैसे सुधी प्रकाशक को चाहिए था कि पुस्तक रिलीज करने के पूर्व श्री सुमित्रानदन जी पन्त की अनुमति ले लेते। बच्चन जी को १६६० मे दी गयी अनुमति बाद मे कैंसिल तो नही कर दी गयी, इसकी आपको पुष्टि कर लेनी चाहिए थी।

बहरहाल आपने इस रूप मे पुस्तक प्रकाशित करके पत जी के साथ अन्याय तो किया ही है, अब आप इतनी कृपा करें कि कम से कम इस पुस्तक को सशोधित रूप मे सामने लायें। सशोधन पृष्ठ १३४, १३५, १४२, १६४, १६७, १६६, २१८, २३३, २४२, और २६५ पृष्ठ पर है। यह भी पत जी की सहृदयता का ही परिचय है कि वह इस थोडे से परिवर्तन के साथ आपको पुस्तक बेचने की अनुमति दे रहे हैं ताकि आपकी कोई विशेष हानि न हो। आपसे निवेदन है कि इन परिवर्तनो के बिना पुस्तक को हर्गिज न बेचे अन्यथा पत जी कोई भी अन्य कदम उठाने के लिए विवश होगे।

कृपया पत्र प्राप्ति की सूचना दें। इस विषय मे श्री बच्चन जी को भी लिखा जा चुका है।

भवदीय
लोकभारती की ओर से
(दिनेशचन्द्र)

पुनश्च :

'बच्चन के नाम पन्त के दो सौ पत्र' की सशोधित प्रति अलग रजिस्टर्ड डाक द्वारा भिजवा दी गयी है।

इस बीच लोगो की प्रतिक्रियाएँ 'पत के दो सौ पत्र बच्चन के नाम' के प्रति सुनने को मिली। सभी को यह लगा कि पत्रो के कुछ अश नही छपने चाहिए थे। कुछ क्रोधित और क्षुब्ध थे तो कुछ मुकदमा करना चाहते थे, मात्र यह सकोच था कि पत अकारण ही फसेंगे। पत को जो बात ठीक लग जाती है, वह उसके प्रति लौह सकल्परत हो जाते है। यदि पत्रो मे जीवित लोगो के नाम नही होते, अथवा आहत करने की बात न होती तो वे स्वय आहत होकर चुप हो जाते एव पत्र लिखकर सतोष कर लेते। यह तो सिद्धात की बात थी,[1]

---

1. सज्जनता से इस प्रकार का
        लाभ उठाना
   और उसे सहते जाना —
        यह दुर्बलता है!
   यह सज्जनता नहीं! कहीं
        आदर्श मिला होता
   यथार्थ से, और
        उपेक्षा कर यथार्थ की
   अस्थिहीन आदर्श
        स्वयं भी गिर जाता है!
   इसीलिए आदर्श-मूल्य की
        रक्षा के हित
   कृत संकल्प हमे
        होना पड़ता अनचाहे!

'आस्था' पृ० २२२-२२३

दूसरो पर निरर्थक ही कीचड उछालने का प्रतीकार करना ही था, पत को यह बतलाना ही था कि उन्होने अपने क्षणिक आवेश मे अपने मित्र को जो लिखा वह पानी का बुलबुला मात्र था। अतः जब पुस्तक सशोधित होती नही दीखी तो मुकदमे की नौबत आई। यह पत को करना तो पडा, पर अत्यन्त दुःखी अथवा भारी मन से। कई बार बच्चन को स्वप्न मे भी देखा। और वह दिन पत के लिए सुखद ही था जिस दिन दिनेश जी (लोक भारती) का फोन आया कि वे प्रेमनाथ जी (प्रोप्राइटर, सन्मार्ग प्रकाशन) के साथ आना चाहते है क्योकि प्रेमनाथ जी समझौता करना चाहते है।

समझौता नामा

सन्मार्ग प्रकाशन

दिल्ली-६

प्रिय श्री प्रेमनाथ जी,

आपने मुझे आश्वासन दिया है कि आप 'बच्चन के नाम पत के दो सौ पत्र' पुस्तक मे से पृष्ठ सख्या १३४, १३५, १४२, १६४, १६७, १६६, २१८, २३३, २४२ तथा २६५ सशोधित प्रति के अनुसार बदल देंगे। सशोधित प्रति मैं आपको दे रहा हूँ। मैं सात तारीख को इलाहाबाद कचहरी मे लिख कर भेज दूँगा कि अब हमारा आपस मे कोई भी मतभेद नही है।

आप इस पुस्तक की रायल्टी 'बच्चन' को देते रहे।[1]

भवदीय
सुमित्रानदन पंत
२-८-७१

इस पत्र की प्रतिलिपि तथा 'बच्चन के नाम पत के दो सौ पत्र' की सशोधित प्रति मान्य श्री पत जी से प्राप्त की।

---

१. 'रायल्टी' पंत ने किसी भी पत्र (कवियो में सौम्य संत, पंत के सौ पत्र) की नहीं ली थी, 'दो सौ पत्रो' में भी इसकी कोई बात नहीं थी किंतु फिर भी प्रकाशक चाहते थे इसलिए लिख दिया।

मुझे पत जी के सुझाव स्वीकार है।

Premnath गवाह
(प्रेमनाथ)
2-8-71 (दिनेशचन्द्र)
प्रोप्राइटर, सन्मार्ग प्रकाशन प्रोप्राइटर, लोकभारती इलाहाबाद-२
दिल्दी-६

दो-तीन साल बाद इस मुकदमे के एक पदाधिकारी मिले। उन्होने अपना परिचय देते हुए पत से कहा कि आपने मुकदमा क्यो वापिस ले लिया। आपका स्पष्ट अधिकार था। पत घर आकर कहने लगे, "मैं जीतने का इच्छुक नही था। मेरा उद्देश्य तो मुकदमा करने के साथ ही पूरा हो गया था, सोच ही रहा था कि मुकदमा वापिस ले लूँ कि प्रेमनाथ जी स्वय समझौता करने आ गए। मैंने मुकदमे के द्वारा एक प्रकार से उन लोगो से क्षमा माग ली जो मेरे पत्रो से आहत हुए है। बच्चन को मैं प्यार करता हूँ। यह तो मैंने उसकी भूल का अपने को दण्ड दिया है।" सन् '७२ मे जब पत बम्बई गए तो उन्होने बच्चन जी के बारे मे पता लगवाया, भाग्य से बच्चन जी मद्रास मे थे। पत का सा समभाव रखना कठिन ही होता है। जब जून १९७१ मे बच्चन दम्पति डा० सामन्त की लड़की स्मिता की शादी मे इलाहाबाद आए तो पत सोत्साह उनसे मिले, पर वे लोग क्षुब्ध एव तटस्थ (इसके लिए उन्हे दोष भी नही दिया जा सकता) ही रहे। ऑपरेशन के बाद पत दिल्ली मे स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे कि तेजी जी (५ या ६ जुलाई १९७६) उनसे मिलने आईं। जून मे दिल्ली पहुँचने के बाद से ही पत अक्सर बच्चन दम्पति के बारे मे पूछते रहते, मन मे उनसे मिलने की आकाक्षा को छिपाए हुए। जब तेजी जी आईं तो यह आकाक्षा मूर्त हो गई। मै उस समय कही गई हुई थी। वहाँ से आई कि पत भावोद्वेग से भरे मिले। बार-बार आँखे पोछते हुए उन्होने तेजी जी के बारे मे बताया। यहाँ आकर भी उन्हे पत्र लिखा कि बच्चन जी को उनकी (पुराने मित्र) याद दिला दें। दुनिया की दृष्टि मे यह घटना जो भी रूप ले, पत के हृदय मे बच्चन अब भी उनके भाई है, लडैते भाई।

साहित्य अकादेमी ने सन् १९६९ मे पत को अपनी 'महत्तर सदस्यता' प्रदान की।[1] इलाहाबाद मे ही एक छोटे से आयोजन मे पत (तथा रघुपति सहाय फिराक) को यह सदस्यता प्रदान की गई। "भारतीय ज्ञानपीठ

---

१. २० जुलाई १९६९ में ठलुबा क्लब, बनारस के सदस्यों ने भी एक स्निग्ध और शिष्ट आयोजन द्वारा पंत को अपने क्लब का सदस्य बना लिया।

की प्रवर परिषद ने सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक कृति पर १६६८ के वर्ष का पुरस्कार" पत के काव्य सग्रह 'चिदम्बरा' को दिया। ज्ञानपीठ का चतुर्थ पुरस्कार-समर्पण समारोह १६ दिसम्बर १६६६ को विज्ञान भवन, नई दिल्ली मे हुआ। यह समर्पण समारोह इसके पूर्व के तीन समारोहो की भाँति ही भव्य था। पत की दृष्टि मे इसका एक महत्व यह भी था कि श्रीमती अमला शकर ने पत की कविताओ पर आधारित एक नृत्य नाट्य प्रस्तुत किया। जब इस बात की सूचना लोगो को मिली कि 'चिदम्बरा' पर ज्ञानपीठ की प्रवर परिषद् ने एक लाख का पुरस्कार दिया है तब अनेक लोगो ने अपनी प्रसन्नता व्यक्त की—तार और पत्रो द्वारा हिन्दी[1]-अहिन्दी प्रदेश के लोगो ने बधाई दी। अनेक पत्रो मे पत पर लेख भी प्रकाशित हुए। पत पर एक विचित्र ही प्रतिक्रिया हुई, "लगता है साहित्य से अधिक मूल्य पुरस्कार का है।"

सन् १६६७ से मैं एक बच्ची को पालना चाह रही थी। मेरी अवस्था, स्वास्थ्य और पत का राजू के प्रति ममत्व देख सहेलियो ने राय नही ही दी। पर मेरे मन की अदम्य लालसा! पत चुप रहे—न अनुमोदन, न विरोध। उन्होने यो ही चार पाँच लोगो से कहा। लगा बच्चा मिल जाएगा। दो लडके और एक लडकी मे से किसी को देने की बात, चार-पाँच साल की आयु के बच्चे, पर मैं तो बच्चे को गोद लेना चाहती थी, और गोद लेने का अर्थ, मेरी दृष्टि मे एक-दो माह के बच्चा को पालना है। मेरी सहेलियो ने फिर आपत्ति की, "इतना छोटा बच्चा पालना बडा कठिन होता है, उस पर ददा

---

१. इस अवसर पर धर्मवीरभारती का बधाई का पत्र आया जिसका महत्व इस कारण है कि उन्होने अपनी पीढ़ी के संदर्भ में पंत के स्नेह-भाव की चर्चा की है, "खड़ी बोली की काव्य भाषा को आपने न केवल संस्कार दिया वरन हम सबों के लेखन की भावभूमि का निर्माण किया—हम सबो के निर्माण-काल में आपने प्यार भरा प्रोत्साहन दिया—आपके सम्मान में हम सभी गोरवान्वित अनुभव कर रहे हैं।

प्रयाग का वातावरण पिछले दस वर्षों से कुण्ठापूर्ण बनता गया है। अनेक बार आपको तकलीफें सहनी पड़ी हैं और उसकी प्रतिक्रियाएँ भी हुई हैं—पर यही आकांक्षा करता हूँ कि इस मंगलमय अवसर पर प्रयाग के सभी मित्र सद्भावना सहित आपके साथ होगे।"

(२४-६-'६६ का पत्र)

का स्वभाव। राजू के कारण खाना-पीना भूल गए थे। अब तो बीमार पड जाएगे।" पर विधाता को मेरी बात ठीक लगी। ५ मई को मैंने एक बच्ची को स्वप्न मे देखा और स्वप्न में ही कहा, "ऐसा ही बच्चा चाहती हू।" ५ मई की रात सुमिता का जन्म हुआ। तीन-चार दिन बाद मैंने उसे देखा और पत से कहा, "मैंने बच्ची ले ली है।" पत ने कहा, "जो चाहो।" घर की छोटी से छोटी बात मे तक पत की ही राय अभी तक प्रधान रही। आज मैंने पहिली बार स्वतत्र निर्णय लिया था। सोच लिया था कि पत को यदि शोरगुल पसद नही आया तो अलग रह लूँगी। मा को भी समझा लूँगी।[1] पर इसकी नौबत ही नही आई। सभवतः पत मन मे प्रसन्न हुए, राजू शैतान अथवा बदमाश जितना भी था पत को वात्सल्य प्रेम से प्लावित कर गया था।[2] उन्होने ऊपरी उदासी से कहा, "जाकर ठीक से जन्म समय के बारे मे पूछ आओ। जन्मपत्री भी देख लें।" बच्ची के जन्म समय का ज्ञान होते ही पत ने स्वय तो उसकी पत्री बनाई ही, रसाल जी और प्रद्युम्ननारायण जी से भी बनवाई और अब तक न जाने कितनो को दिखा ली, क्योकि पत के सम्मुख दो ही चिंता है . (एक) भारत का भविष्य (दो) सुमिता का भविष्य ! सुमिता के ही कारण वे जीना भी चाहते है।

जून '७१ को मैं अल्मोडा गई, अपने ईजा-बाबू (माता-पिता जी) की अनुमति लेने के लिए। उनके खुश होने पर २८ जून को मै बच्ची को घर ले आई। पत ने बच्ची को पहिली बार देखा और ऐसे मोहासक्त हो गए कि कल्पनातीत हैं। फिर उन्होने बच्ची के न जाने कितने नाम सुझाए, लेकिन वे मुझे भाए नही। यो ही नाम याद करने के क्रम मे 'सुमिता' नाम याद आया, शब्द कोश

---

१. अलग रहने का मैं कभी दृढ़ निर्णय नही ले पाई क्योंकि मेरी माँ हर बार मेरे अकेले रहने के नाम से उदास हो जातीं। और इस बार जब मैं कटिबद्ध हो गई कि मै किसी की असुविधा, दुख या उदासी की परवाह नहीं करूँगी तो सब कुछ सहज-सुखद हो गया।

२. उसके निधन से पंत के मन मे एक सूनापन आ गया था जो अब बच्चों के प्रति स्नेह में व्यक्त होता था। पहिले पंत छोटे बच्चों को दूर से ही उँगली से छू देते या हथेली से थपथपा देते थे। गोद में लेते हुए तो मैंने उन्हें कभी देखा ही नहीं। राजू जब घर में होते तो उनकी गोद में घूमते, गोद में सोते।

देखा और प्रसन्न होकर कहा, "सुमिता नाम रखूँगी।" जब कुलनाम देने की बात आई तो पत ने मुझसे कहा, "कुलनाम मत दो, तुम 'जोशी' नाम दोगी तो मुझे बुरा लगेगा और 'पत' नाम मे तुम्हें बुरा लगेगा। वैसे यह बेटी भगवान् ने मुझे ही दी है, उसने कहा, "धिक्कार है तेरा जीवन यदि तूने बच्चे की सेवा नही की। मेरे अपूर्ण जीवन को भगवान् ने पूर्ण बना दिया है।"

> तुमको पाकर मैं प्रिय सुमिते,
> आज गोद में
> अनुभव करता हूँ
> चरितार्थ हुआ अब जीवन ![1]

मैंने एक क्षण सोचा, फिर कहा, "मुझमे तुम्हारी सी ईर्ष्या नही है। अच्छा ही है, तुम्हारी बेटी की विशिष्ट मान्यता होगी।" पत की खुशी कल्पनातीत थी, इस खुशी ने मेरी दृष्टि से सोचने का अवसर ही नही दिया, वे व्यस्त हो गए उसे 'पत' कुलनाम आदि देने मे। सुमिता 'दद्दू' की ही बेटी है, दद्दू का उसके प्रति अशेष प्यार, रात-दिन उसी की चिन्ता—उसे चोट न लग जाए, ठण्डक न खा जाए, धूप या लू न लग जाए, उसकी सुकोमल भावनाएँ मुरझा न जाएँ। एक घण्टे को भी बाहर जाते तो सुमिता के लिए दो हज़ार आदेश दे जाते। उसकी बोतल उबालना, दूध बनाना उनका सहज अधिकार था—इस बारे मे वे दूसरे पर विश्वास कर भी नही सकते थे। सुमिता से जरा सख्ती से बोलो या उसे प्यार से बेवकूफ कहो तो उन्हे बहुत बुरा लगता है। जब मै उनसे कहती हूँ, "बिगाडने मे लगे हो। अभी बडी होगी तो बिलकुल कहना नही सुनेगी। बच्चे के विकास के लिए थोडा अनुशासन आवश्यक है।" वे स्नेह सिक्त हो जाते है, "यह मेरी पोती, पडपोती के समान है। इसे मैं केवल प्यार दे सकता हूँ। तुम्ही सोचो, यदि मेरा परिवार होता तो मेरी पोती, पडपोती इतनी बडी होती।" सुमिता का दो मिनट के लिए भी रोना वे सह नही पाते हैं। जो भी उसे देख रहा हो उस पर बिगड जाते हैं। सुमिता जब तक डेढ-दो साल की नही हो गई उन्होने घर की आफत कर दी। न स्वय दिन-रात चैन लिया, न हमे लेने दिया। उसकी आया की तो शामत ही आ गई, यद्यपि वह नौकरी छोड कर नही गई। अच्छी तनखाह के अति-

---

१ 'आस्था', पृ० १३७

रिक्त इसका एक कारण यह भी है कि वह बाद को उससे माफी माँग लेते थे, और साथ ही वह देखती थी कि सामान्य तौर पर दद्दू मुझ पर बिगडते ही रहते हैं, एक दिन अकारण ही मुझ पर इस बुरी तरह से बिगडे कि मेरे घर की नौकरानियो का यह महीनो तक चर्चा का विषय हो गया। जब तक सुमिता तीन साल की नही हुई वे जाडो मे भी अपने कमरे से (बैठक, गैलरी पार कर) दो-तीन बार उठकर आते, खिडकी से पूछते, "सुमिता रो तो नही रही थी। तवियत तो खराब नही है।" "ठण्डक बहुत है, उसे ठीक से ओढा देना" आदि। कितनी ही लडाई लडी कि क्यो उठकर आते हो, पर कोई लाभ नही। वे भी क्या करते, अपने प्रेमातिरेक के कारण उन्हे नीद मे सुमिता का रोना सुनाई देता।

इधर दो साल से उन्हे सुमिता के कमरे से लगे कमरे मे (जिसे मैं कूडा-घर कहती हूँ) सोने का बहाना मिल गया है, "क्या करूँ, इसी गदे कमरे मे मेरी चारपाई लगवा दो। बीमार हूँ। रात को कोई तकलीफ हो गई तो।" "तो तुम सुमिता के कमरे मे सो जाओ। मैं और सुमिता उस कमरे मे सो जाएँगे।" मेरा यह सुझाव उन्हे दु खी कर देता है। "कैसी बात करती हो? पहले वह है, तब मै हूँ।" इस सबमे मेरा मनोरजन ही होता है। अभी तक घर मे उनका चिन्तन या भावनाएँ उन्ही तक केन्द्रित रहती थी। कोई भी चीज़ तनिक सी भी अच्छी आ जाए पत बच्चो की भाँति उसके प्रति आकर्षित हो जाते थे। उसे तत्काल अपने कमरे मे ले जाकर अदृश्य कर देते थे।[1] अक्सर मुझे लगा कि मातृ-स्नेह से वचित होने के कारण वे, अजाने ही, घर मे उस स्नेह की पूर्ति करते है। बचपन मे अत्यधिक आत्म-सचेततावश वे बचपन को ठीक से जी भी नही पाए, अब वही बचपन चुपचाप अपने आपको दुहरा लेता है। अपने इसी बचपन को उन्होने सुमिता को सौप दिया है। उसका बचपन, भरा-पूरा होना चाहिए, स्वतत्र, प्रसन्न, उसका जीवन स्वस्थ, सुसस्कृत और उच्चाभिलाषी होना चाहिए। यही आकाक्षा अब पत को अक्सर चिंतित कर देती है।

---

१. एक बार मेरी सहेली ने मुझे एक छोटा-सा चाकू दिया। पंत ने 'देखूँ' कह कर तत्काल मुझसे ले लिया। फिर मैं कहती ही रह गई, "मै भी तो देखूँ कैसा है।" और वह मुझे देखने को नहीं ही मिला।

सुमिता ने पत के घर के व्यक्तित्व को आमूल परिवर्तित कर दिया है। अभी तक घर मे एक दीवार थी, भेदभाव की—'मेरे'-'तुम्हारे' की। पत का कमरा, उनकी अलमारी, बक्सा, अटेची, चारपाई, तौलिया, साबुन सभी कुछ छूआछूत के पोषक थे। कभी बडा विचित्र भी लगता था। पर सुमिता के कारण अब एक ही परिवार है, जो अब तक सराय या होटल था वह घर बन गया है। पत के ही शब्दो मे .

> जब से तुम मेरे घर आई,
> जीवन के प्रति
> बदल गई मेरी सारी
> धारणा, भावना !
> घर का भी ज्यो
> मानचित्र ही सँवर गया हो।[1]

स्वस्थ रहने की आकाक्षा ने पत को सदैव परेशान किया है। सन् १९७३ मे जादुई चपाती (मेजिक चपाती) के बारे मे उन्होने अखबार मे पढा, इसके गुण और प्रभाव के साथ ही इसके पीने की विधि जिस भाँति धर्म से युक्त कर दी गई थी उससे यह स्पष्ट हो गया था कि यह प्रचार का माध्यम है। दो-तीन डाक्टरो ने इस चपाती (फगस) के विरुद्ध पत्रो मे छपवा भी दिया था। किंतु पत का विश्वासी मन! जब उनसे इलाहाबाद के दो-तीन लोगो ने कह दिया कि वे इसके पानी का सेवन कर रहे है एव यह चपाती उनके पास है तो पत इस चपाती तो प्राप्त करने अथवा इसका पानी पीने के लिए व्याकुल हो गए। उन्होने चपाती जल्दी से जल्दी प्राप्त की और अगस्त के अतिम सप्ताह से विधिवत् तथा पूर्ण आस्था के साथ इसका सेवन प्रारभ कर दिया। मैंने उसे हाथ से छूना तक पसद नही किया क्योकि मुझे उसमे एक प्रकार की बदबू लगी। मेरा भाई अल्मोडा से आया, उसने तथा मित्रो ने पत से बार-बार आग्रह किया कि इसका सेवन हानिप्रद हो सकता है, यह एक प्रकार की काई है। लेकिन जो बात पत को ठीक लग जाती है उसे भगवान् भी गलत कह दें तो वे नही मान सकते।

२ अक्टूबर '७३ को पत को 'हार्ट एटेक' हो गया और इसी के साथ पाडु रोग (जौन्डिस)। फिर किसी न किसी रूप मे बीमार ही रहे। वैसे सन् '७०

---

१. (आस्था, पृ० १८६)

से वे 'बिकोलाई' के कारण परेशान ही थे। सभवत. रानीखेत के पानी अथवा वहाँ के निवास का यह परिणाम था। सन् '७० से सन् '७३ तक उन्हे तीन-चार बार बिकोलाई के असह्य आक्रमणो को भोगना पडा। अब 'बिकोलाई' तीन-चार महीने से थमी थी कि हृद्-रोग और पाडु-रोग ने दुर्बल कर दिया। जुलाई, अगस्त, सितम्बर तथा अक्टूबर १९७४ मे तो उन्हे असह्य अकथनीय दुर्बलता ने घेर लिया। किसी तरह थोडा ठीक हुए थे कि २ जनवरी ७५ को 'अग्निजिह्वा' (हरपीज) हो गई। पत तकलीफ से तडप कर रह गए, यह अग्निजिह्वा का अत्यत गभीर आक्रमण था। जुलाई '७५ मे मैं उन्हें कार से दो दिन के लिए लखनऊ ले गई। सोचा १९७२ की गर्मियो से पत इलाहाबाद ही हैं, शायद बाहर चल कर उन्हे अच्छा लगे किंतु उनकी तकलीफें बढ ही गईं। २३ जुलाई '७५ को उनके पेट और छाती मे बेहद दर्द हो गया, हल्का बुखार और उल्टी हुई, उस समय लगा कि हृद-रोग ने फिर से उन्हे परेशान किया है। दवाएँ दी गईं। किंतु दूसरे दिन तक दर्द ने थमने का नाम नही लिया। लाचार बिलार्गोन और सिक्वेल के इजेक्शन दिए गए, अनेक अन्य गोलिया दी गईं। ३-४ दिन बाद थोडा दर्द से विश्राम मिला, ६ दिन बाद पुनराक्रमण, लगा अब यही क्रम चलेगा। डाक्टर बी० एल० अग्रवाल ने अस्पताल मे भर्ती होने की राय दी, सुमिता के ममत्व के कारण उन्होने अस्पताल जाना टालना चाहा पर कष्ट की असह्यता, वे २४ अगस्त को अस्पताल (मेडिकल कालेज) मे भर्ती हो गए। अस्पताल मे मीरा श्रीवास्तव, प्रीति अदावल, सध्या मुकर्जी, सुधा राय, शशि अग्रवाल डा० गोबिन्दराम अग्रवाल ने तो परिचर्या की ही, काता (भारती) पत की बीमारी का तार मिलते ही जयपुर से तत्काल चल कर २४ ता० की रात को इलाहाबाद पहुँच गई। वह सात-आठ दिन तक रात-दिन अस्पताल मे ही रही। अस्पताल मे पत का व्यापक परीक्षण हुआ। इसके पश्चात् मालूम हुआ कि पित्ताशय (गॉल ब्लेडर) मे अनेक पथरियाँ हैं। डाक्टर अग्रवाल ने एक स्वजन की भाँति उन्हें ऑपरेशन की राय दी तथा कुछ दिन

---

१. भगवती बाबू भी लखनऊ से अकस्मात् इलाहाबाद पहुँच गए। वे भी दो-तीन दिन अस्पताल आए। महादेवी जी, अमृतराय तो आते ही रहते थे। इनके अतिरिक्त इलाहाबाद के लगभग सभी साहित्यिक मित्र, परिचित और संबंधी पंत से मिलने अस्पताल आए। श्री बहुगुणा (तब मुख्य मंत्री, उत्तर प्रदेश) तथा श्री प्रभु नारायण (स्वास्थ्य मंत्री) भी पंत को देखने आए थे।

अस्पताल और रहने के लिए कहा। किंतु अस्पताल—डाक्टर और नर्स—कितने ही अच्छे हो घर नही बन सकता। पत घर आने के लिए तडप गए।

मै और पत्रकार पी० डी० टण्डन डा० अग्रवाल के पास गए, पत को घर ले जाने के लिए अनुमति लेने। पत की घर जाने की प्रबल इच्छा और हम लोगो के आग्रह के कारण उन्होने अनुमति तो दे दी, साथ ही चेतावनी भी दे दी कि ऑपरेशन नही कराने का दुष्परिणाम हो सकता है। पत अपनी आयु और दुर्बल रुग्ण देह के कारण ऑपरेशन नही करवाना चाहते थे, उन्हे लगा कि यह घातक हो सकता है। मन मे सुमिता को थोडा बडा देख लेने की आकाक्षा ने भी व्यवधान उत्पन्न किया। अभी तक बीमारी मे हँस देते थे, "गभीर बीमारी से मै नही घबडाता हूँ। जीवन और मृत्यु ईशाधीन हैं। मैंने उसी पर अपने को छोड रखा है। उसकी इच्छा के विरुद्ध मुझमे जीवित रहने की अभिलाषा हो ही कैसे सकती है। उसका दिया जीवन है, जब चाहे ले ले।" किंतु अब परिस्थिति दूसरी थी, वे सुमिता के 'दद्दू' थे, उन्होने डाक्टरो से कहा, "मैं अभी जीना चाहता हूँ ताकि सुमिता को थोडा बडा देख लूँ।"[१] इसी आकाक्षा ने सभवत. उन्हे यह सोचने के लिए प्रेरित कर दिया कि ऑपरेशन तभी करवाना चाहिए जब किसी अन्य इलाज से पथरियो से मुक्ति नही मिल पाएगी। कुछ परिस्थिति भी ऐसी ही हुई—जो भी मित्र, सबधी या मिलने वाला आता वह ऑपरेशन के विरुद्ध ही बोलता, यहाँ तक कि कुछ डाक्टरो ने भी ऑपरेशन की राय नही दी।

४ सितम्बर को पत घर आए। लगभग एक महिना सामान्य बीता, फिर दर्द से परेशान रहने लगे। इस बीच होमियोपैथी का नियमित सेवन किया। थोडी-बहुत होमियोपैथी पत ने सुमिता के कारण स्वय भी सीख ली है, उनकी दवाई से मुझे और उसे तो लाभ हो ही जाता है। कभी कहो, "क्या दवा दे रहे हो" वे रहस्य बनाते हुए कहते हैं, "बस खा लो, लाभ न हो तब कहना।" पर पथरी गलाने या निकालने मे न उनकी दाल गली, न मित्रवत् अच्छे होमियोपैथो की। फिर न जाने कितने इलाज किए। वैद्यक, प्राकृतिक, हकीमो के। खाने का तो जब से 'अग्निजिह्वा' हुई थी परहेज चल ही रहा था, उबली लौकी-परवर, बिना तडका दी मूँग की दाल, रोटी और मट्ठा। स्वास्थ्य की स्थिति

---

१ पहिले कहते थे, "मुझे जीने का कोई मोह नहीं है।"

के अनुरूप कभी उबला अण्डा और मक्खन निकला एक प्याला दूध ले लेते थे अन्यथा मट्ठा आदि से ही सतोष करना पडता था। कुछ विशेपज्ञो ने कहा कि ऐसा खाना खाने से आपको कभी कष्ट नही होगा। किंतु पथरियाँ तो पथरियाँ ही है। उन्होने इतना कष्ट दिया कि देखने वाला ही कराह उठे, सहने वाले की तो बात ही दूसरी है। ऑपरेशन करवाने का निर्णय ले ही रहे थे कि जनवरी १९७६ के अतिम सप्ताह मे एक सज्जन ने बतलाया कि पथरियो को सुप्त (डोरमेन्ट) किया जा सकता है। दवाइयो के जोर पर डेढ-दो महिने आराम ही रहा। इस बीच, जलवायु-परिवर्तन की दृष्टि से, सात दिन के लिए (१२ मार्च से १८ मार्च) दिल्ली भी गए। वहाँ लोगो ने कहा भी कि 'ऑल इण्डिया मेडिकल इन्सिट्यूट' मे परीक्षण करवा लीजिए। पर जब ऑपरेशन नही करवाना था तो वहाँ जाना व्यर्थ ही था। दिल्ली से इलाहाबाद आए १० दिन बीते होगे कि पूर्ववत् दशा हो गई। पहिली जून को मुँह और नाक से पौन चिलमची गाढा खून निकल गया—वह और निकलता पर डाक्टरी सहायता मिल गई। डाक्टरो ने पथरी-दर्द की दवाइया बन्द करवा दी। कहा इनकी गर्मी से नाक की नस फट गई आदि। १६-२० गोलिया नित्य ही ले रहे थे, रात को सोने की गोली अलग से, दर्द उठने पर इजेक्शन्स तो लेने ही पडते थे। इस रक्त-स्राव के रुकते ही पत ने डाक्टरो से कहा, "मेरा ऑपरेशन कर दीजिए। मैं अभी, आज ही, करवाने को तैयार हूँ।" डाक्टर उस समय चुप रहे, चार डाक्टर आधा घण्टे बैठ कर यह कह कर चले गए कि चौबीस घण्टे तक पत को सिर तक मत हिलाने दीजिएगा।[1] फिर १०-१५ दिन का पूर्ण विश्राम बता कर चले गए। उनकी

---

१. रक्त स्राव पूरा रुका भी नहीं था कि मीरा का फोन आया, पंत से वह कुछ अपने काम की बात करना चाहती थी। मैंने फोन का चोंगा उठाया ही था कि पंत को अंदाज आ गया कि यह फोन मीरा का होगा। वे तत्काल अपने कमरे से उठकर बैठक तक आए, फोन सुनने के लिए। डाक्टर ने मना किया, "यह क्या कर रहे हैं ?" मैंने कहा, "मीरा मुझे बता देगी!" किंतु पंत का स्वभाव, "उसने मुझसे कह रखा है कि वह फोन करेगी। मुझे ही उससे बातें करनी चाहिए।" और इसके एक घन्टा बाद उसी दिन दो सज्जन आए। मैंने क्षमा मांगी और कहा, "डाक्टर के आदेशानुसार आप नहीं मिल सकते।" उन्होंने निःस्वार्थ भाव व्यक्त करते हुए कहा, "इतने अस्वस्थ हैं। तब तो हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि हम

उस समय की स्थिति देखकर डाक्टरो ने मुझसे कहा कि दो-तीन महीने के पूर्व पत को यात्रा नही करनी चाहिए। ऑपरेशन तो ऐसी स्थिति मे सभव ही नही हो सकता है। किंतु पत का निर्णय—"मरना होगा तो 'ऑपरेशन टेबुल' पर मरूँगा। यह स्थिति वांछनीय नही है।" रक्त स्राव ने उन्हे उनकी आसक्ति पर विजय दिलवा दी। वे दूसरे ही दिन दिल्ली, यदि खडे हो सकते, चले जाते। फिर भी दिल्ली जाने के लिए तैयारी प्रारंभ कर दी, २१ जून को रेल का रिजर्वेशन करवाने के साथ ही डा० आत्मप्रकाश से अस्पताल मे भर्ती होने आदि के बारे मे पूछने के लिए शीला सधू के लिए पत्र लिख दिया। शीला जी तथा काता ने दिल्ली की सारी व्यवस्था का दायित्व ले लिया।

२२ ता० की सबेरे दिल्ली एक्सप्रेस से दिल्ली पहुँचे और उसी दिन साढे नौ बजे सबेरे वे अस्पताल मे भर्ती हो गए। वहाँ दूसरी मजिल का २०३ नम्बर का कमरा उन्हे मिल गया। २६ ता० को सबेरे साढे-आठ बजे डा० आत्मप्रकाश ने ऑपरेशन कर दिया, ऑपरेशन मे काफी समय लगा क्योकि पित्ताशय फट कर यकृत मे घुस गया था। पित्ताशय डाक्टर ने निकाल दिया, यकृत का एक भाग भी निकाल दिया। ऑपरेशन के बाद डा० आत्मप्रकाश ने कहा, "रोग बडा उपेक्षित रहा!" उपेक्षित! मैं चौकी, "सितम्बर '७५ मे रोग का निश्चित निदान हुआ। उस समय पत इतने दुर्बल थे कि अपने आप खडे नही हो पा रहे थे और साथ ही ऑपरेशन कराने का वे साहस नही बटोर पाए थे। इसके साथ ही उनका होमियोपेथी मे विश्वास था, और इन सबसे प्रबल कारण था उनका ज्योतिष-ज्ञान। उन्होने अस्पताल छोडते समय डा० अग्रवाल से कहा था कि यदि उन्हे ऑपरेशन कराना ही होगा तो वे जनवरी '७६ के बाद करवाएगे। फरवरी मे वे ऑपरेशन कराने का निश्चय ले ही लेते कि पता चला कि पथरियाँ सालो (१०-१५ साल) सुप्त रह सकती है। किंतु डाक्टर आत्मप्रकाश का तर्क था कि यह रोग कम से कम पाँच वर्ष पुराना है तथा जिसे 'हृद-रोग' कहा गया वह इसी रोग का आक्रमण था। जो भी हो डा० आत्मप्रकाश से सुज्ञ स्नेही एव आत्मीय सर्जन तथा मेडिकल इन्सिट्यूट के उनके सहयोगी सर्जन तथा नर्स आदि की स्नेहपूर्ण

उनके दर्शन कर लें। बस मिनट भर ठहरेंगे, हमारा अपना कोई काम नहीं है।" पर वे साहित्यिक लोग! दो-तीन पक्तियो की अपनी प्रशंसा लिखवा कर ही माने।

परिचर्या और देखभाल ने पंत को रोग से मुक्त कर दिया। पत के ऑपरेशन के दिनो पाँच दिन की छुट्टी लेकर काता दिन-रात पत के पास रही; प्रीति अदावल, मीरा श्रीवास्तव तथा सुजाता रघुवश इलाहाबाद से दिल्ली आए, बारह दिन दिल्ली रहे, पत की देखभाल करने के लिए। इनके अतिरिक्त शीला सधू, गोर्की पत, हेमा पत, उमेश पत आदि ने भी अपना समय पत की देखभाल मे ही बिताया। दिल्ली के मित्रो और साहित्यिको एव साहित्य प्रेमियो के अतिरिक्त भगवतीचरण वर्मा, अमृत राय, गोवर्धनशर्मा, अबादत्त पत, श्रीकृष्ण प्रसाद जोशी, विन्ध्येश्वरी प्रसाद पाडे, रमेश ग्रोवर आदि पत को देखने अस्पताल आए।

१५ जुलाई की सबेरे बारह बजे पत काता के पास आ गए। शीला सधू के यहाँ उनके रहने की व्यवस्था हो चुकी थी किंतु सुमिता के स्नेह अथवा उसके हठ करने के कारण वे काता के पास ही रुके। १५ जुलाई की शाम को श्रीमती इदिरा गाधी पत को देखने अस्पताल गईं, वहाँ पत से भेंट न होने के कारण दूसरे दिन, लगभग छ. बजे वे घर आई, बीस मिनट बैठी। डाक्टर ने १५ अगस्त तक इलाहाबाद जाने की अनुमति पत को दे दी थी। किंतु ६ अगस्त को राखी थी। महादेवीजी का पत्र आया कि यदि पत ६ अगस्त तक इलाहाबाद नही पहुँच सकते तो वे राखी बाँधने दिल्ली आ जाएगी और अपने को (उनका थाइरोएड ग्लेड का ऑपरेशन डाक्टर आत्म प्रकाश ने किया था) दिखा भी लेंगी। पत ने डाक्टर आत्म-प्रकाश से पूछा, उन्होने पंत को ८ ता० इलाहाबाद जाने की अनुमति दे दी, वे चाहते थे कि महादेवी जी १५-२० सितम्बर तक दिल्ली आए।

अपनी आयु और स्वास्थ्य के कारण पत चाहते थे कि 'लोकायन' के लिए जो रुपया उन्हे सरकार से मिला था (अन्य और कोई रुपया नही था, उन्होंने किसी से चदा नही मागा था और न सदस्यो ने ही रुपया दिया था) वह सरकार को अथवा किसी सस्था को दे दे। पर इसके लिए विधि विधान जानने की आश्यकता थी, दो-चार लोगो से पूछने की। यह पत के स्वभाव के अनुकूल नही ही था। इस कारण जब सन् १९६६ अथवा इसके आस-पास उमा राव ने 'लोकायन' का रुपया अपनी नाट्य सस्था के लिए माँगा तो पत को कोई आपत्ति नही हुई। उन्होने सार्वजनिक रूप से रुपया देने की बात कह भी दी। राव दम्पति से यह भी कह दिया कि इस अनुदान के बारे मे सारी औपचारिकता उन्हे ही करनी होगी, जहाँ तक उनके हस्ताक्षरो अथवा उनके कुछ लिख कर देने की बात है वह वे सहर्ष कर देंगे। किंतु राव साहब

कुलपति होकर गोरखपुर चले गए, उसके पश्चात् वे आगरा विश्वविद्यालय के कुलपति हो गए, फिर उनकी बीमारी और निधन।[1] 'लोकायन' का रुपया 'लोकायन' के नाम से बैंक मे ही पडा रह गया। अगस्त '७५ मे इलाहाबाद के स्टेट बैंक का निरीक्षण करने श्री गोपालन कलकत्ता से इलाहाबाद आए। श्री गोपालन अरविंद के भक्त है। वे अरविंद पाठचक्र की इलाहाबाद शाखा की गोष्ठियो मे सम्मिलित हुए, उनके साथ स्टेट बैंक के एजेन्ट श्री मुकर्जी भी गोष्ठियो मे सम्मिलित हुए। श्री अरविन्द सोसाइटी के लिए पैसा एकत्रित करने की बात उठी, पत ने 'लोकायन' के रुपयो के बारे मे कहा। उन्होने पत से कहा कि वे यह पैसा श्री अरविंद सोसाइटी इलाहाबाद को दिलवाने की सब व्यवस्था कर देगे। 'लोकायन' सस्था यद्यपि निष्क्रिय हो गई है किंतु डा० बाबूराम सक्सेना उस समय (१९४८) इसके कोषाध्यक्ष चुने गए थे। वे बैंक की दृष्टि से अभी तक कोषाध्यक्ष थे। अरविंद सोसाइटी इलाहाबाद की सेक्रेटरी प्रीति अदावल है। उसके तथा पत के कहने पर बाबूराम सक्सेना ने रुपया हस्तातरण के लिए अपनी लिखित स्वीकृति दे दी, पत ने भी स्वीकृति पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। उत्तर प्रदेश सरकार ने सन् १९४८ मे पत को दस हजार रुपए दिए थे। यह धन राशि स्टेट बैंक के 'करेन्ट एकाउन्ट' मे रख दी थी। इस राशि मे थोडी राशि पत ने अपनी अल्प रोएल्टी से बचा कर मिला दी थी। इसके अतिरिक्त लगभग ढाई-तीन हजार रुपया उन्होने 'लोकायन' का रजिस्ट्रेशन कराने, दिल्ली, लखनऊ, चिरगाँव आदि जाने, कमरा आदि लेने मे खर्च किया। 'लोकायन'[2] के खर्च का हिसाब वाले रजिस्टर के अनुसार एक हजार दो सौ रुपया 'लोकायन' के पत्रक छपवाने तथा बच्चन जी को प्रबध विभाग मे काम करने के ओनरेरियम के रूप मे देने मे खर्च हुए। दो हजार रुपया 'लोकायन' की लखनऊ शाखा को दिए गए। अब बैंक मे सात हजार छः सौ रुपए बच गए थे। यही रुपया अरविंद सोसाइटी को १६ सितम्बर '७५ को दे दिया गया। किंतु इस बार बैंकवालो के सुझाव देने पर सात हजार पाँच सौ रुपया 'फिक्स्ड डिपोजिट' मे रखा गया है तथा सौ रुपया 'सेविंग्स' मे।

●●

---

१. जून सन् '७५

२. अब 'लोकायन' के हिसाब, कार्यक्रम आदि के दो मोटे रजिस्टर पत्र, आदि मैंने गोदाम में रख दिए हैं। क्योंकि पैसा देने के साथ ही पंत का हिसाब रखने का दायित्व पूरा हो गया है।

२३

और यह भी !

●

अपने घर मे पत अपना पूर्ण स्वायत्त चाहते है , किसी प्रकार का विरोध या टोका जाना वे नही सह सकते । जो उन्हे ठीक लगा, जिस काम के लिए प्रवृत्ति हुई या जो बात उनके अन्दर पैठ जाए वह तत्काल हो जानी चाहिए । लेखन के बारे मे वे सदैव निश्चिन्त रहते हैं, प्रसन्न। साल, दो साल वे बिना कलम छुए मग्न रह सकते है । यदि कहो कि तुम आज कल कुछ कर नही रहे हो तो वे हँस देते है, "पागल हो, सोच कर कोई लिख सकता है, उसे जब लिखाना होगा लिखाएगा, अन्यथा, अपना क्या, आराम है ।" किन्तु जब अध्ययन लेखन की बात नही रहती तब वे भगवान के आश्रित नही रहते है, वरन् भगवान के दिए हुए हाथ पैरो के वायुयान मे उडते रहते है ।

यदि उनके मन मे आ जाय कि एक आलपिन उनकी मेज पर होनी चाहिए तो वह तत्काल जादू की भाँति प्रकट हो जानी चाहिए । सभवतः अलादीन के लैम्प का भूत भी उन्हे प्रसन्न नही कर पाता । आलपिन घर मे सामने न दीखी, उसकी खोज करने मे दो मिनट लगने का भय हो तो वे पडोसी से माँग सकते हैं, "अरे इसमे कौन बुरा मानता है । फिर मैं उनसे कह आया हूँ कि शाम तक लौटा दूँगा ।" "मैने उनसे पूँछ लिया है । उन्होने मेरे आलपिन माँगने मे बुरा नही माना । बिना आलपिन के मैं काम नही कर सकता । तुम समझ नही सकती मुझे कितना काम है ।"

दवा की शीशी खत्म होने मे एक दो दिन हैं कि दो तीन और शीशियाँ मँगवाने और नई शीशी खोलने के लिए जी मचल उठता है । 'कॉर्क स्क्रू' या 'टिन कटर' नही दीखा तो सारा घर छान देंगे और बार-बार कमरे मे आकर कहेगे, "क्या करूँ बडी परेशानी है । दवा खाना जरूरी है पर शीशी कैसे खोलूँ । सच

पुरानी वाली खत्म हो गई, नई खोलनी है।" यह पत की वह अबोध झूठ है जिसने उन्हे भाई के कपडे हथियाने के लिए प्रेरित किया था।[1] पत की यह भी एक विशेषता है कि उन्हे घर मे रखी कोई चीज नही मिलती, अपने कमरे मे अपनी रखी चीज नही मिलती, सामने रखी बडी से बडी चीज भी उनकी आँखो के आगे से अदृश्य हो जाती है।

घर की नगण्य-सी आवश्यकता पर ध्यान गया नही कि आफत आ जाती है। जाडे मे सबेरे के चार बजे हो या जेठ की भरी दुपहरी वे जब तक चीज न ले आयेंगे या मँगा लेगे एक कमरे से दूसरे कमरे मे घूमते रहेगे। कभी कह भी दो "यह रसोई का सामान है, तुम्हे इससे क्या मतलब, जरा सी सूजी चाहिए वह दो दिन के बाद आएगी" "छोटा सा काम है। क्यो दुखी होते हो, हो जाएगा। तुम अपना काम करो।" वे दुखी हो जाते है, "हो जाएगा, यह आलसियो की बातें मुझे पसन्द नही। तुम से कुछ काम भी होता है? मैं न करूँ तो कौन करेगा? मन मे दायित्व का बोझ है, ऐसे मे मैं अपना काम नही कर सकता। यह हो जाए तो निश्चिन्त होऊँ।" परेशान करने वाली चीजो मे खुरपी, सुतली, पर्दा, कील, सूई, मक्खन या घी कुछ भी हो सकता है। कभी उन्होने देखा कि पर्दा फट गया है या उसे बदलना है तो वे उसी समय या तो अन्दर से ही कोई पर्दा निकाल कर बदलने मे लग जाते हैं। या फौरन बाजार जाने को व्यग्र हो जाते है। उनकी दृष्टि मे कोई काम छोटा नही है, कोयला लकडी खरीदना हो या 'एयर कन्डीशनर' उनका भाव सम रहता है। "इसमे सकोच या शरम की क्या बात। अपना काम कर रहा हूँ, चोरी या भ्रष्टाचार नही। तुम घर मे ही रहो, मैं अभी कोयला ले आता हूँ, सिर्फ बता दो कहाँ मिलेगा।" "छि: नौकर आए तब सामान आये, यह मुझे पसन्द नही। यदि वह कोयला ला सकता है तो मैं क्यो नही ला सकता। उसमे मुझमे भेद क्या है? वह भी तो मेरी ही भाँति है।" सामान्यतः वह बाहर बिना साथ के नही ही जाते है। पर ऐसी परेशानी की स्थिति मे वह साथ की बात भूल जाते हैं। कोई साथ मिल गया अच्छा है अन्यथा यदि पर्दे का कपडा लाना है तो बेटी की ब्याह की सी चिन्ता का भाव बना कर जल्दी दिखाते हुए वे चले जाते हैं और कटरे की जिस दूकान मे कपडा दीखा उसमे जाकर दूकानदार के मन का कपडा ले आते है। जल्दी मे, वे 'सिविल लाइन्स' नही जाते हैं क्योकि दूर जाने में समय

---

१. देखिए : 'सुमित्रानंदन पंत : जीवन और साहित्य' प्रथम खण्ड पृ० ८९-९०

लगता है। पर्दे का कपडा देख कर उनसे कुछ भी कहना व्यर्थ है। "काम चलाने से मतलब। मुझे पर्दा चाहिए था, बिना उसके मन मे शान्ति नही थी।" पर कपडा आने से ही शान्ति नही मिलती, उसे पर्दे का रूप देकर टाँगना भी होता है। यदि दर्जी के पास भेजने मे एक दो दिन लगने का भय हो या मैं कह दूँ कि इस समय मुझे बिल्कुल अवकाश नही है, शाम को सी दूँगी तो वह मेरे यूनिवर्सिटी से आने तक टगा दीख सकता है। कभी उनसे कहने पर कि शाम को कपडा आया है, अब रात हो गई है, सो जाओ, मैं कल सबेरे अवश्य सी कर दे दूँगी, चाहे यूनिवर्सिटी से छुट्टी लेनी पडे, शपथ खाओ कि तुम नहीं सिओगे वे चट से शपथ ले लेते है, "सच तुम्हारी शपथ मैं नही सिऊँगा। तुम दिक मत होओ।" शपथ लेकर वे अपने कमरे मे चले जाते है। दरवाजा उनके कमरे का जब वे कमरे मे होते है भिडा या बन्द ही रहता है। फिर शाम या रात को वे अपने कमरे की खिडकी दरवाजा बन्द कर लगभग घटे भर ध्यान भी करते है। मैं विश्वास मे रहती हूँ कि वे ध्यान कर रहे होगे या सो गये होगे कि वे 'पावन गगा स्नान' के भाव से कमरे मे आ जाते है, "देखो मैंने पर्दा सी दिया है। नीद नही आ रही थी, सोचा समय नष्ट करके क्या लाभ, पर्दा ही सी दूँ। अच्छा तो सिया है न ? देखी मेरी 'घासलेट सिलाई' ? कितनी जल्दी सी दिया है। तुम थोडी सी पाती इतनी जल्दी। यह तो 'घासलेट सिलाई' है जो जल्दी सी देती है। जरा टाँग कर देखो, सिलाई का पता भी नही चलेगा।"

पत की यह 'घासलेट सिलाई' सब कपडो पर हो जाती है। सूई मे दुहरा डोरा डाल कर लम्बी-लम्बी सिलाई कर लेते है। पायजामा उघड गया है या फट गया है तो 'घासलेट सिलाई' से काम चल जाता है। पैंट या कोट की सिलाई खुल गई है, बटन टूट गया है या खोचा लग गया है अथवा ऊनी मोजे के तले फट गये हैं तो 'घासलेट सिलाई' चुटकी मे सब काम कर देती है, "कोई बात नही। अभी ठीक करता हूँ।" वे अपने कमरे मे जाकर एक मिनट मे वापिस आ जाते है। नीले या काले पेंट-कोट पर सफेद धागे से लम्बे-लम्बे टाँके और उन टाँको पर पेन की स्याही ! यदि कहो कि काला या नीला तागा तुम्हारे पास नही था तो मुझसे माग लेते, वे प्रसन्न मुद्रा मे सिलाई के डोरे पर उँगली रगडने लगते है, "कहाँ पता चल रहा है।" डोरे की ओर देखते हुए कहते है, "कहो तो थोडी स्याही और लगा दूँ, ठीक हो जाएगा। कौन तुमसे मागने आता, कितना समय लगता है।"

जहाँ तक पत का अपना निजी काम है वे पूर्ण स्वावलम्बी हैं। सूई, डोरा, कैंची, गज, बटन, सुतली, सूआ, जूते का ब्रुश, पालिश आदि सभी उनके कमरे मे रखे मिलेंगे। और अपनी इन चीजो को वह प्रसन्नतापूर्वक दे भी नही सकते।[1] अपना काम करके जब तक लौटा न दो उन्हे चैन नही पडता, बच्चे की तरह वही पर मडराते रहेगे। उन्होंने देखा कि सूई का काम करने के बाद मैंने सूई मेज पर रखी कि वे उसे तत्काल उठा कर रील मे लगाते हुए अपने कमरे की ओर बढने लगते ह, "मैं सम्हाल देता हूँ, कही खो जायगी, तुम्हे ही जरूरत पडने पर दिक्कत होगी।" अपने जूतो मे पालिश वे स्वय ही करते है। कभी टोक दो, "नौकर या किसी और से करा लेते तो कोई बुराई होती।" टोके जाने पर उसका उत्तर है, "जल्दी थी।" "ऐसा ही है तो तुम नौकर से क्यो नही कह देती कि पालिश कर दे और उससे यह भी कह देना कि पालिश करने के बाद पालिश का कपडा, पालिश और ब्रुश मेरे कमरे मे रख दे।" जूते मे कोई पालिश कर दे, पत को बुरा नही लगता किन्तु वे स्वय ही पालिश करते है। कमरे मे जाओ तो ज़मीन पर पलथी मार कर बैठे अपने काम मे दत्तचित हो गुनगुनाते मिलते हैं। देखते ही कहते है, "देखो कितना अच्छा पालिश किया। तुम कहती हो नौकर से कराओ। वह दुष्ट इतना अच्छा कर सकता ?"

अपने कपड़ो से पत को लगाव है। वे सरलता से किसी कपडे, विशेष कर पुराने कपडे, को फेंक नही पाते। अपनी बनियानो के प्रति तो उन्हे विशेष मोह है। सन् '५५ तक वे बनियाइन धोबी को धोने देते थे किन्तु उसके बाद से

---

१. वैसे घर में वे अपनी चीजे सरलता से नहीं ही देते हैं। एक बार मेरा साबुन खत्म हो गया और जब नहाने जाते समय यह ध्यान में आया तो मैंने उनसे कहा, "तुम्हारे पास कोई अतिरिक्त (फालतू) साबुन होगा ?" "देख लो अच्छी तरह देखना, अटेची ही देखना, चीजें गिराना नहीं।" शाम को जब मैं नौकरानी को बाजार भेजने लगी तो वे बोले, साबुन भी मँगा देना। बात यह है मेरा साबुन खतम हो गया है। और "साबुन है नहीं" मैं कुढ़ कर रह गई। कोई बाहर वाला माँगता तो प्रसन्न होकर वे कहते, "आपको एक से अधिक चाहिए तो कहिए। मेरे पास दो तीन टिकिया हैं।" "अरे मेरी चिन्ता मत कीजिए, मैं तो रोज साबुन से नहाता तक नही हूँ।" सच तो यह है कि पंत को महीने में दो साबुन चाहिए।

उन्होने आज तक (जून '७६) एक भी बनियाइन धोबी से नही धुलवाई । नवम्बर '५५ मे उन्होने छ. बनियाने खरीदी और उसी दिन उन्हे धोबी को धोने को दे दी, धोबी ने उन्हे लौटाने का नाम नही लिया । पत दिनो तक कहते रहे कि मेरी बनियान धोबी ने खो दी । साथ ही उन्होने निर्णय कर लिया कि अपनी बनियानें स्वय धोया करेंगे । सन् '६६ मे जब 'हार्ट अटेक' हुआ तो पाच छह महीने तक तो उन्हे दुर्बलता ने इतना घेर लिया कि बनियाने चाहने पर भी नही धो पाये, उसके बाद उन्हे बनियाने धोने ही नही दी । किन्तु रोज का सिरदर्द है, "मैं कितनी साफ धोता हूँ । नौकर ने साफ नही धोई । साबुन की बदबू है ।" कभी मन नही माना तो स्वय धो ही लेते है । उनकी बनियाइन उनके नहाने के एकदम बाद धुल जानी चाहिये । कभी नौकर भूल गया तो शाम को या दूसरे दिन सबेरे उठते ही कहते है, "पहले मेरी बुनियाइन धुलवा दो कल उसने नही धोई थी । मै नहाऊँ कैसे ? नहा कर क्या पहनूँगा ?" "कैसी बात करते हो, हाल ही मे तो बुनियाइनें लाई थी ।" "अरे वो तो न जाने कहाँ रखी हैं ।" "लाओ मैं निकाल दूँ" वे हँस देते है, "मेरे बक्से मे बन्द है । कौन खोले बक्सा । तुम मेरा बक्सा मत खोलना, गडबडा दोगी ।" बनियाइन जब तक फटते फटते अदृश्य ही नही हो जाती है वह उसे नही फेंकते है । बहुत पहिनने पर उसमे जगह जगह छेद पड जाते है । बिना पत को बताये उनकी बनियाइन फेंकी नही जा सकती । "मेरी एक बनियाइन कहाँ गई । पाच निकली थी, अब चार ही दीख रही हैं ।" जब तक पाचवी खोज कर न दे दो वे आफत कर देते हैं, "मैं नही ही नहा सकता, मेरी बनियाइन नही मिल रही है । अब से अपनी बनियाइन मै खुद धोऊँगा, नौकर गन्दी धोता है, उस पर खो भी देता है ।" बनियाइन मे छेद ही छेद देख कर अक्सर बिना कहे मन नही मानता, "कितने छेद हो गये है, फेंक दो न ?" "तुम क्या जानो, ये छेद मैने जानबूझ कर किये है । प्रयाग की गर्मी के लिये ये वरदान है । इनसे बदन मे हवा लगती है और यदि बदन खुजाये तो छेद मे उँगली डाल कर खुजा लो ।" किन्तु यह सब मेरे ही साथ तक सीमित है । अक्सर ऐसे नौकर आ जाते है जो बनियाइन मे आधा छेद देखकर उसे उठा ले जाते है या फिर जमीन पोछ देते हैं और पत असहाय से यह देखते रहते हैं, "मेरा यार, खूब है ।"

घर का सब काम वे प्रसन्नता से करते हैं । नौकर हो, न हो, यह उनके लिये ऊपरी बात है । बगीचे के लिये क्यारी बनानी, लग्गी बनाना, लताओ के लिये लोहे की छडो को लुहार से विभिन्न आकार दिलवाना आदि वे सानद

करते हैं। जमादारनी[1] ने ठीक से 'वॉश बेसिन' नही धोया, और इस ओर पत का ध्यान गया कि वे चट से बेसिन धोने लगते हैं। सफाई एव कैसा ही गदा काम क्यो न हो उन्हे उसे करना बुरा नही लगता, न घिन ही आती है। प्याले- प्लेट, पतीली, थाली गिलास जो भी गदा दीखा वे चुपचाप धोकर रख देते है क्योंकि यदि मैंने उन्हे काम करते देख लिया तो मैं आपत्ति करती हूँ। बर्तन वे जितना साफ धोते हैं, कम ही लोग धोते होगे। नौकर के धोये हुए गिलास और प्याले-प्लेटो को वे जब तक स्वय नही धो लेते है, उपयोग मे नही लाते है। कम से कम गरम पानी से तो वे प्याले अवश्य ही धोते है। सवेरे की चाय वे स्वय बनाते है और अपनी बनाई चाय उन्हे अच्छी भी लगती है। खूब तेज चाय बनाते है और मैं उनसे कहती हूँ, "मै तुम्हारा वाला ठर्रा नही

---

१. छूआछूत अथवा दूसरे को अपने से छोटा-नीचा मानना पत की दृष्टि में पाप है, यह सृष्टिकर्ता का अपमान भी है। किसी प्रकार का जातिवाद या भेदभाव अवांछनीय है। पडौस में लोगो का जमादार-जमादारनी के प्रति व्यवहार देख वे दुःखी हो गए, "लोग इन लोगो को अछूत कहते हैं। इस दृष्टि से तो सब मां-बाप अछूत है। अपने बच्चे को पालने के लिए उन्हे क्या नहीं करना पड़ता। वरन् अछूतो की हमें इज्जत करनी चाहिए। इन्हीं के कारण सफाई सभव है। ये काम करना छोड़ दे, तब देखो!" इसी संदर्भ मे यह भी कह दूँ उन्हे किसी की जाति पूछना बहुत भद्दा लगता है, ऐसे समान स्तर पर बातें सुन भी लेंगे, पर नौकरो, काम करने वालो के सामने वह 'जाति' शब्द का प्रयोग नहीं करते है। कभी मित्र लोग चमार शब्द का प्रयोग कर देते हैं तो उन्हे बुरा लगता है, कहीं हमारा नौकर इसी जात का हुआ तो वह आहत अनुभव करेगा। मेरे कुछ 'कलीग' पिछडी और हरिजन जाति के विद्यार्थियो को आइ० ए० एस०, पी० सी० एस० आदि की प्रतियोगिता परीक्षाओ के लिए प्रशिक्षित करते हैं। पर स्वयं उनकी मनः स्थिति भी पिछड़ी ही रहती हैं, कहते हैं 'चमरौधा-क्लास' लेने जा रहे हैं। पत ने सुना, बेहद दुखी हुए, ऐसो को पढ़ाने का दायित्व नही देना चाहिए। ये स्वयं फूहड़ और असस्कृत हैं। वैसे भी 'जातिवाद' से उन्हे बहुत चिढ़ है। एक बार किसी ने इस प्रकार की बात की, पंत तत्काल नाराज हो गए, "बस-बस बहुत है। भारत इसी में खतम हो गया है।"

पिऊँगी, मेरी चाय मे गरम पानी मिला देना।" जब कभी मैं दिन के भोजन के समय घर मे रहती हूँ तथा नौकर की धोई प्लेटो पर यो ही पानी डाल कर खाना लगा देती हूँ तो वे कहते हैं, "तुम्हारी अनुपस्थिति मे मैं बडी अच्छी तरह से खाना परोसता हूँ, सब प्लेटो को साबुन से धोता हूँ, और फिर, छोटे तौलिये से पोछता हूँ।[1] तुम्हे यह सब करने मे आलस आता है, मुझे खाना लगाने दिया करो, सच मुझे अच्छा भी लगता है।" काम करते समय वे अधिकतर टैगोर के गाने मग्न हो कर गुनगुनाते रहते हैं। कहते है, "टैगोर अद्वितीय गीतकार थे।" मेहमान के आने पर वे उसका सब काम स्वय करना पसन्द करते हैं, उसी की छाया बने रहते है। परिणाम स्पष्ट है, एक दिन के अन्दर उनके मुँह पर थकान झलक आती है। वे इस ओर मन से विरक्त रहते है। एक मात्र चिन्ता मेहमान है। यह भी सच है कि घर की सीमाओ के कारण वे अभ्यागत का समुचित स्वागत नही कर पाते हैं, इसका उन्हे निरन्तर दुख भी रहता है। पर उनका हृदय अभ्यागत प्रेमी है। यदि बीमार नही हुए तो अभ्यागत की बात सुनते ही वह उसके लिये कमरे का स्वय प्रबन्ध करते है। यथासभव कमरा झाडन से पोछते है तथा अपना झाडन अलग छिपा कर रखते हैं। यदि वे बीमार हुए तो घर की आफत आ जाती है। चारपाई पर लेटे-लेटे न जाने कितने आदेश दे देते है, तनिक ढिलाई दीखी कि नाराज होकर कहते है "तुम लोगो से कुछ नही होता, मैं करूँगा।" मना करो तो कहेगे, "मेरा शरीर तो मेरे मन के नियन्त्रण मे है। मैं जानता हूँ मुझे कुछ नही होगा।"

कई बार मैंने कहा, मेहमान तुम्हे निरतर अपने पास देखते-देखते थक जायगा। कुछ उसे भी अपने ढग से जीने दो पर उन्हे यह बात नही भाती। यदि जिद करके मैंने उन्हे किसी तरह विश्राम करने भेज ही दिया तो पाँच मिनट बाद ही वे उनीदी आँखे लिए अपने कमरे से बाहर आते दीखते है "अभी ऐसा ही सही। फिर खूब सोऊँगा। मेरा स्वभाव मेरा ही है। मैं ऐसे विश्राम

---

१ पंत की सफाई की आदत अक्सर झुंझलाहट उत्पन्न करवा देती है। पानी पीने के लिए मेज से गिलास उठाते समय पूछ ही लेते हैं, "तुमने गिलास जूठा तो नहीं किया।" अथवा नहाने जाते समय तौलिया हाथ मे लेते हुए पूछेंगे, "तौलिया मेरा ही है ना? जब कोई घर वाला या बाहर वाला उनकी चारपाई पर लेट जाता है तो उसके कमरे से बाहर जाते ही वे पलंगपोश झाड़कर, उलटकर बिछा देते हैं।

नही कर सकता।" मेरे टोकने पर कि तुम्हारी आँखें निंदारी हैं वे कहते है, "नीद, नीद मुझे बिलकुल नही लग रही है। अभी चाय बनाता हूँ। पीकर ठीक हो जाऊँगा।"

सन् '६८ मे वे रानीखेत 'वेस्ट व्यू' होटल मे थे। महादेवी वर्मा की भाञ्जी, प्रीति अपनी ४-५ वर्ष की भाञ्जी और राम जी पाँडे के साथ रानीखेत घूमने के विचार से रामगढ से रानीखेत आ गई। पत ने तत्काल उसके लेटने का प्रबध किया, उससे कहा तुम लेटी रहो, रास्ते की थकी होगी। उसे एक गिलास पानी के साथ 'बिकोस्यूल' की गोली दी। फिर दिन भर उसकी सुविधा ही पूछते रहे, रात को जब वे बच्ची के लिए अलग से चारपाई की व्यवस्था नही कर पाए तो प्रीति से कहा, "तुम्हे बच्ची को सुलाने मे असुविधा हो तो मैं सुला लूंगा। मुझे बच्चो को सुलाने की आदत है।" बाद को प्रीति ने पत को इस 'अबोध झूठ के बारे मे कहा, "दद्दा भी खूब हैं। कितना ही मैंने कहा आप परेशान न हो वह मेरे साथ सोती है पर उनकी परेशानी! ३-४ दिन रानीखेत रहना चाहती थी किंतु दूसरे दिन शाम को रामगढ़ लौट आई। मै तो बडो का काम करने की आदी हूँ किंतु रानीखेत मे सब काम ददा खुद करने लगते थे। सत्तर प्रतिशत इसके कारण तथा तीस प्रतिशत होटल की महगाई देखकर लगा कि यहाँ नही रहना चाहिए। मैं बिना रानीखेत ठीक से देखे ही लौट गई।"

अचार डालने मे पत बहुत रुचि लेते है। अचार का बर्तन मैं धूप मे रखना भूल सकती हूँ पर वे नही भूल सकते। अचार के मसाले तो वह मुँह मे स्वाद ले लेकर बताते हैं, यह मसाला नही डाला, वह नही डाला, ऐसे कही अचार पडता है। किन्तु जब खाने की बात होती है, वे आठ-दस दिन से अधिक नही खा सकते। कहते हैं ताजे अचार का स्वाद ही विशेष होता है, तेल की खुशबू होती है, अचार की ताजगी। अच्छे तेल का अचार ही वह खा सकते हैं, अक्सर अचारो के लिये कह देते हैं न जाने कैसे तेल मे डाला गया है, मैं नही खा सकता। वैसे कोई भी अच्छी चीज बने वे उसमे सृजन का आनन्द ले लेते हैं। छोटी नारगी की जेली, मार्मलेड, स्क्वोश आदि जो भी बनाओ वे खुब रुचि लेते हैं, अपने सुझाव देते हुए सहायता करते हैं।

बिस्तर बिछाना, पायजामा की काट काटना, फटा उधडा सीना ... न जाने कितने ऐसे काम हैं जो वे सरलता से गुनगुनाते हुए कर लेते हैं। तभी तो जहाँ उन्हे जरा सा लगा कि नौकर निर्मोही है उन्हें घर का वातावरण

खलने लगता है । "इतने लोग तुमसे मिलने आते है, घर मे २-४ दिन रहते है, तब तुम्हारे ध्यान मे नही आता कि उनका तुम्हारे प्रति क्या भाव है ।" पत अपनी आपत्ति व्यक्त करते है, "उनकी बात दूसरी है, नौकर तो हमारे घर ही मे रहता है । उसे हम अपना ही मानते है। उसका इतना ध्यान रखते है ।" सच पूछा जाय तो कितना ही अच्छा नौकर क्यो न हो अपना मानने के साथ ही वह बिगड जाता है । पत का उनसे बराबरी का व्यवहार, उनसे मजाक करना, उनकी सुविधा पर व्यक्तिगत ध्यान देना । उनका दाल जला देने पर या तरकारी बुरी बना देने पर जब मैंने उन्हे टोका, "देखो आज भैया जी ने दाल छुई ही नही, जलने की इतनी बदबू है उसमे" तो भैया जी अन्दर के कमरे से बाहर आ हँसते हुए कहते हैं, "बीबी जी भी खूब है, गलत समझ जाती है । हमने कहा था कि हमे भूख नहीं है ।" बाद को पत मुझसे शिकायत करते है "कौन खा सकता है इतना सडा खाना ।" खाना वे अच्छा चाहते है और साथ ही नौकर को आहत भी नही करना चाहते । इससे नौकर घर का स्वामी हो जाता है, फिर पत का उलाहना होता है, "वह मुझे कुछ गिनता ही नही हैं । तुम्हारे यूनिवर्सिटी गये मे मनमानी करता है, शोर मचाता है, माली के साथ मेरे कमरे की खिडकी के पास बैठ कर घण्टो बात करता है, ऐसे मे मैं काम नही कर पाता ।" फिर मुझे नौकर से कहना पडता है कि काम खतम होने पर अपने दोस्तो के पास चले जाना, शाम पाँच बजे तक आ जाना । यह उन्हे अधिक धृष्ट बना देता है ।

एक ओर वे नौकर से ऊब जाते हैं, दूसरी ओर उसे निकालना उन्हे बहुत बुरा लगता है । नौकर के बदले वे ही दुखी हो जाते है, "वैसे हम इसे प्यार करते है । अपने घर का प्राणी मानते है पर यह हमे बेवकूफ बनाने मे लगा है ।" एक नौकर के कधे को थपथपाते हुए पत उसे समझा रहे थे, "देखो, तुम हमारे छोटे भाई से हो । भाई की तरह रहो । तुम जो चाहोगे हम कर देंगे । बदतमीजी मत किया करो ।" एक अन्य नौकर को जब मैंने डाँटने के लिए कहा तो वे उसके पास पहुँचे, "देखो हमको बहुत गुस्सा आता है, बहुत— हम तो नौकरो को बहुत मारते थे । क्या करें, बीबी जी ने मना कर दिया ।" नौकर जब अपनी धृष्टता और कामचोरी की सीमा पर पहुँच जाता है तो पत बाहर जाते हुए या अपने कमरे का दरवाजा बन्द करते हुए कहते हैं— "क्या करूँ, मुझे बाहर जाना है या ध्यान करना है । तुम नौकर को जरूर निकाल देना, उसे स्पष्ट बता देना कि वह कैसा है । मैं तो खुद कहता पर समय

नही है, तुम अवश्य कह देना।" ऐसा भी हुआ है कि ऐसी स्थिति से बचने की कोशिश करने पर भी उन्हे ही नौकर को निकालना पडा है। नौकर के नमस्ते कहने के साथ ही उनका गला भर आता है। आँखे पोछते हुए वे उसे घर से जाते खिडकी से देखने लगते है, "आदमी बुरा नही लगता। देखो उदास हो गया है। हमे प्यार करता है। कमियाँ किसमे नही होती? कहो तो बुला लाऊँ? तनखाह बढा देंगे। बेचारा खुश होकर काम करेगा।"

सन् '६२ मे मोहन सिंह, जिसका परिवार हमारे यहाँ दो-तीन पुश्त से काम कर रहा है, कुसगतिवश नौकरी छोडकर चला गया। १४-१५ साल का लडका गोरा-चिट्टा रग, खा पीकर वह मोटा ही नही हो गया था, उसके गाल भी लाल हो गए थे। जब गुलाबी गरम कोट पहन, जेब मे हाथ डाल कर वह खडा होता तो भोला-भाला अच्छे घर का लडका लगता। घर के सदस्य की भाँति ही वह रहता था। किंतु कुसगति का प्रभाव, वह काम छोडने को आतुर हो गया। "साहब, आप तो कुछ नही कहते, पर बीबी जी झूठ बोलती हैं, हम काम नही करेंगे। उसकी तनखाह सदैव की भाँति उसके घर भेज दी और उसे दस रु० देकर बिदा किया। दूसरा अच्छा नौकर मिल गया था, नेक और ईमानदार। पर अभी मोहनसिंह के साथ ही भाग्य बदा था, सात-आठ दिन बाद वह वापिस आ गया, सभवतः नौकरी नही मिल पाई! "साहब हम कही नही जाएँगे। दोस्तो ने कहा है आप हमारे माँ-बाप है, अब हम यही रहेगे।" पत ने तत्काल उसे बाप का आश्वासन देकर रख लिया। पन्द्रह दिन बाद ही वह बदतमीज हो गया। सबेरे आठ बजे बाजार भेजो तो दिन के तीन-चार बजे तक लौटता और कहता, "मै वक्त की पाबदी नही मान सकता।" जब जितनी देर घर रहता बर्तन बजाता, बाँस पटकता । जब इस पर भी हम चुप रहे, उसे नही निकाला तो उसने मेरी सहेली के पास जाकर कहा, "आपके पास चूना होगा। साहब ने बडा मारा है। चूना लगाऊँगा तब दर्द जाएगा।" उसकी बदतमीजी से ऊबकर पत उसे कभी से निकालना चाह रहे थे। अक्सर कहते, 'मेरी मानसिक शाति खतम हो गई है। जब तक यह है, मैं कुछ काम नही कर सकता। इसे निकाल ही दो। मैं दूसरे नौकर के लिए भी नही ठहर सकता। महरी बर्तन मलती ही है। खाना मै बना लूँगा। प्रेशर कुकर मे स्वादिष्ट खाना बनाऊँगा।" पर बिल्ली के गले मे घटी कौन बाँधे! हम दोनो ही उसे निकालना चाहते थे किंतु जब तक कोई विशेष बात न हो कैसे निकालें। अब मौका मिला। पत को ही उससे कहना पडा, "हम चाहते है

तुम्हारा अच्छा हो। जहाँ रहो सुखपूर्वक रहो। लेकिन अब हम तुम्हे निभा नही पाएगे। कहोगे तो अपने दोस्त के यहाँ नौकरी दिला देंगे।" नौकर तो जाना ही चाहता था। सभवत उसे कही और नौकरी मिल गई थी। किंतु पत दिन भर दुखी रहे, "दिन मे लेटा तो नीद नही आई, मन मे विषाद है।" फिर पता चला चार माह के अदर उसने पाँच जगह नौकरी करके छोड दी है, वह दुबला और काला हो गया है। गर्मियो मे अल्मोडा पहुँचे तो उसके बाप ने कहा "वह हरिद्वार मे हैं, ६५ रु० माह कमा रहा है। पर मैं चाहता हूँ वह आपके यहाँ ही काम करे। मैं उसे आपको दे चुका हूँ। आप उसे रखना स्वीकार करें तो मैं उसे राजी कर दूँगा।" पत ने मुझसे कहा, "यह लोग हमे अच्छा मानते है। कैसा हो, फिर से रख लें। दुनिया मे सद्भाव ही तो सब कुछ है।"

फोन अक्सर मुझे, न कि पत को, परेशान करता है। रात के दस बजे पडोसी के किसी मित्र या सबधी को उनसे बात करने का मन हुआ और उन्होने हमारे घर की घटी बजा दी। जनवरी को रात के नौ बजे घमासान पानी बरसते समय या मई-जून को दोपहर मे फोन की घण्टी बजी कि अपने पडोस के··· ·· सज्जन को बुला दीजिए पत सामान्य अस्वस्थता मे भी तेजी से जाते हैं, फिर थक जाते है और कहते है, "क्या बताऊँ, ताकत नही थी किंतु उनसे कैसे कहता कि नही बुलाता।" मन तब तिक्त हो जाता है—ये फोन वाले ··· । पत के लिए कुछ किया भी नही जा सकता। वे मुझसे कह दें कि तुम कह आओ तो वे कम से कम स्वय बुलाने जाने के कष्ट से बच जाए। क्योकि फोन सुननेवाले या हमारे यहाँ से करनेवाले सज्जन के आने पर तो वे सोते हुए भी उठकर तब तक बैठे रहते हैं जब तक वे चले न जाए, "कैसी बात करती हो? बीमार हूँ तो क्या लेटा रहूँ? यह अशिष्टता है।" फोन उन्हे स्वय उठाना ही पसद है। कभी ऐसा भी होता है कि उन्हे अनुपस्थित, अस्वस्थ या कार्य-व्यस्त देख मैं ही फोन करनेवाले से बातचीत कर लेती हूँ और उन्हे सविस्तार बता भी देती हूँ पर उन्हे चैन नही ही मिलता है। जब कुछ ऐसे फोन आने की बात होती है जिनमे कहना होता है कि पत इस उत्सव मे सम्मिलित नही हो पाएगे एव मना करना होता है तो वे मुझसे कहते हैं कि तुम फोन ले लेना और अच्छी तरह से मना कर देना। फिर वे बार-बार पूछते हैं, "तुमने ठीक से कह दिया था न, उसने बुरा तो नही माना, चलो बडा सकट कटा, मुझसे मना नही किया जाता।" वे हँस देते हैं, "यही तो मेरे स्वभाव की

लाचारी है।" किंतु जब वे घर मे रहते हैं और कोई ऐसा फोन नही आने वाला होता है जिसमे प्रस्ताव अस्वीकार करना आवश्यक ही हो, वे स्वय ही फोन उठाना चाहते हैं, "तुम रहने दो। मेरा फोन होगा। मैं ही बातचीत करूँगा। तुम जानती नही हो ऐसे मे लोग बुरा मान जाते है।" अधिकतर ऐसा होता है कि वे रोटी का कौर तोडकर मुँह मे रखने को होते है कि 'टनन टनन' फोन की घटी बज उठती है, वे कौर हाथ मे लिए ही अथवा उसे प्लेट मे डाल कर फोन की ओर क्षिप्रतापूर्वक लपकते है। उन्हे लम्बे-लम्बे डग रखते देख लगता है मानो रेलगाडी अपनी सीटी के साथ 'छकछक' करने लगी है। अब दौडकर उसमे प्रवेश करने के अतिरिक्त कोई उपाय नही। नौकर अथवा नौकरानी को वे फोन उठाने नही देते—"न जाने क्या कह देगा, कोई आहत हो गया तो।" "सिखाने से सब सीख जाते है। एक-दो बार गल्ती करेगा। फिर उसे आ जाएगा।" किंतु ऐसी बात वे सुनना ही नही चाहते, दिक हो जाते है। उनके बदले यदि कोई घरवाला फोन पर बात कर ले, मैं ही कर लूँ तो वे तीन-चार बार पूछते हैं, "तुमने ठीक से बात कर ली थी न! क्या कहा?" उस पर फिर यथा सभव स्वय बात कर लेते हैं। बहुत बार ऐसा भी होता है कि वे गुसलखाने मे नहाने गये होते है या और कही हैं, यह मालूम नही होने पर मै जोर से पुकार कर कहती हूँ, "ददा, तुम्हारा फोन है" उत्तर मे वे दाढी पर साबुन लगे मुँह से बनियान पहने फोन के पास आ जाते हैं। या स्वय ही फोन की घण्टी सुनने पर अधूरा पानी पिए या गुसलखाने का दरवाजा खोलने के लिए हाथ बढाना रोक कर वे फोन के पास आ जाते हैं। जब कभी बाहर से आने पर नौकरानी बतलाती है कि दो या तीन बार फोन बजा, वे तत्काल व्यग्रतापूर्वक सब परिचितो के यहाँ फोन करने लगते हैं। कितना ही कहो कि रात के नौ या दस बज गए है क्यो किसी को परेशान करते हो। यदि किसी को आवश्यकता ही हुई तो वह फिर फोन कर लेगा पर वे कुछ नही सुनते। आकृति सख्त करते हुए नम्बर मिलाने मे व्यस्त हो जाते हैं।

जहाँ तक मिलने वालो की बात है पत का दृढ मत है—मेरे द्वार से कोई वापिस जाता है तो मुझे दिनो तक दुःख होता है और मैं समातर मे कहती हूँ, "मैं भी तो इस घर मे रहती हूँ। तुम्हे अपना ख्याल नही है तो मेरा तो होना चाहिए। सबेरे आँख खुली नही कि मिलनेवाले, और मिलने वाले भी

कैसे · । ऐसे मे मैं पढ नही पाती हूँ ।"[१] किंतु पंत की अपनी मान्यताएँ है। फाटक 'खुट' से बोला कि वे बुखार मे भी दरवाजा स्वयं खोलने के लिए आतुर हो जाते हैं। कई बार कहा, "तुम लेटे रहा करो मैं खोल दूंगी", "इस समय तो नौकर हैं वही खोल देता।" "आने वाला दरवाजे को खटखटा तो ले।" पर वे क्षुब्ध हो जाते है, "तुम लोग खोलने मे देर कर देते हो, मुझे पसंद नही कि कोई बाहर खडा रहे।" वह आनेवाला चाहे दूध वाला, नौकर, तरकारीवाला या फलवाला हो, चाहे मूर्धन्य साहित्यकार, सरकारी कर्मचारी, नेता या कोई स्वामीजी, उनका चेला अथवा नितांत ही स्वार्थी व्यक्ति, बेवकूफ व्यक्ति हो। उसने एक बार से दूसरी बार दरवाजा खटखटाया कि पंत नाराज हो जाते है। रसोई मे काम कर रहे हो या गुसलखाने मे कपडे धो रहे हो, वे वही आकर कहने लगते है, "बेचारा खटखटा रहा था या पुकार रहा था पर तुम लोग सुनते ही नही हो।" उन्हे समझाना व्यर्थ है कि नल खुला होने पर, तरकारी छौंकते या चलाते समय आवाज नही सुनाई देती है। कभी उन्होने देखा धोबी आया हुआ है, या दूधवाला-अखबारवाला अपने पैसे लेने आया

---

१. सन् '६४ से '६७ तक गेरुआ वस्त्रधारी एक संप्रदाय के शिष्यो ने मौके-बेमौके हमारे घर आना प्रारंभ कर दिया। अट्ठारह-बाईस वर्ष के हाई-स्कूल, इन्टर पास लड़के अपने को बृहस्पति का गुरु मानने वाले, गीता-भागवत आदि की आलोचना करनेवाले ···मेरा मन विद्रोह कर उठा। पंत ने सब लगाकर ६०० रु० तो उन्हे चंदे के रूप में दिए ही, किन्तु उनका सबेरे से शाम तक बैठना, पंत की सुविधा-स्वास्थ्य के प्रति विचित्र तटस्थता! एक बार गंगाप्रसाद पांडे जी से नहीं सहा गया। मार्च '६६ में उन्होने एक चेले से कह ही दिया, "आपके गुरु आपके लिए सब कुछ हैं तो, हमारे लिए पंत जी हैं, आप इस तरह से उनके समय को नष्ट न किया कीजिए।" अन्य मित्रों ने भी आपत्ति की। पंत का कहना था, "मैं तो यह सोचता हूँ इन लोगों में कितना उत्साह है, अपना जीवन समर्पित कर दिया है। उनकी बातों पर मैं ध्यान नहीं देता।" और जब किसी चेले की अति पर मैंने आपत्ति की तो वे अत्यधिक नाराज़ हो गए, "मै किसी को मना नहीं कर सकता। ये तो ये, चोर डाकू भी मेरे यहाँ आएँगे तो मैं उनका भी आदर करूँगा, बस।"

हुआ है और मैं अदर से कहती हूँ, "दो मिनट ठहरो, आते हैं ।" वे एकदम अपने कमरे से बाहर आ जाते है, क्षमा याचना के स्वर मे उससे तब तक खडे-खडे बातें करते रहते है जब तक कि मैं बाहर नही आ जाती हूँ । अक्सर मैं पत से कहती हूँ, "तुम्हे तो भगवान् भी आराम नही दिलवा सकते । अजीब स्वभाव है । तबियत खराब है, खडे नही हो पा रहे हो पर' ।" यह पत का मध्ययुगीन शिष्टाचार नही है वरन् प्रत्येक के प्रति वह आदर की भावना है जो मानती है कि दूसरे का व्यक्तित्व भी स्वत मूल्यवान् है । अपनी ऐसी मान्यता के कारण वे किसी को भी आहत नही करना चाहते, जिसका जो जी चाहता है वह उनसे लिखवा ले जाता है, अपने क्षुद्रतम स्वार्थ, अशिष्ट बात के लिए भी पत को बाधित कर लेता है । तनिक सी भी ठीक या अच्छी बात हो वह तो पत कर ही देते हैं । इसी दृष्टि से हँसते हुए महादेवीजी ने एक बार अपनी भाञ्जी प्रीति से कहा, "क्या मैं पत जी हूँ जो जो चाहे करा ले ।" मिलनेवाले के प्रति पत के मन मे कोई भेदभाव नही रहता, वह सभी का आदर करते हैं और इस कारण सभी के लिए वह दरवाजा (हृदय-द्वार) खोलने के लिए तत्पर रहते हैं । घर मे उनकी मान्यताएँ स्तभवत् हैं । वे जगल मे प्रसन्नतापूर्वक रह सकते हैं पर अपनी मान्यताओ को नही छोड सकते है ।

जब कभी कोई कुसमय मे आकर देर तक बैठ जाता है तो उसके गए बाद माथे पर हाथ मारते हुए कहते है, "भाग्य है बेहद लिखना चाह रहा था । समय बर्वाद हो गया ।"[1] या "बेहद थका था, सिर घूम रहा था, वह क्या बोला मैंने कुछ नही सुना, यो ही बीच-बीच मे एकाध वाक्य बोल दे रहा था ।" पत का दु ख तथा स्वय अपनी भी असुविधा देख मैंने बाहर टाग दिया "कृपया शाम को आइए ।" पत का दु ख इससे घटने के बदले बढ ही गया, "मैं कौन हूँ जो लोगो पर समय का बधन डालूं ।" ठीक है, तुम कुछ नही हो पर आने-वाले तो कहते है कि वे तुम्हे मानते है और जिस व्यक्ति का आदर किया जाता है जिसे पितृतुल्य माना जाता है क्या उसका स्वास्थ्य एव जीवन कोई

---

१. "सबेरे के समय लिखने को मन छटपटाता है । क्या करूँ लोग आ जाते हैं, उन्हे मना कैसे किया जा सकता है । तुम्हारे मना करने पर मेरा मन घण्टों दुःखी रहता है । वे स्वयं न आएं तो बात दूसरी है । सामाजिक दायित्व के बारे मे लोग सोचते ही नहीं हैं—यह हमारा ही देश है।"

मूल्य नही रखता ? उसे सृजन के लिए समय न दीजिए और फिर कहिए कि हम आपके सृजन से प्रभावित है, यह अजीब लगता है । पत अपने मिलने वालो के लिए यह नही सुन सकते । वे कहते है, "तुम्हे मेरे कारण दिक्कत हो तो स्पष्ट कह दो । मैं 'वाई० एम० सी० ए' मे रह लूंगा, वहाँ जगह नही होगी तो किसी होटल मे रह लूंगा । सच, मुझे बिलकुल बुरा नही लगेगा । तुम अपनी सुविधा देख लो ।" बहस यही पर खतम हो जाती है । अपने कमरे की खिडकी से आगतुक को देखते ही वह बाहर आ जाते है, "आइए-आइए" अथवा किसी के पूछने पर कि वह किस समय आएँ वे कहते है, "मैं सदैव घर पर ही रहता हूँ । आप जब चाहे आइए ।" "अरे शाम को आने की बात, वह तो शाता ने विद्यार्थियो के लिए लिखा है ।" "दिन मे आना चाहते हैं, आ जाइए, सोना मेरे लिए कोई जरूरी नही है । पर समय मिल गया तो सो लेता हूँ ।"[१]

पत की अटेची 'भानमती का पिटारा' है, दुनियाभर की चीजे उसमे मिल जाएँगी । पुराना पैसा, छेदवाला पैसा, नया पैसा, नेहरू रुपया, गाधीजी वाला दस रुपया, नयी चमकीली मुद्राएँ, दवाई की शीशियो के साथ मिले रगीन प्लास्टिक के कटोरे, गिलास, छोटे, बहुत छोटे ताले, बच्चो के कपड़ो मे लगानेवाली बिल्ली, चमकीला पत्थर, भभूत, फूल, बिजली का बिल, चेक जरूरी कागज, रुमाल, फाउन्टेनपेन, फूल बना पत्थर, छोटी डिबियाएँ, थ्रेप्टिन बिस्किट की डिबियाएँ, कोम्बिथ्राइम की डिबिया मे लगा हुआ पैसानुमा रबर, बिनेका चार्म्स के कछुआ-बदर आदि अर्थात् जो कुछ भी छोटी चीज दीख जाती है वह उनकी अटेची मे चुपचाप पहुँच जाती है । इसलिए एक अटेची से उनका काम नही चलता, तीन-चार अटेचियाँ रखनी पडती हैं । इन अटेचियों से कुछ ढूंढ निकालना भूल भुलय्या मे भटकना है । वैसे इसकी सायत कम ही आती है । वह अपनी अटेची अथवा अपनी कोई भी चीज छूने नही देते हैं, "मेरी चीजें तुम गडबडा दोगी । मैंने सम्हाल कर रखी है, उसमे इन्कमटेक्स के कागज है, और भी जरूरी कागज हैं, मुझे दिक्कत होगी ।" पर जब स्वय ही अपनी सहेजी हुई चीज

१. सच यह है कि उन्हें दिन में सोने की आदत है । अब आयु और स्वास्थ्य की दृष्टि से भी यह आवश्यक हो गया है अन्यथा वे शाम तक बेहद थक जाते हैं ।

उन्हे नही मिलती तो ढूँढने का आग्रह करते हैं। साथ ही कहते जाते हैं, "देखो गडबड न करना। मेरी ज़रूरी चीजे हैं।" दो-चार कागज़ो को छोडकर उनकी अटेची मे बच्चो के मनोविनोद की चीज़े होती है जिनमे से दो-चार उनके नहाने गए मे या कही बाहर गए मे निकालकर बच्चो को देना ही ठीक लगता है। वैसे, उनकी अटेची खोलने की आवश्यकता भी नही होती। वह इतनी भरी रहती है कि ढकना आधा खुला रहता है, यो ही हाथ डालने पर कुछ न कुछ हाथ लग जाता है। उनकी अटेची को खुले रहने की इतनी आदत हो गई है कि सामान कम करने पर भी वह बद नही की जा सकती।

घर से बाहर जाने पर वे अपने कमरे मे ताला अवश्य लगाते है ताकि उनकी अधखुली अटेची से कछुआ, बदर, बिल्ली आदि फुदककर कमरे से बाहर न चले जाएँ। जेब मे वे पैसे नही ही रखते हैं। कभी कहो कि थोडी देर के लिए रख लो और फिर यदि नोट जेब मे पडा रह गया तो दिक हो जाते है, "मैं नही जानता यदि मैंने कागज सोचकर इसे फाड दिया", "मेरी बुशर्ट के साथ यह धोबी के यहाँ चला गया", "देखो, मैंने फाड़ ही दिया था, थोडा तो फट गया है।" जब कभी यो ही नोटो के छोटे बण्डल मे झपट्टा मारकर वह कुछ नोट अपने कोट की अदर की जेब मे छिपा लेते है तो फिर तो भगवान् भी नही जान पाते होगे कि उनका क्या हुआ। किंतु इन पैसो के अतिरिक्त मेज़ पर के अस्तव्यस्त कागज, तख्त के गद्दे के नीचे रखे हुए कागज़ो के टुकडे, किताबे, पाण्डुलिपियाँ तथा अटेची की बहुमूल्य निधियाँ सुरक्षा चाहती है। अत. वह ताला ठोककर चाभी पकडाते हुए कहते है, "मेरा कमरा खोलना मत, किसी को मत जाने देना, नौकर को झाडू देने के लिए मना कर देना। बडा दुष्ट है। सफाई तो करता नही है, चीजे गडबडा देता है। मेरे पास समय ही कहाँ है कि मैं घटे भर तक ढूँढूँ।" और अक्सर इसका परिणाम यह होता है कि उनके कमरे का पखा, उनकी अनुपस्थिति मे भी, चार-पाँच घण्टा अकेले ही चलता रहता है, कभी रात भर चलता है, एक बार तो उनके दिल्ली गए मे चार-पाँच दिन तक ऐसा चला कि खराब हो गया।

अपने कमरे मे वे अपनापन चाहते हैं। किसी का कमरे मे आना या रहना उन्हे प्रिय नही है। कहते है वातावरण बदल जाता है। साधु-सतो के अतिरिक्त अन्य किसी को वे, मन से, कमरा नही दे सकते है। यथासभव के

दूसरा कमरा ही देना चाहते है । उनके लिए यही बहुत है कि बाहर जाते समय अपने कमरे की चाभी दे जाते हैं । जब भी वे इलाहाबाद से बाहर जाते हैं बार-बार कह जाते है, "मेरा कमरा गडबड मत करना । झाड़ू मत लगवाना।" किन्तु इस अवसर को कौन छोडता है । उनके कमरे मे झाड़ू दिलवाई जाती है। पत को वापिस आकर पूछना पडता है, "ठीक से झाड़ू लगवाई थी ? अपने सामने लगवाई थी ? मेरी चिट्ठी-पत्री, कागज तो गडबड नही हुए।" मनोकूल उत्तर पाकर वे ऊपरी सतोष व्यक्त करते हुए मन ही मन सोच लेते है कि कागज अवश्य खोए होगे । यदि स्वय ही बाहर जाने के पूर्व उन्होने अपने गद्दे के नीचे से कोई कागज दुर्भाग्यवश (?) अपनी अटेची या किसी किताब के अदर रख दिया हो तो जब तक उसे ढूँढ कर न दे दो वे महीनो तक कहते रहेगे, "मेरा सामान गडबड कर दिया।" अक्सर होता यह है कि कागज-पत्र पत की ही असावधानी से या पखे के कारण उड कर मेज के नीचे कूडे की डलिया मे गिर जाते हैं । डलिया भरी दीखने पर वे स्वय बाहर आकर डलिया खाली कर देते है या नौकर से कहते हैं । नौकर को अन्दाज नही रहता और पत को ध्यान नही रहता कि डलिया के अदर से क्या निकल रहा है । कई बार मैंने आवश्यक कागज निकाल कर दिए है । अपने कमरे मे झाड़ू लगवाना सामान्यत. उन्हे प्रिय भी नही है । चिट्ठियो, पत्र-पत्रिकाओ का अम्बार लग जाए उन्हे आपत्ति नही है, "मुझे मालूम तो रहता है कि कौन कागज कहा है । नौकर यदि झाड़ू देगा तो कागजो की व्यवस्था गडबडा जाएगी।" इस व्यवस्था को सुरक्षित रखने पर भी आवश्यक पत्र कागज़ो के ढेर या कूडे की डलिया के माध्यम से खो ही जाते हैं । तब न वे केवल झाड़ू को दोष देते है वरन् उन्हे सदेह भी हो जाता है कि उनकी अनुपस्थिति का लाभ उठाया गया है । वे उदास हो जाते है, मन मे, सभवत:, सदेह पक्का हो जाता है । जब उन्हीके कमरे से खोज कर दे दो तो अपनी खोज न कर सकने की असमर्थता अथवा सदेह की बात कह देते हैं । जब वे बीमार पडते हैं तो जिस कमरे मे लेटते है उसमे झाड़ू लगवाना या धूल उडवाना उन्हे अच्छा नही लगता । बीमारी में वे अपने कमरे मे नही लेटते । उन्हे वह कमरा अच्छा लगता है जहाँ सभी बैठले हो । वे चाहते है कि उनका कमरा बिना झाड के ही स्वच्छ दीखे, धूल कमरे मे उडे नही, उड कर आँख-नाक मुँह मे न जाए क्यो कि उससे सर्दी-खांसी हो जाती है । स्वच्छता उन्हे प्रिय, अत्यत प्रिय है, वे उसके प्रशसक है । कही जाएगे तो पहिले स्वच्छता पर ध्यान जाएगा । पर स्वच्छता के पीछे धूल खाना उन्हे प्रिय नही है । अजीब विडम्बना है, उनका

कमरा उनकी अनुपस्थिति मे साफ होना चाहिए और साथ ही व अपनी अनु-पस्थिति मे किसी का कमरे मे जाना पसद नही करते। बाहर वालो से वे कुछ नही कहते हैं, उनके स्नेह अथवा दुष्टता के सम्मुख वे अपने अतर मे चुप हो जाते है।

सन् '५३ तक वे अधिकतर अपने आप बन्द होने वाले ताले खरीदते थे। और इसका दुष्परिणाम भी पर्याप्त भोगा, कई बार ताले तुडवाने पडे। किंतु अगस्त १९५३ के बाद से ऐसे ताले खरीदने छोड दिए है क्योकि इस बीच अपने एक प्रिय ताले की चाभी भूल से अपने कमरे के अन्दर ही रखकर उन्होने बाहर से ताला-दबाकर बन्द कर दिया। फिर जब कमरा खोलने की आवश्य-कता हुई तो ताली की बडी खोज की, इसको उसको दोषी ठहराया। फिर एक हाथ से बाँए दरवाजे को अन्दर की ओर धक्का देकर दाहिने दरवाजे को अपनी ओर खीचा तो चाभी अदर मेज पर वर्तमान दीखी। उन्हे लगा कि चाभी जब दीख रही है तो हाथ मे भी अवश्य आ जाएगी। दो बॉस बाँधे, आगे के बाँस मे तार से लोहे का 'हुक' बाँधा। अगस्त के महीने मे ऊपर की मजिल की सीढियो पर पौन घण्टा पसीना बहाने के बाद जब चाभी हाथ लगी तो स्वर्ग मिल गया। दो-तीन बार कहा भी, "क्या दो पैसे के ताले के मारे परेशानी उठा रहे हो।" उन्होने उल्टा मुझे टोका, "यह पैसे की बात नही है। चाभी मिलने पर मैं ताला-चाभी फेंक कर दिखा दूँगा। पर मैं अपनी हार नही मान सकता।" किंतु चाभी मिलने के साथ उन्होने ताला नही खोला, ताला-चाभी दोनो को प्यार किया तथा जेब मे रख लिया। मुझे आश्चर्य नही हुआ, जानती थी फेकने की बात झूठी है। वे टूटे तालो, बिना चाभी के तालो एव बिना तालो की चाभियो को भी सम्हाल कर रखते हैं। हाँ, अब मुझ पर रौब जमाने की बात थी। "तुमसे चाभी अदर रह जाती तो क्या तुम निकाल पाती?" "मैं निकाल पाती या जो करती तुम डाटना जो शुरू करते। एक मिनट चाभी मिलने मे देर हुई तो हल्ला मचाने लगते हो।" "वह बात दूसरी है। मै चाहता हूँ तुम गल्ती न किया करो। फिर मेरी बात दूसरी है। खोजता भी तो मैं ही हूँ। बुरा न मानना तुमसे यदि चाभी अदर रह गई होती तो ऐसी जगह पर होती कि निकाल नही पाते।"

भोजन के बारे मे उनकी विशिष्ट रुचि है। जो रुचिकर है, वही खाएगे अन्यथा भूखे रह जाएगे। अनेक तर्क देगे, "थोडा खाना बनारस का रहना" से लेकर "भूख नही है" तक अनेक बाते सुनने को मिलेंगी। पेट पर हाथ

रखते हुए कहेगे, "दिल्ली गया था—वहाँ तदूर की रोटी खा ली । अभी तक वह पेट मे रखी है, सच पेट मे है ।" अथवा अपनी रुचि के अनुरूप खाना होने पर वह प्रसन्न होकर खा लेते है ।[1] मिर्च वे नही ही खा पाते है । लाल-हरी मिर्च तो दूर, तनिक काली मिर्च भी डाल दो तो कहने लगते हैं, "बापरे सिर घूम गया ।" तरकारी उन्हे स्वादिष्ट ही पसद है, मसाला पडी, पर्याप्त तेल या

---

१. मित्रो की घी अच्छी दावतें उन्हे प्रिय है किंतु साथ ही उनसे उनका प्रकृतितः वैर है । विशिष्ट मित्रो और साधुओं की दावतें छोड़ कर अन्य किसी प्रकार की दावत उनकी प्रकृति स्वीकार नहीं कर पाती । प्रकृति कई बार चेतावनी दे चुकी है—एक बार सामान्य टाइफोएड हो चुका है और एक बार तो कोलरा के ही छोटे भाई ने आक्रमण कर दिया । अन्य बार भी बुखार, उल्टी, पेट दर्द या सर्दी से पीड़ित हो चुके है । जब बाहर से लौट कर आते हैं तो उत्साहपूर्वक बतलाते है कि किसने क्या खिलाया, कितने प्रेम से खिलाया, कितना स्वादिष्ट भोजन खिलाया । पर शायद ही कभी ऐसा हुआ हो कि आकर सप्ताह भर तक पेट की दवा न खानी पडी हो या रोग ग्रस्त न हुए हों । इसका मुख्य कारण लोगो की आग्रहपूर्वक खिलाने की वह आदत भी है जिसका पंत प्रतिरोध नहीं कर पाते हैं । अगस्त '६९ की जुलाई मे वे आठ-दस दिन से असह्य पेट दर्द से परेशान थे । उसी परेशानी में हम लोग डाक्टर जगत नारायण के पास उनके क्लिनिक मे गए । डाक्टर साहब ने दवा बताई, खाने के बारे में परहेज करने के लिए कहा । फिर उन्होने पंत से कहा कि उनकी श्रीमती जी उनसे मिलना चाहती है । पेट दर्द के कारण घर आकर लौटने की इच्छा होने पर भी पंत श्रीमती जगतनारायण से मिलने गए । वहाँ उन्होंने आग्रह पूर्वक पत को तीन कचौरियाँ खिला दीं । मैं देखती ही रह गई—जो व्यक्ति एक माह से बिना घी-तेल का खाना खा रहा है और इधर आठ-दस दिन से दही, खिचड़ी, टोस्ट पर रह रहा है वह तीन कचौरी खा ले, आश्चर्य हुआ किंतु चुप रह गई । दूसरे दिन सबेरे पंत ने कहा, "रात को मै बेहद डर गया था । इतनी तकलीफ है उस पर कचौरी खाईं ।" "हाँ मैं भी सोच रही थी कि तुम क्यों खा रहे हो । उन्होने जबर्दस्ती डाल दी थी तो बर्बाद कर देते ।" पंत ने झुंझलाते हुए कहा, "तुम देख तो रही थी कि वे कितना आग्रह कर रहीं थीं । और तुमने मना भी नहीं किया । मेरा ख्याल तो करना था ।" "मै, मैं मना करती

घी पडी। पूरी-कचौरी उन्हे प्रिय है, लेकिन माह मे दो बार से अधिक नही, वह भी जाडो के दिनो मे। खीर, छेने की खीर, या मखाने और मेवे की खीर (खजूर, बादाम, पोश्ता आदि) की खीर उन्हे विशेष रूप से प्रिय है। किसी को आमन्त्रित करो या कोई घर आ गया तो तत्काल कहेगे, "बढिया-सी खीर बनाना।" उस दावत को वे दावत ही नही मानते जिसमे खीर न बनाई जाए। खीर से वस्तुतः उनका अभिप्राय रबडी से होता है। यदि खीर मे रबडी-सी सुगध न आए, उसमे रबडी सा स्वाद न हो तो वे उसे खीर नही मानते। एक बार अमृत खाना खाने के लिए आने वाले थे। पत ने खीर बनती देखी तो प्रसन्न होकर बोले, "खीर बना रही हो?" मैने तत्काल कहा, "खुश क्या हो रहे हो, अमृत के लिए बनाई है।" अमृत जिस खीर को खाते है उसे सामान्यतः दो-तीन बार का उबला दूध ही कह सकते है। पत मुँह बिगाडते हुए बोले, "धत्तेरे की।" फिर हँसने लगे, "ऐसा करो। खीर अच्छी बनाओ। हमारे अपने लिए निकाल कर अमृत के लिए पानी मिला दो।"[1] इधर आठ-नौ वर्षों से डाक्टरो ने उबले खाने की राय दी है—मिर्च, (लाल मिर्च) जायफल तो डालते ही नही है, धनिया भी नही डालते। धनिया के बदले प्याज काफी डाल देते है, तेल भी डालते है पर यथासभव कम ही डालते है। तरकारी कम तेल मे भूनते है, (जनवरी सन् '७५ से अगस्त '७६ तक पत ने बिलकुल ही उबला खाना खाया—बिना बघारी मूग की दाल तथा उबली लौकी-परवर) साबुत काली मिर्च, तेजपात, इलायची डालना हुआ तो वह भी डाल देते है। किंतु इस खाने को पत उबला खाना ही कहते है।

अभ्यागत प्रेमी उनका स्वभाव अक्सर उनकी रुचि पर भी हावी हो जाता है। अभ्यागत को ठीक से खाते देखकर उन्हे भी खाना अच्छा लगने लगता है। कई बार ऐसा होता है कि खाते समय एकाएक चार–पाँच मेहमान आ जाते है। फ्रिज मे रात की या सवेरे की तरकारी पडी होती है जिसे पत देखते ही खाना अस्वीकार कर देते हैं। मेहमान के आने पर समयाभाव-

---

तो उनके आग्रह करने पर तुम कहते मै खा लूँगा, कोई बात नहीं।" उन्होंने मुझे समझाते हुए कहा, "तुम्हें डॉट कर कहना था, ददा, मत खाओ। तो वे घबड़ा कर मुझे नहीं देती।"

१. अब तीन-चार वर्षों से इस प्रकार की खीर पंत के लिए वर्जित हो गई है।

वश उस तरकारी को भी गरम करके लगा देती हूँ और मेरे आश्चर्य का ठिकाना नही रहता जब पत उसे बडे स्वाद से खाने लगते है, बाद मे पूछने पर कहते है अच्छी बनी थी, देखा नही'' ' लोग भी चाव से खा रहे थे। पर, जब मै तरकारी का रहस्य खोल देती हूँ तो कहते है, "धत्तेरे की।" पहिले तो एकाध बार दुःखी भी हुए, "रात की तरकारी उन लोगो को खिलादी, बेचारे। तो होटलवालो को क्यो दोष देती हो।" बडी वे नही ही खाते है। उनका कहना है वह गरिष्ठ होती है, "देखो, उस दिन खाई थी हफ्ते भर पेट दर्द रहा।" पर आवश्यकता होने पर, जल्दी मे, जब मै बडी या बडी की तहरी बनाती हूँ, या तरकारी को कम देख उसका परिमाण बढाने के लिए उसमे बडी मिला देती हूँ तो मेहमानो के साथ वे भी खूब बडी खाते है, ऐसे मे पेट दर्द पता ही नही चलता। पत का स्वभाव है, मेहमान के साथ खाना खाते समय या सृजन के दिनो उन्हे भोजन के स्वाद का अन्दाज नही ही आता है। यदि स्वय लेना पडा तो दो-एक चीजे लेना भूल ही जाते है। पर कभी-कभी उनके अभ्यागत-प्रेम के कारण परेशानी भी उठानी पडती है। निमत्रण देने के साथ ही वे आफत कर देते है कि क्या-क्या बनाओगी, साथ ही ५-६ चीजो के नाम बता देते है और आग्रह करते है कि यह सब अवश्य बनना चाहिए अन्यथा आमचित मत करो।[1] श्री गिरिजा कुमार माथुर का जब इलाहाबाद से स्थानान्तरण हुआ तो उनके साथ कुछ और लोगो को भी भोजन पर बुलाया।[2] भोजन समाप्त हो जाने पर मुझे लगा कि सब कुछ अच्छा बना, लोगो ने ठीक से खाया, खाना पर्याप्त बचा था, पर अधिक मात्रा मे नही बचा था। पत ने चार-पाँच दिन बाद कहा कि उन्हे ग्लानि के कारण

---

१. अब बीमारी और दुर्बलता से ग्रस्त हो जाने के कारण वह सक्रिय रुचि नहीं ले पाते हैं—तटस्थ ही रहते हैं।

२. किसी को खाने के लिए आमंत्रित करो, या अक्सर खाते समय कोई आ गया और उसे भी साग्रह मैंने या पंत ने अपने साथ खाने बैठा लिया अथवा कोई अभ्यागत बिना सूचना दिए ही आ गया तो पंत अपना खाना ठीक से नहीं ही खाते हैं। मैं परोस देती हूँ तो विक होकर मना कर देते है। उन्हें निरंतर भय लगा रहता है कि खाना अभ्यागत के लिए कम न हो जाए। मैं कह भी देती हूँ—सब कुछ बहुत है, और ले लो, बाद को भी टोकती हूँ पर वे स्वभाव से विवश हैं।

तीन रात नीद नही आई। तुमने खाना कम बनवाया था। मेरे लिए यह एक सूचना ही थी—अविश्वसनीय सूचना! मैंने कहा, "इस दावत मे दो-तीन वे परिवार भी थे जिनसे हमारा पारिवारिक सबध है, चलो उनसे पूछ लो।" पर पूछ कर उनकी ग्लानि कैसे दूर होती। मुझे स्वय बडा अजीब लगा। छह-सात महीने तक फिर किसी को आमन्त्रित करने का साहस ही नही हुआ। किंतु यह पत-स्वभाव की वह विवशता है जो उन्हे परेशान करती है और मुझे भी।

पत का दूसरे को न टोकने का स्वभाव, उन्हे आशीर्वाद देने की आकाक्षा कभी-कभी उनके मित्रो, सह-लेखको और प्रियजनो को क्षुब्ध कर देती है। कुछ का कहना है पत गलत लोगो को प्रोत्साहन देते हैं क्योकि जो उनके पास प्रमाण पत्र माँगने आता है उसे बिना जाने ही प्रमाण पत्र दे देते है और जो भूमिका लिखवाने आते है उनकी प्रशसापूर्ण भूमिकाएँ लिख देते है। अक्सर तो भूमिका लिखवाने ऐसे लोग आ जाते हैं जो न पत की परेशानी को कुछ मानते है, न बीमारी को, न कुसमय हो। पत बुखार मे पडे है और वे रात के नौ बजे एक दम जोर से दरवाजा खटखटाते हैं तथा आग्रह करते हैं कि अभी लिख दीजिए। पत दिक हो जाते हैं किंतु मन मे। "सिर घूम रहा था," "दिमाग काम नही कर रहा था पर वे माने ही नही। फिर क्या करता, जो सूझा वही लिख दिया।" वैसे उनका कहना है, "मैं किसी को हतोत्साह नही कर सकता।" क्योकि यदि किसी मे थोडी सी भी प्रतिभा हो और उसे प्रोत्साहन मिल जाए तो उसका विकास हो सकता हैं। "अभी बच्चा ही तो है। कुछ समय मे अच्छा लिखने लगेगा।" वे सभी को पितामह के भाव से देखते है। पितामह के लिए उनका पोता ३५-४५ साल का होने पर भी बच्चा ही है। २१ नवम्बर '६८ को एक ग्रामीण सज्जन अपनी काव्य पुस्तिका लेकर आए। उन्होने पत से सम्मति देने को कहा। पत ने पुस्तिका उलटी-पलटी। कुछ समझ मे नही आया क्या लिखें। फिर भी सम्मति लिखने बैठे। उन सज्जन ने कहा जो मैं कहूँ यदि आप वही लिख दें तो बडी कृपा होगी। उन्होने पहिला ही वाक्य ऐसा अतिशयोक्ति पूर्ण कहा कि पत ने एक मिनट सोचा फिर उनके कथनानुसार ही लिख दिया। महादेवी जी ने जब वह सम्मति देखी तो पत को टोका, "आप भी खूब है, न भाव, न भाषा, न छद फिर भी प्रशस्ति।" महादेवी जी के हँसने मे योग देते हुए पत ने कहा, "उस सम्मति को लिखने मे मैंने भी एक मिनट सोचा, उन सज्जन की ओर देखा—बूढे ग्रामीण आदमी, बडी-बडी सफेद मूँछे ओठो पर बिछाए हुए। लगा उनके मनोनुकूल लिख दूँगा तो उन्हे

सुख मिलेगा। जो उनकी कविता पढेगा वह समझ जाएगा कि मैंने उनका मन रखने के लिए लिखा है। सच तो यह है कि न तो उस काव्य सग्रह को कोई छापेगा और न कोई पढेगा ही।" ३१ अक्टूबर १९६९ को पत महादेवी जी के साथ कालाकाकर गए। वहाँ अमृतलाल नागर भी आए थे। श्रीमती प्रकाशवती, सुरेश सिंह, नागरजी, महादेवी जी तथा पत शाम को सुरेश सिंह की कोठी की बैठक मे बैठे हुए थे। महादेवी जी ने पत की ओर लक्षित करते हुए कहा, "इनके मारे परेशानी है। प्रत्येक को लम्बी सम्मति दे देते है। फिर मुझे भी देनी पडती है। यह गलत है। साहित्य का अहित है।" नागर जी ने भी महादेवी जी के साथ पत के इस असाहित्यिक कार्य को स्वीकार किया। फिर महादेवी जी ने पत से कहा, "यह असाहित्यिक कार्य है। अब आगे से इस भाँति सम्मति न दीजिएगा।" पत ने कहा, "मैं किसी को मना नही कर सकता, कोई मुझसे माँगे और मैं दो शब्द लिखना मना कर दूँ, यह सभव नही है।" महादेवी जी हँसी, "अच्छा आप यह तो कर सकते है कि जो आप से सम्मति माँगे उससे कह दें कि पहिले महादेवी जी से माँगो, तब मैं दूँगा।" पत ने सहर्ष स्वीकार कर लिया, "मैं वचन देता हूँ।"

सबके कहने पर पत लेटने चले गए। फिर महादेवी जी बोली, "जिन कविताओ मे न कवित्व है, न भाषा, न भाव, उसमे भी दो पृष्ठो की प्रशसात्मक भूमिका देना ...यह इनका दया भाव ही तो है, आशुतोष है।" खैर मैं खुश थी, पत निरर्थक के कामो से, कुसमय की थकान से बच जाएगे।[1] पर घर आकर १ नवम्बर को उन्होने थकते हुए एक पुस्तिका के पन्ने पल्टे और चार पृष्ठ की भूमिका लिख दी। मैंने हल्ला मचाया, "मौसी को वचन दिया है न!" वे दिक हो गए, "वह तो देना पडा। मन से नही दिया था। मैंने कोई ऐसा काम नही किया है जिसके लिए पश्चाताप या ग्लानि हो। किसी को सम्मति दे देना, प्रोत्साहित करना, या २०-२५ रुपये दे देना, बुरा काम नही है। लोग क्या-क्या करते है, किस माध्यम से पैसा कमाते है मैं तो यह सब नही करता।"[1]

---

१. जब सृजन के तीव्रतम आवेग को थामकर पंत को यह सब करना पड़ता है तो छाती पर हाथ रखते हुए कहते हैं "भरतू के काम से छुट्टी मिले तो कुछ करूँ।" "मै तो दूसरो का इतना छोटा-सा काम करना बुरा नहीं मानता। हाँ लिखने को जी तरस रहा है। उसे लिखवाना होगा तो लिख लूँगा।"

६ जून '७१ को एक सज्जन ने दरवाजा खटखटाया। सदैव की भांति पत ने जल्दी से दरवाजा खोला, वे सज्जन एकदम अदर चले आए। लबा-तगडा व्यक्तित्व, धोती-कुर्ता पहिने हुए। हाथ की छाता किनारे पर रख कर वे कुर्सी पर बैठ गए, "मैं कलाकार हूँ, हजारो को अपने गायन से मुग्ध कर सकता हूँ।" आज शाम को आपके यहाँ गाना चाहता हूँ।" पत के कहने पर कि मैं अस्वस्थ हूँ अत गाना सुनने मे असमर्थ हूँ उन्होने कहा, "मेरी बीवी बीमार है। दो सौ, सौ, पचास रुपए कुछ भी भिक्षा के रूप मे मुझे दे दीजिए।" पत ने बिना उनके बारे मे पता लगाए अथवा उनका नाम पूछे उन्हे सौ रुपए दे दिए। इसी प्रकार १६ सितम्बर '७० को एक अन्य सज्जन आए। उनका कहना था कि वे जागरण (कानपुर) पत्रिका मे काम कर रहे थे पर उन्हे एकदम निकाल दिया गया। आज उन्होने खाना नही खाया है। पत ने दस रुपए दिए। मैंने कहा नाम तो पूछ लेते। वे नाराज हो गए, "उसकी शक्ल देखती। मन बडा दुखी है। देश को क्या हो गया। बेचारा कितने कष्ट मे है।" सितम्बर '७५ को पत अपने फाटक के पास खडे थे कि एक सज्जन वकील वेश मे रिक्शा से उतरे, "आपके दर्शनो का आज सौभाग्य मिला है। रामकुमार वर्मा जी के यहाँ अक्सर जाता हूँ, आपकी भी बाते होती है। मैं बादा मे वकील हूँ। अभी कचहरी आया तो किसी ने मेरे जूते चुरा लिए। आप अपने जूते दे देते तो मेरा काम हो जाता।" पत ने तत्काल अन्दर से लाकर जूते दे दिए। बाद को कहने लगे, "वे जूते बहुत अच्छे थे। पहन कर पैरो को आराम मिलता था। अब अपने लिए अच्छे जूते लेने होगे।" मेरी आपत्ति दूसरी ही थी, "तुम भी खूब हो! नाम भी नही पूछा।" वे नाराज हो गए, "नाम पूछ कर क्या होता? कह तो रहा था रामकुमार को जानता हूँ।" "तो फिर उनके पास क्यो नही गए जूते माँगने।" "छि. तुम्हारी ये बातें मुझे पसद नही है। दूसरे पर विश्वास करना चाहिए।"

---

१. अक्टूबर '७६ को एक शिक्षक आकर अपने काव्य-संग्रह के लिए भूमिका लिखवा ले गए। पंत से पूछा "क्या अच्छा लिखा है।" उनका उत्तर था, "बेचारा गरीब है, परिवार है। कहता है पुस्तक बिक जाएगी तो कुछ पैसे मिल जाएंगे।"

सन् '६४ में एक गांव का शिक्षक आया, अपनी काव्य-पुस्तिका ले के पंत से कहने लगा इसकी अच्छी भूमिका लिख दीजिए तो मैं अपने लड़को में

४ नवम्बर '६६ की बात है। पत ने मेरे कमरे मे आते ही कहा, "बडी आफत है। भेंट-वार्ता लेने पुष्पा अग्रवाल आ रही है, जगदीश गुप्त का फोन आया है।" मैंने मजाक किया, "आफत क्या, बडे आदमी होने के ठाठ है।" "बडा आदमी, क्या माने ?" उन्होने झुँझला कर कहा। मैंने अपने पुराने ही स्वर मे कहा, "प्रतिष्ठित लेखक हो या नही।" वे उदास हो गए, "हमेशा बेवकूफी की बात करती हो। मैं तो अपने को सबसे बडा दोषी मानता हूँ। क्या जीवन है मेरा, कुत्सित। विश्व मे इतनी विषमताएँ है। उन्हे दूर करने के लिए कुछ नही कर पाया, थोडा-सा भी नही। मैं तो अपने को होटल का बेरा समझता हूँ, चोर।[1] हम सभी तो चोरी करते है, समाज की विषमताओ के भागीदार है। क्या कर पाया हूँ, विषमता को दूर करने के लिए, कुछ नही।"

मानव कल्याण का आकाक्षी उनका मन वैयक्तिक मुक्ति की धारणा को स्वीकार नही ही कर पाता है। फर्वरी '६३ मे एक साधु से विवाद करते हुए

बेच दूँगा। काव्य तथा भाषा तो उस पुस्तिका मे थी ही नहीं, पर पंत को भूमिका लिखने मे यह बात गौण ही लगी, उन्हे आपत्ति थी कि यह शिक्षक का एक राजकुमारी के प्रति प्रेम प्रदर्शन मात्र है। इसे वह लड़को को बेचेगा जो अनुचित होगा। उस समय तो वह शिक्षक चले गए, फिर गाँव से उनका पत्र आया, "आप भूमिका नहीं लिख कर मेरे तथा मेरे परिवार के प्रति अन्याय कर रहे हैं। पुस्तक बेचकर मै कुछ पैसे कमा लूँगा, मेरे बच्चो को खाना मिल जाएगा।" पत ने अपने को विवश पाया और भूमिका लिख कर भेज दी।

पंत की भूमिकाएं यदि इकट्ठी की जांए तो महाभारत के आकार का एक ग्रंथ तो तैयार हो ही जाएगा। महीने मे ३-४ भूमिकाएं एवं दो शब्द तो वे अवश्य लिखते हैं। बुरा लगता है जब वे अपने प्रबल, तीव्रगामी सृजन को बरवस रोक कर अथवा अत्यंत दुर्बल अवस्था में, उन्हीं के शब्दो में 'भरतू का काम' करते है। पंत अपने 'भरतू के काम' के बारे में मुझसे दुराव रखते है। जब उन्हे हस्तलिखित या टंकित पांडुलिपियाँ रखकर कागज पर लिखते देख कर पूछती हूँ, "अपना काम कर रहे हो।" वे अपने भाव को कठोर बनाते हुए कहते हैं, "जरूरी काम कर रहा हूँ, डिस्टर्ब मत करो।" और बाद को भी बताना टाल जाते हैं।

१. 'पतझर : एक भावक्रांति', प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज।

उन्होंने कहा, "वैयक्तिक मुक्ति मेरे लिए कोई अर्थ नही रखती हैं। हमारी साधना या मुक्ति पद्धति ने भारत के सामाजिक जीवन को मृत कर दिया है। बिना इस विश्व के सत्य को माने आप इससे परे के सत्य को मान ही कैसे सकते है ?"

पत के प्रमाण-पत्रो, भूमिकाओ का आशीर्वादात्मक मूल्य है। अपने बच्चो के प्रति उनका हृदय से आशीर्वाद निकलता है—सब सुखी रहे, सफल रहे यह वह चाहते है। उनके बच्चे साहित्यिक प्रतिभा सपन्न हो, यह आवश्यक नही है। वे किसी भी क्षेत्र के हो यदि प्रमाण पत्र मागने आजाते है तो चाहे पत किसी आवश्यक कार्य मे लीन हो, बीमार हो या वे रात (दस बजे) हो जाने के कारण सो रहे हो, उन्हे निराश होने की आवश्यकता नही होती। लेडीज़ टेलर, तेल बेचनेवाला, तान्त्रिक, ज्योतिष, फोटोग्राफर, बिजलीवाला, कम्पाउन्डर, कार्पेन्टर सभी तो पत से प्रशसा पत्र प्राप्त कर चुके है। सन् '६० की बात है, उषा प्रियवदा ने पहेली बुझाते हुए-सा पूछा, "मै जानती हूँ पत जी कौन तेल लगाते है?" "तेल ?" मैं चौकी, "तेल तो वे छूते तक नही है।" "वाह, यह कैसे हो सकता है ? उन्होने तेल के निर्माता को बडा अच्छा प्रमाण-पत्र दिया है। मैंने भी वह तेल आज खरीदा है।" सन् '६२ तक पत को प्रदर्शिनी जाने का बच्चो का सा शौक था। साथ मिलने पर आठ-दस बार चले जाते थे। और जब वहाँ का कोई दुकानदार अपनी चीज़ की प्रशसा कर देता तो वे उसे लेने के लिए बच्चो की तरह मचल जाते। जब तक खरीद नही लेते है उसकी रट लगाए रहते है " .. जरूर लूँगा।" उषा ने जिस तेल की बात की वह तेल दुकानदार की प्रशसा से प्रभावित होकर ही पत ने खरीदा था। वह दुकानदार इलाहाबाद का ही था। दो-तीन दिन बाद वह घर आया और पत से प्रमाण पत्र ले गया। पत ने शीशी मे लगे लेबुल के आधार पर प्रमाण पत्र दिया, "और क्या करता? उससे कसे कहता कि तेल मैं लगाता ही नही हूँ।" एक बार तो प्रदर्शिनी से एक विशिष्ट दत मजन खरीदने के साथ ही, दूकानदार के कहने पर, तत्काल पत ने उस मजन की अतिशयोक्तिपूर्ण लिखित प्रशसा कर दी। तीन-चार दिन के सेवन से ही हमलोगो के मसूडो से खून निकलने लगा। पत ने शीशी कूडे मे फैकी और खूब हँसे, "मेरा यार, बेवकूफ बना गया।" एक बार एक आदमी आया, पत ने सोचा कोई साहित्य प्रेमी होगा। किंतु उसने बतलाया कि वह 'लेडीज़ टेलर' है और पत से सर्टिफिकेट चाहता है। पत ने सर्टिफिकेट

दे दिया। जब मुझे यह बतलाया तो मैं आश्चर्य मे पड गई, "बिना जाने तुमने प्रमाण पत्र कैसे दे दिया। वैसे भी औरतो के कपडो की सिलाई तुम क्या समझ सकते हो, लोग तुम्हारा प्रमाण पत्र देखेंगे तो हँसेगे।" "मुझे लोगो की परवाह नही है। बेचारा आया था, कह रहा था कि मैं अच्छे कपडे सीला हूँ। आजकल उसे पैसे की दिक्कत है। मेरे लिख देने से यदि उसकी भलाई हो जाय तो क्या बुराई है।" अप्रेल '६३ मे एक अपरिचित सज्जन का पत के नाम लखनऊ से पत्र आया—मैं तन्त्रशास्त्र का प्रेमी हूँ। किसी प्रसिद्ध तान्त्रिक का परिचय दीजिए। पत सभ्रम मे पड गए, "कैसे लोग हैं तन्त्र के बारेमे मुझसे पूछते है।" कोई पत से क्या कहे कि तान्त्रिको को आपने प्रमाण पत्र दिए हे और इन्ही प्रमाण प्रत्रो के आधार पर आपसे यह पूछा गया है। कुछ माह पूर्व (अक्टूबर '७४) एक फोटोग्राफर का फोन आया। उस दिन पत काफी अस्वस्थ थे किंतु फोटोग्राफर को बम्बई जाने की जल्दी थी। अत' वे नौ बजे रात आए, पत के साथ उन्होने अपनी फोटो खीची और प्रमाण पत्र ले गए। प्रमाण पत्र एत्र दूसरो के बारे मे प्रशस्ति पत प्रसन्नतापूर्वक और मनोयोग से लिखते है। अश्क जी की पचासवी वर्षगाठ के उपलक्ष्य मे पत ने उनका अभिनदन पत्र लिखा था। एक प्रतिष्ठित साहित्यिक ने उन्हे टोका "आपने इतना अच्छा अभिनन्दन पत्र लिखा है। उनसे किसी बडे साहित्यिक का लिखना पडेगा तब आप क्या करेंगे।" और पंत का तत्काल उत्तर था, "आप अपना लिखवाइए, देखिए कैसा लिखता हूँ।" फिर घर आकर मुझसे कहने लगे, "मुझे दूसरो का अभिनन्दन करना अच्छा लगता है, दूसरो की प्रशसा मे सुख मिलता है। अभिनदन पत्र लिखना केवल उनके लिए कठिन है जिनके मन मे किसी प्रकार की कुठा हो। मैं तो प्रशसा मुक्त हृदय से करता हूँ।"

१४ अप्रेल '७६ को सबेरे साढे दस बजे मै अपने कमरे मे मीरा तथा दमयती से बाते कर रही थी। इतने मे पत उस कमरे मे आ गए। वे अभी कुर्सी पर बैठे भी नही थे कि एक सज्जन मेरे कमरे मे एक कागज लेकर घुस गए। चाहने पर भी मै उनकी धृष्टता से अवाक् होकर उनसे कह नही पाई कि आप बैठक मे बैठिए। उन्होने पत को एक कागज पकडाते हुए कहा, "इसमे हस्ताक्षर कर दीजिए।" पत ने एकदम हस्ताक्षर कर दिए। मीरा ने पूछा, "क्या आप इन्हे जानते है?" पत का उत्तर था, "मैं, मैं इनको नही जानता। आज पहिली बार सूरत देखी है।" मैंने बाहर आकर उन सज्जन से कहा, "यह तो इलेक्शन का कागज लगता है।" वे 'हाँ' कहकर चले गए। फिर पत से

कहा, "बिना पढे क्यो कागज पर हस्ताक्षर कर दिए। गलत बात है न! न जाने कैसा कागज था, इलेक्शन का था और इलेक्शन के कागज पर इस भाँति हस्ताक्षर! कुछ गडबड न हो जाए।" पत ने झिडक दिया, "मेरा क्या बिगडता है। कुछ पूछता वे बुरा मान जाते तो।" किन्तु फिर शायद उन्हे यह बात गलत ही लगी। पडौसी के घर जाकर उन्होने पूछताछ की। सतुष्ठ होकर लौटे, "वे उन्हे जानते है।"

सामान्यत. घर मे इतना सूनापन रहता है कि घर का पुराना नौकर साल भर रह कर वापिस लौट गया। उसका कहना था कि बैठे-बैठे जी ऊबता है। एक दिन खीझकर बोला, "क्या घर है? कोई बाहर से आए तो सोचेगा इस घर मे कोई रहता ही नही है।" दो-चार नौकर तो इस सूनेपन से इतना ऊबे कि साल भर तो किसी तरह निभा दिया फिर जाने का नोटिस दे दिया, "परिवार के कुछ लोगो को बुला लें तो हम काम करेंगे। काम से हम नही डरते।" एक छोटा नौकर जिसे प्रीति ने भेजा था शाम तक रो दिया—सिर दर्द का बहाना बना कर चला गया। बाद मे प्रीति ने बताया, "वह कहता है भुतहा घर है। कोई रहता ही नही है।" कोलाहल इस घर मे तभी होता है जब कोई आता है अन्यथा सूई का गिरना भी सुनाई दे। पढने-लिखने के लिए पत को शात वातावरण चाहिए।[1] कमरे की शाति वातावरण एव पूरे घर की शाति की अपेक्षा रखती है। अपने कमरे का एकात उन्हे अच्छा लगता है, विशेषकर सबेरे उठने के बाद से ३-४ बजे दिन तक। सबेरा उन्हे ध्यान के लिए चाहिए, पत्र-पत्रिकाओ के पढने, पुस्तक पढने या लिखने के लिए चाहिए। जब थक जाते है तो एक डेढ बजे के लगभग वह नहाते हैं, फिर

---

१. सृजन का अबाध प्रवाह उनके व्यक्तित्व को तन्मय कर देता है। जब वे अपने को भूले हुए सृजन आनंद में लीन रहते है तो उनकी आँखें, मुँह का भाव एक अद्वितीय मधुरिमा से दीप्त हो जाता है और उनका हाथ एक यंत्रमात्र बन जाता है, यांत्रिक गति से दौडता हुआ टेप रेकोर्डर। ऐसे में यदि कोई उनके कमरे में चला जाता है या उन्हे बाहर आना पड़ता है तो कहते है, "सच, बुरा मानने की बात नहीं है, सारा दृश्य ही बदल जाता है। वह धरातल तो रहता नहीं है, वह तो कोई और ही स्तर है। एकदम कहाँ से कहाँ आ जाता हूँ, मन और बुद्धि के धरातल पर चारो ओर की परिस्थितियों के प्रति सतर्कता आ जाती है, फिर नहीं लिखा जाता।"

खाना खाकर थोडी देर सोते हैं। सोते समय अपना दरवाज़ा-खिडकी बद कर लेते है क्योकि कमरे के अधकार की नीरव शाति मे ही वे सो पाते है। चार बजे एक प्याला चाय पीकर वे फिर कुछ लिखना-पढना चाहते है, कम से कम छह-साढे छह बजे शाम तक। सृजन, अध्ययन या चितन मे दिन बीतता मालूम नही पडता। वैसे कह सकती थी कि दिन हँसते बीत जाता है पर पत का कहना है, "वर्तमान जीवन को देखकर कौन सुखी रह सकता है। कभी सोचा है, आज का मनुष्य कहाँ जा रहा है। विश्व जीवन कितना दुख पूर्ण है।"

दूसरे या मेरे कमरे मे मेहमान का रहना या मिलने वाले का बैठना भी उनके सृजन मे अप्रत्यक्ष रूप से बाधक बन जाता है। पत की यह आदत उनके अपने ही घर मे पडी। जब तक दूसरे के यहाँ रहे सामजस्य की भावना ने सभी परिस्थितियो मे लिखा दिया। बम्बई मे नरेन्द्रजी के पास रह कर जब 'स्वर्ण किरण' लिखी तो एक ही कमरे मे दोनो रहते थे, नरेन्द्र जी के पास फिल्मी ससार के ढेरो लोग आते-जाते रहते थे। जब परिवार वालो के साथ रहे तो बच्चो के शोर, उनके मित्रो के आवागमन, अभ्यागत के ठहरने, त्योहार आदि के हुल्लड ने उनके सृजन मे बाधा उत्पन्न नही की। सबसे अधिक एकात उन्हे 'नक्षत्र' कालाकाँकर मे मिला, और उसके बाद अब अपने घर मे। पर अब इस भावना ने कि मैं अपने घर मे अपने ढग से रह सकता हूँ सृजन को एकात से युक्त कर दिया है। अपना कमरा पत स्वय चुनते है।[१] वही कमरा लेते हैं जिसके निकट गोसलखाना या रसोई न हो। छोटे घर की सीमाएँ होती हैं। कही पर भी जरा-सा शोर हो, कोई बोले, दरवाजा खोला

---

१. तथा यह भी कहते हैं, "भाग्य है, मुझे सदैव पश्चिम का कमरा मिलता है। देख लो, जो भी घर लिया उसी में ऐसा कमरा मिला जिसमे गर्मी में धूप रहती है और जाड़ो में धूप का नाम नहीं। मै कैसे रहता हूँ मै ही जानता हूँ।" इसमे संदेह नहीं कि पंत का कमरा गर्मियो में सात माह तक भट्टी रहता है। उनके कमरे मे झाड़ू देने के साथ ही नौकर कहता है, "बीबी जी भय्या जी का कमरा तो गजब का गरम है। कैसे रहते हैं?" मेरा भी पंत से निरतर कहना है कि तुम्हारी तीन-चौथाई बीमारी कमरे के कारण है। दूसरा कमरा ले लो। किंतु एकात के आगे वह कुछ नहीं सुनते।

या बद किया जाए, झाड़ू लगे तो सारे घर मे सुनाई देता है। शोर यथासंभव नही ही किया जाता, 'रेकोर्ड प्लेयर तो घर मे अब तक था ही नही, 'ट्रान्जिस्टर' है, वह तभी बजता है जब पत बजाते हैं।

किंतु यह एकात जो दूसरो को व्यथित कर देता है पत का प्रिय सहचर है,[1] इसमे वे आत्मस्थ अनुभव करते है। मेरी एक सहेली ने बातचीत करते हुए कहा, "बडा एकाकी अनुभव करती हूँ। कोई मित्र ही नही है। मेरा स्वभाव, व्यक्तित्व और प्रतिभा जिस ढग का मित्र चाहते है वह मिलना दुर्लभ ही है।" मैं उससे कहना चाह रही थी, 'नीत्से का भाग्य लेकर तो नही उपजी हो ?" कि पत ने बात को गभीरता प्रदान कर दी, "भगवान् के अतिरिक्त किसी अन्य से 'हार्ट कोइन्साइड' होता है कही ? आपके सब उलाहने व्यर्थ है। मित्रता तो सरल होती है। मित्र वह है जिसके साथ थोडी देर को हँस लो," और फिर उन्होने आगे कहा, "प्यार है कहाँ, ममता है। मुझे एक दम्पति भी ऐसा दिखा दो जिनमे प्यार है तो मैं फूल चढा दूं। मुझे तो सदैव याज्ञवल्क्य का कथन याद आता है: न वा अरे जायाया : कामाय जाया प्रिया भवति, आत्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति इत्यादि० पर हम यह समझ कहाँ पाते है। ममत्व या आसक्ति को ही प्यार समझ लेते हैं।"

साथ ही पत यह भी दृढतापूर्वक मानते है कि विवाहित पुरुष का यह धर्म है कि वह अपने परिवार के दायित्व को ठीक से निभाए। १५ अप्रेल '७० को उनके पास एक व्यक्ति आया जो अपने परिवार से ऊब गया था और सन्यास लेना चाहता था। पत ने उसे कई प्रकार से प्रबोधते हुए कहा, "दुनिया मे खुशी तभी मिलती है जब आप अपने को अर्पित कर देते है। अन्यथा दुनिया मे है क्या ? यदि बीवी है, बच्चे है, तो उन्हें छोडना या उनके प्रति निर्मम होना पाप है। भगवान् या आपकी आत्मा आपको कभी क्षमा नही करेगी। जीवन यापन के दो मार्ग है गृहस्थ और लोक सेवा, दोनो साथ चल सकते है, सन्यास का कोई अर्थ नही है। अपने आपको समझाइए। जिसके बीवी-बच्चे हो उसके लिए दुःख का कोई कारण नही है। आप उन्हे प्यार दीजिए, वे आपको देगे। आप अपने को अकेला मत समझिए। आपका

---

१. "जैसे बच्चे का होता है, कुछ नही हुआ तो वह अपना अँगूठा चूसता है। वैसे ही मेरा भी है, अपने में ही रहता हूँ, अपनी आत्मा एवं चैतन्य में।"

जीवन आपके बीवी-बच्चो के साथ है। उनको अपनाइए—उनके लिए जीना सीखिए। भगवान् का कार्य कही बालू मे या आसमान मे नही होता। बच्चे भगवान् के हैं, पत्नी भगवान् की है, उन्ही के भीतर से, उन्ही के माध्यम से भगवान् का कार्य कीजिए।"

पत का जन्मजात कवि सतत जिज्ञासु है। अपने विद्यार्थी जीवन मे सभवतः ऐसा कोई भी उपलब्ध श्रेष्ठ ग्रथ न होगा जिसका उन्होने अध्ययन न किया हो। जब कोई विद्यार्थी या युवा लेखक उनके पास आता है तो वे उसे श्रेष्ठ साहित्य का व्यापक अध्ययन करने की राय देते है, भाषा, छद, व्याकरण के नियमो पर पुस्तकें पढने के लिए बार-बार कहते है। उनका कहना है कि छद पर अधिकार होने पर ही छद-स्वातत्र्य, मुक्त छद का सुदर उपयोग किया जा सकता है। वे स्वय जो भी पुस्तक पढते है, ध्यान और तल्लीनता के साथ पढते है। लिखते यदि वे सौ मील की रफ्तार से है तो पढते एक मील की रफ्तार से है। पर जो पढ लिया वह सदैव के लिए मानस मे अकित हो जाता है। सामाजिक द्वेष पूर्ण बातें न वे ध्यान से सुनते है और न उन्हे याद ही रहती है, कभी कोई याद रह गई तो उसका रूप बदल जाता है। ऐसी बातें उन्हे हर बार नई भी लगती हैं, पुरानी सुनी बात वे भूल जाते है। अथवा अक्सर सुनते समय उनका या तो भाव दयनीय हो जाता है या वे अपने को तटस्थ करके कुछ और सोचने लगते हैं। किंतु ज्ञान-विज्ञान की बाते, सत्सगति के अनुभव उनके लिए अविस्मरणीय हैं। जितने विविध विषयो पर वे विस्तार और गहनता से बाते कर लेते है, वह कम ही कर पाते होगे। जीवन के सभी विषय उन्हे रुचिकर लगते है। ज्ञान के समस्त पक्षो को आत्मसात् करने के वे आकाक्षी है। यदि मनीषियो, ज्ञानियो साधु-सतो के साथ वे रात दिन एक कर सकते है तो फाउन्टेन पेन ठीक करने, कपडे सीने अथवा धोने, बाग मे पानी का पाइप लगाने, वॉश बेसिन साफ करने, बर्तन धोने आदि के आनद मे वे सब कुछ भूल सकते है। उनकी जिज्ञासा बच्चे की सी हो जाती है। प्रत्येक तथ्य वे जानना अथवा सीखना चाहते है—चाहे कोई बीमारी या ऑपरेशन हो, साहित्य, राजनीति; दर्शन शास्त्र, मनोविज्ञान या विज्ञान हो अथवा चाहे वह गुडिया बनाना हो, हरा धनियाँ बोना, मेथी काटना या आग जलानी हो। कई बार उन्होने मुझसे कहा, "और सब खाना तो, मैं सोचता हूँ, मैं बना सकता हूँ। रोटी बेलनी मुझे नही आती है, सिखा दो तो बडा अच्छा हो।" एकाध बार वे रोटी बेलने

भी बैठे, पर मुझे अच्छा नही लगा, बेलने या सीखने नही दिया। ऐसा सतत जिज्ञासु मन—सृष्टि के कण-कण मे सृजन आनद का अनुभव करने वाला हृदय कम ही दीखेगा। अपने घर के बाहर घूमते हुए वे रुक कर आकाश को देखने लगते है और नक्षत्र विद्या तथा पौराणिक कथाओ का ज्ञान-भण्डार खोल देते है। कोई बात स्पष्ट न हो रही हो तो त्वरित गति से अपने कमरे मे जाकर कागज-पेन ले आएगे और तब तक अनमने या आत्मविस्मृत रहेगे जब तक कि उसे हस्तामलकवत् न कर ले। सन् '६१ मे उन्हे आइन्सटाइन के सापेक्षवाद को समझने की धुन चढ गई—दिनो तक उनके भीतर-बाहर सापेक्षवाद ही छाया रहा। पुस्तकें पढी, मनन किया, तथा पुराणी जी, जिनकी सापेक्षवाद मे अच्छी पैठ थी, के साथ बैठकर विशद विवेचन किया। कोई भी सस्कृत या हिन्दी के अच्छे शब्द कोश और वैदिक साहित्य की पुस्तक का नाम सुन लेने पर वे अवश्य ही उसे खरीदते एव देखते-पढते है। अग्रेजी के बडे एव लम्बे शब्दो के अक्षरो को गिनने की उन्हे धुन है। अखबार या पत्रिका मे कोई लम्बा शब्द दीखा या वह ध्यान मे आया तो उनकी उँगलियो पर उनका अँगूठा गतिमान हो जाता है। कई बार पूछा कि यह क्या सोच रहे हो, कोई तिथि या नक्षत्र पर विचार ! वे हँस देते है, "यह धुन मुझमे बचपन से है।" इसी भाँति एक और धुन उनमे है, कहते है फाउन्टेनपेन मे तब तक स्याही नही आती जब तक चार बार न भरो।

विचित्र है पत का व्यक्तित्व ! वैयक्तिक इच्छाओ आकाक्षाओ के प्रति भावशून्य-सा और स्वस्थ जीवन के प्रति महत् आकर्षण ! भगवान् की पृथ्वी मे ठीक से जीने, उसे समझने, उसके वासियो को सुखी देखने की सपूर्ण आकाक्षा लिए उनका मन किसी से घृणा कर ही नही सकता[1] और न, सच-

---

१. एक बार मैंने पंत को टोका, "उन्होंने तुम्हारे साथ अभी हाल में घोर अशिष्टतापूर्ण व्यवहार किया है। वैसे भी, सदैव तुम्हारे विरुद्ध कुछ न कुछ कहते रहते है और तुम उन्हे पचास रुपए की किताबें तथा भेंट-वार्ता दे रहे हो।" वे एकदम नाराज हो गए, "अशिष्टता क्या होती है ? ऐसे व्यवहार से मेरी कोई हानि नहीं होती, उन्हे ही परेशान होना पड़ता है। अजीब है तुम्हारा स्वभाव, दुनिया भर से द्वेष रखना। मुझे यह सब पसंद नही है। बेचारे को दिक्कत हो रही होगी। तभी तो आया, नहीं तो आता कहाँ है। भेंट-वार्ता दे दूँगा तो उसे थोड़े से पैसे मिल जाएंगे। यह कोई बुरी बात है ?"

मुच मे ही, किसी को बुरा समझ सकता है—हम नही जानते कि वह किन परिस्थितियो से विवश हो ऐसा कर रहा है। बुरा तो कोई होता ही नही है, या हम ऐसे व्यक्ति को समझ ही नही पाते है या वह मूर्ख और परिस्थितियो से त्रस्त है और जिस भाँति वे बुरे-से-बुरे आदमी की प्रशसा कर देते है, मुँह पर थूकने वाले को मूर्ख एव अबोध प्रमाणित करने लगते है, मै आश्चर्य मे पड जाती हूँ। कभी सदेह हो जाता है कि क्या यह जो कह रहे है, वही हृदय से भी अनुभव कर रहे है। किंतु समातर मे उनका क्षण-क्षण का जीवन, उनकी दिनचर्या, व्यवहार-आचार, उनकी भावनाएँ-आकाक्षाएँ तथा आस्था मुझे अनवरत सदेहमुक्त करती रहती है, मन मे ग्लानि उत्पन्न कर देती है—कैसे यह शका क्षण भर को भी मेरे मन मे उत्पन्न हुई। पर देखती हूँ कि यही दूसरो को उनका विद्वेषी बनाती है।

पत की सैद्धातिक दृढता, उनका सकल्प, उनकी मान्यताए लौहवत् है। "यदि वह मुझसे नाराज हो गया है, दु खी होकर उसने सबध तोड लिया है तो मुझे दु ख है। मेरा अपना कोई स्वार्थ नही है। जो मत्य है मैं उसके प्रति उदासीन नही रह सकता। मैं वैयक्तिक सबध को, चाहे आज मेरा बेटा ही होता, सत्य के बदले महत्व नही दे सकता। मै एकाकी रहा हूँ। वैयक्तिक स्नेह का भूखा होता तो क्या आज मेरा परिवार नही होता।" पत की ऐसी बाते सुनकर लगता है अच्छा ही हुआ कि वे एकाकी है। परिवार उनके लिए गौण ही रहता। स्त्री-पुत्र की इच्छाओ-आकाक्षाओ को उनकी निर्वैयक्तिक मान्यताएँ अवश्य ही दु खी कर देती। जिसके लिए 'मैं', 'मेरे' का मूल्य नही है वह परिवार मे नही बाँधा जा सकता और ऐसे मे पारिवारिक सगति भग ही हो सकती है। पत केवल उस अपमान को अपमान मानते हैं, प्रतीकार योग्य गिनते है जिसका सामाजिक या राष्ट्रीय मूल्य है। अन्यथा आप उन पर मात्र वैयक्तिक दृष्टि से कीचड डाल दीजिए, उनकी आपके प्रति स्नेह स्रोतस्विनी प्रवाहित होती रहेगी।

जहाँ तक उनका अपना जीवन है, उन्हे किसी से कुछ मागने की, अपने काम, अपने साहित्यिक कृतित्व की महत्ता के लिए कुछ करने की कभी कोई आवश्यकता नही हुई। जो भी पुरस्कार उन्हे मिले है, वे सहज रूप से ही मिले है। बल्कि यह कहना उचित होगा कि पुरस्कार मिलने के बाद उन्हे पुरस्कार के बारे मे पता चला, उसके पहले उनका उस विशिष्ट पुरस्कार के बारे मे ध्यान ही नही गया। पुरस्कार मिलने की सूचना मिलने के बाद ही पत ने पुरस्कार के

स्वरूप के बारे मे मित्रो से पूछताछ की। अपने जीवन के बारे मे उन्हे किसी से कोई शिकायत नही है। वे केवल भागवत अनुकपा के आकाक्षी है। किसी से भी वे किसी प्रकार की अपेक्षा नही रखते है, कोई मिलने आ गया (यद्यपि ६०% प्रतिशत स्वार्थ से आते हैं, इसमे भी २०% अनौचित्य को औचित्य का रूप दिलवाने आते हैं) यही उसकी भारी कृपा है। वैसे यह भी मानना होगा कि साहित्य प्रेमियो का पत को बहुत आदर और स्नेह मिलता है। इन साहित्य प्रेमियों के अतिरिक्त इलाहाबाद के बृहत परिवार—अमृत, सुधा, सध्या, प्रीति, मीरा, शशि, महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा, अश्क जी आदि तथा कभी-कभी लखनऊ से भगवती बाबू के सद्भाव से वे भगवान् के प्रति प्रणत रहते है और इस प्रणत भाव को आनद-दोलित कर देती है सुमित्रा।

पत का जीवन सघर्ष व्यक्तिगत धरातल का रहा भी नही है। उन्होने कवि कर्म का वरण मात्र अपने लिए नही किया क्योकि उनकी दृष्टि मे काव्य का उद्देश्य स्वात सुखाय नही होता, पर जन हिताय होता है।[1] "अनेक विषमताओ के बीच पत ने स्वय अपना विकास कवि के रूप मे ही किया है। वे विषमताओ के बीच सम रहे, यह कोई सामान्य बात नही है। जो सघर्ष करता है वही जानता है कि सघर्ष क्या है।"[2] सघर्ष मानव जीवन का अग है, सभी सघर्ष करते है, यदि पत ने भी सघर्ष किया तो इसमे क्या विशेष बात है? नरेन्द्र शर्मा के अनुसार पंत का जीवन सघर्ष एक महत् उद्देश्य से युक्त है, इस सघर्ष मे व्यक्ति अपने आप मे लाभान्वित नही होता, क्योकि "पेड अपना फल नही खाता है। पेड का जीवन श्रेय है, प्रेय नही।"

---

१. नव युग के वाल्मीकि, निकल बाँबी से,
गढ़ें छंद में चिन्मूल्यों का आशय!

× × ×

यश, धन, स्त्री सुत के लिए न आता युग कवि,

... ...

देखने प्रेम की आँखों से भू आनन
निज अतः सौरभ से भरने जन प्रांगण!

२. नरेन्द्र शर्मा से भेंट वार्ता

ऐसे सघर्षरत व्यक्ति के लिए व्यक्तिगत मान अपमान मूल्यहीन है। इलाहाबाद की एक नाट्य सस्था ने पत से अक्टूबर '७० मे सौ रुपया चदा लिया। जो सज्जन पत से चदा लेने आए उनके साथ एक अवकाशप्राप्त मुख्य न्यायाधीश भी आए। उन्होने पत से कहा, "मैं नही चाहता आप चदा दें।" पर पत को रुपए देने थे, उन्होने दे दिए। जिस दिन शाम को नाटक अभिनीत होने वाला था उस दिन महादेवी जी का फोन आया कि नाटक देखने साथ चलेंगे। पत ने कहा कि उनके पास न तो किसी प्रकार की सूचना है, न निमत्रण ही है। महादेवी जी ने तत्काल सयोजको को फोन किया। किंतु सयोजको को पत के लिए निमत्रण पत्र भेजने अथवा फोन करने का अवकाश नही मिला। दूसरे दिन वे लोग आए। क्षमा मागते हुए उन्होने पत से नाटक के बारे मे सस्तुति पत्र मागा। पत दुबिधा मे पड गए—नाटक उन्होने देखा ही नही था, उसके बारे मे कुछ भी लिखना सभव नही दीखा। सयोजको ने उन्हे सुझाव दिया, "महादेवी जी (अथवा अपने किसी मित्र से जिसने नाटक देखा हो) से पूछ कर सम्मति दे दीजिए।" पत ने सम्मति देना सहर्ष स्वीकार कर लिया, "आप स्वय बता दीजिए, जो चाहते है लिख दूँगा।" मैंने उन्हे टोका तो नाराज़ हो गए। "कैसी बात करती हो ? बेचारो ने माफी तक माँग ली। भूल गए होंगे बुलाना, इसमे कौन सी बात है।"

यह अर्जित आतरिक सतुलन, दृढ मन.शक्ति और स्रष्टा के प्रति पूर्ण प्रणत भावना है जो पत को व्यक्तिगत स्तर पर दुःखी या विचलित नही करती है। पत के पास न जाने दुःखभरे कितने पत्र आते हैं, दुखिया अबलाएँ, निर्धन छात्र[1] आते है जिनके कारण उनका मुँह कुम्हला जाता है, घण्टो वे

---

१. विद्यार्थियों को बुरे नम्बर दो तो पंत बहुत दुःखी हो जाते हैं। सन् '६० की बात है, मुझे उत्तर कांपियाँ जाँचने के साथ ही 'हरपीज' हो गई। पंत ने कहा कि वे कॉपी के ऊपर नम्बर चढ़ा कर योग कर देंगे। पर जब वे यह करने लगे तब उन्होने मेरी आफत कर दी। भूल ही गए मै बीमार हूँ, चारपाई पर लेटी हूँ या सो रही हूँ। थोड़ी-थोडी देर में पुकार कर कहते, "ओ शान्ता, शिव, शिव, क्या किया है तूने। कैसे इस विद्यार्थी को फेल कर दिया है। दो ही नम्बर (चार या आठ भी) तो हैं। मै बढ़ा देता हूँ।" तर्कशास्त्र का प्रश्न पत्र था। मैंने समझाया भी कि यह उत्तर होना चाहिए, नम्बर देने में मैने कोई गल्ती नहीं की है पर उनका दुख··· ···।

आँसू पोछते दीखते है। मैं मन ही मन घबडा जाती हूँ—वृद्धावस्था है, दुर्बल शरीर है, कही इन्हे ही कुछ न हो जाए। उनके मन को शात करने के लिए समझाती हूँ—देखो, यह तो हजारो से अधिक भाग्यशाली है, और मै, अन्य अधिक दारुण परिस्थितियो की चर्चा करती हूँ या सुमिता को भडका देती हूँ, "जाओ, दद्दू से कहो कि उसे हमारे साथ घूमने चलना ही होगा।" सुमिता की बाल हठ के सम्मुख पत का अपना निर्णय कपूर-सा उड जाता है।

तीन मार्च १९७० को एक बजे दिन के समय पत नितात अकेले थे। किसी ने दरवाजा खटखटाया, उन्होंने तत्काल दरवाजा खोला, एक लम्बा-चौडा व्यक्ति अदर आकर कुर्सी पर बैठ गया, "मैं मिलिट्री मे हूँ। मेरा काम दूसरों का खून करना है। इसी उद्देश्य से मैं यहाँ आया हूँ।" उसने पतलून की जेब से तमचा निकाला। पत को दिखाते हुए कहा, "देखते हैं भरा हुआ है।" और वह तमचा आगे को कर खडा हो गया। पंत एक मिनट को सन्न पड गए, फिर अदर की आस्था ने जोर पकडा—घबडा कर क्या होगा। उसकी इच्छानुसार ही मृत्यु आती है। सुस्थिर हो उन्होने उस व्यक्ति की ओर ध्यान से देखा, फिर खडे होकर उसकी पीठ सहलाई, "आप लोगो का जीवन त्याग का है। देश की रक्षा आप ही लोग करते है।" पत के तीन-चार बार पीठ सहलाने पर ही उस व्यक्ति का भाव सामान्य हो गया। उसने तमचा जेब मे रखा, सिर झटका, "आपका खून नही कर सकता हूँ।" कुर्सी पर बैठ कर वह अत्यत उदास हो गया, थोडी देर बाद उसने पत को प्रणाम किया, "आपने मुझे स्नेह दिया। मुझे क्षमा करें आप मेरे पितृतुल्य है।" पत उसे फाटक तक (यह उनका स्वभाव है) छोडने गए। घर आकर बैठे, सब कुछ बडा अजीब था, घबडाहट से युक्त। दो बजे के लगभग मैं युनिवर्सिटी से घर पहुँची, देखा वे फाटक पर खडे हैं। आश्चर्य तो हुआ कि इस समय वे बाहर कैसे हैं (दिन मे खाना खाकर पत अपना कमरा बद करके लेट जाते हैं और मै विश्व-विद्यालय से आकर अपने कमरे का ताला खोल लेती हूँ) पर मैंने उनसे कुछ नही पूछा। स्वय उन्होने ही कहा "जानती हो आज क्या हुआ ...। अपने कमरे मे अभी भी अजीब लग रहा है। इसलिए बाहर घूम रहा हूँ।[1]

---

१. यह घटना पंत के स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं लाई। वे पूर्ववत् ही दरवाजा खोलने के लिए लपकते हैं।

पत के जीवन मे सर्वोच्च एव सपूर्ण स्थान भगवान् का है। भगवान् के अतिरिक्त वे न किसी को प्यार करना चाहते है और न प्राप्त। प्यार का उनके लिए एक ही अर्थ है भगवत् प्रेम। उन्हे महाश्चर्य है, "अन्य किसी को कोई प्यार कर ही कैसे सकता हैं ? सच्चा प्यार तो भगवान् के प्रति ही सभव है।" भगवान् के लिए वे अपने सपूर्ण जीवन को समर्पित करने के आकांक्षी हैं। भगवत् प्रेम, सत्सगति, सद् वार्ता के लिए वे किसी प्रकार के बधन को नही मानते हैं। यदि मीलो की दूरी, जाडा-गर्मी, कुसमय, स्वास्थ्य, भोजन आदि के नाम पर उन्हे मना करो तो वे तत्काल उत्तर देते है "यह मेरे लिए अनिवार्य है। जिसके लिए लोग स्त्री, धन, पुत्र, सभी का त्याग कर देते है उसके लिए मैं अपनी सुख सुविधा देखूँ।" भगवत् प्रेम ने ही पत को कल्याण का गायक बनाया है, उनके सृजन, सिद्धात और व्यक्तित्व का स्वरूप निरूपण किया है। अपने स्वभाव एव अतर्जात गुण के अनुरूप उन्होने इस प्रेम को साहित्य एव काव्य के माध्यम से वाणी दी है। इसी प्रेम ने उन्हे सत्कर्म का प्रेमी बनाया है जिसे वे यथाशक्ति आचरित करने का प्रयास करते है। १० सितम्बर ७४ को बातचीत के मध्य उन्होने अमृतराय से कहा, "राग-द्वेष, अहकार-स्वार्थ को त्याग कर व्यक्ति को सत्कर्म करने चाहिए।' आज जो हम दुनिया देखते हैं वह मनुष्य के इन्ही सत्कर्मों के कारण है, अन्यथा यह कभी की विनष्ट हो गई होती।" 'आस्था' मे इसी सत्कर्म को उन्होने वैदिक औपनिषदिक दर्शन का सारतत्व माना है :

कर्म खोज मन, कर्म खोज नित
भू रचनात्मक,
कर्म खोज तू—
यही सार वेदो शास्त्रों का।

कर्म को अपना कर ही जीवन मे ईश्वर को पा सकते है :

सीधा ईश्वर का
साक्षात् करो जीवन मे,—
× × ×
नया भविष्य गढो
मानवता के हित भू पर,
युग प्रभात कर रहा
प्रतीक्षा अन्तरिक्ष मे !

• •

परिशिष्ट १

(अध्याय : एक)

लोकायतन की रूपरेखा

●

'लोकायतन' के नाम से हम एक ऐसा केन्द्र स्थापित करना चाहते हैं, जहाँ हम लोक-सस्कृति के विकास के लिए प्रारम्भिक प्रयोग कर सके।

'लोकायतन' का उद्देश्य होगा भिन्न-भिन्न सस्कृतियो के विरोधो से लोक-चेतना को मुक्त करना और समस्त धार्मिक, सामाजिक, नैतिक एव इतर विभेदो को मानवीय एकता मे ढालकर विकसित विश्व-परिस्थितियो के अनुकूल लोक-सस्कृति की रूप-रेखाओ को स्पष्ट करना।

इस केन्द्र की कार्यप्रणाली प्रयोगात्मक होगी—एक ओर यह प्रयोग, अध्ययन और विचार-विनियम द्वारा लोक-सस्कृति के मानो का स्पष्टीकरण करेगा, दूसरी ओर लोक-कला के माध्यम द्वारा उनका प्रचार कर उन्हे लोक-जीव न का अग बनाने का प्रयत्न करेगा।

अपने उद्देश्यो की पूर्ति से लिए 'लोकायतन' प्रारम्भ मे चार विभाग खोलेगा। इन विभागो के नाम क्रमश. (१) ज्योति-द्वार, (२) सस्कृति-द्वार, (३) जीवन-द्वार, (४) कला-द्वार होगे।

(१) ज्योति-द्वार का मुख्य उद्देश्य होगा देश-विदेश के दार्शनिको, वैज्ञानिको एव विद्वानो से सबध स्थापित करना और ज्ञान की वृद्धि और बृह त् समन्वय करना। इस विभाग के अन्तर्गत शोध और शिक्षा का प्रबन्ध रहेगा, जिसका व्यावहारिक रूप यह होगा कि आरम्भ मे दो शिक्षक और एक शोध विशारद (रिसर्च स्कॉलर) नियुक्त किये जायेगे। यह साधारणत. केन्द्र के महत् उद्देश्यो की पूर्ति मे सहायता देते हुए विशेष रूप से हिन्दी की उच्च परिक्षाओ के लिए परीक्षार्थियो को तैयार करेगे और द्वार-समिति द्वारा निर्दिष्ट विषयो पर शोध करेगे। इस विभाग से सलग्न एक छात्रवास भी होगा, जहाँ रहते हुए परीक्षार्थी केन्द्र के वातावरण और उसके सचालको के

सम्पर्क का लाभ उठा सकेंगे। केन्द्र की ओर से एक ग्रन्थालय का भी सचालन होगा जो इस विभाग के अधीन रहेगा।

(२) **संस्कृति-द्वार** के माध्यम से इस बात का प्रयत्न होगा कि जिस लोक-सस्कृति का पोषण 'लोकायतन' से हो, उसका विचार-विनियम द्वारा स्पष्टी-करण होता रहे। इस विचार-विनियम के लिए नियमित रूप से गोष्ठियो का आयोजन होगा और इनमे भाग लेने के लिए विशिष्ट व्यक्तियो को आमन्त्रित किया जायेगा। इस विवेचना का साराश 'लोकायतन' की मुखपत्रिका 'लोक-वाहिनी' द्वारा प्रकाशित होता रहेगा। साथ ही इन विचारो के प्रचार के लिए मुख्य पत्र-पत्रिकाओ का सहयोग प्राप्त किया जायेगा। यथा समय इस विभाग द्वारा 'विद्यायन' सबधी प्रकाशनो का भी प्रबन्ध होगा।

(३) **जीवन-द्वार** 'लोकायतन' की प्रयोगशाला रहेगी। ज्योति और सस्कृति द्वारो की सास्कृतिक चेतना को जीवन-द्वार लोक-जीवन मे परिणत करने का प्रयत्न करेगा। इस विभाग के अन्तर्गत एक 'विद्यायन' होगा, जिसका उद्देश्य नगर और ग्राम के नवयुवको को कला-कौशल के माध्यम द्वारा ऐसी शिक्षा देना होगा, जिससे उनका जीवन-निर्माण लोक-सस्कृति के अनुकूल हो सके। विद्यायन के अतिरिक्त जीवन-द्वार मे यथासमय जन-साधारण के लिए भी, जो लोक-सस्कृति को दैनिक व्यवहार मे लाना चाहेगे, दीक्षा का प्रबन्ध रहेगा।

(४) **कला-द्वार** मुख्यत 'लोकायतन' का प्रचार विभाग रहेगा। 'विद्यायन' के विद्यार्थियो के लिए यह लोक-जीवन और लोक-सस्कृति के अनुकूल कलाओ का विकास करेगा और उनके माध्यम द्वारा 'लोकायतन' के सास्कृतिक विचारो का प्रचार करेगा। यह विभाग देश-विदेश के महान् कलाकारो से सम्पर्क बनाये रहेगा। प्रारम्भ मे सास्कृतिक जीवन का प्रचार अभिनय द्वारा किया जायेगा। इस प्रकार हिन्दी मे नाट्यमच के अभाव की पूर्ति भी हो सकेगी। नाट्यमच को आधुनिक युग मे शिक्षा-प्रसार का एक सबल साधन माना गया है। नये टेकनीक के नाट्यमच के निर्माण की दिशा मे प्रयोग के साथ 'लोकायतन' के सास्कृतिक तत्त्व का प्रचार-कार्य भी नाट्यमच द्वारा ही किया जायेगा। इस प्रकार 'लोकायतन' ग्राम और नगर की जनता के सजीव सम्पर्क मे आ सकेगा। अभिनय का कार्य विशेषत. 'विद्यायन' के विद्यार्थियो और 'लोकायतन' के कार्यकर्ताओ द्वारा होगा। 'विद्यायन' के विद्यार्थी ग्रामगीतो द्वारा गाँवो मे लोकोपयोगी भावनाओ का प्रचार भी करेंगे।

'लोकायतन' हिन्दी को अपना भाषा माध्यम बनायेगा।

'लोकायतन' का भवन गगा किनारे झूसी मे स्थापित होना निश्चित हुआ है। इसका श्रेय श्री श्री नारायण जी चतुर्वेदी की सद्भावना और सदुद्योगों को है।

'लोकायतन' का उद्घाटन और प्रथम वर्ष के कार्यक्रम का आरम्भ १, जनवरी '१६४३ को होगा।

इस केन्द्र की नीति के सचालन के लिए ११ सदस्यो की एक समिति होगी जिसका निर्वाचन पहले तीन वर्षों के लिए होगा। इस अवधि के अन्त मे दो तिहाई सदस्य अवकाश ग्रहण करेगे जिनके स्थान पर नये सदस्य चुन लिये जायेंगे। विभागो के सचालन के लिए द्वार-समितियो की व्यवस्था होगी और दैनिक कार्य-सचालन के लिए सात सदस्यो की एक प्रबन्ध-समिति रहेगी।

प्रथम वर्ष का कार्य-क्रम

(१) **ज्योति-द्वार** के अन्तर्गत एक शोध-विशारद और दो अध्यापकों की नियुक्ति होगी। शोध-विशारद का कार्य द्वार-समिति द्वारा निर्दिष्ट विषयो पर खोज करना होगा। शेष दो अध्यापक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की उत्तमा और शिक्षा-विभाग की विशेष योग्यता (एडवान्स) परीक्षाओ के लिए विद्यार्थियो को शिक्षा देंगे। इस विभाग के अधीन ग्रन्थालय की स्थापना भी इसी वर्ष की जायेगी। यह द्वार देश के विद्वान और अधिकारी व्यक्तियो का सम्पर्क 'लोकायतन' के लिए प्राप्त करेगा।

(२) **संस्कृति-द्वार** इस वर्ष प्रतिमास एक साहित्यिक-गौष्ठी की आयोजना करेगा। 'लोकायतन' की मुखपत्रिका 'लोकवाहिनी' भी इसी वर्ष से प्रकाशित हो सकेगी।

(३) **जीवन-द्वार** मे इस वर्ष कम सें कम ६ विद्यार्थी लिये जायेंगे जिनको कला और अभिनय के माध्यम द्वारा, 'लोकायतन' के उद्देश्यो के अनुकूल शिक्षा देने का प्रयत्न किया जाकेगा।

(४) **कला-द्वार** की ओर से इस वर्ष कम से कम दो नाटक नगर मे खेले जायेंगे और देहात मे ग्राम-गीतो द्वारा प्रचार-कार्य होगा।

'लोकायतन' की विवरण-पत्रिका और इस वर्ष के विस्तृत कार्य-क्रम का प्रकाशन यथाशीघ्र किया जायेगा। (१६४२)

• •

परिशिष्ट : २

(अध्याय : पाँच)

लोकायन (नियमावली)

विधान और नियम

१. इस सस्था का नाम लोकायन होगा। यह एक सस्कृतिपीठ होगी। — नाम

२. लोकायन की स्थापना प्रयाग मे होगी, इसकी शाखाएँ अन्य स्थानो पर भी खोली जा सकेगी। — स्थान

३. सस्था के उद्देश्य होगे— — ध्येय

(१) सस्कृति के उन्नयन के लिए वातावरण तथा परिस्थितियाँ निर्माण करना।

(२) भिन्न भिन्न सस्कृतियो के विरोधो से मनुष्य की चेतना को मुक्त करना।

(३) धार्मिक, सामाजिक, नैतिक एव अन्य विभेदो को मानवीय एकता मे ढालना।

(४) विकसित वस्तु-परिस्थितियो के अनुरूप जीवन की मान्यताओ को दुहरा कर लोकचेतना का नवीन रूप से सास्कृतिक सगठन करना।

(५) विश्व सास्कृतिक जागरण के लिए अन्य व्यापक उद्देश्यों को अपनाना।

४. इस केन्द्र की कार्यप्रणाली वैज्ञानिक एव प्रयोगात्मक होगी। एक ओर यह अध्ययन, मनन तथा विचार-विनिमय द्वारा लोकसंस्कृति की रूपरेखाओ का स्पष्टीकरण करेगा, दूसरी ओर — कार्यप्रणाली

लोककला के माध्यम द्वारा उसका प्रचार कर, उसे लोक-जीवन का अग बनाने का प्रयत्न करेगा।

५. सस्था का सचालन लोकसभा, सचारिणी सभा, विधायिनी सभा और द्वार-समितियो द्वारा होगा। **संचालन**

६ लोकायन मुख्यतः हिंदी भाषा को अपना माध्यम बनायेगा और आवश्यकतानुसार अन्य भाषाओ का भी उपयोग करेगा। **माध्यम**

७. अपने उद्देश्यो की पूर्ति के लिए लोकायन मुख्यतः चार विभाग खोलेगा, जिनके नाम होगे। **संगठन**

(१) ज्योतिद्वार,
(२) सस्कृतिद्वार,
(३) कलाद्वार, और
(४) जीवनद्वार

आवश्यकतानुसार अन्यान्य विभाग भी खोले जा सकेंगे।

द्वार

८. ज्योतिद्वार का मुख्य उद्देश्य होगा देश-विदेश के दार्शनिको वैज्ञानिको एवं विद्वानो से सबध स्थापित करना ओर ज्ञान की वृद्धि तथा बृहत् समन्वय करना। **ज्योतिद्वार**

इस विभाग से सलग्न एक ग्रन्थपथ (पुस्तकालय) भी होगा।

६ सस्कृतिद्वार के माध्यम से विचार-विनिमय द्वारा लोक-सस्कृति की रूपरेखाओ का स्पष्टीकरण होगा। इसके लिए नियमित रूप से गोष्ठियो का आयोजन होगा और उनमे भाग लेने के लिए विशिष्ट व्यक्तियो को आमन्त्रित किया जायेगा। यथासमय इस विभाग द्वारा विद्यायन सबधी पुस्तको एव सृजनात्मक साहित्य का भी प्रकाशन होगा। **संस्कृतिद्वार**

१०. कलाद्वार मुख्यतः लोकायन का प्रचार-विभाग होगा। यह लोकजीवन और लोकसस्कृति के अनुकूल कलाओ का विकास करेगा। यह विभाग देश-विदेश के महान् कलाकारो से सपर्क स्थापित करेगा। प्रारभ मे यह सास्कृतिक जीवन का प्रचार अभिनय द्वारा करेगा। इस प्रकार हिंदी मे 'रग भारत' के अभाव की भी **कलाद्वार**

पूर्ति हो सकेगी और लोकायन अभिनयो, नृत्यो, ग्रामगीतो, आदि द्वारा ग्रामों तथा नगरो की जनता के सजीव सपर्क मे आवेगा।

जीवनद्वार ११. जीवनद्वार लोकायन की प्रयोगशाला होगी। ज्योति और सस्कृति द्वारो की सास्कृतिक चेतना को जीवनद्वार लोकजीवन मे परिणत करने का प्रयत्न करेगा।

इस विभाग के अतर्गत एक विद्यायन तथा छात्रवास होगा। विद्यायन का उद्देश्य नगर और ग्राम के नवयुवको का कला कौशल के माध्यम द्वारा लोकसस्कृति के अनुकूल जीवन निर्माण करना होगा।

सदस्यता

सदस्यता १२. सस्था की सदस्यता दो प्रकार की होगी—

(अ) प्राणसदस्य,

(इ) अगसदस्य

प्राणसदस्य १३. प्राण सदस्य दो प्रकार के होंगे—

(१) कीर्तिस्तम्भ, जो सस्था को दस सहस्र या उससे अधिक रुपये दान देंगे अथवा जिन विश्वविश्रुत पुरुषो के सहयोग से सस्था की गौरववृद्धि होगी। इन विशिष्ट व्यक्तियो का चुनाव विधायिनी सभा करेगी।

(२) सरक्षक, जो सस्था को प्रति वर्ष एक सहस्र या उससे अधिक रुपये प्रदान करेंगे। बारह साल तक नियमित रूप से एक सहस्र या अधिक प्रतिवर्ष देते रहने पर वे कीर्तिस्तम्भ बन जायेंगे।

अंगसदस्य १४. अगसदस्य तीन प्रकार के होगे—

(१) सम्भ्रान्त सदस्य, वे लब्धप्रतिष्ठ साहित्यिक, कलाकार, शिक्षाप्रेमी विद्वान अथवा प्रतिष्ठित सस्थाओ के प्रमुख व्यक्ति होगे जो सस्था के जीवन मे सक्रिय सहयोग देंगे। इनका चुनाव विधायिनी सभा करेगी। इनकी सख्या किसी एक समय २५ से अधिक न होगी।

(२) अभिभावक, जो सस्था को विविध रूप से बहुमूल्य पुस्तकें, पाडुलिपिया, कला-सामग्री, चित्र, मूर्ति आदि प्रदान करेंगे, अथवा वे विद्वान जो सस्था के दैनिक जीवन मे सक्रिय सहयोग देंगे। इनका चुनाव विधायिनी सभा करेगी।

(३) सुहृद् सदस्य—

(अ) जो सस्था को प्रतिवर्ष १०० रुपए अथवा अधिक प्रदान करेंगे।

(इ) वे विद्वान, साहित्यिक और कलाकार जो सस्था को प्रतिवर्ष २५ रुपए देंगे। इनका चुनाव विधायिनी सभा करेगी।

सुहृद् सदस्य का आवेदन पत्र दो सदस्यो द्वारा समर्पित तथा सपूर्ण विधायिनी सभा द्वारा स्वीकृत होगा।

शोभासदस्य

१५ इनके अतिरिक्त शोभासदस्य वे स्वभावसस्कृत स्त्री-पुरुष होगे जिनके जीवन और व्यक्तित्व से सुरुचि, सौंदर्य और पूर्णता की प्रेरणा मिले। इनका प्रवेश विधायिनी सभा के दो या अधिक सदस्यो के समर्थन से होगा।

प्राणसदस्यों के अधिकार

१६ (१) प्राणसदस्य सचारिणी सभा के अधिवेशनो में उपस्थित हो सकेंगे और शलाका (मत) के भी अधिकारी होंगे।

(२) उनकी इच्छा होने पर उनके नाम से और विधायिनी सभा की बहुमत स्वीकृति से नवीन विभागों का उद्घाटन किया जा सकेगा।

(३) उनके पास सस्था के कार्यों, योजनाओ आदि का विवरण, सस्था के प्रकाशन, मुखभारती आदि नियमित रूप से भेजे जायँगे।

(४) वे सस्था द्वारा आयोजित समस्त गोष्ठियो, उत्सवो और प्रदर्शनो मे सम्मिलित हो सकेंगे।

अंग सदस्यों के अधिकार

१७ (१) अगसदस्य सचारिणी सभा के अधिवेशनो मे उपस्थित हो सकेंगे, किंतु वे अपने प्रतिनिधियो द्वारा ही शलाका दे सकेंगे।

(२) उनके पास सस्था की मुखभारती निःशुल्क भेजी जायेगी और उन्हे सस्था के अन्य प्रकाशन विधायिनी सभा द्वारा निर्धारित कम मूल्य पर मिल सकेंगे।

(३) वे सस्था द्वारा आयोजित गोष्ठियो, उत्सवो और प्रदर्शनो मे सम्मिलित हो सकेंगे।

सदस्यता की अवधि

१८. (१) सुहृद्सदस्य वार्षिक शुल्क न देने पर सस्था से पृथक् समझे जायेगे।

(२) सस्था के हितो, उद्देश्यो तथा प्रतिष्ठा के विरुद्ध आचरण करने पर सब प्रकार के सदस्य विधायिनी सभा के दो-तिहाई बहुमत से सस्था से पृथक् समझे जायेगे।

लोकसभा

१९. (१) सस्था के सब प्रकार के सदस्य लोकसभा के लोकसभा सदस्य कहे जायेंगे।

(२) लोकसभा के सदस्य प्रतिवर्ष २० प्रतिशत प्रतिनिधि चुनेंगे जो संचारिणी सभा के सदस्य होगे। लोकसभा के अन्य सदस्य भी सचारिणी सभा के अधिवेशनो मे उपस्थित हो सकेंगे किंतु शलाका के अधिकारी नही होंगे।

संचारिणी सभा

संचारिणी सभा

२०. (१) सस्था के सचालन का सामान्य उत्तरदायित्व सचारिणी सभा पर होगा।

(२) वह सस्था के ध्येयो को सब प्रकार से पूर्ण बनाने मे सहायता देगी।

(३) वह विधायिनी सभा के सदस्यो और पदाधिकारियो का निर्वाचन करेगी।

(४) उसे विधायिनी सभा द्वारा बनाए गए नियमो मे उपस्थित सदस्यो के ६० प्रतिशत बहुमत से परिवर्तन-परिवर्धन करने का अधिकार होगा।

(५) वह वार्षिक विवरण पर अपना मत प्रकट करेगी।

(६) वह विधायिनी सभा द्वारा बनाए गए आय-व्यय-अनुमान-पत्र (बजट) का अनुमोदन करेगी।

विधायिनी सभा

विधायिनी सभा

२१. (१) विधायिनी सभा का निर्वाचन प्रति तीसरे वर्ष हुआ करेगा।

(२) अवधि के समाप्त होने पर, पदाधिकारियो को छोडकर, विधायिनी सभा के एक तिहाई सदस्य जिनका चुनाव गुलिका (बैलेट) से होगा, अनिवार्यत अवकाश ग्रहण करेंगे और तीन वर्ष तक उनका पुन निर्वाचन नही हो सकेगा। शेष दो-तिहाई फिर से चुनाव के अधिकारी होगे।

(३) किसी अनिवार्य कारणवश समय पर चुनाव न हो सकने पर पिछले सदस्य नवीन निर्वाचन तक कार्य सचालन करेंगे।

(४) विधायिनी सभा का कर्त्तव्प सस्था के लिए धन एकत्रित करना होगा। वह सस्था के सपत्ति की साधारण देख-भाल और सरक्षण करेगी।

(५) विधायिनी सभा को सस्था की ओर से क्रय-विक्रय तथा कानूनी कार्यवाही करने का अधिकार होगा।

(६) वह सस्था के वार्षिक आय व्यय के लिये अनुमान-पत्र निर्धारित कर उसका सचारिणी सभा से समर्थन करावेगी।

(७) वह सचारिणी सभा को सस्था के कार्यप्रवाह का विवरण देगी।

(८) वह कार्यकर्ताओ और द्वारवाहको को नियुक्त और पृथक् करेगी।

(९) वह लोकसखा को सस्था की आवश्यकतानुसार धन व्यय करने का अधिकार देगी।

(१०) वह अगसदस्यो का निर्वाचन और उसका समर्थन करेगी।

(११) वह विधायन की रूपरेखा निर्दिष्ट करेगी।

(१२) वह संस्था की मुखभारती 'लोकचेतना' का सचालन और प्रचार करेगी।

(१३) वह प्रकाशन का प्रबध करेगी।

(१४) वह द्वार-समितियो द्वारा आयोजित गोष्ठियों, अधिवेशनो तथा प्रदर्शनो का निर्देशन करेगी।

(१५) वह आवश्यकतानुसार संस्था के नियमो मे परिवर्तन-परिवर्धन कर सचारिणी सभा से अनुमोदन करावेगी।

(१६) वह सस्था की उद्देश्य-सिद्धि के लिए नवीन साधनों एव उपायो को खोजेगी ।

द्वार-समितियाँ

द्वार-समितियाँ

२२. (१) प्रत्येक द्वार का सचालन तीन सदस्यो की एक समिति करेगी जो उस द्वार के

(अ) अध्यक्ष,
(इ) मत्री, और
(उ) सहायक

कहे जायँगे । यह समिति सुविधानुसार अन्य सदस्यो को भी सबद्ध कर सकेगी ।

(२) द्वार-समितियो की बैठको का सचालन लोक-सखा के सभापतित्व मे होगा ।

(३) द्वार-समितियो सबधी नियम-उपनियम समय समय पर विधायिनी सभा द्वारा बनाये जाजगे ।

मुख भारती

मुखभारती

२३. लोकायन की मुखभारती 'लोकचेतना' नामक मासिक पत्रिका होगी, जिसका सचालन सस्कृति-द्वार करेगा ।

अधिवेशन

अधिवेशन

२४. (१) सचारिणी सभा के अधिवेशन सस्था के वार्षिक कार्यप्रवाह पर विचार-विनियम करने के लिए, वार्षिक आय-व्यय को निर्धारित करने के लिए, विशेष समस्याओ समाधान करने के लिए और विधायिनी सभा द्वारा बनाए गए नियमो मे परिवर्तन परिवर्धन करने के लिए बुलाए जायँगे ।

नियमो मे परिवर्तन-परिवर्धन करने के लिए सचारिणी सभा का दो-तिहाई बहुमत आवश्यक होगा ।

(२) विधायिनी सभा के सामान्य-अधिवेशन समय-समय पर सस्था के और द्वारो के कार्य-सचालन के सबध मे बुलाए जायेंगे ।

विधायिनी सभा के असामान्य अधिवेशन लोकपति अथवा लोकव्रती के विशेष अधिकार से बुलाए जायेंगे ।

२५. (१) सचारिणी सभा के अधिवेशनो के लिए कम से कम एक मास पूर्व सूचना दी जायगी । सूचना

(२) विधायिनी सभा के अधिवेशनो के लिए एक सप्ताह पूर्व सूचना दी जायेगी ।

(३) असामान्य अधिवेशनो के लिए दो दिन की सूचना पर्याप्त समझी जायेगी ।

२६. (१) लोकसभा की क्षमता (कोरम) २० प्रतिशत या उसकी निकटतम सख्या होगी । क्षमता

(२) सचारिणी सभा की क्षमता सख्यानुसार एक पचमांश या उसकी निकटतम सख्या होगी ।

(३) विधायिनी सभा की क्षमता चार होगी ।

पदाधिकारी

२७. विधायिनी सभा के पदाधिकारी होंगे— पदाधिकारी

(अ) लोकपति,
(इ) लोकव्रती,
(उ) निधिपति,
(ए) लोकसखा, और
(ओ) लोकसचिब ।

ये पद क्रमशः सभापति, उपसभापति, कोषाध्यक्ष, प्रधानमत्री और प्रबधक के पर्यायवाची होंगे ।

२८. (१) वह सस्था का साधारणतः निरीक्षण और निर्देशन करेगा । लोकपति

(२) उपस्थित होने पर लोकसभा, सचारिणी सभा और विधायिनी सभा के अधिवेशनो का सभापतित्व करेगा ।

(३) उसे दूसरी या विशेष शलाका का अधिकार होगा ।

(४) लोकपति अपने पूर्ण अथवा अश अधिकार लोकव्रती को प्रदान कर सकेगा ।

२९. (१) लोकपति की अनुपस्थिति मे वह उसके समस्त कार्य करेगा और लोकपति-दत्त अधिकारो का प्रयोग करेगा । लोकव्रती

(२) विशेष अवसरो पर लोकसखा को सस्था-सबधी आवश्यक निर्णय करने का अधिकार देगा।

निधिपति

३०. (१) निधिपति सस्था की सचित सपत्ति के लिए उत्तरदायी होगा। वह उसे विधायिनी सभा द्वारा निर्धारित बैंक मे रक्खेगा, और विधायिनी सभा के निरीक्षण मे बैंक से लेन-देन करेगा।

(२) वह सस्था-सबधी समस्त क्रय-विक्रय के पत्रो, दान के पट्टो, रसीदो और सपत्ति-सबधी अन्य आवश्यक पत्रो, चेको आदि पर हस्ताक्षर करेगा।

रुपयो को छोड कर अन्य दानसामग्री की रसीदो पर लोकसखा के हस्ताक्षर होंगे।

(३) वह लोकसखा के परामर्श तथा लोकसचिव की सहायता से वार्षिक आयव्यय का अनुमानपत्र तैयार कर उसे विधायिनी सभा के सामने रक्खेगा।

(४) वह लोकसचिव की सहायता से सस्था के आयव्यय का हिसाब रक्खेगा और विधायिनी सभा द्वारा निर्धारित ऑडिटर से जाँच करवा कर वर्षांत मे सस्था के समस्त आयव्यय का व्यौरा विधायिनी सभा के सामने रक्खेगा।

(५) वह सस्था की चल-अचल सपत्ति की सूची रक्खेगा और सस्था की सपत्ति पर साधारण निरीक्षण रक्खेगा।

लोकसखा

३१. (१) लोकसखा को संस्था के निर्माण और सचालन सबंधी विशेष अधिकार होगे। वह साधारणतः लोकपति और विधायिनी के नियत्रण मे सस्था का और उसके भिन्न-भिन्न विभागो के कार्यों का निर्देशन करेगा।

(२) उस पर अनुमानपत्र के अनुसार आयव्यय का उत्तरदायित्व होगा।

(३) वह मुखभारती तथा सस्था के अन्य प्रकाशनो का निर्देशन करेगा।

(४) वह द्वार-समितियो और उपसमितियो की बैठको का सभापतित्व करेगा।

(५) विशेष अवसरो पर वह लोकपति अथवा लोकव्रती की अनुमति से सस्था के कार्य-सचालन के सबध मे आवश्यक निर्णय ले सकेगा, और अपने निर्णयो को विधायिनी सभा के अगले अधिवेशन मे उपस्थित करेगा।

(६) वह सस्था तथा उसके विभागो के कार्यप्रवाह का वार्षिक विवरण तैयार कर उसे सचारिणी सभा के सामने रक्खेगा।

३२ (१) वह लोकसखा को सस्था के सचालन मे सब प्रकार सहायता देगा। लोकसचिव

(२) वह सदस्यो के पास सभा के अधिवेशनो की सूचना तथा प्रस्तावित कार्यक्रम की सूची भेजेगा। वह नवीन सदस्यो की घोषणा तथा सस्था-सबधी अन्य आवश्यक सूचनाएँ देगा।

(३) वह सस्था तथा लोकचेतना सबधी समस्त पत्र-व्यवहार करेगा।

(४) वह पत्रो की देखरेख करेगा तथा आवश्यक फाइलें रक्खेगा।

(५) वह सस्था के दैनिक आयव्यय का हिसाब, बिल, रसीदे आदि रक्खेगा।

(६) वह ग्रथपथ और रगमच का निरीक्षण करेगा तथा कोष के अतिरिक्त सस्था की समस्त सपत्ति की देखभाल करेगा।

(७) वह गोष्ठियो, अधिवेशनो, प्रदर्शनो आदि के आयोजन का प्रबध करेगा।

(८) वह अपने पास दैनिक खर्च के लिए विधायिनी सभा द्वारा निर्धारित पूंजी रक्खेगा।

विविध

३३. (१) कभी क्षमता न पूरी होने पर प्रस्तावित कार्य अगले अधिवेशन मे सपन्न किया जायेगा। विविध

(२) लोकपति या लोकव्रती की अनुपस्थिति मे सचारिणी सभा अथवा विधायिनी सभा द्वारा निर्धारित उनका कोई सदस्य क्रमशः सभाओ का सभापतित्व कर सकेगा।

(३) संस्था की समस्त संपत्ति संस्था के नाम से अर्जित तथा रजिस्टर्ड होगी ।

(४) विधान के नियमों के अतिरिक्त विधायिनी सभा को संस्था के संचालन-संबंधी उपनियमों के बनाने का अधिकार होगा ।

(५) संचारिणी सभा में प्रस्तुत किए जाने वाले सदस्यों के प्रस्ताव १५ दिन पहिले लोकसखा के पास पहुँच जाने चाहिए ।

(६) संचारिणी सभा के सदस्यों को संस्था के फाइलों या रजिस्टरों को देखने का अधिकार लोकपति या लोकव्रती की आज्ञा से प्राप्त हो सकेगा ।

(७) संचारिणी सभा का अधिवेशन साल में कम से कम एक बार तथा विधायिनी सभा का साल में कम से कम तीन बार होगा । (१९४७)

● ●

नामानुक्रमणिका

फ

ब

भ

म

य

र

ल

व

● ●

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०	३३	साधन	साधना
२०	२३	न देखकर	देखकर
४४	२३	भू स्वर्ण	भू स्वर्ग
४८	६	दूरित	दुरित
४८	१६	सूक्ष्य	सूक्ष्म
६२	१२	दायित्य	दायित्व
६५	१६	Vieicusly	Viciously
६५	२८	निर्मय	निर्मम
१०५	१३	उत्तर	उतर
१०७	१०	तादात्य	तादात्म्य
१४१	१३	होगा	होता
१४६	२१	खने	देखने
१५२	२३	त्रे	वे
१६१	३	एकाकी	एकाकी
१६१	२२	नित	तिक्त
१६४	१६	नैतिकता	भौतिकता
१६५	११	स्वातन्त्र्या	स्वातन्त्र्य
१६६	१०	है	हे
१६६	१५	प्यास	प्यार
१७०	१	चित्रयता	चित्रमत्ता
१७२	४	स्वप्नलता	स्वप्निलता
१७५	३	हूँ	है
१८४	३	डर	उर
१८६	२०	युक्त	मुक्त
१९१	१७	ल्कात	क्लात

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६२	१७	वैसे	वैं स
२३६	१६	पहि	पहिले
२४५	५	मिलना	मिलता
२५६	१५	व्याख्य	व्याख्येय
२६६	२१	अस्तित्वाद	अस्तित्ववाद
२६७	२७	कसफल	असफल
२७२	१४	घर	घर मे
२७२	२४	औंर	ओर
२७२	२५	मांटर	मोअर
२६४	८	च	मच
३०४	२७	मिथ्वात्व	मिथ्यात्व
३०६	११	दीप्न	दीप
३०७	६	मे	मै
३२१	८	हुडा	हुआ
३२१	२६	हैथवा	अथवा
३५४	१२	पद्य	पद्म
३५५	१७	परीझा	परीक्षा
३६५	२४	क र	करा
४३३	२३	ये	से
४४०	१७	निरस्त्र	निरस्त
४४७	३	सर्जन	सर्जक
४४८	१६	को	के
४६५	५	आत्मा	आत्मानं
५०१	२१	एक	तक
५६५	५	डाल	डाले
६५७	१६	खोला	फेंका

पतजी की कृतियाँ

(सन् १९४१ से सन् १९७६ तक)

●

आधुनिक कवि	१९४१
स्वर्ण किरण	१९४७
स्वर्ण धूलि	१९४७
मधुज्वाल	१९४७
युगपथ	१९४९
उत्तरा	१९४९
रजत शिखर	१९५२
शिल्पी	१९५२
अतिमा	१९५५
सौवर्ण	१९५६
वाणी	१९५८
रश्मिबध	१९५८
चिदम्बरा	१९५८
कला और बूढा चाँद	१९५९
साठ वर्ष एक रेखाकन	१९६०
शिल्प और दर्शन	१९६१
लोकायतन	१९६४
छायावाद · पुनर्मूल्याकन	१९६५
कला और सस्कृति	१९६५
किरण वीणा	१९६७
पौ फटने से पहिले	१९६७

पतझर : एक भाव क्रांति	१९६९
गीत हस	१९६९
शखध्वनि	१९७१
शशि की तरी	१९७३
समाधिता	१९७३
साठ वर्ष और अन्य निबध	१९७३
आस्था	१९७३
सत्यकाम	१९७५
गीत अगीत	प्रेस मे (१९७६)